

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

गुरुमण्डलग्रन्थमालायाश्चतुर्दशपुष्पम्

ब्रह्मवैवर्तपुराणम्

(श्रीकृष्णजन्मखण्डात्मकम्)



श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम् .

तस्य

द्वितीयो भागः

श्रीनाथादि गुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ,
सिद्धीधं घटुकत्रयं पदयुगं द्वीतीकमं मण्डलम् ।
घीरान्नद्वयपञ्चतुष्कपट्टिनचक्रं घीराघलीपञ्चकम् ,
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं घन्दे गुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो

कलकत्ता

Gurumandal Series No. XIV.

Brahma Vaivartta Puranam

(Containing Shri Krishna Janma Khanda)

BY

SHRIMANMAHARSHI VEDAVYAS)

Volume II

**5, Clive Row
Calcutta.**

Vikram Era
2012

First Edition
5000

Christian Era
1955

Printed by :

Gopal Printing Works,
87/A, Raja Dinendra St.,
Calcutta 6.

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

अथ चतुर्थं श्रीकृष्णजन्मखण्डम्

अध्यायः

विषय

॥ १४४ ॥

पृष्ठांक

१

श्रीकृष्णपादपद्मप्राप्तिसोपानम्

५२३

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

- देवर्षि नारद का भगवान् नारायण से पुराणविषयक प्रश्न

नारदजी ने भगवान् नारायण से पूछा कि हे ब्रह्मन् प्रथम ब्रह्मखण्ड ब्रह्मा के मुखारविन्द से श्रवण किया । तत्पश्चात् उनकी आज्ञा से शीघ्र ही आपके पास आकर अमृतखण्ड से भी परम श्रेष्ठ प्रकृतिखण्ड को सुना फिर जन्म-मरण के जाल से छुड़ानेवाले गणपतिखण्ड को सुना परन्तु मेरा मन तृप्त नहीं हुआ क्योंकि मैं और भी विशेष सुनने की इच्छा रखता हूँ । अतः मनुष्यों के जन्मादि को खण्डन करनेवाला, सम्पूर्ण तरुओं का प्रदीप, कर्मों को नष्ट करनेवाला, तत्काल वैराग्य पैदा करनेवाला, भवरोग से छुड़ानेवाला, मुक्ति का कारण, संसाररूपी समुद्र से पार लगानेवाला, कर्म के उपभोग रोगों को नष्ट करने में रसायनरूप भगवान् श्रीकृष्ण के कमलरूपी चरणों की प्राप्ति में सोपान (सीढ़ी) रूप वैष्णवों का जीवन-धन और संसार को परम पवित्र करनेवाला श्रीकृष्णजन्मखण्ड शरण में आये हुए मुक्त शिष्य को विस्तारपूर्वक कहिये कि किसकी प्रार्थना से पूर्णकला से युक्त स्वयं परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण इस महीतल (पृथ्वी) पर, किस युग में, किस कारण से तथा कहाँ अवतरित हुए ? भगवान् श्रीकृष्ण के पिता वासुदेवजी कौन थे तथा माता देवकी कौन थी, भगवान् का जन्म किस कुल में हुआ ? कीदंतुल्य

कंस से भगवान् को भय कैसे हुआ तथा कंस के भय से सूतिकागृह से गोकुल गये कैसे ? भगवान् हरि ने गोप वेप से गोकुल में क्या किया एवं गोपियों के साथ कहाँ बिहार किया ? कौन गोप थे कौन गोपियाँ थीं, कौन यशोदा थीं कौन नन्द थे तथा उन्होंने क्या पुण्य किया था ? गोलोकवासिनी पुण्यवती राधा ब्रज में ब्रजकन्या होकर भगवान् हरि की प्रियतमा कैसे हुई ? गोपियों ने दुराराध्य भगवान् ईश्वर को कैसे प्राप्त किया एवं भगवान् कृष्ण उनको छोड़कर पुनः मथुरा क्यों गये ? पृथ्वी का भार हरण कर क्यों कर अपनेधाम को प्रस्थान किया ? हे महाभाग ! ऐसे उत्तम श्लोक भगवान् का गुणानुवाद वर्णन कीजिये । हरि भगवान् की कथा संसाररूपी समुद्र से पार लगानेवाली नौका है तथा भोगरूपी वेदियों के क्लेश को छेदन करनेवाली कैंची है एवं पापरूपी इन्धन (लकड़ी) को जलाने में जलती हुई अग्नि की ज्वाला है और सुननेवाले पुरुषों के करोड़ों जन्मों के पापों को नष्ट करनेवाली है । हे कृपानिधे ! मुक्त भक्त शिष्य को ज्ञान दीजिये ।

पिताजी द्वारा प्रेषित ज्ञानप्राप्ति के निमित्त आपके पास आया हूँ ।

नारदजी के प्रश्न को सुनकर भगवान् नारायण ने कहा कि हे नारद ! तुम धन्य हो, मैंने जान लिया है कि तुम पुण्यराशि की ज्वलन्त मूर्ति हो तथा संसार को पवित्र करने के लिये ही भ्रमण करते हो । तुम जीवन्मुक्त हो एवं भगवान् गदाधर के शुद्ध भक्त हो । सम्पूर्ण वसुन्धरा को अपने चरणों की रज से पवित्र करते हो । इसी कारण से तुम्हारी निर्मल बुद्धि हरि भगवान् की सुगाङ्गलिक कथा के सुनने में उत्सुक है । जहाँपर हरिभगवान् की कथा होती है वहाँ सब देवता रहते हैं एवं सब ऋषि-मुनि तथा अखिल तीर्थ निवास करते हैं । जहाँ तुम्हारे ज्येष्ठपुत्र के निरापद स्वप्न को बले जाते हैं जहाँ जहाँपर कृष्णकथा होती है वह स्थान तीर्थ होजाता है । भगवान् कृष्ण की कथा कहनेवाला अपने सैकड़ों पुरुषों (पीढ़ियों) का उद्धार कर सुननेवाले के सम्पूर्ण कुल का उद्धार करता हुआ जाता तो प्रश्नमात्र से ही अपने कुल को तथा स्वयं को पवित्र करता है एवं

श्रोता श्रवणमात्र से अपनेको और अपने बान्धवों को पवित्र कर देता है। सौ जन्म के तप से पवित्र हो मनुष्य भारतवर्ष में जन्म लेता है फिर यहाँ आकर हरिभगवान् की कथारूपी अमृत को पानकर जन्म को सफल बनाता है। भगवान् की पूजा, वन्दना, मन्त्रजप, भगवान् के चरणारविन्दों का सेवन, स्मरण, कीर्तन, निरन्तर भगवद् गुणानुवाद का श्रवण, सम्पूर्ण कर्मों को प्रभु में निवेदन करना और दास्य भाव ये भक्ति के नौ लक्षण हैं। इस तरह जो भगवान् में संलग्न हो जाता है उसको किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता तथा उसके घर काल (यम) नहीं आता है; जैसे, गरुड़ के पास सर्प नहीं आते हैं। जो मनुष्य हरि भगवान् की कथा श्रवण करता है उसको सम्पूर्ण अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं तथा उस पुरुष के चारों तरफ भगवान् का सुदर्शनचक्र रात-दिन भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से उसकी रक्षा के लिये चक्कर दिया करता है। भगवद्भक्त के समीप में यमराज के दूत स्वप्न में भी नहीं आते हैं; जैसे, जलती हुई अग्नि को देखकर शलभ (टिट्ठियाँ) पास नहीं जाती हैं। इस प्रकार हरिकथा की महत्ता को कहकर भगवान् नारायण ने महर्षि नारदजी से श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन प्रारम्भ किया।

२

श्रीदामा-राधाकलहवर्णनम्

५२७

भगवान् नारायण ने नारदजी से कहा कि हे देवर्षे ! भगवान् श्रीकृष्ण जिसकी प्रार्थना से इस भूमण्डल पर आये एवं जो-जो कार्य कर अपने धाम को गये, पृथ्वी के भार उतारने का उपाय एवं दुष्टों के वध का सफल प्रयत्न अच्छी तरह सम्पूर्णतया तुम्हें कहूँगा। जिस समय गोप वेष से भगवान् श्रीकृष्ण का गोकुल में आगमन गोपालिका (ग्वालिन) राधा के निमित्त हुआ वह तुमसे कहता हूँ सुनो। श्रीदामा और राधा की कलह। राधा के शाप से श्रीदामा का शङ्खचूड़ होना एवं श्रीदामा के शाप से राधा का मानवीय योनि में व्रज में व्रजाङ्गना रूप में जन्म

लेना। श्रीदामा के शाप से भयभीत हुई राधा का भगवान् श्रीकृष्ण से कहना कि मुझे श्रीदामा के शाप से गोपीरूप बनना होगा। हे भवभञ्जन ! मैं क्या उपाय करूँ, कहिये। मैं आपके बिना जीवन को कैसे धारण करूँगी। आपके बिना एक क्षण भी सौ युग के समान है। हे नाथ ! मैं तो रात-दिन चक्षुचकोरों से आपके अमृतपूर्ण मुख को पीती रहती हूँ। आप ही मेरी आत्मा हो, प्राण हो, जीवन हो एवं परम धन हो। मैं आपके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकती। भगवान् श्रीकृष्ण ने राधा के वचन सुनकर कहा कि मैं वाराह कल्प में महीतल (पृथ्वी) पर अवतरित होऊँगा तब तुम्हें हृदयेश्वरी बनाकर निर्भय कर दूँगा। मैंने अपने साथ मैं पृथ्वी पर तुम्हारा जन्म भी निरूपित किया है। ब्रज में जाकर वन में विचरण करो, मेरे रहते तुम्हें क्या भय है ? ऐसा कहकर भगवान् हरि ने राधा को सान्त्वना दी। इस कारण भगवान् जगन्नाथ गोकुल में नन्दजी के यहाँ गये नहीं तो उन्हें क्या भय था वे तो स्वयं भय का अन्त करनेवाले हैं। माया और भय के झल से राधा के पास भगवान् का जाना एवं गोपवेप धारण कर उनके साथ विचरण करना गोपाङ्गनाओं के साथ प्रतिज्ञा पालन करने के लिये ब्रह्माजी की प्रार्थना से महीतल पर अवतार लेना तथा पृथ्वी का भार हरण कर अपने धाम को प्रस्थान करना। तदनन्तर नारद का भगवान् से प्रश्न कि राधा के साथ श्रीदामा की कलह क्यों हुई सो संक्षेप से कहिये। भगवान् नारायण ने नारद को उत्तर दिया कि एक समय गोलोक में भगवान् हरि राधा के साथ रासमण्डल में विहार कर उसको अल्प ही छोड़कर अन्य विरजानामक गोपी के यहाँ शृङ्गारार्थ चले गये। वृन्दारण्य में विरजा नामक गोपी जो रूपलावण्य में राधिका के समान थी एवं उसकी अवस्था की सुन्दर रूपवाली शतकोटि गोपियाँ थीं। उस विरजा गोपी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर राधिका की सखियों ने जाकर राधा से सारी बातें कही कि श्रीकृष्ण तो विरजा नामक गोपी के साथ हैं। ऐसा सुनते ही राधिका क्रोधित हो बोली यदि तुम लोग सत्य कहती हो तो मेरे

साथ चलो। राधिका के ऐसे वचन सुनकर मद से युक्त गोपियों ने हाथ जोड़कर कहा कि हम आपको विरजा सहित प्रभु को दिखा देंगी। तत्पश्चात् श्रीराधिका त्रिपष्टिशतकोटि गोपियों के साथ जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण उस गोपी के साथ थे वहाँ गई एवं शीघ्र ही रथ से उतरकर सहसा उस रत्नमण्डप में गई। वहाँ पर लक्ष गोपों से परिबृत द्वारपाल को देखा जो श्रीकृष्ण का प्रिय श्रीदामा नाम का गोप था। जिसे देखते ही भगवती राधिका ने क्रोधित हो कहा कि तुम अति लम्पट हो दूर हटो। तुम्हारा प्रभु एकान्त में किस सुन्दरी के साथ है उसे देखूँगी। राधिका के ये वचन सुनकर निःशङ्क उस चैत्रपाणिवाले द्वारपाल ने बलपूर्वक राधा को रोका। उनके कोलाहल शब्द को सुनकर राधा को क्रोधित जान भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्द्धान्त हो गये। उधर उस विरजा नामक गोपी ने भी राधिका के शब्द से भगवान् को अलक्षित देख स्वयं राधा के भय से आर्त हो योग से प्राणों को त्याग दिया तथा तत्काल ही नदीरूपा हो गई।

३

सप्तसमुद्रोत्पत्तिः राधाश्रीदाम्नोः शापः

५३१

राधिका ने उस मण्डप में जाकर भगवान् श्रीकृष्ण को अलक्षित देखा तथा विरजा को नदीरूप में देखकर पुनः धर प्रस्थान किया। भगवान् श्रीकृष्ण ने विरजा को नदीरूप में देखकर उसके तीर पर उच्चस्वर से रुदन करने लगे एवं कहा कि तुम नदी की अधिष्ठात्री देवी मूर्तिमती वन मेरे आशीर्वाद से स्त्रियों में श्रेष्ठ रूपवाली वनो तथा पहिलेवाले रूप से भी अधिक रूपवती होओ। भगवान् श्रीकृष्ण के ऐसा कहते ही उसने जल से उठकर नवीन शरीर धारण कर भगवान् हरि के आगे साक्षात् राधा का सा रूप बना लिया। भगवान् ने उसको रूपवती देखकर प्रेमाधिपत्य से आलिङ्गन किया। तदनन्तर विरजा ने रजोयुक्त हो भगवान् के अमोघ वीर्य को धारण कर गर्भवती हुई। उसने सात सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया। एक समय भगवान् हरि विरजा के साथ स्थित थे उसी समय वड़े भाइयों से पीड़ित कनिष्ठ पुत्र

आकर माता की गोद में बैठ गया। तदनन्तर श्रीकृष्ण द्वारा विरजा का त्याग एवं राधागृह गमन। श्रीकृष्ण वियोग में विरजा का विलाप एवं अपने पुत्र को शाप कि तुम लवण समुद्र बनोगे तथा तुम्हारा जल कोई भी प्राणी नहीं पवेगा। तत्पश्चात् अन्य छहों पुत्रों को भी महीतल पर समुद्र होने का शाप दिया एवं कहा कि तुम्हारी एक जगह स्थिति नहीं होगी। इनके जल से सृष्टि में अन्न होगा एवं सातों के नाम—लवण, इक्षु, मुरा, सर्पि, दधि, दुग्ध, और जल ये सातों समुद्र सप्तद्वीपवती पृथ्वी पर व्याप्त है तथा उत्तरोत्तर दुगुने-दुगुने हैं। राधा और कृष्ण का संवाद। कुपित राधा का कृष्ण से कहना कि तुम्हें तो विरजा ही प्रिय है जो नदीरूप हो गई है अतः तुम भी नद रूप होने के होग्य हो। अपनी-अपनी जाति में ही विशेष प्रेम होता है जैसे—

नदस्य नद्या सार्द्धं च सक्रमो गुणवान्भवेत्।

स्वजातौ परमा प्रीतिः शयने भोजने सुखात्॥

राधा और श्रीदाना का संवाद।

४	नारीणां रक्षकनिरूपणम्	५३७
	मन्त्रादिमङ्गलवस्तूनां भूमिस्थापननिषेधः	५३६
	ब्रह्मादिकृत भगवत्स्तुतिः	५४१
	गोलोकवर्णनम्	५४३

नारदजी का भगवान् नारायण से पुनः प्रश्न कि हे वेदविदांवरः (वेद के जाननेवालों में श्रेष्ठ) भगवान् कृष्ण किसकी प्रार्थना से एवं किस हेतु पृथ्वी पर आये यह वर्णन कीजिये। तब भगवान् नारायण ने नारद से कहा कि पहिले चाराह कल्प में यमुन्यरा पापियों के भार से दुःखित हो ब्रह्माजी की शरण में गई एवं साथ में असुरों से संतप्त देवता भी ब्रह्म की मभा में गये। ऋषि, मुनि और सिद्धगणों से

सेवित कृष्ण नाम को स्मरण करते हुए ब्रह्मतेज से देदीप्यमान ब्रह्माजी को देखकर भक्तियुक्त देवताओं सहित वसुन्धरा ने प्रणाम कर अपना सम्पूर्ण दुःख निवेदन किया। उसको अश्रुपूर्ण देखकर जगद्धाता ब्रह्माजी ने कहा कि तुम क्यों ऐसी अवस्था में हो एवं क्यों स्तुति करती हो ? हे भद्रे ! तुम्हारे आने का कारण यह तुम्हारा कल्याण होगा। तुम सुस्थिर हो जाओ मेरे रहते तुम्हें क्या भय है ? इस प्रकार पृथ्वी को आश्वासन देकर ब्रह्माजी ने आदरपूर्ण देवताओं से कहा कि मेरे पास आने का क्या कारण है कहो ? तब देवताओं ने ब्रह्माजी से कहा वसुधा (पृथ्वी) भार से व्याकुल है एवं हमलोगों को दैत्यों ने तप्त कर रक्खा है। आप ही संसार के रचयिता हो अतः हमारी शीघ्र ही इस दुःख से निवृत्ति कीजिये। देवताओं के वचनों को सुनकर ब्रह्माजी ने पृथ्वी से पूछा कि हे पद्मयिलोचने पृथ्वी ! तुम बिना भार को वहन करने में असक्त हो यह बनाओ तुम्हारा कल्याण होगा। ब्रह्माजी के वचन को सुनकर भगवती पृथ्वी ने कहा कि हे तात ! मैं अपनी मानसी व्यथा आपसे कहती हूँ। बिना विदयामी पशु के अपना दुःख करने में उन्मुख नहीं हूँ क्योंकि स्त्रीजाति अथवा हे एवं निरन्तर अपने पशुओं से शत्रुणीय है। वे रक्षक जनक, (पिता) स्वामी और पुत्र हैं। आप तो मंगार के स्वरा हो अतः आपको कहने में कोई भी लज्जा नहीं है। अब मैं जिनके भार में पीड़ित हूँ आप मुनिये—

पूजायज्ञोपवासानां व्रतानां नियमस्य च । ये ये मूढा निहन्तार स्तेषां भारेण पीडिता
सदा द्विपन्ति ये पापा गोविप्रसुरवैष्णवान् । हरिं हरिकथाभक्तिं तेषां भारेण पीडिता
शङ्खचूडस्य भारेण पीडिताऽहं यथा विधे । ततोऽधिकानां दैत्यानां भारेण परिपीडिता

जो कृष्णभक्ति से विमुख तथा भगवद्भक्तों का निन्दक है उन महापापियों
के भार को वहन करने में असमर्थ हूँ । जो अपने धर्म और आचार से हीन हैं
एवं नित्यकर्मों से विवर्जित हैं तथा वेदों में जिनकी श्रद्धा नहीं है उनके भार से
पीड़ित हूँ । जो पुरुष पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र एवं अपने आश्रितवर्ग का
पोषण नहीं करते हैं तथा जो मिथ्यावादी हैं, दया और सत्य से रहित हैं, गुरु
और देवताओं के निन्दक हैं उनके भार से पीड़ित हूँ । मित्र द्रोही, कृतघ्न, मिथ्या
साक्षी देनेवाला, विश्वासघाती एवं धरोहर को पचानेवालों के भार से पीड़ित हूँ ।
हरिभगवान् के कल्याणयुक्त नामों के विक्रय करनेवालों के भार से पीड़ित हूँ ।
जीव को मारनेवाले, गुरुद्रोही ग्रामवाजी (भिल्लारी), लुब्धक, शवदाही (श्मशान में)
शूद्रभोजी, पूजा, यज्ञ, उपवास, व्रत और नियमों को भंग करनेवालों के भार से
पीड़ित हूँ । जो मनुष्य गो, विप्र देवता और भगवद्भक्तों से सदा ही द्वेष करते
हैं एवं जिनकी भगवान् हरि में तथा भागवती कथा में भक्ति नहीं है मैं उनके भार से
पीड़ित हूँ । ऐसा कहकर वसुधा चारम्बार रुदन करने लगी । उसके रुदन को
सुनकर ब्रह्माजी ने कहा तुम्हारा भार दूर कर दूँगा । - हे वसुन्धरे ! कार्यसिद्धि
व्पायों से होती है तुम्हारा भार भगवान् दूर करेंगे ।

यन्त्रं मङ्गलकुम्भश्च शिवलिङ्गश्च कुङ्कुमम् । मधुकाष्ठं चन्दनश्च कस्तूरी तीर्थमृत्तिकाम्
खड्गगण्डकखड्गश्च स्फटिकं पद्मारागम् । इन्द्रनीलं सूर्यमणिं रुद्राक्षं कुरामूलकम् ॥

शालग्रामशिलां शङ्खं तुलसीं प्रतिमाजलम् ।

शङ्खं प्रदीपमालाश्च शिलामर्च्याश्च घण्टिकाम् ॥

निर्मात्यञ्चैव नैवेद्यं हरिर्द्वर्णमणिन्तथा । ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं दर्पणं श्वेतचामरम् ॥
गोरोचनाश्च मुक्ताश्च शुक्तिं माणिक्यमेव च । पुराणसंहितां वह्निं कर्पूरं परशुं तथा ॥

रजतं काञ्चनञ्चैव प्रवालरत्नमेव च । कुशद्विजं तीर्थतोयं गन्धं गोमूत्रगोमयम् ॥

त्वयि ये स्थापयिष्यन्ति मूढाश्चैतानि सुन्दरि ।

तिष्ठन्ति कालसूत्रे वै वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥

हे सुन्दरि ! देवयन्त्र, मङ्गलकलश, शिवलिङ्ग, कुङ्कुम (रोली), मधु, काष्ठ, चन्दन, कस्तूरी, तीर्थ की मृत्तिका, खड्ग (तलवार), गण्डे की खड्ग, स्फटिकमणि, पद्मराग, इन्द्रनीलमणि, सूर्यमणि, रुद्राक्ष, कुशमूल, शालग्राम भगवान् की मूर्ति, शङ्ख, तुलसीपत्र, भगवान् का चरणोदक, दीपक, माला, घण्टिका (टाली), भगवान् के चढ़ाया हुआ नैवेद्य, हरितवर्ण की मणि, ग्रन्थियुक्त यज्ञसूत्र, दर्पण, श्वेत चामर, गोरोचन, मोती, सीप, भाणिक्य, पुराण, वेद, अग्नि, कर्पूर, परशु, चाँदी, स्वर्ण, मूगा, रत्न, कुशा, द्विज, तीर्थ का जल, गन्ध (दूध, दही, एवं घृत), गोमूत्र, गोबर इन वस्तुओं को जो मूढ़ तुम्हारे पर स्थापित करता है वह निश्चय दश हजार वर्ष तक कालसूत्र नरक में वास करता है । इस प्रकार पृथ्वी को आश्वासन देकर ब्रह्माजी देवता और पृथ्वी के साथ जगत् को धारण करनेवाले भगवान् शङ्कर के यहाँ फैलाश में गये । फैलाश की सुन्दरता का वर्णन । वहाँपर अक्षयवट की मूल में व्याघ्रचर्म को धारण कर दक्षकन्या सती की अस्त्रियों के दत्ते आभूषणों को पहने नाना सिद्ध योगियों से सेवित एवं अपने पाचों मुखों से माङ्गलिक हरि के नामों का उच्चारण करते हुए आशुतोष भगवान् शंकर को बैठाकर देवताओं सहित ब्रह्माजी ने प्रणाम किया तथा सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया । इसे सुनकर माता पार्वती एवं भगवान् शंकर दुःखित हुए । तत्पश्चात् उनको आश्वासन देकर वसुन्धरा को देवताओं सहित फैलाश में छोड़ ब्रह्माजी को साथ ले भगवान् शंकर शीघ्रता से धर्मराज के मन्दिर में गये वहाँ से धर्मराज को साथ लिया तथा वे सब भगवान् विष्णु के पास वैकुण्ठ में गये । वहाँ रत्नसिंहासन पर स्थित रत्नालङ्कार से भूषित पीतवस्त्र धारण किये हुए परमानन्दरूप भगवान् विष्णु को देख सबने भक्ति से प्रणाम किया और ब्रह्माजी, शङ्कर तथा धर्म ने बहुत सुन्दर रूप में भगवान् की

और मैं भी आप लोगों को छोड़कर उनको अहर्निश भजता हूँ। इसलिये हे देववृन्द आप लोग अपने-अपने अंशों से शीघ्र पृथिवी पर अवतरित होइये और मैं भी शीघ्र ही पृथ्वी पर आऊँगा। तदनन्तर देवताओं का पृथ्वी पर जन्मग्रहण। शङ्कर और पार्वती का पृथ्वी पर अवतरित होने में संवाद जिसमें शंकर ने कहा हे पार्वति ! तুম जाम्बवान् के घर जन्म लो। तदुपरान्त पार्वती को अभय दान। श्रीकृष्ण और राधा का संवाद कथन।

७	श्रीकृष्णजन्मपूर्वोपक्रमवर्णनम्	५७०
	श्रीकृष्णजन्मवर्णनम्	५७१
	ब्रह्मादिकृतश्रीकृष्णस्तवनम्	५७३
	श्रीकृष्णस्य वरप्रदानम्	५७५

महर्षि नारद का भगवान् नारायण से यह प्रश्न कि महत्पुण्य को देनेवाला जन्म, मृत्यु और जरा को दूर करनेवाला भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म बताइये। वसुदेवजी किसके पुत्र थे एवं देवकी किसकी कन्या थी ? वसुदेव तथा देवकी कौन थी एवं उनके विवाह का वृत्तान्त कहिये। कंस ने देवकी के छै पुत्रों को क्यों मारा एवं भगवान् हरि का जन्म किस दिन हुआ मुझे कहिये। वसुदेवजी और देवकी ने पूर्वजन्म के पुण्य फल से ही श्रीहरि को पुत्ररूप में प्राप्त किया। दैवमीढ़ के मारिषा नाम की स्त्री में वसुदेवजी उत्पन्न हुए जिनके जन्मसमय में देवताओं ने दुन्दुभियां बनाईं जिससे वसुदेवजी का नाम आनकदुन्दुभि हुआ। यदुवंशी आहुक के ज्ञानसिन्धु देवक हुआ एवं देवक के देवकी नाम की कन्या हुई। यदुकुलाचार्य गर्गजी ने शास्त्र विधि से देवकी का सम्बन्ध वसुदेवजी से करवा दिया। विवाह के दहेज में देवक ने सहस्रों घोड़े, स्वर्णपात्र, अलंकृत सैकड़ों दासी एवं नानाप्रकार के द्रव्य, मणि रत्नादि दिये, उनको ग्रहण कर रहे थे

बैठ विदा हुए उस समय कंस को सम्बोधित कर आकाशवाणी हुई कि हे राजेन्द्र ! तुम क्या प्रसन्न हो रहे हो हितकारक सत्य वचन सुनो । देवकी का आठवां गर्भ तुम्हारी मृत्यु का कारण बनेगा । उन देववाक्यों के भय से क्रोधित हुआ पापी कंस तलवार हाथ में लेकर देवकी को मारने के लिये तैयार हुआ । वहिन को मारने के लिये उद्यत हुए कंस को नीतिशास्त्र में विशारद नीतिज्ञ वसुदेवजी ने कहा कि तुम राजनीति को नहीं जानते हो, मेरी हितकर बातें सुनो जो दोषों को नष्ट करनेवाली, यश को देनेवाली एवं शास्त्रोक्त है । हे राजन् ! इसके आठवें गर्भ से तुम्हारी मृत्यु है तब इसे मारकर दुष्कीर्ति एवं नरक की प्राप्ति क्यों करते हो ? क्षुद्र जन्तुओं एवं हिंसकों को मारने से मृत्युकाल में एक कर्पापण (८० रस्ती ताम्र) देने से छुटकारा हो सकता है और अहिंसक को मारने से तो सौ गुना प्रायश्चित्त बतलाया है तथा मनु ने विशिष्ट जन्तुओं एवं पशुओं को कालविशेष में मारने पर सौगुना पाप कहा है । म्लेच्छ जाति के मनुष्यों को मारने से, सौ गुना पाप होता है । सौ म्लेच्छों को मारने से जो पाप होता है एक श्रेष्ठ शूद्र को मारने से होता है । इसी प्रकार नाना पापों को बतलाकर कहा कि जितना पाप ब्रह्महत्या से होता है उतना ही पाप स्त्री के वध में होता है । सौ स्त्रियों के वध से जो पाप होता है उतना ही वहिन के वध से होता है । इसलिये हे कुलदीपक ! इसे छोड़ दो । इसके गर्भ से जो संतान होगी वह आपको दे दिया करूंगा । तदुपरान्त कंस ने देवकी के छः पुत्रों को क्रमशः मार दिया । देवकी के सप्तम गर्भ को माया ने आकर्षण कर रोहिणी के गर्भ में स्थापित किया तब रक्षकों ने कंस से कहा कि देवकी के गर्मस्त्राय हो गया है । इस कारण से उम चालक का नाम सङ्कर्षण हुआ । देवकी के आठवें गर्भ में भगवान् का प्रवेश । गर्भगत भगवान् की जगद्योनि इत्यादि ४२ नामों से देवताओं द्वारा स्तुति । भगवान् का भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को आधी रात के समय रोहिणी नक्षत्र जयन्ती योग में जन्म हुआ । यहाँ पर भगवान् ने अपना अति सुन्दर रूप नवीन मेघों के समान श्याम पीताम्बर

धारण किये हुए मणिरत्न आदि के भूषणों से विभूषित कौस्तुभमणि से अलंकृत किशोर अवस्थावाला शान्त स्वरूप दिखाया । जिसे देखकर परमभक्ति से नतमस्तक हो वसुदेव तथा देवकी ने गद्गद हो भगवान् की स्तुति की । वसुदेवजी की प्रार्थना से प्रसन्न हो भगवान् ने कहा कि तुम्हारी तपस्या का ही फल है जो मैं तुम्हारे पुत्ररूप में प्राप्त हुआ हूँ । तुम पहिले तपस्वियों में श्रेष्ठ सुतपा नामक प्रजापति थे उस समय तुमने पत्नी से युक्त हो मुझे तपस्या से प्रसन्न कर मेरे समान पुत्र की याचना की तब मैंने तुम्हें वर दिया कि तुम्हारे मेरे जैसा पुत्र होगा । वरदान के अनन्तर मैंने सोचा त्रिलोकी में मेरे समान कोई नहीं है इस हेतु मैं ही पुत्ररूप में प्राप्त हुआ हूँ । मुझे तुम पुत्रभाव से भजो चाहे ब्रह्मभाव से अन्त में मुझे प्राप्त कर जीबन्मुक्त हो जाओगे । अब तुम शीघ्र ही मुझे ब्रज के यशोदामयन में स्थापित कर वहाँ से माया को यहाँ लाकर स्थापित करो । ऐसा कहकर भगवान् हरि बालरूप हो गये । तदनन्तर वसुदेवजी बालक को लेकर नन्दजी के यहाँ गये जहाँ लतिकागृह में सोई हुई यशोदा को देख वहाँ पर स्थित कन्या को उठाकर भगवान् को वहीं छोड़ वापस कारागृह में आगये । पश्चात् उस कन्या को ग्रहण कर कंस मारने को उद्यत हुआ उस समय वसुदेव एवं देवकी ने कहा कि हे कंस तुम नीतिशास्त्र में विशारद हो अतः हमारे नीतियुक्त सत्य वचन सुनो । तुमने हमारे छः पुत्रों को मारा है हे तात ! तुमको जरा भी दया नहीं आई । अब यह आठवीं कन्या है इसे मारकर क्या तुम पृथ्वी पर महेश्वर्य प्राप्त करोगे ऐसा कहकर वसुदेव देवकी कंस के सामने रोने लग गये । तब कंस ने कठोरतापूर्वक कहा मेरे वचनों को सुनो । भाग्य से तूण भी पर्वत को नष्ट कर सकता है, मच्छर हाथी को और छोटा कीड़ा मिह को मार सकता है इत्यादि कहकर कंस ने बालिका को मारने की इच्छा की । तब वसुदेव ने कहा इस निरपराध बालिका को क्यों मारते हो तदनन्तर कंस ने उसको छोड़ दिया । एवं वसुदेव देवकी ने उसको ग्रहण कर प्राक्षण को उस बालिका के निमित्त धन दिया । वह भगवान् कृष्ण की वदिन हुई जिसका रुक्मिणी के

विवाह के समय में दुर्वासाजी के साथ पाणिग्रहण हुआ। यह भगवान् कृष्ण का जन्मचरित्र वर्णन जन्म, मृत्यु, जरा के विघ्न को नष्ट करनेवाला और पुण्य को देनेवाला है।

८	जन्माष्टमीव्रतमाहान्मयवर्णनम्	५७७
	सपोडशोपचारं हरिपूजाविधानवर्णनम्	५७६
	जन्माष्टमीव्रते पारणनिर्णयवर्णनम्	५८१

नारदजी का भगवान् नारायण से प्रश्न हे प्रभो ! व्रतों में उत्तम व्रत जन्माष्टमी व्रत का फल तथा जयन्ती योग का सामान्यतया फल कहिये। इस व्रत को न करने से क्या दोष होता है ? एवं जयन्ती में उपवास करने से क्या फल मिलता है एवं व्रत का पूजाविधान, यम नियम, उपवास और पारण का विधान क्या है ? उत्तर में भगवान् नारायण ने कहा कि भाद्रपद कृष्णा सप्तमी को सावधान होकर हविष्यान्न भोजन करे फिर दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर स्नानादि नित्यकर्म कर व्रतोपवास का सङ्कल्प करे। मन्वादि दियस की प्राप्ति में स्नान-पूजादि का जो फल होता है उससे करोड़गुना फल भाद्रपद की कृष्णाष्टमी का होता है। जन्माष्टमी को जो अपने पितरों के लिये जलमात्र भी देता है उसको सौ वर्ष तक गयाश्राद्ध करने का फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं है। नित्यक्रिया के अनन्तर स्तिकागृह का निर्माण; खड्ग से युक्त रक्षकों की नियुक्ति; बहुविध द्रव्य, बाल छेदन की कैंची एवं यज्ञपूर्वक धात्री स्वरूपा नारी की नियुक्ति करे। पश्चात् पादप्रक्षालन कर स्वच्छ वस्त्र पहिन आसन पर स्थित हो स्वस्तिवाचनपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण का आवाहन करे तथा वसुदेव देवकी, यशोदानन्द, रोहिणी वलदेव, पद्मीदेवी, वसुन्धरा, ब्राह्मणी, अष्टमी, स्थान देवता एवं अश्वत्थामा सहित सप्तचिरंजीवों का आवाहन कर भगवान् हरि का ध्यान करे। फिर भगवान् की पोडशोपचार से पूजा करे। पूजनोपरान्त भक्तिभावयुक्त हो भगवान् के जन्मचरित्र की कथा सुने तथा रात्रि में जागरण कर प्रातःकाल आह्निक कर्म कर

धारण किये हुए मणिरत्न आदि के भूषणों से विभूषित कौस्तुभमणि से अलंकृत किशोर अवस्थावाला शान्त स्वरूप दिखाया । जिसे देखकर परमभक्ति से नतमस्तक हो वसुदेव तथा देवकी ने गद्गद हो भगवान् की स्तुति की । वसुदेवजी की प्रार्थना से प्रसन्न हो भगवान् ने कहा कि तुम्हारी तपस्या का ही फल है जो मैं तुम्हारे पुत्ररूप में प्राप्त हुआ हूँ । तुम पहिले तपस्वियों में श्रेष्ठ सुतपा नामक प्रजापति थे उस समय तुमने पत्नी से युक्त हो मुझे तपस्या से प्रसन्न कर मेरे समान पुत्र की याचना की तब मैंने तुम्हें चर दिया कि तुम्हारे मेरे जैसा पुत्र होगा । चरदान के अनन्तर मैंने सोचा त्रिलोकी में मेरे समान कोई नहीं है इस हेतु मैं ही पुत्ररूप में प्राप्त हुआ हूँ । मुझे तुम पुत्रभाव से भजो चाहे ब्रह्मभाव से अन्त में मुझे प्राप्त कर जीवन्मुक्त हो जाओगे । अब तुम शीघ्र ही मुझे व्रज के यशोदाभवन में स्थापित कर वहाँ से माया को यहाँ लाकर स्थापित करो । ऐसा कहकर भगवान् हरि बालरूप हो गये । तदनन्तर वसुदेवजी बालक को लेकर नन्दजी के यहाँ गये जहाँ लतिकागृह में सोई हुई यशोदा को देख वहाँ पर स्थित कन्या को उठाकर भगवान् को वहीं छोड़ वापस कारागृह में आगये । पश्चात् उस कन्या को ग्रहण कर कंस मारने को उद्यत हुआ उस समय वसुदेव एवं देवकी ने कहा कि हे कंस तुम नीतिशास्त्रमें विशारद हो अतः हमारे नीतियुक्त सत्य वचन सुनो । तुमने हमारे छः पुत्रों को मारा है हे तात ! तुमको जरा भी दया नहीं आई । अब यह आठवीं कन्या है इसे मारकर क्या तुम पृथ्वी पर मईश्वर्य प्राप्त करोगे ऐसा कहकर वसुदेव देवकी कंस के सामने रोने लग गये । तब कंस ने कठोरतापूर्वक कहा मेरे वचनों को सुनो । भाग्य से लृण भी पर्वत को नष्ट कर सकता है, गच्छर हाथी को और छोटा कीड़ा सिंह को मार सकता है इत्यादि कहकर कंस ने बालिका को मारने की इच्छा की । तब वसुदेव ने कहा इस निरपराध बालिका को क्यों मारते हो तदनन्तर कंस ने उसको छोड़ दिया । एवं वसुदेव देवकी ने उसको ग्रहण कर ब्राह्मण को उस बालिका के निमित्त धन दिया । वह भगवान् कृष्ण की बहिन रूई जिसका रुक्मिणी के

विवाह के समय में दुर्वासाजी के साथ पाणिग्रहण हुआ । यह भगवान् कृष्ण का जन्मचरित्र वर्णन जन्म, मृत्यु, जरा के विघ्न को नष्ट करनेवाला और पुण्य को देनेवाला है ।

८	जन्माष्टमीव्रतमाहान्म्यवर्णनम्	५७७
	सपोडशोपचारं हरिपूजाविधानवर्णनम्	५७८
	जन्माष्टमीव्रते पारणनिर्णयवर्णनम्	५८१

नारदजी का भगवान् नारायण से प्रश्न हे प्रभो ! व्रतों में उत्तम व्रत जन्माष्टमी व्रत का फल तथा जयन्ती योग का सामान्यतया फल कहिये । इस व्रत को न करने से क्या दोष होता है ? एवं जयन्ती में उपवास करने से क्या फल मिलता है एवं व्रत का पूजाविधान, यम नियम, उपवास और पारण का विधान क्या है ? उत्तर में भगवान् नारायण ने कहा कि भाद्रपद कृष्णा सप्तमी को सावधान होकर हविष्यान्न भोजन करे फिर दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर स्नानादि नित्यकर्म कर व्रतोपवास का सङ्कल्प करे । मन्वादि दिवस की प्राप्ति में स्नान-पूजादि का जो फल होता है उससे करोड़गुना फल भाद्रपद की कृष्णाष्टमी का होता है । जन्माष्टमी को जो अपने पितरों के लिये जलमात्र भी देता है उसको सौ वर्ष तक गयाभ्राद्ध करने का फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं है । नित्यक्रिया के अनन्तर सूतिकागृह का निर्माण; खड्ग से युक्त रक्षकों की नियुक्ति, बहुविध द्रव्य, बाल छेदन की कैंची एवं यज्ञपूर्वक धात्री स्वरूपा नारी की नियुक्ति करे । पश्चात् पादप्रक्षालन कर स्वच्छ वस्त्र पहिन आसन पर स्थित हो स्वस्तिवाचनपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण का आवाहन करे तथा वसुदेव देवकी, यशोदानन्द, रोहिणी बलदेव, पद्मीदेवी, वसुन्धरा, ब्राह्मणी, अष्टमी, स्थान देवता एवं अश्वत्थामा सहित सप्तचिरंजीवों का आवाहन कर भगवान् हरि का ध्यान करे । फिर भगवान् की षोडशोपचार से पूजा करे । पूजनोपरान्त भक्तिभावयुक्त हो भगवान् के जन्मचरित्र की कथा सुने तथा रात्रि में जागरण कर प्रातःकाल आह्निक कर्म कर

श्रीहरि की पूजा करे तदुपरान्त ब्राह्मणों को भोजन करावे। पुनः व्रतकाल व्यवस्था पर नारदजी का प्रश्न। भगवान् नारायण का उत्तर कि अर्ध रात्रि में यदि एक पाद भी अष्टमी हो तो वही मुख्यकाल है एवं उसी में भगवान् हरि का जन्म है। वेदविदों से सम्मत यही प्रधानकाल है। सप्तमी सहित यदि अष्टमी नक्षत्रयुक्त हो तब भी सप्तमी सहित अष्टमी वर्जनीय है। व्रत करनेवाला रोहिणी नक्षत्र के बाद पारण करे। सम्पूर्ण उपवासों में दिन में पारण करना ही श्रेयस्कर है अन्यथा फल हानि होती है। रोहिणी व्रत को छोड़ किसी भी व्रत का पारण रात्रि में नहीं करे। पारण के विषय में विशेष बात यह है : —

अष्टम्यामथ रोहिण्यां न कुर्यात् पारणं बुधः। हन्यात् पूर्वकृतं पुण्यमुपवासाजितं फलम्
तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रञ्च चतुर्गुणम्। तस्मात् प्रयत्नतः कुर्यात् तिथिभान्ते च पारणम्
महानिशायां प्रातः प्रातः तिथिभान्तं यदा भवेत्। तृतीयेऽह्नि मुनिश्रेष्ठ पारणं कुरुते व्रती
पण्मुहूर्ते व्यतीते तु रात्रावेव महानिशा। लभते ब्रह्महत्याञ्च तत्र भुक्त्या च नारद ॥

शुद्ध जन्माष्टमी व्रत करनेवाले मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है एवं सप्त जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं।

६

यशोदानन्दयोः पूर्वजन्मवृत्तान्तकथनम्

५८२

बलदेवस्य जन्माख्यानवर्णनम्

५८५

नारदजी ने भगवान् नारायण से पूछा कि हे ब्रह्म ! भगवान् श्रीकृष्ण को यशोदा मन्दिर में स्थापित कर वसुदेवजी के जाने पर नन्दजी ने पुत्रोत्सव के सम्बन्ध में क्या किया ? गोकुल में भगवान् ने क्या किया तथा वहां पर कितने वर्ष तक स्थित रहे ? भगवान् की रासक्रीड़ा और जलक्रीड़ा का विस्तार-पूर्वक वर्णन कीजिये। नन्दजी, यशोदा और रोहिणी के पूर्वजन्म का वृत्तान्त एवं बलदेवजी का जन्म कहाँ हुआ ? इसका वर्णन कीजिये। भगवान् नारायण का नारदजी को उत्तर—पूर्वजन्म में नन्दजी द्रोण नामक वसु थे और यशोदा धरा

नामक उनकी पत्नी थी। रोहिणी सर्पमाता कद्रू थी उनका जन्मचरित्र तुम्हारे लिये कहता हूँ सुनो। एक बार पत्नी सहित द्रोण ने गौतमाश्रम के निकट गन्ध-मादन पर्वत पर दस हजार वर्ष तक कृष्ण दर्शनार्थ तप किया परन्तु उनको भगवान् हरि के दर्शन नहीं हुए। तब वै हताश हो अमिकुण्ड बना प्रवेश करने को उद्यत हुए। उसी काल में आकाशवाणी हुई कि तुम गोकुल में श्रीहरि को पुत्ररूप में देखोगे। तदनन्तर धरा और द्रोण का अपने घर के लिये प्रस्थान एवं भारतवर्ष में जन्म। अब देवताओं से भी सुगोप्य रोहिणीचरित्र सुनो। एक बार देवमाता अदिति ने रजोदर्शन के बाद रति की इच्छा से अपने पति कश्यपजी को याद किया एवं कामवाण से पीड़ित हुई पति के आगमन की प्रतीक्षा में घर में स्थित रही। जब उसने सुना कि कश्यपजी तो सर्पमाता कद्रू के घर हैं तब उसने सर्पमाता को शाप दिया कि तुम देवस्थान के योग्य नहीं हो अतः मानवीय योनि को प्राप्त हो जाओ। कद्रू ने जब देवमाता का शाप सुना तब उसने भी बदले में उसे मानवी योनि में जाने का शाप दिया। तत्पश्चात् कश्यपजी का अदिति के पास आना और उसकी वाञ्छापूर्ण करना। फिर अदिति को देवकीरूप में, सर्पमाता कद्रू का रोहिणीरूप में एवं कश्यपजी का वसुदेवरूप में अवतरित होना। अब बलदेवजी का आख्यान सुनो। रोहिणी, वसुदेवजी की प्रिय भार्या थी एवं वसुदेवजी की आज्ञा से फंस से डरी हुई सङ्कर्षण की रक्षा के लिये गोकुल में चली गई। उधर देवकी के सप्तम गर्भ का माया द्वारा आकर्षण एवं रोहिणी के गर्भ में स्थापना। कुछ काल बाद ब्रह्मतेज से युक्त बलदेवजी का जन्म। प्रसन्न हुए नन्दजी द्वारा ब्राह्मणों को दान एवं गोपियों द्वारा जयजयकार। अब गोकुल में भगवान् श्रीकृष्ण का मङ्गल चरित्र सुनो। भगवान् श्रीकृष्ण को गोकुल में नन्दजी के घर में स्थापित कर वसुदेवजी के जानेपर जयजयकार से युक्त सूतिकागार में नवीन मेघ के समान कान्तिवाले अतीव सुन्दर नम्र, गृह के शिखर को देखते हुए पुत्र को देख नन्दजी बहुत हर्षित हुए। पश्चात् धात्री द्वारा शीतलजल से बालक को स्नान

उसे प्रणाम किया तथा कुशलश्रेम पूछ कहा कि क्या तुम साक्षात् ईश्वरी भगवती हो ? तुम्हारा स्थान कहाँ है क्या नाम है, यहां पर क्या काम है ? कहो । गोपियों के वचनों को सुन पूतना ने कहा मैं मथुरा की रहनेवाली विप्रपत्नी हूँ । नन्दकुमार को देखने तथा आशीर्वाद देने आई हूँ । इस प्रकार उसके वचन सुन यशोदा का अपने पुत्र को उसकी गोद में देना । शिशु को गोद में लेकर पूतना का धारम्भार चुम्बन करना तथा भगवान् हरि को स्तन पान कराना और यशोदा से कहना कि हे गोपसुन्दरि यह तुम्हारा बालक अद्भुत है तथा गुणों में नारायण के समान है । भगवान् श्रीकृष्ण का विषयुक्त दुग्ध का अमृत की तरह प्राणों के साथ पान करना एवं पूतना का प्राण छोड़कर पृथ्वी पर गिरना तथा उसका स्थूल देह को छोड़कर सूक्ष्म देह में प्रवेश कर दिव्य रत्नसार से निमित्त रथ पर आरुढ़ हो पार्यद प्रवरों से वेष्टित दिव्य रूप धारण कर गोलोक में जाना । पूतना मोक्ष को देख नारदजी का नारायण से प्रश्न कि वह पुण्यवती सती राक्षसी रूप को क्यों प्राप्त हुई तथा किस पुण्य से भगवान् के दर्शन कर श्रीकृष्ण मन्दिर को गई ? तब भगवान् ने नारद से कहा कि बलि के यज्ञ में भगवान् वामन के सुन्दर रूप को देख बलिकन्या रत्नमाला ने उसपर पुत्रस्नेह किया तथा मन में कहा कि इसके सदृश मेरे पुत्र हो और मैं उसे स्तन देकर अपने वक्षःस्थल पर रखूँ । हरि भगवान् ने उसके मनकी बात जान कर इस जन्म में उसके स्तन पान कर मातृगति प्रदान की ।

११ श्रीकृष्णबाललीलानिरूपणम् ५६०

तृणावर्तमोक्षवर्णनम् ५६१

एक बार नन्दगेहिनी यशोदा गृहकर्म में आसक्त बालक को गोद में लिये हुए थी । सर्वान्तरयामी प्रभुका बाल्यरूप तृणावर्त नामक दैत्य का आवागमन जानकर भारयुक्त होना । भाराक्रान्त यशोदा का गोद से बालक को त्याग कर शयन कराना तदनन्तर असुर का बालरूपधारी भगवान् कृष्ण को हवा में उड़ाते

हुए सौ योजन ले जाना तथा हरि भगवान् के चरणस्पर्श से प्राण त्याग कर हरिमन्दिर में जाना । अन्धकार के नष्ट होनेपर गोपगोपियों ने जब भगवान् को शयन स्थान पर नहीं देखा तब भयविह्वल हो रुदन करते हुए खोज करने लगे तब नदी के किनारे श्रीकृष्ण को देखा । नन्दजी ने घरपर लाकर मझलाचरण किया । नन्दजी ने नारायण से पूछा कि दुर्वासा ने पाण्ड्य देश के राजा को क्यों शाप दिया ? तब नारायण ने कहा कि पाण्ड्यदेश का राजा सहस्राक्ष हजार स्त्रियों के साथ निर्जन वन में स्थल विहार कर नदी में जलक्रीड़ा कर रहा था । इसी बीच दुर्वासा एक लाख शिष्यों के साथ वहां आ पहुंचे । मुनि को देख राजा ने न प्रणाम किया और न वह उठा ही । तब दुर्वासाजी ने शाप दिया कि हे पापिष्ठ ! तुम योग से भ्रष्ट होकर असुर योनि में प्राप्त होकर एक लाख वर्ष तक भारत में निवास करो । पश्चात् श्रीकृष्ण के चरणस्पर्श से गोलोक की प्राप्ति होगी । इतना कह दुर्वासा ने स्त्रियों से कहा कि तुम्हारा भी स्थान-स्थान पर जन्म होगा । राजा का स्त्रियों के साथ अभिप्रवेश । पश्चात् तृणावर्त के शरीर की प्राप्ति । रानियों का भारतवर्ष में जन्म ।

१२

श्रीकृष्णबाललीलावर्णनम्

५६३

एक समय नन्दपत्नी श्रीकृष्ण को स्नान पान करा रही थी । उसी समय वहीँ पर बहुतसी बालिकायें एवं वृद्ध नारिया आईं उनके सत्कार के लिये यशोदा का गमन । क्रोधित श्रीकृष्ण द्वारा शकट का गिराना । शकट के उत्पात को देखकर गोपों ने बालकों से पूछा कि यह गाड़ी कैसे टूट गई ? तब बालकों ने कहा कि इस विषय में हम कुछ नहीं जानते हैं । श्रीकृष्ण के चरणों से ही यह टूटी है । तदनन्तर जो कवच ब्रह्माजी ने योगमाया को दिया था उससे श्रीकृष्ण की रक्षा की । इस कवच को कण्ठ में, या दाहिने हाथ में जो बांधता है उसे विष, सर्प, अग्नि और शत्रु का भय नहीं होता है । इस कवच को धारण कर भगवान् शङ्कर ने त्रिपुरासुर को तथा भगवती काली ने रक्तबीज को मारा था ।

१३	श्रीकृष्णमाहात्म्ये बालचरित्रकथनम्	५६।
	श्रीकृष्णनामकरणे शिष्यैः सह महर्षिगर्गप्रवेशवर्णनम्.	५६।
	श्रीकृष्णनाम्नो गुणानुकीर्तनम्	५६।
	राधानामनिर्वचनवर्णनम्	६०।
	श्रीकृष्णस्यान्नप्राशनसंस्कारसाङ्गतसिद्ध्यर्थदानवर्णनम्	६०।
	श्रीकृष्णस्यान्नप्राशननिमित्तकभूरिदानवर्णनम्	६०५
	गर्गप्रस्थानवर्णनम्	६०७

श्रीकृष्ण के बालचरित्र का वर्णन । एक समय नन्दपत्नी कृष्ण को गोद में लिये स्वर्णसिंहासन पर बैठी हुई स्नान पान करा रही थी । उसी समय एक विप्रेन्द्र हजारों शिष्यों के साथ वहाँ आये । मुनि को देखकर यशोदा ने पूजन किया और कृष्ण से प्रणाम करवाया । पुनः हाथ जोड़ प्रार्थना की कि हे योगिराज ! मैं आपको पूजने में समर्थ तो नहीं हूँ किन्तु मैं आप का शुभ नाम पूजना चाहती हूँ क्योंकि मैं बुद्धिहीन हूँ । सज्जन पुरुष मूढ़ व्यक्ति के दोष को क्षमा करदेते हैं । इसलिये हे मुनीन्द्र ! आप, अङ्गिरा, अत्रि, मरीचि, गौतम, क्रतु, प्रचेता, पुलस्त्य, पुलह, दुर्वासा, कर्दम, वशिष्ठ, गर्ग, जैगीषव्य, देवल, कपिल, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, वोढू, पञ्चशिख, आसुरि, सौमरि, विश्वामित्र, वाल्मीकि, नामदेव, कश्यप, संवर्त, उत्थय, कच, बृहस्पति, भृगु, व्यवन, शुक, नर, नारायण, शकुनि, पराशर, व्यास, शुकदेव, जैमिनि, मार्कण्डेय, लोमश, कण्व, कात्यायन, आस्तीक, जरत्कारु, ऋष्यशृङ्ग, विभाण्डक, पौलस्त्य, अगस्त्य, शरद्वान्, गिरि, शमीक, अरिष्टनेमि, माण्डव्य, पैल, पाणिनि, कणाद, शाकल्य, शाकटायन,

अष्टावक्र, भागुरि, सुमन्तु, वत्स, जावालि, याज्ञवल्क्य, वैशम्पायन, यति, हंस, पिप्पलाद, मैत्रेय, करुण, उपमन्यु, गौरमुख, अरुणि, और्व, कक्षिवान्, भरद्वाज, वेदशिरा, शङ्कुर्कण और शौनक इन महानुभावों में से कौन हैं ? इसपर मुनि ने कहा कि मैं यादवों का चिर पुरोहित गर्ग हूँ तथा श्रीकृष्ण के नामकरण के लिये आया हूँ। पश्चात् बलराम और श्रीकृष्ण के नामों का वर्णन। राधा के नामों का वर्णन। राधा और श्रीकृष्ण का विवाह दृन्दावन में होगा तदनन्तर श्रीकृष्ण के भूत, भविष्यत् और वर्तमान में होनेवाले कार्यों का विवरण किया पुनः गर्गजी ने अन्नप्रासन संस्कार कराकर तन्निमित्त बहुतसा दान करवाया। पुनः गर्गजी का प्रस्थान।

१४

श्रीकृष्णबालचरित्रवर्णनम्
नलकूबरमोक्षवर्णनम्

६०६

६११

एक समय यशोदा यमुना स्नान करने गई। आकर घर में क्या देखती है कि दधि, दुग्ध, घृत, तक्र (छाछ) सक्खन के भाण्ड फूटे हुए हैं। तब बालकों से पूछा कि यह अद्भुत कर्म किसका है। तब बालकों ने कहा कि ये सब तुम्हारे ही पुत्र के कार्य हैं। बालकों का वचन सुन यशोदा हाथ में बेंत ले श्रीकृष्ण को मारने के लिये दौड़ी। श्रीकृष्ण भी आगेर दौड़ने लगे। माता को परिभ्रम से व्याकुल देख भगवान् ठहर गये। तब यशोदा ने ब्रह्म से श्रीकृष्ण को बांध दिया। श्रीकृष्ण एक वृक्ष के मूल में रपड़े हो गये। उनके स्पर्श होते ही वृक्ष गिरपड़ा और दिव्य पुरुष हो गया। पुनः दिव्यरथ में बैठ अपने स्थान को चला गया। वृक्ष के शब्द को सुन यशोदा का कृष्ण को गोद में लेना। गोपों ने यशोदा को बहुत डांटा और नन्द का आगमन। नन्द ने यशोदा से कहा कि मैं आज ही बालक को लेकर तीर्थ जाऊँगा अथवा तुम यहाँ से चली जाओ। जैसे कहा है कि—

शतरूपसमा यापी शतयापी समं सरः। सरः शताधिको यज्ञः पुत्रो यज्ञशताधिकः॥

तपोदानोद्भवं पुण्यं जन्मान्तरसुखप्रदम् । सुखप्रदोऽपि सत्पुत्र इहैव च परत्र च ॥

• • पुत्रादपि परोवन्धुर्न भूतो न भविष्यति ।

इतना कहकर नन्दजी अपने घर में रहने लगे । नारदजी ने नारायण से पूछा कि वृक्षरूप से जो सुन्दर पुरुष हो गया वह कौन था और किस कारण से वृक्षत्व की प्राप्ति हुई ? नारायण ने कहा कुबेर का पुत्र नलकूबर रम्भा के साथ नन्दनवन में क्रीड़ा के लिये गया वहाँपर मुनि देवल आ गये । मुनि ने रम्भा को नम्र देखकर दोनों को शाप दिया कि हे पापिष्ठ ! तुम वृक्ष होजाओ तथा हे रम्भे ! तुम मानुषी योनि को प्राप्त कर जन्मेजय की पत्नी बनो । मुनि ने कहा कि तुम श्रीकृष्ण के चरणस्पर्श से पुनः अपने रूप को प्राप्त करोगे तथा हे रम्भे ! तुम इन्द्र के संयोग से फिर स्वर्ग में जाओगी । रम्भा के आख्यान का वर्णन । रम्भा का सुचन्द्र के घर में जन्म । पुनः जन्मेजय के साथ विवाह । जनमेजय का अश्वमेध यज्ञारम्भ । यज्ञ के घोड़े को देखने के लिये जन्मेजय की पत्नी का आगमन । इन्द्र द्वारा उसका अपहरण । पश्चात् संयोगमात्र से रानी का देहत्याग यज्ञ की समाप्ति ।

१५	राधास्वरूपवर्णनम्	६१२
	राधाकृष्णसम्मेलनवर्णनम्	६१५
	ब्रह्मकुतराधाकृष्णस्तोत्रम्	६१७
	राधाकृष्णविवाहवर्णनम्	६१८

नन्दजी का श्रीकृष्ण को साथ ले वृन्दावन में गमन । श्रीकृष्ण की माया से आकाश मेघों से आच्छन्न हो गया एवं वर्षा बरसने लगी । यह देख श्रीकृष्ण का रुदन पुनः राधा का आगमन । राधा द्वारा श्रीकृष्ण को ले जाना । भगवान् के स्वरूप को देख राधा को मोह प्राप्ति । श्रीकृष्ण ने राधासे कहा कि हे राधिके !

तुम्हारे में और मेरे में कोई भी भेद नहीं है जैसे दुग्ध में घबलता, अग्नि में दाहिका शक्ति और पृथ्वी में गन्ध है उसी तरह हम दोनों में कोई भेद नहीं है। जैसे कुम्हार मिट्टी के बिना घट को बनाने में समर्थ नहीं तथा स्वर्णकार सुवर्ण के बिना कुण्डल नहीं बना सकता। उसी तरह मैं तुम्हारे बिना सृष्टि रचना में समर्थ नहीं हूँ और हे राधे “सृष्टेराधारभूता त्वं बीजरूपोऽहमच्युतः” तुम्हारे बिना मुझे कृष्ण नाम से पुकारते हैं और तुम्हारे रहने से श्रीकृष्ण नाम से। जो कोई राधा और कृष्ण में भेद समझते हैं तथा निन्दा करते हैं उनको नरक की प्राप्ति होती है। ब्रह्माजी ने राधाकृष्ण की स्तुति करते समय कहा कि—

पुरुषाश्च हरेरंशास्त्वदंशा निखिलाः स्त्रियः । आत्मना देहरूपा स्वमत्याधारस्त्वमेव हि
अस्यानुप्राणैस्त्वं मातस्त्वप्राणैरयमीश्वरः ॥

ब्रह्माजी को राधा का घरदान। राधा और श्रीकृष्णका वेदमन्त्रोच्चारण-पूर्वक विवाह। श्रीकृष्ण की रासक्रीड़ा एवं श्रीकृष्ण का अन्तर्धान और राधा का विरह। श्रीकृष्ण का यशोदा के पास गमन।

१६	वकप्रलम्बकेशीनामुद्धारवर्णनम्	६२२
	वकादीनां पूर्वजन्मवृत्तान्तवर्णनम्	६२५
	त्रैमासिकव्रतवर्णनम्	६२७
	गोपानां वृन्दावनगमनम्	६३१

एक समय श्रीकृष्ण अन्य बालक एवं बलराम को साथ लेकर श्रीवन में क्रीड़ा करने गये वहां से मधुवन पहुँचे। वहां एक दैत्य वक के आकारवाला आया और श्रीकृष्ण को निगल गया जैसे अगस्त्यजी ने वातापी को निगल लिया था। यह देखकर सब हाहाकार करने लगे। इन्द्र ने वक के ऊपर मुनि के अस्थि से बना हुआ वज्र छोड़ा जिससे उसका एक पक्ष जल गया। चन्द्रमा ने वक पर शीताम्ब छोड़ा उससे शीतार्त हो गया। यमराज ने यमदण्ड,

वायु ने वायव्यास, वरुण ने शिलावृष्टि, अग्नि ने अग्न्यस्र और ईशान ने त्रिशूल का प्रयोग किया तथापि असुर मरा नहीं। पुनः असुर के सब अङ्गों को जलाकर श्रीकृष्ण का निकलना। वृषरूप धारण कर प्रलम्बासुर का आगमन एवं बलराम द्वारा उसकी मृत्यु। केशी दानव का धोड़े के रूप में आना। श्रीकृष्ण को मस्तक पर रख आकाश में प्रस्थान पुनः भगवान् के तेज से उसकी मृत्यु। धक, प्रलम्ब, और केशी के पूर्वजन्म का वर्णन। गन्धवाह नाम गन्धर्व के चार पुत्र थे। वसुदेव, सुहोत्र, सुदर्शन और सुपार्श्वक इनमें बड़ा वसुदेव तो दुर्वासा का शिष्य था एवं अविवाहित ही ब्रह्मतेज से शरीर त्याग श्रीकृष्ण का पार्षद होगया। सुहोत्र, सुदर्शन और सुपार्श्वक तीनों ही परम वैष्णव एवं भगवद्भक्त थे। एक दिन वे कमलों को लाने के लिये चित्रसरोवर पर गये वहाँ शङ्कर के गण उनको पकड़कर शङ्करजी के पास ले गये। शङ्करजी ने पूछा तुम कमलों को हरण करनेवाले कौन हो ? पार्वतीजी त्रैमासिक व्रत में सहस्र कमल से भगवान् का नित्य पूजन करती हैं इसलिये कमलों की रक्षा एक लाख यक्ष करते हैं। गन्धर्वाँ ने कहा कि हम गन्धवाह के पुत्र हैं भगवान् को नित्य कमल देकर जल पीते हैं। हम यह जानते हैं कि यह सरोवर पार्वती के लिये रक्षित है इसलिये आप हमारे कमल को लेकर हमारा मनोरथ पूर्ण कीजिये। शङ्करजी ने कहा कि मेरे वैष्णव परम प्रिय हैं किन्तु मेरी स्वीकृति मिथ्या न होगी। जो पार्वती के व्रत में कमलों का हरण करेंगे वे आसुरी योनि को पायेंगे। श्रीकृष्ण के भक्तों का कभी भी अनिष्ट नहीं होता है “नहि श्रीकृष्णभक्तानामशुभं विद्यते कचित्” श्रीकृष्ण के दर्शन से दिव्यरूप की प्राप्ति होगी। त्रैमासिक व्रत का विधान जिसमें भगवान् का पूजन सहस्र कमलों से प्रतिदिन करे तथा राधा सहित श्रीकृष्ण के लिये पृतयुक्त तिलों की १०८ आहुति दे इस तरह तीन मास करे। अन्त में असंख्य प्राद्वणों को भोजन करा दक्षिणा दान करे। इनने उत्पातों को देखकर सम्पूर्ण गोपों का घृन्दायन गमन।

नगरनिर्माणवर्णनम्	६३३
कलावत्युपाख्यानवर्णनम्	६३५
पतिमहत्त्ववर्णनम्	६३७
घृन्दावननगरनिर्माणवर्णनम्	६४१
राधायाः षोडशनामवर्णनम्	६४५
घृन्दावननगरवर्णनम्	६४७

नन्दादिकों के शयन करने पर कुबेर के किङ्करोں द्वारा नगर बनाने के लिये सामग्री का लाना एवं विश्वकर्मा द्वारा नगर का निर्माण । सम्पूर्ण गोपों के लिये यथोचित स्थानों का निर्माण कर वृषभानु के गृह का निर्माण किया वहाँपर कलावती का अपने पति के साथ निवास । नारदजी का कलावती विषयक नारायण से प्रश्न कि कलावती कौन थी जिसके लिये इतने सुन्दर स्थान की रचना विश्वकर्मा ने की ? नारायण ने कहा—कलावती पितरेश्वरों की मानसी कन्या एवं लक्ष्मी के वंश से उत्पन्न और वृषभानु की स्त्री तथा राधा की माता थी । जिस राधिका की चरणरज से सम्पूर्ण पृथ्वीतल पवित्र हो गया । सङ्कट उसकी सुदृढ़ भक्ति की इच्छा करते हैं । पितरेश्वरों से तीन मानसी पुत्रियाँ की उत्पत्ति जिनका नाम कलावती, रत्नमाला और मेनका था । रत्नमाला ने अन्क को और मेनका ने पर्वतराज हिमालय को वरण किया । रत्नमाला की अयोनिसम्भवा सीता नाम की लड़की थी जिसका विवाह श्रीराम के साथ हुआ और मेनका की अयोनिसम्भवा पार्वती जिसका विवाह शङ्करजी से हुआ । कलावती का विवाह मनुवंश में उत्पन्न होनेवाले सुचन्द्र के साथ हुआ । कलावती ने सुचन्द्र को अपने मनोनुकूल अतिसुन्दर गुणवान् रूपवान् मान उसके साथ दिव्यरथ पर आरुढ़ हो पर्वतों की कन्दराओं में, द्वीपों में एवं एकान्तस्थानों में गमन करते हुए नवसङ्गम के

संयोग से उन्हें दिन-रात की भी सुध नहीं रही। इस प्रकार हजार वर्ष मुहूर्तयन् व्यतीत हो गये। पश्चात् सुचन्द्र का विषयों से वैराग्य एवं कलावती के साथ तप के लिये विन्ध्याचल को प्रस्थान। सुचन्द्र को मल्लाजी का वरदान कि तुम्हारी मोक्ष होगी। इतना सुन कलावती ने कहा मेरे स्वामी को मुक्ति देते हो तो मेरी क्या गति होगी ? क्योंकि पतिव्रता स्त्रियों के परमाग्र पति ही देव हैं। जो स्त्री पतिभक्ता नहीं होती है उसे नानाविध नरकों की प्राप्ति होती है। स्वामी का वियोग बन्धु एवं पुत्रादिकों के वियोग से भी अधिक है। मन्ता भीतुलसीदासजी ने भी अपने रामचरितमानस बालकाण्ड में जब श्रीराम ने सीताजी को अयोध्या में ही रहने को कहा तब सीताजी कहती हैं कि—

“जिय पियु देह नदी बिन धारी। तैसे ही नाथ पुरुष बिन नारी ॥”

साध्वी स्त्री के लिये पति से बढ़कर कोई भी प्रिय नहीं है।

नदि कान्तात्परोधन्युर्न हि कान्तात्परः प्रियः।

नदि कान्तात्परोद्देशी नदि कान्तात्परो गुरुः ॥

नदि कान्तात्परोधर्मो नदि कान्तात्परं धनम्।

नदि कान्तात्पराः प्राणा न कः कान्तात्परः मित्रयः ॥

इमलिये हे मल्ल में आपको शाप दूँगी जिससे आपको श्रीपथ का पार लगेगा। तदनन्तर मल्लाजी ने कहा कि तुम दोनों की एक माय ही मुक्ति होगी। शुद्ध सार्वभोगों को भोगहर फिर भारत में जन्म होगा और तुम्हारे दाया नाम की पुत्री होगी। सुचन्द्र का कृपमानु रूप में तथा बन्दावती का सुनन्दन की पुत्री रूप में उत्पन्न होना। कृपमानु एवं बन्दावती का विवाह। कृन्दावन नगर के निर्माण का वर्णन। कृन्दावन की स्तुति कई तरह से पाई जाती है—वेदाद नामक एक राजा था जो नन्दूरी कृषी का पालक एवं धार्मिक था। वह अपने पुत्रों को राज्य दे अपनी रानी मदिन गर बन्ने बना गया। उसके कृन्दावन की पुत्री थी। उसने गान्ध हजार वर्ष तक कृन्दावन की और भगवान् शन-

ने वरण किया। वृन्दा ने जहां तप किया उसका नाम हुआ वृन्दावन। दूसरी बात कि राजा कुशध्वज के दो पुत्री थी तुलसी और वेदवती। वेदवती ने तप कर नारायण को प्राप्त किया जो सीता नाम से सर्वत्र विख्यात है। तुलसी ने श्रीकृष्ण की अभिलाषा से तप किया किन्तु भाग्यवरा दुर्वासा के शाप से शङ्खासुर को प्राप्त हुई। श्रीकृष्ण का तुलसी को शाप कि तुम वृक्षरूपा होगी और तुलसी का भगवान् को शाप कि शालग्राम होओगे। तीसरी बात की राधा के सोलह नामों में यह आया है “कृष्णा वृन्दावनी वृन्दा” इसलिये भी वृन्दावन हुआ। वृन्दावन की शोभा का वर्णन।

१८	विप्रपत्नीनां मोक्षणम्	६४८
	विप्रपत्नीकृतश्रीकृष्णस्तोत्रम्	६५१
	विप्रपत्नीनां पूर्वजन्मवृत्तान्तः	६५३
	विप्रपत्नीमोक्षणप्रस्तावः	६५५

नारद और नारायण के संवाद में कृष्णलीला का वर्णन करते हुए कहा कि एक समय श्रीकृष्ण अन्य गोप एवं वलराम के साथ मधुवन में गये वहापर बालकों द्वारा भोजन की इच्छा प्रगट करना। श्रीकृष्ण ने कहा कि ब्राह्मणों के यज्ञस्थान पर जाओ वे अन्नदान करेंगे यदि विप्रलोग अन्नदान न दें तो विप्रपत्नियों के पास जाना। बालकों का अन्न लाने के लिये प्रस्थान। बालकों के अन्न मांगने पर ब्राह्मणों ने कुछ भी उत्तर न दिया। तदनन्तर बालकों का विप्रपत्नियों के पास अन्न की याचना करना। स्त्रियों ने पूछा कि आप कौन हैं? बालकों ने कहा कि वलराम एवं श्रीकृष्ण द्वारा हम भेजे हुए हैं और भूख एवं प्यास से पीड़ित हैं। विप्रपत्नियों का अनेक भाण्डों में पकाज रख भगवान् के पास प्रस्थान। वहां पर विप्रपत्नियों द्वारा भगवान् की स्तुति। भगवान् से दृढ़ भक्ति एवं दास्यभाव

का वर मागना । विप्रपत्नियों का स्वगृह गमन मार्ग में ब्राह्मणों का समागम । ब्राह्मणों ने कहा कि हे पत्नियों । तुम धन्य हो, हमारा वेदपाठ एवं जीवन व्यर्थ ही है । संसार में सब विभूतियाँ भगवान् की ही हैं । विप्रों का स्वगृह जाना । विप्रपत्नियों के पूर्वजन्म के वृत्तान्त का वर्णन । विप्रपत्नियाँ पूर्वजन्म में सप्तर्षियों की स्त्रियाँ थीं । वे अत्यन्त सुन्दरी थीं जिनकी सुन्दरता से मुनियों का भी मन मोहित होजाता था । उनकी सुन्दरता को देख अग्नि का मोहित होना तथा अङ्गिरा का अग्नि को शाप कि तुम सर्वभक्षी होओगे । अग्नि की अङ्गिरा से प्रार्थना । मुनिपत्नियों को शाप कि तुम्हारा जन्म भारत में ब्राह्मणों के घर होगा । श्रेष्ठ विप्रों के साथ तुम्हारा विवाह होगा । मुनि पत्नियों ने अपने पतियों से प्रार्थना की कि हे ऋषियो ! हम निष्पाप हैं आप के बिना हमारा जीवन व्यर्थ है हम आपका चरण कब प्राप्त करेंगी ? दूसरों से भयभीत हुई स्त्रियाँ अपने पति के शरण जाती हैं लेकिन पति के डर से दुःखित हुई किसके पास जायेंगी ? इसलिये हमको अभय दान दीजिये । पत्नियों के वचन सुन ऋषि रोने लगे और कहा कि शुभाशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है । दूसरे से भोगी हुई स्त्री को जो मूर्ख भोगता है वह कालसूत्र नरक में जाता है इसलिये स्त्री एवं पाकपात्र की अवश्य ही रक्षा करनी चाहिये । भगवान् को अन्न देने से विप्रपत्नियों की मोक्ष ।

१६	कालीयदमनाख्यानम्	६५६
	सुरमाकृतश्रीकृष्णस्तोत्रम्	६५७
	सुरसायै वरप्रदानम्	६५८
	नागराजकृत श्रीकृष्णस्तोत्रम्	६६१
	कालियदमनाख्यानम्	६६३
	कालीयमोक्षणम्	६६५

भीकृष्ण अन्यबालकों के साथ गाय चराने के लिये गोकुल में गये । यदापर

गायें नये घास को खाकर विष युक्त जल पीने लगी जिससे उनकी मृत्यु हो गई। भगवान् ने योगसे उनको जीवदान दिया फिर कालिय के स्थान पर गये। श्रीकृष्ण रा कालिय का दमन। सुरसा नामक नागपत्नी द्वारा भगवान् की स्तुति। नागपत्नी को वरदान देकर कहा कि तुम मेरी धर्मपुत्री हो यह नाग मेरा जँवाई अब तुमको गरुड़ से भय नहीं है। मेरे चरणों के चिह्नों को देख गरुड़ भी गाम करेगा। नागराज कालिय द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करना। श्रीकृष्ण ने नागराज को वरदान देकर कहा कि रमणक द्वीप में जाओ। नागराज के जाने के बाद यमुना का जल निर्विष हो गया। नारदजी ने पूछा कि कालिय अपने पूर्व स्थान को छोड़ यमुना में क्यों रहने लगा। नारायण ने कहा कि नागराज शेष की आज्ञा से नागगण प्रतिवर्ष कार्तिक की पूर्णिमा को पुष्करराज में पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और बलिदान से गरुड़ की पूजन करते हैं। अभिमानी कालिय ने गरुड़ की पूजा नहीं की और पूजा की सामग्री को स्वयं ही भक्षण कर गया। नागेन्द्र और गरुड़ का युद्ध। पराजित नागेन्द्र का यमुनाजल में प्रवेश। वहाँपर गरुड़जी नहीं जा सकते थे क्योंकि गरुड़जी को ऋषि सौभरि का शाप था। ऋषि सौभरि ने वहाँ दिव्य हजार वर्ष तक तपस्या की। गरुड़जी द्वारा जल से मत्स्यों को पकड़ना। दुःखित हुए एक मच्छ ने ऋषि की शरण ली। मुनि ने कहा हे गरुड़ तुम्हारी क्या योग्यता है और क्या मेरे सामने से इस जीव को ले जा सकते हो ? यहाँ से चले जाओ। तुमको यह धमण्ड होगा कि मैं भगवान् का पार्षद हूँ। किन्तु यह ध्यान रखना कि तुम्हारे जैसे वाहन भगवान् अनेक घना सकते हैं इसलिए आज से कभी यहाँ नहीं आना। कालिय की मोक्ष। वन में अग्नि का लगना। भगवान् के द्वारा दायाग्न पान एवं गोपों की रक्षा।

२०

ब्रह्मणा गोवत्सादिहरणम्

६६७

ब्रह्मकृतश्रीकृष्णस्तोत्रम्

६६६

श्रीकृष्ण का क्रीड़ा निमित्त गोकुल गमन । ब्रह्मा का गौ के वत्सों एवं बालकों का हरण करना । भगवान् द्वारा अन्य वत्सादिकों का निर्माण । इस तरह एक वर्ष तक यमुनातट के पास क्रीड़ा करते रहे । ब्रह्माजी ने भगवान् के प्रभाव को जानकर स्तुति की । ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण को साष्टाङ्ग प्रणाम किया । जो भक्ति पूर्वक ब्रह्मकृत स्तोत्र को पढ़ता है वह इस लोक में सुख भोग अन्त में हरिपद को प्राप्त होता है । श्रीकृष्ण का बालकों को साथ लेकर अपने स्थान पर जाना ।

२१

इन्द्रयागवर्णनम्

६७०

ब्राह्मणपूजनादौ गुणाः

६७३

गोब्राह्मणमहत्त्ववर्णनम्

६७५

इन्द्रमखभङ्गानन्तरं गोवर्धनपूजावर्णनम्

६७७

इन्द्रपराजयवर्णनम्

६७६

नन्दकृत कृष्णस्तववर्णनम्

६८१

इन्द्रयाग का वर्णन । नन्दजी ने गोपियों को आज्ञा दी कि दही, दूध, घृत, मक्खन, गुड़ और मधु से इन्द्र की पूजन करो । गर्गादि मुनियों का आगमन । नन्दजी द्वारा मुनियों का सत्कार । इन्द्रयाग के निमित्त बाजे बजाने लगे एवं अप्सरायें नाचने लगीं । नाना तरह के पकान्न, फल एवं अनेक तरह के सुवर्ण और चाँदी के पात्र तथा वस्त्र सजाये गये । श्रीकृष्ण का क्रीड़ास्थान से घर आना । श्रीकृष्ण ने नन्दजी से कहा कि हे नन्द आप किसकी पूजा करते हैं । इसके करने से क्या फल होता है एवं प्रसन्न होने से देव क्या देता है ? जो पूजा

देविहित नहीं है वह हानिकारक है। ब्राह्मणों की पूजा सब फलों को देनेवाली है। ब्राह्मण के प्रसन्न होने से सब देवता प्रसन्न होते हैं। देवता को नैवेद्य देकर ब्राह्मण को नहीं देता है उसकी पूजन की हुई निष्फल होती है। भगवान् को नैवेद्य न देकर जो भोजन करता है वह अन्न विष्टा है एवं जल मूत्र के समान है। यह नियम सभी वर्णों के लिये समान रूप से लागू है।

अन्नं विष्टा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम्।

सर्वेषां च क्रममिदं ब्राह्मणानां विशेषतः ॥

इसलिये ब्राह्मणों की पूजा बहुत फल देनेवाली है। ब्राह्मण के स्पर्श से महापापी भी पवित्र हो जाते हैं। विद्वान् हो या मूर्ख हो ब्राह्मण विष्णु का शरीर है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में भी कहा कि “अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनु” इसलिये हे नन्दजी अगर यह द्रव्य ब्राह्मणों को नहीं देंगे तो सब कार्य निष्फल हो जायेंगे। जैसे वृक्ष की जड़ सींचने से शाखाय हरी-भरी हो जाती है उसी तरह भगवान् की पूजन करने से सब देवताओं की पूजन हो जाती है। अथवा गोवर्धन की पूजा करो जो नित्य गडकों को बढ़ाता है तथा उनके चरने के लिए कोमल घास देता है। जितना पुण्य सब व्रत, दान और तप करने से तथा पृथ्वी की परिक्रमा करने से मिलता है उतना ही पुण्य गौओं को घास खिलाने से मिलता है। घास चरती हुई गौ को जो रोचता है वह ब्रह्महत्या को प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण एवं गौ के अङ्गों को ताड़ना देता है उसको ब्रह्महत्या के समान पाप होता है और उसको कालसूत्र नरक की प्राप्ति होती है। इतना सुन नन्दजी ने कहा कि इन्द्र की पूजा परम्परा से होती आई है इससे अच्छी वृष्टि और अन्नादि पैदा होते हैं। श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन की पूजा करवाना। इन्द्रयाग भङ्ग होने से व्रज पर इन्द्र का प्रकोप एवं मूसलाधार वर्षा का आरम्भ। नन्द द्वारा इन्द्र की स्तुति। श्रीकृष्ण का गोवर्धन धारण करना। व्रजवासियों की वर्षा से रक्षा। इन्द्र द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करना। इन्द्रकृत स्तोत्र को जो

पड़ता है उसको भक्ति की प्राप्ति होती है एवं जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और दुःखों से छूट जाता है वह स्वप्न में भी यमराज के पास नहीं जाता है। नन्द द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करना। गोवर्धन आख्यान के श्रवण तथा पठन का फल कथन।

२२	धेनुकासुरोपाख्यानवर्णनम्	६८३
	धेनुकवधवर्णनम्	६८७

श्रीकृष्ण का अन्य बालकों के साथ तालवन में प्रवेश। तालवन का रक्षक खरखपी धेनुक था। तालवन के फलों को भक्षण करने के लिये बालकों ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना कर कहा कि हे कृष्ण ! हम धेनुक से डरते हैं। तब श्रीकृष्ण ने कहा दैत्य से कोई भी भय नहीं है तुमलोग स्वच्छन्दता से फल खाओ। बालकों का फल तोड़ना एवं धेनुक का आगमन। राक्षस को देख बालकों का भयभीत होना। बालकों द्वारा राक्षस से रक्षा के लिये श्रीकृष्ण से प्रार्थना। श्रीकृष्ण ने बलराम से कहा यह दानव बलि का पुत्र है। दुर्वासा के शाप से गर्दभ योनि को प्राप्त हुआ है। इसलिये हे भ्रातः ! आप बालकों की रक्षा करें मैं इसको मारूँगा। इतना कह श्रीकृष्ण का दानव के पास जाना। दानव ने कहा तुम मेरे पिता के यज्ञ के भिक्षुक तथा राज्य हरण करनेवाले हो। मुनि दुर्वासा के शाप से मैं गर्दभ योनि को प्राप्त हुआ हूँ तथा आपके चक्र से मेरी मुक्ति बताई है तदनन्तर धेनुक द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति। धेनुककृत स्तुति का जो पठन करता है उसको विद्या, लक्ष्मी, सुकविता का ज्ञान, मालोक्त्यादिमुक्ति, यश और पुत्र-पौत्रों की प्राप्ति होती है। धेनुक एवं श्रीकृष्ण का युद्ध तथा धेनुक की मृत्यु। श्रीकृष्ण का बालकों को साथ ले अपने घर पर जाना।

कामना की प्राप्ति होती है। तिलोत्तमा एवं साहसिक का प्रेम मिलन। अत्यधिक कामासक्त होने से मुनि दुर्वासा का ध्यानभङ्ग। मुनि ने कहा कि हे गर्दभाकार ! सबही अपनी-अपनी जाति से लज्जा करते हैं केवल पशु ही लज्जा नहीं करते। इसलिये हे दैत्य ! तुम्हें दानवी योनि की प्राप्ति होगी। पुनः वानव की प्रार्थना पर दुर्वासा ने कहा तालवन में गर्दभ योनि से श्रीकृष्ण द्वारा तुम्हारी मुक्ति होगी। तिलोत्तमा से कहा कि तुम याणपुत्री ब्या होओगी।

२४	कन्दलीदुर्वाससोः परिणयः	६६८
	कन्दलीं प्रति दुर्वाससः शापः	७०१

तिलोत्तमा और साहसिक के मृङ्गार को देख मुनि दुर्वासा को कामोत्पत्ति। “संसर्ग जा दोषगुणा भवन्ति” उसी तरह जितेन्द्रिय होते हुए भी मुनि अपने मनोद्वेग को न रोक सके। और के कन्दली नाम की पुत्री थी वह अयोनिजा थी तथा दुर्वासा से दूसरे को पति नहीं चरण करती थी। फलहप्रिय एवं फटु-भाषिणी थी। उसे देख मुनि दुर्वासा को मोह। दुर्वासा ने कहा—

नारीरूपं त्रिभुवने मुक्तिमार्गनिरोधकम् । व्यवधानं तपस्यायाः सततं मोहकारणम् ॥
कारागारे च संसारे दुर्वहं निगडं परम् । अष्टोद्यं ज्ञानखड्गैश्च महद्भिः शङ्करादिभिः

संसार में नारीरूप मुक्ति मार्ग का रोधक है एवं तपस्या को खण्डित करने-वाला है परन्तु श्रेष्ठ स्त्री का सङ्ग ही उत्तम है।

मतिश्चैवावशीलान्ता मुस्त्री जन्मनि जन्मनि ।

यावज्जीवी च मुस्त्रीको न तावज्जन्मखण्डनम् ॥

लेकिन भगवान् का स्मरण सब कार्यों से उत्तम है। इतना कहकर मुनि ने कहा कि मैं तुम्हारी कन्या की सौ कटूक्तियों को क्षमा करूँगा। पश्चात् इसको फल मिलेगा। मुनि दुर्वासा एवं कन्दली का येदोक्त रीति से विवाह एवं और्य

श्रीराम, सिद्धों में कपिल और सुन्दरियों में रम्भा उत्तम हैं उसी तरह व्रतों में एकादशी व्रत है। एकादशी के दिन जो मनुष्य अन्न खाता है उसको नरकों की प्राप्ति होती है। दशमी को एक समय भोजन कर एकादशी को उपवास तथा द्वादशी को पारण करना चाहिये। जो मनुष्य कलाभात्र दशमी के दिन लह्वन (उपवास) करता है उसके घर से लक्ष्मी चली जाती है तथा वंश की हानि होती है। द्वादशी को उपवास कर त्रयोदशी को पारण करने में दोष नहीं है। जिसदिन सम्पूर्ण एकादशी हो तथा दूसरे दिन प्रभात में किञ्चिन्मात्र हो तो उसी दिन (दूसरे दिन) व्रत करना चाहिये। दशमी, एकादशी और द्वादशी यदि साठ घटी हो तो गृहस्थों को पूर्ण दिन उपवास तथा यतियों को दूसरे दिन करना चाहिये। वैष्णव, यति विधवा, सन्यासी, भिक्षु और ब्रह्मचारियों को सभी एकादशी उपोष्य हैं। स्मार्त मतवाले गृहस्थी शुद्धा एकादशी ही करते हैं उनको कृष्णा के उल्लंघन में दोष नहीं है। हरिशयनी एवं हरिप्रबोधिनी के बीचवाली कृष्णपक्ष की एकादशी गृहस्थ करे और नहीं।

शयनीबोधनीमध्ये या कृष्णैकादशीभवेत्। संवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन व्रत के दिन भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा विधान से करे तथा रात्रि में जागरण करे।

२७	गोपीवस्त्रापहरणे जयदुर्गाव्रतकथनम्	६१८
	ब्रह्मकृतजयदुर्गास्तोत्रम्	७२६
	गोपीवस्त्रापहरणम्	७२१
	गौरीव्रतवर्णनम्	७२५
	गौरीव्रतकथावर्णनम्	७२७
	राधायै पार्वत्या वरः	७२६
	राधाकृष्णसंवादवर्णनम्	७३१

हेमन्त के प्रथम महीने में गोपिकाएं यमना नदी के किनारे मिट्टी की पार्वती

बनाकर कृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने के लिये “ओं श्रीदुर्गायै सर्वविघ्न-
विनाशिन्यै नमः” इस मन्त्र से पूजन करने लगी। मधुकैटभ से पीड़ित ब्रह्मा ने
जय दुर्गा की स्तुति की। प्रसन्न हुई दुर्गा द्वारा ब्रह्मा को कवच दान। ब्रह्मा ने
इस स्तोत्र को भद्रेश को दिया जिससे शङ्करजी ने त्रिपुरासुर की जीत लिया। उसी
स्तोत्र के प्रभाव से गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण को पतिरूप में प्राप्त किया। गोपकन्याकृत
स्तोत्र सम्पूर्ण वाञ्छित फलों को देनेवाला है। इसको शैव, शाक्त, एवं वैष्णव यदि
भक्तियुक्त पढ़ते हैं तो दुःख से छूट जाते हैं। इस तरह व्रत करती हुई गोपियाँ
व्रतान्त के दिन नम्र हो जल में स्नान करने गईं। नम्र स्नान शाखों में निपिद्ध है
इसलिये कृष्ण द्वारा गोपिकाओं के बखों का अपहरण। गोपियों का भगवान् से
वत्स मांगना भगवान् ने कहा कहा है गोपिकाओं सुनो।

व्रते तु नम्रा या स्नाति तां रुष्टो वरुणः स्वयम्। वरुणानुचराबासश्चकुर्वस्तुविनिर्हृतिम्॥

नम्र स्नान करना निपिद्ध है अतः यह वरुण का प्रकोप है। राधा की
आज्ञा से नम्र गोपिकाओं का श्रीकृष्ण के पास वत्स लाने के लिये जाना। राधा
द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करना। इस स्तोत्र को जो कुमारी एक वर्ष तक सुनती हैं
उसे श्रीकृष्ण के समान पति प्राप्त होता है। राधाकृत स्तोत्र को विपत्ति में पढ़ने
से सम्पत्ति प्राप्त होती है तथा बहुत दिन से गया हुआ धन फिर मिल जाता है।
इसके पाठ से पतिभेद, पुत्रभेद, मित्रभेद एवं सङ्कट में पढ़ने से सब बाधा दूर हो
इष्ट वस्तु की प्राप्ति होनी कही गई है। श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों के वत्स दान। गौरी व्रत
का विधान जिसमें पूर्व दिन उपवास कर दूसरे दिन मार्गशीर्ष की संक्रान्ति में शुद्ध
वस्त्र धारण कर गणेश, सूर्य, चलि, नारायण, शिव और दुर्गा की पूजन करे। पुनः
वालुका की गौरी बना पाद्यादि षोडशोपचार से पूजन करे। इस व्रत को कुशाब्धज
की पुत्री वेदवती ने किया जिसके फलस्वरूप समाप्ति के दिन साक्षात् पार्वती
प्रसन्न हो वरदान देने के लिये प्रगट हुई। पार्वती ने कहा कि त्रेतायुग में अयोध्या
नगरी में दशरथ के घर रामावतार होगा और तुम मिथिला में जनकपुत्री बनोगी

श्रीराम, सिद्धों में कपिल और सुन्दरियों में रम्भा उत्तम हैं उसी तरह व्रतों में एकादशी व्रत है। एकादशी के दिन जो मनुष्य अन्न खाता है उसको नरकों की प्राप्ति होती है। दशमी को एक समय भोजन कर एकादशी को उपवास तथा द्वादशी को पारण करना चाहिये। जो मनुष्य कलामात्र दशमी के दिन लङ्घन (उपवास) करता है उसके घर से लक्ष्मी चली जाती है तथा वंश की हानि होती है। द्वादशी को उपवास कर त्रयोदशी को पारण करने में दोष नहीं है। जिसदिन सम्पूर्ण एकादशी हो तथा दूसरे दिन प्रभात में किञ्चिन्मात्र हो तो उसी दिन (दूसरे दिन) व्रत करना चाहिये। दशमी, एकादशी और द्वादशी यदि साठ घटी हो तो गृहस्थों को पूर्व दिन उपवास तथा यतियों को दूसरे दिन करना चाहिये। वैष्णव, यति विधवा, सन्यासी, भिक्षु और ब्रह्मचारियों को सभी एकादशी उपोष्य हैं। स्मार्त मतवाले गृहस्थी शुक्ल एकादशी ही करते हैं उनको कृष्णा के उल्लंघन में दोष नहीं है। हरिशायनी एवं हरिप्रबोधिनी के बीचवाली कृष्णपक्ष की एकादशी गृहस्थ करे और नहीं।

शायनीबोधनीमध्ये या कृष्णैकादशीभवेत्। सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन व्रत के दिन भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा विधान से करे तथा रात्रि में जागरण करे।

२७	गोपीवस्त्रापहरणे जयदुर्गाव्रतकथनम्	६१८
	ब्रह्मकृतजयदुर्गास्तोत्रम्	७२६
	गोपीवस्त्रापहरणम्	७२१
	गौरीव्रतवर्णनम्	७२५
	गौरीव्रतकथावर्णनम्	७२७
	राधायै पार्वत्या वरः	७२६
	राधाकृष्णसंवादवर्णनम्	७३१

हेमन्त के प्रथम महीने में गोपिकाएँ यमुना नदी के किनारे मिट्टी की पार्वती

बनाकर कृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने के लिये “ओं श्रीदुर्गायै सर्वविघ्न-
विनाशिन्यै नमः” इस मन्त्र से पूजन करने लगी। मधुकैटभ से पीडित ब्रह्मा ने
जय दुर्गा की स्तुति की। प्रसन्न हुई दुर्गा द्वारा ब्रह्मा को कवच दान। ब्रह्मा ने
इस स्तोत्र को महेश को दिया जिससे शङ्करजी ने त्रिपुरासुर की जीत लिया। उसी
स्तोत्र के प्रभाव से गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण को पतिरूप में प्राप्त किया। गोपकन्याकृत
स्तोत्र सम्पूर्ण वाञ्छित फलों को देनेवाला है। इसको शैव, शाक्त, एवं वैष्णव यदि
भक्तियुक्त पढ़ते हैं तो दुःख से छूट जाते हैं। इस तरह व्रत करती हुई गोपियाँ
व्रतान्त के दिन नम्र हो जल में स्नान करने गईं। नम्र स्नान शास्त्रों में निषिद्ध है
इसलिये कृष्ण द्वारा गोपिकाओं के वस्त्रों का अपहरण। गोपियों का भगवान् से
बख्श मागता भगवान् ने कहा कहा है गोपिकाओं सुनो।

व्रते तु नम्रा या स्नाति ता रुष्टो वरुणः स्वयम्। वरुणानुचरावासश्चक्रुर्वस्तुविनिर्हृतिम्॥

नम्र स्नान करना निषिद्ध है अतः यह वरुण का प्रकोप है। राधा की
आज्ञा से नम्र गोपिकाओं का श्रीकृष्ण के पास वस्त्र लाने के लिये जाना। राधा
द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करना। इस स्तोत्र को जो कुमारी एक वर्ष तक सुनती है
उसे श्रीकृष्ण के समान पति प्राप्त होता है। राधाकृत स्तोत्र को विपत्ति में पढ़ने
से सन्पत्ति प्राप्त होती है तथा बहुत दिन से गया हुआ धन फिर मिल जाता है।
इसके पाठ से पतिभेद, पुत्रभेद, मित्रभेद एवं सङ्कट में पढ़ने से सब बाधा दूर हो
इष्ट वस्तु की प्राप्ति होनी कही गई है। श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों के वस्त्र दान। गौरी व्रत
का विधान जिसमें पूर्व दिन उपवास कर दूसरे दिन मार्गशीर्ष की संक्रान्ति में शुद्ध
वस्त्र धारण कर गणेश, सूर्य, बलि, नारायण, शिव और दुर्गा की पूजन करे। पुनः
बालुका की गौरी बना पाद्यादि षोडशोपचार से पूजन करे। इस व्रत को कुशध्वज
की पुत्री वेदधती ने किया जिसके फलस्वरूप समाप्ति के दिन साक्षात् पार्वती
प्रसन्न हो वरदान देने के लिये प्रगट हुई। पार्वती ने कहा कि व्रतायुग में अयोध्या
नगरी में दशरथ के घर रामावतार होगा और तुम मिथिला में जनकपुत्री बनोगी

(१५२),

वहां श्रीराम तुम्हारे पति होंगे । मिथिलापुरी में खेती करते हुए राजा जनक के हल के अग्रभाग द्वारा पृथ्वी से सीता की उत्पत्ति । राधा द्वारा पार्वती की स्तुति करना । राधा को पार्वती का वरदान—

यथा सौभाग्ययुक्ताऽहं हरस्य श्रीहरिप्रिये ।

तथा सौभाग्ययुक्ता त्वं भव कृष्णस्य सुन्दरि ॥

राधा और श्रीकृष्ण का सम्वाद वर्णन ।

२८	रासक्रीड़ाप्रस्ताववर्णनम्	७३२
	रासक्रीड़ायां गोपनामवर्णनम्	७३३
	रासक्रीड़ावर्णनम्	७३४

श्रीकृष्ण का वृन्दावन में रासक्रीड़ा प्रारम्भ करना । मुरली के शब्द से राधा को मोह । जागृत होकर राधा का सुशीलादि ३३ सखियों का कृष्ण के पास जाना । सुशीला के सङ्ग से और भी १६ हजार सखियों का आगमन । दशहजार सखियों के साथ कुन्ती गोपी का आगमन । फदम्बमाला का १३ हजार सखियों के साथ, यमुना के साथ १४ हजार, जाह्नवी के साथ ६ हजार, पद्ममुखी के साथ ६ हजार, सावित्री का १५ हजार सखियों के साथ, स्वयं प्रभा का सात हजार सखियों के साथ रासक्रीड़ा में आगमन, सुधामुखी के साथ १४ हजार गोपिकाएँ, शुभा नामक गोपी के साथ भी १४ हजार, पद्मा के साथ १४ हजार, सर्वमङ्गला के साथ १६ हजार, गौरी एवं पद्मा के साथ १४ हजार, कालिका, कमला एवं दुर्गा के साथ १६ हजार गोपियों का आगमन । सरस्वती के साथ १३ हजार, भारती के साथ १० हजार, अपर्णा के साथ १४ हजार, रति के साथ १४ हजार, गङ्गा के साथ १४ हजार, अम्बिका के साथ १६ हजार, सती के साथ १३ हजार, नन्दिनी के साथ दश हजार, सुन्दरी के साथ १३ हजार,

कृष्णप्रिया और मधुमती के साथ १६ हजार, चम्पा के साथ १३ हजार और चन्दन का १६ हजार सखियों के साथ रासक्रीडार्थ आगमन। इस प्रकार रात्रि में भाण्डीर, श्रीवन, कदम्बकानन, नारिकेलवन, पूगवन, कदलीवन, निम्बारण्य, मधुवन, जम्बीर कानन, तुलसी कानन, कुन्दवन, चम्पक कानन, बदरी कानन, विल्ववन, नारिङ्ग कानन, अश्वत्थ कानन, वंशवन, दाड़िम कानन और मन्दर कानन इत्यादि ३३ वनों में गोपिकाओं के साथ रासक्रीड़ा महोत्सव का वर्णन।

२६	रासक्रीड़ावर्णनम्	७४२
	अष्टावक्रस्य कृष्णसमीपेगमनम्	७४३

गोपिकाओं का श्रीकृष्ण के साथ रासक्रीड़ा का वर्णन। ऋषि अष्टावक्र का श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ आगमन। अष्टावक्र को देखकर राधा का हँसना तथा श्रीकृष्ण का राधा को हास्य से रोकना। अष्टावक्र द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करना। स्तुति के पश्चात् श्रीकृष्ण के चरणों में प्रकार योग से शरीर का त्याग। अष्टावक्र के द्वारा किये गये स्तोत्र को जो पढ़ता है उसको मोक्ष की प्राप्ति होती है।

३०	श्रीराधाकृष्णसंवादवर्णनम्	७४५
	असितकृतशिवस्तोत्रम्	७४७
	देवलरत्नावल्योः परिणयः	७४६

राधा और श्रीकृष्ण का संवाद वर्णन। मुनि अष्टावक्र के मरने के बाद श्रीकृष्ण का दाहक्रिया करना। देव विमान का आगमन। मुनि का गोलोक गमन। राधा का अष्टावक्र के रहस्य को पूछना तथा श्रीकृष्ण का राधा को उत्तर दे राधिके ! मैं तुम्हें अष्टावक्र का आख्यान कहता हूँ, जिसके सुनने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मा के मन से सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार की

उत्पत्ति । ब्रह्माजी ने उनको सृष्टि रचने के लिये आदेश दिया लेकिन वे तप करने ही चले गये तपश्चात् अग्नि आदि ऋषियों की उत्पत्ति । वे सब गृहस्थधर्म में प्रवृत्त हो गये । मुनि असित का पुत्र की प्राप्ति के लिये पत्नी सहित दिव्य हजार वर्ष तक तपस्या करना । पुत्र प्राप्ति न होने से ऋषि का प्राण त्यागने के लिये उद्यत होना । मुनि को आकाशवाणी हुई कि क्यों प्राण त्यागते हो शङ्कर के पास जाकर उनसे मन्त्रग्रहण कर सिद्ध करो । मुनि का शिव के पास जाकर स्तुति करना । स्तुति से प्रसन्न हो शङ्कर ने कहा कि मेरे समान ही मेरे भंरा से तुम्हारे पुत्र होगा । असित के देवल नामक पुत्र की प्राप्ति । देवल का सुयज्ञ राजा की कन्या रत्नावली के साथ विवाह । पश्चात् सम्पूर्ण सुखों का परित्याग कर रात्रि में शयन करती हुई गृहिणी को छोड़ देवल का तप के लिये गन्धमादन पर्वत पर प्रस्थान । रत्नमाला का स्वामी विरह में देह त्याग । जितेन्द्रिय देवल की दिव्य हजार वर्ष तक तपश्चर्या एवं त्रिलोकी के भित्त को मोहन करनेवाला वेप बनाकर अप्सरा रम्भा का आगमन । रम्भा द्वारा देवल से रति की याचना । देवल का रम्भा को उत्तर-धर्मोऽयं मुक्तकाले च स्वयोपिति रतोद्विजः । सर्वत्र पूजितः शश्वदिह लोके परत्र च ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो यो रतः परयोपिति । याति तस्यापूजितस्य रुष्टालक्ष्मीर्गृहादपि इहातिनिन्द्यः सर्वत्र नाधिकारी स्वकर्मसु । परत्रैवान्धकूपे च यावद्वर्षशतं वसेत् ॥ ऐसे-ऐसे सुन्दर वेद के सारभूत वाक्यों का बहना । रम्भा का क्रोधित होकर शाप देना । शाप के प्रभाव से देवल का विकृतरूप होना एवं उसके आठ अङ्ग टूटें देखकर भगवान् द्वारा अष्टावक्र नाम रखना । तदनन्तर मलयचल पर्वत पर साठ हजार वर्ष तक परम तप कर प्रभु में लीन होना ।

भगवान् श्रीकृष्ण से राधिका का प्रश्न कि जो तीनों लोकों का रचनेवाला तथा तप के फल को देनेवाला विधाता है वह कुलटा के शाप से कैसे अपूज्य हुआ ? तब भगवान् ने कहा कि रैवत मन्वन्तर में तपस्वी, वैष्णवश्रेष्ठ, ज्ञानी एवं परमधार्मिक सुचन्द्र नाम का राजा हुआ । उसने मलयाचल में एक सहस्र वर्ष तक तुश्चर तप किया । जिसे देखकर कृपालु ब्रह्माजी उस तपःस्थान में वर देने के लिये आये एवं कमण्डलु के जल से सिन्धन कर वर दिया । तत्पश्चात् आकाश से दिव्यरथ का आगमन तथा राजा का पार्यदरूप हो भगवद्लोक में गमन । ब्रह्मलोक में जाते हुए ब्रह्माजी को देख मोहिनी का मोहित होना । जितेन्द्रिय ब्रह्माजी उसकी मोहित अवस्था देखकर भी विकार को प्राप्त नहीं हुए और अपने लोक में चले गये । मोहिनी का दिन-रात ब्रह्माजी को चिन्तन करना । मोहिनी एवं रम्भा का संवाद । रम्भा द्वारा मोहिनी को उपाय बताना । मोहिनी का पुष्कर में कामार्थ तपस्या करना । कामदेव का आगमन एवं मोहिनी के साथ ब्रह्मलोक में गमन । मोहिनी का नाच-गान से ब्रह्माजी को मोहित करना ।

का लज्जा तस्य संसारे यः कामहृतचेतनः । विज्ञाय ब्रह्मा तद्भावं नतवप्नो धभूव ह ॥

हतोद्यमा मोहिनी का कामदेव की स्तुति करना । यह स्तोत्र मोहिनी को गन्धमादन पर्वत पर दुर्वासा ने दिया था । कामी मनुष्य यदि भक्तिपूर्वक पढ़े तो उसके अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति एवं सख्ती, पत्नी की प्राप्ति होती है ।

उत्पत्ति । ब्रह्माजी ने उनको सृष्टि रचने के लिये आदेश दिया लेकिन वे तप करने ही चले गये तपश्चात् अत्रि आदि ऋषियों की उत्पत्ति । वे सब गृहस्थधर्म में प्रवृत्त हो गये । मुनि असित का पुत्र की प्राप्ति के लिये पत्नी सहित दिव्य हजार वर्ष तक तपस्या करना । पुत्र प्राप्ति न होने से ऋषि का प्राण त्यागने के लिये उद्यत होना । मुनि को आकाशवाणी हुई कि क्यों प्राण त्यागते हो शङ्कर के पास जाकर उनसे मन्त्रग्रहण कर सिद्ध करो । मुनि का शिव के पास जाकर स्तुति करना । स्तुति से प्रसन्न हो शङ्कर ने कहा कि मेरे समान ही मेरे अंश से तुम्हारे पुत्र होगा । असित के देवल नामक पुत्र की प्राप्ति । देवल का सुयज्ञ राजा की कन्या रत्नावली के साथ विवाह । पश्चात् सम्पूर्ण सुखो का परित्याग कर रात्रि में शयन करती हुई गृहिणी को छोड़ देवल का तप के लिये गन्धमादन पर्वत पर प्रस्थान । रत्नमाला का खामी विरह में देह त्याग । जितेन्द्रिय देवल की दिव्य हजार वर्ष तक तपश्चर्या एवं त्रिलोकी के चित्त को मोहन करनेवाला वेप बनाकर अप्सरा रम्भा का आगमन । रम्भा द्वारा देवल से रति की याचना । देवल का रम्भा को उत्तर-धर्मोऽयं मुक्तकाले च खयोपिति रतोद्विजः । सर्वत्रपूजित. शश्वदिह लोके परत्र च ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो यो रतः परयोपिति । याति तस्यापूजितस्य रुष्टालक्ष्मीर्गृहादपि इहातिनिन्द्यः सर्वत्र नाधिकारी स्वकर्मसु । परत्रैवान्धकूपे च यावद्वर्षशतं वसेत् ॥

ऐसे-ऐसे सुन्दर वेद के सारभूत वाक्यों का कहना । रम्भा का क्रोधित होकर शाप देना । शाप के प्रभाव से देवल का विकृतरूप होना एवं उसके आठ अङ्ग टूटें देखकर भगवान् द्वारा अष्टावक्र नाम रखना । तदनन्तर मलयाचल पर्वत पर साठ हजार वर्ष तक परम तप कर प्रभु में लीन होना ।

भगवान् श्रीकृष्ण से राधिका का प्रश्न कि जो तीनों लोकों का रचनेवाला तथा तप के फल को देनेवाला विधाता है वह कुलटा के शाप से कैसे अपूज्य हुआ ? तब भगवान् ने कहा कि रैवत मन्वन्तर में तपस्वी, वैष्णवश्रेष्ठ, ज्ञान एवं परमधार्मिक सुचन्द्र नाम का राजा हुआ । उसने मलयाचल में एक सहस्र वर्ष तक दुश्चर तप किया । जिसे देखकर कृपालु ब्रह्माजी उस तपःस्थान में वर देने में लिये आये एवं कमण्डलु के जल से सिञ्चन कर वर दिया । तत्पश्चात् आकाश से दिव्यरथ का आगमन तथा राजा का पार्ष्वरूप हो भगवद्लोक में गमन ब्रह्मलोक में जाते हुए ब्रह्माजी को देख मोहिनी का मोहित होना । जितेन्द्रिय ब्रह्माजी उसकी मोहित अवस्था देखकर भी विकार को प्राप्त नहीं हुए और अपने लोक में चले गये । मोहिनी का दिन-रात ब्रह्माजी को चिन्तन करना । मोहिनी एवं रम्भा का संवाद । रम्भा द्वारा मोहिनी को उपाय बताना । मोहिनी का पुष्कर में कामार्थ तपस्या करना । कामदेव का आगमन एवं मोहिनी के साथ ब्रह्मलोक में गमन । मोहिनी का नाच-गान से ब्रह्माजी को मोहित करना । का लज्जा तस्य संसारे यः कामहतचेतनः । विज्ञाय ब्रह्मा तद्भावं नतवक्त्रो घभूव ह ॥

हतोद्यमा मोहिनी का कामदेव की स्तुति करना । यह स्तोत्र मोहिनी को गन्धमादन पर्वत पर दुर्वासा ने दिया था । कामी मनुष्य यदि भक्तिपूर्वक पढ़े तो उसको अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति एवं साध्वी पत्नी की प्राप्ति होती है ।

मोहिनी के स्तुति करने पर कामदेव प्रसन्न हो गये और अपने पिता ब्रह्माजी को कामास्त्र से चञ्चल करना दिया। श्रीहरि को स्मरण करते हुए ब्रह्माजी ने काम की चेष्टा को जान कोधयुक्त हो शाप दिया कि हे यौवनोन्मत्त कामदेव ! मेरी अवहेलना करने से तुम्हारा दर्प भङ्ग होगा। कामदेव का स्वस्थान गमन। ब्रह्माजी ने मदनातुरा मोहिनी से कहा हे मातः ! तुम अपने स्थान पर जाओ मैं इस कार्य के योग्य नहीं हूँ। वेद में जो निन्दनीय कर्म हैं मैं उसको करने में असमर्थ हूँ कारण मैं स्वयं वेदकर्ता हूँ तथा संसार का व्यवस्थापक हूँ। भगवान् हरि। दोक्त कर्म करनेवाले पर ही दिन-रात प्रसन्न रहते हैं कारण—“हरौ तुष्टे जगत्तुष्टं” अस्मिन् रुष्टे भयोरपि।” अर्थात् भगवान् की प्रसन्नता ही संसार की प्रसन्नता है ऐसा कहकर ब्रह्माजी चुप हो गये। तब मोहिनी ने ब्रह्माजी से कहा कि आपके नीतियुक्त वाक्यों से मेरा मन स्थिर नहीं हुआ है। आपके त्यागने से मेरा सम्पूर्ण शरीर जड़ हो गया है। अतः हे कृपासिन्धो ! आप मेरे पर कृपा कीजिये आप मुझे हताश करने योग्य नहीं हैं। आपके आश्लेषमात्र से मैं विज्वर हो जाऊँगी। ऐसा कहकर मोहिनी ने फिर ब्रह्माजी को तिरछी नजर से देखा जिससे सर्वज्ञ सर्वयोगवित् कामदेव ने प्रगट होकर पाँच बाण छोड़े। कामदेव के अस्त्र से हत चित्त एवं मनको रोकने में असमर्थ ब्रह्माजी द्वारा भगवान् की स्तुति करना।

ब्रह्माजी भगवान् की स्तुति कर उनके समीप स्थित हो गये। काम विह्वल मोहिनी ने फिर ब्रह्माजी का वस्त्र पकड़कर खींचा। तब ब्रह्माजी ने भय से आतुर हो अमृततुल्य वचन कहे कि हे मोहिनि ! तुम स्त्रीजाति को संसार में निर्लज्ज मत

करो ऐसा कहते हुए ब्रह्माजी को काम से हत चित्तवाली मोहिनी ने छेड़ा व उनके वस्त्र को फिर खींचा। इतने में ब्रह्मतेज से देदीप्यमान मुनियों के समूह का आगमन। मुनियों ने ब्रह्माजी से पूछा कि स्वर्ग की वेश्याओं में प्रबरा मोहिनी का आपके पास आगमन कैसे हुआ ? तब ब्रह्माजी ने मुनियों से कहा—“यह नृत्य-गीत से थकी हुई जैसे कन्या पिता के पास रहनी दे वैसे ही मेरे पास खड़ी है।” ऐसा कहकर मुनियों के मध्य में ब्रह्म हँसे तथा सर्वज्ञ मुनिसमाज भी इस बात को सुनकर हँसने लगे। तदनन्तर मोहिनी का ब्रह्माजी को शाप।

दासीतुल्याविनीताश्च दैवेन शरणागताम्। यतो हससि गर्वेण ततोऽपूज्यो भवाचिरम्
तवैव वचनं स्तोत्रं गृहाति योनरः सदा। भविता तस्य विघ्नश्च स यास्यत्युपहास्यताम्॥

मोहिनी का मदनालय को प्रस्थान। ब्रह्माजी को भगवान् की शरण में जाने के लिये मुनियों का कहना। हतप्रभ ब्रह्माजी का भगवान् की शरण में जाना एवं स्तुति करना। भगवान् नारायण द्वारा ब्रह्माजी को आश्लासन। तत्पश्चात् नारायण के समीप दशमुख, शतमुख और सहस्रमुख ब्रह्माओं का आगमन। उनको देखकर चतुर्मुख ब्रह्मा का दर्पभंग कारण “आत्मानं विष्णुसदृशं मन्यमानस्य, क्षपितः”। तदनन्तर सर्वान्तर्यामी भगवान् का शाप निवारणार्थ उपाय कहना।

भगवान् नारायण के स्थान में वृषारूढ़, व्याघ्रचर्माम्बरधर, सर्प की यज्ञोपवीत एवं भूरि जटाओं को धारण किये अर्धचन्द्र से युक्त भगवान् आशुतोष शङ्कर का आगमन। ऋषि-मुनियों एवं सम्पूर्ण इन्द्रादि देवता, आदित्य, वसु और सिद्ध चरणा का भी वहीं आगमन। नतकन्धर सम्पूर्ण देवताओं का शंकर को प्रणाम। तदनन्तर शंकर का खरतालयुक्त संगीत। जिससे सम्पूर्ण वैकुण्ठ जलपूर्ण हो गया। जलाधिष्ठात्री देवी गङ्गा का आगमन। गङ्गा के नामों की पृथक्-पृथक्

परिभाषा । इसीलिये मृत्यु समय मे भी गङ्गाजल दिया जाता है । कलियुग में ५ हजार वर्ष तक गङ्गा की स्थिति बतार्ह है ।

३५ ब्रह्मणो गोलोकगमनम्
श्रीराधाकृष्णसंवादवर्णनम्

७६८

७६९

भगवान् नारायण का कहना कि हे चतुर्मुख ब्रह्मन् ! उठो तुम्हारा कल्याण होगा । यहाँ स्नान कर शापमुक्त हो पवित्र होओ । अब तुम शीघ्र ही मेरे स्थानों में सर्वश्रेष्ठ गोलोक में जाओ जहाँ प्रकृति की अंशकला मङ्गल को देनेवाली भारती मिलेगी । संसार के मूलस्वरूप भगवती प्रकृतिका भजन करो । ब्रह्माजी का गोलोक में जाना तथा वहाँ पर भगवान् नारायण के मुखरूपी कमल से उत्पन्न सर्वविद्याधि-
देवी वागीश्वरी भगवती सरस्वती को प्राप्त कर प्रसन्न होना । वहाँ से ब्रह्माजी का अपने स्थान ब्रह्मलोक में आना । अपने लोक में भी उसी वागीश्वरी भगवती भारती को कौतुकपूर्वक देखना । भगवती भारती के साथ ब्रह्माजी का सुख-सम्भोग में निमग्न होना । ऐसा कहकर भगवान् ने राधिका से कहा कि यह सब पुराणों में गुप्त है अब आगे क्या सुनने की इच्छा है ? तदनन्तर राधिका ने कहा कि स्वयं उपस्थित वेश्या को ब्रह्माजी ने क्यों ग्रहण नहीं किया ? क्योंकि स्वयं उपस्थित स्त्री को त्यागने में महान् दोष है इस बात को जानते हुए विधाता ने मोहिनी का त्याग क्यों किया ? राधिका के वचन सुनकर हँसते हुए भगवान् मधुसूदन ने पाद्म कल्प का वृत्तान्त कहना आरम्भ किया । एक बार मेरे से प्रेरित ब्रह्माजी ने संसार की रचना में ब्रह्मतेज से देदीप्यमान मानसपुत्रों की रचना की एवं उन सनक, सनन्दन, सनातन, सन्तकुमार, बोद्ध, पञ्चशिख, विशु, असित, कपिल एवं मेरी कलाओं से उत्पन्न सिद्धों को प्रजा रचने के लिये कहा । वे पिता की बात न मानकर तप करने चले गये । पुनः क्रोधित ब्रह्मा ने एकादश रुद्रों को उत्पन्न किया । यशिष्ठादि ऋषियों की उत्पत्ति । कामदेव तथा एक कन्या की उत्पत्ति ।

ब्रह्मा ने कामदेव को सम्मोहन आदि ५ वाण दिये । स्त्री और पुरुष को प्रसन्न करने में तत्पर रहो तथा सब का मोहन करो । जब ब्रह्माजी अपनी पुत्री को घरदान देने गये तब कामदेव ने अपने बाणों की परीक्षा करने के लिये उन्हें ब्रह्माजी पर धोड़ा । अति वृद्ध महायोगी ब्रह्मा उनसे मोहित हो गये । क्षणभर के बाद जब चेतना प्राप्त हुई तो वह अपनी पुत्री से सम्भोग करने को उद्यत हुए, तब कन्या दौड़ी और अपने भाइयों की शरण में गई । ऋषियों ने पिता से कहा यह क्या नीच कार्य कर रहे हैं ? आप वेद को जानने वाले हैं कन्या मातृवर्गों में मान गई है ।

गुरोः पत्नी राजपत्नी विप्रपत्नी च या सती ।

पत्नी च भ्रातृसुतयो मित्रपत्नी च तत्प्रसूः ॥

प्रसूः पित्रोस्तथा भ्रातुः पत्नीश्वश्रूः स्वकन्यकाः ।

जननी तत्सपत्नी च भगिनी सुरभी तथा ॥

स्याभीष्टसुरपत्नी च घात्रिकाश्वप्रदायिका ।

गर्भधात्री स्वनाम्ना च भयात्प्रातुश्च कामिनी ॥

एतावेदप्रणीताश्च सर्वेषां मातरः स्मृताः ।

एतास्वपि च सर्वासु न्यूनता नास्तिकासु च ॥

कन्या देनेवाला, अन्न देनेवाला, ज्ञान देनेवाला, अभय देनेवाला, जन्म देनेवाला, मन्त्र देनेवाला और ज्येष्ठ भ्राता ये पिता बताने गये हैं इनका जो अपमान करते हैं वे नरक को प्राप्त करते हैं । ब्रह्माजी का ब्रह्म में लीन होना । कन्या पिता को मृत देख रोदन करने लगी । पुनः श्रीनारायण द्वारा ब्रह्मा को जीवित करना । ब्रह्मा द्वारा भगवान् की प्रार्थना । नारायण द्वारा ब्रह्मा को सत्कर्मों का उपदेश । हे ब्रह्मन् ! कुमार्ग में जालेवाले को कृपिकर्मवाले भी निन्दित करते हैं । आज से तुम्हारा मन कभी भी परस्त्री एवं परवस्तु में नहीं रहेगा । यह कन्या कामदेव की कामिनी होगी ।

हरदर्पभङ्गवर्णनम्	७७४
पार्वतीदर्पभङ्गप्रसंगवर्णनम्	७७७
शंकरप्रशंसावर्णनम्	७७६

राधा एवं श्रीकृष्ण के संवाद में राधा ने पूछा कि ब्रह्मा कुलटा के शाप से अपूज्य से हुए एवं उनका दर्पभङ्ग कैसे हुआ ? उत्तर में भगवान् ने कहा ब्रह्मा को चिरकाल तक तपस्या करने पर जब मैंने वरदान दिया तो उन्हें मैं सर्व संसार का ईश्वर हूँ, सा महागर्व हुआ। ब्रह्माण्ड में गर्वपर्यन्त ही उन्नति है ऐसा विचारकर ब्रह्मा का गर्व प्रकिया गया। प्रथम ब्रह्मा का गर्व चूर्ण कर अब शङ्कर, पार्वती, चन्द्र, रवि, बहिः, इवांसा, धन्वन्तरि और अन्य क्षुद्र एवं बड़ों का जो गर्व नाश किया वह तुम्हें कहता हूँ। वृकासुर की शङ्कर की तपस्या करना उससे शङ्कर का प्रसन्न होना। वृक ने वरदान माँगा कि जिसके शिर पर मैं हाथ रखूँ वही भस्म हो जाय। शङ्कर ने तथास्तु कह दिया। वृकासुर का पार्वती की अभिलाषा से शिव के मस्तक पर हाथ रखने के लिये दौड़ना। पुनः भगवान् द्वारा संकटापन्न शङ्कर की रक्षा एवं वृकासुर का भस्म होना। एक समय त्रिपुरासुर को मारने के लिये मेरे दिये त्रिशूल एवं कवच को छोड़ रुद्र युद्ध में गये। दोनों का एक वर्षपर्यन्त युद्ध हुआ। पहले पृथ्वी में युद्ध कर एक मास पर्यन्त आकाश में युद्ध हुआ। राक्षस ने अपने बाणों से शङ्कर के रथ एवं बाणों को तोड़ दिया। शङ्कर ने दानव पर मुष्टिप्रहार किया जिससे उसको एक क्षण मूर्छा हुई। चेतना प्राप्त कर दैत्य ने सोये हुए शङ्कर को रथ सहित नीचे गिरा दिया। देवताओं में हाहाकर मच गया। शङ्कर ने भी शीघ्र ही मेरी स्तुति की। तब मैंने विप्ररूप धारण कर सोये हुए शङ्कर को सीढ़ों से उठाया उन्हें अपना कवच और त्रिशूल दिया। पार्वती के दर्पभङ्ग का वर्णन आगे किया जायगा। शङ्कर की प्रशंसा का वर्णन। शङ्कर भी पञ्चवक्त्रों से मेरा ही ध्यान करते हैं।

शिवनिर्माल्य के शाप का वर्णन - एक समय वैकुण्ठ में भोजन करते हुए विष्णु की सनत्कुमार ने गुप्त स्तोत्रों से स्तुति की। प्रसन्न हुए भगवान् ने सनत्कुमार को भुक्त अन्न देकर कहा कुछ अपने वन्द्युओं के लिये रखना। उसे सनत्कुमार ने सिद्धाश्रम में शङ्कर को दिया। उस अन्न को भक्षण करने से नाचते-गाते हुए शङ्कर मूर्छित हुए इसी धीच पार्वती का आगमन। पार्वती ने सनत्कुमार से शङ्कर की मोहावस्था का कारण पूछा। सनत्कुमार ने सब यथावत् वर्णन किया। पार्वती का शाप देने के लिये उद्यत होना एवं शङ्कर द्वारा स्तुति। पार्वती ने कहा मैं आपकी किङ्करी हूँ आपने नारायण का प्रसाद मुझे नहीं दिया विष्णु का नैवेद्य सबसे उत्तम होता है। जो विष्णु का नैवेद्य भक्षण करता है उसे साठ हजार वषे तक की हुई तपस्या का फल मिलता है। इसलिये हे महेश्वर। आपने विष्णु के प्रसाद से मुझे वञ्चित रक्खा है उसका फल यह है कि—

अद्यप्रभृति ये लोका नैवेद्यं भुञ्जते तव । ते जन्मैकं सारमेया भविष्यन्त्येष भारते ॥

जो तुम्हारे निर्माल्य को ग्रहण करेंगे वे एक जन्म तक श्वान योनि को प्राप्त होंगे। पार्वती का रोदन करना। शङ्कर के कण्ठ पर रोती हुई पार्वती का दृष्टिपात उससे नीलकण्ठ हो गये। शङ्कर द्वारा पार्वती की स्तुति।

भगवान् श्रीकृष्ण का भगवती राधिका से कहना कि हे देवि। तुमने जगद्गुरुशङ्कर का दर्पभङ्ग सुना अब मेरे द्वारा दुर्गा का दर्पभङ्ग सुनो। जगत् जननी भगवती का सम्पूर्ण देवताओं के तेज से प्रगट होना एवं समग्र दानवेन्द्रों को नष्ट कर देवकुल की रक्षा करना। तदनन्तर उनका प्रजापति दक्ष के घर

(१६०)

३६

हरदर्पभङ्गवर्णनम्	७७४
पार्वतीदर्पभङ्गप्रसंगवर्णनम्	७७७
शंकरप्रशंसावर्णनम्	७७९

राधा एवं श्रीकृष्ण के संवाद में राधा ने पूछा कि ब्रह्मा कुलटा के शाप से अपूज्य कैसे हुए एवं उनका दर्पभङ्ग कैसे हुआ? उत्तर में भगवान् ने कहा ब्रह्मा को चिरकाल तक तपस्या करने पर जब मैंने बरदान दिया तो उन्हें मैं सर्व संसार का ईश्वर हूँ ऐसा महागर्व हुआ। ब्रह्माण्ड में गर्वपर्यन्त ही उन्नति है ऐसा विचारकर ब्रह्मा का गर्व दूर किया गया। प्रथम ब्रह्मा का गर्व चूर्ण कर अब शङ्कर, पार्वती, चन्द्र, रवि, घृति, बुवासा, धन्वन्तरि और अन्य क्षुद्र एवं यदों का जो गर्व नाश किया वह तुम्हें कहता हूँ। वृकासुर की शङ्कर की तपस्या करना उससे शङ्कर का प्रसन्न होना। वृक ने बरदान माँगा कि जिसके शिर पर मैं हाथ रखूँ वही भस्म हो जाय। शङ्कर ने तथास्तु कह दिया। वृकासुर का पार्वती की अभिलाषा से शिव के मस्तक पर हाथ रखने के लिये दौड़ना। पुनः भगवान् द्वारा संकटापन्न शङ्कर की रक्षा एवं वृकासुर का भस्म होना। एक समय त्रिपुरासुर को मारने के लिये मेरे दिये त्रिशूल एवं कवच को छोड़ रुद्र युद्ध में गये। दोनों का एक वर्षपर्यन्त युद्ध हुआ। पहले पृथ्वी में युद्ध कर एक मास पर्यन्त आकाश में युद्ध हुआ। राक्षस ने अपने बाणों से शङ्कर के रथ एवं बाणों को तोड़ दिया। शङ्कर ने दानव पर मुष्टिप्रहार किया जिससे उसको एक क्षण मूर्छा हुई। चेतना प्राप्त कर दैत्य ने सोये हुए शङ्कर को रथ सहित नीचे गिरा दिया। देवताओं में हाहाकर मच गया। शङ्कर ने भी शीघ्र ही मेरी स्तुति की। तब मैंने विप्ररूप धारण कर सोये हुए शङ्कर को सीढ़ों से उठाया उन्हें अपना कवच और त्रिशूल दिया। पार्वती के दर्पभङ्ग का वर्णन आगे किया जायगा। शङ्कर की प्रशंसा का वर्णन। शङ्कर भी पञ्चवक्त्रों से मेरा ही ध्यान करते हैं।

शिवनिर्माल्य के शाप का वर्णन - एक समय वैकुण्ठ में भोजन करते हुए विष्णु की सनत्कुमार ने गुप्त स्तोत्रों से स्तुति की। प्रसन्न हुए भगवान् ने सनत्कुमार को भुक्त अन्न देकर कहा कुछ अपने बन्धुओं के लिये रखना। उसे सनत्कुमार ने सिद्धाश्रम में शङ्कर को दिया। उस अन्न को भक्षण करने से नाचते-गाते हुए शङ्कर मूर्छित हुए इसी बीच पार्वती का आगमन। पार्वती ने सनत्कुमार से शङ्कर की मोहावस्था का कारण पूछा। सनत्कुमार ने सब यथावत् वर्णन किया। पार्वती का शाप देने के लिये उन्नत होना एवं शङ्कर द्वारा स्तुति। पार्वती ने कहा मैं आपकी किङ्करी हूँ आपने नारायण का प्रसाद मुझे नहीं दिया विष्णु का नैवेद्य सबसे उत्तम होता है। जो विष्णु का नैवेद्य भक्षण करता है उसे साठ हजार बपे तक की हुई तपस्या का फल मिलता है। इसलिये हे महेश्वर ! आपने विष्णु के प्रसाद से मुझे वञ्चित रक्खा है उसका फल यह है कि—

अद्यप्रभृति ये लोका नैवेद्यं भुञ्जते तव । ते जन्मैकं सारमेया भविष्यन्त्येव भारते ॥

जो तुम्हारे निर्माल्य को ग्रहण करेंगे वे एक जन्म तक श्वान योनि को प्राप्त होंगे। पार्वती का रोदन करना। शङ्कर के कण्ठ पर रोती हुई पार्वती का दृष्टिपात उससे नीलकण्ठ हो गये। शङ्कर द्वारा पार्वती की स्तुति।

भगवान् श्रीकृष्ण का भगवती राधिका से कहना कि हे देवि ! तुमने जगद्गुरुशङ्कर का दर्पभङ्ग सुना अब मेरे द्वारा दुर्गा का दर्पभङ्ग सुनो। जगत् जननी भगवती का सम्पूर्ण देवताओं के तेज से प्रगट होना एवं समग्र दानवेन्द्रों को नष्ट कर देवकुल की रक्षा करना। तदनन्तर उनका प्रजापति दक्ष के घर

सतीरूप में जन्म लेना । देवताओं के कार्यसाधन के लिये पिनाकपाणि भगवान् शङ्कर द्वारा सती का पाणिग्रहण । दैवयोग से देवसभा में दक्ष का शिव के साथ मानसिक अभिवादन को लेकर मनमुटाव । दक्ष का यज्ञ करना जिसमें शङ्कर को छोड़ सबको निमन्त्रण भेजना । देवताओं का स्त्रियों सहित दक्षयज्ञ में आना । दक्षपुत्री सती का भगवान् शङ्कर को पिता के यज्ञ में चलने के लिये कहना । शंकर के निमन्त्रण न देने से मना करने पर भी सती का पिता के घर आना । शंकर के शाप से सती का दर्पभङ्ग होना । यज्ञ में गई हुई सती का पिता ने वचनमात्र से भी स्वागत नहीं किया । वहाँपर अपनी पति की निन्दा सुनकर सती ने देह त्याग दिया । सती का पार्वती रूप में हिमालय के घर जन्म । पार्वती को यह आकाशवाणी हुई कि शिव को कठोर तप करनेसे ही प्राप्त करोगी । पार्वती ने यौवन से गर्वित हो संसार में मेरे से अधिक सुन्दर कौन है शंकरजी मुझे बिना तपस्या के ही ग्रहण करेंगे, ऐसा विचार कर तप नहीं किया । दूत का हिमालय के पास आना । दूत ने कहा कि अक्षयवट के पास शंकरजी विराजमान हैं उनका पूजन करो । शंकर के स्वरूप को देख हिमालय का स्तुति करना ।

३६

मेनकया पूर्वशिवरूपदर्शनम्
शिवसमीपे पार्वतीगमनम्

६८८

७८६

हिमालय द्वारा शंकर की पूजा । मेनका का स्त्रियों के साथ महादेवजी के दर्शनार्थ आगमन । शिव के रूप को देख मेनका का प्रसन्न होना । कामातुर स्त्रियों का मोहित होना । स्त्रियों का शंकर के विषय में नाना तरह की वार्ता करना । पार्वती का शंकर के पास जाना । पार्वती ने शंकर को सात प्रदक्षिणा की तब शङ्कर ने कहा हे सुन्दरि ! तुमको सुन्दर पति की प्राप्ति होगी तथा नारायण के समान गुणवाला पुत्र होगा और तुम्हारी संसार में पूजा होगी एवं

हे सुन्दरि । तीर्थ, कान्त, अभीष्टदेव, गुरु, मन्त्र और औषध में जैसी भावना होती है, वैसा ही फल प्राप्त होता है । शङ्कर का ध्यानमग्न होना । इन्द्र की आज्ञा से शंकर के तपोभङ्ग के लिये कामदेव का आना । कामदेव का शंकर पर बाण छोड़ना । क्रोधित महादेव के कपालस्थित तीसरे नेत्र से अग्नि का निकलना । देवों द्वारा महादेव की स्तुति । क्रोधाग्नि से कामदेव का भस्म होना एवं रति का विलाप । रतिविलाप को देख पार्वती को मूर्छा तथा पार्वती का दर्प भङ्ग । देवों द्वारा रति को आश्लासन । पार्वती की कृपा से रति की तपस्या । शङ्कर की कामदेव की प्राप्ति ।

४०	राधिकाकृष्णसंवादवर्णनम्	७६१
	पार्वतीसमीपे शिवस्य गमनम्	७६३
	पार्वतीप्रति शिववाक्यम्	७६५
	मेनकाशैलयोः शिवरूपदर्शनम्	७६७
	देवान् प्रति बृहस्पतेः प्रबोधवाक्यम्	७६९

राधा और श्रीकृष्ण के संवाद में राधा ने पूछा कि पार्वती ने क्या कठोर तप किया तथा किस प्रकार से रति ने कामदेव को जीवित किया ? साथ ही पार्वती और शिव के विवाह का वर्णन कीजिये । श्रीकृष्ण ने कहा कि माता-पिता के द्वारा रोकने पर भी पार्वती तप करने के लिये चली गई । एक वर्ष तक निराहार रहकर, ग्रीष्म ऋतु में चारों तरफ अग्नि जलाकर, वर्षा में श्मशान में योगासन लगाकर और शीतकाल में जल में खड़ी होकर वह मन्त्र जपने लगी । इतनी कठोर तपस्या करने पर भी शंकरजी प्रत्यक्ष नहीं हुए तब अग्निकुण्ड में प्रवेश करने को उद्यत हुई । तपस्या से क्रुश तथा अग्नि में गिरती हुई पार्वती का देखकर कृपा-सिन्धु शंकर बालरूप धारण कर उसके पास गये । बालरूप शंकर का पार्वती

के साथ वार्तालाप । शंकरजी का पार्वती से कहना कि हे भद्रे ! तुम कल्याणरूप शिव को पतिरूप में वरण करने की इच्छा रखती हो । जो तुम संहारकर्ता को पति बनाने की इच्छा रखती हो ऐसी कौन स्त्री है जो सबका संहार करनेवाले पति की इच्छा करे । हे सुन्दरि ! यदि तुम उस सर्वलोक भयंकर संहारकर्ता की इच्छा रखती हो तो वह तुम्हें मिलेगा । उस अभीष्टदेव को सेवन करने से तुम्हारी मोक्ष नहीं होगी । भगवान् हरि की स्मृति ही अमोघ एवं सम्पूर्ण मङ्गलों की देनेवाली है । अब तुम शीघ्र ही पिता के घर जाओ वहाँपर शंकरजी के वर्णन होंगे ऐसा कहकर शंकर का अन्तर्धान होना । पार्वती का पिता के घर जाना । एकदिन हिमालय का तप करने को जाना एवं प्राङ्गण में सुगन्धपूर्ण बैठी हुई मेनका और पार्वती के पास गाते हुए भिक्षुक का सहसा आगमन । भिक्षुक के गायन को सुनकर नगरके नरनारी, बालक और युवा सभी मोहित हो गये । पार्वती ने भी मूर्छित अवस्था में हृदय में शङ्कर को देख मन-ही-मन प्रणाम कर घर मांगा कि आप मेरे पतियोग्य हैं । फिर शंकर को हृदय में न देख पार्वती को चेतना प्राप्त हुई । मेनका द्वारा भिक्षुक को नानाविध आभरणों का दान । भिक्षुक ने कहा पार्वती के बिना आप से भिक्षा नहीं लेंगे । भिक्षुक के भिक्षा न लेने पर मेनका का तिरस्कार । हिमालय का आगमन । हिमालय को शंकरजी के नानाविध रूपों के दर्शन । भिक्षुक का अन्तर्धान । मेनका और हिमालय को ज्ञान प्राप्ति । देवताओं की परस्पर मन्त्रणा । पुनः बृहस्पति के साथ विचार । बृहस्पति द्वारा देवों को समझाना ।

४१	देवब्रह्मसंवादवर्णनम्	८००
	विप्ररूपेण शिवस्य हिमालयसमीपेगमनम्	८०१
	हिमालयवशिष्ट संवादवर्णनम्	८०३
	अनारण्यकन्यकोपाख्यानम्	८०७

देवताओं का ब्रह्माजी के साथ वार्तालाप । देवों ने कहा है ब्रह्मन् ! हिमालय रत्नों की खान है अगर अपनी पुत्री शंकरजी को देंगे तो हिमालय की भी मोक्ष हो जायगी तथा पृथ्वी भी रत्नगर्भा नहीं रहेगी । अतः आप हिमालय के पास जाकर शंकरजी की निन्दा करें । ब्रह्मा ने कहा है देवों ! मैं शंकर की निन्दा करने में समर्थ नहीं हूँ । शंकर को ही भेजिये वही अपनी निन्दा करेंगे । देवताओं का शंकर की स्तुति करना । स्तुति से प्रसन्न हो देवों को आश्वासन देकर विप्ररूपधारण कर शिवजी का हिमालय के घर जाना । पार्वती ने विप्ररूप शंकरजी को प्रणाम किया तथा विप्र ने आशीर्वाद दिया विप्र एवं हिमालय का वार्तालाप । विप्र ने कहा मैंने सुना है कि आप शंकरजी को अपनी लड़की देना चाहते हो परन्तु श्मशानवासी सर्प आभूषणवाले शंकरजी को न देकर हानियों में श्रेष्ठ नारायण पार्वती के योग्य है । इस विषय में पार्वती को छोड़ अन्य बान्धवों से मन्त्रणा करो । क्योंकि रोगी को औषध अच्छी नहीं लगती कुपथ्य रुचिकर होता है । विप्ररूप शंकरजी का अपने स्थान जाना । मेनका ने कहा हे शैलेन्द्र ! मैं शंकर को अपनी लड़की नहीं दूँगी, विप्रभक्षण करूँगी अथवा धन में जाऊँगी । इस प्रकार वातचीत करती हुई मेनका पृथ्वी पर सो गई । पश्चात् सप्तर्षि एवं अरुन्धती का आगमन । अरुन्धती का मेनका के साथ वार्तालाप तथा हिमालय का वशिष्ठ से । हिमालय ने कहा—शंकरजी के न कोई आश्रम है न बान्धव ऐसे अयोग्य घर के लिये कन्या देनेवाला पिता नरकगामी होता है । वशिष्ठ ने कहा—हे शैलेन्द्र ! लोक में तथा वेद में तीन तरह के वच्

असत्यमहितं पश्चात् साम्प्रतम् श्रुतिसुन्दरम् । सुबुद्धं शत्रुर्वदति न हितञ्च कदाचन ।
 आपातप्रीतिजनकं परिणामसुखावहम् । दयालुर्धर्मशीलश्च बोधयत्येव दान्धवम् ॥
 श्रुतिमात्रास्तु धातुल्यं सर्वकाले सुखावहम् । सत्यसारं हितकरं वचसां श्रेष्ठमीप्सितम् ॥
 शंकरजी सब तरह से योग्य हैं वही संसार के कर्ता, पालक एवं संहर्ता हैं ।
 हे शैल ! पार्वती पूर्वजन्म में दक्ष के घर में जनमी थी उस समय इसका नाम सती था
 अब वही मेना के गर्भ से उत्पन्न हुई है इसलिये पार्वती को शंकरजी के लिये प्रदान
 कीजिये । शंकरजी तो योगिराज हैं और विवाह करने को उत्सुक भी नहीं हैं ।
 परन्तु देवताओं की प्रार्थना से तथा ब्रह्माजी के कहने से विवाह स्वीकार किया
 है । अगर शंकर के साथ पार्वती का विवाह नहीं करोगे तो विवाह भावी बल से
 अवश्य शंकरजी के साथ होगा ही, क्योंकि शंकर ने द्विजरूप से पार्वती को वरदान
 दिया है । शंकरजी, नारायण तथा अन्य देवों को साथ ले तुमसे युद्ध कर पार्वती
 को ले जायेंगे । एक पुत्री के लिये सब सम्पत्ति नष्ट करवाना उचित नहीं ।
 देखो, अनारण्य ने अपनी लड़की को ब्राह्मण को दे विप्रशाप से मुक्त हो गया ।
 मनुवंश के मङ्गलारण्य नामक मनु तपस्वी एवं ज्ञानी हुआ । सन्तान न होने से
 वह पुष्कर में तप करने चला गया । पुनः शंकरजी की कृपा से अनारण्य नामक
 पुत्र की प्राप्ति हुई । उसके पद्मा नाम की पुत्री उत्पन्न हुई । एक समय महर्षि
 पिप्पलाद ने खियों में रत गन्धर्व को देखा । मुनि पुष्पभद्रा में स्नान करने जा रहे
 थे तब पद्मा नजर आई । मुनि ने पूछा यह किसकी कन्या है । मनुष्यों ने कहा
 यह अनारण्य की कन्या पद्मा है । मुनि अनारण्य की सभा में गये । राजा ने
 पूजा की तब मुनि ने कहा तुम अपनी कन्या मुझे दो । राजा मुनि के वचन
 सुनकर चुप हो गया तब मुनि बोले मुझे अपनी कन्या देदो नहीं तो मैं भस्म
 कर दूँगा । राजा ने अपनी रानी से सलाह कर अपनी पुत्री महर्षि को दे दी ।

वशिष्ठ ने कहा हे शैलराज ! अनारण्य कन्या मन, वचन और कर्म से मुनि की सेवा करने लगी। एक समय गङ्गा में स्नान करने के लिये जाती हुई पद्मा को नृपवेशधारी धर्म ने देखा और कहा हे सुन्दरि ! तुम जरातुर वृद्ध मुनि के पास शोभा नहीं देती हो। अतः इसको छोड़ सहस्र सुन्दरियों के पति और कामशास्त्र में पण्डित मुझे अङ्गीकार करो। इतना कह वह रथ से उतर पद्मा का हाथ पकड़ने के लिये तैयार हुआ तब पद्मा ने कहा—हे पापिष्ठ ! दूर जाओ यदि कामभाव से मुझे देखोगे तो भस्म हो जाओगे। पिप्पलाव मुनि को छोड़ स्त्रीजित एवं रतिलम्पट के पासकभी भी नहीं जाऊँगी क्योंकि—“स्त्रीजितस्पर्शमात्रेण सब पुण्यं प्रणश्यति”। तुमने जो माता को स्त्रीभाव से वचन कहा है अतः तुम्हारा नाश हो जायगा। सती का शाप सुनकर धर्मराज ने नृपरूप त्यागकर अपना रूप धारण किया और सती से प्रार्थना की। पद्मा ने कहा हे धर्मराज ! सती का शाप अन्यथा नहीं होगा परन्तु तुम्हारा क्षय त्रेतायुग में एक पद तथा द्वापर में दो पाद कलियुग में तृतीयपाद तथा शेष कलि में चतुर्थ पुनः सत्ययुग में पूर्ण हो जायगा। तुम्हारा रहने का स्थान, वैष्णव, यति, ब्रह्मचारी, पतिव्रता, बुद्धिमान्, वानप्रस्थ, भिक्षुक, धर्मशील राजा, एवं सद्बैश्यजाति में रहेगा। देवगुरु ब्राह्मणों की निन्दा करनेवालों में, सुरापान कलह स्थानों में, कन्या विक्रय करनेवालों में तथा पति की निन्दा करनेवाली स्त्रियों में तुम्हारा स्थान नहीं रहेगा। धर्मराज ने पद्मा को वरदान दिया कि तुम्हारा पति युवा हो तथा मार्कण्डेय से भी अधिक चिरजीवी हो और तुम दश पुत्रों की माता बनो यही आशीर्वाद है। इसलिये पार्वती को शङ्करजी के लिये दानकर कृतार्थ हो जाओ। यह पूर्वजन्म दश

असत्यमहितं पश्चात् साम्प्रतम् श्रुतिसुन्दरम् । सुबुद्धं शत्रुर्वदति न हितञ्च कदाचन ।
 आपातप्रीतिजनकं परिणामसुखावहम् । दयालुर्यर्मशीलञ्च बोधयत्येव बान्धवम् ॥
 श्रुतिमात्रात्सुधातुल्यं सर्वकाले सुखावहम् । सत्यसारं हितकरं वचसां श्रेष्ठमीप्सितम् ॥
 शंकरजी सब तरह से योग्य है वही संसार के कर्ता, पालक एवं संहर्ता हैं ।
 हे शैल ! पार्वती पूर्वजन्म मे दक्ष के घर मे जनमी थी उस समय इसका नाम सती था
 अब वही मेना के गर्भ से उत्पन्न हुई है इसलिये पार्वती को शंकरजी के लिये प्रदान
 कीजिये । शंकरजी तो योगिराज है और विवाह करने को उत्सुक भी नहीं है ।
 परन्तु देवताओं की प्रार्थना से तथा ब्रह्माजी के कहने से विवाह स्वीकार किया
 है । अगर शंकर के साथ पार्वती का विवाह नहीं करोगे तो विवाह भावी बल से
 अवश्य शंकरजी के साथ होगा ही, क्योंकि शंकर ने द्विजरूप से पार्वती को वरदान
 दिया है । शंकरजी, नारायण तथा अन्य देवा को साथ ले तुमसे युद्ध कर पार्वती
 को ले जायेंगे । एक पुत्री के लिये सब सम्पत्ति नष्ट करवाना उचित नहीं ।
 देखो, अनारण्य ने अपनी लड़की को ब्राह्मण को दे विप्रशाप से मुक्त हो गया ।
 मनुवंश के मङ्गलारण्य नामक मनु तपस्वी एवं ज्ञानी हुआ । सन्तान न होने से
 वह पुष्कर मे तप करने चला गया । पुन शंकरजी की कृपा से अनारण्य नामक
 पुत्र की प्राप्ति हुई । उसके पद्मा नाम की पुत्री उत्पन्न हुई । एक समय महर्षि
 पिप्पलाद ने स्त्रियों मे रत गन्धर्व को देखा । मुनि पुष्पभद्रा मे स्नान करने जा रहे
 थे तब पद्मा नजर आई । मुनि ने पूछा यह किसकी कन्या है । मनुष्यो ने कहा
 यह अनारण्य की कन्या पद्मा है । मुनि अनारण्य की सभा मे गये । राजा ने
 पूजा की तब मुनि ने कहा तुम अपनी कन्या मुझे दो । राजा मुनि के वचन
 सुनकर चुप हो गया तब मुनि बोले मुझे अपनी कन्या देवो नहीं तो मैं भस्म
 कर दूंगा । राजा ने अपनी रानी से सलाह कर अपनी पुत्री महर्षि को दे दी ।

वशिष्ठ ने कहा हे शैलराज ! अनारण्य कन्या मन, वचन और कर्म से मुनि की सेवा करने लगी। एक समय गङ्गा में स्नान करने के लिये जाती हुई पद्मा को नृपवेशधारी धर्म ने देखा और कहा हे सुन्दरि ! तुम जरातुर वृद्ध मुनि के पास शोभा नहीं देती हो। अतः इसको छोड़ सहस्र सुन्दरियों के पति और कामशास्त्र में पण्डित मुझे अङ्गीकार करो। इतना कह वह रथ से उतर पद्मा का हाथ पकड़ने के लिये तैयार हुआ तब पद्मा ने कहा—हे पापिष्ठ ! दूर जाओ यदि कामभाव से मुझे देखोगे तो भस्म हो जाओगे। पिप्पलाद मुनि को छोड़ स्त्रीजित एवं रतिलम्पद के पासकभी भी नहीं जाऊँगी क्योंकि—“स्त्रीजितस्पर्शमात्रेण सर्वं पुण्यं प्रणश्यति”। तुमने जो माता को स्त्रीभाव से वचन कहा है अतः तुम्हारा नाश हो जायगा। सती का शाप सुनकर धर्मराज ने नृपरूप त्यागकर अपना रूप धारण किया और सती से प्रार्थना की। पद्मा ने कहा हे धर्मराज ! सती का शाप अन्यथा नहीं होगा परन्तु तुम्हारा क्षय त्रेतायुग में एक पद तथा द्वापर में दो पाद कलियुग में तृतीयपाद तथा शेष कलि में चतुर्थ पुनः सत्ययुग में पूर्ण हो जायगा। तुम्हारा रहने का स्थान, वैष्णव, यति, ब्रह्मचारी, पतिव्रता, बुद्धिमान्, वानप्रस्थ, भिक्षुक, धर्मशील राजा, एवं सद्बैश्यजाति में रहेगा। देवगुरु ब्राह्मणों की निन्दा करनेवालों में, सुरापान कलह स्थानों में, कन्या विक्रय करनेवालों में तथा पति की निन्दा करनेवाली स्त्रियों में तुम्हारा स्थान नहीं रहेगा। धर्मराज ने पद्मा को वरदान दिया कि तुम्हारा पति युवा हो तथा मार्कण्डेय से भी अधिक चिरजीवी हो और तुम दश पुत्रों की माता बनो यही आशीर्वाद है। इसलिये पार्वती को शङ्करजी के लिये दानकर कृतार्थ हो जाओ। यह पूर्वजन्म दश

पुत्री सती थी तथा कलह के कारण योगाम्नि से गङ्गा तट पर शरीर त्याग किया था । सती का देहत्याग सुनकर शंकर का देवी-शरीर के पास जाना ।

४३ . सतीदेहत्यागानन्तरं शङ्करविलापवर्णनम् ८१४

शङ्करं प्रति विष्णोः प्रबोधवाक्यम् ८१७

शङ्करकृतप्रकृतिस्तोत्रम् ८१६

जाह्नवी के तटपर सती के शरीर को देख शंकरजी मूर्छित हो गये । स्त्री का विरह बलवान् है जो योगिराजों के गुरु शंकर को भी बाधा करता है । शंकरजी ने विलाप करते हुए कहा—हे सति ! उठो मैं तुम्हारा स्वामी हूँ तुम्हारे बिना मैं शयतुल्य हूँ ।

शक्तोऽहञ्च त्वया साद्धं सर्वशक्तिस्वरूपया । शक्तिहीनः शवशमो निश्चेष्टः सर्वकर्मसु सती के विरह में उद्धिग्न हुए महादेव सती को वक्षःस्थल पर रख पागल की तरह चलने करने लगे और बारम्बार हे सति ! हे साध्वि !! कहकर नेत्रों से आंसू गिराने लगे । जिनसे दो योजन में फैला हुआ एक तालाब हो गया वहांपर स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता तथा सौ जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं । सती के अङ्गों से जगह-जगह सिद्धपीठ हो गये । महादेव ने अवशिष्ट अङ्गों का संस्कार कर अस्थिमाला बना कण्ठभूषण बना लिया । शंकर सती के भस्म को शरीर में धारण कर हे सति ! हे प्राणेश्वरि !! कह फिर मूर्छित हो गये । पश्चात् पार्षदों सहित नारायण तथा ब्रह्मा, शेष, धर्म और देवों का शंकरजी के पास आना । भगवान् नारायण ने शंकर को चेतना देकर समझाया । नारायण ने कहा कि कण्व शास्त्रोक्त दिव्यस्तोत्र से जगन्माता की स्तुति करो उससे तुम्हारा स्त्री विरह दूर हो जायगा । महादेव का प्रकृति की स्तुति करना । स्तुति के बाद सौ भुजावाली, आकाश में रत्नसार रथ में बैठी हुई देवी को देख पुनः स्तुति

करने लगे। प्रकृति ने प्रसन्न हो कहा—हे महादेव। आप मेरे प्राणों से प्रिय हो और जन्म-जन्म मे मेरे पतिदेव हो। मैं पर्वराज हिमालय के घर जन्म ले आपकी पत्नी बनूंगी। आप विरह ज्वर को छोड़ दीजिये। इतना कहकर देवी का अन्तर्धान होना। देवों का अपने-अपने स्थान पर जाना। इस शिवकृत स्तोत्र का पाठ करने-वाले को जन्मजन्मान्तर मे भी स्त्रीविरह नहीं होता है तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

४४ पार्वतीपरिणयवर्णनम् ८२०

हिमालयकृतशिवस्तोत्रम् ८२३

वशिष्ठजी का वचन सुन मेना चकित हो गईं एवं पार्वतीजी हँसी। अरुन्धती ने मेना को प्रयोजित कर शोक दूर किया। हिमालय ने वशिष्ठ की आज्ञा से कई स्थानों पर पत्र भेज शिवजी के पास मङ्गल पत्रिका भेजी। हिमालय ने मङ्गल दिन देव वैवाहिक कार्य आरम्भ कर दिया। भगवान् नारायण का पार्षदो सहित हिमालय के यहाँ जाना। ब्रह्माजी का देवताओं के साथ आगमन। शकर को देखने के लिये नगरवासी स्त्रियों का आगमन। शकर के स्वरूप को देख कई स्त्रियाँ मोहित हो गईं और कई एक कहने लगीं कि ऐसा वर आज तक नहीं देखा पार्वती भाग्यवती है। हिमालय ने वरध, चन्दन एवं आभूषणों से विधानपूर्वक वेदमन्त्रों से शकरजी को पार्वती के अर्पण कर दिया। दहेज मे दास-दासी, रत्न एवं वस्त्र दिये तदनन्तर हिमालय ने शकरजी की स्तुति की। हिमालयकृत स्तोत्र का पठन करने से वाञ्छित फल की प्राप्ति होती है।

पार्वतीपरिणये नानादेवस्त्रीणामागमनम्	८२४
देवस्त्रीणां शङ्करेण सह हास्यालापः	८२७
शङ्करविवाहवर्णनम्	८२६

शंकरजी का पार्वती के साथ वेदविधान से विवाह होने पर ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर मङ्गलकार्य कर हिमालय के अन्तर्वास में जाना, वहाँ सपूर्ण देवस्त्रियाँ सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, गङ्गा, रति, अदिति, राची, लोपागुद्रा, अरुन्धती, अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, वसुन्धरा, शतरूपा, संज्ञा और देवकन्या, नागकन्या, मुनिकन्या आदि शंकरजी से हास्यालाप करने लगीं। उनके हास्यों को सुन शंकरजी बोले हे देवियों। तुम सब जगत् की माताएँ हो पुत्र के साथ चपलता का व्यवहार नहीं करना चाहिये। तब देवियाँ चित्रलिखित पुस्तकियों की तरह चुप हो गईं। प्रातःकाल नानावाद्यों के साथ सब चलने की तैयारी करने लगे। तब धर्मराज ने महादेव से कहा अब यात्रा का शुभमुहूर्त है, सिद्ध कीजिये। यात्रा के समय मेना ने महादेवजी से प्रार्थना की कि मेरी पुत्री के दोषों को क्षमा कर उसका पालन करना। मेना का पार्वती से मिलन। शंकर पार्वती का कैलाश गमन। वहाँ मङ्गल साज सजाकर वायुपत्नी, कुबेरपत्नी, शुक्र की स्त्री तारा आदि असंख्य स्त्रियों ने उनको बासस्थान पर पहुँचा दिया। शिवजी का पार्वती को पूर्ववृत्तान्त का स्मरण करवाना। देवों का अपने-अपने स्थानों में गमन। नारायण एवं ब्रह्माजी भी अपने स्थान को चले गये। मेनका का पार्वती को लाने के लिये मैनाक को भेजना। पार्वती का आगमन तथा माता से मिलन पुनः शंकर पार्वती का हिमालय पर वास।

राधा ने श्रीकृष्ण से पूछा कि रति ने चिरकाल से मृत पति को शंकर से पुनः प्राप्त कर क्या किया ? क्योंकि स्त्रियों को पति का वियोग मरण से भी दुष्कर है और फिर मिलना तो परम दुर्लभ सुख है । बहुत दिन से सती के वियोग से व्याकुल शंकर ने पार्वती को प्राप्त कर क्या किया ? क्योंकि स्त्री का विरह पुरुषों को अत्यन्त दुष्कर है तथा फिर मिलना प्राणदान से भी अधिक सुखकर है । श्रीकृष्ण ने कहा हे राधिके ! रति ने मृत पति को प्राप्त कर अपना तथा पति का सुन्दर वेष बनाकर रत्नयुक्त विमान में बैठकर नाना स्थानों में विहार किया । शंकरजी भी शक्ति को प्राप्त कर रत्नयान से नाना स्थानों में घूमते हुए क्रीड़ा करने लगे । शिवशक्ति का क्रीड़ा विहार देखकर पृथ्वी भाराक्रान्त हो गई उस भार से शेष तथा शेष के भार से कच्छप तथा उसके भार से सम्पूर्ण वायु और वायु से भयभीत देवताओं ने नारायण से कहा । नारायण ने ब्रह्मा से कहा कि हे विधे ! श्रीशङ्करजी का संभोग कोई भी भेद नहीं कर सकता वह एक हजार वर्ष बाद स्व विराम को प्राप्त होगा । जो कोई स्त्री-पुरुष का रति विच्छेद करता है उसका जन्मजन्मान्तर तक स्त्री पुरुष में भेद हो जाता है अन्त में कालसूत्र नरक में जाता है । उदाहरण जैसे—रम्भायुक्त इन्द्र का भेद दुर्वासा ने किया तो उसको स्त्रीविच्छेद हुआ । अन्त में शंकर की कृपा से दिव्य हजार वर्ष के बाद दूसरी पत्नी मिली । रोहिणी सहित चन्द्रमा का रति वियोग महर्षि गौतम ने किया तो उसे स्त्रीवियोग हुआ । पुनः शिवजी के कृपा से दिव्य हजार वर्ष बाद अहल्या को प्राप्त किया । इसी तरह बहुतसे उदाहरण पाये जाते हैं । अजामिल जो घृपली के साथ रत था उसको किसी भी देवता ने विच्छेद नहीं किया । अन्त में मेरे नामोच्चारण

से मुक्ति मिली। यह मङ्गल वर्णन जो सुनता है उसको कभी भी पुत्र, स्त्री एवं बन्धुविच्छेद नहीं होता।

४७

इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनम्

८३४

श्रीकृष्ण ने कहा हे राधिके ! इन्द्र के दर्पभङ्ग को सुनो। इन्द्र सब देवताओं का मालिक वन तपस्या से सम्पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त कर सम्पत्ति से मूढ़ हुआ ब्रह्मस्वरूप को नहीं मानता था। प्रकृति ने उसे शाप दिया। उसके शाप से हतबुद्धि इन्द्र ने सभा में आये हुए अपने गुरु को प्रणाम नहीं किया। गुरुजी रुष्ट हो तप करने चले गये। इन्द्र ने गुरुपत्नी से प्रार्थना की तब तारा ने कहा हे इन्द्र ! सुदिन दुर्दिन, सुख दुःख के कारण है। इन्द्र का गङ्गातट पर गमन वहाँ पर अहल्या का दर्शन। कामातुर इन्द्र का गौतमपत्नी के साथ व्यभिचार करना। इन्द्र को गौतम का शाप कि तुम वेद को जानकर योनिलुब्ध हो गये हो अतः तुमको सहस्र योनिया होंगी पुनः सूर्य की आराधना करने से योनि नेत्र हो जायेंगे और मेरी प्राणेश्वरी को तुमने दूषित किया है अतः मेरे शाप से तथा गुरु के क्रोध से भ्रष्टाश्री होजाओगे। अहल्या को शाप दिया कि तुम पत्थरकी होजाओगी पुनः श्रीराम के चरणस्पर्श से शुद्ध वनांगी। प्रकृतिदेवी की अवहेलना से इन्द्र को वृत्रासुर के मारने से ब्रह्महत्या की प्राप्ति। इन्द्र का ब्रह्महत्या से भयभीतहो मानस सरोवर में कमलनाल में प्रवेश होना। नहुष को इन्द्रपद की प्राप्ति। नहुष का इन्द्राणी की याचना करना दुःखित इन्द्राणी का तारा के पास गमन। तारा के कहने से गुरु का इन्द्र को लाने के लिये जाना। इन्द्र की बृहस्पति से प्रार्थना। इन्द्र को संसारविजयनामक कवच का दान। अमरावती का निर्माणकथन। बालकरूप भगवान् का इन्द्र के पास गमन। बालक और इन्द्र का संवाद। बालक द्वारा इन्द्र को आध्यात्मिक उपदेश। इसी बीच अतिवृद्ध योगिराज का आगमन। इन्द्र ने ब्राह्मण को देण्ड प्रणाम किया और पूजन की। बालकरूप

भगवान् ने विप्र से पूछा हे ब्राह्मण ! आपका क्या नाम है ? तथा कहीं से आये हैं ? आपके मस्तरु पर चटाई क्यों है ? मुनि ने कहा मैंने अल्पायु में गृहस्थ स्वीकार नहीं किया । मेरा लोमश नाम है वपांदि की शान्ति के लिये यह चटाई है । मेरे शरीर में जितने रोम हैं उतनी ही मेरी आयु है । एक लोम गिरने से एक इन्द्र की आयु शेष होती है । ब्रह्मा के दूसरे प्रहर में मेरी मृत्यु है । असंख्य ब्रह्म चले गये हैं और चलेजायेंगे मैं भगवान् का स्मरण करता हूँ मुझे पुत्र कलत्रादि की इच्छा नहीं । इसके बाद शिशुरूपी भगवान् का अन्तधान होना । इन्द्र ने विश्वकर्मा को रत्न दे दिया किया पुनः अपने पुत्र को राज्य देकर भगवान् की शरण जाने लगे तब इन्द्राणी ने गुरु बृहस्पति से कहकर इन्द्र को नीति पाठ पढ़वाया और इन्द्र फिर राज्य करने लगे ।

४८

रवेर्दर्पभङ्गवर्णनम्

८४३

राधिका का भगवान् श्रीकृष्ण से रवि के दर्पभंग विषयक प्रश्न । भगवान् श्रीकृष्ण का उत्तर कि एक दिन सूर्य भगवान् उदय होकर अस्त हुए उसी समय शंकरजी के घर से महासम्पन्न मदोन्मत्त माली और मुमाली नामक दैत्येन्द्र रात्रि को बिन करने के लिये तैयार हुए । उसके प्रभाव से रात्रि दिन में बदल गई । जिससे सूर्य ने रुष्ट हो अपनी शूल से उन दोनों दैत्यों को मारा । सूर्य की शूल के प्रहार से वे मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर गये । तब भगवान् शंकर ने अपने भक्तों को दुःखित देख उनको जीवदान दिया । शमपर भगवान् शंकरजी क्रोधित हो सूर्य को मारने के लिये दौड़े । तब भागा हुआ सूर्य प्रजाजी के शरण में गया । प्रजाजी ने भगवान् शंकरजी को रुष्ट देखकर वेदोक्त स्तोत्र से स्तुति की जिससे प्रसन्न हो शंकरजी ने सूर्य को आशीर्वाद देकर स्वस्थान को प्रस्थान किया ।

एक समय अग्निदेव शतताल प्रमाणवाली भयानक शिखा कर भृगुजी के शाप से क्रोधित होकर अपनेको तेजस्वी मान त्रैलोक्य को भस्म करने को उद्यत हुए। भगवान् ने अग्नि की सम्पूर्ण वाहिका शक्ति का संहार कर लिया पुनः शिशु रूप हो अग्नि से बोले—हे भगवन् ! आप क्यों क्रोधित हो इसका कारण कहो ? निरर्थक त्रिलोकी को क्यों भस्म करते हो। भृगु ने आपको शाप दिया है तो भृगु का ही व्रमन करिये। एक के अपराध से सब का भस्म करना उचित नहीं। इस संसार का कर्ता ब्रह्मा तथा पालक विष्णु एवं संहारकर्ता शंकरजी हैं। इतना कहकर ब्राह्मण बटुक शुष्क हन्धन ले अग्नि को जलाने के लिये कहा किन्तु अग्निदेव उस शुष्क पत्र एवं शिशु के बाल को भी जला न सके एवं लज्जायुक्त हो शिशु के आगे चुपचाप खड़े हो गये। इस तरह अग्नि का दर्पभङ्ग कर भगवान् का अन्तर्धान होना।

दुर्वासा के दर्पभङ्ग का वर्णन—एक समय अम्बरीष राजा एकादशी का व्रत कर एकादशी को पारण करनेको तैयार थे। उस समय दुर्वासा आ पहुँचे उन्होंने कहा मैं भूखा हूँ मुझे भोजन दो। राजाने उत्तम अन्न भोजन के रूपमें दिया ऋषि। केशयुक्त पायस को देख राजा को शाप देने को उद्यत हुए और जटा से सप्तताल प्रमाण-वाला पुरुष निकला वह राजा को क्रोध से मारने के लिये चला। राजाने भगवान् का स्मरण किया। स्मरण करते ही भगवान् ने चक्रवर्त्या पुरुष को भेजा और वह ऋषि का पीछा करने लगा। ऋषि सब लोकों में घूमता हुआ ब्रह्मलोक, कैलाश, एवं वैकुण्ठ में गये वहाँ नारायण ने अभय दान देकर कहा कि राजा के पास जाओ भगवान् की आज्ञा से राजा के पास जाकर भोजन किया एवं राजा को

आशीर्वाद दिया तब राजा ने पारण किया । श्रीकृष्ण ने कहा हे राधिके ! मेरा भक्त प्रलय में भी नष्ट नहीं होता । सम्पूर्ण देव मेरे प्राण हैं और भक्तगण मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं ।

५१

धन्वन्तरेर्दर्पभङ्गवर्णनम्

८४७

नारायणांश भगवान् धन्वन्तरि की उत्पत्ति समुद्र से अमृत मथन करते समय बताई गई है । एक समय धन्वन्तरि शिष्यों सहित कैलाश पर्वत पर आरहे थे मार्ग में उन्होंने भयानक तक्षक को भक्षण करने के लिये आते हुए देखा । धन्वन्तरि के शिष्य ने उसे निर्घिप कर उसकी मणि निकाल ली । क्रोधित वासुकि द्वारा सम्पूर्ण नागों को धन्वन्तरि के पास भोजना । नागों के श्वास से धन्वन्तरि के सम्पूर्ण शिष्य मृतप्राय हो गये तब धन्वन्तरि ने अमृत वर्षा कर उनको जिलाया तथा सर्पों को निश्चेष्ट बना दिया । वासुकि ने अपनी बहिन मनसा का स्मरण किया और कहा कि नागों की रक्षा करो इससे संसार में तुम्हारी पूजा होगी । मनसा ने कहा हे नागेन्द्र ! शुभाशुभ कार्य होगा वह भाग्याधीन है किन्तु मैं यथोचित कार्य करूँगी । इतना कहकर मनसा का धन्वन्तरि के पास जाना । धन्वन्तरि एवं मनसा का परस्पर युद्ध । जब धन्वन्तरि को मनसा ने नागपाश से बांध दिया तब धन्वन्तरि ने गरुड़ का स्मरण किया । गरुड़ ने नागास्र को नष्ट कर दिया । पुनः मनसा ने मन्त्रों से पवित्र भस्ममुष्टि का प्रयोग किया । उसको भी विफल देख शिव से दी हुई अमोघ त्रिशूल का प्रयोग किया तब ब्रह्मा एवं शम्भु का आगमन । ब्रह्मा द्वारा धन्वन्तरि को समझाना कि मनसा के साथ युद्ध उचित नहीं है यह त्रिलोकी को भस्म कर सकती है इसलिये मनसा का पूजन करो । धन्वन्तरि द्वारा मनसा की पूजा एवं स्तुति । देवी द्वारा धन्वन्तरि को वरदान । इस स्तोत्र का पठन करने से नागों से भय नहीं होता है ।

श्रीकृष्ण ने कहा हे राधिके ! बड़ों एवं छोटों को दर्पभङ्ग मैंने तुमसे कहा अब न्वाचन मैं जाओ मैं भी विरहव्याकुल गोपियों को देखूँगा । कृष्ण का वचन सुन राधा ने कहा मेरे को भी ले चलो मैं जाने में समर्थ नहीं हूँ । तब कृष्ण बोले मेरे ऊपर चढ़ो इतना कह कृष्ण अन्तर्धान हो गये । कृष्ण विरह में राधा का विलाप । चन्दन वन में कृष्ण का राधा से मिलन । अन्य गोपियों को कृष्ण का दर्शन । राधा माधव की रासक्रीड़ा का वर्णन । नारद ने नारायण से पूछा कि पहले राधा शब्द का उच्चारण कर पीछे कृष्ण शब्द का उच्चारण करते हैं इसका कारण क्या है ? तब नारायण बोले इसके तीन कारण हैं प्रकृति जगत् की माता है तथा पुरुष संसार का पिता है । त्रिलोकी में पिता से सौगुनी माता को बलवती कहा है । राधाकृष्ण एवं गौरीशङ्कर शब्द ही वेद में सुने गये हैं, कृष्णराधा और शिवगौरी नहीं । सामवेद कौथुम में “प्रसीद रोहिणीकान्त संज्ञया सह भास्कर प्रसीद कमलाकान्त” ऐसे शब्द मिलते हैं । पहले पुरुष शब्द का उच्चारण कर पीछे प्रकृति शब्द का उच्चारण करनेवाला मातृपाती होता है ।

राशेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण यमुनाजल में स्नान कर गोपाङ्गनाओं के साथ जलक्रीड़ा कर राधा के साथ भाण्डीर वन में गये । विरह व्याकुल हुई गोपाङ्गना अपने-अपने घर को गईं । भाण्डीरवन में क्रीड़ा करने के बाद वासन्तीवन, चन्दनवन, चम्पककानन इत्यादि स्थानों में क्रीड़ा करते हुए जब राधा को निद्रा आ गई तब श्रीकृष्ण स्वयं उनके मुख के पसीने पोंछ शृंगार करने लगे । पुनः नाना गोपियों का आगमन श्रीकृष्ण की रासक्रीड़ा का वर्णन ।

नारद ने पूछा कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र मथुरा क्यों गये और भगवान् के बिना नन्दाविक गोप तथा प्राणेश्वरी राधा ने किस तरह समय बिताया ? श्रीकृष्ण ने मथुरा में जाकर कौन-कौन काम किये ? नारायण ने कहा—कंस ने धनुर्मेध यज्ञ किया उसमें अक्रूर द्वारा श्रीकृष्ण को बुलाया। वहाँपर कृष्ण ने रजक, चाणूर, मुष्टिक, गज और कंस को मारकर माता पिता को बन्धन से छुड़या कर कौतुकपूर्वक कुब्जा के साथ शृङ्गार किया। मालाकार का उद्धार तथा उद्धव द्वारा गोपियों को आश्वासन। सान्दीपनि गुरु से विद्याग्रहण। पवनेश्वर तथा जरासन्ध को मारना एवं उग्रसेन को राज्य प्रदान। द्वारकापुरी का निर्माण। रुक्मिणी का हरण। कालिन्दी, लक्ष्मणा, सत्या, जाम्बवती, मित्रविन्दा तथा नामजिती का कृष्ण के साथ विवाह। भौमासुर को मारकर सोलह हजार स्त्रियों के साथ विवाह। इन्द्र को जीतकर कल्पवृक्ष का लाना। शङ्करजी को जीतकर वाणासुर की भुजाओं का कृन्तन। तीर्थयात्रा प्रसङ्ग से वसुदेव का दर्शन। सुदामा की शाप मुक्ति के बाद राधा का मिलन। पुनः चौदह वर्ष तक राधा के साथ रास क्रीडा। पुनः पृथ्वी का भार हरण तथा श्रीकृष्ण का स्वधामगमन। यशोदा, नन्द, धृपमानु तथा राधामाता कलावती का सामीप्यमोक्ष।

नारायण बोले भगवान् कृष्णचन्द्र सर्वान्तर्यामी हैं, दुराराध्य हैं तथा सब सुख देनेवाले हैं। उनका चरित्र अपार है, जिनके भय से वायु चलता है, कूर्म शेष को धारण करते हैं, शेषजी इस पृथ्वी को धारण करते हैं। जिन महाविष्णु ने ब्रह्मा, शेष, शिव, धर्म, यम, साम्प्र, चन्द्र, सूर्य, गरुड़, अग्नि, गुरु, दुर्वासा, जय, विजय, देव, दानव, नारद, काम, इन्द्र, लक्ष्मण, अर्जुन, वाणासुर, भृगु, सुमेरु,

समुद्र, वायु, वरुण, सरस्वती, दुर्गा पद्मा, पृथ्वी, सावित्री, गङ्गा और मनसाक दर्प-भङ्ग कर प्राणेश्वरी राधा का भी दर्पभङ्ग किया तो अन्य व्यक्तियों का तो कहना ही क्या । सबका दर्पभङ्ग कर सब पर कृपा भी उन्होंने की । उनकी स्तुति करने को शंकर, ब्रह्मा, शेष, महाविराट् तथा सरस्वती भी समर्थ नहीं हो सकती एवं वेद भी जिनकी महिमा का गुणगान कर पार नहीं पासकते ।

५६	महाविष्णोरहंकारभङ्गवर्णनम्	८६१
	देवदानवादीनां दर्पभङ्गवर्णनम्	८६३
	लक्ष्मीस्तोत्रम्	८६५

महाविष्णु के दर्पभङ्ग का वर्णन । महाविष्णु को अहंकार हुआ कि मेरे रोमों में सम्पूर्ण विश्व है तथा मैं सब का मालिक हूँ । तब श्रीकृष्ण ने संहार औरव का रूप धारण कर सम्पूर्ण शरीर को प्रस लिया केवल शिर अवशेष रहा । तब श्रीकृष्ण ने उस पर कृपा की । ब्रह्मा को अहंकार हुआ कि मैं त्रिलोकी का कर्ता, धर्ता एवं हर्ता हूँ । तब श्रीकृष्ण ने गोलोक में पञ्चवक्त्र, पद्मवक्त्र एवं सौ मुखवाले ब्रह्मा को दिखलाया । फिर समय पर मोहिनी द्वारा अपूज्य बना दिया । स्वर्ग्या सरस्वती को दिखाने का कामी बनाया । पुनः शङ्कर से दर्पभङ्ग करवाया तथा मंसार में पूज्य बनाया । विष्णु को गर्व हुआ कि मैं जगन् का पालक हूँ । उसे कृष्ण ने रामजन्म में आत्मविसृति करवाई । हनुमन्नाटक में आता है—“के यूयं वदनाथ नाथ किमिदमित्यादि” । शेषजी को गर्व हुआ कि मैं पृथ्वी को धारण करनेवाला हूँ । एक समय नागों ने गरुड़ की पूजा की । अनन्त ने गर्व के यशीभूत हो नहीं की तब गरुड़ ने अनन्त को जीत लिया । तब श्रीकृष्ण ने उसकी मुक्ति करवाई । मदाशिव ने अपने दर्प के कारण विवाह नहीं किया तब श्रीकृष्ण ने मोह करवाकर मती के साथ विवाह करवाया । फिर मती का देह त्याग उसके

विरह में शंकर का नाना स्थानों में भ्रमण पुनः पार्वती के साथ विवाह । त्रिपुरासुर को मारकर त्रिपुरारि बन गये । वृकासुर को वरदान कि जिसके शिर पर तुम हाथ रखोगे वही भस्म हो जायगा । तब उस दैत्य ने शंकरजी के शिरपर ही हाथ रखना चाहा । शंकरजी दौड़ने लगे । भगवान्-श्रीकृष्ण ने बालक का रूप धारण कर उनको बचाया कैदार कन्या द्वारा धर्मराज को शाप जिससे धर्म अत्यन्त कुरा हो गये । शापान्त में त्रेतायुग में त्रिपाद तथा द्वापर में द्विपाद और कलि में एक पाद एवं कलि के अन्त में नष्ट होनेपर पुनः सत्ययुग में पूर्ण पाद की प्राप्ति कही । माण्डव्य के शाप से यमराज को शूद्र योनि की प्राप्ति । साम्ब को विमाता के शाप से गलितकुष्ठ की प्राप्ति । चन्द्रमा ने दर्प के वशीभूत हो तारा का अपहरण किया तब चन्द्रमा यक्ष्मा का रोगी हो गया । सूर्य का दर्पभङ्ग शङ्कर से, वह्नि का भृगुजी से, गुरु का अपनी स्त्री के हरण से, दुर्वासा का अम्बरीष से, जय विजय का ब्रह्म शाप से, देवों का दानवों से एवं दानवों का देवों से, नारदजी का ब्रह्माजी से, काम देव का शङ्कर से, लक्ष्मण का रावण प्रेरित शङ्कर की त्रिशूल से, स्वयं विष्णु का ब्रह्मशाप से, कार्तवीर्यार्जुन का परशुराम से विप्रपुत्र के मरण में एवं कृष्ण का स्त्रियों के हरण समय और युद्ध में कर्ण से पार्थ का दर्पभङ्ग किया गया । पाणासुर का उपाहरण में, भृगुजीका दक्ष यज्ञ के समय, परशुराम का रामविवाह के समय, सुमेरु का वायु द्वारा शृङ्ग भग्न होने से, समुद्रों का अगस्त्यजी के पान करने से, और कलह से गङ्गा एवं सरस्वती का दर्पभङ्ग हुआ । दर्पयुक्त पार्वती का शंकर द्वारा त्याग पुनः कामदेव का भस्म एवं पार्वती का दर्पभङ्ग । दर्पयुक्त महालक्ष्मी को एक समय वैकुण्ठ जाते समय द्वारपालों ने रोक दिया । अपने तिरस्कार को देस अपमानित हुई लक्ष्मी अपने शरीर को त्याग करने को तैयार हुई तब ब्रह्मादि देवताओं द्वारा लक्ष्मी की स्तुति । यह लक्ष्मी स्तोत्र सम्पूर्ण मङ्गल कामनाओं का देनेवाला है ।

देवताओं का स्तोत्र सुन लक्ष्मी ने कहा मैं शरीर को क्रोध एवं वैराग्य के कारण नहीं छोड़ती हूँ, मैं इसलिये छोड़ती हूँ कि जहा लृण और पहाड़ बराबर है जो भ्रूभङ्ग मात्र से एक लाख लक्ष्मी की रचना कर सकते हैं सेवक और स्त्री में जहाँ समान व्यवहार किया जाता है उनकी सेवा करने से क्या फल है ? जिस स्त्री की पति में भक्ति अथवा प्रेम नहीं है वह अशुचि, धर्महीन एवं सब कार्यों में वर्जित है। स्त्री के लिये सबसे बढ़कर पति ही एकमात्र देव है। जो स्त्री अपने पति की निन्दा करती है अथवा द्वेष रखती है वह कुम्भीपाक नरक में चौदह इन्द्र के समय बीतने तक रहती है। पति भक्ति से जो रहित है उसका किया हुआ सब धर्म भस्म हो जाता है।

या स्त्री सर्वपरं द्वेष्टि पतिं विष्णुसमं गुरुम् । कुम्भीपाके पचति सा यावदिन्द्राश्चतुर्वशं । तं चानशानं दानं सत्यं पुण्यं तपश्चिरम् । पतिभक्तिविहीनाया भस्मीभूतं निरर्थकम् ॥

लक्ष्मी एवं ब्रह्मा का वार्तालाप । ब्रह्मा के कहने से लक्ष्मी का भगवान् के पास गमन । भगवान् ने लक्ष्मी से कहा मेरी स्त्री, पुत्र एवं भृत्य मे सब जगह समता है। इतना कहकर भगवान् ने लक्ष्मी को बक्षःस्थल में स्थान दिया।

पृथिवी को दर्प हुआ कि सब प्राणियों की आधारभूता मैं ही हूँ। तब पृथ्वी द्वारा भगवान् ने उसका अभिमान दूर करवाया। सावित्री को गर्व हुआ कि मैं वेदमाता हूँ। तब श्रीकृष्ण ने उसके गर्व को दूर करने के लिये पुत्रों सहित उसके अदर्शित कर दिया। गङ्गा का दर्प जह्नु द्वारा एवं मनसा का दुर्गा से दूर करवाया। सुदामा के शाप से राधा का धरातल में जन्म।

५६	विस्तरेण इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनम्	८६६
	नहुषोपाख्यानम्	८७१
	शचीकृत गुरुस्तोत्रम्	८७६

मदोन्मत्त हुए इन्द्र ने सभा में आये हुए अपने गुरु ब्रह्मनिष्ठ बृहस्पति को रत्नसिंहासन से उठ मणाम नहीं किया। गुरुदेव रुष्ट हो अपने स्थान को चले गये किन्तु इन्द्र को शाप नहीं दिया। बिना शाप ही इन्द्र का दर्पभङ्ग हुआ कि उसको ब्रह्महत्या की प्राप्ति हुई। ब्रह्महत्या से भयभीत हो इन्द्र का पद्मनाभ में प्रवेश तदनन्तर नहुष का स्वर्ग में राज्य करना। नहुष ने सुन्दरी इन्द्राणी को देखकर कहा विधाता की गति बड़ी बलवान् है कि ऐसी सुन्दरी स्त्री होते हुए भी इन्द्र परस्त्री में लम्पट है। इसके समान रम्भा और तिलोत्तमा एवं उर्वशी भी नहीं है। हमारी स्त्री तो इसके सामने दासीतुल्य है। हे सुन्दरि ! मेरी सेवा करो जैसे गोलोक में राधा कृष्ण के वक्षःस्थल पर विराजमान है, ब्रह्मा के वक्षःस्थल पर ब्रह्माणी, एवं वैकुण्ठनाथ के पास लक्ष्मी, वसी तरह तुम मेरे यहां रहो। मैं तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ति कर दूंगा इत्यादि बहुतसे वचन कहने पर इन्द्राणी श्रीगुरुदेव एवं हरि का स्मरण कर बोली, हे बत्स हे महाराज ! राजा सब प्रजा का पालक होता है तथा भय से रक्षा करता है। महेन्द्र आज भ्रष्टात्री हो गये हैं तथा आप स्वर्ग के राजा हैं अतः वही राजा कहा जाता है जो प्रजा का पालन निश्चित रूप से करता है।

भयत्राता च राजा च सर्वेषां पालकः पिता ।

भ्रष्टात्रीञ्च महन्द्रोऽयत्नश्च स्वर्गे नृपोऽधुना ॥

यो राजा स पिता पाता प्रजानामेव निश्चितम् ।

गुरुपत्नी राजपत्नी देवपत्नी तथा वधूः ॥

पित्रोः स्वसा शिष्यपत्नी भृत्यपत्नी च मातुली ।

पितृपत्नी भ्रातृपत्नी श्वश्रूश्च भगिनी सुता ॥.

गर्भधात्रीष्ट देवी च पुंसः षोडश मातरः ॥

गुरुपत्नी, राजपत्नी, देवपत्नी, पुत्रवधू, माता-पिता की बहिन, शिष्य की स्त्री, सेवक की स्त्री, मामी, माता, भाई की स्त्री, सास, बहिन, पुत्री, गर्भधात्री एवं इष्टदेवी ये सोलह पुरुष की वेद प्रतिपादित माता हैं। तुम मनुष्य हो मैं देव स्त्री हूँ अतः वेद रीति से तुम्हारी माता हूँ यदि तुम्हारी रमण करने की इच्छा है तो अदिति के पास जाओ। हे पुत्र! सब कार्यों का छुटकारा हो सकता है किन्तु मातृगामियों का कभी नहीं। वेष्णुभीषाक नरक में दुःख पाते हैं उनके कीड़े पड़ जाते हैं। तुम अच्छे पुण्यों के प्रभाव से चन्द्रवंश में पैदा हुए हो अतः अपना क्षत्रियोचित धर्म पालन करो। जो स्वधर्महीन हैं वे नरक में जाते हैं। ब्राह्मणों का धर्म है कि तीन काल सन्ध्या एवं भगवान् की पूजन तथा व्रतादि करे। पतिव्रताओं का धर्म है पति की सेवा करना। साध्वी स्त्रियों के लिये परपुरुष पुत्र के समान है। क्षत्रियों का धर्म है कि वे दुष्टोंको दण्ड एवं सज्जनों का पालन करें। वैश्यों के लिये स्वधर्म का पालन एवं व्यापार कर्तव्य है। शूद्रों के लिये विप्रों को सेवा करना धर्म बताया है। अन्य भी बहुतसे धर्मों को वर्णन करे इन्द्राणी ने कहा पुत्र! स्वस्थान पर जाओ। नहुप ने कहा हे देवि! तुम्हारा कहना सब विपरीत है मैं तुम्हें यथार्थ धर्म कहता हूँ कर्मों का फल भोग स्वर्ग है, पाताल एवं अन्य द्वीप में नहीं कहा है। पुण्यक्षेत्र भारत में शुभाशुभ करने पर अन्यत्र फल भोगना पड़ता है। हे सुन्दरि! यह कर्मस्थल नहीं है, भोगस्थल है अतः भोगस्थल में भोग्य वस्तु छोड़ना उचित नहीं। पुनः नहुप ने इन्द्राणी को धनादि का लोभ भी दिया परन्तु इन्द्राणी अपने सत्यव्रत से न डिगी। तब नहुप उसके चरणों में गिर उसके मार्ग को रोक दिया। राजा की यह अवस्था देख इन्द्राणी ने कहा—

मधुमत्तः सुरामत्तः काममत्तो विचेतनः । मृत्युं न गणयेत्कामी कामेन हतमानसः ॥

त्यज मामद्य हेमत्त ! मातुल्यां रजस्वलाम् ।

ऋतोः प्रथमो दिवसोल्लस्य हेनृप ! मे ध्रुवम् ॥

प्रथमे दिवसे स्त्री च चाण्डाली सा रजस्वला ।

द्वितीये दिवसे म्लेच्छा तृतीये रजकी तथा ॥

शुद्धाभर्तुश्चतुर्थेऽहि न शुद्धा दैवपैत्र्ययोः । असच्छूद्रा समा सा च तद्दिने च परम्प्रति
प्रथमेदिवसे फान्ता यो हि गच्छेद्रजस्वलाम् । ब्रह्महत्याचतुर्थांशं लभते नात्रसंशयः ॥
स पुमान्नाहि कर्माहो दैवे पैत्र्ये च कर्मणि । अधमः स च सर्वेषां निन्दिताश्वायशस्करः
द्वितीये दिवसे नारी यो व्रजेत् रजस्वलाम् । कामतः परिपूर्णश्च गोहत्यां लभते ध्रुवम् ।

मधु, सुरा एवं काल से मतवाला हुआ मृत्यु को नहीं सोचता है । हे मत्त
मुक्तको मातुल्य रजस्वला जान छोड़ दो । हे नृप ! आज ऋतु का प्रथम दिन
है । स्त्री प्रथम दिन चाण्डालिनी, दूसरे दिन रजस्वला म्लेच्छ संज्ञावाली तीसरे
दिन धोबिन एवं चौथे दिन शुद्ध होती है किन्तु दैवपितृ कार्य के लिये नहीं उस
दिन उसकी असत्शूद्रा संज्ञा मानी गई है । जो पुरुष प्रथम दिन रजस्वला के
साथ संभोग करता है उसे ब्रह्महत्या का चतुर्थांश फल मिलता है । यह पुरुष
दैवपितृ कार्य के योग नहीं अपि तु अधम कहा गया है । दूसरे दिन रजस्वला के
बास गमन करने से गोहत्या का पाप लगता है ।

आजीवनं नाधिकारी पितृविप्रसुरार्यने ।

अमनुष्योऽयरात्यः स्यादित्याद्भिर्मभाषितम् ॥

तृतीयेदिवसे जायां यो हि गच्छे रजस्वलाम् । स मूढो भ्रूणहत्याश्च लभतेनात्रसंशयः
पूर्ववत्पतितः सोऽपि न चाटः सर्वकर्मसु । मसच्छूद्रा चतुर्थेऽहि न गच्छेत्ताम्यचक्षण ॥
यदि मां मातरं मूढ ! प्रहिष्यसि बलेन च । ऋणयतीते दिवसे गमनश्च करिष्यमि ॥

तीसरे दिन जाने से भ्रूणहत्या का पाप लगता है । चतुर्थे दिन अमच्छूद्रा
संज्ञा पड़ी है अतः उस दिन भी स्त्री के पास न जाय । नहुष एवं इन्द्राणी का

परस्पर कथोपकथन ।, दुःखित इन्द्राणी का अपने गुरु बृहस्पति के घर पर जाना
बहापर गुरु की स्तुति । हे गुरो । मेरी रक्षा करो गुरु के समान कोई प्रिय एवं
धर्म नहीं है । गुरु के रष्ट होनेपर कोई रक्षा नहीं कर सकता है ।

रुचिष्णुगुरुर्ब्रह्मा गुरुर्देवोगहेश्वरः । गुरुर्धर्मो गुरुः शेषः सर्वात्मा निर्गुणो गुरु ॥
भीष्टदेवे रुष्टे च गुरुः शक्तो हि रक्षितुम् । गुरो रुष्टेऽभीष्टदेवो न हि शक्तश्च रक्षितुम्

इतना कहकर इन्द्राणी ऊँचे स्वर से रोने लगी । उसका रोदन सुन तारा
नी रोने लगी । तब गुरु ने कहा हे तारे ! इन्द्राणी का कल्याण होगा जल्दी ही
इन्द्र की प्राप्ति होगी । इन्द्राणी को तारा का उपदेश । शचीकृत गुरु स्तोत्र को
जुआ समय पढ़ने से गुरुदेव प्रसन्न होते हैं तथा अन्य सम्पूर्ण मनोवञ्छित फलों की
प्राप्ति होती है ।

६०	शचीम्प्रति बृहस्पतेः प्रबोधवाक्यम्	८८१
	नहुपोपाख्यानम्	८८१
	शक्रमोक्षकथनम्	८८३

शची का स्तोत्र सुन गुरुजी प्रसन्न हो बोले—हे पुत्रि । जैसे मेरे लिये कच की
पत्नी पुत्री समान है वैसे ही तुम हो अतः तुम्हें कोई भी भय नहीं है पुत्र और शिष्य
मे कोई अन्तर नहीं । पिता, माता, गुरु, स्त्री, शिशु, अनाथ एवं वान्धवों को सदा
ही पुष्ट रखना (पालन करना) चाहिये । जो माता, पिता तथा गुरु मे अन्य
मनुष्यों के समान बुद्धि रखता है उसकी पद-पद पर अपकीर्ति होती है । सम्पत्ति
से मदोन्मत्त हुआ पुरुष यदि गुरु का अपमान करता तो उसका जल्दी ही नाश
होता है । मैं इन्द्र की मोक्ष एवं तुम्हारी रक्षा करूँगा । कहा है—

शासितु रक्षितु शक्त. स एव गुरुश्च्यते ।

नहुष के दूत ने इन्द्राणी के पास जाकर कहा देवि ! नहुष के पास चलो तब गुरु ने कहा नहुष से जाकर कहो कि इन्द्राणी को यदि भोगना चाहते हो तो सप्तर्षियों से ढोई गई पालकी में बैठकर आओ । दूत ने राजा से सारी बातें कही तब नहुष ने तुरन्त सप्तर्षियों को बुलवाया । सप्तर्षियों ने कायर राजा से कहा हे पुत्र ! तुम्हारी जो इच्छा हो सो बर मांगो । तब नहुष ने कहा यदि आप सब कुछ देसकते तो मुझे इन्द्राणी का दान दो । इन्द्राणी सप्तर्षियों का वाहन चाहती है अतः आप सब मेरी पालकी को वहन करो । राजा का वचन ऋषियों ने स्वीकार किया वे वाहक हो गये । राजा ने उनको घेर करते देखकर डाँटा तब क्रोधित हो दुर्वासा ने कहा कि तुम महान् अजगर होओगे । पुनः धर्मपुत्र के दर्शन से तुम्हारी मोक्ष होगी पश्चात् वैकुण्ठ की प्राप्ति होगी । राजा का सर्परूप होकर पृथ्वी पर गिरना । गुरु का इन्द्र को लाने के लिये जाना । इन्द्राणी को इन्द्र की प्राप्ति । सोमयाग का विधान ।

६१

इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनम्

८७४

इन्द्रस्य अहल्याम्प्रतिगमनम्

८८४

नारायण बोले—इन्द्रदर्पभङ्ग का दूसरा वृत्तान्त सुनो । समुद्रमंथन के समय दैत्यों को जीतकर इन्द्र धतुत गर्वित हो गया । तब श्रीकृष्ण ने वलि द्वारा इन्द्र का मद नष्ट करवाया । फिर अदिति के व्रत से तथा गुरु की स्तुति से राजा की प्राप्ति । कल्पान्तर में दुर्वासा द्वारा इन्द्र की लक्ष्मी नष्ट होना पुनः कृपालु मुनि द्वारा लक्ष्मी की प्राप्ति । लक्ष्मी के मद से मत्त हुए इन्द्र ने गौतमपत्नी अहल्या का अपहरण किया । पुनः गौतम के शाप से इन्द्र के शरीर में भग के से चिह्न हो गये । उसको देखकर ऋषिमुनि हँसे तथा देवता लज्जित हुए एवं धृष्टपति मृततुल्य हो गये । रवि की सहस्र वर्ष तपस्या करने से इन्द्र को सूर्य के वरदान से सदस्र एक

(१८६)

आखें हो गई। नारदजी ने नारायण से इस विषय में प्रश्न किया तब नारायण बोले—पुष्कर में तीर्थयात्रा के समय मन्दाकिनी तट पर स्नान करती हुई अहल्या को इन्द्र ने देखा। कामी इन्द्र ने अहल्या के पास जाकर मधुरवाणी से कहा—जितना कामशास्त्र को मैं जानता हूँ उतना गौतमजी नहीं जानते। तुम मेरे पास रहो इन्द्राणी को तुम्हारी दासी बना दूंगा। यह इतना कह अहल्या के चरणों में गिर पड़ा। तब अहल्या ने कहा जिन पुरुषों का मन परस्त्री में मग्न है उसका सब काम व्यर्थ है। परस्त्री का सेवन इस लोक में अपकीर्ति करनेवाला एवं परलोक में नरक प्राप्ति का कारण होता है। गौतमस्त्री ने घरपर जाकर अपने पति से सब समाचार कहे। मुनि हँसे और इन्द्र की निन्दा की। इन्द्र का समय पाकर गौतमरूप से अहल्या के पास जाना। इन्द्र एवं अहल्या को गौतम का शाप। इन्द्र को उन्होंने भगाङ्क होने का शाप तथा अहल्या को महाबन में पत्थर की मूर्ति होने का शाप दे अहल्या से कहा कि व्रता में रामचन्द्रजी के पैर की अङ्गुली स्पर्श करने से मुक्ति होकर फिर तुम मुझे प्राप्त करोगी।

६२	संक्षेपेण श्रीरामचरित्रं अहल्यामोक्षणञ्च	८८७
	रामलक्ष्मणसमीपे शूर्पणखागमनम्	८८८
	हनुमन्तं दृष्ट्वा सीतायाः कथोपकथनम्	८८९

नारदजी का भगवान् नारायण से प्रश्न कि स्वयम् दशरथिराम ने किस प्रकार से गौतम की स्त्री अहल्या को मुक्त किया। हे महाभाग ! सुख को देनेवाले भगवान् रामावतार को संक्षेप से मुझे कहिये। नारदजी के प्रश्न को सुन भगवान् नारायण ने कहा कि ब्रह्माजी की प्रार्थना से त्रेतायुग में भगवान् विष्णु स्वयं दशरथजी से कौशल्या में पैदा हुए। रामतुल्य गुणों से युक्त भरत का कैकेयी में और लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न का सुमित्रा में जन्म हुआ। विश्वामित्र से प्रेरित

राम-लक्ष्मण का सीता के पाणिग्रहण निमित्त मिथिला गमन । मार्ग में पापाणरूप कामिनी को देख रामचन्द्रजी का विश्वामित्रजी से उसका कारण पूछना विश्वामित्रजी से सम्पूर्ण रहस्य जानकर भगवान् राम का पैर की अङ्गुली का स्पर्श करना जिससे तत्क्षण ही उसका दिव्यरूप हो भगवान् को आशीर्वाद दे पति-मन्दिर में प्रस्थान करना । तदनन्तर राम का मिथिला जाकर धनुष तोड़ना तथा सीता से पाणिग्रहण । विवाहोपरान्त परशुरामजी का दर्पभङ्ग कर अयोध्या में आना । राजा दशरथ द्वारा पुत्र श्रीराम को राज्याभिषिक्त करने का उद्यम, जिसे देख भरत की माता कैकेयी का पहिले मांगे हुए राजा से दो घर लेना पहिले से राम को वनवास, दूसरे से भरत को राज्य मिलना । प्रेम में मोहित पिता को देख श्रीरामचन्द्रजी द्वारा समझाना ।

तडागततवानेन यत्पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकं लभते वापीदानेन निश्चितम् ॥
 दशवापीप्रदानेन यत्पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकं लभते पुण्यं कन्याप्रदानतः ॥
 दशकन्याप्रदानेन यत्पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकं लभते यज्ञैकेन नराधिपः ॥
 वशयज्ञेन यत्पुण्यं लभते पुण्यकृद्जनः । ततोऽधिकं लभते पुत्रास्यदर्शनेन च ॥
 दर्शने शतपुत्राणां यत्पुण्यं लभते नरः । तत्पुण्यं लभते नूनं पुण्यवान् सत्यपालनात् ॥

नहि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ।

नहि गङ्गासमं तीर्थं न देवः केशवात्परः ॥

नास्ति धर्मात्परो बन्धुर्नास्ति धर्मात् परं धनम् ।

धर्मात्प्रियः परः को वा स्वधर्मं रक्ष यत्नतः ॥

स्वधर्म रक्षिते तात शश्वत् सर्वत्र मङ्गलम् । यशस्यं सुप्रतिष्ठा च प्रतापः पूजनं परम् ॥
 चतुर्दशाब्दं धर्मेण त्यक्त्वा गृहसुखं भ्रमन् । वनवासं करिष्यामि सत्यस्य पालनाय ते

श्रीराम का चलकल वस्त्र धारण कर सीता और लक्ष्मण सहित वन के लिये प्रस्थान । पुत्र विरह में राजा का प्राणत्याग । समय पाकर रावण की वहिन शूर्पणखा का राम के पास आना; भगवान् राम के रूप पर मोहित हुई

शूर्पणखा का विवाह के लिये प्रस्ताव रखना । भगवान् का उसको उत्तर कि ने मातः ! मैं सपत्नीक हूँ मेरा छोटा भाई लक्ष्मण अपत्नीक है अतः उसके पास जाओ । राम के वचनों को सुन शूर्पणखा का लक्ष्मण के पास विवाहार्थ जाना एवं मनोरथ कहना । तब लक्ष्मण ने कहा हे मूढ़े ! भगवान् श्रीराम को छोड़ मेरे जैसे दास की इच्छा करती हो मेरी पत्नी होने पर तुम्हें सीता की दासी बनना पड़ेगा । इसलिये सीता की ही सपत्नी बनो मैं तो तुम्हारी पुत्ररूप से सेवा करूँगा । तत्पश्चात् निराश हुई राक्षसी का दोनों को शाप । जो तुम काम से पीड़ित हुई स्वयं उपस्थित स्त्री का त्याग करते हो इसलिये दोनों पर विपत्ति आएगी । जैसे मोहिनी के शाप से ब्रह्मा, रम्भा के शाप से दक्ष, उर्वशी के शाप से अश्विनी-कुमार, मेना के शाप से कुबेर, घृताची के शाप से कामदेव, मदालसा के शाप से बली और मिश्रकेशी के शाप से बृहस्पति की स्त्रियाँ अपहृता हुईं वैसे ही मेरे शाप से राम की भार्या का अपहरण होगा । शूर्पणखा के वचन सुन लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिये । खरदूषण का लक्ष्मण के साथ युद्ध एवं चौदह हजार राक्षसों के साथ खरदूषण की मृत्यु । शूर्पणखा का सम्पूर्ण वृत्तान्त रावण को कह पुष्कर में तप करने के लिये जाना । तप से प्रसन्न हुए ब्रह्माजी ने उससे कहा कि तुमने जो राम को बिना प्राप्त किये इतना दुष्कर तप किया है अतः जन्मान्तर में उसे पतिरूप में प्राप्त करोगी । ऐसा कहकर ब्रह्माजी का अपने स्थान पर जाना एवं शूर्पणखा का अग्नि में शरीर त्यागकर कुब्जरूप में जन्म । रावण द्वारा सीता का हरण । रामचन्द्रजी द्वारा सीता की खोज एवं बाली का वध कर सुग्रीव के साथ मित्रता करना । सुग्रीव द्वारा सीता की खोज के लिये सर्वत्र दूतों को भेजना एवं राम-लक्ष्मण का सुग्रीव के यहाँ निवास करना । हनूमान्जी को वरदान देकर एवं रमणीय अंगूठी दे सीता की खोज के लिये भेजना । हनूमान्जी का अशोकवाटिका में शोकाकुल दुर्बल सीता को देखना । निराहार अतिवृत्ति निरन्तर भक्तिपूर्वक राम-राम जपती हुई जटाभार से युक्त

दिन-रात श्रीराम के चरणारविन्दों का ध्यान करती हुई सीता को देख प्रणाम कर वायुनन्दन हनूमान् ने हर्षयुक्त हो भगवान् रामचन्द्रजी की अंगूठी उनको दी । हनूमान् एवं सीता का वार्तालाप । श्रीरामचन्द्र के कुशल वृत्तान्त को सीता से कहकर हनूमान् द्वारा लंकादहन । हनूमान्जी का रामचन्द्रजी को सब वृत्तान्त कहना । सीता के समाचार को श्रवण कर राम-लक्ष्मण एवं सुग्रीव का शोकाकुल होना । रामचन्द्र द्वारा समुद्र पर सेतु बंधवाकर युद्ध में रावण को मार देना पुष्पक विमान से राम, लक्ष्मण, सीता का अयोध्या आना । सीता में कुशा, लव दो पुत्रों की उत्पत्ति ।

६३

कंसयज्ञकथनम्

८६३

एक समय रात्रि के दुःखियों को देख भयभीत कंस ने सभा में पुत्र, मित्र, वन्धुगण, वान्धव एवं पुरोहित से कहा कि मैंने अर्द्धरात्रि में एक वृद्धा रक्तपुष्पां की माला धारण किये एवं लालचन्दन, लाल वस्त्र, तीक्ष्ण तलवार एवं रत्नपर को लिये मेरे नगर में नाचते देखा । विरुत आकारवाला, रूश्न केशोंवाला भ्लेच्छ, पति-पुत्रवाली दिव्य स्त्री को महारुद्र, पूर्ण कुम्भ का भङ्ग होना, क्षण में अङ्गारवृष्टि, क्षण में भस्मवृष्टि, क्षण में रक्तवृष्टि, वानर, वायस, क्रूरर, भालु, शूकर, और गर का भयङ्कर शब्द सुना और पीतवस्त्र एवं शुद्ध चन्दन से पूजित तथा रत्नआभूषणों से भूषित, सिन्दूर बिन्दु से शोभित स्त्री मुझे शाप देकर मेरे घर से निकल जाती है । मुक्तकेशोंवाली नमनारी, द्वित्र नामिकावाली विधवा का देवता । दिगम्बरी महाशूरी मुझे तैल से अभ्यङ्ग करती है । दिशाओं का भस्मपूर्ण होना, नृत्य-गीत एवं विवाह का देवता, चन्द्र-सूर्य का ग्रहण, उल्कापात, भूकम्प का होना एवं नतमस्तक हुए वान्धव इत्यादि स्यन्न के महान् उत्पातों का वर्णन ।

६४

कंससत्यकयोः परस्परं परामर्शः

८६५

कंसयज्ञकथनम्

८६७

सत्यक पुरोहित ने कंस से विचार कर कहा कि भय त्यागकर इन दुःस्वर्णों के निमित्त धनुर्मलनामक यज्ञ जो सब अरिष्टों का नाश करनेवाला एवं शत्रु तथा दुःस्वर्णों का नाशक है करो। याग की समाप्ति में साक्षात् शङ्कर सब सम्पत्ति को देते हैं। इस यज्ञ को बाणासुर, नन्दी, परशुराम एवं धलवान् भञ्ज (जाम्बवान्) ने किया था। इस धनुष को शङ्कर ने नन्दीश्वर को दिया था नन्दीश्वर ने यज्ञ कर बाणासुर को दिया। बाणासुर ने धनुर्मल कर परशुराम को पुष्कर में दिया। परशुराम ने तुम्हें दिया। इसको नारायण के बिना कोई भञ्ज नहीं कर सकता। इस विषय में शङ्कर का पूजन कर सबका निमन्त्रण करो। धनुष भञ्ज होने से यजमान का विनाश अवश्यम्भावी है। कंस ने सत्यक का वचन सुनकर सबसे कहा वसुदेव के घर में उत्पन्न हुआ और नन्द के घर में बढता है वह मेरा शत्रु है। उसने मेरी बहिन पूतना को मारा है। गोवर्धन को धारण कर इन्द्र का पराभव किया है उसके सिवा अन्य कोई शत्रु नहीं है। उसे मारकर मैं सम्पूर्ण पृथ्वी का स्वामी बनूँगा। सूर्य, चन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, एवं वायु को भी अवश्य पराजित करूँगा। फिर कंस ने सत्यक से कहा कि तुम नन्द, कृष्ण एवं धलराम को व्रज से लाओ। सत्यक ने कंस से नीतियुक्त वचन कहा कि अक्रूर, उद्धव, या वसुदेव को भेजिये। कंस ने वसुदेव को श्रीकृष्ण को लाने के लिये कहा। तब वसुदेव बोले मेरा जाना उचित नहीं क्योंकि श्रीकृष्ण के यहाँ आने से आपका विरोध होगा। उसमें आपकी अथवा श्रीकृष्ण की मृत्यु होने से संसार मुझे दोषी ठहरायेगा और मृत्यु दोनों में से एक की अवश्य होगी। कंस का वसुदेव पर तलवार चलाना एवं उसे द्वारा रोकना। कंस के दूतों से धनुष-

यज्ञ की चर्चा सुन अनेक देशों के राजा, देवगण, सनकादि ऋषिगण और शिशुपाल आदि ऋषियों और शिपाल आदि राजाओं का आना ।

६५

अक्रूरहर्षोत्कर्षकथनम्

८६८

कंस के वचन सुन अक्रूर ने उद्धव से अपने हर्ष का वर्णन किया । आजकी रात्रि बड़ी सुन्दर है । गुरु विप्र एवं देव मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं । कोटि जन्मों का पुण्य आज उपस्थित हुआ है जो मैं प्रजराज श्रीकृष्ण को लाने के लिये जाऊँगा । जिसके चरणारविन्द का ध्यान ब्रह्मा, विष्णु एवं शङ्कर करते हैं लक्ष्मीजी जिनकी दासी हैं और त्रिभुवनपावनी गङ्गा जिनके चरणों से निकली है दुर्गा जिनके पादपद्मों का ध्यान करती है तथा जिस भगवान् के निमित्त पाद्मरूप में ब्रह्मा ने हजार मन्वन्तर तक तप किया । फिर भी ब्रह्मा को यह आदेश हुआ कि फिर तपस्या करो पुनः ब्रह्माजी को दर्शन हुआ । जिनके निमित्त शङ्कर ने तपस्या की फिर गोलोक में भगवान् के दर्शन हुए । बड़ी आश्चर्यजनक वार्ता है । अहो यस्य निमिषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत् । ईदृशं परमात्मानं त्रक्ष्याम्यथ तमुद्धव ! ॥

ऐसे भगवान् के शुभ दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा । इतना कहकर उद्धव से सप्रेम मिलकर अक्रूर का अपने घर जाना ।

६६

श्रीराधाशोकोपनोदनम्

६०१

रासेश्वरी राधा के साथ श्रीकृष्ण का शयन । राधा ने रात्रि में दुःस्वप्न देखकर भगवान् से कहा—मुझे स्वप्न में ऐसे चिह्न दिखाई दे रहे हैं कि यह हुआ ब्राह्मण मेरे हाथ से रत्नछत्र ले रहा है तथा मैं आपसे रक्षा करनेकी कह रही हूँ । आकाश से सूर्यमण्डल का गिरकर चार खण्ड होना तथा एक काल में चन्द्र-सूर्य ग्रहण देखना, क्षणभर में दीप्तिमान् ब्राह्मण द्वारा मेरी गोद में से मुधाकुम्भ का भग्न कर कृष्णवर्ण की प्रतिमा का आलिङ्गन होना, प्राणाधिदेवपुरुषों का यों

कहना कि हे राधिके ! मुझे विदा करो । इस तरह के महान् दुःखज्नों को देखकर मेरे दहिने अंग स्फुरण करते हैं तथा मेरा मन शोक से व्याकुल हो रहा है । इतना कहकर राधा का भगवान् के चरणों में गिरना । तत्पश्चात् श्रीकृष्ण द्वारा राधा को अध्यात्म ज्ञान का उपदेश कर दुःख दूर करना ।

६७

आध्यात्मिकयोगकथनम्

६०२

विरहव्याकुल राधा को देख श्रीकृष्ण का राधा सहित क्रीड़ा-सरोवर पर जाना । राधा ने कहा हे नाथ ! मैं आपके रहने से प्रफुल्लित हूँ तथा नहीं रहने से मरी हुई तथा म्लान (कुम्हलाई हुई) हूँ । जैसे सूर्योदय होने से महौषधि म्लान हो जाती है । हे रासेश ! रास एवं वृन्दावन की शोभा भी आपसे ही है । आपके बिना नन्द एवं यशोदा भी शोकसागर में निमग्न हैं । इतना कहकर राधा का श्रीचरणों में गिरना तथा श्रीकृष्ण द्वारा अध्यात्मयोग का उपदेश करना । नारदजी के पूछने पर नारायण द्वारा आध्यात्मिकयोग का कहना । आध्यात्मिकयोग महायोग है इसे ज्ञानी भी नहीं जानसकते हैं । कुछ अध्यात्मयोग का उपदेश गोलोक में श्रीकृष्ण ने त्रिपुरारि शङ्कर से किया था तथा कुछ-कुछ कपिल, दुर्वासा, भृगु और प्रह्लाद को भी । श्रीकृष्ण बोले हे राधिके ! सम्पूर्ण गोलोक का वृत्तान्त एवं एवं आत्मा का स्मरण करो । सुदामा के शाप से कुछ दिन तुम्हारा मेरे से विच्छेद होगा तथा फिर अपने दोनों का मिलन होगा । हे राधिके ! तुम्हारे में एवं मेरे में कुछ भी भेद नहीं है । ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव सब मेरे अंश हैं तथा महालक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती, सावित्री आदि सब प्रकृति रूप तुम्हारी अंशभूता हैं । यथा त्वञ्च तथाऽहञ्च समौ प्रकृतिपूरुषौ । नहि सृष्टिर्भवेद्देवि ! द्वयोरेकतरं चिन्ता ॥ इतना कह श्रीकृष्ण का राधा के साथ रासक्रीड़ा ।

श्रीकृष्ण द्वारा निद्रित राधा का बोधन करना । श्रीकृष्ण ने राधा से कहा हे रासेश्वरि ! क्षणभर रासक्रीड़ा में ठहरो । क्योंकि तुम रास की अधिष्ठातृदेवी हो । हे राधिके ! तुम्हारे में मेरा मन दिन-रात लगा हुआ है तुम्हारे से अन्य कोई मुझे प्रिय नहीं है । मेरे प्राण साक्षात् शङ्करजी हैं किन्तु तुम प्राणों से भी बढ़कर हो । इतना कहकर अक्रूर के आगमन को जानकर श्रीकृष्ण का जाने के लिये उद्यत होना । तदनन्तर राधा का श्रीकृष्ण से प्रार्थना करना कि हे भगवन् ! आप मुझे छोड़ कहां जा रहे हैं ? यदि आप जायेंगे तो आपके पुत्र-पौत्र ब्रह्मशाप रूपी अग्नि से नष्ट हो जायेंगे । इतना कहकर राधा का क्रोध से मूर्छित हो पृथ्वी पर गिरना । तत्पश्चात् श्रीकृष्ण द्वारा राधा को सान्त्वना देना ।

श्रीकृष्ण का राधा के साथ रासक्रीड़ा करना । श्रीकृष्ण का शयन करना । ब्रह्मा द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति । ब्रह्मा ने कहा हे देव ! उठो भक्त सुदामा के शाप का स्मरण कर सौ वर्ष तक राधा का बन्धन छोड़ो । फिर गोलोक में मुझे प्राप्त हो जाओगी, अब घर पर अपने चाचा अक्रूर को देखो, पीछे शङ्कर का धनुष तोड़ना, कंस को मारना इत्यादि बहुतसे काम करने हैं । इतना कहकर देवों सहित ब्रह्मा का अपने स्थान पर जाना । पुनः आकाशवाणी हुई कि कंस को मारकर अपने माता-पिता को बन्धन से छुड़ाओ । इतना सुन सोई हुई राधा को छोड़ श्रीकृष्ण का व्रज में जाना । कृष्ण विरह में राधा का विलाप । रत्नमाला एवं

श्रीकृष्ण का चार्तालाप । रत्नमाला ने कहा हे भगवन् ! मेरी सखी आपके विरह में प्राण त्याग कर देगी इसलिये आपका जाना उचित नहीं । श्रीकृष्ण ने नीतियुक्त वचन रत्नमाला से कहा—

ईतोयद्यपिशक्तोऽहं निषेवं खण्डितुं प्रिये । तथापि न क्षमो रत्ने नियतेनं करोम्यहम् ॥

ब्रह्माण्ड में सम्पूर्ण मर्यादा मेरी ही बनाई हुई है । उसीके अनुसार देव, मनुष्यादि कर्म करते हैं अतः हम दोनों का फिर मिलन होगा । ऐसा कहकर भगवान् का नन्दजी के घर जाना ।

७०

अक्रूरस्य कृष्ण समीपेगमनम्

६१५

अक्रूरजी उद्धवजी से बातचीत कर अपने घर में सो गये । उन्हें रात्रि के शेष में सुखन्तों का दर्शन हुआ, जिनमें सर्वप्रथम किशोर अवस्थावाले, मुरली धारण करनेवाले, पीताम्बर पहने द्विज शिशु का दर्शन । पतिपुत्रवाली साध्वी स्त्री, शुभाशीर्वाव करता हुआ ब्राह्मण, श्वेतकमल, राजहंस, अश्व, सरोवर एवं आभ्र, नीम, नारिकेल और कदली को पुष्पित एवं फलित, काटता हुआ श्वेतसर्प, अपनेको पर्वत, वृक्ष, गज; नौका और घोड़े पर स्थित, दही एवं क्षीर से युक्त अन्न, सबत्सा गौ, पार्वती की प्रतिमा, शिव की प्रतिमा, शिवलिङ्ग का दर्शन, विप्र की लड़की, देवस्थान, सिंह, व्याघ्र, गुरु, देव, मणि, सुवर्ण, चांदी, मुक्ता माणिक्य, सारस, हंस, ताम्बूल, कृमि एवं विष्टा सहित अंग और रक्त इत्यादि बहुतसे सुखजन देव उद्धवजी की आज्ञा पाकर अक्रूर की व्रज के लिये यात्रा करना । यात्रा के समय शुभमङ्गलों का दर्शन—चांयेओर शव (मुर्दा), गृगाली, पूर्णकुम्भ, नकुल, चास, पति-पुत्रवाली दिव्य आभूषणों से युक्त स्त्री, शुद्धपुष्प, माल्य, धान्य, खज्जन पक्षी तथा दाहिने तरफ जलती हुई अग्नि, विप्र, वृषभ, हाथी, बछड़े सहित गौ, सफेद घोड़ा, राजहंस, वेश्या, पुष्पमाला, ध्वजा, दही, खीर, मणि, सुवर्ण, चांदी, उसी क्षण का मांस, चन्दन, माध्वीक (मदिरा) घृत, हरिण, फल, चावल, सिद्धाम्र,

दर्पण, विचित्रित विमान, देदीप्यमान प्रतिमा, शुक्ल कमल, कमलवन, शङ्खचिह्न (सफेद चील), चक्रया, त्रिलाव, मेघ, पर्वत, मोर, शुक, सारस, शंख, कोयल एवं बाघों की ध्वनि और कृष्णनामों से युक्त श्रीकृष्ण का कीर्तन ऐसे शुभमङ्गलों को देख ब्रज में प्रवेश । अक्रूर के आगमन को देख वेश्या, पूर्णकुम्भ, गजेन्द्र एवं शुद्धधान्य को आगे कर बालको सहित नन्द का अक्रूरजी के पूजनार्थ आगमन । श्रीकृष्ण के अद्भुत रूपों को देखकर अक्रूर का स्तुति करना । पुनः कुशल वृत्तान्त पूछने के बाद मिष्टान्न भोजन कर सब ब्रजवासियों का अपने-अपने स्थानों में शयन ।

७१

यात्रामङ्गलवर्णनम्

६२०

राधिका एवं अन्य गोपियों के शयन करने के बाद रात्रि के तीसरे प्रहर में शुभ नक्षत्र एवं चन्द्रमा के योग में यशोदा से मङ्गलाशासन करा बन्धुओं को आश्वासन दे श्रीकृष्ण का मथुरा यात्रा करना । उस समय पादप्रक्षालन कर शुद्ध वस्त्र पहनकर चन्दन लगा जाते हुए चाई तरफ पूर्णकुम्भ एवं दक्षिण में अग्नि, विप्र, पतिपुत्राली स्त्री इत्यादि शुभराकुनों को देखकर दक्षिण पंर को आगे रख मध्यमा से नासिका के घाम भाग को रोक दक्षिण मार्ग से वायु का त्याग कर और माता-पिता एवं अन्य चान्दवों से मिलकर वह मथुरा को यात्रार्थ चले ।

७२

श्रीकृष्णस्य मथुरागमनम्

६२१

कुञ्जोद्धारवर्णनम्

६२३

कंसदुःस्वप्नकथनम्

६२५

कंसपथवर्णनम्

६२७

श्रीकृष्ण गुरु को प्रणाम कर सुन्दर मथुरापुरी को चले । मार्ग में अत्यन्त

वृद्धा एवं हाथ में लट्टी ली हुई कुन्जा को देखा । उसने श्रीकृष्ण का चन्दन पुष्प से सत्कार किया जिससे कुन्जा का सुन्दर रूप हो गया । भगवान् ने उसे आशवासन देकर आगे मालाकार (माली) को देखा । उसने भी श्रीकृष्ण को माला देकर वरदान प्राप्त किया । श्रीकृष्ण की रजक से भेंट । भगवान् ने उससे वस्त्र मागे । रजक ने कहा हे मूढ़ ! ये राजोचित वस्त्र हैं तुम्हारे योग्य नहीं हैं । इतना सुन श्रीकृष्ण ने उसको थप्पड़ से मार दिया तथा वस्त्र ले लिये । अक्रूर का अपने घर को जाना एवं नन्दादिकों का वैष्णव कुबिन्द के यहाँ रात्रि में वास । श्रीकृष्ण का कुन्जा के साथ प्रेममिलन तथा कुन्जा का उद्धार कंस को मृत्युसूचक दुःस्वप्नों का दर्शन । कंस को स्वप्न में, विधवा, शूद्रपत्नी, गदहा, भैंसा, शूकर, भालू, गीध, हड्डियों का समूह, कपास, श्मशान इत्यादि बहुतसे अशुभसूचक वस्तुओं का दर्शन । श्रीकृष्ण ने धनुष को तोड़कर एवं मर्हों को मारकर कंस को लीला मात्र से ही स्वर्ग-धाम पहुँचा दिया । श्रीकृष्ण का रूप सबको अलग-अलग तरह से दिखाई दिया जैसे राजाओं को राजेन्द्ररूप में, माता-पिता को बालकरूप में, कंस को कालरूप में इत्यादि ऐसे ही श्रीमद्भागवत में आया है “महानामशानिर्दुर्णानरवरः” रामायण में भी “जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन तैसी” । कंस का दिव्य रूप धारण कर परमधाम में जाना । कंस की माता एवं भाई बन्धुगण आदि का बिलाप । श्रीकृष्ण द्वारा अपने माता-पिता का बन्धन तोड़ना । श्रीकृष्ण धलराम का अपने माता-पिता को प्रणामकर प्रार्थना करना । इस उपलक्ष्य में ब्राह्मणों को भोजन से वृत्त कर द्रव्य दान किया ।

पुत्र के वियोग में नन्दजी का रुदन । श्रीकृष्ण का नन्दजी को ज्ञान देना कि हे नन्दजी दुःख छोड़िये एवं शान्ति को प्राप्त कीजिये । इस संसार में कोई भी किसी का पुत्र एवं माता-पिता नहीं है । सब अपने-अपने कर्मों के अनुसार

फल भोगते हैं। मेरी माया से ही सब देवादि अपने-अपने कार्यों में लगे हैं। मेरी प्राणाधिष्ठात्री देवी राधा के साथ सौ वर्ष तक वियोग होगा फिर उसके गोलोक में जाऊँगा तथा आप लोगों को भी गोलोक में भेज दूँगा। जैसे आत्मा और जीव का सम्बन्ध है उसी तरह राधा का और मेरा है। अतः राधा में गोपिका बुद्धि एवं मेरे में पुत्र भावना का त्याग करें। इतना कहकर श्रीकृष्ण का नन्दजी के प्रति विभूतियोग का वर्णन। विभूति योग को सुनने के बाद नन्दजी का सामवेदोक्त स्तोत्र से कृष्ण की स्तुति करना। पुत्र के आगे बारम्बार रुदन करना।

७४

भगवन्नन्दसंवादवर्णनम्

६३३

नन्दजी की स्तुति से प्रसन्न हो भगवान् बोले—हे नन्दजी ! अब दुःख को छोड़ ब्रज में जाइये मैं आपको वही ज्ञान देता हूँ जो पहले ब्रह्मा, गणेश तथा शङ्कर को दिया था। कौन किस का पुत्र है कौन किसकी माता है सब इसी तरह संसार में आते हैं तथा जाते हैं। अपने-अपने कर्मों से मनुष्य नाना तरह की थोनियों में जन्म लेते हैं। ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त संसार में जन्म लेते हैं। मेरे मन्त्र की उपासना करनेवाला इस शरीर को छोड़ गोलोक को जाता है। मेरे भक्तों का कभी भी अशुभ नहीं होता। मेरा भक्त मेरे से बलवान् है। इतना सुन नन्दजी बोले—मुझे सांसारिक ज्ञान का उपदेश करो। पुनः श्रीकृष्ण द्वारा दिनचर्या का वर्णन करना।

७५

आह्निकवर्णनम्

६३५

श्रीकृष्णप्रोक्त आह्निकाचारः

६३७

श्रीकृष्ण ने कहा—हे नन्दजी ! वेद एवं पुराणों का गोपनीय ज्ञान आप से कहता हूँ। स्त्रियों का कभी भी विश्वास न करे। प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में उठकर

शौचादि से निवृत्त हो निर्मल जल में स्नान कर शालग्राम, मणि, यन्त्र और प्रतिमा का पूजन करे। सर्वप्रथम विघ्न दूर करने के लिये गणेशजी की पूजा करे। विघ्ना, मूत्र, लिङ्ग और योनि को नहीं देखें। स्त्रियों के स्नान, कटाक्ष एवं हास्य को न देखें। अस्तकाल में सूर्य एवं चन्द्र को न देखे। इससे व्याधि की प्राप्ति होती है। जल में सूर्य एवं चन्द्र को देखने से दुःख की प्राप्ति होती है। पर मैथुन देखने से बन्धुओं का विच्छेद होता है। ब्राह्मण, गौ, वैष्णव एवं अन्य किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। किसीका धन हरण न करे यह सर्वनाश का कारण है। शुक्ल यजुर्वेद में आया है “मा गृधः कस्यस्विद्वनम्”। अपनी धी हुई या दूसरे की धी हुई ब्रह्मवृत्ति का हरण करने से ६० हजार वर्ष तक विघ्ना में कृमि होता है। कोटि वर्ष गोध, सौ जन्म सूकर और सौ जन्म व्याघ्र इत्यादि कष्टप्रद योनियों को प्राप्त होता है। कर्म कराकर दक्षिणा तत्काल नहीं देने से एक रात्रि व्यतीत होने पर दुःखी होजाती है। एक मास वीतने पर सौगुनी, दो मास वीतने से हजारगुनी तथा एक वर्ष वीतने से दाता नरक को जाता है। देनेवाला अगर नहीं देता है तथा लेनेवाला नहीं मांगता है वे दोनों ही नरक में जाते हैं एवं दाता व्याधियुक्त होता है। जो मूर्ख स्त्री अपने पति को हरि रूप में नहीं देखती है, वह कुम्भीपाक नरक में जाती है। जो मनुष्य शिव, दुर्गा, गणपति, सूर्य, विघ्न और विष्णु की निन्दा करता है उसे महारौरव नरक की प्राप्ति होती है। माता, पिता, पुत्र, सती स्त्री, गुरु, अनाथ, भगिनी और कन्या की निन्दा करने से नरक की प्राप्ति होती है। ब्राह्मणों की भक्ति से हीन एवं हरिभक्ति से विहीन नरक को जाता है। एकादशी एवं जन्माष्टमी के व्रत करने से सौ जन्म तक के पाप नष्ट होते हैं। कूष्माण्ड का घात करनेवाली स्त्री एवं दीप को चुम्बानेवाला पुरुष सात जन्म तक रोगी एवं जन्मजन्मान्तर में दृष्टि होता है। दीप, शिवलिङ्ग, शालग्राम, मणि, प्रतिमा, यज्ञोपवीत, सुवर्ण, शङ्ख, हीरा, मोती, गोमूत्र, गोमय, घृत एवं भगवान् के पादोदक को भूमि पर रखने से

अधः (नरक) को जाता है। दिन में तथा सन्ध्या के समय निद्रा एवं स्त्री सम्भोग करने से सात जन्म तक दरिद्री एवं सात जन्म तक रोगी होता है। शिवपूजा करने से विप्र जीवन्मुक्त एवं शिवपूजन न करने से नरक को जाता है। ब्राह्मण मुझे सद्यसे प्रिय है तथा ब्राह्मणों से अधिक प्रिय लक्ष्मी, लक्ष्मी से अधिक राधा उससे अधिक भक्त एवं भक्त से अधिक शङ्करजी प्रिय है। मैं सदा महादेव के नामोच्चारण करनेवालों के पास ही रहता हूँ। नारायणी शक्ति भगवती से ही सब कार्य कराता हूँ वह शक्ति सब जगह विराजमान है।

७६

शुभाशुभदर्शनफलम्

६४२

नानाविधदानफलम्

६४५

श्रीनन्दजी ने शुभाशुभ दर्शन के विषय में पूछा तब श्रीकृष्ण बोले—ब्राह्मण तीर्थ, वैष्णव एवं देवप्रतिमा को देवने से तीर्थस्नान के समान पुण्य होता है सूर्य, सती स्त्री, सन्यासी, ब्रह्मचारी, गौ, अग्नि, गुरु, हाथी, सिंह, सफेद घोड़ा, गुरु, फोयल, हंस, खंजन, मयूर, चातक, सफेद पक्षी, सयत्ता गौ, पीपल, पति पुत्रवाली स्त्री, तीर्थ जानेवाले मनुष्य, दीप, सुवर्ण, मणि मुक्ता, हीरा, माणिक्य, तुलसी, सफेद पुष्प, सफेद वान्य, घृत, दही, शहद, पूर्णकृष्ण, तण्डुल, सफेदपुष्पों की माला, गोरोचन, कपूर, चांदी, तालाव, पुष्पों से युक्त बगीचा, शुद्धपक्ष के चन्द्रमा, अमृत, चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम, एवं पुराण पुस्तक आदि को देवने से पाप नष्ट होते हैं तथा पुण्य की प्राप्ति होती है। आठ वर्ष की कुमारी को ब्राह्मण को देने से दुर्गा दान के समान फल होता है। अनाथ विप्र का विवाह कराने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। भूमिदान, गोदान, गजदान एवं सफेद घोड़े का दान—का वर्णन कर अन्नदान की बहुत प्रशंसा गाई है। अन्नदान के समान कोई दान नहीं है। बुद्ध गौतम स्मृति में भी अन्नदान के माहात्म्य का बहुत वर्णन किया है।

सुखप्न के दर्शन से गङ्गा स्नान के समान पुण्य एवं धन, पुत्र, स्त्री, भूमि एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

७७

सुखप्नदर्शनफलम्

६४६

नन्दजी ने पूछा कि कौनसे स्वप्न से क्या पुण्य होता है तथा कौन-कौनसा स्वप्न अच्छा है ? तब भगवान् बोले कि स्वप्नाध्याय का वर्णन करता हूँ। रात्रि के प्रथम प्रहर का स्वप्न एक एक वर्ष में, दूसरे प्रहर का ८ मास में, तीसरे प्रहर का ३ मास में, चतुर्थ प्रहर का १५ दिन में, अरुणोदय के समय १० दिन में एवं प्रातःकाल का स्वप्न यदि उसी क्षण जग जाय तब तत्काल फल देता है। व्याधियुक्त, नम्र, मूत्र एवं पुरीष से पीड़ित मनुष्य को स्वप्न का फल नहीं होता है। स्वप्न में गौ, हाथी, घोड़ा, महल, वृक्ष, एवं पहाड़ों पर चढ़ने से धन की प्राप्ति होती है। हाथी, राजा, सुवर्ण, कन्या आदि को देखने से विपुल लक्ष्मी आती है। देवता, ब्राह्मण, गौ, पितर एवं सन्यासी को स्वप्न में जैसा देखते हैं वह शीघ्र ही वैसा ही फलीभूत होता है। भस्म, हड्डी एवं रुई को छोड़ अन्य सम्पूर्ण सफेद वस्तु उत्तम है। गौ, हाथी घोड़ा, ब्राह्मण एवं देव को छोड़कर अन्य सम्पूर्ण कृष्ण वस्तु निन्दनीय है। रत्न के आभूषणों से युक्त दिव्य स्त्री जिसके घर में आती है उसे प्रिय वस्तु की प्राप्ति होती है। आठ वर्ष की कुमारी कन्या स्वप्न में जिसपर प्रसन्न होती है वह कथि पण्डित होता है तथा जिसको वह पुस्तक देती है वह विश्वविख्यात कवीन्द्र होता है। स्वप्न में ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी किसीको महामन्त्र देवे तो वह विद्वान्, धनवान् एवं गुणवान् होता है। स्वप्न में सरोवर, समुद्र, नदी, नद, सफेद सर्प और सफेद पहाड़ को देखने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। दिव्य स्त्री जिसको स्वप्न में कहती है कि आप मेरे स्वामी हो और वह स्वप्न देखकर यदि जागता है तो निश्चय से राजा होता है।

आध्यात्मिकज्ञानवर्णनम्

श्रीकृष्ण द्वारा नन्दजी को आध्यात्मिक ज्ञान का उपदेश यह याग वेद एवं शास्त्रों में गुप्त रूप से बताया है जिसके अभ्यास से जन्म, मृत्यु, जरा एवं व्याधि नहीं होती है। यह संसार जलबुद्बुद की तरह है तथा मोह करनेवाला है। श्रीकृष्ण ने नन्दजी को गूढ़ महामन्त्र का उपदेश कर कहा इसे काशी मणिकर्णिका में जपना चाहिये, दुःस्वप्न, पाप का कारण एवं विघ्न हरनेवाला है। गौ को मारनेवाले, कृतघ्न आदि नीच पुरुषों का देखना पाप है। चन्द्र एवं सूर्य के ग्रहण को देखना निषिद्ध है। भाद्रशुक्ल चतुर्थी को चन्द्र का दर्शन नहीं करना चाहिए। यदि दर्शन हो जाय तो “सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः। सुकुमारक ! मा रोदीस्तव ह्येषः स्यमन्तकः॥” इस मन्त्र से जल को पवित्र कर पीने से उत्तम बताया है।

सूर्यग्रहणाख्यानम्

नन्दजी ने सूर्य एवं चन्द्रमा के ग्रहण के विषय में पूछा तब भगवान् बोले इस आख्यान को श्रवण करने से पाप नष्ट होते हैं। एक समय जमदग्नि रेणुका के साथ नर्मदातट पर विहार कर रहे थे। तब सूर्य ने कहा हे ऋषे ! आप ब्रह्मा के प्रपौत्र हैं, वेदों को जाननेवाले हैं, आपके शास्त्रों से सब मनुष्य कार्य करते हैं आप धर्म का त्याग कर रहे हैं वेद में दिन में मैथुन का दोष कहा है। मैं धर्म का साक्षी हूँ इसलिये आप से कहता हूँ। सूर्य के वचन सुन जमदग्नि ने मैथुन को त्याग कर क्रोधित हो सूर्य से कहा तुम पण्डितमानी कौन हो मैं सब शास्त्रों का ज्ञाता हूँ, हम वैष्णवों पर भगवान् के बिना कोई आज्ञा देनेवाला नहीं है। आज तुमने हमारा रास भङ्ग किया अतः राहुप्रसूत होओगे। जो बादल तुम्हारे को देखने आयेंगे वे दूर हो जायेंगे तथा वायु से प्रेरित हुए मेघ तुम्हें आच्छन्न करेंगे तथा

गर्व से हत हो जाओगे। जमदग्नि के वचन सुनकर भास्कर बोले—हे विप्रवर्य ! ब्राह्मण हमारे पूजनीय हैं लेकिन वैष्णवों को क्रोधित नहीं होना चाहिये। आपने मुझे शापित किया अतः मैं भी आपको शाप देता हूँ नहीं तो मुझे मनुष्य निस्तेज कहेंगे। क्षत्रिय के अस्त्र से आपका मरण होगा। सूर्य के वचन सुन जमदग्नि ने कहा तुम शम्भु से पराजय को प्राप्त होओगे। दोनों का कलह देख ब्रह्माजी का आगमन। ब्रह्मा ने सूर्य से कहा तुम कोई दिन क्षणभर घनान्ध्र होकर पुनः मुक्त हो जाओगे। न्यून एवं अधिक वर्ष में राहुमस्त होओगे वह ग्रहण कहीं दिखाई पड़ेगा कहीं नहीं अन्यथा पूर्ण ही दिखाई दोगे और भार्या के निमित्त असुर एवं साले से तुम्हारा तेज मलिन होगा। माली एवं सुमाली के युद्ध में शङ्कर से पराजित होओगे। फिर जमदग्नि से कहा हे विप्र ! तुम्हारी मृत्यु कार्तवीर्यार्जुन से होगी। पुनः तुम्हारा पुत्र २१ बार पृथ्वी को बिना क्षत्रियों की करेगा। इतना कहकर ब्रह्मा का स्वस्थान गमन। तथा सूर्य एवं जमदग्नि का भी अपने-अपने स्थान पर जाना। अब चन्द्रग्रहण के आख्यान को सुनो।

८०

चन्द्रग्रहणाख्यानवर्णनम्

६५६

चन्द्र द्वारा भाद्रशुक्ल चतुर्थी को मन्दाकिनी नदी पर स्नान करती हुई गुरुपत्नी तारा का हरण। तारा ने कहा—पतिव्रता ब्राह्मणी गुरुपत्नी को छोड़ो। गुरुपत्नी गमन से सौ ब्रह्महत्या का पाप होता है। तुम मेरे पुत्र हो तथा मैं तुम्हारी माता हूँ अपने धर्म की रक्षा करो। जब तारा के वचनों का अनादर कर उसे भोगने को उद्यत हुआ तो तारा ने शाप दिया कि तुम कलंकी, यक्ष्मा से पीड़ित तथा राहुमस्त होओगे। चन्द्रमा ने रोती हुई तारा को गोदी में बिठाकर नाना नदी, नद तथा पहाड़ों में रमण किया। चन्द्रमा ने असुर गुरु शुक्राचार्य को बलि के घर से आते देखा और उसकी शरण ली। शुक्र ने कहा—हे चन्द्र ! गुरुपत्नी का त्याग करो इससे हजारों ब्रह्महत्या का पाप होता है।

८१	ताराऽऽनयनार्थं शुक्रसमीपे देवानां गमनम्	६६२
	शुक्रशम्भुसंवादवर्णनम्	६६३
	चन्द्रग्रहणाख्यानम्	६६५

श्रीकृष्ण बोले—शुक्र ने चन्द्रमा को समझाते समय ही महती देवसेना को देवताओं के साथ आते देखा। रत्नमाला नदी के किनारे पुण्याश्रम में सुरसैन्य से आये हुए शङ्करजी को देखकर प्रणाम किया तदनन्तर शङ्कर का आशीर्वाद पुनः ब्रह्माजी ने शुक्र से नीतियुक्त वचन कहे। हे शुक्र ! चन्द्रमा की यह महती दुर्नीति है जो गुरुपत्नी से बलात्कार कर तुम्हारे शरण आया है। इसको लेने के लिये देव सेना आरही है उसीके निमित्त मैं तथा शङ्कर तुम्हारे पास आये हैं। शङ्कर ने कहा—हे विप्र यदि अपना कल्याण चाहते हो तो चन्द्र को लाओ मैं उस पापी का शिर त्रिशूल से नष्ट करूँगा। मेरे क्रोधित होने से दैत्यों का रक्षक कोई नहीं होगा। उतथ्य के शाप से बृहस्पति की स्त्री का हरण हुआ है। शरणागन की रक्षा न करने से चौदह इन्द्र भोगने के समय तक नरक में पड़ता है। पापी जिसकी शरण जाता है तो वह शरण में देनेवाला भी पापी ही माना जाता है। शुक्र की शङ्कर से प्रार्थना। चन्द्रमा का शङ्कर की शरण में जाना। उसको क्षीरोद में स्नान कराकर पवित्र कर दिया। योगीन्द्र शङ्कर ने उसके दो खण्ड कर आघे को अपने मस्तक पर और आघे को ब्रह्मा के सामने छोड़ दिया। लज्जित चन्द्रमा का क्षीरसमुद्र में देह त्याग। पुत्र वियोग से अग्नि के नेत्रों से समुद्र में जल गिरना। चन्द्रमा का निष्पाप हो समुद्र से प्रगट होना। महादेव ने कहा—हे चन्द्र ! अपने स्थान पर जाओ तारा के शाप से तुम्हें यक्षमारोग की प्राप्ति होगी क्योंकि पतिव्रता का शाप व्यर्थ नहीं जाता है किन्तु मेरे आशीर्वाद से तुम्हारा प्रतिकार हो जायगा। तुमने भाद्रशुक्ल चतुर्थी को गुरुपत्नी को क्षत किया है अतः उस दिन तुम्हें देरने से पापी होगा। शुभाशुभ कर्म विना भोगने से क्षय नहीं

हीन से मन्त्रग्रहण न करे। वयोहीन से मन्त्र लेने से अल्पायु, ज्ञानहीन से अज्ञानी, विद्याहीन से मूढ़ और जातिहीन से लेने पर विनाश होता है। मूर्ख से मूर्ख, आश्रमहीन से दुःखी, पिता से यश की हानि तथा सन्यासी से मन्त्र लेने से मृत्यु होती है। ब्राह्म के दिन हविष्याशी रहता हुआ संयमपूर्वक यात्रा, युद्ध करना, नदी के तीर पर जाना दुष्टारा भोजन और मैथुन न करें। कन्या विक्रय करनेवाले को सय से विशेष पातकी कहा है। जो मूल्य ग्रहण कर कन्या देता है वह महारौरव नरक में जाता है तथा कन्या के शरीर में जितने रोम हों उतने वर्षों तक पितरों के साथ कुम्भीपाक में पचता है। क्षत्रियों का धर्म है कि ब्राह्मणों की एवं नारायण की पूजा, राज्य की पालना, रण में निर्भयता, नित्य दान, शरणागत की रक्षा, पुत्रवत् प्रजा की रक्षा, शास्त्रास्त्र में निपुणता, नीतिशास्त्र के जाननेवाले की रक्षा एवं उसको सभा में नियुक्त करना चाहिये। वैश्यों का धर्म है घाणिज्य में चतुर, विप्र एवं देवताओं की पूजा, दान, तप एवं व्रत का सेवन करे। शूद्रों का धर्म है कि विप्रों की सेवा करे। सन्यासी का धर्म है “दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्” दण्डग्रहणमात्र से नर नारायण हो जाता है। अतः उसके पदस्पर्श से पृथ्वी एवं तीर्थ मनुष्यादि सब पवित्र होते हैं। सन्यासी को भोजन कराने से अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है। विधवा का धर्म है कि वह सदा निष्काम रहे व एक समय भोजन हविष्यान्न करे। दिव्य वस्त्र, गन्ध, तैल, पुष्पमाला, चन्दन, सिन्दूर को धारण न करे। परपुरुष को पुत्रवत् देखती हुई नारायण में अनन्य भक्ति करे। एकादशी, रामनवमी, जन्माष्टमी और शिवरात्रि आदि व्रतों में उपवास करें। विधवा स्त्री, यति, ब्रह्मचारी और सन्यासियों को ताम्बूल भक्षण एवं गोमांस मदिरा के समान बतलाया है। पतिव्रता के धर्म—पति की भक्तिपूर्वक सेवा चन्दना, पति में नारायण का भाव रखना एवं उसका आज्ञा का पालन करना बताया है। स्त्री परपुरुष के मुरा का अवलोकन, यात्रा, महोत्सव, नृत्य, गायन एवं परक्रीड़ा न देखे। पति का संग एक क्षण भी न छोड़े। पति पर पुत्रों से भी सौगुना प्रेम

करे। यथा—“पतिर्वन्धुर्गतिर्मर्त्ता दैवतं कुलयोपितः” सती स्त्री हजार पुरुषों को उद्धार करती है एवं पतिव्रताओं का पति सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है। सती के चरणों में सम्पूर्ण तीर्थ तथा सम्पूर्ण देव मुनियों का तेज विराजमान है। स्वर्ग भगवान् नारायण, ब्रह्मा, शङ्कर और समस्त देव मुनिगण सती स्त्रियों से निरन्तर भयभीत रहते हैं। सती की चरणरज से पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है एवं मनुष्य पतिव्रता को नमस्कार कर सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है। पतिव्रता के तेज से त्रिलोकी क्षणभर में भस्म हो सकती है। सती स्त्री प्रातःकाल उठकर अपने पति को प्रणाम करे पश्चात् सम्पूर्ण गृहकार्य कर शुद्ध वस्त्र पहन अपने पति का पोडशोपचार विधि से पूजन “ॐ नमः कान्ताय शान्ताय सर्वदेवाग्रयाय स्वाहा” इस मन्त्र से करे। पति स्तोत्र का पठन करे। पतिव्रता को पति स्तोत्र का पठन करने से सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति होती है।

८४	गृहिणां धर्मवर्णनम्	६७८
	त्रिविधभक्तानां लक्षणं फलञ्च	६८१
	कृष्णस्य वामभागाद्भगवत्या उत्पत्तिः	६८३
	ब्रह्माण्डवर्णनम्	६८५

श्रीकृष्ण थोले—गृहस्थ को चाहिये कि द्विज, देवों का पूजन एवं स्वधर्म का आचरण नित्य करे। गृहस्थियों की सम्पूर्ण देवादिक आशा करते हैं। कर्मकाल में पितर एवं तिथिकाल में देवता गृहस्थी के घर आते हैं। अतिथि की पूजा अवश्य करनी चाहिये। जिसके घर से अतिथि निराश होकर चला जाता है उसके यहां से पितर, देव, अग्नि निराश होकर चले जाते हैं।

अभ्यागतं परिश्रान्तं सायज्जं योऽभिषीक्षते।

तत्क्षणादेव नश्यन्ति तस्य धर्मयशःश्रियः॥

(ब्रह्मपुराण अ० १६३ श्लोक २१)

पोष्यवर्गों का भरण पोषण कर गृहस्त्री स्वयं भोजन करे। जिस पुरुष के माता नहीं है और पत्नी कुलटा अथवा मर गई हो उसे घन में चला जाना चाहिये। उसके लिये घन से भी अधिक दुःखदायक घर है। गृहिणी पतिभक्ता एवं देव, ब्राह्मणों की पूजन करनेवाली होनी चाहिये। गृहकृत्य से निवृत्त हो स्नान कर रतिदेव और ब्राह्मण की पूजन कर पतिपुत्रादिकों को स्नान करा अतिथि सरकार कर स्वयं भोजन करे। पुत्र एवं शिष्य, पिता तथा गुरु को आज्ञा न दे तथा उनमें साधारण मनुष्य के समान भाव न रखे। पिता, माता, गुरु स्त्री, शिष्य, पुत्र, सदा क्षमा चाहनेवाला, अनाथ भगिनी, कन्या और गुरुपत्नी सदा ही पोष्य कहे हैं। पतिव्रता स्त्री सदा ही शुद्ध है। केदार कन्या के शाप से जय धर्मराज नष्ट हो गये तब क्रोधित ब्रह्मा ने तीन प्रकार की स्त्री जाति का निर्माण किया। जैसे उत्तमा, मध्यमा, और अधमा। उत्तम स्त्री धर्मयुक्ता एवं पतिभक्ता होती है तथा प्राणान्त (अत्यन्त कष्ट) में भी पर पुरुष की सेवा नहीं करती है। मध्यम स्त्री बड़े पुरुषों से रक्षा की गई तथा डर से अन्य पुरुष की सेवा नहीं करती है। अधम स्त्री अत्यन्त दुष्ट, अधर्म करनेवाली तथा पतिसेवा न करनेवाली एवं कलह करनेवाली होती है। तीन प्रकार के भक्तों का लक्षण एवं फल का वर्णन। ब्रह्माण्ड की रचना को भक्त जानते हैं। मुनि, देव और सन्त कष्ट से जानते हैं सम्पूर्ण संसार के अर्थ को मैं जानता हूँ। ब्रह्मा, अनन्त, महेश्वर, धर्म, सनत्कुमार, नर, नारायण, कपिल, गणेश, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, वेद, वेदमाता एवं सर्वज्ञ राधा विश्व के अर्थ को जानते हैं अन्य नहीं। गोलोक में भगवान् के चाम अङ्ग से सोलह वर्ष की बालिका की रचना हुई वही वेदमाता सावित्री, गायत्री आदि नामों से विख्यात हुई। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना का वर्णन।

चतुर्णां वर्णानां भक्ष्याभक्ष्यवर्णनम्
कर्मविपाकवर्णनम्

नन्दजी द्वारा पूछे गये चारों वर्ण के भक्ष्याभक्ष्य एवं कर्मविपाक के उत्तर में भगवान् ने कहा—ताम्बे और लोहे के वर्तन में दूध, नारियल का जल, लवण-युक्त दूध, जला हुआ अन्न, मधु से मिला हुआ घृत, तैल एवं गुड़ और पीने के बाद बचा हुआ जल अभक्ष्य एवं अपेय कहा है। सन्ध्या समय व दिन में दो बार भोजन निषेध कहा है। जल, दूध, चूर्ण, घृत, लवण, स्वस्तिक, (जलेबी) गुड़, क्षीर (खीर), तक्र (छाछ) और मधु अपने हाथ से दूसरे के हाथ में देना गोमांस के समान बताया है। चाँदी के पात्र में रक्खा हुआ कपूर भी अभक्ष्य है। भोजन के समय परोसनेवाला यदि खानेवाले को स्पर्श कर जाय तो वह अन्न सबके लिये अभक्ष्य है। नेवला, गेंड़ा, महिष, पक्षी, सर्प, शूकर, गर्दभ, बिलाव, व्याघ्र, सिंहादि पशु, जलजन्तु मकरादि, गौ, हाथी घोड़े आदि मच्छर मक्षिकादि और बानर आदि को मारना एवं उनका मांस भक्षण करना मनुष्यमात्र के लिये निषिद्ध है। भैंस व अजादि का दूध, दही व घृत का भक्षण नहीं करना चाहिये। विष्णुस्मृति में आया है—“न भक्ष्ये अजामहिपीक्षीरे।” हे नन्दजी! शुभ एवं अशुभ कर्म भोगने से ही क्षय होता है अन्यथा नहीं। अच्छे कर्म करने से स्वर्ग प्राप्ति व दुष्कर्म करने से नरक प्राप्ति होती है। गोहत्या करनेवाला गौ के लोम के जितने वर्ष पर्यन्त बिच्छू की योनि को प्राप्त हो पश्चात् अन्योन्य योनि में जाता है। ब्रह्महत्या करनेवाला विष्ठा का कीड़ा होता है व स्त्री हत्या करनेवाला अति पातकी कहा गया है तथा कालमूत्र नरक में जाता है। खजाना, फल व माया से धन हरण करनेवाला यक्ष हो सौ वर्ष तक चाप पक्षी होता है। पुनः भूतवर्ष में कृष्णवर्ण शूद्र बन दूसरे जन्म में अधिक अन्नवाला ब्राह्मण होता है। तत्पश्चात् ब्राह्मणरूप में पुनः प्रगट हो ब्राह्मणों को भोजन करवाने से मुक्त होता है।

वंशहीन मनुष्य को एक लाख ब्राह्मणभोजन कराने से पुत्र प्राप्ति हो सकती है। क्रोधी मनुष्य सात जन्म पर्यन्त गदहा और कलहकारी सात जन्मतक कौआ होता है। आचारहीन मनुष्य, यवन, हिंसा करनेवाला, गङ्गा, अदीक्षित वट्टर, दुष्ट दृष्टि से देखनेवाला-फाना, अहंकारी-कर्णहीन, वेद का निन्दा करनेवाला-यहरा, पाष्य हरण करनेवाला-गंगा, हिंसक-केशहीन, मिथ्या धोलनेवाला-मूढ़ हीन और पुस्तक चोरी करनेवाला भूय होता है। अकेला मिष्टान्न खानेवाला कालसूत्र नरक भोगकर पुनः नाना योनियों में जाता है। मनुष्यों में सुनार, स्वर्णवणिक् (कोई जाति विशेष होती है) कायस्थ ये धूर्त एवं कृपाहीन होते हैं। इनका हृदय छूरे की धार के समान एवं आदरभाव भी इनमें नहीं होता है। सौ में कोई एक कायस्थ सज्जन होता है। उपरोक्त दो नहीं होते अतः बुद्धिमान् मनुष्य इनमें विश्वास कम कर। प्रातःकाल शयन करनेवाला, संध्या व दिन में सोनेवाला, यज्ञोपवीत का हरण करनेवाला, त्रिकाल संध्या से हीन, अशुद्ध संध्या करनेवाला और वेदवेदाङ्ग की निन्दा करनेवाला व्यक्ति तीन जन्म में पतित हो जाता है तथा स्वर्गमार्ग उसे नहीं मिलता है। एकादशी, शिवरात्रि, रामनवमी व जन्माष्टमी को भोजन करने से पाण्डाल योनि में जाता है। उपवास करने में असमर्थ हो तो हविष्यान्न भक्षण करे। जो मनुष्य ब्राह्मण और देवता को नमस्कार नहीं करता है वह जीवनपर्यन्त अशुचि व यवन कहा गया है। जो आये हुए ब्राह्मण को प्रणाम नहीं करता है वह ब्रह्मघाती कहा गया है। शास्त्र जाननेवाला ज्योतिषी लोभ के वशीभूत हो भूठ कहता है वह सात जन्म तक बड़ा वानर होता है। नदियों में गङ्गा, तीर्थों में पुष्कर, नगरियों में काशी, ज्ञानियों में शङ्कर, शास्त्रों में वेद, वृक्षों में अश्वत्थ, तपस्याओं में भगवान् की पूजा और जातियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण जाति है। अध्याय का फल तभी है कि वाचक को सुवर्ण, रौप्य, वस्त्र, और ताम्बूल दान किया जाय।

नन्दजी के द्वारा केदार कन्या का विवरण पूछने पर श्रीकृष्ण बोले—स्वायम्भुव मनु के प्रियव्रत व उत्तानपाद दो पुत्र हुए। उत्तानपाद के ध्रुव उसके नन्दसावर्णि और उसके केदार नामक पुत्र हुआ। वह राजा पूर्ण दानी व सदाचारी तथा ब्राह्मणों का भक्त था। कमला की कला से उत्पन्न हुई तथा यज्ञकुण्ड से पैदा हुई कन्या की उसे प्राप्ति हुई। कन्या ने कहा मैं तुम्हारी पुत्री हूँ। राजा ने उसे भक्तिपूर्वक अपनी पत्नी को अर्पण किया। केदार कन्या कृष्ण के लिये तप करने लगी। ब्रह्मा ने वरदान दिया कि तुम्हें बाद में कृष्ण की प्राप्ति होगी। एक समय नदी तटपर बैठी हुई कन्या की परीक्षा लेने धर्म आया। कन्या ने युवावस्थावाले सुन्दर पुरुष को देखकर पूजन किया और कहा—आप साक्षात् विप्ररूपी भगवान् हैं। धर्म ने कहा—तुम किसकी पुत्री हो? तुम्हारा क्या नाम है? किस निमित्त तुमने तप किया है? जो इच्छा हो सो वर मांगो। वृन्दा ने कहा हे विप्र! मैं केदार कन्या हूँ, वृन्दा मेरा नाम है तथा भगवान् कृष्ण को पतिरूप में पाने के लिये तप करती हूँ यदि आप देने में समर्थ हैं तो मुझे यही वर दीजिये। तब धर्मराज ने कहा—श्रीकृष्ण परब्रह्म परमात्मा है उनको लक्ष्मी एवं सरस्वती के सिवा अन्य कौन पासकता है। ब्रह्मस्वरूपा राधा उनकी स्त्री हैं। सम्पूर्ण देव, इन्द्र भगवान् की स्तुति करते हैं। सम्पूर्ण विमूति उन्हीं की है। गोलोक में राधा ही भगवान् की सेवा कर सकती है अन्य नहीं। अतः तुम मुझे धरण करो मैं सब राजाओं का स्वामी हूँ मेरे पास आने से तुम्हें सम्पूर्ण संसार के भोग प्राप्त होंगे। श्रीवृन्दा ने कहा—हे महाभाग! ब्राह्मणों के लिये तप, सत्य एवं धर्म वेदव्रत ही उत्तम कहा है। परस्त्री से सम्भोग करना अधर्मियों का कार्य है। अधर्म करने से अमङ्गल कार्य का फल देखता है। उसे साक्षात् धर्मराज दण्ड देते हैं।

हे विप्र ! मैं तुम्हें भस्म कर सकती हूँ किन्तु “अवध्याश्च द्विजातयः” द्विजाति अवध्य कहे हैं। कृष्ण द्वारा स्थापित किया गया धर्म मेरी रक्षा करता है। येन शुद्धीकृता हंसाः शुकाश्च हरितीकृताः। मयूराश्चित्रिता येन स मे रक्षां करिष्यति

तत्पश्चात् धर्म को शाप कि तुम्हारा क्षय होगा। जब यमराज शाप देने लगे तब सूर्य ने रोका। तत्पश्चात् ब्रह्मादि देवों ने धर्मराज के जीवदान के निमित्त स्तुति की। तब वृन्दा ने कहा—मैं विप्ररूपी धर्मराज को नहीं जानसकी अतः क्रोधित हो शाप दिया है। यदि मेरा व्रत, तप, सत्य और विष्णुपूजन सत्य है तो यह ब्राह्मण जीवित हो जाय। पुनः कलारूप धर्मराज को वृन्दा ने गोद में बैठाया। धर्मपत्नी मूर्ति ने भगवान् से प्रार्थना की हे महाराज ! मेरे पति को जीवदान दो पतिहीन स्त्री संसार में पापिनी कही जाती है। तब भगवान् ने वृन्दा से कहा—हे देवि ! जितनी ब्रह्मा की आयु है वह तुमने तप कर प्राप्त की है अतः वह आयु धर्म को देकर गोलोक में जाओ पीछे वृषभानु की पुत्री होओगी तब मुझे प्राप्त करोगी। वृन्दा ने कहा—हे देवगण ! मेरे वचन मिथ्या नहीं हो सकते। मेरे मुख से तीन बार क्षय होने का वचन निकला है अतः सत्ययुग में पूर्ण पाद, त्रेता में त्रिपाद, द्वापर में द्विपाद और कलियुग में एकपाद हो पुनः पूर्ण हो जायगा। इतना कह वृन्दा का गोलोक में गमन।

८७ सनत्कुमारादिभिः सह कृष्णस्य समागमः १००६

आत्मयाथार्थ्यवर्णनम् १०११

दक्षकालनिर्णयवर्णनम् १०१३

नन्दजी ने पूछा कि हे कृष्ण तुम्हें वेद, देव, ब्रह्मा, ईश, शेष और मुनि सिद्धादिक नहीं जान पाते हैं अतः तुम्हारे यथार्थ स्वरूप का वर्णन करो। इसके बाद सनक, सनातन आदि ऋषियों का कृष्ण के पास आगमन। सनत्कुमार का

श्रीकृष्ण का परब्रह्म के विषय में विचार। श्रीकृष्ण बोले—हे सनत्कुमारजी ! मैं ही यह, व्रत और तपस्याओं का दक्षिणा के साथ फल देनेवाला हूँ। पुनः ब्रह्मा एवं पार्वती सहित शङ्कर व अन्य देवादिकों का आगमन। सनत्कुमार बोले—मैंने गोलोक में भगवान् को नहीं पाया तब मैं वैकुण्ठ में गया। उसके बाद क्षीरोद के पास वहाँ मैंने थकावट को दूर करने के लिये स्नान किया पुनः सौ योजन में फैले हुए कच्छप को बालुका में देखा। राघवमत्स्य ने उसका उद्धार किया। तब मैंने कहा—हे भक्त ! तुम धन्य हो। उसने कहा—मेरे से धन्य क्षीरसागर है। क्षीरोद ने कहा मेरे से धन्य पृथ्वी है। पृथ्वी ने कहा—मेरे से धन्य शैव है। इस तरह उत्तरोत्तर धन्य कहते हुए दक्षिणा को सबसे अधिक धन्य कहा है। भगवान् दक्षिणा से फल देते हैं बिना दक्षिणा के यह फल नहीं देता। इतना सुन नन्द आश्चर्य चकित हो गये तथा उन्हें मूर्छा आ गई। पश्चात् भगवान् द्वारा उनको चेतना की प्राप्ति हुई।

८८	कृष्णस्य शक्तिदर्शने नन्दस्य मोहः	१०१४
	शिवकृतं भगवतीस्तोत्रम्	१०१५
	दुर्गाया वरप्रदानम्	१०१७

श्रीकृष्ण बोले—हे तात ! चेतना प्राप्त कर उठो। यह संसार जलबुद्बुद की तरह है। मोह को छोड़ो ब्रह्मस्वरूप पाकर भगवती की स्तुति करो। जिस स्तोत्र को पढ़कर शम्भु ने त्रिपुरासुर को मारा वह तुम्हें कहता हूँ। श्रीकृष्ण ने कहा—रण में दुःखित शङ्कर को देखकर ब्रह्मा ने कहा—दुर्गा की स्तुति करो शक्ति की सहायता के बिना कोई भी किसी को नहीं जीत सकता। ब्रह्मा के वचनों को सुनकर रणप्रसन्न शङ्कर द्वारा दुर्गा की स्तुति की गई। शङ्कर ने कहा हे महामाये ! मेरे ऊपर दया कर शत्रु का संहार करो। तब दुर्गा ने कहा—आप माया शक्ति से असुर का संहार करो। पुनः भगवती ने कहा—वर मांगो।

शङ्कर ने कहा—दैत्य नष्ट हो यही वरदान दीजिये । भगवती ने कहा—हरि का स्मरण करो । शङ्कर का भगवान् का स्मरण करना एवं वृपरूप भगवान् द्वारा बापी पान व शङ्कर द्वारा त्रिपुर का संहार । इस स्तोत्र राज को पढ़ने से महा बन्ध्या भी पुत्र पैदा कर सकती है । यह स्वराज हर एक व्यक्ति को नहीं देना चाहिये यह परम गोपनीय है । दुर्गा का अपने स्थान को गमन ।

८६

नन्दप्रति श्रीकृष्णवाक्यम्

१०१६

श्रीकृष्ण ने कहा—हे ब्रजराज ! आपने सब तत्व जान लिया है ब्रज में जाइये । मेरे बालभाव के अपराधों को क्षमा कीजिये । यशोदा के साथ यहां के सुख भोग रोहिणी, गोपिका, राधा की माता कलावती एवं राधा के साथ गोलोक में जावेंगे । गोलोक से अमूल्य रत्नों से युक्त एक कोटि रथ आयें तो आप यह शरीर छोड़ दिव्य रूप धारण कर गोलोक में जावेंगे । नन्दजी ने कहा—हे कृष्ण ! चारों युग के धर्म विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये । कलियुग में पृथिवी, धर्म एवं प्राणियों की क्या गति होगी ? तत्पश्चात् कृष्ण द्वारा मधुर कथा का कथन ।

६०

चतुर्युगाणां धर्मादिकथनम्

१०२१

कलिधर्मादिकथनम्

१०२४

श्रीकृष्ण ने कहा—सत्ययुग में सम्पूर्ण मनुष्य धार्मिक थे तथा धर्म, सत्य व दया पूर्ण रूप से विराजमान थे । वेद, वेदाङ्ग, इतिहास, पुराण, संहिता, पञ्चरात्र और धर्मशास्त्र पूर्ण रूप में थे । ब्राह्मण वेदों के जाननेवाले व भगवान् के परम भक्त थे । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चारों वैष्णव थे । शूद्र ब्राह्मणों की सेवा करनेवाले, राजा लोग धार्मिक, शिष्य गुरुभक्त, पुत्र पितृभक्त, स्त्रियां पतिभक्ता व पतिव्रता थी । ब्राह्मणों से कर नहीं लिया जाता था । सब ऋतु-कालाभिगामी थे एवं कोई भी स्त्रीलोभी, लम्पट न थे । पृथ्वी पूर्णफल देनेवाले और

गौएँ पूर्ण दूध देनेवाली तथा मनुष्य सब बलवान् तथा सुन्दर थे उनमें कईएक पुरुष लक्ष वर्षकी आयु प्राप्त करते थे। सब स्त्री-पुरुष पण्डित थे। कोई भी रोगी, धूर्त, पापी और पाखण्डी नहीं थे। त्रेता में धर्म तीन पाद, द्वापर में दो पाद तथा कलियुग में एक चरण से विराजमान है। जबतक पृथ्वी पर देव एवं शास्त्रों की पूजन है तबतक सत्य एवं धर्म का अंश रहेंगे। नन्दजी ने कहा—तीर्थ, साधु, ग्राम्यदेव और शास्त्र पृथ्वी पर कबतक रहेंगे ? श्रीकृष्ण बोले—कलियुग में १० हजार वर्ष पर्यन्त भगवान् पृथ्वी पर रहेंगे। देवताओं की प्रतिमा, शास्त्र एवं पुराणों की पूजा भी उतने ही वर्ष तक तथा गङ्गा नदी तीर्थ ५ हजार वर्ष पर्यन्त रहेंगे। पूर्ण अधर्म होने से चारों वर्णों का एक ही वर्ण बन जायगा। मन्त्रयुक्त विवाह, सत्य, क्षमा आदि न रहेंगे। सभी अभक्ष्य भक्षण करकेवाले, लोभी एवं सन्ध्या व शास्त्रों से विहीन हो जायेंगे। नारियों में कोई भी सती न होगी। वे घर-घर में कुलटा और कलहकारिणी होंगी। पुत्र द्वारा पिता का तिरस्कार व शिष्य द्वारा गुरु का तिरस्कार होगा। निर्धन मनुष्य, भूमि धान्यहीन, दूध हीन गौ, शौचसन्ध्याहीन ब्राह्मण सब स्वच्छन्द विचरनेवाले, शिशुनोदर परायण, जातिहीन गुरु, म्लेच्छ राजा लोग, यवन एवं धर्म की निन्दा करनेवाले होंगे। नदी, नद, कन्दरा, तालाव और सरोवर सारे ही जल एवं पश्यों से हीन होंगे। मनुष्य कटु बोलनेवाले व निर्दय होंगे। कलियुग के बाद सत्ययुग की प्रवृत्ति होगी। हे नन्दजी ! काल सम्पूर्ण कार्य करता है। वही सृष्टि की रचना करनेवाला, पालक, संहारकर्ता, विरोध, विच्छेद व प्रीति करता है। नन्दजी ने कहा—हे कृष्ण प्राणों से भी अधिक प्रिय राधा का स्मरण कैसे नहीं करते हो ? एक बार कुछ दिन के लिये गोकुल चलो। इतना कह नन्द द्वारा नेत्रों के जल से श्रीकृष्ण को सिंचन करना।

श्रीभगवान् बोले—मेरे आने-जाने का कारण शीघ्र ही उद्धवजी कह देंगे । वसुदेव, देवकी, बलदेव, अक्रूर और उद्धव का आगमन । वसुदेवजी ने कहा—हे नन्द ! आप पूर्ण ज्ञानी हैं तथा मेरे मित्र हैं । महोत्सव में पुत्र का दर्शन अवश्य करेंगे । देवकी ने कहा—जैसे यह हम दोनों का पुत्र है वैसे आपका भी है । पुत्र के साथ मथुरा में कुछ समय ठहरिये । भगवान् ने कहा—हे उद्धव ! ब्रज में जाकर ब्रजवासियों को आध्यात्मिक ज्ञान दे नन्दजी की रहने की स्थिति व मेरी विनय माता से कह देना । इतना सुन उद्धवजी का घृन्दावन गमन ।

नारायण बोले—श्रीकृष्ण की आज्ञा से उद्धवजी श्रीगणेश को प्रणाम कर नारायण, शंभु, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और महेश का स्मरण कर मङ्गलसूचक पदार्थों को बँटते हुए जाना । उद्धवजी का यशोदा व रोहिणी के साथ वार्तालाप । यशोदा का घृन्दारण्य की देवता भवानी का पूजन करना । उद्धव का गोकुल की शोभा का देखना । सुन्दर रासमण्डल का देखना तथा गोकुल व घृन्दावन की शोभा का वर्णन । उद्धव द्वारा राधा की स्तुति । उद्धवकृत स्तोत्र पढ़ने से बन्धुविच्छेद, रोग व शोक नहीं होते हैं ।

उद्धव की स्तुति को सुन - ने काले रंग के मुख पर ? कृष्णाकृति होने से आप कौन हैं ? आपका क्या ? और क्यों जाये हैं ?

श्रीभगवान् बोले—मेरे आने-जाने का कारण शीघ्र ही उद्धवजी कह देंगे ।
 वसुदेव, देवकी, बलदेव, अक्रूर और उद्धव का आगमन । वसुदेवजी ने कहा—
 हे नन्द ! आप पूर्ण ज्ञानी हैं तथा मेरे मित्र हैं । महोत्सव में पुत्र का दर्शन अवश्य
 करेंगे । देवकी ने कहा—जैसे यह हम दोनों का पुत्र है वैसे आपका भी है । पुत्र के
 साथ मथुरा में कुछ समय ठहरिये । भगवान् ने कहा—हे उद्धव ! व्रज में जा
 व्रजवासियों को आध्यात्मिक ज्ञान दे नन्दजी की रहने की स्थिति व मेरी नि
 माता से कह देना । इतना सुन उद्धवजी का घुन्दावन गमन ।

गोकुलं गत्वा तच्छोभादिदर्शनम्
 गोकुलशोभावलोकनम्
 उद्धवकृतं राधास्तोत्रम्

नहीं सकती । काल की गति बलवान् है मेरे को बोधित कराने में सावित्री, सरस्वती, वेद, वेदाङ्ग, सन्त, देवता, अनन्त, शम्भु, गणेश, विधाता या कोई भी समर्थ नहीं हैं ।

स्थितेर्गतिश्चिन्तनीया मार्गशून्ये कुतो गतिः ।

कालसाध्यश्च सर्वश्च सुखंदुःखं शुभाशुभम् ॥

हे उद्धव मधुरा जाओ और श्रीकृष्ण का मुख देखो । राधा का वचन सुनकर उद्धवजी का रोदन करना ।

६६	राधोद्धवसंवादवर्णनम्	१०४८
	कालवर्णनम्	१०५१

श्रीनारायण बोले—राधा के चरणों में नतमस्तक एवं रोते हुए उद्धव को माधवी ने कहा—हे उद्धव ! क्षण भर ठहरकर राधा से गुप्त ज्ञान की प्राप्ति करो । उद्धव ने श्री राधा से कहा कि प्राणी अकेला ही पृथ्वी पर आता है और अकेला ही जाता है । कर्मों के अनुसार पैदा होता और कर्मों के अनुसार ही जाता है । हे देवि ! जो आपने मुझे रत्नावि दिये हैं वे मेरे साथ जायेंगे नहीं उनसे मेरा क्या प्रयोजन है इस लिये मुझे संसार समुद्र से पार होने का उपाय कहिये । उद्धव के वचन सुन हँसकर राधा ने कहा हे उद्धव ! माधवी के वचन से तुमने प्रश्न किया है किन्तु मैं खी जाति हूँ क्या ज्ञान देसकती हूँ । शुद्ध काल की गति भगवान् जानते हैं किन्तु गोलोक के रासमण्डल में कालगति देखी है वह तुम्हें कहती है । मनुष्य सम्पूर्ण संसार के स्वामी कालरूपी भगवान् को सेवन करने से पार हो सकता है । वही भगवान् रविरूप से पुण्यात्मा एवं शुद्ध भक्तगण तथा सब की आयु हरण करते हैं । हे उद्धव ! विधाता के मानसिक पुत्र सनकादिकों को देखो जो हानियों को भी शुद्ध एवं अवस्था में पांच वर्ष के हैं । इनका स्मरण करने से हरि की भक्ति व तीर्थ स्नान का फल मिलता है । मार्कण्डेय को देखो जो

भगवान् की सेवा से चिरायु (लम्बी उम्रवाला) हो गया है। परशुराम, बलि, हनुमान् व्यास, अश्वत्थामा, विभीषण, कृपाचार्य, जाम्बवान् तथा अन्य सिद्धेन्द्र व नरेन्द्रों में, नरों में एवं दैत्यों में प्रह्लाद को भगवान् की सेवा करने से ही दीर्घायु प्राप्त हुई है। जो हरि की सेवा नहीं करते हैं, वे मूर्ख हैं। हे बत्स ! मैं तुम्हें कालगति का वर्णन कहती हूँ। सम्पूर्ण आधारों का स्थान महान् विराट् है उसके रोमों में असंख्य विश्व विराजमान हैं। सबसे परम सूक्ष्म परमाणु है दो परमाणु से एक अणु, तीन अणु से एक त्रसरेणु, तीन त्रसरेणु से एक त्रुटि, सौ त्रुटियों से एक वेध, तीन वेध से एक लव, तीन लव से एक निमेष तीन निमेष से एक क्षण, पाँच क्षण से एक काष्ठा, दश काष्ठा से एक लघु, पन्द्रह लघु से एक वण्ड, दो वण्डों से एक मुहूर्त और साठ वण्डों की एक तिथि होती है। साठ वण्डों का आठवाँ हिस्सा एक प्रहर, चार प्रहर की रात्रि व चार प्रहर का दिन होता है। पन्द्रह तिथि से एक पक्ष तथा दो पक्षों से एक मास, दो मास से एक ऋतु तथा छै ऋतुओं से एक वर्ष होता है। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्व, हेमन्त और शिशिर ऋः ऋतुएँ होती हैं। वैशाख, ज्येष्ठ आदि बारह मास, ऋः मास का दक्षिणायन और ऋः मास का उत्तरायण होता है। प्रतिपदादि तिथि, अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र, विष्कुम्भ आदि योग और षड, बाळव आदि करण कहे गये हैं। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि ये युग कहे गये हैं। यही कालसंख्या का निर्णय बताया है।

६७

राधोद्धवसंवादवर्णनम्

१०५४

उद्धवाय ज्ञानप्रदानम्

२०५५

उद्धवस्य मधुरास्यप्रतिगमनम्

श्रीनारायण बोले—जाते हुए उद्धव को देख राधा द्वारा शुभाशीर्वाद एवं मङ्गलसूचक शकुन्तों का दिखाना।

शुभंभवतुमार्गस्ते कल्याणमस्तु सन्ततम् । ज्ञानं लभ हरेः स्नानात् कृष्णस्य मुप्रियो भव
 राधा ने कहा जो कर्म श्रीकृष्ण के निमित्त किये जाते हैं वे ही उत्तम कहे
 गये हैं । वेद के कौथुमि शाखा में नन्दनन्दन नाम से हजार नाम बताये हैं जो
 विघ्नों को दूर करनेवाले हैं । उद्धव का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर मूर्छित होना पुनः
 चेतना प्राप्तकर वह बोले भारतवर्ष में घृन्दावन धन्य है और राधा के चरणों से
 पवित्र पृथ्वी भी धन्य है । सन्तगण राधिका की नित्य सेवा करते हैं । जो पापी
 राधा की निन्दा करते हैं उन्हें सैकड़ों ब्रह्महत्याओं का पाप लगता है । वह उसी
 पाप से कुम्भीपाक व रौरव नरक में जाता है । तप्त तैल में चौदह इन्द्रों पर्यन्त
 सात पितरों के साथ रहता है । राधा के आदेश से उद्धव का मथुरा गमन ।

६८

कृष्णोद्धव संवादवर्णनम्

१०४८

यशोदा को प्रणाम कर उद्धव का खर्जूर वन के वाम भाग से होकर यमुना-
 तट गमन । श्रीकृष्ण और उद्धव का परस्पर वार्तालाप । हे उद्धव ! गोकुल में
 यमुनानदी के किनारे घृन्दावन, क्रीडासरोवर, भाण्डीरघट, गोस्थान देखा होगा
 तथा राधा व अन्य गोपियों ने क्या कहा है । बलदेव की माता रोहिणी, मेरी
 माता यशोदा, और प्रेम से विकल हुई राधा मेरा स्मरण करती होगी ।
 उद्धव ने कहा हे कृष्ण ! आपके कथनानुसार सम्पूर्ण वस्तुयें मैंने देखीं । राधा की
 आपमें अनन्य भक्ति है उनको छोड़ना उचित नहीं । मैंने राधा से कह दिया
 है कि श्रीकृष्ण तुम्हारे पास जल्दी ही आयेंगे । उद्धव के वचन सुन श्रीकृष्ण
 का हंसना और उद्धव का खगृह गमन । श्रीकृष्ण का स्वप्न में गोकुल गमन ।
 व्रजवासियों को प्रसन्न कर पुनः मथुरा आगमन ।

श्रीनारायण बोले—वसुदेव के घर गर्ग मुनि का आगमन । वसुदेव और देवकी ने गर्गजी की पूजा कर प्रणाम किया । गर्ग ने कहा—हे वसुदेव ! बलराम और श्रीकृष्ण यज्ञोपवीत संस्कार के योग्य हो गये हैं अतः शुभमुहूर्त में यह संस्कार होना चाहिये । श्रीकृष्ण द्वारा इस संस्कार के निमित्त सम्पूर्ण मुनीन्द्र व सिद्धों का स्मरण करना । शुभ दिन में मुनीन्द्र, बान्धव, राजा लोग देव, देवकन्या, नागकन्या, ब्राह्मण, भिक्षुक, सन्यासी, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती, युधिष्ठिरादि पाँचों भाई, नाना देशों के राजा, अत्रि आदि ऋषि, ब्रह्मा, पार्वती सहित शंकर, नन्दी आदि गण, गणेश, धर्म, चन्द्र और कुबेरादि देवों का वसुदेव के स्थान पर आगमन । सर्व प्रथम गणेश का पूजन कर वसुदेव द्वारा आये हुए समग्र नर-नारियों का सत्कार व पूजा करना । वसुदेव द्वारा पार्वती पुत्र गणेश की प्रार्थना ।

श्रीनारायण बोले—देवकी द्वारा सम्पूर्ण नारियों का सत्कार । पार्वती का पूजन कर मुनिकन्या, मुनिपत्नी और वन्धु कन्याओं का पूजन । गायन एवं वाद्ययन्त्रों के साथ मधुरा प्राम की देवता भैरवी व मङ्गलचण्डी का पूजन, ब्राह्मणों का पूजन तथा उनको भोजन कराया गया । बलराम और श्रीकृष्ण का शुद्ध गङ्गाजल से स्नान कर तथा सुन्दर वस्त्र पहनकर सभा में आगमन । चराचर के मालिक श्रीकृष्ण को देव विधाता, शंकर, शेष, धर्म, सूर्य, देव, मुनि, कार्तिकेय और गणेश द्वारा 'अलग-अलग, 'स्तुति, 'हरमः', 'इस-उसके, 'पूजापाठके, 'पढ़नेवाला, 'सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर रत्नयान में बैठकर गोलोक में जाता है ।

१०१

भगवदुपनयनवर्णनम्

१०६७

श्रीनारायण बोले—बलराम और श्रीकृष्ण ने शुभलग्न व शुभमुहूर्त में स्वस्तिवाचन कर ब्राह्मणों को सुवर्ण दान दे गणेश, सूर्य, वह्नि, शंकर और पार्वती की षोडशोपचार से पूजन कर नवग्रह व षोडश मातृकाओं का पूजन किया तदनन्तर मुनि गर्ग ने वृद्धि श्राद्ध कराकर बलदेव और श्रीकृष्ण को गायत्री मन्त्र का उपदेश किया। प्रथम दोनों का पार्वती से भिक्षा लाना फिर यशोदा, रोहिणी आदि सम्पूर्ण स्त्रियों से भिक्षा लाना। सभी ने मणि रत्नादिकों की भिक्षा दी। उन्होंने उस भिक्षा को लेकर कुछ गर्ग के लिये और कुछ अपने गुरु को दिया। वैदिक कर्म समाप्त होनेपर गर्गजी को दक्षिणा दी गई। जो महोत्सव में आये थे वे, दोनों को शुभाशीर्वाद देकर अपने-अपने घर चले गये। तन्द-यशोदा का रोदन करना तथा श्रीकृष्ण का उन दोनों को समझाना। बसुदेव द्वारा यज्ञोपवीत के उपलक्ष्य में ब्राह्मणभोजन।

१०२ विद्यापठनार्थ सान्दीपिनिगुरुसमीपे श्रीकृष्णगमनम् १०६६

मुनिपत्नीस्तोत्रम् १०७१

श्रीनारायण बोले—बलराम और श्रीकृष्ण ने गुरु के घर जाकर गुरुपत्नी व गुरुजी को प्रणाम कर उनसे शुभाशीर्वाद ग्रहण कर मणि व रत्नों की भेंट देते हुए कहा—आपसे वाञ्छित विद्या ग्रहण करूँगे। हमें शुभमुहूर्त में विद्यारम्भ कराइये। गुरु ने स्वीकार कर मिष्टान्न, वस्त्र चन्दनादि से पूजा एवं स्तुति की। गुरुपत्नी ने कहा—आज मेरा जन्म और पातिव्रत्य सफल हुआ। तुम्हारे चरणरज से मेरा आगम पवित्र हो गया। इतना कहकर श्रीकृष्ण को गोदी में बैठाकर देवकी के समान प्रेम से अपना स्नान पान करवाया और स्तुति करने लगी। श्रीकृष्ण ने कहा हे मातः ! मैं दूधमुहा बचा हूँ मेरी क्या स्तुति करती हूँ। अपने पति के साथ

म्रियते पैतृकीभूम्यां तीर्थपुण्यफलं लभेत् । गङ्गाजलसमं पूतं पितृखातोदकं हरे ! ॥
तत्र स्नात्वा जले पूते गङ्गास्नानफलं लभेत् । पितृणां तर्पणं तत्र पवित्रं देवपूजनम् ॥

पैतृकी जन्मभूमिश्चेत् फलं तद् द्विगुणं लभेत् ।

पैतृकी भूमितुल्या च दानभूमिः सतामपि ॥

श्रीकृष्ण ने कहा—पैतृकी भूमि तीर्थतुल्य है परन्तु द्वारका सब तीर्थों से श्रेष्ठ है जिसमें प्रवेश करने से पुनर्जन्म नहीं होता है तथा दान, श्राद्ध व देवपूजन अन्य तीर्थों से चतुर्गुण फलदायक होता है । द्वारकापुरी में अमर्सेन के राज्याभिषेक का वर्णन । देव, मुनियों का अमर्सेन को शुभाशीर्वाद दे स्वस्थान गमन ।

१०५

रुक्मिण्युद्वाहप्रस्ताववर्णनम्

१०८२

रुक्मिणीविवाहप्रश्नेभीष्मकं प्रति रुक्मैरुक्तिः

१०८५

श्रीनारायण बोले—विदर्भ देश में नारायण के अंश से उत्पन्न हुआ धार्मिक और सब सम्पत्तियों को देनेवाला भीष्मक राजा था । उसके रुक्मिणी नाम की कन्या थी । उस लड़की का स्वरूप इन्द्र वरुण और चन्द्रादिकों की स्त्रियों को भी मोहित करनेवाला था । राजा ने लड़की को विवाह योग्य देख पुत्र ब्राह्मण और पुरोहितों से कहा कि मेरी लड़की विवाह योग्य हो गई है इसके लिये मुनिपुत्र, देवपुत्र व राजपुत्र जैसे योग्य वर खोजना चाहिये । तब वेदवेदाङ्ग को जाननेवाले शतानन्द ने कहा—हे राजन् ! पृथ्वी के भार को दूर करने के लिये साक्षात् नारायण भगवान् वसुदेव के पुत्ररूप में प्रकट हुए हैं जिनका चारों वेद, सन्त, सिद्ध, मुनि और ब्रह्मादि देव ध्यान करते हैं उन्हें लक्ष्मीस्वरूपा रुक्मिणी को अर्पण कर जन्म सफल करो । सतानन्द के वचन सुनकर सम्पूर्ण सभासदों के सामने कुपित होकर रुक्मि ने कहा— हे राजन् ! भिक्षुक, लोभी क्रोधी, नर्तक वैश्य, भट्ट, याचना करनेवाला कायस्थ घटक

(अगुआ) नट, स्त्री लोभी और कामियों के वचन को छोड़ो। कृष्ण ने भय से कालयवन को मरवाकर उसके धन से जरासन्ध के भय से समुद्र में द्वारकापुरी का निर्माण किया है। मैं अकेला ही कृष्ण को नष्ट कर सकता हूँ। मैं दुर्वासा का शिष्य हूँ तथा रणशास्त्र को जाननेवाला हूँ। मेरे समान परशुराम व शिशुपाल हैं। यदि कृष्ण इस विवाह के निमित्त यहाँ आयेगा तो उसे यमपुर पहुँचा दूँगा। बड़े आश्चर्य की बात है जो गौ की रक्षा करनेवाले वैश्य नन्दपुत्र गोपालकों के साथ भोजन करनेवाले श्रीकृष्ण को देवयोग्य रुक्मिणी को भिक्षुक के वचन से देना चाहते हो। तुम बुद्धिहीन हो सब में योग्य वर शिशुपाल के लिये कन्यादान करो और नानादेशों के राजाओं को निमन्त्रण दो तथा उनके लिये सामग्री व परिपूर्ण व्यञ्जन तैयार करो। राजा ने रुक्मि के वचन सुनकर पुरोहित के साथ निर्जन स्थान में मन्त्री से सलाह कर योग्य ब्राह्मण को द्वारकापुरी में भेजा। ब्राह्मण ने उससे न को पत्रिका दी। इस उपलक्ष्य में ब्राह्मणों को भोजन कराकर यात्रा की तैयारी की। सावित्री सहित ब्रह्मा, भवानी सहित शिव, शेष, दिनेश, गणेश, महेन्द्र, चन्द्र, वरुण, पवन, कुबेर, वह्नि, ईशान और अन्यदेवादि, गोपाल, धृतराष्ट्र पुत्र, युधिष्ठिरादि, भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शकुनि, शल्य, भट्ट, ब्राह्मण, नर्तक और गन्धर्वादिकों का आगमन।

१०६

रेवतीवलयोर्विवाहवर्णनम्

१०८७

श्रानारायण ने नारद से कहा—राजा ककुद्भी ने त्रल्लोक से आकर अमूल्य आभूषणों से युक्त रेवती कन्या का विवाह बलराम के साथ किया और यादवों के साथ कुण्डिन नगर का चला गया। देवकी आदि स्त्रियों ने रेवती का मद्गलाचार किया। सम्पूर्ण यादवों का कुण्डिन नगर में प्रस्थान। श्रीकृष्ण की सेना को देख क्रोधित रुक्मी ने कहा—अहो ! काल के द्वारा किया गया कर्म

और दैव किसी से भी नहीं रोका जा सकता । क्या कहूं नन्द के पशुओं की रक्षा करनेवाला कृष्ण देवोपमा रुक्मिणी को ग्रहण करने के लिये आता है जिसकी जाति का कुछ निर्णय नहीं है । इसने वचपन में स्त्रीहत्या की है, मथुरा में कंस को मारा है राजेन्द्र के मारने से ब्रह्महत्या के समान पाप लगता है । शाल्व ने कहा रुक्मी का कहना सत्य है । शिशुपाल ने कहा बड़े आश्चर्य की बात है कि मनुष्य की आत्मा से देव, मुनीन्द्र और ब्रह्मपुत्र भी आगये । दन्तवक्र ने कहा—ब्राह्मण तो लोभी होते हैं और देवता भक्तवत्सल होते हैं किन्तु ब्रह्मपुत्र कैसे आये । उनका वचन सुनकर देवसङ्घ, मुनि समुदाय, राजेन्द्र और बलराम आदि का क्रोधित होना ।

१०७	रुक्मिणीविवाहे युद्धम्	१०८६
	रुक्मिण्युद्धाहवर्णनम्	१०६१
	भीष्मककृत कृष्णस्तवः	१०६३

श्रीनारायण बोले—क्रोधित बलदेव ने रुक्मि के मान को हल से नष्ट कर दिया । पुनः रुक्मी और बलराम का युद्ध । अन्त में बलराम ने उसे निद्रास्त्र से निद्रित कर दिया । निद्रित रुक्मी को देखकर शाल्व ने शैलघृष्टि, शिलाघृष्टि जलघृष्टि और जलते हुए अंगारों की वर्षा बलराम पर की । क्रोधित बलराम ने उसके रथ को चूर्ण कर दिया । क्रोध से बलरामजी उसे मारने दौड़े तब आकाशवाणी हुई कि श्रीकृष्ण इसे मारेंगे ! तुम्हारी क्या क्षमता है कि इसको मार सकेंगे । इतना सुनते ही बलराम ने हल से उसके मस्तक को चूर-चूर कर

प्रवेश । शतानन्द का कोटि मुनियों के साथ आगमन । घर को देखने के लिये देवकन्या, नागकन्या, राजकन्या और मुनिकन्याओं का आगमन । प्रातःकाल श्रीकृष्ण ने शौचकर्म से निवृत्त हो सन्यादि कर्म कर मातृकाओं का पूजन किया । राजा भीष्मक ने मङ्गल घाघों के साथ रुक्मिणी को सुवेशित किया । शुभ नक्षत्र व शुभ लग्न में श्रीकृष्ण का भीष्मक के घर आगमन । भीष्मक द्वारा श्रीकृष्ण के साथ आये हुए देव, मुनि और यादवों का यथाविधि सत्कार । भीष्मक ने प्रार्थना की कि आज मेरा जन्म सफल हुआ जो साक्षात् विधाता सब सम्पत्तियों का देनेवाला और तपस्याओं के फल को देनेवाला मेरे घर में विराजमान है जिसके चरणारविन्दों को स्पर्श में भी देखने के लिये समर्थ नहीं हूँ । इस प्रकार सम्पूर्ण देव, मुनि, गुरु और शङ्कर की प्रार्थना कर सामवेदोक्त स्तोत्र से श्रीकृष्ण की स्तुति की—

केचिद्वदन्ति त्वामेकं ज्योतीरूपं सनातनम् ।

केचिच्च परमात्मानं जीवो यत्प्रतिबिम्बकः ॥

और भलीभाँति पूजन कर पुष्पाञ्जलि समर्पित की ।

१०८

कृष्णाय रुक्मिणीसम्प्रदानम्

१०९५

श्रीनारायण बोले—इसी बीच महालक्ष्मी के समान स्वरूपवाली, मुनि, देवों के साथ सब अलङ्कार एवं वेशभूषाओं के सहित रुक्मिणी राजसभा के बीच आई । रुक्मिणी ने अपने पति की सात प्रदक्षिणा कर शीतलजल एवं चन्दन, पुष्पों से पूजा की । श्रीकृष्ण ने उसको शीतलजल से सेचन किया । दोनों का परस्पर अवलोकन । राजा ने वेदमन्त्रों से रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के लिये प्रदान किया । वसुदेव की आज्ञा से कृष्ण ने “स्वस्ति” ऐसा कहा । जैसे शङ्कर ने पार्वती को ग्रहण किया उसी तरह श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को ग्रहण किया । राजा ने पाँच लाख सुवर्ण कृष्ण को इस अवसर पर दिया ।

१०६

रुक्मिण्युद्राहवर्णनम्

१०६६

कृष्णेन सह पार्वत्यादीनां हास्यालापः

१०६७

श्रीनारायण बोले—पतिपुत्रबाली साध्वी स्त्रियों के साथ रुक्मिणी की माता ने वर और कन्या को मङ्गलपूर्वक वस्त्रभूषणों से सुसज्जित किया। श्रीकृष्ण ने दुर्गा, सरस्वती, रति, रोहिणी, देवपत्नी, राजपत्नी और पतिव्रता मुनिपत्नियों को देखा। रानी ने वर कन्या को भोजन करा कर्पूर सहित ताम्बूल अर्पण किया। दुर्गा ने श्रीकृष्ण को मङ्गल पत्रिका दी। सम्पूर्ण देवियों ने श्रीकृष्ण को पत्रिका पढ़ने के लिये कहा। श्रीकृष्ण ने देवियों की सभा में उसे पढ़ा कि लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, राधिका, तुलसी, पृथ्वी, गङ्गा, अरुन्धती, यमुना, अदिति, शतरूपा, सीता, देवहूति और मेनका सभी वरवधूका मङ्गल कार्य करें ऐसा पढ़ने से देवियां हँसी पुनः पार्वती, सरस्वती आदि देवियों का श्रीकृष्ण के साथ हास्यालाप करना। प्रातःकाल उपसेन व वसुदेव की आज्ञा से श्रीकृष्ण व रुक्मिणी का प्रस्थान। तब रानी सुभद्रा ने अपनी पुत्री से कहा—हे पुत्रि ! मुझे छोड़ कहा जा रही हो मैं तुम्हारे बिना कैसे जीऊँगी ? इतना कह नैर्जल से रुक्मिणी का सिंचन करना। माया से श्रीकृष्ण रुक्मिणी का रोदन करना। राजा भीष्मरु ने हाथी, घोड़े, रथ, दास, दासी, रत्न, सुवर्ण, मणि आदि बहुतसे समान दहेज में दिया। श्रीकृष्ण व रुक्मिणी का द्वारकापुरी गमन। वहाँ आये हुए सम्पूर्ण मनुष्यों का सत्कार व ब्राह्मणभोजन और सब का अपने-अपने स्थानों को गमन तथा यशोदा का मङ्गल कार्य करना।

११०

राधा यशोदासंवादवर्णनम्

१०६८

श्रीनारायण ने कहा—मङ्गलकार्य निवृत्त होने के बाद नन्द और यशोदा का श्रीकृष्ण के पास जाना। यशोदा ने कहा हे माधव ! आपने पिताजी को तो

ज्ञान दे दिया है तथा मुझे भी ज्ञान देकर सम्पूर्ण संसार-समुद्र से उद्धार कीजिये । संसार-समुद्र में मायामयी नौका को पार करने के लिये आप ही कर्णधार हैं । यशोदा के वचन सुनकर भगवान् हँसे और बोले—सिद्ध्यात्मक, योगात्मक, विषयात्मक मोक्षात्मक और भक्त्यात्मक महास्थकरण ये पाँच तरह के ज्ञान बतलाये हैं । क्षुत्पिपासादिकों का खण्डन, अन्तःकरण की शुद्धि, नाड़ियों का शोधन और शक्तिकुण्डलिनी सहित ईश्वर का ध्यान यह योगात्मक ज्ञान मूर्ख पुरुष और स्त्रियों को प्राप्त नहीं हो सकता । सिद्ध्यात्मक ज्ञान जो ३४ सिद्धों से सिद्ध किया गया और संसार को बोध करानेवाला है । विषयात्मक ज्ञान जो मेरी इच्छा से सबका अपने-अपने विषयों में होता है । मोक्षात्मक ज्ञान निवृत्तिमार्गपरक है उसको भक्त नहीं जानते हैं । भक्त्यात्मक ज्ञान तुम्हें राधा कहेगी जो ज्ञान नन्दजी को उसने दिया था वही तुम्हें दे दिया । इतना सुन श्रीकृष्ण की आज्ञा से दोनों का कदलीवन में राधा के पास जाना । नन्द और यशोदा ने सात दरवाजों से युक्त आंगन में सौ कोटि गोपियों से रक्षा की गई राधा को देखकर आश्चर्य चकित हो प्रणाम किया । चेतना प्राप्त कर राधा ने कहा—तुम कौन हो यहाँ क्यों आये हो ? मेरे पास विषयज्ञान नहीं है । मैं जल, स्थल, रात्रि, दिन, स्त्री, पुरुष और नपुंसक में भेद नहीं मानती हूँ । यशोदा ने कहा—हे राधे ! चेतन करो शुभ दिन मैं श्रीकृष्ण का दर्शन करोगी तुम्हारे से सब संसार पवित्र हैं । लोक, वेद, सन्त और पुराण तुम्हारी कीर्ति गायेंगे मैं यशोदा हूँ, ये नन्दजी हैं, तुम वृषभानु की पुत्री हो । द्वारकापुरी से तुम्हारे पतिदेव की आज्ञा से यहाँ आई हूँ । शीघ्र ही श्रीकृष्ण तुम्हें मिलेंगे मुझे भक्तिज्ञान का उपदेश करो श्रीदामा के शाप से जल्दी ही छुटोगी । यशोदा के वचनों को सुन

१११

रामादिशब्दानां व्युत्पत्तिस्तोपाश्च प्रशंसा

११०२

राधाशब्दस्य व्युत्पत्तिवर्णनम्

११०५

राधिका ने कहा हे यशोदे ! श्रीकृष्ण ने ज्ञानात्मक ज्ञान तुमको नहीं दिया और मेरे पास भेजा है उसकी वार्ता तो वेद और सन्त भी नहीं जानसकते हैं। मैं अज्ञानयुक्त अवलाक्या बोध कलूँ तथापि पांच तरह के ज्ञानों में भक्त्यात्मक ज्ञान कहती हूँ। श्रीकृष्ण में पुत्रवुद्धि का त्यागकर उन्हें ब्रह्मरूप जानो। तीनों काल यमुनाजल में स्नान कर गर्ग के द्वारा कहे हुए ध्यान से शुद्ध मन हो परमानन्द की पूजन कर आनन्दपूर्वक उसके पद को प्राप्त करो। भक्त-अग्नि की ज्वाला, पिंजरे में रहना, कांटों में रहना और विपभक्षण अच्छा समझता है किन्तु हरि-भक्ति से हीन मनुष्यों का संग अच्छा नहीं मानता। जो 'राम, नारायण, अनन्त, मुकुन्द, मधुसूदन, कृष्ण, केशव, कंसारि, हरि, वैकुण्ठ और वामन इन एकादश(११) नाम को पढ़े' और पढ़ावे वह कोटि जन्मों के पापों से छूट जाता है। 'रा' शब्द विश्व का वाचक है और 'म' शब्द ईश्वरवाचक है। सम्पूर्ण संसार का ईश्वर होने से राम कहा गया है। विष्णुसहस्रनाम स्मरण से जो फल होता है वही फल राम शब्द के उच्चारण से होता है। इसी तरह नारायण आदि शब्दों के अर्थ का वर्णन। हे यशोदे ! तुम्हारी इच्छा हो वही वर मांगो तब यशोदा ने हरि में निश्चल भक्ति एवं दासत्व का वर मांग राधा शब्द की व्युत्पत्ति पूछी। राधिका ने कहा मेरे वर से तुम्हें निश्चल भक्ति प्राप्त होगी 'रा' शब्द महाविष्णु है जिसके रोम-रोम में विश्व विराजमान है 'धा' शब्द धारण करनेवाली का बोधक है। सम्पूर्ण संसार को धारण करनेवाली को राधा कहा गया है। मुझे सुदामा के शाप से श्रीकृष्ण से सौ वर्ष का विरह हुआ है। तुम अपने स्वामी के साथ व्रज में जाओ मेरा भगवत् ध्यान करने का समय हो गया है। ध्यान भङ्ग होने से महान् दोष होता है।

११२

प्रद्युम्नाख्यानम्
कृष्णदुर्वाससोः संवादवर्णनम्

११०६

११०६

श्रीनारायण बोले—द्वारका में श्रीकृष्ण के अंश से शुभ समय में शंकर से भस्मीभूत कामदेव का रुक्मिणी के गर्भ से जन्म । उसने शंकरासुर को मार रति को, जो मायावती नाम से प्रसिद्ध थी प्राप्त किया । नारद ने पूछा—हे भगवन् ! शंकर को कामदेव ने कैसे नष्ट किया ? नारायण बोले—सूतिकागृह में रुक्मिणी के सात दिन बीतने पर दैत्य ने बालक का अपहरण कर मायावती को दे दिया । दैत्य के सन्तान न होने से वह इसे बहुत प्रेम करता था । सरस्वती ने एकान्त में मायावती से कहा शिव के क्रोध से भस्म हुआ यह तुम्हारा पति है । रुक्मिणी के गर्भ से इसका जन्म हुआ है माया से दैत्य ने इसका अपहरण किया है इसलिये यह तुम्हारा पति है पुत्र नहीं है । पुनः कामदेव से कहा यह माया तुम्हारी स्त्री रति है । तुम्हारी माता तुम्हारे बिना रो रही है । इतना कहकर सरस्वती का स्वस्नान गमन । एक समय शंकर का रति और कामदेव का क्रीडा कौतुक देखना । क्रोधित शंकर का प्रद्युम्न के साथ युद्ध । युद्ध में दैत्य ने उसे त्रिशूल से मारा तब पवन ने प्रद्युम्न के काष्ण में कहा दुर्गा का स्मरण करो । दुर्गा का स्मरण करने से वह शूल माल्य हो गया । तत्पश्चात् ब्रह्माक्षसे दैत्य की मृत्यु और रति सहित प्रद्युम्न का द्वारकापुरी में गमन । कालिन्दी, सत्यभामा, सत्या, नामजिती, मित्रविन्दा, जाम्बवती और लक्ष्मणा का कृष्ण के साथ विवाह एवं भौमासुर को मार १६ हजार स्त्रियों के साथ विवाह । श्रीकृष्ण के प्रत्येक स्त्री के गर्भ से दश पुत्र और एक कन्या की उत्पत्ति । दुर्वासा का त्रिकोटि शिष्यों के साथ द्वारका में आगमन । दुर्वासा का पूजन उन्हें मुक्ता व हीरों के साथ एक कन्या का अर्पण । भगवान् को सब स्त्रियों के साथ रहते देख दुर्वासा चकित हो स्तुति करने लगे । श्रीकृष्ण ने कहा हे विप्र मत डरो मैं सबकी

आत्मा हूँ मेरे बिना सब मृततुल्य है। श्रीदाम के शाप से राधा इस समय मुझे नहीं प्राप्त कर सकती। रुक्मिणी के भवन में मेरा अंश है तथा अन्य स्त्रियों के मन्दिर में कलामात्र है। इतना कहकर श्रीकृष्ण का खगृह गमन और दुर्वासा का पत्नी को त्याग तप के लिये गमन।

११३

अकारणात्पत्नीत्यागदोषः

१११०

दुर्वाससो द्वारकाम्प्रतिगमनम्

११११

कुठान्मुक्तिकामेन साम्बेन सूर्यपूजनम्

१११५

दुर्वासा का शिष्यों सहित द्वारकापुरी छोड़कर भगवान् शंकरजी के दर्शनार्थ कैलाश गमन। वहा जाकर मुनिका शिष्यों सहित भगवान् शंकरजी तथा पार्वतीजी को नमस्कार कर भक्तिपूर्वक अपना और हरिभगवान् का सम्पूर्ण पृत्तान्त कहना एवं अपने तप का कारण तथा चित्त का वैराग्य भी प्रकट करना। मुनि के वचनों को सुनकर सती पार्वती ने हँसते हुए भगवान् शंकर की सन्निधि में उसके लिये हितकारक एवं सत्यवचन कहे। भगवती पार्वती ने कहा तुम मर्त्यत्व को नहीं जानते हुए अपने को धर्मिष्ठ मानते हो तथा निःसन्तान स्त्री को यागकर तप करने के लिये क्यों जाते हो। देखो शास्त्रकार इस विषय में क्या कहते हैं यथा—

अनपत्याश्च युवतीं कुलजाश्च पतिव्रताम्।

त्यक्तवा भवेयुः सन्यासी ब्रह्मचारी यतीति वा ॥

वाणिज्ये वा प्रवासे वा चिरं दूरं प्रयाति यः।

तीर्थे वा तपसे वापि मोक्षार्थं जन्मखण्डितुम् ॥५॥

न मोक्षस्तस्य भवति धर्मस्य स्पन्दनं ध्रुवम्।

अभिशापेन भार्याया नरकश्च परत्र च ॥

इदं च यशोनाश इत्याह कमलोज्ज्वलः ॥८॥

बिना सन्तान की स्त्री, युवती, श्रेष्ठ कुलवाली एवं पतिव्रता स्त्री को त्यागकर सन्यासी, ब्रह्मचारी तथा यति हो जाय या वाणिज्याय अथवा बहुत दिन तप दूर चला जाता है तथा तीर्थ में या तप के लिये अथवा जन्म मरण से छुटकारा पाने के लिये मोक्षार्थ चला जाता है उस पुरुष की मोक्ष नहीं होती है परन्तु निश्चयपूर्वक उसका धर्मस्मरण हो जाता है। भार्या के शाप से नरकों की प्राप्ति एवं इस लोक में यश का नाश होता है। अतः हे विप्र ! पुनः द्वारका को जाओ और अपने धर्म की रक्षा करो। जिसका गुणानुवाद भगवान् शङ्कर एवं सनकादि मुनीश्वर गाते हैं ऐसे उस प्रभु श्रीकृष्ण को छोड़कर कहा जाते हैं। हे मुने ! जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों का स्मरण स्वप्न में भी करता है उसके सौ जन्म के किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है। अतः तुम तप करने क्यों जाते हो ? तप का फल तो श्रीकृष्ण के स्मरण से ही प्राप्त हो जायगा। इस प्रकार पावती के वचनों को सुनकर प्रेमविह्वल भगवान् शङ्करजी ने पार्वती की प्रशंसा की। दुवासाजी तदनन्तर शङ्करजी एवं पार्वती को नमस्कार कर भगवान् श्रीकृष्ण से चरणों का स्मरण करते हुए पुनः द्वारका को चले गये। वहाँ जाकर भगवान् को नमस्कार कर पुनः घर चले गये। भगवान् कृष्ण भी युधिष्ठिर के ध्यान से हस्तिनापुर चले गये। वहाँ जाकर कुन्ती से वार्तालाप किया एवं उपाय से जरासंध और शाल्व को मरा कर राजसूय यज्ञ करवाया जिसमें शिशुपाल तथा दन्तवक्र को मार दिया। उसी यज्ञ सभा में देवता और राजाओं के देखते-देखते शिशुपाल का हरिपद में प्राप्त हो भगवती की स्तुति करना एवं पुनः जय, विजय रूप हो वैकुण्ठ में द्वारपाल होना। प्रभु की भावहरण करने के लिये भेद से कौरव-पाण्डव का बुद्ध करवा पुनः द्वारका आना। वहाँ ब्राह्मण के मृत पुत्रों को मृतस्थान से लाकर उनकी माता को वापिस देना। इसको देख माता देवकी का अपने मृत पुत्रों की याचना करना माता के वचनों सुन सहोदर भाइयों की भी मृतस्थान से लाकर

माता को अर्पण करना । सुदामा नामक ब्राह्मण का अपने घर पर आतिथ्य कर निश्चल लक्ष्मी देना एवं चावलों की किण्की (कण) खाकर भक्तवत्सलता दिखा निश्चल हरिभक्ति देकर अपना उत्तम पद दिया । पारिजात वृक्ष को हरण कर इन्द्र के अहङ्कार को पूर्ण किया एवं सत्यभामा को मनइच्छित व्रत करवाया जिसमें ब्राह्मणों को भोजन करवा बहुत से रत्नादि दान में दिये तथा उद्धव को आध्यात्मिक ज्ञान दिया । रण में अर्जुन को गीताशास्त्र कहकर पृथ्वी को निष्कण्टक किया । युधिष्ठिर को पृथ्वी एवं राज्यलक्ष्मी देकर भगवती वैष्णवी दुर्गा को प्रामाधिष्ठात्री बना दिया । यगवती पार्वती की प्रीति के लिये रमणीय रैवत पर्वत पर कोटि होमान्वित यज्ञ करवाया एवं ब्राह्मणभोजन करवाया । सुखादुःखदुर्भागों से और तिलों से विघ्ननाशक गणेशजी का पूजन किया तथा साम्ब की कुपक्षय के लिये सूर्य की पूजा की एवं प्रसन्न हो स्वयं भगवान् भास्कर ने साम्ब को वर एवं स्तोत्र दिया ।

१	११४	अनिरुद्धोपाख्यानम्	१११४
२		उपाख्यानदर्शनम्	१११७
३		उपानिरुद्धसंवादकथनम्	१११९

श्रीनारायण बोले—कृष्णपुत्र प्रद्युम्न के अनिरुद्ध नाम बालक ब्रह्माजी के अंश से हुआ । अनिरुद्ध ने स्वप्न में सम्पूर्ण आभूषण व वेशभूषणों से युक्त स्त्री को देखा और कहा तुम देवी हो अथवा गान्धर्वी, किसकी स्त्री हो या किसकी कन्या हो तथा क्या चाहती हो ? मैं श्रीकृष्णका पौत्र हूँ । तुम मेरी सेवा करो तदनन्तर कामिनी ने कहा—आप कामपुत्र हो तथा काम से व्याकुल हो त्रिलोकीनाथ के पौत्र हो तथा स्वयं योग्य होकर विवाह क्यों नहीं करते हो ? विवाहित भी ही सदा सद्भिनी होती है । असाधु एवं कुवंश में उत्पन्न हुआ भी

परनारी के पास जाता है वह सात पितरों के साथ घोर नरक में जाता है ।
असाधुश्च कुवंशश्च परनारी प्रयाति चेत् । स याति नरकं घोरं पितृभिः सप्तभिः सह ।

मैं शङ्कर के सेवक बाणासुर की लड़की उपा हूँ । कामिनी स्वतन्त्र नहीं होती है पराधीन होती है । नीचकुल में पैदा हुई ही स्वतन्त्र होती है । कन्या बर की याचना नहीं करती पिता ही योग्य घर के लिये दान करता है ।

पिता ददाति कन्यां तां योग्याय च वराय च ।

कन्या वरं न याचेत धर्म एषः सनातनः ॥

तुम अगर मेरी इच्छा करते हो तो बाणासुर अथवा शम्भु व पार्वती से प्रार्थना करो । इतना कह सुन्दरी का अन्तर्धान । चेतनावस्था को प्राप्त हो अनिरुद्ध का व्याकुल होना । रुक्मिणी आवि स्त्रियों ने अनिरुद्ध के विषय में कहा—तब भगवान् हँसकर बोले—काम से व्याकुल उपा ने इसे व्याकुल बनाया है मैं भी उपा को प्रमत्त बना दूँगा । इतना कह श्रीकृष्ण ने बाणपुत्री को स्वप्न में सुन्दर पुरुष को दिखाया । उपा ने कहा हे कामुक मेरे साथ गन्धर्व विवाह करो अष्ट प्रकार के विवाहों में गान्धर्व विवाह सुलभ बताया है । अनुरक्त प्रिया को जो कपटी पुरुष त्याग देता है उसको महालक्ष्मी शाप देकर चली जाती है । पुरुष ने कहा—मैं श्रीकृष्ण का पौत्र एवं कामदेव का पुत्र हूँ उनकी अनुमति के बिना तुम्हें कैसे ग्रहण करूँ इतना कहकर पुरुष का अन्तर्धान । उपा का सखियों के बीच दुःखित होना । चित्रलेखा ने कहा—तुम क्यों डर रही हो चेतना प्राप्त करो । शिव और शिवा तुम्हारे नगर में विराजमान हैं, शिव के स्मरणमात्र से ही सम्पूर्ण अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं ।

शिवस्मरणमात्रेण सर्वारिष्टं पलायते । शिवं भवति सर्वत्र शिव एव शिवालयः ॥

ध्यानाद् दुर्गतिनाशिन्याः सर्वदुर्गं विनश्यति ।

ददाति मङ्गलं तस्मै सर्वमङ्गलमङ्गला ॥

चित्रलेखा के वचन सुन उपाने बहुत रुदन किया और बाणासुर का भी शङ्कर

के पास मूर्च्छित होना । यह देखकर शंकर, पार्वती, कार्तिकेय और गणेश हंसे । गणेश ने कहा---जो पापण्ड से मोहित हुआ दूसरे को दुःख देता है उसको सूक्ष्म धर्मविचार से चौगुना दुःख मिलता है । स्वप्न में उपा ने अनिरुद्ध को प्रमत्त बना दिया ऐसा जान श्रीकृष्ण ने भी उपा को सुन्दर पुरुष दर्शन कराकर विह्वल बना दिया । सुन्दर पुरुष को देख स्त्री मोहित हो जाती है इसलिये प्राणों से भी अधिक युवती की रक्षा करनी चाहिये ।

तस्मात्प्राज्ञः प्रयत्नेन प्राणेभ्यो युवतीं सदा । परिरक्षेच्च सततं मायायुक्तां न विश्वसेत् ।
हृदयं क्षुरधाराभं नारीणां मधुरं वचः ।

तासां मनो न जानन्ति सर्वे वेदाश्च वैदिकाः ॥

महादेव ने कहा---बाणासुर को मालूम न पड़े ऐसा करो । तब गणेश की आज्ञा से चित्रलेखा का योगमाया द्वारा द्वारका से नित्रित अनिरुद्ध को रथ में बैठाकर शोणितपुर में लाना । द्वारकावासियों का अनिरुद्ध के विषय में दुःख प्रगट करना और श्रीकृष्ण का आश्वासन । अनिरुद्ध और उपा का माहेन्द्र क्षण में गान्धर्व विधि से विवाह । रक्षक द्वारा इस समाचार का बाणासुर को मालूम होना ।

११५

बाणासुरयुद्धवर्णनम्

११२०

शङ्करबाणासुरसंवादवर्णनम्

११२१

बाणानिरुद्धसंवादवर्णनम्

११२३

श्रीनारायण ने कहा---रक्षकों ने बाणासुर से कहा---अहो ! यह समय बड़ा बलवान् है जो स्वतन्त्र वालिका पति की इच्छा करती है । कुसंगति दुःख का कारण है 'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति' संसर्ग से ही गुण और दोष होते हैं । चित्रलेखा ने रण में शूरवीर सुन्दर और युवावस्थावाले पुरुष से उपा का संमिलन करवाया है ।

इस समय उपा गर्भवती है इस प्रकार अन्यान्य बातें सुनकर क्रोधित वाणासुरः शंकर, गणेश, स्कन्द और पार्वती से रोकनेपर भी युद्ध के लिये इच्छा की। श्रीमहादेव ने वाणासुर से कहा—पृथ्वी का भार उतारने के लिये श्रीकृष्ण का अवतार हुआ है उसी का पौत्र अनिरुद्ध है उसे कोई भी नहीं जीत सकता है। पार्वती ने कहा ब्रह्मा, महेश, शेष और दिनेशादि भी उस परमात्मा का ध्यान करते हैं। गणेश और कार्तिक ने कहा बलि का बड़ा दुर्भाग्य है जो ऐसा मूर्ख पुत्र हुआ है। भाद्रिण्यकशिपु और हिरण्याक्ष की कथा का स्मरण करो। उन दोनों को भगवान् ने नष्ट कर दिया। भगवान् जिसका संहार करनेवाला है उसका रक्षक कौन है। उनसे वचनों को सुन वाणासुर ने कहा हे भाई गणेश ! हे भाई कार्तिक !! शुभाशुभ कर्मों को कौन रोक सकता है वह अवश्यम्भावी है। भरी सभा में रक्षक ने कन्या को सगर्भ कहा है यह वचन मुझे वज्र के समान लगा है। इसलिये अनिरुद्ध को मारकर उपा को मारूँगा अन्यथा जलती अग्नि में शरीर को जलादूँगा। माता कोटरी ने कहा हे पुत्र ! दुष्ट सन्तान से पिता को पद-पद पर दुःख होता है। एतद् से ग्रहण की हुई कन्या को दूसरे को देना उचित नहीं। श्रीकृष्ण के पौत्र और प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध को दहेज सहित उपा को अर्पण करो नहीं तो युद्ध में श्रीकृष्ण तुम्हें मार देंगे। सुदर्शन चक्र से रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। कोटरी के वचन सुनकर क्रोधित वाणासुर का युद्ध के लिये प्रस्थान। शङ्कर की आज्ञा से स्वामी कार्तिक सेनापति के रूप में गये। गणेश, शिव, कोटरी और पार्वती ने वाणासुर को शुभाशीर्वाद दिया। आठ भैरव व एकादश रुद्र भी युद्ध के लिये चले। पार्वती और वाणपत्नी से प्रेरित दूत ने अनिरुद्ध से कहा कि पार्वती का आदेश है कि युद्ध के लिये सुसज्जित हो जाओ। अनिरुद्ध उपा से दिये हुए रथ पर आरुढ़ हो गये। क्रोधित वाणासुर ने घोर संग्राम में अनिरुद्ध से कटु-वचन कहे कि चन्द्रवंश में तुम अङ्गाररूप हो। तुम्हारे पिता ने शंकर को मारकर उसकी स्त्री को ले लिया। तुम्हारे पितामह मथुरा में क्षत्रिय तथा

गोकुल में वैश्य पुत्र से विख्यात हैं। जिसने पूतना को मार दिया वह नारी-घाती अधार्मिक है इसने मथुरा में कुब्जा को मार दिया। दुर्बल नरकासुर को मारकर स्त्रीसमूह को ग्रहण कर लिया। भीष्मक को जीतकर रुक्मिणी को ग्रहण किया, सूर्यसेवक सत्राजित् को अनेक उपाय से मारकर मणि व कन्या को ग्रहण किया। कृष्ण के पिता की बहिन कुन्ती चार पुरुषों की स्त्री तथा द्रौपदी पांच पुरुषों की स्त्री है। बलदेव मदिरा पीता है, अर्जुन ने सुभद्रा का अपहरण किया इत्यादि बहुत से कटुवचन सुनकर अकिरुद्ध ने कहा मेरे पिता ब्रह्मपुत्र हैं जिनके अस्त्र से तीनों लोक वश में रहते हैं। शिव के क्रोध से भस्म हो श्रीकृष्ण से प्रद्युम्न रूप में पैदा हुआ है। मेरी माता पतिव्रता है जो शंकरजी के घर अपनी धर्म की रक्षा करती रही। वासुदेव को चारों वेद भी नहीं जान सकते तुम क्या जान सकते हो। तुम शंकर के सेवक हो। शंकर से पूछो श्रीकृष्ण के सेवक बलिके तुम पुत्र हो। कुब्जा पूर्वजन्म में रावण की बहिन शूर्पणखा थी उस समय लक्ष्मण द्वारा नाक-कान काटने पर तपस्या की थी उसी पुण्य से कुब्जा रूप में श्रीकृष्ण से मोक्ष प्राप्त की। इस प्रकार बहुतसे बचनों का प्रत्युत्तर कर कहा कुन्ती ने अपने पति की आज्ञा से धर्म, पवन और इन्द्र से पुत्र पैदा किये हैं।

कलौ निषिद्धं त्रियुगे प्रसिद्धं पलपैतृकम् । अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम् ॥

देवरेण सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥

कलियुग में अश्वमेध, गोमेध, संन्यास, और पलपैतृक तथा देवर से पुत्रोत्पत्ति निषिद्ध बताई है। द्रौपदी के पांच पति शङ्कर के वरदान से हुए हैं। दाक्षिणात्य परिपाटी से मामा की लड़की सुभद्रा को कृष्ण ने अर्जुन को अर्पण किया अन्य देशों में दोष है ऐसा ब्रह्माजी का आदेश है।

११६	वाणानिरुद्धसंवादवर्णनम्	११२७
	वाणानिरुद्धयुद्धवर्णनम्	११२६

वाणासुर ने कहा—हे अनिरुद्ध ! तुम बुद्धिमान् हो तुम्हारा वचन सत्य है ऐसा ही शिवजी ने भी कहा था । तुमने शङ्कर के वरदान से द्रौपदी के पाच पति बतलाये उसका विशदरूप से वर्णन करो । तुम्हारी माता रति का शंकर ने कैसे अपहरण किया देवों ने उसे कैसे दिया और शंकर ने देवताओं को कैसे पराजित किया । अनिरुद्ध ने कहा—एक समय रघुनाथजी पञ्चवटी के तटपर सीता और लक्ष्मण के साथ स्नान कर सुन्दर जल, अन्न, न्यञ्जन तथा फलों को इकट्ठा कर सीता को देकर लक्ष्मण को विया पीछे स्वयं भोजन करने लगे । लक्ष्मण मेघनाद को मारने तथा सीता का उद्धार करने के लिये फल और जल नहीं लाते थे मेघनाद को यह वरदान था कि जो चौदह वर्ष अन्न और मित्रा को छोड़ेगा उसी योगीराज के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी । द्विजरूपी अग्नि का राम के पास आगमन । अग्नि ने कहा—सीता को छिपाओ सात दिन में रावण पूर्वजन्म के कारण इसका अपहरण करेगा विधाता का ऐत्र कोई नहीं मिटा सकता । श्रीराम ने कहा—सीता को लेकर आप चले जाइये और उसकी प्रतिकृति छाया को यहां छोड़ दीजिये । उस छाया का अपहरण रावण ने किया । रामचन्द्र ने रावण को मार छाया का उद्धार किया । यष्टि में परीक्षा के समय अग्निदेव ने छाया की रक्षा कर जानकी को अर्पण कर दिया । उम छाया ने दिव्य सौ वर्षों तक नारायण सरोवर के पास शङ्कर की तपस्या की । शङ्कर ने उसे वरदान मांगने के लिये कहा । पति दुःख से दुःखित छाया ने पांच बार “पतिं देहि” कहा । भीमहादेय ने कहा तुमने व्याकुलता से पांच बार पति दीजिये यह कहा है इसलिये पांच इन्द्र तुम्हारे पति होंगे । वही छाया द्रुपद के यक्षकुण्ड से द्रौपदी रूप में प्रगट हुई । तृतीय में यह वेदवती प्रेतायुग में सीता

और द्वापर में द्रौपदी इसलिये कृष्णा को त्रिहायणी कहते हैं । राजा द्रुपद ने उसको अर्जुन के लिये दे दिया । अर्जुन ने माता कुन्ती से कहा मेरे को वस्तु मिली है पाता ने आज्ञा दी कि भाइयों के साथ ग्रहण करो । शङ्कर के वरदान से और ताता की आज्ञा से पांच इन्द्र पांच पांडवों के रूप में द्रौपदी के स्वामी हुए । पति को शङ्कर का शाप था कि तुम्हारा पति मेरी क्रोधाग्नि से भस्म होगा । रावणासुर इन्द्रादि देवताओं को जीतकर तुम्हारा हरण करेगा इस समय तुम ईश्वर के पास रहो । इतना कहकर फिर उसे वरदान दिया कि तुम्हारा सतीत्व नष्ट नहीं होगा जबतक तुम्हारा पति पैदा न हो तबतक छाया-रूप में उसके घर रहो यह देवताओं का गुप्त चरित्र तुम्हें बतलाया है । बाणासुर के सेनापति कुम्भाण्ड के भाई सुभद्र के साथ अनिरुद्ध का युद्ध । बाणासुर और अनिरुद्ध का युद्ध । युद्ध में बाणासुर को निद्रास्त से निद्रित कर जब अनिरुद्ध तलवार से मारने चला तब स्वामी कार्तिकेय ने रोक दिया । स्वामी कार्तिकेय और अनिरुद्ध का युद्ध इस वृत्तान्त को वर्णन करने के लिये शङ्कर के पास गणेशजी का गमन ।

११७

शिवलम्बोदरसंवादवर्णनम्

११३०

श्रीनारायण ने कहा—गणेशजी ने शिवस्थान पर सम्पूर्ण युद्ध के वृत्तान्त को पृथक्-पृथक् वर्णन किया । श्रीमहादेव ने हँसकर कहा हे गणेश ! नीतियुक्त पर्व परिणामों का सुखकर वचन सुनो । सम्पूर्ण विश्व का सङ्ग अनिरुद्ध में है श्रीकृष्ण उन सब का कारण है । ब्रह्मादि सृण पर्यन्त का कारण श्रीकृष्ण ही है । गोलोक में दो भुजा धारण करते हैं यहाँ शिशुरूप में वृन्दावन में तथा अन्य स्थानों में रास करते हैं । सम्पूर्ण उसी की अंशकलाएँ हैं “सर्वेचाशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्” उसी का पौत्र बलशाली अनिरुद्ध है । मैंने युद्ध के लिये स्कन्द, आठ भैरवों व एकादश रुद्रों को भेजा है । मृत बाणासुर की स्कन्द ने रक्षा की है लेकिन अनिरुद्ध को कोई नहीं जीत सकता । अनिरुद्ध स्वयं ब्रह्मा हैं

प्रशुम्न कामदेव है। बलदेव स्वयं शेष और श्रीकृष्ण साक्षात् परमात्मा है। हे गणेश ! बाण की रक्षा करो तुम विघ्नों को नाश करनेवाले हो। हरि सुदर्शन चक्र लेकर जल्दी ही आयेगे।

११८	बाणामुरयुद्धवर्णनम्	११३२
	शिवपार्वतीसंवादवर्णनम्	११३३

श्रीनारायण ने कहा - गणेश को समझाकर शंकर का अन्तःपुर में गमन। वहाँ पर दुर्गा, भैरवी, भद्रकाली, उग्रचंडा और फाँटरी ने शंकर को प्रणाम किया वहींपर गणेश, कार्तिकेय, बाण, वीरभद्र तथा नन्दी आदि गणों का आगमन। मणिभद्र ने कहा "असंख्य यादवों की सेना सहित बलराम, प्रशुम्न, साम्ब, सात्यकि, उग्रसेन, भीम, अर्जुन, अक्रूर, उद्धव, जयन्त और श्रीकृष्ण अस्त्रशस्त्रों सहित आगये हैं। बलराम ने लाख मछों को मारकर तीन लक्ष पगीचों का उत्पादन कर दिया है। द्वारपाल को मारकर महाद्वार में प्रवेश कर गये हैं"। इतना सुनकर महादेव ने पार्वती, भद्रकाली, स्कन्द, गणेश, आठ भैरव, एकादश रुद्र, वीरभद्र, महाकाल, और नन्दी से कहा श्रीकृष्ण एकक्षण में सम्पूर्ण विश्व को नष्ट कर सकते हैं नगर का तो कहना ही क्या। परन्तु सच उपायों से बाणामुर की रक्षा करो। बाणामुर लम्बोदर का स्मरण कर युद्ध के लिये जाये बाण के दक्षिण में स्कन्द आगे गणेश दाईं तरफ भैरव रुद्र स्वयं नन्दी रहे। पार्वती से कहा हैं महामाये। सुदर्शन चक्र से बाणामुर की रक्षा करो मुझे गणेश और कार्तिक से भी कहीं अधिक बाणामुर प्रिय है। बाणामुर के नन्तः पर दाध रखो। शङ्कर के पवन मुनिरुद्र दुर्गा ने हँसकर कहा—हे बाण ! मय आभूतनों सहित उपा को अनिरुद्ध के लिये दे राख्य करो। मैं शक्ति हैं मन मन्त्रा हैं शिव ज्ञानस्वरूप हैं शक्ति को जोड़ने में वह सब के समान होता है। हे शिव ! संसार में सुदर्शनचक्र के तेज के नामने सोन टहर मट्टा है। अपनी आत्मा के साथ युद्ध करने में पराजय

होती है कृष्ण साक्षात् परमात्मा हैं। मुझे गणेश और कार्तिक प्रिय हैं उनसे भी अधिक आप हैं। किङ्करो में बाण प्रिय है किन्तु कृष्ण से परम प्रिय कोई नहीं है। मैं वैकुण्ठ में महालक्ष्मी, गोलोक में राधिका, शिवलोक में शिवा और ब्रह्मलोक में सरस्वती हूँ। मैं दैत्यों को मारकर दक्ष के घर जन्मी थी और बड़ा आपकी निन्दा से शरीर त्यागकर मेना के घर जन्म लिया है। रक्तबीज के युद्ध में कालीस्वरूप था। वेदमाता सावित्री एवं जनक कन्या सीता मैं ही हूँ द्वारका में रुक्मिणी और वृन्दावन में राधा हूँ। आप तो सब जानते हैं मैं क्या कहूँ क्या करना चाहिये।

११६

शिवपार्वतीसंवादवर्णनम्

११३४

वलिशङ्करसम्वादवर्णनम्

११३५

वलिकृतकृष्णस्तोत्रम्

११३७

श्रीनारायण ने कहा—पार्वती के वचनों की गणेश, शिव, कार्तिकेय और काली ने प्रशंसा की। श्रीमहादेव ने कहा—हे देवि ! परमात्मा के साथ युद्ध करना अयुक्त है। बाणासुर कन्या देवे तो बहुत अच्छी बात है परन्तु वह देता नहीं है वह लड़ने के लिये जायगा तो हम उसके पीछे रहेंगे। मैंने कन्या देवे को कहा था लेकिन वह देता नहीं। उसने दुर्गा के वचनों को भी नहीं स्वीकार किया। वैष्णव प्रमुख महाधर्मात्मा का सात लक्ष दैत्यों के साथ आगमन। उसने शिव, शिवा, गणेश, और कार्तिक को प्रणाम किया। वलि को देखकर शङ्कर को छोड़ सब पड़े हो गये। श्री महादेव ने कहा आप चतुर हैं, परम वैष्णव हैं, वैष्णव के स्पर्शमात्र से तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं। सब धर्मों में ब्राह्मण शुद्ध हैं परन्तु उससे भी वैष्णव ब्राह्मण शुद्ध हैं वह अग्नि और पवन से भी पवित्र हैं उनके शरीर में पाप नहीं रहते हैं। वलि ने कहा—हे महादेव ! मैं आपका सेवक हूँ मेरी प्रशंसा क्यों करते हैं मुझे आपने ही सुदुर्लभ ऐश्वर्य प्रदान किया है।

आपने वामनरूप धारण कर इन्द्र को ऐश्वर्य प्रदान किया। वाणासुर से कहिये कि परमात्मा के साथ युद्ध करना अतिनिन्दित कार्य है। इतना कहकर शङ्कर को प्रणाम कर सामवेदोक्त स्तोत्र से श्रीकृष्ण की स्तुति की। अदिति की प्रार्थना से वामन रूप धारण कर मुझे वञ्चित किया। सम्पद्रूपा महालक्ष्मी भक्त को प्रदान की। इस समय मेरा पुत्र वाणासुर शंकर का सेवक है। पार्वती अपने पुत्र की तरह पालन करती है। उसकी लड़की चलवान् अनिरुद्ध ने ग्रहण की है। अनिरुद्ध बाण को मारने के लिये तैयार हुआ तब स्वामी कार्तिकेय ने रक्षा की है। अब आप पौत्र के विषय में दमन करने आये हो आपके मारने से संसार में रक्षा करनेवाला कौन है। इस तरह बहुत प्रकार से स्तुति की। श्री भगवान् ने कहा हे वत्स ! मत डरो मेरे वर से तुम्हारा पुत्र अजर अमर है किन्तु उसका वर्ण नष्ट करूँगा। प्रह्लाद को वरदान दे दिया था कि तुम्हारे वंश में होनेवाले को नहीं मारूँगा। तुम्हारे पुत्र को ज्ञान दूँगा। इस स्तोत्र का पठन करने से कोटि जन्मों के पापों से मनुष्य छूट जाता है। यह स्तोत्र विपत्तियों को खण्डन करनेवाला, सम्पत्ति को देनेवाला, दुःखों को दूर करनेवाला, गर्भवास, जरा, मृत्यु, रोग-और बन्धन को खण्डन करनेवाला है। एक लक्ष पठन करने से स्तोत्र सिद्ध होता है। सिद्ध स्तोत्र का पठन करने से सर्वसिद्धि मिलती है।

१२०

वाणासुरयुद्धवर्णनम्

यादवशैवयोर्युद्धवर्णनम्

श्रीनारायण ने कहा—श्रीकृष्ण ने बलराम और उद्धव के साथ मन्त्रणा कर दूत को जहाँ गणपति, शङ्कर, दुर्गा, कार्तिकेय, भद्रकाली, उग्रचण्डा और कोटरी थे वहाँ भेजा। दूतने सबको प्रणाम कर कहा कि श्रीकृष्ण ने वाणासुर को संप्राम करने को बुलाया है अथवा उपा सहित अनिरुद्ध को लेकर उनकी शरण में जाओ। निमन्त्रित किया हुआ यदि भय से लड़ने नहीं जाता है वह सात पितरों के साथ नरक में

जाता है। पार्वती ने दूत के वचन सुनकर शङ्कर के सामने वाणासुर से कहा है वाण ! दहेज के साथ कन्या को लेकर श्रीकृष्ण की शरण में चले जाओ। किन्तु क्रोधी वाणासुर योद्धाओं के साथ लेकर लड़ने चला। वाण की रक्षा के लिये भगवान् रुद्र एकादश रुद्रों के साथ तथा आठ नायिका, आठ शक्तियाँ और स्कन्द चले परन्तु पार्वती और गणेश नहीं गये। वाणासुर और सात्यकि का युद्ध वाण तथा सात्यकि ने नाना अस्त्रों का प्रयोग किया। पुनः वाण ने नारायणास्त्र छोड़ा, जिससे सात्यकि दण्डवत् पृथ्वी पर गिर गये। वाणासुर ने माहेश्वर अस्त्र छोड़ा तब सात्यकि ने वैष्णवास्त्र से उसका संहार कर दिया। ब्रह्मास्त्र का प्रतिकार ब्रह्मास्त्र से कर दिया। नागास्त्र को गरुडास्त्र से संहार किया। स्वामी कार्तिकेय और प्रद्युम्न का युद्ध। वाणासुर के रथ को हल से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। मुपल से सारथि व घोड़ों को मार दिया। जब बलरामजी वाणासुर को मारने चले तब कालाग्नि रुद्र भगवान् ने रोक दिया। बलवान् बलदेव ने कालाग्नि रुद्र भगवान् के रथ को तोड़ सारथि व घोड़ों को मार दिया। क्रोधित रुद्र ने ज्वर का प्रयोग किया। श्रीकृष्ण को छोड़ सब यादव ज्वर से पीड़ित हो गये। श्रीकृष्ण ने वैष्णव ज्वर का प्रयोग किया तब दोनों ज्वरों का परस्पर युद्ध। दुःखित हुण शैव ज्वर ने श्रीकृष्ण की शरण में जाकर उनकी स्तुति की। तब श्रीकृष्ण ने वैष्णव ज्वर संहार किया। जब वाणासुर ने शक्ति का प्रयोग किया तब अर्जुन ने उसे काट दिया। पुनः हजारों भुजाओं में सहस्रों वाण ले अत्यन्त भयङ्कर पाशुपत अस्त्र का प्रयोग किया तब श्रीकृष्ण ने चक्र छोड़ा जिससे उसकी भुजायें फट गईं और पाशुपत शङ्कर के पास आगया और वाणासुर पृथ्वी पर गिर गया। शङ्कर वाणासुर को अपने वक्षःस्थल पर रखकर रोदन करने लगे जिस से एक सरोवर हो गया। पुनः चैतना प्राप्त कर वाणासुर को श्रीकृष्ण के पास ले गये और उनकी स्तुति करने लगे। श्रीकृष्ण ने अपना हाथ वाणासुर पर रखकर अजर व अमर बना दिया। वाणासुर ने बलिकृत स्तोत्र से स्तुति की। वाणासुर ने अपनी कन्या उषा को

अनेक दास, दासी, मुक्ता, माणिक, धेनु व सुन्दर रेशमी महीन वस्त्रों के साथ श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में अर्पण किया। कृष्ण ने उसे वरदान देकर शंकर की आज्ञा से द्वारका में प्रस्थान कर कन्या को देवकी व रुक्मिणी के लिये दे महोत्सव करवाया पुनः ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें बहुतसा धन दिया।

१२१	शृगालोपाख्यानम्	११४३
	शृगालमोक्षणम्	११४५
	गणेशपूजावर्णनम्	

श्रीनारायण ने कहा—सुधर्मा सभा में रहते हुए कृष्ण के पास ब्रह्मतेजस्वी ब्राह्मण ने आकर विनयपूर्वक कहा—वासुदेव नाम शृगाल राजा ने जो कहा है सुनो। मैं वासुदेव नाम से वैकुण्ठ में विख्यात लक्ष्मी का पति हूँ। ब्रह्मा ने मुझ से पृथ्वी का भार दूर करने के लिये प्रार्थना की है इसलिये भारतवर्ष में आया हूँ। वासुदेवपुत्र श्रीकृष्ण अहंकारी है तथा महाधूर्त है। उसीने दुर्योधन और जरासन्ध को भीमसेन से नष्ट करवाया है। द्रोण, भीष्म, कर्ण और अन्य राजाओं को अर्जुन से मरवा दिया है। शिशुपाल, दन्तवक्र और कंसादि को स्वयं कृष्ण ने मारा है मैं साक्षात् नारायण हूँ। लज्जा से अथवा कृपा से मैंने क्षमा की है अब या तो युद्ध करो अथवा मेरी शरण में आओ। श्रीकृष्ण ब्राह्मण से शृगाल के वचन सुनकर प्रातःकाल युद्ध करने चले। श्रीकृष्ण के दर्शन कर शृगाल ने कहा कि चक्र से मेरा शिर काटकर द्वारका को जाओ। यह पापी एवं नश्वर शरीर नष्ट होना ही उचित है। आप जानते हैं मैं आपका सुभद्र नामक द्वारपाल हूँ। लक्ष्मी के शाप से भ्रष्ट हुआ हूँ मेरा समय पूरा हो गया है। श्रीकृष्ण ने कहा हे मित्र ! पहले मुझे मारो पीछे मैं युद्ध करूँगा। शृगाल ने दश बाण मारे वे बाण आकाश में चले गये। पुनः गदा छोड़ी वह भी श्रीकृष्ण के अङ्गस्पर्श से नष्ट हो गई। धनुष और तलवार श्रीकृष्ण के अङ्गस्पर्श से नष्ट हो गये। श्रीकृष्ण ने

हे राधिके ! तुम्हारे शाप की मुक्ति हो गई तथा तुम्हारे विरह की ज्वाला भी अब शान्त हो गई । मेरे प्राण एवं मन निरन्तर तुम्हारे मे ही रहते हैं । मेरे भक्त तुम्हारी निन्दा और तुम्हारे भक्त मेरी निन्दा करते हैं उन्हें सदा कुम्भीपाक नरक की प्राप्ति होकर अन्यान्य योनियों की प्राप्ति होती है । तुमने सर्वप्रथम मेरे पुत्र का पूजन किया है अतः सदा ही सर्वप्रथम उसकी पूजा होगी । हे राधिके ! मेरे वर से आज श्रीकृष्ण को प्राप्त करोगी । पार्वती के वचनों से गोपियों ने राधा को सब आभूषण व शृङ्गारों से सुसज्जित कर श्रीकृष्ण की सामग्री को सुसज्जित किया । सम्पूर्ण आश्रम को सुसज्जित देखकर मुनियों ने श्रीकृष्ण से इसका कारण पूछा तब भगवान् बोले श्रीदामा के शाप से राधा का और मेरा सौ वर्ष का वियोग था वह अवधि बीत गई है । इतना सुनकर ब्रह्मा, शङ्कर, मन्वादि शीघ्र ही राधा का ध्यान कर उनके दर्शनार्थ चले । वहा पर राधा के स्वरूप को देखकर प्रथम ब्रह्मा ने स्तुति की फिर श्रीमहादेव एवं अनन्त ने स्तुति की । विष्णु, रुक्मिणी आदि स्त्रिया सब उज्जित हो गईं एवं सत्यभामा ने अभिमान को छोड़ दिया ।

१२३

वसुदेवम्प्रति महादेवस्य ज्ञानोपदेशः

११५६

दक्षिणाकालनिर्णयवर्णनम्

११५६

नारदजी ने कहा कि गणेशपूजन एवं राधास्तोत्र के बाद क्या रहस्य हुआ है वह वर्णन करो । श्रीभगवान् बोले गणेश पूजन के बाद वसुदेव और देवकी ने शंकर, अनन्त, ब्रह्मा एवं मुनियों से पूछा संसार समुद्र में तैरने के लिये उत्तम गति का उपाय वर्णन कीजिये । संसाररूपी नौका को पार करने के लिये आप नाविक हैं । वैष्णवों के रजकणों के स्पर्शमात्र से ही पृथ्वी, पवित्र हो जाती है । वासुदेव के वचन सुनकर शङ्कर ने कहा वासुदेव का पिता भी हम से ज्ञान पूछते हैं । अहो महामाया ज्ञानियों को भी मोहित करनेवाली है । हम उसी माया से मोहित

हैं। हे वसुदेव ! सबका मूल कारण श्रीकृष्ण हैं राजसूय यज्ञ में यज्ञ के कारण श्रीकृष्ण को भजो और विधिविधानसे दक्षिणा देकर संसार समुद्र को पार करो। शङ्कर के वचन सुनकर वसुदेव ने राजसूय यज्ञ की तैयारी की एवं यज्ञारम्भ करवाया। पूर्णाहुति देते समय वसुदेव से सनत्कुमार ने कहा सर्वस्व दक्षिणा लक्ष्मीपति के निमित्त शीघ्र दो। दक्षिणा तत्काल न देने से मुहूर्त में दुगुनी हो जाती है। एक दिन बाद चौगुनी, तीन रात बीतने पर छः गुनी, एक पक्ष बीतने पर सौगुनी, मासान्त में उससे चारगुनी, छः मास के बाद सहस्रगुनी और एकवर्ष में लक्षगुनी हो जाती है। वसुदेव ने सर्वस्व त्यागकर गर्गाचार्य को मणि, सुवर्ण, चाँदी और धान्याचलादि दिये। देवों का स्वस्थान गमन और यादवों का द्वारकापुरी में जाना।

१२४

राधाकृष्णयोः पुनर्मेलनम्

११६०

कृष्णम्प्रतिराधोक्तिः

११६३

राधाकृष्णसंवादवर्णनम्

११६५

श्रीनारायण ने कहा—गणेशजी की पूजन कर देव, मुनि, एवं देवी रुक्मिणी आदि के साथ श्रीकृष्ण का द्वारका गमन। श्रीकृष्ण ने नन्द यशोदा से कहा ब्रज में जाओ वहाँ अवशेषकला भोगकर गोकुलवासियों के साथ गोलोक में जाओ। मैं तुम्हें गोकुलवासियों के साथ सालोप्य मुक्ति दूँगा। तदनन्तर माता-पिता की आज्ञा से श्रीकृष्ण का राधा के पास गमन। राधा ने श्रीकृष्ण को देखकर गोपियों के साथ प्रणाम कर स्तुति की। राधा ने कहा आज आपके मुखकमल के दर्शन करने से मेरा जीवन सफल हो गया। हे नाथ ! स्त्री-पुरुष के वियोग कठोर है। परमात्मा के विच्छेद होने से शक्तियों साथ प्राण चले जाते हैं। तदन्तर राधा ने श्रीकृष्ण की पूजन की और कल्पवृक्ष के पुष्प को आगे रखकर राधा ने कहा सब मङ्गलों के देनेवाले को कुशल प्रश्न पूछना तो

निष्फल है परन्तु लौकिक व्यवहार वेदों से भी बलवान् है अतः कुशल प्रश्न पूछती हूँ। आपने रुक्मिणी, जाम्बवती आदि स्त्रियों के साथ बहुतसे कार्य किये हैं आपको योगी, मुनि, एवं सिद्ध भी नहीं जान सकते तो स्त्रियां क्या जान सकती हैं। इतनी विपत्ति श्रीदामा के शाप से मिली है। मैंने भी श्रीदामा को शाप दिया। पुनः राधा अन्यान्य वार्ताओं को कहकर ऊँचे स्वर से रुदन करने से मूर्च्छित हो गई। यह देखकर गोपियों ने श्रीकृष्ण से कहा हे कृष्ण ! रक्षा करो रक्षा करो। आपने यह क्या किया। राधा को शीघ्र जीवदान दो। तदनन्तर गोपियों के वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने राधा को सुधावृष्टि से जीवित किया और कहा हे राधिके ! कार्यकारणरूप मैं हूँ। गोलोक, गोकुल व वृन्दावन में दो भुजा धारण कर राधा का पति हूँ तथा वैकुण्ठ में चतुर्भुजा धारण कर लक्ष्मी का पति हूँ मैं व्यक्ति भेद से नानारूपों को धारण करता हूँ। अर्जुन ने मुझे तपस्या से सारथि बनाया। जैसे तुम गोलोक व गोकुल में राधारूप से, वैकुण्ठ में महालक्ष्मी, मिथिला में सीता और तुम्हारी ही छाया द्रौपदी है उसी तरह मैं भी नानारूपों को धारण करता हूँ। हे राधे ! मेरे अपराधों को क्षमा करो। श्रीकृष्ण के वचन सुनकर राधा प्रसन्न हुई एवं सन्तुष्ट हो गई। गोपियों ने परमेश्वर को प्रणाम किया।

१२५

राधाकृष्णसंवादवर्णनम्

११६६

श्रीनारायण बोले—श्रीकृष्ण के वचनों से प्रसन्न होकर गोपियां राधा को प्रणाम कर अपने-अपने स्थान में चली गईं तत्पश्चात् राधा और श्रीकृष्ण के शृङ्गार का वर्णन। राधा ने कहा पुण्यस्थान वृन्दावन को चलो वहां जल एवं सुख में क्रीडा करूँगी फिर मलयाचल आऊँगी। श्रीकृष्ण ने प्रातःकृत्य को समाप्त कर गोपी एवं राधा के साथ वृन्दावन प्रस्थान किया। वहां सम्पूर्ण वन, उपवन, सुपर्वत और पुष्पोद्यानादि में शृङ्गार कर जम्बूद्वीप में गमन। राधा को द्वारकापुरी

दिखलाकर पुनः गोकुल गमन । श्रीकृष्ण का यशोदा आदि से मिलन । यशोदा ने मङ्गलाचार कर ब्राह्मणों को भोजन कराया तथा मुनि एवं गोपियों की पूजा की । इस उपलक्ष्य में ब्राह्मणों को मुक्तहस्त से मुक्ता, माणिक, हीरे, गौ, अश्व, आसन, पात्र, आभूषण, वस्त्र एवं धान्यादि दिये । गोपीगणों को मिष्टान्न खिलाया नगारे धजवाये एवं देवताओं को आननपूर्वक भोजन करवाया ।

१२६

कलिधर्मवर्णनम्

११६६

श्रीनारायण ने कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण ने सम्पूर्ण गोपां को बुलाकर भाण्डीरवट के नीचे निवास किया जहाँपर पहिले उनको ब्राह्मणस्त्रियों द्वारा अन्न दिया गया था । उसी जगह भगवान् के दामभाग में राधिका, दक्षिण में यशोदा सहित नन्दादि गोप उनके दक्षिण में वृषभानु तथा दाम भाग में फलावती । इसी प्रकार अन्य गोप-गोपिकायें भाई-बन्धुओं को भगवान् गोविन्द ने समयोचित यथार्थ वचन कहे । श्रीभगवान् ने नन्द से कहा कि परलोक में सुख को देनेवाले, परम पुरुषार्थ को देनेवाले एवं सत्य वचन यशोदा को कदली यन में राधिका ने कहे वे परम सत्य हैं एवं भ्रमरूपी अन्धकार को नष्ट करने में दीपस्वरूप है । अब तुम मिथ्या मायामोह को छोड़कर परम पद का स्मरण करो । जो जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि को नष्ट करनेवाले तथा हर्ष को देनेवाले हैं एवं शोक-सन्ताप को नष्ट करनेवाले कर्ममूल को छुड़ानेवाले हैं । मुझे ही परब्रह्म भगवान् सनातन ज्ञान ध्यान कर परमपद को प्राप्त करो तथा मेरे में पुत्रवृद्धि का त्याग करो । गोकुलवासियों के साथ शीघ्र गोलोक को जाओ यहाँ शीघ्र ही कलि का आगमन होनेवाला है । जिस कलि में स्त्री-पुरुषों में नियम नहीं रहेंगे, न जाति-पाति का भेद होगा, विप्र सन्ध्यादिकों से हीन हो जायेंगे । यज्ञोपवीत और तिलक के सिवा सम्पूर्ण चिह्न निश्चय ही मिट जायेंगे । सभी विषयों में लोलुप हो धर्मकर्मों से विरत हो जायेंगे । केदारकन्या के शाप से यज्ञ, व्रत, तथा तप ह्रस

होंगे धर्म का नाश हो जायगा। स्त्रियां स्वच्छन्दगामिनी, पति को प्रतिदिन भिड़कनेवाली होंगी। पति निरन्तर उनका भक्त हो उनसे तिरस्कृत होगा। अतिथि सेवा कहीं नहीं की जायगी, विष्णु-सेवा, वित्रेश्वरों की पूजा और देवपूजा से मनुष्य विमुख हो जायेंगे। चारों वर्ण वाममार्गियों के मन्त्रों की उपासना करने लग जायेंगे। विप्र माया से मुझे छोड़ कर वेद को निन्दा करते हुए वाम मन्त्रों को जपेंगे। कलियुग में मेरी पूजा दश हजार वर्ष तक रहेगी, उससे आधे समय तक भुवनपावनी गङ्गाजी रहेंगी एवं इतने काल तक ही तुलसी, विष्णुभक्त और कुछ पुराण रहेंगे। सम्पूर्ण मानव एकवर्ण के हो जायेंगे। पृथ्वी अन्नहीन हो जायगी परन्तु पृथ्वी नष्ट नहीं होगी पुनः सत्य का प्रादुर्भाव हो जायगा। इतने में ही गोलोक से मनोहर रथ अवतीर्ण हुआ जिसपर भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से वे लोग बैठकर उत्तम गोलोक में चले गये। इस प्रकार सम्पूर्ण गोलोकवासी राधिका के साथ नश्वर शरीरों को छोड़ गोलोक में चले गये।

१२७

श्रीकृष्णस्य गोलोकवर्णनम्

११७२

श्रीनारायण ने कहा—भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार तत्काल गोकुलवासियों की सालोक्य मोक्ष देखकर गोपियों के साथ भाण्डौर वन के वटमूल में स्थित सम्पूर्ण गोकुल को व्याकुल देखकर एवं वृन्दावन को रक्षकों से हीन देख अमृत वृष्टि से पुनः वृन्दावन को गोप-गोपिकाओं से परिपूर्ण कर दिया। श्रीभगवान् ने गोपगणों से कहा यहाँ सुखपूर्वक रहो। इतने में ही भगवान् श्रीकृष्ण के पास शेष, विधाता, भवानी, शङ्कर और सूर्य-चन्द्रादि देवों का आगमन। भगवान् के प्रयाणकाल में ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवताओं की स्तुति। यादवों का ऐरक (आरा) युद्ध से विनाश एवं यादव स्त्रियों का चित्ता में प्रवेश। युधिष्ठिरादि के साथ अर्जुन का स्वर्ग गमन। प्रयाण काल में भगवान् क कदम्बमूल में निवास वहाँ व्याध के अस्थ से युक्त देखकर ब्रह्मादि देवों द्वारा स्तुति एवं उनकी भगवान्

का अभय दान । प्रेमविह्वला रोदन करती हुई पृथ्वी को आश्वसना एवं व्याध को स्वपद में भेजना । बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अयोनिसम्भवा रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती आदि देवियां, साम्ब, वसुदेव, देवकी आदि का अपने-अपने अंशों में प्रवेश । रुक्मिणी मन्दिर को छोड़कर सम्पूर्ण द्वारका का समुद्र में विलय । तदनन्तर समुद्र द्वारा पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति । गङ्गा, सरस्वती, यमुना, गोदावरी आदि नदियों ने भगवान् को प्रणाम किया तथा रुदन करती हुई गङ्गा ने भगवान् से कहा कि हे नाथ ! आप तो गोलोक जा रहे हैं हमारी इस कलिकाल में क्या गति होगी ? तब भगवान् ने कहा कलि में तुम पांच हजार वर्षों तक भूतल पर रहो । वहा पापी मनुष्य तुमको स्नान से जो पाप देंगे वह मेरे मन्त्रों के उपासकों के स्पर्श से तत्क्षण ही भस्म हो जायेंगे । जहां भी हरि भगवान् का गुणानुवाद एवं पुराण कथा होती हो वहां उनके साथ जाकर साधधान होकर सुनो इनके श्रवणमात्र से सम्पूर्ण ब्रह्महत्यादि पाप भस्म हो जाते हैं । मेरे भक्तों के चरणों की रज से वसुन्धरा तत्काल पवित्र हो जाती है । कलि में मेरे भक्त दस हजार वर्ष तक पृथ्वी पर रहेंगे । मेरे भक्तों के जाने पर पृथ्वी एकवर्णा हो जायगी । तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर से चतुर्भुज स्वरूप का प्रादुर्भाव हो रथ में आरुढ़ होकर क्षीरसागर को प्रस्थान होना । मूर्तिमती हो सिन्धुकन्या का भी साथ में प्रस्थान । जगत की पालन करनेवाले भगवान् विष्णु के श्वेत द्वीप जाने पर शुद्धसत्त्वस्वरूप भगवान् के दो रूप हो गये । वैकुण्ठनाथ के चलेजाने पर स्वयं राघेश ने वंशी का शब्द किया जिससे पार्वती को छोड़ सम्पूर्ण देवगण एवं मुनिगण मूर्च्छित हो गये । तब सर्वस्वरूपा भगवती पार्वती ने सनातन भगवान् से कहा कि हे प्रभो ! एक मैं ही राधिकारूप हूं अतः रासशून्य गोलोक को परिपूर्ण कीजिये । मुक्ता माणिक्य से भूषित रथ पर आरुढ़ हो शीघ्र चलिये, वहा मैं चिरहातुर गोपियों के साथ आपके चारों ओर रहूंगी । इस प्रकार पार्वती के वचन सुनकर रसिकेश्वर उस

रत्नयान में सवार हो उत्तम गोलोक को गये। वहां पर समीप आते हुए भगवान् को देखकर गोप और गोपियों ने प्रसन्न हो प्रणाम किया। हे नारद ! गोलोकारोहण के बाद अब क्या सुनना चाहते हो बोलो।

१२८

नारदाख्यानवर्णनम्

११७८

नारद ने कहा मैंने सम्पूर्ण ब्रह्मवैवर्तपुराण सुन लिया अथ क्या कहूँ आज्ञा दें तो मैं तप करने जाऊँ। नारायण बोले पूर्वजन्म में उपवर्हण गन्धर्व ५० स्त्रियों के पति थे इस समय ब्रह्मा पुत्र हो उनमें एक स्त्री ने शङ्कर की तपस्या की और नारद को पतिरूप में मांगा वह सृञ्जय की कन्या है। उसके साथ विवाह करो शङ्कर की आज्ञा भूठी नहीं हो सकती। विधाता के लिखे लेख मिट नहीं सकते। कर्म बिना भोगे क्षय नहीं होते। सूतजी बोले नारायण के वचन सुनकर नारद उन्हें प्रणाम कर दुःखित हृदय से सृञ्जय के घर गये। शौनक ने पूछा हे सूत ! ब्रह्मपुत्र नारद के विवाह का अपूर्व रहस्य कहिये तब सूतजी बोले मूढरूपी नारद ने तपस्विनी सृञ्जयकन्या को देखकर ब्रह्मसभा में जाकर सब वृत्तान्त पिता से कहा। प्रसन्न होकर ब्रह्मा देवताओं के साथ पुत्र को आगे कर सृञ्जय के घर गये। राजा सृञ्जय ने कन्या को सर्वस्व दक्षिणा के साथ नारदजी को समर्पित कर दिया। राजा सृञ्जय हे वत्से ! हे वत्से !! कहकर ऊँचे स्वर से रोने लगे हे पुत्रि ! मेरे घर को छोड़कर कहाँ जाती हो मैं भी वन में जाऊँगा। कन्या रोती हुई माता-पिता को प्रणाम कर स्वयं रोती हुई विधाता के रथ में बैठ गई पुत्रवधू के साथ ब्रह्मा का स्वधाम गमन। इस अवसर पर ब्रह्मा द्वारा ब्राह्मण भोजन। नारदजी सृञ्जय कन्या के साथ रहने लगे। सनत्कुमारजी का तीनों भाइयों के साथ नारद के पास आगमन। सनत्कुमार ने नारद से कहा हे भाई ! क्या कर रहे हो स्त्री-पुरुष का प्रेम सदा ही भगवान् की भक्ति व मोक्ष मार्ग का अवरोधक एवं चिरकालपर्यन्त बन्धन का कारण है। नीच मनुष्य अमृत बुद्धि से

विष पीता है। ईश्वर को छोड़ सम्पूर्ण देहधारियों में कामभोगे व्याप्त है। इस मायामयी स्त्री को छोड़कर तप करने जाओ इतना कहकर “कृष्ण” नाम मन्त्र का उपदेश देना तदनन्तर सनत्कुमारजी का गमन। नारदजी मन्त्र पाकर मायामयी स्त्री को त्यागकर तप करने चले। उन्होंने कृतमाला नदी के किनारे शङ्कर को देख प्रणाम किया तब शङ्कर बोले—मैं तुम्हारे तेज से प्रसन्न हूँ भक्तों का दर्शन ही देहधारियों को लाभदायक है। इस मन्त्र को मैंने गणेश और कार्तिकेय को दिया, गोलोक में श्रीकृष्ण ने मुझे तथा ब्रह्मा एवं धर्म को दिया, धर्मराज ने नारायण को एवं ब्रह्मा ने सनत्कुमार को तथा सनत्कुमार ने तुम्हें दिया। इस का मन्त्रग्रहण करने से मनुष्य नारायण हो जाता है। इस मन्त्र का पाँच लाख जप करने से एक पुरश्चरण होता है। शङ्कर ने नारदजी को सामवेदोक्त ध्यान बताया। शङ्कर का स्थान गमन एवं नारदजी भी शङ्कर को प्रणाम कर तप करने चले गये। नारदजी ने योग से शरीरजी को त्यागकर भगवान् के चरणों की प्राप्ति की।

१२६

बहिसुवर्णयोरुत्पत्तिवर्णनम्

११८२

शौनकजी ने कहा—हे सूतजी ! अत्यन्त सुन्दर एवं अपूर्व आख्यान आपसे सुना। भगवान् की कथा परम दुर्लभ है ऐसा सुदिन अब होगा जहाँ वैष्णवों का सङ्गम हो। गर्भवास को छेदन करनेवाला हरिभक्ति को देनेवाले गणेश, तुलसी व राधा का आख्यान सुना अब स्वर्ण एवं अग्नि की उत्पत्ति सुनना चाहता हूँ। तब सूतजी बोले—सृष्टि की सामग्री जल एवं अग्नि ही है; जैसे, प्रकृति नित्य एवं महान् है, जैसे, दिशा एवं महाकाश तथा सृष्टि गोल है; जैसे, शब्द तन्मात्र है वैसे ही अग्नि है परन्तु उसकी उत्पत्ति कहता हूँ :—एक समय श्वेतद्वीप में विष्णु को देखने ब्रह्मा, अनन्त एवं महेश गये। परस्पर में वार्तालाप होने के बाद सभा में बैठ गये जहाँ विष्णु के शरीर से उत्पन्न हुई कमला की कलाएँ विष्णुगाथा

गाती हुई नाच रही थीं। उनके कठिन श्रोणिप्रदेश एवं स्तनों को देखकर ब्रह्माजी का वीर्य स्खलित हो गया। उन्होंने लज्जा से उसको वस्त्र से आच्छादित कर दिया उस वस्त्र को क्षीरोद में छोड़ने से पुरुष उत्पन्न हो ब्रह्मा की गोद में आ बैठा तदनन्तर वरुण का बालक को लेने के लिये आना। वरुण द्वारा बालक का आकर्षण करने पर ब्रह्मा द्वारा आक्षेप करना। ब्रह्मा की क्रोधदृष्टि से वरुण मृत की तरह गिर गये तब शङ्कर ने चेतनावस्था करवाई। वरुण ने कहा यह बालक जल में उत्पन्न होने के कारण मेरा है ब्रह्मा मुझे क्यों मारते हैं। ब्रह्मा ने कहा यह बालक मेरी शरण में आया है शरणागत की रक्षा करना परम धर्म है।

शरणागतदीनार्तं यो न रक्षेदपण्डितः । पच्यते निरये तावद् यावच्चन्द्रविवाकरो ॥

दोनों के वचन सुनकर श्रीभगवान् ने कहा कि कामिनी के श्रोणिप्रदेश को देख ब्रह्मा का वीर्य स्खलित हुआ है पुनः लज्जा से क्षीरोद में छोड़ दिया इसलिये यह ब्रह्मा का बालक है “क्षेत्रजश्च सुतः शास्त्रे वरुणस्यापि गौणतः” श्रीमहादेव ने कहा—

योविद्यायोनिसम्बन्धो वेदेषु च निरूपितः ।

शिष्ये पुत्रे च समता चेति वेदविदो विदुः ॥

विद्या एवं मन्त्र वरुण प्रदान करें यह बालक ब्रह्मा का पुत्र एवं वरुण का शिष्य रहेगा। उसे विष्णु ने वाहिका शक्ति एवं वरुण ने मन्त्र दिया। तदनन्तर ब्रह्मा एवं शङ्कर का स्वस्थान गमन। स्वर्ण की उत्पत्ति का वर्णन—एक समय स्वर्गसभा में सब देव बैठे थे अप्सराएँ नाच रही थीं। रम्भा को देखकर अग्नि का वीर्य गिर गया लज्जा से उसे वस्त्र से आच्छादित कर दिया उसी से स्वर्णपुत्र हो गया क्षणभर में यह सुमेरु हो गया उसीको हिरण्यरेता वह्नि कहते हैं।

शौनकजी ने ब्रह्मवैवर्तपुराण की अनुक्रमणिका के विषय में पूछा तब सूतजी बोले—हे शौनक ! सावधान होकर सुनो इस अध्याय के सुनने से पुराण श्रवण का फल मिलता है । ब्रह्माण्ड में परब्रह्म का निरूपण, साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण, जिनकी जैसी शक्ति एवं ध्यान, गोलोकादि का वर्णन, अन्य प्रासङ्गिक आख्यान, जातियों का निर्णय, वर्णसंकरों का वर्णन, राधामाधव की क्रीड़ा, महाविष्णु की उत्पत्ति, सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति, ब्रह्मनारद का संवाद, नारद का विवेक, ब्रह्मा की आज्ञा से नारद का नरनारायण आश्रम में गमन, नारायण का दर्शन और नारद तथा नारायण का परस्पर वार्तालाप बताया है ।

प्रकृतिखण्ड में—प्रकृति का लक्षण, प्रकृतियों का वर्णन, उनका उपाख्यान पूजादि, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, राधिका और सावित्री का चरित्र, महालक्ष्मी का उपाख्यान, सरस्वती का आख्यान, सावित्री का आख्यान, सावित्री संवाद एवं सत्यवान् को जीवनदान, कुण्डों का वर्णन एवं लक्षण, देहधारियों के कर्मों का विपाक एवं भोग निर्णय, अन्य पुराणों में गोपनीय राधा का आख्यान, राजा सुयज्ञ का चरित्र, तुलसी की कथा, महेश एवं शङ्खचूड़ का संवाद और युद्ध, तुलसी एवं श्रीकृष्ण का संवाद तथा संभोग, शङ्खचूड़ की मृत्यु, श्रीदामा का शाप से मोक्षण, गङ्गा, मनसा, खाद्वा और खधा तथा अन्य भी प्रसङ्ग के अनुसार देवियों का आख्यान बताया है ।

गणेशखण्ड में—पार्वती शङ्कर की क्रीड़ा, स्कन्द की उत्पत्ति, शङ्कर पार्वती की क्रीड़ामङ्ग, पार्वती का तोषण एवं उनका अभिमान भङ्ग, विष्णु का व्रत, देवी का चरित्र एवं भगवान् द्वारा उसे वरदान, अतिथिरूप में हरि का दर्शन, गणेश का आविर्भाव, पार्वती परमेश्वर का पुत्रमुख देखना, शिवजी के घर में उत्सव, देवों द्वारा गणेश के दर्शन, जिनके दर्शन, पूजन एवं प्रणाम से कोटि जन्मों के पाप नष्ट

होते हैं, कार्तिकेय का आख्यान एवं अभिषेक, गणेशपूजन, एवं अभिषेक, जमदग्नि एवं कार्तवीर्यार्जुन का युद्ध, सुरभि का हरण, जमदग्नि की मृत्यु, पतिव्रता रेणुका का चितारोहण, परशुराम की प्रतिज्ञा, परशुराम गणेश संवाद एवं युद्ध, गणेश का दन्तभंग, पार्वती का विलाप एवं परशुराम को शाप, परशुराम के स्मरण करने पर श्रीविष्णु का प्रादुर्भाव, नारायण द्वारा पार्वती को बोध, शिवलोक वर्णन, शङ्कर द्वारा परशुराम को महास्त्र दान, श्रीकृष्ण का मन्त्र, कवच एवं वरदान, परशुराम का इक्कीस चार राजाओं को नष्ट करना और गणेश को तुलसी दान का निषेध कहा है ।

श्रीकृष्ण जन्मखण्ड में—श्रीदामा एवं राधा का कलह एवं परस्पर शाप, ब्रह्मा की प्रार्थना से श्रीकृष्ण का जन्म, कंस के भय से गोकुल गमन, राधा की बालक्रीड़ा का वर्णन, दैत्यादिकों की मृत्यु, गर्गाचार्य का अभिमान, पूतना एवं शकटामुर को मारना, श्रीकृष्ण का ऊखल में बन्धन एवं यमलार्जुन का मोक्ष, माता को अपने मुख में तीनों लोकों का दर्शन कराना, गोवत्सादिकों का हरण, ब्रह्मस्तुति, नन्द के साथ घृन्दावन गमन, गोपवालों के साथ क्रीड़ा, ब्राह्मण पत्नियों द्वारा भोजन करना एवं उनको वरदान, यक्षों का वर्णन, गोपियों के वस्त्रों का हरण, गोपियों को वरदान, कात्यायनी का व्रत, दुर्गा पूजन, पार्वती का वरदान, तालफलों का भक्षण, शक्यज्ञ का बिध्वंस, राधा के साथ श्रीकृष्ण का विरह एवं मिलन, गोपियों की रासक्रीड़ा, सोलह प्रकार के शृङ्गार, राधामाधव का संवाद, गोपियों को ज्ञान, अक्रूर का आगमन, गोपियों का विलाप, श्रीकृष्ण का मथुरा में गमन, गोकुलवासियों को श्रीकृष्ण विरह में शोक, राधा का विरह, अक्रूर को यमुनाजल में श्रीकृष्ण मूर्ति का दर्शन, मथुरा प्रवेश, रजक की मृत्यु, कुब्जा की मुक्ति, कुविन्द पर कृपा, माली की मोक्ष, धनुषभंग, कुलयापीड़ हाथी को मारना, सभा में प्रवेश, कंस को मारना, कंसके वन्धुओं का विलाप, असेन को राज्य दिलाना, नन्द का विलाप एवं उसे ज्ञानोपदेश, पिता-पुत्र का संवाद, अध्यात्म ज्ञान का उपदेश, धन्या का आख्यान,

उद्धव का आगमन, राधा उद्धव का संवाद, श्रीकृष्ण का यज्ञोपवीत संस्कार, गुरु से विद्याप्रदण, गुरु के मृतपुत्र की प्राप्ति, जरासन्ध एवं कालयवन का मारना, द्वारका का निर्माण एवं प्रवेश, उग्रसेन का विलाप, रुक्मिणी हरण, राजाओं का दमन, जाम्बवती आदि स्त्रियों के साथ विवाह, मायावती की मोक्ष एवं शङ्कर की मृत्यु, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में शिशुपाल की मुक्ति, दन्तवक्र एवं शाल्व की मृत्यु, मणि का अपहरण, कल्पवृक्ष का स्वर्ग से लाना, कौरव-पाण्डव-युद्ध, उपा का हरण एवं धाणासुर की मुजाओं का काटना, बलिकृत स्तुति, अनिरुद्ध का पराक्रम, राधा यशोदा संवाद, भृगाल की मोक्ष, तीर्थयात्रा प्रसंग से गणेशपूजा का महत्त्व; राधा के साथ रहना एवं तीर्थों में भ्रमण; ब्रह्मशाप से यादवों का संहार; पाण्डवों की मोक्ष; नारद का विवाह और अग्नि एवं सुवर्ण की उत्पत्ति बताई है यह पुराण चारखण्डों में है ।

१३१

पुराणपठन श्रवणादि माहात्म्य

११६०

शौनक ने कहा—आज मेरा जन्म एवं जीवन सफल होगया । ब्रह्मवैवर्त पुराण का श्रवण निर्विघ्न मोक्ष का कारण है । हे वत्स ! हे तात ! मुझे अभय दान दीजिये तब कुछ निवेदन करूँ । सूतजी बोले—हे महाभाग ! भय त्याग जो इच्छा हो सो प्रश्न करें जो-जो गोपनीय विषय है वे आपसे कहूँगा । शौनकजी ने कहा कि मैं पुराणों का लक्षण, संख्या, एवं फल सुनना चाहता हूँ । सूतजी ने कहा—हे शौनक ! पुराण, इतिहास, संहिता, और पञ्चरात्र विस्तार से कहता हूँ । सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित यही पुराण एवं उपपुराण का लक्षण है । महापुराणों में सृष्टि, विसर्ग, स्थिति एवं पालन, कर्मों की वासना, वार्ता, प्रलय वर्णन, मोक्ष निरूपण और हरि एवं देवों का कीर्तन ये दस लक्षण बताये हैं । पुराणों की संख्या में ब्रह्मपुराण के दश हजार श्लोक (कहीं तेरह का पाठ भी मिलता है) । पद्मपुराण में ५५ हजार, विष्णुपुराण में २३ हजार,

शिवपुराण में २४ हजार, श्रीमद्भागवत में १८ हजार, नारदपुराण में २५ हजार, मार्कण्डेयपुराण में ६ हजार, अग्निपुराण में १५ हजार चार सौ, भविष्य में १४ हजार पांच सौ, ब्रह्मवैवर्त में १८ हजार, यह सब पुराणों का सार है। लिङ्गपुराण में ११ हजार, चाराहपुराण में २४ हजार, स्कन्दपुराण में ८१ हजार, एक सौ, वामनपुराण में दश हजार, कूर्मपुराण में सतरह हजार, मात्स्य में १४ हजार, गरुडपुराण में १६ हजार, और ब्रह्माण्ड में १२ हजार इस तरह पुराणों की श्लोक-संख्या चार लाख होती है। इसी तरह पुराण एवं उपपुराण भी अठारह-अठारह हैं। महाभारत इतिहास है एवं वाल्मिकीय रामायण काव्य है। कृष्णमाहात्म्य से युक्त वाशिष्ठ, नारदीय, कापिल, गौतमीय और सनत्कुमारीय ये पंचरात्र हैं। ब्रह्म, शिव, प्रह्लाद, गौतम और कुमार ये पांच संक्षिप्तार्थ हैं। यह शास्त्र बहुत विपुल हैं, मुझे किस तरह प्राप्त हुए हैं सो सुनिये। इस पुराण को गोलोक रासमण्डल में श्रीविष्णु ने अपने भक्त ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने धर्म को, धर्म ने नारायण को, नारायण ने नारद को, नारद ने मुझे और मैंने तुम्हें बतलाया। यह ब्रह्मवैवर्तपुराण सुदुर्लभ है ब्रह्म का साक्षिरूप एवं ब्रह्मा का साक्षिरूप एवं ब्रह्मा का विवरण होने से ब्रह्मवैवर्त यथार्थ नाम है। यह पुराण पुण्य एवं मङ्गलप्रद, सुगोप्य, हरिभक्ति देनेवाला, सुख एवं ब्रह्म के ज्ञान को देनेवाला है। जैसे नवियों में गङ्गा, तीर्थों में पुष्कर, पुरियों में काशी, वर्षों में भारत, शैलों में सुमेरु वृक्षों में कल्पवृक्ष, पुष्पों में पारिजात, पत्रों में तुलसी, व्रतों में एकादशी, देवों में श्रीकृष्ण, ज्ञानियों में महादेव, योगीन्द्रों में गणेश, सिद्धों में कपिल, तेजस्वियों में सूर्य, वैष्णवों में सनत्कुमार, राजाओं में श्रीराम, धनुषधारियों में लक्ष्मण, देवियों में दुर्गा, श्रीकृष्ण की प्रियपत्नियों में राधा, ईश्वरियों में लक्ष्मी और पण्डितों में सरस्वती सद्यः फल देनेवाली है उसी तरह यह इस लोक और परलोक में सुख देने वाला, सन्देह दूर करनेवाला और हरिदास्य (भक्ति) को देनेवाला है। क्या कहूँ यज्ञ, व्रत, तीर्थ, तप और पृथ्वी की परिक्रमा का भी फल इसके समान नहीं है।

चारों वेदों के पठन से भी श्रेष्ठ फल होता है। हे शौनक ! जितेन्द्रिय होकर सुनने से गुणवान्, विद्वान् एवं वैष्णव पुत्र की प्राप्ति होती है। दुर्भागिनी सुने तो स्वामी के सौभाग्य को प्राप्त करती है। जिसके पुत्र नहीं जाते हों या पुरु ही सन्तान हो या पुत्री की संतान हो, महायन्त्र्या एवं पापिनी इस पुराण के सुनने से चिरंजीवी पुत्र को प्राप्त कर सकती है। इसके पठन और श्रवण अपुत्र को पुत्र प्राप्ति, स्त्री रहित को स्त्री, अविख्यात की कीर्ति एवं मूर्ख को पण्डित बनाते है। रोगी रोग से, बंधा हुआ (कैदी) बंधन से, डरनेवाला डर से और आपत्ति में गिरा आपत्तियों से छूट जाता है। पाप, क्रुद्ध, दरिद्रता, रोग एवं शोक नष्ट हो जाते हैं। इसके सुनने से पुण्यवान् होता है एवं विना पुण्यवाला इसे नहीं जान सकता। जितेन्द्रिय होकर आधा श्लोक अथवा एक चरण के सुनने से लक्ष गोदान के समान फल होता है। जो कोई शुद्ध समय में जितेन्द्रिय हो इस पुराण के चारों खण्डों को संकल्प कर सुनता है तथा भक्तिपूर्वक दक्षिणा देता है उसके वाल्य, कौमार, युवा एवं युद्धापे में किये हुए कोटि जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं। वह पुरुष रत्नों से युक्त विमान में श्रीकृष्ण का रूप धारण कर नित्य गोलोक में जाकर श्रीकृष्ण की सेवा को प्राप्त करता है। असंख्य ब्रह्मा के गिरने से भी उसका पतन नहीं होता। वह भगवान् के पास पार्षद रूप धारण कर चिरकाल सेवा करता है। शुद्धस्नान कर जितेन्द्रिय हो प्रह्लादखण्ड सुनकर वाचक को पायस, पिष्टक (पूआ) फल और ताम्बूल भोजन देकर मुषर्ण, चन्दन, गुठ माला, सूक्ष्म और मनोहर वस्त्र वासुदेव को अर्पण कर देना चाहिये। अमृत के समान प्रकृतिखण्ड को सुनकर दधि एवं अन्न का भोजन कर तथा मुषर्ण एवं सवत्सा गौ को प्रदान करे। जितेन्द्रिय हो विघ्ननाश करने के लिये गणपति-खण्ड का श्रवण कर स्वर्ण यज्ञोपवीत, स्वैताश्व, स्वैत छत्र, शंखमाला, तिल के लड्डू, स्वस्तिक (जलेरी) पके हुए फल वाचक को दें। भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णजन्मखण्ड श्रवण कर वाचक को रत्नों की अंगूठी, सुन्दर वस्त्र, माला, मुषर्ण के गुण्डल, चरवाला (पालरी), पकी हुई खीर और सर्वस्य दक्षिणा देकर स्तुति करे। एक सौ

ब्राह्मणों को भोजन करावे। शास्त्र के जाननेवाले, वैष्णव, पण्डित एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण को वाचक बनावे अन्यथा फल नहीं मिलता है। श्रीकृष्ण की भक्ति के विमुखों को इसका उपदेश न करे। श्रीकृष्ण की भक्तिवाले पुराण को जो सुनता है उसे भक्ति एवं पुण्य की प्राप्ति होती है तथा पाप नष्ट हो जाते हैं। हे शौनकजी ! गुरुमुख से जो सुना वह निवेदन किया अब मुझे जाने की आज्ञा दें जिससे मैं नारायण के आश्रम में जाऊँ। मैं आप विप्र-युन्द को देख नमस्कार करने आया था। आपकी सेवा में ब्रह्मवैवर्त पुराण सुना दिया पुनः सूतजी ने सब को स्तुति कर प्रणाम किया—

नमोऽस्तु ब्राह्मणेभ्यः कृष्णाय परमात्मने ।
 शिवाय ब्रह्मणे नित्यं गणेशाय नमो नमः ॥
 कायेन मनसा वाचा परं भक्त्या दिधानिशाम् ।
 भज सत्यं परं ब्रह्म राघेशं त्रिगुणात्परम् ॥
 नमो देव्यै सरस्वत्यै पुराणगुरवे नमः ।
 सर्वविघ्नविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नमः ॥

हे शौनकजी ! अब आपके पुण्यचरणकमलों को नयनकर जहाँ देवगणेश्वर विराजमान हैं उस सिद्धाश्रम को जाता हूँ।

॥ शुभम्भूयात् ॥

वैवर्ताख्यपुराणस्य सूचीयं लोकहेतवे । यथामतिकृताऽस्माभिः शोधयन्तु दयालवः ॥

विद्वज्जनपादपद्मधुपाः—

लक्ष्मणगढ़वास्तव्यब्रह्मदत्तत्रिवेदिनवल्लभगढ़वास्तव्यकजोड़ीलालमिश्र-

रामनाथदासीनः ।

✽ श्रीगणेशायनमः ✽

अथ चतुर्थं श्रीकृष्णजन्मखण्डम्

—*—

प्रथमोऽध्यायः

श्रीकृष्णपादपद्मप्राप्तिसोपानम् ।

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् । देवी सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ।

नारद उवाच ।

श्रुतं प्रथमतो ब्रह्मन् ब्रह्मखण्डं मनोहरम् । ब्रह्मणो वदनाम्भोजात् परमाद्भुतमेव च ॥१॥
ततस्तद्वचनात्तूर्णं समागत्य तवान्तिकम् । श्रुतं प्रकृतिखण्डञ्च सुधाखण्डात् परं चरन्
ततो गणपतेः खण्डमखण्डजन्मखण्डनम् ।

न मे तृप्तं मनो लोलं विशिष्टं श्रोतुमिच्छति ॥३॥

श्रीकृष्णजन्मखण्डञ्च जन्मादिखण्डनं नृणाम् । प्रदीपं सर्वतत्त्वानां कर्मज्जहिरभक्तिदम्
सद्यो वैराग्यजनकं भयरागनिकृन्तनम् । कारणं मुक्तिर्विजानां भवाब्धितारणं परम् ॥५॥
कर्मोपभोगरोगाणां खण्डने च रसायनम् । श्रीकृष्णचरणाम्भोजप्राप्तिसोपानकारणम्
जीवनं वैष्णवानाञ्च जगतां पावनं परम् । वद चिस्तरशो भक्तं शिष्यं मां शरणागतम्
केन वा प्रार्थितः कृष्ण आजगाम महीतलम् । सर्वांशैरेक प्वेशः परिपूर्णतमः स्वयम्
युगे कुत्र कुतो हेतोः कुत्र वाविर्वभूवह । वसुदेवोऽस्य जनकः कोवा कावा च देवकी
वद कस्य कुले जन्म मायया सुविडम्बनम् । किञ्चकार समाख्यातं केन रूपेण चाहारिः
जगाम गोकुलं कंसभयेन सूक्तिकागृहात् । कथं कंसात् कीटतुल्यात् भयेशस्य भयं मुने
हरिर्वा गोपवेपेण गोकुले-किञ्चकारह । कुतो गोपाङ्गनासाङ्गं विजहार जगत्पतिः ॥

का का गोपाङ्गनाः के वा गोपाला बालरूपिणः ।

का वा यशोदा को नन्दः किं वा पुण्यञ्चकारह ॥१३॥

कथं राधा पुण्यवती देवी गोलोकवासिनी । ब्रजे वा ब्रजकन्या सा बभूव प्रेयसी हरेः
कथं गोप्यो दुराराध्यं सम्प्रापुरीश्वरं परम् । कथं ताञ्च परित्यज्य जगाम मधुरां पुनः
भारावतारणं कृत्वा किं विधाय जगाम सः । कथयस्व महाभाग पुण्यश्रवणकीर्त्तनम्
सुदुर्लभां हरिकथां तरणिं भवतारणे । निषेव्य भोगनिगडक्लेशछेदनकर्त्तनीम् ॥१७॥
पापेन्धनानां दहने ज्वलदग्निशिखामिव । पुंसां श्रुतवतां कोटिजन्मकिल्बिषनाशिनीम्
मुक्तिं कर्णसुधारम्यां शोकसागरनाशिनीम् । मह्यं भकाय शिष्याय ज्ञानं दिदिकृपानिधे
नमोज्ज्वलमहादानपृथिवीतीर्थदर्शनात् । श्रुतिपाठादनशलाद् व्रतदेवार्चनादपि ॥२०॥

वीक्षया सर्वयज्ञेषु यत् फलं लभते नरः ।

पोडशीं ज्ञानदानस्य फलां नार्हति तत् फलम् ॥२१॥

पित्राहं प्रेषितो ज्ञानादानाय तव सन्निधिम् ।

सुधासमुद्रं संग्राप्य न को वा पातुमिच्छति ॥२२॥

नारायण उवाच ।

मया ज्ञातोऽसि धन्यस्त्वं पुण्यराशिः सुमूर्त्तिमान् ।

करोषि भ्रमणं लोकान् पायितुं कुलपावन ॥२३॥

जनानां हृदयं सद्यः सुव्यक्तं वचनेन वै ।

शिष्ये कलत्रे कन्यायां दौहित्रे वान्धवेऽपि च ॥२४॥

पुत्रे पौत्रे च वयसि प्रतापे यशसि श्रियाम् । बुद्धौ चारिणि विद्यायां ज्ञायते हृदयं नृणाम्
जीवन्मुक्तोऽसि पूतस्त्वं शुद्धभक्तोगदामृतः । पुनासिपादरजसासर्वाधारां पसुन्धराम्
पुनामि लोकान् सर्वांश्च स्वयं विप्रहृदशनात् ।

सुमङ्गला हरिकथा तेन तां श्रोतुमिच्छसि ॥२७॥

यत्र कृष्णकथाः सन्ति तत्रैव सर्वदेवताः । ऋषयो मुनयश्चैव तीर्थानि निखिलानि च
कथाः श्रुत्वा तथान्ते ते यान्ति सन्तो निरापदम् ।

भवन्ति तानि तीर्थानि येषु कृष्णकथाः शुभाः ॥२८॥

सद्यः कृष्णकथावक्ता स्वस्य पुंसां शतं शतम् । समुद्रधृत्यश्रुतवतांपुनातिनिखिलंकुलम्
प्रष्टातु प्रश्नमात्रेण पुनाति कुलमात्मनः । श्रोता श्रवणमात्रेण स्वकुलं स्वस्ववान्धवान्
शतजन्मतपःपूतो जन्मेदं भारते लभेत् । करोति सफलं जन्म श्रुत्वा हरिकथामृतम् ॥
अर्चनं घन्दनं मन्त्रजपं सेवनमेव च । स्मरणं कीर्तनं शश्वद्वगुणश्रवणमीप्सितम् ॥३३॥
नियेदनं तस्य दास्यं नवधा भक्तिलक्षणम् । करोति चन्म सफलं श्रुत्वा तानि च भारते
न च विप्रो भवेत्तस्य परमायुर्न नश्यति । न याति तत्पुरःकालो वैनतेयमिधोरगः ॥३५॥
न जह्वाति समीपश्च क्षणं तस्य हरिः स्वयम् । उपतिष्ठन्ति तूर्णं तमणिमादिकसिद्धयः
सुदर्शनं भ्रमत्येव तस्य पार्श्वे दिवानिशम् । कृष्णाद्या च रक्षार्थंकोटार्फिकर्तुमीश्वरः
न यान्ति तत् समीपश्च स्पृष्ट्वाऽपि यमकिङ्कराः ।

उदलदर्गिन् यथा दृष्ट्वा शलभा न ब्रजन्ति तम् ॥३८॥

व्याधयो विपदः शोका विप्राश्च न प्रयान्ति तम् ।

न याति तत्समीपश्च मृत्युमृत्युभयान् मुने ॥३९॥

ऋषयो मुनयः सिद्धाः सन्तुष्टाः सर्वदेवताः । स च सर्वत्र निःशङ्कःसुरीकृष्णप्रसादतः
तत्कृष्णकथायाश्चरतिरात्यन्तिकीसदा । जनकस्यस्वभावोऽदिजन्मेतिष्ठति निश्चितम्
विप्रेन्द्र का प्रशंसेयं जन्म ते ब्रह्ममानसे । यस्य यत्र कुले जन्म तन्मतिस्तादृशी भवेत्
पिता विधाता जगतां कृष्णपादाब्जसेवया ।

नित्यं करोति यः शश्वद्वचश्च भक्तिलक्षणम् ॥ ४३ ॥

रतिः कृष्णकथायाश्च यस्याश्रुपुलकोद्गमः । मनो निमग्नं तत्रैवसभक्तः कथितो बुधैः ॥
गुह्यदारादिकं सर्वं जानाति यो हरेरिव । आत्मना मनसावाचासभक्तः कथितो बुधैः ॥
दयास्ति सर्वजैविषु सर्वं कृष्णमयं जगत् । यो जानातिमहाशानी सभक्तो वैष्णवोत्तमः
निर्जने तीर्थसम्पर्केनिःसङ्गा ये मुदान्विताः । ध्यायन्तेचरणाभोजन्रीहरेस्तेचर्येष्णवाः
शरणदुषे नाम गायन्ति गुणमन्त्रंजपन्ति च । कुर्वन्तिश्रवणंगाथापदन्ति तेऽतिवैष्णवाः
लब्ध्वा मिष्टानि पस्तूनि प्रदानुं हरये मुदा । तूर्णं यस्य मनो दृष्टं सभक्तो नानिनां परः
यन्मनो हरिपादाब्जे स्पृष्टे ज्ञानं दिवानिशम् ।

पूर्वकर्म्मोपभोगश्च बहिर्मुड्के स वैष्णवः ॥ ५० ॥

शुक्लवस्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशत्यथ । तं वैष्णवं महापूतं प्रचदन्ति मनीषिणः ॥
पूर्वान् सप्त परान् सप्त सप्तमातामहादिकान् । सोदरामुद्धरेद्वक्तः स्वप्रसूञ्च प्रसूप्रसूम् ॥

कलत्रं कन्यकां यन्धुं शिष्यं दौहित्रमात्मनः ।

किङ्करीं किङ्करीं पुत्रमुद्धरेद्वैष्णवः सदा ॥ ५३ ॥

सदा घाञ्छन्ति तीर्थानि वैष्णवस्पर्शदर्शने ।

पापिदत्तानि पापानि तेषां नश्यन्ति सङ्गतः ॥ ५४ ॥

गोवोदनक्षणं यावद्वयत्र तिष्ठति वैष्णवः । तत्र सर्वाणि तीर्थानिसन्ति तावन्महीतले ॥
ध्रुवन्तत्रमृतः पापी मुक्तो याति हरिः पदम् । यथैव ज्ञानगङ्गायामन्ते कृष्णस्मृतौ यथा
तुलसी कानने गोष्ठे श्रीकृष्णमन्दिरे पदे । वृन्दारण्ये हरिद्वारे तीर्थेऽन्येषु वा यथा ॥

पापानि पापिनां यान्ति तीर्थस्नानावगाहनात् ।

तेषां पापानि नश्यन्ति वैष्णवस्पर्शवायुना ॥ ५८ ॥

नहि स्यातुं शक्नुयन्ति पापान्येव कृतानि च ।

ज्वलदग्नौ यथा क्षिप्रं शुष्काणि हि तृणानि च ॥ ५९ ॥

भक्तघर्मनिगच्छन्तं येयेपश्यन्ति मानवाः । सप्तजन्मकृताघानि तेषानश्यन्ति निश्चितम्
ये निन्दन्ति हृषीकेशं तद्वक्तं पुण्यरूपिणम् । शतजन्माज्जितं पुण्यं तेषानश्यति निश्चितम्
ते पच्यन्ते महाघोरे कुम्भीपाके भयानके । भक्षिताः कीटसङ्गेन यावच्छन्द दिवाकरो ॥

तस्य दर्शनमात्रेण पुण्यं नश्यति निश्चितम् ।

गङ्गां स्नात्वा रविं दृष्ट्वा तदा विद्वान् विशुद्ध्यति ॥ ६३ ॥

वैष्णवस्पर्शमात्रेण मुक्तो भवति पातकी । तस्य पापं निहत्येव स्वान्तःस्थो मधुसूदनः
त्येवं कथितो विप्र विष्णुवैष्णवयोगुणः । अधुना श्रीहरैर्जन्म निबोध कथयामि ते
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

विष्णुवैष्णवयोगुणप्रशंसा नाम प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः

श्रीदामा-राधाकलहवर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

येन वा प्रार्थितः कृष्ण आजगाम महीतलम् । यं यं विधाय भूमौ स जगाम स्वालयं विभुः
भारावतरणोपायं दुष्टानाञ्च बधोद्यमम् । सर्वं ते कथयिष्यामि सुविचार्य्य विधानतः
अधुना गोपवेशञ्च गोकुलागमनं हरे । राधा गोपालिका येन निबोध कथयामि ते ॥
शङ्खचूडबधे पूर्वं संक्षेपात् कथितं श्रुतम् । अधुना तत् सुविस्तार्य्य निबोधकथयामि ते
श्रीदाम्नः कलहश्चैव बभूव राधया सह । श्रीदामा शङ्खचूडञ्च शापात्तस्या बभूव ह ॥

राधां शशाप श्रीदामा याहि योनिञ्च मानवीम् ।

वजे वज्राङ्गना भूत्या विचरस्व च भूतले ॥ ६ ॥

भीता श्रीदामशापात् सा श्रीकृष्णं समुधाच ह ।

गोपीरूपं भविष्यामि श्रीदामा मां शशाप ह ।

किमुपायं करिष्यामि वद मां भयभञ्जन ॥ ७ ॥

त्वया पिता कथमहं धरिष्यामि स्वजीवनम् । क्षणेन मे युगशतकालं नाथ त्वया पिता
चक्षुर्निमेषविरहाद्बन्धेद्गन्धं मनो मम । शरत्पार्वणचन्द्राभ सुधापूर्णाननं तव ॥ ८ ॥
नाथ चक्षुश्चकोराभ्यां पिबाम्यहमहर्निशम् । त्वमात्मामे मनः प्राणादेहमात्रं वदाम्यहम्
दृष्टिशक्तिश्च चक्षुस्त्वं जीवनं परमं धनम् ॥ ११ ॥

स्वप्ने ज्ञाने त्वयि मनः स्मरामि त्यत्पदाम्बुजम् ।

तव दास्यं विनानाथ न जीवामि क्षणं विभो । कृष्णस्तद्वचनं श्रुत्वा बोधयामास सुन्दरीम्
वक्षसि प्रेयसीं कृत्वा चकार निर्मयाञ्चताम् । महीतलं गमिष्यामि घाराहे च धरानने ॥
मया साद्वं भूगमनं जन्मतेऽपि निरूपितम् । व्रजं गत्वा व्रजे देवि विहरिष्यामि कानने ॥
मम प्राणाधिकात्त्वञ्च भयं किन्ते मयि स्थिते । तामित्युक्त्वा हरिस्तत्र विरराम जगत्पतिः

अतो हेतोर्जगन्नाथो जगाम नन्दगोकुलम् ॥ १६ ॥

किंवा तस्य भयं कस्माद्भयान्तकारकस्य च ।

मायाभयच्छलेनैव जगाम राधिकान्तिकम् । विजहार तथा सार्द्धं गोपवैपविधाय सः
सह गोपाङ्गनाभिश्च प्रतिज्ञापालनाय च । ब्रह्मणा प्रार्थितः कृष्णःसमागत्यमहीतलम् ॥

भारावतारणं कृत्वा जगाम स्वालयं विभुः ॥ १६ ॥

नारद उवाच ।

श्रीदाम्नः कलहश्चैवकथं वा राधया सह । संक्षेपात्कथितं पूर्वं संव्यस्य कथयाधुना ॥

नारायण उवाच ।

एकदा राधया सार्द्धं गोलोके श्रीहरिः स्वयम् । विजहार महारण्येविजने रासमण्डले ।

राधिका सुखसम्भोगात् ध्रुवध्वे न स्वकं परम् ॥ २१ ॥

कृत्वाविहारंश्रीकृष्णस्तामसतां विहाय च । गोपिकां विरजामन्यांभृङ्गारार्थं जगाम ह
वृन्दारण्ये च विरजा सुभगाराधिकासमा । तस्यावयस्याःसुन्दर्यो गोपीनांशतकोटयः

कृष्णप्राणाधिका गोपी धन्या मान्या च योपिताम् ।

रत्नसिंहासनस्था सा ददर्श हरिमन्तिके ॥ २४ ॥

ददर्श श्रीहरिस्ताञ्च शरच्चन्द्रनिभाननाम् । मनोहरां सस्मिताञ्च पश्यन्तीं चक्रचक्षुषा ॥

सदा षोडशवर्षीयां प्रोद्विन्ननययौवनाम् । रत्नालङ्कारशोभाढ्यां भूषितां सूक्ष्मवाससां
पुलकाङ्कितसर्पाद्री कामवाणप्रपीडिताम् । दृष्ट्वा तां श्रीहरिस्तूष्णं विजहार तथा सह ॥

पुष्पतल्पे महारण्ये निर्जने रत्नमण्डले । भूर्च्छामवाप विरजा कृष्णशृङ्गारकीतुकात् ॥

कृत्वा चक्षसि प्राणेशंकोटिकन्दर्पसन्निभम् । तथा सक्तं श्रीहरिञ्च रत्नमण्डपसंस्थितम्

दृष्ट्वा च राधिकासख्यः चक्रुस्ताञ्च निषेदनम् ॥ २६ ॥

तासाञ्च घचनं श्रुत्वा सुपथाप च चुकोप च ॥ ३० ॥

भृशं ररोद सा देवी रक्तपद्मजलोचना । ता उवाच महादेवी मा तं दर्शयितुं क्षमाः ॥

यदि सत्यं द्यूत गूर्यमयासार्द्धं प्रगच्छत । करिष्यामिफलंगोप्याः कृष्णस्यचयथोचितम्

को रक्षिताय तस्याश्च मयिशास्ति प्रकुर्वन्ति । शीघ्रमानयतान्याश्च तथासाञ्चहरिप्रियाः ।

अन्तर्द्वकं सस्मितञ्च विषकुम्भं सुधामुखम् ॥ ३४ ॥

। दाश्रपं समागन्तुं यूयं दासं न दास्यथ । तमेव मण्डपं रम्यं यात संरक्षतेश्वरम् ॥

राधिकाधवनं श्रुत्वा काश्चित् गोप्यो भयान्विताः ।

ताः सर्वाः सम्पुटाञ्जलयो भक्तिनम्रास्यकन्धराः ॥ ३६ ॥

तामूचुः पुरतः स्थित्वा सर्वा एव प्रियां सतीम् ।

ययं तं दर्शयिष्यामो विरजासहितं प्रभुम् ॥ ३७ ॥

। साञ्च धवनं श्रुत्वा रथमारुह्य सुन्दरी । जगामसाहं गोपीभिक्षिपट्टिशतकोटिभिः ॥

जेन्द्रसाररचितं कोटिसूर्य्यसमप्रभम् । मणीन्द्रसाररचितं कलशानां त्रिकोटिभिः ॥

राजितं चित्रघाजिभिः वैजयन्तीविराजितम् ॥ ३९ ॥

क्षचक्रसमायुक्तं मनोयायि मनोहरम् । मणिसारविकारैश्च कोटिस्तम्भैः सुशोभितम् ॥

। नाचित्रविचित्रैश्च सहितैः सुमनोहरैः । सिन्दूराकारमणिभिर्मध्यदेशे विभूषितैः ॥

रत्नकृत्रिमसंघैश्च रथचक्रोद्भूर्ध्वसंस्थितैः ॥ ४२ ॥

स्तुलक्षपरिमितैः चित्रघण्टासमन्वितैः । चित्रनूपुरशोभाढ्यैर्विचित्रैश्च विराजितैः ॥

। णिमन्दिरलक्षैश्च रत्नसारविनिर्मितैः । मणिसारकपाटैश्च शोभितैश्चित्रराजिभिः ॥

। णीन्द्रसारकलसैः शिखरोज्ज्वलितैर्युतम् । भोगद्रव्यसमायुक्तं वेशद्रव्यसमन्वितैः ॥

। गेभितं रत्नशय्याभी रत्नपात्रपुटान्वितम् । हिरण्यमीनां वेदीनां समूहेन समन्वितम् ॥

। ङ्कुसुममणीनाञ्च सोपानकोटिभिर्युतम् । स्यमन्तकैः कौस्तुभैश्च रुचकैः प्रवरैस्तथा ॥

। मलत्रिमकोटीनां शतकैश्च सुशोभितम् । चित्रकाननवापीभिर्विशिष्टाधारराजितम् ॥

। जेन्द्रसारचितं कलसोज्ज्वलशिखरम् । शतयोजनमूतुर्ध्वञ्च दशयोजनविस्तृतम् ॥ ४६ ॥

पारिजातप्रसूनानां मालाकोटिविराजितम् ।

कुन्दानां करवीराणां यूथिकानान्तर्ध्वं च ॥ ५० ॥

। चारुचम्पकानाञ्च नागेशानां मनोहरैः । मल्लिकानां मालतीनां माधवीनां सुगन्धिनाम्

। रदम्यानाञ्च मालानां कदम्बैश्च विराजितम् । सहस्रदलपद्मानां मालापद्मैर्विभूषितम् ॥

। चेत्रपुष्पोद्यानसरःकानैश्च विभूषितम् । सर्वेषां स्पन्दनानाञ्च श्रेष्ठं धायुधदं परम् ॥

सत्सूक्ष्मवस्त्रसाराणां घरेराच्छादितं घरम् । रत्नदर्पणलक्षाणां शतकैश्च समन्वितम् ॥
श्वेतचामरकोटिभिर्वज्रमुष्टिमिरन्वितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रव्यचर्वितैः ॥५५॥

पारिजातप्रसूनानां कोदितल्पचिराजितम् ।

कोटिघण्टासमायुक्तं पताकाकोटिभिर्युतम् ॥ ५६ ॥

रत्नशय्याकोटिभिश्च चित्रघस्त्रपरिच्छदैः । चन्दनाह्वैश्चम्पकानां कुङ्कुमैश्च विचर्वितैः ॥
पुष्पोपधानसंयुक्तभृङ्गाराहाभिरन्वितम् । अदृश्यैरश्रुतैर्द्रव्यैः सुन्दरैश्च विभूषितम् ॥५८॥
एवम्भूताद्रथात्पूर्णमबरुह्य हरिप्रिया । जगाम सहसा देवी तं रत्नमण्डपं मुने ॥ ५९ ॥
द्वारे नियुक्तं ददर्श द्वारपालं मनोहरम् । लक्षगोपपरिवृतं स्मेराननसरोरुहम् ॥ ६० ॥

गोपं श्रीदामनामानं श्रीकृष्णस्य प्रियङ्गुम् ।

तमुवाच रूपा देवी रक्तपङ्कजलोचना ॥ ६१ ॥

दूरं गच्छ गच्छ दूरं रतिलम्पटफिङ्गुर । कोदृशीं सुरूपां कान्तां द्रक्ष्यामि त्वत्प्रभोरुहम्
राधिकावचनं श्रुत्वा निःशङ्कः पुरतः स्थितः । तामेव न ददौ गन्तुं वेत्रपाणिस्महाबलः
तूर्णञ्च राधिकान्यञ्च श्रीदामानं सुफिङ्गुम् । बलेन प्रेरयामासुः कोपेन स्फुरिताधरा
श्रुत्वा कोलाहलं शब्दं गोलोफानां हरिः स्वयम् ।

ज्ञात्वा च कोपितां राधामन्तर्धानं चकार ह ॥ ६५ ॥

विरजा राधिकाशब्दादन्तर्धानं हरेरपि ।

दृष्ट्वा राधाभयार्त्ता सा जहौ प्राणांश्च योगतः ॥ ६६ ॥

सद्यस्तत्र सरिद्रूपं तच्छरीरं बभूवह । व्याप्तञ्च वर्तुलाकारं तथा गोलोकमेव च ॥ ६७ ॥
कोटियोजनविस्तीर्णं प्रस्थेऽतिनिम्नमेव च । देव्यै दशगुणं चारुनाना रत्नाकरं परम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे विरजानन्द-
प्रस्तावोनाम द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः

सप्तसमुद्रोत्पत्तिः ।

नारायण उवाच ।

राधा रतिगृहं गत्वा न ददर्श हरिं मुने ॥ चिरजाञ्च सरिट्टूपां दृष्ट्वा मेहं जगाम सा ॥ १ ॥
श्रीकृष्णो चिरजां दृष्ट्वा सरिट्टूपां प्रियां सतीम् । उच्चैरुद चिरजातीरे नीरमनोहरे ॥
ममान्तिकं समागच्छ प्रेयसीनां परे वरे । त्वया चिनाहं सुभगे कथं जीवामि सुन्दरि ॥
नद्यधिष्ठात्री देवी त्वं भव मूर्त्तिमती सति । ममाशिषा रूपवती सुन्दरी योपितांघरा ।

पूर्वरूपाच्च सौभाग्यादिदानीमधिका भव ॥ ४ ॥

पुरातनं शरीरन्ते सरिट्टूपमभून् सति । जलादुत्थाय चागच्छ विधाय नूतनां तनुम् ॥
प्राजगाम हरेरग्रं साक्षाद्वाधैव सुन्दरी । पीतवस्त्रपरिधाना स्मेराननसरोरहा ॥ ६ ॥
पश्यन्तं प्राणनाथञ्च पश्यन्ती चक्रचक्षुषा । नितम्बश्रोणिभारार्त्ता पीनोन्नतपयोधरा ॥

मानिनी मानिनीनाञ्च गजेन्द्रमन्दमामिनी ।

सुन्दरी सुन्दरीणाञ्च धन्या मान्या च योपिताम् ॥ ८ ॥

चारुचम्पकवर्णाभा पद्मविम्याधरा वरा । पद्मदाङ्गिमघीजाभा दन्तपङ्क्तिमनोहरा ॥ ९ ॥
शारत्पार्वणचन्द्रास्या फुल्लेन्दीवरलोचना । कस्तूरीविन्दुना सार्द्धं सिन्दूरविन्दुभूषिता ॥
चारुपत्रकशोभाढ्या सुचारुकवरीयुता । रत्नकुण्डलगण्डस्था भूषिता रत्नमालया ॥ ११ ॥

गजमौक्तिकासाग्रा मुक्ताहारविराजिता ॥ १२ ॥

रत्नकङ्कणकेयूरचाकृशङ्ककरोज्ज्वला । किङ्किणीजालशब्दाढ्या रत्नमञ्जीरमण्डिता ॥ १३ ॥
ताञ्च रूपवतीं दृष्ट्वा प्रेमोद्भवां जगत्कृतिः । चकारलज्जितं तूष्णं बुबुब्ब च मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥
नानाप्रकारशृङ्गारं विपरीतादिकं विभुः । रहसि प्रेयसीं प्राप्य चकार च पुनः पुनः ॥ १५ ॥
चिरजा सा रजोयुक्ता धृत्वा वीर्य्यममोघकम् । सद्यो बभूव तत्रैव धन्या गर्भवती सती
दधार गर्भमीशस्य दिव्यं वर्षशतञ्च सा । ततः सुपाव तत्रैव पुत्रान् सप्त मनोहरान् ॥

तृतीयोऽध्यायः

सप्तसमुद्रोत्पत्तिः ।

नारायण उवाच ।

राधा रतिगृहं गत्वा न ददर्श हरिं मुने ॥ चिरजाञ्च सरिटूपां दृष्ट्वा गेहं जगाम सा ॥ १ ॥
श्रीकृष्णो चिरजां दृष्ट्वा सरिटूपां प्रियां सतीम् । उच्चैरुरोद चिरजातीरे नीरमनोहरे ॥
ममान्तिकं समागच्छ प्रेयसीनां परे घरे । त्वया चिनाहं सुभगे कथं जीयामि सुन्दरि ॥
नद्यधिष्ठात्री देवी त्वं भव मूर्त्तिमती सति । ममाशिषा रूपवती सुन्दरी योपितांबर ।

पूर्वरूपाच्च सौभाग्यादिदानीमधिका भव ॥ ४ ॥

पुरातनं शरीरन्ते सरिटूपमभूत् सति । जलादुत्थाय चागच्छ विधाय नूतनां तनुम् ॥
जगाम हरेरग्रं साक्षाद्राघैव सुन्दरी । पीतयस्त्रपरिधाना स्मेराननसरोदहा ॥ ६ ॥
त्यन्तं प्राणनाथञ्च पश्यन्ती धक्कचभ्रुवा । नितम्बश्रोणिभारार्त्ता पीनोन्नतपयोधरा ॥

मानिनी मानिनीनाञ्च गजेन्द्रमन्दमामिनी ।

सुन्दरी सुन्दरीणाञ्च धन्या मान्या च योपिताम् ॥ ८ ॥

रुचम्पकवर्णाभा पद्मविम्बाधरा घरा । पद्मदाङ्गिमर्षाजामा दन्तपङ्क्तिमनोहरा ॥ ९ ॥
स्त्वार्यणचन्द्रास्या कुल्लेन्दीवरलोचना । कस्तूरीविन्दुना सार्द्धं सिन्दूरविन्दुभूषिता ॥
रूपप्रकशोभाढ्या सुचायकररीयुता । रत्नकुण्डलगण्डस्या भूषिता रत्नमालया ॥ ११ ॥
गजमौक्तिकनासाग्रा मुक्ताहारविराजिता ॥ १२ ॥

नक्तुण्णकेयूरचाराक्षद्वकरोज्ज्वला । किङ्किणीजालशय्यादद्या रत्नमञ्जीरमण्डिता ॥ १३ ॥
अथ रूपवती दृष्ट्वा प्रेमोद्रेकां जगत्पतिः । चकारालिङ्गनं तूष्णं चुचुष्य च मुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥
नाप्रकाररुट्ठारं चिपरोतादिकं धिभुः । रहसि प्रेयसीं प्राप्य चकार च पुनः पुनः ॥ १५ ॥
रजा सा रजोयुक्ता धृत्या धीर्य्यममोघकम् । सद्यो बभूव तत्रैव धन्या गर्भवती सती
वार गर्भमोक्षस्य दिव्यं धर्मशतञ्च सा । ततः सुपाय तत्रैव पुत्रान् सप्त मनोहरान् ॥

माता सा सप्तपुत्राणां श्रीकृष्णस्य प्रिया सती ।

तस्यो तत्र सुखासीना सार्द्धं पुत्रैश्च सतमिः ॥ १८

एकदा हरिणा सार्द्धं वृन्दारण्ये सुनिर्जने । विजहार पुनः साध्वी शृङ्गारासकमानसा
एतस्मिन्नन्तरे तत्र मातुः क्रोडं जगामह । कनिष्ठपुत्रस्तस्याश्च भ्रातृभिः पीडितो भिया
भीतं स्वतनयं दृष्ट्वा तत्याजतां कृपानिधिः । कोडे चकार बालं सा कृष्णो राधागृहं ययौ
प्रयोध्य बालं सा साध्वी न ददर्शान्तिके प्रियम् । विललाप भृशं तत्र शृङ्गारातृप्तमानसा

शशाप स्वसुतं कोपालवणोदो भविष्यसि ।

कदापि ते जलं केचित् न खादिष्यन्ति जीविनः ॥ २३ ॥

शशाप सर्वान् बालान्श्च यान्तु मूढा महीतलम् ।

गच्छच्चञ्च महीं मूढा जम्बुद्वीपं मनोहरम् ॥ २४ ॥

स्थितिनैकत्रगुप्ताकं भविष्यति पृथक् पृथक् । द्वीपे द्वीपे स्थितिं कृत्वा तिष्ठन्तु सुखिनः सुताः
द्वीपस्थामिर्नदीभिश्च सह क्रीडन्तु निर्जने । कनिष्ठो मातृशापाच्च लवणोदो यभूवह ॥
कनिष्ठः कथयामास मातृशापञ्च बालकान् । आजग्मुर्दुःखिताः सर्वे मातृस्थानञ्च बालकाः
श्रुत्वा विवरणं सर्वे प्रजग्मुर्धरणीतलम् । प्रणम्य चरणं मातुर्भक्तिप्रारम्भकन्धराः ॥ २८ ॥
सप्तद्वीपे समुद्राश्च सप्त तस्थुर्विभागशः । कनिष्ठात् वृद्धपर्ष्यन्ते द्विगुणं द्विगुणं मुने ॥
लयणेशु सुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवाः । एतेषाञ्च जलं पृथ्व्यां शस्यार्थञ्च भविष्यति ॥

व्याप्ताः समुद्राः सप्तैव सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ।

रुदुर्बालकाः सर्वे मातृभ्रातृशुचान्विताः ॥ ३१ ॥

रुदो च भृशं साध्वी पुत्रविच्छेदकातरा । मूर्च्छामवाप शोकेन पुत्राणां भर्त्तरेव च ॥
तां शोकसागरे मग्नां विज्ञाय राधिकापतिः । आजगाम पुनस्तस्याः स्मेराननसरोरुहः
दृष्ट्वा हरिं सा तत्याज शोकं रोदनमेव च । आनन्दसागरे मग्ना दृष्ट्वा कान्तं यभूवह ॥
चकार श्रीहरिं कोडे विजहार स्मरानुरा । ताञ्च पुत्रपरित्यक्तां हरिस्तुष्टो यभूवह ॥ ३५

वरं तस्मै ददौ प्रीत्या प्रसन्नवदनेक्षणः ।

कान्ते ! नित्यं तव स्थानमागमिष्यामि निश्चितम् ॥ ३६ ॥

यथा राधा तत्समा त्वं भविष्यसि प्रियामम । पुत्राक्षसि नित्यं त्वं मद्भरस्य प्रभावतः
इत्युक्तवन्तं श्रीकृष्णं वसन्तं चिरजान्तिके । दृष्ट्वा राधावयस्याश्च कथयामासुरीश्वरीम्

ध्रुत्वा रुरोद सा देवी सुष्वाप कोधमन्दिरे ॥ ३८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णोजगामराधिकान्तिकम् । स तस्यौराधिकाद्वारे श्रीदास्य सह नायद !

रासेश्वरी हरिं दृष्ट्वा रुष्टोवाचाप्रियं तदा ॥ ४० ॥

मत्तो बहुतराः कान्ता गोलोके सन्ति ते हरै ! ।

याहि तासां सन्निधानं मया ते किं प्रयोजनम् ॥ ४१ ॥

चिरजा प्रेयसी कान्ता सरिद्रूपा बभूवह । देहं त्यक्त्वा मम भयात्तथापि यासि तां प्रति
तत्तीरं मन्दिरे कृत्वा तिष्ठ तिष्ठ च याहि ताम् । नदीबभूव सा त्वश्च नदी भवितुमर्हसि

नदस्यनद्या सार्द्धं सङ्गमो गुणवान्भवेत् । स्वजातो परमाप्रीति शयने भोजने सुखात्
देवचूडामणेः क्रीडा नद्या सार्द्धं मयेरितम् । महाजनः स्मेरमुखः श्रुत्वा सद्यो भविष्यति

ये त्वां वदन्ति सर्वेशं ते किं जानन्ति त्वन्मनः ।

भगवान् सर्वभूतात्मा नदीं संभ(भो)कुमिच्छति ॥ ४६ ॥

इत्युत्तवाराधिकादेवीचिरराम रुयान्विता । नोत्तस्यो भूमिशयनाद्गोपीलक्षसमन्विता ॥

काञ्चिन्मामरहस्ताश्च काञ्चित् सूक्ष्मांशुकाधराः ।

काञ्चित् ताम्बूलहस्ता च काञ्चिन्मालावराकराः ॥ ४८ ॥

घासितोदकराः काञ्चित् काञ्चित् पद्मवराकराः ।

काञ्चित् सिन्दूरहस्ताश्च माल्यहस्ताश्च काञ्चन ॥ ४९ ॥

रत्नालङ्कारहस्ताश्च काञ्चित् कज्जलवाहिकाः ।

वेणुवीणाकराः काञ्चित् काञ्चित् कङ्कृतिकाकराः ॥ ५० ॥

काञ्चिदापीरहस्ताश्च रत्नहस्ताश्च काञ्चन । सुगन्धितैलहस्ताश्च काञ्चन प्रमदोत्तमाः ।

करतालकराः काञ्चित् गण्डहस्ताश्च काञ्चन ॥ ५१ ॥

काञ्चिन् मृदङ्गमुखजमुखलीतालकारिकाः । सङ्गीतनिपुणाः काञ्चित् काञ्चिन्नर्तनतत्पराः

प्रीत्यावस्तकराः काञ्चिन्मधनस्ताश्च काञ्चन । मन्त्रपात्रकराः काञ्चिद्द्विप्रीडाः

वेशवस्तुकराः काश्चित् काश्चिच्चरणसेविकाः ।

पुटाञ्जलिकराः काश्चित् काश्चित् स्तुतिपरा वराः ॥ ५४ ॥

एवंकतिविधाः सन्तिराधिकापुरतोमुने । बहिर्देशस्थिताः काश्चित्कोटिशः कोटिशःसदा
काश्चित् द्वारनियुक्ताश्चवयस्यावेन्नधारिकाः । कृष्णमभ्यन्तरं गन्तुंनददुः द्वारसंस्थितम्
पुरः स्थितस्तं प्राणेशं राधा पुनस्त्याच सा । नानुरूपमत्यकथ्यमयोग्यमतिकर्कशम् ॥

राधिकोवाच ।

हे कृष्ण विरजाकान्त गच्छ मत्पुस्तो हरे । कथं दुनोपि मां लोल रतिचौरातिलम्पट
शीघ्रं पद्मावती गच्छ रत्नमालां मनोरमाम् । अथवा वनमालां वा रूपेणाप्रतिमां व्रज ॥
हे नदीकान्त देवेश देवानाञ्च गुरोर्गुरो । मया ज्ञातोऽसिभद्रन्ते गच्छ गच्छ ममाश्रमात्
शश्वत्ते मानुषस्येव व्यवहारश्च लम्पट । लभतां मानुषी योनिं गोलोकाद्भवज भारतम्

हे सुरशैले शशिकले हे पद्मावति माधवि ।

निवार्यताञ्च धूर्त्तोऽयमस्यात्र किं प्रयोजनम् ॥ ६२ ॥

राधिकावचनं श्रुत्वा तमूचुर्गोपिका हरिम् । हितं तथ्यञ्च विनयंसारं यत् समयोचितम्
काश्चिदूचुरिति हरिगच्छ स्थानान्तरं क्षणम् । राधाकोपापनयने गमयिष्यामहे वयम्
काश्चिदूचुरितिप्रीत्या क्षणगच्छ गृहान्तरम् । त्वयैव बहिता राधा त्वां विनाकश्चरक्षति
काश्चिदूचुरिति प्रेम्णा राधिकाया हरिं मुने । क्षणं वृन्दावनं गच्छ मानापनयनावधि
काश्चिदित्यूचुरीशञ्च परिहासपरं वचः ।

मानापनयनं भक्त्या कामिन्याः कुरु कामुकः ॥ ६७ ॥

काश्चिन्नोचुरितीशं तं याहि जायान्तरंतव । लोलुपस्यफलंताथकरिष्यामोयथोचितम्
काश्चिन्नोचुरिति हरिं सस्मितं पुरतःस्थितम् । गत्वा समीपमुत्थाय मानापनयनं कुरु
काश्चिन्नोचुरिति प्राणनाथं गोप्यो दुरक्षम् ।

क. क्षमः साम्प्रतं द्रष्टुं राधिकामुखपङ्कजम् ॥ ७० ॥

काश्चनोचुरिति विभुं व्रज स्थानान्तरं हरे । कोपापनयने काले पुनरागमनं तव ॥ ७१ ॥
काश्चनोचुरितीदं तं प्रगल्भा प्रमदोत्तमाः । वयंत्वांवाचयिष्यामो नचेद्दयाहिगृहान्तरम्

काश्चिन्निचारयामाससुस्माध्वं प्रमदोत्तमाः । स्मितवक्त्रञ्च सर्वशंसलच्छमकोधमीश्वरम्
गोपीभिर्घोर्यमाणे च जगत्कारणकारणे । सद्यश्चुकोप श्रीदामा हंसी गृहान्तरे गते ॥

कोपादुवाच श्रीदामा राधिकां परमेश्वरीम् ।

रक्तपद्मेक्षणां कटां रक्तपङ्कजलोचनः ॥ ७५ ॥

श्रीदामोवाच ।

कथं वदसि मातस्त्वं कटुवाक्यं मदोश्वरम् । चिचारणांविनादेविकरोपिमत्सर्नंवृथा ॥

ब्रह्मानन्तेशधर्मेण जगत्कारणकारणम् । घाणीपत्रालयामायाप्रवृत्तीशञ्च निर्गुणम् ॥

धात्मारामं पूर्णकामं करोषि त्वं पिङ्ग्वनम् । देवीनां प्रयरात्पञ्च निधोधयस्य सेवया

यस्य पादार्चनेनैव सर्वेपामीश्वरी परा । तं न जानासि कल्पाणि किमहं वक्तुमीश्वरः

ध्रूमङ्गलीलया कृष्णः क्षुण्डं शक्तश्च त्वद्विधाः ।

कोटिशः कोटिदेव्यस्त्वं न जानासि च निर्गुणम् ॥ ८० ॥

वैकुण्ठे श्रीहरेरस्य चरणाभ्युजमार्जनम् । करोति कैरीः शशयत् श्रीः सेयनं भक्तिपूर्वकम्

सरस्यती च स्तवनेः कर्णपीथूपसुन्दरैः । सन्ततं स्तोति यं भक्त्या न जानासि तमीश्वरम्

भीताचप्रवृत्तिर्मायासर्वेपांजीवरूपिणी । सन्ततं स्तोति यं भक्त्या तं न जानासिमानिनि

स्तुयन्ति सततं वेदा महिम्नः षोडशी कलाम् ।

कदापि तं न जानन्ति त्वं न जानासि भामिनि ॥ ८४ ॥

पद्मत्रैश्वर्यभिर्यशस्सावेदानां जनको विभुः । स्तोति नित्यं सेवते च चरणाभोजमीश्वरि

शङ्करः पञ्चभिर्वक्त्रैः स्तोति यं योगिनां गुरुः । साधुपूर्णः सपुलकः सेवते चरणाभ्युजम्

शेषः सहस्रपदनेः परमात्मानमीश्वरम् । सततं स्तोति भक्त्या च सेवते चरणाभ्युजम् ॥

धर्मः पाताच सर्वपांसाक्षी च जगतांपतिः । भक्त्या च चरणाभोजं सेवते सततमुदा

श्चेतद्वीपनिवासी यः पाता विष्णुः स्वयं विभुः ।

अस्यांशश्च तथा चायं ध्यायतेऽणुक्षणं परम् ॥ ८६ ॥

सुरासुरमुनीन्द्राश्च मनघो मानवायुधाः । सेवन्ति नहि पश्यन्ति स्वप्नेऽपि चरणाभ्युजम्

क्षिप्रं रोयं परित्यज्य भज पादाभ्युजं हरेः ॥ ९० ॥

भ्रूमङ्गलीलामात्रेण सृष्टिः संहर्तुरेव च ॥ ६१ ॥

निमेषमात्रादस्यैव ब्रह्मणः पतनं हरैः । यस्यैव दिवसेऽप्यष्टाविंशतीन्द्राः पतन्त्यपि ॥
एवमष्टोत्तरशतमायुर्यस्य जगद्विधेः । त्वं वा कान्याश्च वा राधे मदीश्वरखशेऽखिलम्
श्रीदाम्नो घचनं ध्रुत्वा केवलं कष्टमुत्तवणम् । सद्यश्शुकोप सा ब्रह्मन्नुत्थाय तमुवाच ह
रासेश्वरी बहिर्गत्वा तमुवाच ह निष्ठुरम् । स्फुरदोष्ठी मुक्तकेशी रक्ताम्भोरुहलोचना ॥
राधिकोवाच ।

रै रै जातम् महामूढं शृणु लम्पटकिङ्कुर । त्वञ्च जानासि सर्वार्थं न जानामित्वदीश्वरम्
त्वदीश्वरोहिथ्रीकृष्णोनह्यस्माकं ब्रजाधम । जानामिजनकं स्तोपि सदान्निवसिमातरम्
यथाऽसुराश्च त्रिदशाभित्यंनिन्दन्ति सन्ततम् । तथानिन्दसि मां मूढं तस्मात्त्यमसुरो भव
गोपब्रजासुरी योनिं गोलोकाच्च यद्भिर्भव । मया च शप्तो मूढस्त्वं कस्त्वां रक्षितुमीश्वरः
रासेश्वरी तमित्युक्त्वा सुप्याप विरराम च । वयस्याः सेवयामासुधामरै रत्नमुष्टिभिः
ध्रुत्वा च घचनं तस्याः कोपेन स्फुरिताधरः ।

शशाप ताञ्च श्रीदामा ब्रज योनिञ्च मानुषीम् ॥ १०१ ॥

मनुष्यइयकोपस्ते तस्मात् त्वं मानुषी भव । भविष्यसि न सन्देहो मया शप्ता त्यमग्निं के
छायया कलया चापि परस्यस्ता कलङ्किनी । मूढरायाणपत्नी त्वां वक्ष्यन्ति जगतीतले
रायाणः श्रीहरेरंशौ वैश्यो वृन्दावने घने । भविष्यति ब्रह्मयोगी राधाशपेन गर्भजः ॥
गोकुले प्राप्य तं कृष्णं विहृत्य घस कानने । भविता ते वर्यशतं विच्छेदो हरिणा सह
पुनः प्राप्य तमीशञ्च गोलोकमागमिष्यसि ।

तामित्युक्त्वा च नत्वा च स जगाम हरैः पुरः ॥ १०६ ॥

गत्वा प्रणम्य श्रीकृष्णं शापाव्यानमुवाच ह । आनुपूर्वन्तु तत्सर्वं करोद च भृशं ब्रजः
उवाच तं रुदन्तञ्च गच्छ त्वं धरणीतलम् । न जेता ते त्रिभुवने ह्यसुरेन्द्रो भविष्यसि
फाले शङ्खशूलेन देहं त्यक्त्वा ममान्तिकम् । आगमिष्यसि पञ्चाशद्वयुगेऽतीते मदाशिषा
श्रीकृष्णस्य पच. ध्रुत्वा तमुवाच शुचान्वितः । त्वद्भक्तिरहितं माञ्च कदाचिन्न करिष्यसि
इत्युक्त्वा स हर्षित्वा जगाम स्वाध्रमाद्वहिः । पञ्चाब्जगाम सा देयी रतोद च पुनः पुनः

क यासि वत्सेत्युच्चार्य विललाप भृशं सती । स एव शङ्खचूडश्च बभूव तुलसीपतिः ।
गते श्रीदाम्नि सा देवी जगामेश्वरसन्निधिम् ।

सर्वं निषेदयामास हरिः प्रत्युत्तरं ददौ ॥ ११३ ॥

शोकातुराञ्च तां रुग्णो बोधयामास प्रेयसीम् । शङ्खचूडश्च कालेनसम्प्रापुनरीश्वरम् ।
राधा जगाम धरणीं वाराहे हरिणा सह । वृक(प)भानुगृहे जन्म ललाभ गोकुले मुने !

इत्येवं कथितं सर्वं श्रीरुग्णाख्यानमुत्तमम् ।

सर्वेषां घाञ्छितं सारं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ११६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीरुग्णजन्मगण्डे
सप्तसमुद्रजन्मादिताध्याध्रीदाहोः शापोद्भवो नाम तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः

नारीणां रक्षकरूपणम् ।

नारद उवाच ।

केन वा प्रार्थित, रुग्णो महीञ्च केन हेतुना । आजगाम जगन्नाथो यद् देवपिशङ्करः ॥

नारायण उवाच ।

पुरा पराङ्मुखे सा भाराक्रान्ता पसुन्धरा । भृशं बभूव शोकात्तां ब्रह्माणां शरणा ययां
सुरेध्यासुरसन्ततीर्भृशमुद्धिप्रमानसैः । सार्द्धं तैस्तां दुर्गमाञ्च जगाम वेधसः सभाम् ॥

ददर्श तस्यां देवेशं ज्वलन्तं ब्रह्मेजसा । सूर्यान्द्रेश्च सुनोन्द्रेश्च सिद्धेन्द्रेः सेवितं मुदा ।

भस्मरोगणनृत्यञ्च पश्यन्तं सस्मितं मुदा । गन्धर्वाणाञ्च सङ्गीतं धृतयन्तं मनोहरम् ॥

जपन्तं परमं ब्रह्म रुग्ण इत्यशब्दयम् । भक्तयानन्दाधुगूणे तं पुलकाद्वितपिब्रह्मम् ॥६॥

भक्त्या सा त्रिदशैः सार्द्धं प्रणम्य चतुराननम् । सर्वं निषेदनश्चक्रे शैत्यनारादिकं मुने !

साधुपूर्णा सपुलका तुष्टा च दरोद च ॥ ७ ॥

तामुवाच जगद्धाता कथं स्तौषि च रोदिषि ॥ ८ ॥

कथमागमनं भद्रे घदं भद्रं भविष्यति । सुखिया भव कल्याणिभयं किन्ते मयिस्थिते ॥
आश्वास्य पृथिवीं ब्रह्मा देवान् पप्रच्छ सादरम् । कथमागमनं देवायुष्माकं ममसन्निधिम्
ब्रह्मणो घचनं ध्रुत्वा देवा ऊचुः प्रजापतिम् ।

भाराम्रान्ता च वसुधा दैत्यग्रस्ता घयं प्रभो ॥ ११ ॥

त्वमेव जगतां स्रष्टा शीघ्रं नो निष्कृतिं कुह ।

गतिस्त्यमस्या भोब्रह्मन् निवृत्तिं कर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥

पीडिता येन भारेण पृथिवीयं पितामह । घयं तेनैव दुष्टार्त्तास्तद्धारहरणं कुह ॥ १३ ॥

देवानां घचनं ध्रुत्वा पप्रच्छ तां जगद्विधिः । दूरीकृत्य भयं परसे सुखं तिष्ठममान्तिके ॥

कैषा भारमशक्ता त्वं सोढुं पप्रथिलोचने ।

अपनेष्यामि तं भद्रे भद्रं ते भविता ध्रुषम् ॥ १५ ॥

तस्य सा घचनं ध्रुत्वा तमुवाच स्वपीडनम् । पीडिता येन येनैव प्रसन्नपदनेक्षणा ॥

शृणुतातप्रवक्ष्यामिस्वकीयां मानसीं व्यधाम् । चिन्तायन्धुंसविश्यासं नाहंकथितुमुत्सहे

र्त्राजातिरयला शशपद्मक्षणीया स्वयन्धुभिः । जनकस्यामिपुत्रैश्च गर्हितान्यैश्च निक्षितम्

त्वया सृष्टा जगत्तात न लज्जा कथितुं मम । तेषां भारैः पीडिताहं ध्रूयतां कथयामिते ॥

कृष्णभक्तिपिहीना ये ये च तद्वक्तनिन्दकाः । तेषां महापातकिनामशक्ताभारपादने ॥ २० ॥

स्वधर्म्माचारहीना ये नित्यवृत्त्यधिपजिताः । ध्राउहीनाश्च येषु तेषां भारेण पीडिता ॥

पितृमातृगुरुस्त्रीणां पोषणं पुत्रपोष्ययोः । ये न कुर्वन्ति तेषां च न शक्ता भारपादने ॥

ये मिथ्यावादिनस्तात दयासत्यपिहीनकाः । निन्दका मुखदेवानां तेषां भारेण पीडिता ॥

मित्रद्रोहा एतग्रह मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः ।

विद्यासम्रः स्वाप्यहारी तेषां भारेण पीडिता ॥ २४ ॥

कल्याणमुत्तमानामानि हरेर्नामैषमङ्गलम् ।

कुर्वन्ति विक्षयं ये ये तेषां भारेण पीडिता ॥ २५ ॥

जापचार्ता मुखद्रोहा धामयार्ता च दुष्पथकः । शपथार्हा शूद्रनोर्जा तेषां भारेण पीडिता

पूतापञ्चोपवासानां यतानां नियमस्य च । येषु मूढा निहन्तारस्तां भारेण पीडिता ॥

सदा द्विपत्ति ये पापा गोविप्रसुरवैष्णवान् । हरिहरिकथाभक्तिमेवां भारेण पीडिता ।
शङ्खचूडस्य भारेण पीडिताऽहं यथा विधे । ततोऽधिकानां दैत्यानां भारेणपरिपीडित

इत्येषं कथितं सर्वमनाथाया निवेदनम् ।

तद्यथा यदि सनाथाहं प्रतीकारं कुरु प्रभो ॥ ३० ॥

इत्येवमुक्त्वा वसुधा रुरोद च मुहुर्मुहुः ।

ब्रह्मा तद्रोदनं दृष्ट्वा तामुवाच कृपानिधिः ।

भारं तेषापनेष्यामि दस्यूनामप्युपायतः ॥ ३१ ॥

उपायतोऽपि कार्याणि सिध्यन्त्येव वसुन्धरे । कालेन भारहरणं करिष्यति मदीश्वरः
यन्त्रं मङ्गलकुम्भञ्च शिषलिङ्गञ्च कुङ्कुमम् । मधु काष्ठं चन्दनञ्च कस्तूरीं तीर्थमृत्तिकाम्
खड्गं गण्डकखड्गञ्च स्फटिकं पद्मरागकम् । इन्द्रनीलं सूर्यमणिं वज्राक्षं कुशमूलकम् ॥
शालग्रामशिलां शङ्खं तुलसीं प्रतिमाजलम् । शङ्खं शदीपमालाञ्च शिलामर्ध्याञ्च घण्टिकाम्
निर्माल्यञ्चैव नैवेद्यं हरिद्वर्णमणिस्तथा । ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं दर्पणं श्वेतचामरम् ॥ ३६ ॥
गोरोचनाञ्च मुक्ताञ्च शुक्तिं माणिक्यमेव च । पुराणसंहितां बह्विं कर्पूरं परशुं तथा ॥
रजतं काञ्चनञ्चैव प्रवालरत्नमेव च । कुशद्विजं तीर्थतोयं गव्यं गोमूत्रगोमयम् ॥ ३८ ॥

त्वयि ये स्थापयिष्यन्ति मृदाश्चैतानि सुन्दरि ।

तिष्ठन्ति कालसूत्रे वै वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥ ३९ ॥

ब्रह्मा पृथ्वीं समाश्वास्य देवताभिस्तथा सह ।

जगाम जगतां धाता कैलासं शङ्करालयम् ॥ ४० ॥

गत्वा तमाश्रमं रम्यं ददर्श शङ्करं विधिः । वसन्तमक्षयवटमूले च सरितस्तटे ॥ ४१ ॥

व्याघ्रचर्मपरीधानं दक्षकन्यास्थिभूषणम् । त्रिशूलपट्टिशधरं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥

नानासिद्धैः परितुतं योगान्द्रगणसौधितम् । परितोऽप्सरसां नृत्यं पश्यन्तं सस्मितमुदा ।

गन्धर्वाणाञ्च सङ्गीतं ध्रुतवन्तं कुतूहलात् ।

पश्यन्तीं पार्वतीं प्रीत्या पश्यन्तं वक्त्रचक्षुषा ॥ ४४ ॥

जपन्तं पञ्चवक्त्रेण हरेर्नामैकमङ्गलम् ।

मन्दाकिनीपद्मबीजमालया पुलकाङ्कितम् ॥ ४५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा तस्याध्वरे स धूर्जटेः । पृथिव्या सुरसंघेश्च सार्द्धं प्रणतकन्धरैः ॥ ४६ ॥

उत्तस्थौ शङ्करः शीघ्रं भक्त्या दृष्ट्वा जगद्गुरुम् ।

ननाम मूर्ध्ना सम्प्रीत्या लब्धवानाशिपं ततः ४७ ॥

प्रणेमुर्देवताः सर्वाः शङ्करं चन्द्रशेखरम् । प्रणनाम धरा भक्त्या चाशिपं युयुजे हरः ॥

वृत्तान्तं कथयामास पार्वतीशं प्रजापतिः । श्रुत्वा नतमुखस्तूर्णं शङ्करो भक्तवत्सलः ॥

भक्तापायं समाकर्ष्य पार्वतीपरमेश्वरी । बभूवतुस्तौ दुःखार्त्ता बोधयामास तौ विधिः

ततो ब्रह्मा महेशश्च सुरसंधान् धनुर्धराम् । गृहं प्रस्थापयामास समाश्वास्य प्रपन्नतः

ततो देवेश्वरौ तूर्णमागत्य धर्ममन्दिरम् । सह तेन समालोच्य प्रजामुर्मवनं हरेः ५२

वैकुण्ठं परमं धाम जरामृत्युहरं परम् ।

घायुना धार्यमाणश्च ब्रह्माण्डाद्गुह्यमुत्तमम् ॥ ५३ ॥

कोटियोजनमृद्गुह्यश्च ब्रह्मलोकात् सनातनम् ।

न वर्णनीयं कविभिर्विचित्रं रत्ननिर्मितम् ।

पद्मरागेरिन्द्रनीलै राजमार्गैर्विभूषितम् ॥ ५४ ॥

ते मनोयायिनः सर्वे सम्प्रापुस्तं मनोहरम् । हरेरन्तःपुरं गत्वा ददृशु श्रीहरिं पुरः ॥ ५५ ॥

रत्नासिंहासनस्थश्च रत्नालङ्कारभूषितम् । रत्नकेयूरवलयपरत्नानूपुरशोभितम् ॥ ५६ ॥

रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् । पीतवस्त्रपरीधानं वनमालाविभूषितम् ॥ ५७ ॥

शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीपृतपदाम्बुजम् । कोटिकन्दर्पलीलाभं स्मितवक्त्रं चतुर्भुजम्

पुनन्दनन्दकुमुदेः पार्षदैर्यसेषितम् । चन्दनोक्षितसर्पाङ्गं सरदाभुङ्कटोज्ज्वलम् ॥ ५८ ॥

परमानन्दरूपश्च भक्तानुग्रहकातरम् । तं प्रणेमुः सुरेन्द्राश्च भवया ब्रह्मादयो मुने ॥ ६० ॥

तुष्टुयुः परया भवया भक्तिनद्यात्मकन्धराः । परमानन्दभारार्त्ताः पुलकाङ्कितपिप्रहाः ॥

ब्रह्मोपाच ।

नमामि कामलाकान्तं शान्तं सर्वेशमच्युतम् ।

पयं यस्य कलाभेदाः कलांशकलया सुराः ॥ ६२ ॥

मनवश्च मुनीन्द्राश्च मानुषाश्च चराचराः ।

कलाकलांशकलया भूतास्त्वत्तो निरञ्जन ॥ ६३ ॥

शङ्कर उवाच ।

त्वमिक्षयमक्षरं वा राममव्यक्तमीश्वरम् । अनादिमादिमानन्दरूपिणं सर्वरूपिणम् ॥ ६४ ॥
अणिमादिकसिद्धोनां कारणं सर्वकारणम् । सिद्धिर्हसिद्धिर्दसिद्धिरूपं कःस्तोतुमीश्वर
धर्म उवाच ।

वेदेऽनिरूपितं वस्तु वर्णनीयं विचक्षणैः । वेदेऽनिर्वचनीयं यत्तन्निर्वक्तुञ्च कः क्षमः ॥ ६६ ॥
यस्य सम्भाषणीयं यद्गुणरूपं निरञ्जनम् । तदतिरिक्तञ्च स्तवनं किमहं स्तोमि निर्गुणम्
ब्रह्मादीनामिदं स्तोत्रं पदश्लोकोक्तं महामुने । पठित्वा मुच्यते दुर्गाद्वाच्छितञ्च लभेन्नरः
देवानां स्तवनं श्रुत्वा तानुवाच हरिः स्वयम् । गोलोकं यातयूयञ्चयामि पश्चात्त्रिषासह
नन्नारायणौ तौ द्वौ श्वेतद्वीपनिवासिनौ । एते यास्यन्ति गोलोकं तथा देवीसरस्वती
अनन्तो मम माया च कार्सिकेयो गणाधिपः ।

सा सावित्री वेदमाता पश्चाद् यास्यति निश्चितम् ॥ ७१ ॥

तत्राहं द्विभुजः कृष्णो गोपीभो राघवा सह । तत्राहं कमलायुक्तः सुनन्दादिभिरावृतः ॥
नारायणश्च कृष्णोऽहं श्वेतद्वीपनिवासकृत् । ममैवान्ये कलाः सर्वे देवा ब्रह्मादयः स्मृताः
कलाकलांशकलया सुरासुरनरादयः । गोलोकं यात यूयञ्च कार्प्यसिद्धिर्भविष्यति ॥
अयं पश्चाद्गमिष्यामः सर्वेषामिष्टसिद्धये । इत्युक्ते च सभामध्ये विरराम हरिः स्वयम् ॥
प्रणम्य देवताः सर्वा जग्मुर्गोलोकमद्भुतम् । विचित्रं परमं धाम जरामृत्युहरं परम् ॥ ७६ ॥

ऊर्ध्वं वैकुण्ठतोऽगम्यं पञ्चाशत्कोटियोजनम् ।

पायुता धार्यमाणञ्च निर्मितं स्वेच्छया विभोः ॥ ७७ ॥

तमनिर्वचनीयञ्च देवास्ते गमनोन्मुखाः । ते मनोयायिनः सर्वे सम्प्रापुर्विरजातटम् ७८
दृष्ट्वा देवाः सरित्सारं विस्मयं परमं ययुः । शुद्धस्फटिकसद्भासं सुधिस्तीर्णं मनोहरम्
मुक्तामाणिक्यपरशमणिरत्नाकरान्वितम् । कृष्णशुभ्रद्विचमणिराजिविराजितम् ॥ ८० ॥
प्रबालादुरमुदुभूतं कुत्रचित् सुमनोहरम् । परमामूल्यसद्भूताकरराजिभिर्भूयितम् ॥ ८१ ॥

विधेरद्रश्यमाश्चर्यं निधिश्चेष्टाकरान्वितम् । पद्मरागेन्द्रनीलानामाकरं कुत्रचिन्मुने ॥८२॥
 कुत्रचिच्च मरकताकरश्रेणीसमन्वितम् । स्यमन्तकाकरं कुत्र कुत्रचिद्वचकारकम् ॥८३॥
 धूम्रलपपीतवर्णैकमणिश्रेण्याकरान्वितम् । रत्नाकरं कुत्रचिच्च कुत्रचित् कौस्तुभाकरम् ॥८४॥
 कुत्रानिर्वचनीयानां मणीनामाकरं परम् । कुत्रचित् कुत्रचिद्रम्यविहारस्थलमुत्तमम् ॥८५॥
 द्रुष्ट्वा तु परमाश्चर्यं जग्मुस्तत्पारमीश्वराः । दद्रुशुः पर्वतश्रेष्ठं शतशृङ्गं मनोहरम् ॥
 पारिजाततरुणाञ्च वनराजीविराजितम् । कल्पवृक्षैः परिवृतं वेष्टितं कामधेनुभिः ॥८७॥
 कौटियोजनमूर्ध्वञ्च दैव्यं दशगुणोत्तरम् । शैलप्रस्थं परिमितं पञ्चाशत्कौटियोजनम् ॥
 प्रांकाराकारमस्यैव शिखरे रासमण्डलम् । दशयोजनविस्तीर्णं चतुर्लाकारमुत्तमम् ॥
 पुष्पोद्यानसहस्रेण पुष्पितेन सुगन्धिना । संकुलेन मधुघ्राणां समूहेन समन्वितम् ॥८९॥
 सुररत्नद्रव्यसंयुक्तैराजितं रतिमन्दिरेः । रत्नमण्डपकोटीनां सहस्रेण समन्वितम् ॥९१॥
 रत्नसौपानयुक्तेन सद्रत्नकलसेन च । हरिन्मणीनां स्तम्भेन शोभितेन च शोभितम् ॥
 सिन्दूरधर्माणिभिः परितः खचितेन च । इन्द्रनीलैर्मध्यभागमण्डितेन मनोहरेः ॥९३॥
 रत्नप्राकारसंयुक्तं मणिभेदैर्विराजितम् । द्वारेः कषाटसंयुक्तेभ्यनुभिश्च विराजितम् ॥९४॥
 चन्द्रप्रन्थिसमायुक्तैरत्नालपल्लवान्वितैः । परितः कदलीस्तम्भसमूहैश्च समन्वितम् ॥९५॥
 शुक्रधान्यपर्णाराजफलदूर्वाकरान्वितम् । चन्दनगुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥ ९६ ॥
 वेष्टितं गोपकन्यानां समूहैः कौटिशो मुने । रत्नालङ्कारसंयुक्तै रत्नमालाविराजितैः ॥
 रत्नकट्ठणकैर्यूररत्ननूपुरभूषितैः । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितैः ॥ ९८ ॥
 रत्नाङ्गुरीयललितैर्हस्ताङ्गुलिविभूषितैः । रत्नपाशकवचैश्च पदाङ्गुलिविराजितैः ॥ ९९ ॥
 भूषितैरत्नभूषाभिः सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलैः । गजेन्द्रमुक्तालङ्कारैर्नासिकामध्यराजितैः ॥१००॥
 सिन्दूरचिन्दूनां सार्द्धमलङ्कारस्थलोज्ज्वलैः । चारुचम्पकवर्णमैश्वर्यन्दनद्रवचर्चितैः ॥१०१॥
 पीतपद्मपरीधानैर्विम्याधरमनोहरेः । शरत्पार्वणचन्द्राणां प्रमाजुष्टमुखोज्ज्वलैः ॥१०२॥
 शरत्प्रफुल्लपद्मानां शोभामोचनलोचनैः । कस्तूरीपत्रिकायुकरैर्पाक्तकजलोज्ज्वलैः ॥
 प्रफुल्लमालतीमालाजालैः कवरीशोभितैः । मधुलब्धमधुघ्राणां समूहैश्चापि संकुलैः ॥
 चाद्या गमनेनेव गजपञ्चनगज्रतः । चक्रप्रभ्रमद्भ्रसंयोगस्वल्पस्मितसमन्वितैः ॥१०५॥

पक्वदाडिभ्यवीजामदन्तपङ्क्तिविराजितैः । एगेन्द्रचञ्चुशोभाढ्यनासिकोन्नतभूपितैः ॥
गजेन्द्रगण्डयुग्माभस्तनभारनतैरिव । नितम्बकठिनश्रोणिपीनभारभरानतैः ॥ १०७ ॥
कन्दर्पशरचेष्टामिर्जर्जरीभूतमानसैः । दर्पणैः पूर्णचन्द्रास्यसौन्दर्यदर्शनोत्सुकैः १०८
राधिकाचरणाम्भोजसेवासक्तमनोरथैः । सुन्दरीणां समूहैश्च रक्षितं राधिकाशया १०९
क्रीडासरोवराणाञ्च लक्षैश्च परिवेष्टितम् । श्वेतरक्तलोहितैश्च वेष्टितैः पद्मराजितैः ॥

सुकुजद्विर्मधुम्राणां समूहसङ्कुलैः सदा ॥ ११० ॥

पुष्पोद्यानसद्वस्त्रेण पुष्पितेन समन्वितम् । फोटिकुञ्जकुटीरैश्च पुष्पशय्यासमन्वितैः ॥
भोगद्रव्यसफूर्तान्मूलवस्त्रसंयुतैः । रत्नप्रदीपैः परितः श्वेतचामरदर्पणैः ॥ ११२ ॥
पिचित्रपुष्पमालामिः शोभितैः शोभितं मुने । तद्रासमण्डलद्रव्या जगमुत्तेपर्यतादुबहिः
ततो विलक्षणं रम्यं ददृशुः सुन्दरं वनम् । वनं वृन्दावनं नाम राधामाश्रययोः प्रियम् ॥
क्रीडास्थानं तयोरेव कल्पवृक्षचयान्वितम् । विरजातीरनीराकैः कल्पितं मन्दपायुभिः ॥
कस्तूरीयुक्तपत्रकैः सर्वत्र सुरभीरुतम् । नवपल्लवसंयुक्तं परपुष्टतद्भुतम् ॥ ११६ ॥
कुत्र फेदिकदम्बानां कदम्बैः कमनीयकम् । मन्दराणां चन्दनानां चम्पकानां तथैव च ॥

सुगन्धिकुसुमानाञ्च गन्धेन सुरभीरुतम् ॥ ११८ ॥

आम्राणां नागरङ्गाणां पनसानां तथैव च । तालानां नारियेलानां वृन्दैर्धृन्दावनं वनम् ॥
जम्बूनां घदरीणाञ्च पञ्जूरानां विशेषतः । गुवाकाप्रातफानाञ्च जम्बीराणाञ्च नारद ॥
फदलीनां ध्रीकलानां दाडिम्यानां मनोहरैः । सुपक्वफलसंयुक्तैः समूहैश्च विराजितम्
प्रियालानाञ्च सालानामश्वत्थानां तथैव च ।

निम्बानां शात्मलीनाञ्च तिलिङ्गीनाञ्च शोभनैः ॥ १२२ ॥

अन्येषां तदभेदानां संकुलैः संकुलैः सदा । परितः कल्पवृक्षाणां वृन्दैर्धृन्दिपिराजितम्
महिका मालती कुन्दं पेतकी माधवीलता । पलासाञ्च समूहैश्च गूढिकाभिः समन्वितम्
चाकुकुञ्जकुटीरैस्तेः पञ्चाशत्कोटिमिमुने । रत्नप्रदीपदर्शितैश्च धूपेन सुरभीरुतैः ॥ १२५ ॥
शृङ्गारद्रव्ययुक्तैश्च घासितैर्गन्धघायुभिः । चन्दनान्तेः पुष्पतलेर्मांलाजालसमन्वितैः ॥
मधुलुप्पमधुम्राणां फलशयैश्च शब्दितम् । रत्नालङ्कारोभाभ्यां रङ्गोपां वृन्दैश्च वेष्टितम् ॥

पञ्चाशत्कोटिगोपीभी रक्षितं राधिकाज्ञया । द्वात्रिंशत् काननं तत्र रम्यंरम्यं मनोहरम्
 वृन्दावनाभ्यन्तरितं निर्जनस्थानमुत्तमम् । सुपवधमधुरस्वादुफलैर्वृन्दावनं मुने ॥ १२६
 गोष्ठानाञ्च गद्यानाञ्च समूहैश्च समन्वितम् । पुष्पोद्यानसहस्रेण पुष्पितेन सुगन्धिना ॥
 मधुलुब्धमधुन्नाणां समूहेन समन्वितम् । पञ्चाशत्कोटिगोपानां विलासैश्च विराजितम्
 श्रीकृष्णतुल्यरूपाणां सद्रत्नगठितैर्वरैः ॥ १३१ ॥

दृष्ट्वा वृन्दावनं रम्यं ययुर्गोलोकमीश्वराः ।

परितो घर्तुलाकारं कोटियोजनविस्तृतम् ॥ १३२ ॥

रत्नप्राकारसंयुक्तं चतुर्द्वारान्वितं मुने । गोपानाञ्च समूहैश्च द्वारपालैः समन्वितम् १३३
 आश्रमै रत्नखचितैर्नानाभोगसमन्वितैः ।

गोपानां कृष्णभृत्यानां पञ्चाशत्कोटिभिर्युतम् ॥ १३४ ॥

भक्तानां गोपवृन्दानामाश्रमैः शतकोटिभिः । ततोऽधिकसुनिर्माणैः सद्रत्नगठितैर्युतम्
 आश्रमैः पार्षदाणाञ्च ततोऽधिकविलक्षणैः । सुमूल्यै रत्नरचितैः संयुक्तं दशकोटिभिः ॥
 पार्षदप्रवराणाञ्च श्रीकृष्णरूपधारिणाम् । आश्रमैः कोटिभिर्युक्तं सद्रत्नेन विनिर्मितैः ॥

राधिकाशुद्धभक्तानां गोपीनामाश्रमैर्वरैः ।

सद्रत्नरचितैर्द्रव्यैर्द्वात्रिंशत्कोटिभिर्युतम् ॥ १३८ ॥

तासाञ्च किङ्करीणाञ्च भवनेः सुमनोहरैः । मणिरत्नादिरचितैःशोभितं दशकोटिभिः ॥
 शतजन्मतपःपूता भक्ता ये भारते भुवि । हरिभक्तिपरा ये च कर्मनिर्घाणकारकाः ॥

स्वप्ने ज्ञाने हरैर्ध्यानि निविष्टमानसा मुने ।

राधा कृष्णेति कृष्णेति प्रजपन्तो दिवानिशम् ॥ १४१ ॥

तेषां श्रीकृष्णभक्तानां निवासैः सुमनोहरैः । सद्रत्नमणिनिर्माणैर्नानाभोगसमन्वितैः
 पुष्पशय्यापुष्पमालाश्वेतचामरशोभितैः । रत्नदर्पणशोभाढ्यैर्हस्तिमणिसमन्वितैः ॥
 अमूल्यरत्नफलसप्तमूलान्वितशेखरैः । सूक्ष्मवस्त्राभ्यन्तरितैःसंयुक्तं शतकोटिभिः ॥ १४४
 देवास्तमद्भुतं दृष्ट्वा कियद्दूरं ययुर्मदा । तत्राक्षयघटं रम्यं ददृशुर्जगदीश्वराः ॥ १४५ ॥

पञ्चयोजनविस्तीर्णमूढूर्ध्वं तद्द्विगुणं मुने ॥ १४६ ॥

सहस्रस्कन्धसंयुक्तं शाखासंख्यसमन्वितम् । रत्नषट्कफलाकीर्णं शोभितं रत्नवेदिभिः ।

रुष्णस्यरूपान् तन्मूले ददृशुः प्रचलान् शिशून् ।

पीतवस्त्रपरीधानान् कीडासकान् मनोहरान् ॥

चन्दनोक्षितसर्पाङ्गान् रत्नभूषणभूषितान् ॥ १४८ ॥

ददृशुस्तत्र देवेशाः पार्षदप्रवरान् हरेः । ततो विदूरे ददृशू राजमागं मनोहरम् ॥ १४९ ॥

सिन्दुराकारमणिभिः परितो रचितं मुने । इन्द्रनीलैः पद्मरागैर्हीरकै रचयैस्तथा ॥

निर्मितैर्वेदिभिर्युक्तं परितो रत्नमण्डपम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रव्यचर्चितम् ॥ १५१ ॥

दधिपर्णलाजफलपुष्पद्व्याङ्कितान्वितैः ॥ १५२ ॥

सूक्ष्मसूत्रप्रन्थियुक्तश्रीपण्डपहृषान्वितैः । रम्भास्तम्भसमूहेष्व कुङ्कुमाकैर्विराजितम् ॥

सद्रत्नमङ्गलघटैः फलशाख्यैः समन्वितैः । सिन्दूरकुङ्कुमाकैश्च गन्धचन्दनचर्चितैः ॥ १५४ ॥

भूषितैः पुष्पमालाभिः परितो भूषितं परम् । गोपिकानां समूहेष्वकीडासकैश्च वेष्टितम्

बहुमूल्येन रत्नेन रत्नसोपाननिर्मितम् । पङ्क्तिशुद्धांशुकै रम्यैः श्वेतचामरदर्पणैः ॥ १५६ ॥

रत्नतल्पपिचित्रैश्च पुष्पमाल्यैर्विराजितम् । षोडशद्वारसंयुक्तान् द्वारपालैश्च रक्षितान्

परितः परिधायुक्तान् रक्तप्राकारवेष्टितान् ।

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रव्यचर्चितान् । पताग्नमनोरमान् दृष्ट्वा तैर्देवा गमनान्मुखाः ॥ १५८ ॥

जामुः शीघ्रं कियद्वदूरं ददृशुः सुन्दरं ततः । आध्रमं राधिकायाश्च रासेश्वर्याश्च नारद

देवादिदेव्या गोपीनां परयोश्चाकनिर्मितम् । प्राणाधिकाया रुष्णस्य रम्यं द्रव्यं मनोहरम्

सर्पागिर्यर्चनीयञ्च पण्डितैर्न निरूपितम् । सुचाक्षत्तुलाकारं पद्मगन्धर्वप्रमाणकम् ॥

शतगन्धर्वसंयुक्तं उवलितं रत्नतटासा । अमूल्यरत्नसाराणां परैर्विरचितं परम् ॥ १६२ ॥

दुर्लभपाणिर्गोपीराभिः परिष्ठाभिः सुशोभितम् ।

कल्पवृक्षैः परितुतं पुष्पोद्यानशतान्तरम् ॥ १६३ ॥

सुमूल्यरत्नरचितैः प्राकारैः परिवेष्टितम् ॥ १६४ ॥

सद्रत्नवेदिकायुक्तं युक्तं द्वारैश्च स्तम्भैः । संयुक्तं रत्नैश्चित्रैश्च पिचित्रैर्बहुलैर्मनैः ॥

प्रधानद्वारस्तम्भैः पद्मराः पद्मराः मुने । सर्वतोऽपि तन्मन्त्रं षोडशद्वारसंयुक्तम् ॥ १६६ ॥

देवा दृष्ट्वा च प्राकारं सहस्रधनुस्त्रितम् ।

सद्रत्नभुद्रकलससमूहैः सुमनोहरैः । सुदीप्तं तेजसा रम्यं परमं विस्मयं ययुः ॥ १६७ ॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य कियद्दूरं ययुर्मुदा । पुरतो गच्छतां तेषां पश्चादुभूतस्तदाश्रमः ॥ १६८ ॥

गोपानां गोपिकानाञ्च ददृशुराश्रमान् परान् । अमूल्यरत्नखचितान् शतकोटिमितान्मुने

वशं वशञ्च परितो गोपानां सर्वमाश्रमम् । गोपिकानाञ्चापरं वा रम्यं रम्यं नयं नयम् ॥

गोलोकं निखिलं दृष्ट्वा पुलकाङ्गं ययुः सुराः । तदेव वस्तुलाकारं रम्यं वृन्दावनं घनम् ॥

ददृशुः शतशृङ्गाञ्च तद्वह्निर्धिरजानदीम् । चिरजान्तं ययुर्देवा ददृशुः शून्यमेव च ॥ १७२ ॥

वाय्वाधाराञ्च गोलोकं सद्रत्नमयमद्भुतम् ॥ १७३ ॥

ईश्वरेच्छानिर्मितञ्च राधिकाज्ञानयन्धनात् ।

युक्तं सहस्रैः सरसां केवलं मंगलालयम् ॥ १७४ ॥

नृत्यञ्च ददृशुस्तत्र देवाश्च सुमनोहरम् । सुतालं चारु सङ्गीतं राधाकृष्णशृणान्वितम् ॥

ध्रुत्वैव गीतपीयूषं मूर्च्छामाषुः सुरा मुने ।

क्षणेन चेतनां प्राप्य ते देवाः कृष्णमानसाः । ददृशुः परमाद्भ्युप्यं स्थाने स्थाने मनोहरम्

ददृशुः गोपिकाः सर्पानानावेशपिधायिकाः । काश्चित्मृदङ्गहस्ताश्चकाश्चिदुषीणाकरावराः

काश्चिद्यामरहस्ताश्च करतालकराः पराः । काश्चिद् यन्त्रवायहस्ता रत्नानूपुरावदिताः ॥

सद्रत्नकिङ्किणीजालशब्देन शब्दिताः पराः । काश्चिन्मस्तककुम्भाश्च नृत्यभेदमनोरथाः

पुंवेशनायिकाः काश्चित् काश्चित्तासाश्च नायिकाः ।

कृष्णवेशधराः काश्चिद् राधावेशधराः पराः ॥ १८० ॥

काश्चिन्संयोगधिरता काश्चिदालिङ्गनेरताः । क्रीडासक्ताश्चतादृष्टासस्मिताजगदीश्वराः

प्रगच्छन्तः कियद्दूरं ददृशुराश्रमान् ययुः । राधासपीनां गेहान्श्च प्रधानानाञ्च नारद ॥

रूपेणैव गुणेनैव वेदेन यौचनेन च । सौभाग्येनैव पयसा सदृशीनाञ्च तत्र वै ॥ १८३ ॥

प्रयत्निप्रशङ्कस्य श्वराधिकायाश्चगोपिकाः । वेशानिर्वचनीयाश्चतासानामानिचशृणु

सुशीला च शशिकला यमुना माधवी रतिः ॥ १८५ ॥

फट्पद्ममाला कुन्ती च जाह्नवी च सत्यप्रभा ।

चन्द्रमुखी पद्ममुखी सावित्री च सुधामुखी ॥ १८६ ॥

शुभा पद्मा पारिजातागोरी च सर्वमङ्गला । कालिका कमला दुर्गा भारती च सरस्वती ॥
गङ्गान्विका मधुमती चम्पापर्णा च सुन्दरी । कृष्णप्रिया सती चैव नन्दनी नन्दनेति च ॥
पतासां समरूपाणां रत्नधातुचिचित्रितान् । नानाप्रकारचित्रेण चित्रितान् सुमनोहरान्
अमूल्यरत्नकलससमूहैः शिखरोज्ज्वलान् । सद्गतरचितान् शुभ्रान् आश्रमान् वृद्धशुस्तथा
ब्रह्माण्डादुषद्विरुद्धवर्धनास्ति लोकस्तद्बुद्ध्यर्गः । ऊर्ध्वं शून्यमयं सर्वतदन्तासृष्टिरैव च
रसातलेभ्यः सप्तभ्यो नास्त्यथः सृष्टिरैव च ।

तदधश्च जलं ध्वान्तमगन्तव्यमदृश्यकम् । ब्रह्माण्डान्तं तद्वद्दिश्व सर्वं मत्तोनिशामय
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे गोलोकवर्णनं
नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः

राधाप्रसादवर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

गोलोकं निखिलं दृष्ट्वा देवास्ते हृष्टमानसाः । पुनराजामूराधायाः प्रधानद्वारमेव च ॥ १ ॥

सद्गत्नमजिनिर्माणं वेदिकाद्वयसंयुतम् । हृदिद्वारमणिना यज्ञसंमिश्रितेन च ।

अमूल्यरत्नरचितकपाटेन विभूषितम् ॥ २ ॥

द्वारेऽनियुक्तं ददृशुर्वीरभानुमनुत्तमम् ॥ ३ ॥

रत्नसिंहासनस्थश्च रत्नभूषणभूषितम् । पीतवस्त्रपरीधानं सद्गत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ४ ॥

रक्षन्तं द्वारं चित्रञ्च चिचित्रीकृतमदुतम् । सर्वं निवेद्यामासुर्देवा दीपारिकं मुदा ॥ ५ ॥

तानुवाच द्वारपालो निःशङ्कस्त्रिदशेभ्यरान् ।

नाहं पिनाप्यया गन्तुं दास्यामि साग्रतं सुराः ॥ ६ ॥

किङ्कुरान् प्रेषयित्वाऽसौ श्रीकृष्णस्थानमेव च । हरेरनुज्ञां सम्प्राप्यदर्शयन्तुं भुरानुने ॥
 तं सम्भाष्य ययुर्देवा द्वितीयं द्वारमुत्तमम् । ततोऽधिकं विचित्रञ्च सुन्दरं सुमनोहरम् ॥
 द्वारे नियुक्तं ददृशुर्धन्वभानुञ्च नारद । किशोरं श्यामलञ्चाद्य स्वर्णवेषधरं परम् ॥ ६ ॥

रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ।

गोपानाञ्च समूहेन पञ्चलक्षेण शोभितम् ॥ १० ॥

तं सम्भाष्य ययुर्देवास्तृतीयं द्वारमुत्तमम् । ततोऽतिसुन्दरविग्रज्यलितं मणितेजसा ॥
 द्वारे नियुक्तं ददृशुः सूर्यभानुञ्च नारद । त्रिभुजं मुरलीदन्तं किशोरं श्यामसुन्दरम् ॥

मणिकुण्डलगुम्फेन कपोलस्थेन राजितम् ॥ १३ ॥

रत्नगुण्डलिनं ध्रुवमेष्टं राजेशयोः परम् । नयलक्षेण गोपेन घेष्टितञ्च नृपेन्द्रपत्न ॥ १४ ॥

तं सम्भाष्य ययुर्देवाधनुषं धारयेद्य च । तेषां चित्क्षणं रम्यं सुदीप्तं मणितेजसा ॥

अत्यद्भुतविचित्रेण भूषितं सुमनोहरम् । द्वारे नियुक्तं ददृशुर्गुण्डानु मतोभरम् ॥ १६ ॥

किशोरं सुन्दरपरं मणिदण्डकरं परम् । रत्नसिंहासनस्थञ्च रम्यभूषणभूषितम् ॥

पञ्चविंशधर्माष्टञ्च सस्मितं सुमनोहरम् ॥ १७ ॥

तं सम्भाष्य ययुर्देवाः पञ्चमं धारयेद्य च । पञ्चमिति स्थिते ध्वजविचित्रैः पङ्क्तिपरम् ॥

दास्यान् ॥ ददृशुर्गुण्डानुञ्च तत्र ये । चाकसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥ १८ ॥

मयूरगुण्डनृञ्च ॥ रत्नमालाविभूषितम् ॥ २० ॥

रत्नसिंहासनस्थश्च स्मेराननसरोल्लभम् । तं वेत्रहस्तं सभाप्य जग्मुर्देवेश्वरा मुदा ॥
विचित्रमष्टमं द्वारं सप्तम्योऽपि विलक्षणम् । दीवारिकं ते ददृशुः सुपाश्वं सुमनोहरम्
सस्मितं सुन्दरधरं श्रीखण्डतिलकोज्ज्वलम् । यन्धुजीवाधरोष्ठश्च रत्नकुण्डलमण्डितम्
सर्वालङ्कारशोभाढ्यं रत्नदण्डधरं धरम् । गोपैर्द्वादशलक्षैश्च किशोरैश्च -समन्वितम् ॥

ततः शीघ्रं ययुर्देवा नवमद्वारमीप्सितम् ॥ ३२ ॥

घञ्जसद्वत्तरचितचतुर्वैदिसमन्वितम् । अपूर्वचित्रयुक्तञ्च मालाजालैर्विराजितम् ॥ ३३ ॥
द्वारपालश्च ददृशुः सुवलं ललिताकृतिम् । नानाभूषणभूषाढ्यं भूषणाढं मनोहरम् ॥ ३४ ॥

घञ्जैर्द्वादशलक्षैश्च संयुक्तं सुमनोहरम् ।

तं दण्डहस्तं सभाप्य सुरा द्वारान्तरं ययुः ॥ ३५ ॥

विशिष्टं दशमद्वारं दृष्ट्वा ते विस्मिताः सुराः ।

सर्वानिर्वचनीयज्ञाप्यदृष्टमश्रुतं मुने ॥ ३६ ॥

ददृशुर्द्वारपालश्च सुदामानश्च सुन्दरम् । अनिर्वचनीयरूपश्च कृष्णतुल्यं मनोहरम् ॥

गोपविंशतिलक्षणां समूहैः परिवारितम् ॥ ३७ ॥

तं दण्डहस्तं दृष्ट्वा जग्मुर्द्वारान्तरं सुराः । द्वायेकादशाल्यश्च सुचित्रमद्भुतश्च तत् ॥

द्वारपालश्च तत्रस्थं श्रीदामानं व्रजेश्वरम् । राधिकापुत्रतुल्यश्च पीतवस्त्रेण भूषितम् ॥

अमूल्यरत्नरचितस्यसिंहासनस्थितम् । अमूल्यरत्नभूषाभिर्भूषितं सुमनोहरम् ॥ ४० ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितम् । गण्डस्थलकपोलाद्रसद्वत्नकुण्डलोज्ज्वलम् ॥

सद्वत्नधेष्टरचितपिचित्रमुकुटोऽज्ज्वलम् ॥ ४२ ॥

प्रफुलमालतीमालाजालैः सर्वाङ्गभूषितम् ।

कोटिगोपैः परिवृतं राजेन्द्राधिकमुज्ज्वलम् ॥ ४३ ॥

तं, संभाष्य ययुर्द्वारं द्वादशलक्षं, सुरा, मुदा । अमूल्यरत्नरचितस्यसिंहासिः समन्वितम् ॥

सर्वेषां दुर्लभं चित्रमदृश्यमश्रुतं मुने । घञ्जभित्तिस्थितं चित्रसुन्दरं सुमनोहरम् ॥ ४५ ॥

द्वारे नियुक्ता ददृशुर्देवा गोपाङ्गना धराः । रूपयोधनसम्पन्ना रत्नाभरणभूषिताः ॥ ४६ ॥

पीतवस्त्रपरीधानाः कयरीभारशोभिताः ।

सुरान्धिमालतीमालाजालैः सर्वाङ्गभूषिताः ॥ ४७ ॥

रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषिता । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताः ॥ ४८ ॥

वन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चिताः । पीनश्रोणिभराः नम्रा नितम्बभारपीडिताः ॥ ४९ ॥

गोपीनां शतकोटीनां श्रेष्ठा श्रेष्ठा हरेरपि । गोपीनां कोटिशो दृष्ट्वा सुरास्तेविस्मयंययुः
संभाष्य ता मुदा युक्ता ययुर्द्वारान्तरं मुने । ततश्च क्रमशो विप्रः त्रिषु द्वारेषु तत्र वै ॥

गोपाङ्गनानां श्रेष्ठान् वदद्दुः सुमनोहराः ।

पराणाञ्च परा रम्या धन्या मान्याश्च शोभनाः ॥ ५२ ॥

सर्वाः सौभाग्ययुक्ताश्च राधिकायाः प्रियाः स्मृताः ।

भूषिता भूषणै रम्यैः प्रोद्भिन्ननवयौवनाः ॥ ५३ ॥

एवं द्वारत्रयं दृष्ट्वा सुज्ञानादद्भुताध्ययम् ।

अद्भुतमतिरम्यञ्चाप्यनिरूप्यं चिच्छक्षणैः ॥ ५४ ॥

तास्ताः संभाष्य देवास्ते विस्मिता ययुरीश्वराः ।

राधिकाम्यन्तरं द्वारं पौडशाख्यं मनोहरम् ॥ ५५ ॥

सर्वासाञ्च विधानानां गोप्यं गोपाङ्गनागणैः ।

त्रयस्त्रिंशद्वयस्यानां वयस्यानिकरैर्मने ॥ ५६ ॥

वेशानिर्घञ्चनीयैश्च नानागुणसमन्वितैः । रूपयौवनसम्पन्नैः रत्नालङ्कारभूषितैः ॥ ५७ ॥

रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषितैः । सद्रत्नकिङ्किणीजालैर्मध्यदेशभिभूषितैः ॥ ५८ ॥

रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितैः । प्रकुलमालतीजालैर्वक्षोमध्यस्थलोड्यलैः ॥

शरत्पार्वणचन्द्राणां प्रभाञ्जुष्टमुत्प्रेन्दुमिः । पारिजाताप्रसूतानां मालाजालेन घेपितैः ॥

सुरम्पकवरीभारैर्भूषणैर्भूषितैर्वरैः ॥ ६० ॥

एकविम्याधरोष्ठैश्च स्मेराननसरोरुहैः । एकदाडिम्यवीजामैः शोभितैर्दन्तपङ्क्तिभिः ॥

चारुचम्पकवर्णागैर्मध्यस्थलदृशीर्मने ॥ ६२ ॥

गजमौक्तिकयुक्ताभिर्नासिकामिर्विराजितैः । यगेन्द्रचारुचञ्चूनां शोभाञ्जुष्टामिरेव च ॥

गजेन्द्रगण्डकटिनस्तनभारभरानतैः । पीनश्रोणिभरार्त्तैश्च मुकुन्दपद्मानसैः ॥ ६४ ॥

निमेषरहिता देवा द्वारस्था ददृशुश्च ताः । सद्रत्नमणिरत्नैश्च वेदिकायुग्मशोभितम् ॥

हरिन्मणीनां स्तम्भानां समूहैः संयुतं सदा ।

सिन्दूराकारमणिभिर्मध्यस्थलचिराजितैः ॥ ६६ ॥

पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विभूषितम् । तत्सम्पर्कैर्गन्धवाहीः सर्वत्र सुरभीकृतम् ॥

दृष्ट्वा तत् परामाश्चर्य्यं राधिकाभ्यन्तरं सुराः । श्रीकृष्णचरणाम्भोजदर्शनोत्सुकमानसाः

ताः संभाष्यययुःशीघ्रं पुलकाङ्कितचिप्रहाः । भक्त्युद्रेकादध्रुपूर्णाः किञ्चिन्नम्रास्यकाधराः

आरात्ते ददृशुर्देवा राधिकाभ्यन्तरं वरम् ।

मन्दिराणाञ्च मध्यस्थं चतुःशालं मनोहरम् ॥ ७० ॥

अमूल्यरत्नसाराणां सारेण रचितं परम् । नानारत्नमणिस्तम्भैर्वज्रयुक्तैश्च भूषितम् ॥ ७१ ॥

पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् । मुक्तसमूहैर्माणिक्यैः श्वेतचामरवर्षणैः ॥

अमूल्यरत्नसाराणां फलसैर्भूषितं मुने । पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तश्रीखण्डपल्लवान्वितैः ॥ ७३ ॥

मणिस्तम्भसमूहैश्च रम्यप्राङ्गणभूषितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रव्यसंयुतम् ॥ ७४ ॥

शुक्लधान्यशुक्लपुष्पप्रवालफलतण्डुलैः । पूर्णदूर्वाक्षतैर्लाजैर्निर्मञ्जलविभूषितम् ॥ ७५ ॥

फलरत्नैरत्नकुम्भैः सिन्दूरकुङ्कुमान्वितैः । पारिजातप्रसूनानां मालायुक्तैर्विराजितम् ।

प्रसूनार्कैर्गन्धवाहीः सर्वत्र सुरभीकृतम् ॥ ७६ ॥

सर्वातिर्वचनीपञ्च यदुद्रव्यमनिरूपितम् । प्रह्लाण्डदुर्लभं यद्वद्रस्तुभिस्तैर्विराजितम् ॥ ७७ ॥

रत्नशय्या सुललिता सूक्ष्मवस्त्रपरिच्छदा ।

पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम् ॥ ७८ ॥

कोटिशो रत्नकुम्भाश्च रत्नपात्राणि नारद । अमूल्यानिच चारुणि तैस्तैरेव विभूषितम्

नानाप्रकारवाद्यानां फलनादिनादितम् । स्वरयन्त्रैश्च वीणाभिर्गोपीसङ्गीतसुश्रुतम् ॥

मोहितं शय्यशय्यैश्च मृदङ्गानाञ्च नारद ॥ ८१ ॥

गोपानां रुष्णतुल्यानां समूहैः परिचारितम् । राधासपीनां गोपीनां चन्दैर्वृन्दैर्विराजितम्

राधारुष्णगुणोद्रेकपदसङ्गीतसुश्रुतम् । पचमभ्यन्तरं दृष्ट्वा बभ्रुवर्षिस्मिताः सुराः ॥ ८३ ॥

शुश्रुधुर्मधुरं गीतं ददृशुर्नृत्यमुत्तमम् । तत्र तस्युः सुराः सर्वे ध्यानेकतानमानसाः ॥ ८४ ॥

सुगन्धिमालतीमालाजालैः सर्वाङ्गभूषिताः ॥ ४७ ॥

रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषिताः । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताः ॥ ४८ ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्वयचर्चिताः । पीनश्रोणिभराः नम्रा नितम्बभारपीडिताः ॥ ४९ ॥

गोपीनां शतकोटीनां श्रेष्ठा श्रेष्ठा हरेरपि । गोपीनां कोटिशो दृष्ट्वा सुरास्तेविस्मयंययुः
संभाष्य ता मुदा युक्ता ययुर्द्वारान्तरं मुने । ततश्च क्रमशो विप्रः त्रिषु द्वारेषु तत्र वै ॥

गोपाङ्गनानां श्रेष्ठश्च ददृशुः सुमनोहराः ।

धराणाञ्च धरा रम्या धन्या मान्याश्च शोभनाः ॥ ५२ ॥

सर्वाः सौभाग्ययुक्ताश्च राधिकायाः प्रियाः स्मृताः ।

भूषिता भूषणै रम्यैः प्रोद्विन्ननयनीवनाः ॥ ५३ ॥

एवं द्वारत्रयं दृष्ट्वा सुज्ञानाद्बहुताश्रयम् ।

अदृश्यमतिरम्यञ्चाप्यनिरूप्यं चिचक्षुः ॥ ५४ ॥

तास्ताः संभाष्य देवास्ते विस्मिता ययुरीश्वराः ।

राधिकाभ्यन्तरं द्वारं षोडशाख्यं मनोहरम् ॥ ५५ ॥

सर्वासाञ्च विधानानां गोप्यं गोपाङ्गनागणैः ।

अयस्त्रिशद्वयस्यानां वयस्यानिकरैर्मुने ॥ ५६ ॥

वेशानिर्वचनीयैश्च नानागुणसमन्वितैः । रूपयौवनसम्पन्नैः रत्नालङ्कारभूषितैः ॥ ५७ ॥

रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषितैः । सद्रत्नकिङ्किणीजालैर्मध्यदेशविभूषितैः ॥ ५८ ॥

रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितैः । प्रकुलमालतीजालैर्वक्षोमध्यस्थलोज्ज्वलैः ॥

शरत्पार्वणचन्द्राणां प्रभाजुष्टमुखेन्दुभिः । पारिजाताप्रसूनानां मालाजालेन वेष्टितैः ॥

सुरम्यकचरीमारैर्भूषणैर्भूषितैर्वरैः ॥ ६० ॥

पद्मविम्बाधरोष्टैश्च स्मेराननसरोल्लैः । पद्मदाडिम्यषीजामैः शोभितैर्दन्तपङ्क्तिभिः ॥

चारुचम्पकवर्णाभैर्मध्यस्थलकृशैर्मुने ॥ ६२ ॥

गजमौक्तिकयुक्ताभिर्नासिकाभिर्विराजितैः । खगेन्द्रचारुचञ्चूनां शोभाजुष्टाभिरिव च ॥

गजेन्द्रगण्डकाटिनस्तनभारभरानतैः । पीनश्रोणिभारार्त्तैश्च मुकुन्दपद्मानसैः ॥ ६४ ॥

निमेषरहिता देवा द्वारस्था ददृशुश्च ताः । सद्रत्नमणिस्तनैश्च वेदिकायुग्मशोभितम् ॥

हरिमणीनां स्तम्भानां समूहैः संयुतं सदा ।

सिन्दूराकारमणिभिर्मध्यस्थलविराजितैः ॥ ६६ ॥

पारिजातप्रसूतानां मालाजालैर्विभूषितम् । तत्सम्पर्कैर्गन्धवाहैः सर्वत्र सुरभीकृतम् ॥

दृष्ट्वा तत् परामाश्चर्य्यं राधिकाभ्यन्तरं सुराः । श्रीकृष्णचरणाम्भोजदर्शनोत्सुकमानसाः

ताः संभाष्यययुःशीघ्रं पुलकाङ्कितविग्रहाः । भक्त्युद्रेकादधुपूर्णाः किञ्चिन्नम्रास्यकंधराः

भारासे ददृशुर्देवा राधिकाभ्यन्तरं परम् ।

मन्दिराणाञ्च मध्यस्थं चतुःशालं मनोहरम् ॥ ७० ॥

अमूल्यरत्नसाराणां सारेण रचितं परम् । नानारत्नमणिस्तम्भैर्वज्रयुक्तैश्च भूषितम् ॥ ७१ ॥

पारिजातप्रसूतानां मालाजालैर्विराजितम् । मुक्तासमूहैर्माणिक्यैः श्वेतचामरदर्पणैः ॥

अमूल्यरत्नसाराणां फलसैर्भूषितं मुने । पट्टसूत्रप्रस्थियुक्तश्रीखण्डपल्लवान्वितैः ॥ ७३ ॥

मणिस्तम्भसमूहैश्च रम्यप्राङ्गणभूषितम् । चन्दनगुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् ॥ ७४ ॥

शुक्रधान्यशुक्रपुष्पप्रवालफलतण्डुलैः । पूर्णदूर्याक्षतैर्लाजैर्निर्भरं जलविभूषितम् ॥ ७५ ॥

फलरत्नैरत्नकुम्भैः सिन्दूरकुङ्कुमान्वितैः । पारिजातप्रसूतानां मालायुक्तैर्विराजितम् ।

प्रसूताक्तैर्गन्धवाहैः सर्वत्र सुरभीकृतम् ॥ ७६ ॥

सर्वा निर्वचनीयञ्च यदुद्गम्यमनिरूपितम् । ब्रह्माण्डदुर्लभं यद्व्यद्वस्तुभिस्तैर्विराजितम् ॥ ७७ ॥

रत्नशय्या सुललिता सूक्ष्मघञ्जपरिच्छदा ।

पारिजातप्रसूतानां मालाजालैः सुशोभितम् ॥ ७८ ॥

कोटिशो रत्नकुम्भाश्च रत्नपात्राणि नारद । अमूल्यानि च चारुणि तैस्तैरेव विभूषितम्

नानाप्रकारघाघातां फलनादनितादितम् । स्वरयन्त्रैश्च घोणाभिर्गोपीसङ्गीतसुधुतम् ॥

मोहितं घायशब्दैश्च मृदङ्गानाञ्च नारद ॥ ८१ ॥

गोपानां कृष्णतुल्यानां समूहैः परिवारितम् । राधासपीनां गोपीनां वृन्दैर्वृन्दैर्विराजितम्

राधाकृष्णगुणोद्रेकपदसङ्गीतसुधुतम् । पञ्चमभ्यन्तरं दृष्ट्वा यभुवुर्विस्मिताः सुराः ॥ ८३ ॥

शुश्रुवुर्मधुरं गीतं ददृशुर्नृत्यमुत्तमम् । तत्र तस्युः सुराः सर्वे ध्यानैकतानमानसाः ॥ ८४ ॥

रत्नसिंहासनं रम्यं ददृशुस्त्रिदशेश्वराः ।

धनुःशतप्रमाणञ्च परितो मण्डलाकृतिम् ॥ ८५ ॥

सप्रत्नशुद्धकलससमूहैश्च समन्वितम् । चित्रपुत्तलिकापुष्पचित्रफाननभूषितम् ॥ ८६ ॥
तत्र तेजःसमूहञ्च सूर्यकोटिसमप्रभम् । प्रमया ज्वलितं ब्रह्मब्राध्वर्यं महद्भुतम् ॥ ८७ ॥
सप्ततालप्रमाणं तद् व्याप्तमूढ्वर्यं समन्ततः । तेजोमुष्टञ्च सर्वेषां व्याप्ताधमविराजितम् ॥ ८८ ॥
सर्वव्यापि सर्ववीजं चक्षुरोधकरं परम् । दृष्ट्वा तेजःस्वरूपञ्च ते देवा ध्यानतत्पराः ॥ ८९ ॥
प्रणेमुः परया भक्त्या भक्तिप्रसादस्य कन्धराः । परमानन्दसंयोगाद्भूषणविलोचनाः ।

पुलकाङ्कितसर्पाङ्गा वाञ्छापूर्णमनोरथाः ॥ ९० ॥

नत्वा तेजःस्वरूपञ्च तमीशं त्रिदशेश्वराः । तत्रोत्थाय ध्यानयुक्ता प्रतस्थुस्तेजसः पुरः
ध्यात्वैवं जगतां धाता बभूव सम्पुटाञ्जलिः । दक्षिणेशङ्करं कृत्वा धामे धर्मञ्च नारद ॥
भक्त्युद्देकात् प्रतुष्टाव ध्यानैकतानमानसः । परात्परं गुणातीतं परमात्मानमीश्वरम् ॥
ब्रह्मोवाच ।

वरं वरेण्यं वरदं वरदानाञ्च फारणम् । कारणं सर्वभूतानां तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ ९१ ॥

मङ्गल्यं मङ्गलार्हञ्च मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ।

समस्तमङ्गलाधारं तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ ९२ ॥

स्थितंसर्वत्र निर्मितमात्मरूपं परात्परम् । निरीहमवितर्क्यञ्च तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ ९३ ॥
सगुणं निर्गुणं ब्रह्मज्योतीरूपं सनातनम् । साकारञ्च निराकारं तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ ९४ ॥
त्वमनिर्वचनीयञ्च व्यक्तमव्यक्तमेककम् । स्वेच्छामयंसर्वरूपं तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ ९५ ॥
गुणत्रयविभागाय रूपत्रयधरं परम् । कलया ते सुराः सर्वे किं जानन्ति श्रुतेः परम् ॥
सर्वाधारं सर्वरूपं सर्ववीजमवीजकम् ।

सर्वान्तःकरणन्तञ्च तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ १०० ॥

लक्षं यद्गुणरूपञ्च वर्णनीयं विचक्षणैः । किं वर्णयामि लक्षन्ते तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥
अशरीरं विग्रहवद्दिन्द्रियवदतीन्द्रियम् । यदसाक्षि सर्वसाक्षितेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ १०२ ॥
गमनाहंमपादं यदचक्षुः सर्वदर्शनम् । हस्तास्यहीनं यद्भोक्तृ तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ १०३ ॥

वेदे निरूपितं वस्तु सन्तः शक्ताश्च वर्णितुम् ।

वेदेऽनिरूपितं यत्तत्तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥ १०४ ॥

सर्वेशं यदनीशं यत् सर्वादि यदनादि यत् । सर्वात्मकमनात्मं यत्तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥
 भ्रह्मविधाताजगतांवेदानां जनकःस्वयम् । पाताधर्मोहरोहर्त्तास्तोतुंशक्नोऽपिपत् ॥
 सेवया तव धर्मोऽयं रक्षितारञ्च रक्षति । तवाह्वयाच्च संहर्त्ता त्वया फाले निरूपिते ॥
 निपेकलिपिकर्त्ताहं त्वत्पादाम्भोजसेवया । कर्मिणां फलदाता च त्वद्वक्तानाञ्च न प्रभुः
 ब्रह्माण्डे विम्बसदृशा भूत्वा विपथिणो वयम् ।

एवं कतिविधाः सन्ति तैष्यन्तेषु सेवकाः ॥ १०६ ॥

यथानसंख्या रेणूनांतथा तेषामणीयसाम् । सर्वेषांजनकश्चेशोयस्त्वां स्तोतुञ्चकःक्षमः
 एकैकलोमविवरे ब्रह्माण्डमेकमेकम् । यस्यैव महतो विष्णोः षोडशांशस्तवैव सः
 ध्यायन्ति योगिनः सर्वे तवैतद्रूपमोप्सितम् । नभक्ता दास्यनिरताः सेवन्ते चरणाम्बुजः
 किशोरं सुन्दरतरं यद्रूपं कर्मणीयम् । मन्त्रध्यानानुरुञ्च दर्शयास्माकमीश्वर ॥ ११३ ॥
 नवीनजलदश्यामं पीताम्बरधरं परम् ।

द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं सुमनोदरम् ॥ ११४ ॥

मयूरपुच्छचूडञ्च मालतीजालमण्डितम् । चन्दनाशुक्कस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥ ११५ ॥
 भ्रमूल्यरत्नसाराणांभूषणैश्चविभूषितम् । भ्रमूल्यरत्नरचितकिरीटमुकुटोऽज्ज्वलम् ॥ ११६ ॥
 शरत्प्रफुल्लकमलप्रभामोप्यास्यचन्द्रकम् । एकविम्बसमानेन ह्यधरोष्ट्रेन राजितम् ।

एकदाङ्गिम्यवीजाभदन्तपङ्क्तिमनोरमम् ॥ ११७ ॥

केलिकदम्बमूले च स्थितं रासरसोत्सुकम् ।

गोपीवक्त्राणि पश्यन्तं राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥ ११८ ॥

एवं वाञ्छास्ति रूपं ते द्रष्टुं केलिरसोत्सुकम् ॥ ११९ ॥

इत्येवमुक्त्वा विश्वसृष्टं प्रणनाम पुनः पुनः । एवं स्तोत्रेणतुष्टाच्च धर्मोऽपिशङ्करः स्वयम्
 ननाम भूयोभूयश्च साधुपूर्णविलोचनः ॥ १२० ॥

तिष्ठन्तोऽपिपुनःस्तोत्रं प्रचकुस्त्रिदशेश्वराः । व्याप्तास्तत्रामराःसर्वे श्रोतृरूपतेजसा मुने

स्तवराजमिमं नित्यं धर्मेणब्रह्मभिः कृतम् । पूजाकाले हरेरेव भक्तियुक्तश्च यः पठेत् ॥

सुदुर्लभां ब्रह्मां भक्तिं निश्चलां लभते हरेः ॥ १२३

सुरासुरमुनीन्द्राणां दुर्लभं दास्यमेव च । अणिमादिकसिद्धिश्च सालोक्पादिचतुष्टयम्
इहैवविष्णुस्तुत्यश्चविख्यातः पूजितो ध्रुवम् । चाकूतसिद्धिर्मन्त्रसिद्धिश्च भवेत्तस्य विनिश्चितम्
सर्वसौभाग्यमारोग्यं यशसा पूरितं जगत् । पुत्रश्चविद्या कविता निश्चला कमला तथा

पत्नी पतिव्रता साध्वी सुशीला सुस्थिराः प्रजाः ।

कीर्त्तिश्च चिरकालीनाप्यन्ते कृष्णान्तिकस्थितिः ॥ १२७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

ब्रह्मकृत-कृष्णस्तोत्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः

ब्रह्मादिकृत-लक्ष्मीनारायणस्तोत्रम् ।

नारायण उवाच ।

ध्यात्वा स्तुत्वा च तिष्ठन्तो देवास्ते तेजसः पुरः ।

ददृशुस्तेजसो मध्ये शरीरं कमनीयकम् ॥ १ ॥

सजलाम्भोदवर्णाम् सस्मितं सुमनोहरम् । परमाहावकं रूपं त्रैलोक्यचित्तमोहनम् ॥ २ ॥
गण्डस्थलकपोलाभ्यां ज्वलन्मकरकुण्डलम् । सद्रत्ननूपुराभ्याश्च चरणाभोजराजितम्
पद्मिशुद्धहरिद्राभवलामूल्यविराजितम् । मणिरत्नेन्द्रसाराणां स्वेच्छाकौतुकनिर्मितम् ४
विनोदमुखीयुक्तविम्बाधरमनोहरम् । शुभेक्षणेन पश्यन्तं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ ५ ॥
सद्रत्नगुटिकायुक्तकवाटोरस्थलोज्ज्वलम् । कौस्तुभासक्तसद्रत्नप्रदीप्ततेजसोज्ज्वलम्

अत्र तेजसि चार्चङ्गी ददृशू राधिकाभिधाम् ।

पश्यन्तं सस्मितं कान्तं पश्यन्ती चकचक्षुषा ॥ ७ ॥

मुक्तापङ्क्तिविनिन्यैकदन्तपङ्क्तिविराजिताम् ।

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम् ॥ ८ ॥

शरत्पार्षणचन्द्रामाविनिद्यास्यमनोहराम् । चन्दुजीवप्रभामोप्याधरोष्ठविराम्वराम् ॥
रणन्मञ्जीरयुग्मेन पादाम्बुजविराजिताम् । मणीन्द्राणां प्रभामोपिनपराजीविराजिताम्
कुङ्कुमाभासमाच्छाद्य पादाधोरागभूषिताम् ।

अमूल्यरत्नसाराणां पाशकथेणिशोभिताम् ॥ ११ ॥

हुताशनविशुद्धांशुकामूल्यज्वलितोज्ज्वलाम् । महामणीन्द्रसाराणां किङ्किणीमध्यसंयुताम्
सद्रत्नहारकेयूरफरकङ्कणभूषिताम् । रत्नेन्द्ररचितोत्कृष्टकपोलोज्ज्वलकण्डलाम् ।

कर्णोपरि मणीन्द्राणां कर्णभूषणभूषिताम् ॥ १३ ॥

पद्मेन्द्रचञ्चुनासाग्रे गजेन्द्रमौक्तिकान्विताम् । मालतीमालया चक्रां विभ्रतीं कवरी त
मणीतां कौस्तुभेन्द्राणां धक्षःस्थलसुशोभिताम् ।

पारिजातप्रसूनानां मालाजालोज्ज्वलां वराम् ॥ १५ ॥

रत्नाङ्गुरीयनिकरैः कराङ्गुलिभिर्भूषिताम् ॥ १६ ॥

दिव्यशङ्खपिकारैश्च चित्ररागविभूषितैः । सूक्ष्मसूत्रकृतै रम्यैर्भूषितां शङ्खभूषणैः ॥ १७ ॥
सद्रत्नसारगुटिकारक्तसूत्राक्तशोभिताम् । प्रतप्तस्वर्णवर्णाभामाच्छाद्य चारुचित्रहाम् ।
नितम्बभ्रौणिललितां स्तनपीनोद्यतां तथा । भूषितां भूषणैः सर्वैस्तत्सौन्दर्येण भूषितै
विस्मितास्त्रिदशाः सर्वे दृष्टेशमीश्वरी वराम् । तुष्टुयुस्तैः सुराः सर्वे पूर्णसर्वमनोरथा

ब्रह्मोवाच ।

तव चरणसरोजे मग्नमधञ्जरीको भ्रमतु सततमोक्ष प्रेमभक्तया सरोजे ।

भयनमरणरोगात् पाहि शान्त्यर्थेण्येन सुदृढमुपरिष्ठां देहि भक्तिं दास्यम् ॥ २१ ॥

शङ्कर उवाच ।

भवजलधिनिमग्नं चित्तमीनो मदीयो भ्रमति सततमम्मिन् घोरसंसाररूपे ।

विषयमतिविनिर्घ्नं सृष्टिसंहाररूपमपनय तव भक्तिं देहि पादारविन्दे ॥ २२ ॥

धम्म उवाच ।

तव निजजनसायं सङ्गमो मे सदैव भवतु विषयबन्धच्छेदने तादृशतद्गः ।

तव चरणसरोजस्थानन्दानकहेतुर्जनुषि जनुषि मर्क्कि देहि पादारविन्दे ॥ २३ ॥

नारायण उवाच ।

इत्येवं स्तवनं कृत्वा परिपूर्णकमानसाः । कामपूरस्य पुरतस्तस्युस्ते राधिकापतेः २४ ॥
सुराणां स्तवनं श्रुत्वा तानुवाच कृपानिधिः । हितं तथ्यञ्च यद्यनं स्मेराननसरोदहः ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

स्वागतं स्वागतं तुभ्यं मदीये हि पुरेऽधुना । शिवाश्रयाणां कुशलं प्रष्टुं युक्तमसाम्प्रतम्

निश्चिन्ता भवतात्रैव का चिन्ता यो मयि स्थिते ।

स्थितोऽहं सर्वजीवेषु प्रत्यक्षोऽहं स्तवेन वै ।

युष्माकं यदभिप्रायं सर्वं जानामि निश्चितम् ॥ २७ ॥

शुभाशुभञ्च यत् कर्म काले खलु भविष्यति । महत् शुद्ध्यत् कर्मसर्वं कालकृतंसुराः

स्वस्वकाले च तस्यः फलितः पुष्पिणः सदा ।

परिपक्वफलाः काले कालेऽपक्वफलान्विताः ॥ २९ ॥

सुखं दुःखं विपत् सम्पत् शोकश्चिन्ता शुभाशुभम् ।

स्वकर्मफलनिष्ठञ्च सर्वं काले ह्युपस्थितम् ॥ ३० ॥

न हि कस्य प्रियः को वा विप्रियो वा जगत्त्रये ।

काले कार्प्यवशात् सर्वे भवन्त्येवाप्रियाः प्रियाः ॥ ३१ ॥

राजानो मनवः पृथ्व्यां दृष्टा युष्माभिरत्र वै । स्वकर्मफलपाकेन सर्वं कालवशङ्कताः

युष्माकमधुनात्रैव गोलोके यत्क्षणं गतम् । पृथिव्यां तत्क्षणेनैव सप्तमन्वन्तरं गतम् ॥

इन्द्राः सप्त गतास्तत्र देवेन्द्रश्चाष्टमोऽधुना । कालचक्रं भ्रमत्येवं मदीयञ्च द्विचानिशम् ॥

इन्द्राश्च मनवो भूषाः सर्वे कालवशङ्कताः । कीर्त्तिः पृथ्वी पुण्यमघं कथामाश्रयशेषितम्

अधुनापि च राजानो दुष्टाश्च हरिनिन्दकाः । यभूर्ध्वहवो भूमौ महाबलपराकमाः ३६

सर्वे यास्यन्ति कालेन प्राप्तं कालान्तकस्य च ॥ ३७ ॥

उपस्थितोऽपि कालोऽयं वातो वाति निरन्तरम् । घर्हिर्दहति सूर्यश्च तपत्येव ममाज्ञया

व्याधयः सन्ति देहेषु मृत्युश्चरति जन्तुषु । धर्यन्त्येते जलधराः सर्वे देवा ममाज्ञया ३८ ॥

ब्रह्मण्यनिष्ठा चिप्राश्च तपोनिष्ठास्तपोधनाः । ब्रह्मार्पयो ब्रह्मनिष्ठा योगनिष्ठाश्च योगिनः
वे सर्वे मद्भयाद्भीताः स्वधर्मकर्मतत्पराः । मद्भक्ताश्चैव निःशङ्काः कर्मनिर्मूलकारकाः

देवाः कालस्य कालोऽहं विधाता धातुरेव च ।

संहारकर्तुः संहर्त्ता पातुः पाता परात्परः ॥ ४२ ॥

ममाहंयाऽयं संहर्त्ता नास्मा तेन हरः स्मृतः ।

त्वं विश्वसृक् सृष्टिहेतोः पाता धर्मस्य रक्षणात् ॥ ४३ ॥

ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वेषामहमीश्वरः । स्वकर्मफलदाताहं कर्मनिर्मूलकारकः ॥ ४४ ॥

अहं यान् संहरिष्यामि कस्तेषामपि रक्षिता ।

यानहं पालयिष्यामि तेषां हन्ता न कोऽपि च ॥ ४५ ॥

सर्वेषामपि संहर्त्ता स्रष्टा पाताहमेव च । नाहं शक्य भक्तानां संहारे नित्यदेहिताम् ॥

भक्ता ममानुगा नित्यं मत्पादार्चनतत्पराः । अहं भक्तान्तिके शश्वत्तेषां रक्षणहेतवे ॥

सर्वे नश्यन्ति ब्रह्माण्डे प्रभवन्ति पुनः पुनः । न मे भक्ताः प्रणश्यन्ति निःशङ्काश्च निरापदः

ततो विपश्चितः सर्वे दास्यं चाञ्छन्ति नो धरम् ।

ये मां दास्यं प्रयाचन्ते धन्यास्तेऽन्ये च वञ्चिताः ॥ ४६ ॥

जन्ममृत्युजराव्याधिभयञ्च यमताडना । अन्येषां कर्मिणामस्ति न भक्तानाञ्च कर्मिणाम्

भक्ता न लिप्ताः पापेषु पुण्येषु सर्वकर्मणः । अहं धुनोमि तेषाञ्च कर्मभोगाञ्च निश्चितम्

अहं प्राणाश्च भक्तानां भक्ताः प्राणा ममापि च ।

ध्यायन्ते ये च मां नित्यं तान् स्मरामि दिवानिशम् ॥ ५२ ॥

चक्रं सुदर्शनं नाम वोडुशारं सुतीक्ष्णकम् । यत्तेजःवोडुशांशोऽपि नास्ति सर्वेषु जीविषु

भक्तान्तिके ॥ तथानं दत्त्वा रक्षार्थमीप्सितम् । तथापि प्रतीतिर्मे यामि तेषाञ्च सन्निधिम्

न मे स्यात्स्थञ्च वैकुण्ठे गोलोके राधिकान्तिके ।

यत्र तिष्ठन्ति भक्तास्ते तत्र तिष्ठाम्यदनिशम् ॥ ५५ ॥

प्राणेश्वरः प्रयसी राधा स्थितोरसि दिवानिशम् ।

यूथं प्राणाधिका लक्ष्मणं मे भक्तात् पराः स्मृताः ॥ ५६ ॥

भक्तदत्तश्च यदुद्रव्यं भक्त्याऽश्रामिसुरेश्वराः । भक्तदत्तनाश्रामिध्रुवंभुङ्क्ते बलिःस्वयम्
स्त्रीपुत्रस्वजनांस्त्यक्ता ध्यायन्ते- मामहर्निशम् ।

युष्मान् चिदाय तात्रित्यं स्मराम्यहमहर्निशम् ॥ ५८ ॥

द्वयारो ये च भक्तानां ब्राह्मणानांगवामपि । कर्तूनां देवतानाञ्च हिंसां कुर्वन्ति निश्चितम्
तदाऽबिरं तेनश्यन्ति यथा पक्षीतृणानि च । न कोऽपि रक्षितातेषां मयि हन्तव्यपस्थिते
यास्यामि पृथिवीं देवा यात यूयं स्वमालयम् ।

यूयं चैवाशरूपेण शीघ्रं गच्छत भूतलम् ॥ ६१ ॥

इत्युक्त्वा जगतां नाथो गोपानाह्वय गोविकाः ।

उवाच मधुरं सत्यं वाक्यं तत्समयोचितम् ॥ ६२ ॥

गोपा गोप्यश्च शृणुत यात नन्दव्रजं परम् । वृषभानुगृहं क्षिप्रं गच्छ त्वमपि राधिके ॥
वृषभानुप्रिया साध्वी नाम्ना गोपीकलावती । सुबलस्य सुता सा च कमलांशसमुद्भवा
पितृणां मानसी कन्या धन्या मान्या च योपिताम् ।

पुरा दुर्वाससः शापाज्जम्भ तस्या व्रजे गृहे ॥ ६५ ॥

तस्यां लभस्व त्वं जन्म शीघ्रं नन्दव्रजं व्रज । त्वामहं बालरूपेण गृह्णामि कमलानने ६६
त्वं मे प्राणाधिका राधे तवःप्राणाधिकोऽप्यहम् ।

न किञ्चिदावयोर्भिन्नमेकाङ्कः सर्वदैव हि ॥ ६७ ॥

ध्रुत्वैवं राधिका तत्र हरोद प्रेमविह्वला । पपी चक्षुश्चकोराम्बां मुखवन्दं हरेर्मुने ॥ ६८ ॥

अनुलभत गोपाश्च गोप्यश्च पृथिवीतले । गोपानामुत्तमानाञ्च मन्दिरे मन्दिरे शुभे ॥

एतस्मिन्नन्तरे सर्वे ददृशू रथमुत्तमम् । मणिरत्नेन्द्रसारेण हीरकेण विभूषितम् ॥ ७० ॥

श्वेतचामरलक्षेण शोभितं दर्पणायुतैः । सूक्ष्मकापायवस्त्रेण वह्निशुद्धेन भूषितम् ॥ ७१ ॥

सद्रत्नकलसानाञ्च सहस्रेण सुशोभितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् ॥

पार्यदप्रचरैर्युक्तं शतकुम्भमयं शुभम् । तेजः स्वरूपमनुलं शतसूर्य्यसमप्रभम् ॥ ७३ ॥

तत्रस्थं पुरुषं श्यामसुन्दरं कमनीयकम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं, परम् ॥ ७४ ॥

किरोदितं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम् । बन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥ ७५ ॥

चतुर्भुजं स्मेरवक्त्रं भक्तानुग्रहकातरम् । मणिरत्नेन्द्रसाराणां सारभूषणभूषिताम् ॥ ७६ ॥

देवी तद्वामतो रम्यां शुक्लवर्णां मनोहराम् ।

वेणुवीणाग्रन्थहस्तां भक्तानुग्रहकातराम् ।

विद्याधिष्ठातृदेवीञ्च ज्ञानरूपां सरस्वतीम् ॥ ७७ ॥

अपरां दक्षिणे रम्यां शरच्चन्द्रसमप्रभाम् ।

तप्तकाञ्चनवर्णाभां सस्मितां सुमनोहराम् ॥ ७८ ॥

सद्रत्नकुण्डलाभ्याञ्च सुकपोलविराजिताम् । अमूल्यरत्नलवितामूल्यवस्त्रेण भूषिताम्

अमूल्यरत्नकेयूरकरकङ्कणशोभिताम् । सद्रत्नसारमञ्जोरकलशब्दसमन्विताम् ॥ ८० ॥

पारिजातप्रसूनानां मातृवैर्वक्ष स्थलोऽञ्जलाम् ।

प्रफुल्लमालतीमालासंयुक्तकवरी शुभाम् ॥ ८१ ॥

शरच्चन्द्रप्रभामोविमुपचारुचिभूषिताम् ॥ ८२ ॥

कस्तूरीचिन्दुसंयुक्तसिन्दूरतिलकान्विताम् । सुचारुफञ्जलासक्तशरत्पङ्कजलोचनाम् ॥

सहस्रदलसंयुक्तलोलाकमलसंयुताम् । नारायणञ्च पश्यन्तं पश्यन्ती यक्रचक्षुषा ॥ ८४ ॥

अवरह्य रथात्तूर्णं सलीकः सह पार्षदैः । जगाम च सभां रम्यां गोपगोपीसमन्विताम्

देवा गोपाश्च गोप्यश्चोत्तस्थुः प्राञ्जलयो मुदा । सामवेदोक्तस्तोत्रेण रुतेनद्यसुरर्षिभिः

गत्वा नारायणो देवो विलीनः कृष्णविग्रहे । दृष्ट्वा च परमाध्ययंते सर्वे विस्मयं ययुः ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शतकुम्भमयाद्रथात् । अवरह्य स्वयं विष्णुः पाता च जगतां पतिः ॥

भाजगाम चतुर्बाहुः धनमालाविभूषितः ।

पीताम्बरधरः श्रीमान् सस्मितः सुमनोहरः ।

सर्वालङ्कारशोभाढ्यः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ ८६ ॥

उत्तस्युस्ते च तं दृष्ट्वा तुष्ट्युः प्रणता मुने । स चापिलीनस्तत्रैष राधिकेश्वरविग्रहे ॥ ८७ ॥

ते दृष्ट्वा महदाध्ययं विस्मयं परमं ययुः । संविलीने हरेरङ्गे श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥ ८९ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तूर्णमाजगाम त्वरान्वितः । शुद्धस्फटिकसङ्काशो नाम्नासङ्कर्षणः स्मृतः

सहस्रशीर्षा पुरुषः शतसूर्यसमप्रभः ॥ ९२ ॥

आगतं तुष्टुघुः सर्वं दृष्ट्वा तं चिष्णुविग्रहम् । स चागत्य नतस्कन्धस्तुष्टावराधिकेश्वरम्

सहस्रमूर्धभिर्भक्त्या प्रणनाम च नारद ॥ ६३ ॥

भावाञ्च धर्मपुत्रो ह्यौ नरनारायणाभिधौ ।

लीनोऽहं कृष्णपादाब्जे बभूव फाल्गुनो घरः ॥ ६४ ॥

ब्रह्मेशशेषधर्माश्च तस्थुरेकत्र तत्र वै ॥ ६५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवा ददृशु रथमुत्तमम् । स्वर्णसारचिकाञ्च नानारत्नपरिच्छदम् ॥ ६६ ॥

मणीन्द्रसारसंयुक्तं वह्निशुद्धांशुकान्वितम् । श्वेचामरसंयुक्तं भूषितं दर्पणायुतैः ॥ ६७ ॥

सद्रत्नसारकलससमूहेन विराजितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैः सुशोभितम् ॥

सहस्रचक्रसंयुक्तं मनोवायि मनोरमम् । श्रीभ्रमभ्याह्वमार्त्तण्डप्रभामोपकरं परम् ॥ ६८ ॥

मुक्तामाणिक्यवज्राणां समूहेन समुज्ज्वलम् ।

चित्रपुत्तलिकापुष्पसरःकाननचित्रितम् ॥ १०० ॥

देवानां दानधानाञ्च स्थानां प्रवरं मुने ।

यत्नेन शङ्करप्रीत्या निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ १०१ ॥

पञ्चाशद्वयोजनोर्ध्वश्च चतुर्योजनविस्तृतम् ।

रतितल्पसमायुक्तैः शोभितं शतमन्दिरेः ॥ १०२ ॥

तत्रस्थां ददृशुर्देवी रत्नलङ्कारभूषिताम् । प्रदग्धस्वर्णसाराणां प्रभामोपकरद्युतिम् ॥

तैजःस्वरूपामतुलां मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥ १०३ ॥

सहस्रभुजसंयुक्तां नानायुधसमन्विताम् । ईषद्वास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकातराम् ॥

गण्डस्थलकपोलाभ्यां सद्रत्नकुण्डलोज्ज्वलाम् ।

रत्नेन्द्रसाररचितकणन्मञ्जीररञ्जिताम् ॥ १०५ ॥

मणीन्द्रमेखलायुक्तमध्यदेशसुशोभनाम् । सद्रत्नसारकेयूरकरकङ्कणभूषिताम् ॥ १०६ ॥

मन्दारपुष्पमालाभिरुत्स्थलसमुज्ज्वलाम् । नितम्बकटिनध्रोणिपीनोन्नतकुक्षानताम्

शरत्सुधाकराभासविनिन्दास्यमनोहराम् । कज्जलोज्ज्वलरैखातशरत्पङ्कजलोचनाम्

चन्दनागुरुकस्तूरीचित्रपत्रकभूषिताम् । नवीनकन्धुवीजाभामोष्ठाधरसुशोभिताम् १०

मुक्तापङ्क्तिप्रभामोपिदन्तराजिविराजिताम् । प्रफुल्लमालतीमालासंसक्तकवरीं धराम् ॥

पक्षीन्द्रचञ्चनासाग्रजेन्द्रमौक्तिकान्विताम् ॥ १११ ॥

बह्विशुद्धांशुकानातिज्वलितेन समुज्ज्वलाम् । सिंहपृष्ठसमारूढां सुताभ्यां सहितां मुदा
अवकृष्टा रथात्तूर्णं श्रीकृष्णं प्रणनाम च । सुताभ्यां सह सा देवी समुवास धरासने ॥
गणेशः कार्तिकेयश्च नत्वा कृष्णं परात्परम् । ननाम शङ्करं धर्ममनन्तं कमलोद्भवम् ॥
उत्तस्थुरारात्ते देवा दृष्ट्वा तौ त्रिदशेश्वरौ । वाशिपञ्च बटुर्देवा वासयामासुः सन्निधौ

ताभ्यां सह सदालापं चक्रुर्देवा मुदान्विताः ॥ ११५ ॥

तस्थुर्देवाः सभामध्ये देवी च पुरतो हरेः । गोपामोप्यश्च बहुशो बभूवुर्बिस्मयाकुलाः ॥
उघाच्च कमलां कृष्णः स्मेराननसरोरुहः । त्वं गच्छ भीष्मकगृहं नानारत्नसमन्वितम् ॥

वैवर्ध्या उदरे जन्म लभ देवि सनातनि ।

तव पार्णि ग्रहीष्यामि गत्वाहं कुण्डिनं सति ॥ ११८ ॥

ता देव्यःपार्वतीदृष्ट्वासमुत्थाप्यत्वरान्विताः । रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरीम्
विप्रेन्द्र पार्वती लक्ष्मीर्वागधिष्ठातृदेवताः । तस्थुरेकासने तत्र सम्भाष्य च यथोचितम्
ताश्च सम्भाषयामासुः सम्प्रीत्या गोपकन्यकाः ।

ऊपुर्गोपालिकाः काश्चिन्मुदा तासाञ्च सन्निधौ ॥ १२१ ॥

श्रीकृष्णः पार्वती तत्र समुवाच जगत्पतिः । देवि त्वमंशरूपेण यज नन्दयजं शुभे ॥
उदरे च यशोदायाः कल्याणि नन्दरेतसा । लभ जन्म महामाये सृष्टिसंहारकारिणि ॥
ग्रामे ग्रामे च पूजां ते कारयिष्यामि भूतले । कृत्स्ने महीतले भक्त्या नगरेषु घनेषु च ॥
तत्राधिष्ठातृदेवी त्वां पूजयिष्यन्ति मानवाः । द्रव्यैर्नानाविधैर्दिव्यैर्बलिभिश्चमुदान्विताः
तव भूस्पर्शमात्रेण सृत्तिकामन्दिरेशिबे । पिता मां तत्र संस्थाप्य त्वामादाय गमिष्यति
कंसदर्शनमात्रेणागमिष्यसि शिवान्तिकम् ।

भारावतारणं कृत्वा गमिष्यामि स्वमाश्रमम् ॥ १२७ ॥

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तूर्णमुवाच च पङ्काननम् । अंशरूपेण पत्स त्वं गमिष्यसि महीतलम्
जाम्बवत्याश्च गर्भे च लभ जन्म सुरेश्वर । अंशेन देवताः सर्वा गच्छन्तु धरणीतलम् ॥

भारहारं करिष्यामि वसुधायाश्च निश्चितम् ॥ १२६ ॥

इत्युक्त्वा राधिकानाथस्तस्यौ सिंहासने वरे । तस्युर्देवाश्च देव्यश्च गोपागोप्यश्चनारद
एतस्मिन्नन्तरं ब्रह्मा समुत्तस्यौ हरेः पुरः । पुटाल्लिजगन्नाथमुवाच विनयान्वितः ॥
ब्रह्मोवाच ।

अवधानं कुरु विभो किङ्कुरस्य निवेदने । आह्वां कुरु महाभाग कस्य कुत्र स्थलं भुवि
भर्ता पातोद्धारकर्ता सेचकानां प्रभुः सदा । स भृत्यः सर्वदा भक्त ईश्वराह्वां करोति यः
के देवाः केन रूपेण देव्यश्च कलया कया । कुत्र कस्याभिधेयश्च विषयश्च महीतले ॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच जगत्पतिः । यस्य यत्रावकाशश्च कथयामि विधानतः
श्रीकृष्ण उवाच ।

कामदेवो रौषिमणेयो रती मायावतीसती । शम्बरस्यगृहे या च छायारूपेणसंस्थिता
त्वं तस्य पुत्री भविता नामनानिरुद्ध एष च । भारती शोणितपुरे बाणपुत्री भविष्यति
अमन्तो देवकीगर्भाद्रौहिणेयो जगत्पतिः । मायया गर्भसङ्कर्षात्नाम्ना सङ्कर्षणः स्मृतः ॥
कालिन्दी सूर्य्यतनया गङ्गांशेन महीतले । अर्द्धांशेनैव तुलसी लक्ष्मणा राजकन्यका ॥
सावित्री वेदमाता च नाम्ना नाम्नजिती सती ।

वसुन्धरा सत्यभामा शैब्या देवी सरस्वती ॥ १४० ॥

रौहिणी मित्रविन्दा च भविताराजकन्यका । सूर्य्यपत्नीरत्नमालाकलया च जगद्गुरोः
स्वाह्वांशेन सुशीला च रुक्मिण्याद्याः स्त्रियो नव ।

दुर्गार्द्धांशा जाम्बवती महिषीणां दश स्मृताः ॥ १४२ ॥

अर्द्धांशेन शैलपुत्री यातु जाम्बवतो गृहम् । कैलासे शङ्कराज्ञा च बभूव पार्वतीं प्रति ॥
कैलाशगामिनं विष्णुं श्वेतद्वीपनिवासिनम् । आलिङ्गनं देहिकान्ते नास्ति दोषोममाज्ञया
ब्रह्मोवाच ।

कथं शिवाज्ञा तां देवीं बभूव राधिकापते । विष्णोः सम्भाषणे पूर्वं श्वेतद्वीपनिवासिनः
श्रीकृष्ण उवाच ।

पुरा गणेशं द्रष्टुं च प्रजग्मुः सर्वदेवताः । श्वेतद्वीपात् स्वयं विष्णुर्जगाम शङ्करस्तवात्

दृष्ट्वा गणेशं मुदितः समुवाच सुखासने । सुखेन ददृशुः सर्वे त्रैलोक्यमोहनं वपुः ॥
किरीटिनं कुण्डलिनं पीताम्बरधरं धरम् । सुन्दरं श्यामरूपञ्च नवयौवनसंयुतम् ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् । रत्नालङ्कारशोभाढ्यं स्मेराननसरोरुहम् ॥१४६॥

रत्नसिंहासनस्थञ्च पार्यदैः पश्चिष्ठितम् ।

घन्दितश्च सुरैः सर्वैः शिवेन पूजितं स्तुतम् ॥ १५० ॥

तं दृष्ट्वा पार्वती विष्णुं प्रसन्नवदनेक्षणा । मुपमाच्छादयामास वाससा व्रीडया सती
अतीतसुन्दरं रूपं दर्शं दर्शं पुनः पुनः । ददर्श मुखमाच्छाद्य निमेषरहिता सती १५२ ॥
परमाद्भुतवेशश्च सस्मिता वक्रवक्षुपा । सुखसागरसंमग्ना बभूव पुलकाञ्चिता ॥ १५३ ॥
क्षणं ददर्श पञ्चास्यं शुभ्रवर्णं त्रिलोचनम् । त्रिशूलपरिघधरं कन्दर्पकोटिसुन्दरम् ॥ १५४ ॥
क्षणं ददर्श श्यामं तमेकास्यञ्च द्विलोचनम् । अतुर्भुजं पीतवस्त्रं वनमालाविभूषितम् ॥
एकं ब्रह्ममूर्तिभेदमभेदं वा निरूपितम् । दृष्ट्वा बभूव सा माया सकामा विष्णुमायया ॥
मदंशाश्च त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । ताभ्यामोत्कर्षपाताच्च श्रेष्ठः सत्यगुणात्मकः
दृष्ट्वा तं पार्वती भक्त्या पुलकाञ्चितविग्रहा । मनसा पूजयामास परमात्मानमीश्वरम् ।
दुर्गान्तराभिप्रायश्च बुबुधे शङ्करः स्वयम् । सर्वान्तरात्मा भगवानन्तर्पामी जगत्पतिः ॥
दुर्गाञ्च निर्जनीभूय तामुवाच हरः स्वयम् । बोधयामास विविधं हितं तथ्यमखण्डितम्

शङ्कर उवाच ।

निवेदनं मदीयञ्च निबोध शीलकन्यके । शृङ्गारं देहि भद्रं ते हरये परमात्मने ॥ १६१ ॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च ब्रह्मैकश्च सनातनम् । देवको भेदरहितो विषयान्मूर्तिभेदकः ॥
सर्वेषां प्रकृतिर्होका माता त्वं सर्वरूपिणी । स्थयम्भुवश्च धाणीत्वं लक्ष्मीनारायणोरसि
मम वक्षसि दुर्गात्वं निबोधाध्यात्मकं सति । शिवस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच सुरेश्वरी
श्रीपार्वत्युवाच ।

वीनवन्धो कृपासिन्धोतव मामरूपा कथम् । सुचिरंतपसालब्धो नाथस्त्वंजगतां मया
मादृशी किङ्करीनाथ न परित्यक्तुमर्हसि । अयोग्यमीदृशं वाक्यं मां मा वद महेश्वर ॥
तव वाक्यं महादेव पालयिष्यामि सर्वथा । देहान्तरे जन्मलब्ध्वा भजिष्यामिहर्षिहर ॥

इत्येवं वचनं श्रुत्वा विरराम महेश्वरः । उच्चैर्जहासामयदः पार्वत्ये चामयं दर्श ॥
तत्प्रतिज्ञापालनाय पार्वती जाम्बवदगृहे । लभिष्यति जनुर्धातर्नाम्ना जाम्बवती सती
ब्रह्मोपाच ।

भूमौ कतिविधे भूपे संस्थिते पार्वती कथम् । ललाभ भारते जन्मनिन्दितेभास्त्रुकेगृहे
श्रीकृष्ण उवाच ।

रामावतारे त्रेतायां देवांशाश्च ययुर्महीम् । हिमालयांशो मल्लूकोजाम्बवान्गामकिङ्करः
रामस्य वरदानेन चिरजीवी धिया युतः । कोटिसिंहयलाधारः क्रियते च महायलः ॥
पितुरंशगृहं गत्वा जगामांशेन भूतलम् । एवं पूर्वस्य वृत्तान्तं कथितं शृणु मन्मुपात् ॥
सर्वेषाञ्च सुराणाञ्चैवांशा गच्छन्तु भूतलम् । नृपपुत्रा मत्सहाया भविष्यन्ति रणेविधे
कमलाकलया सर्वा भयन्तु नृपकन्यकाः । मन्महिष्यो भविष्यन्ति सहस्राणाञ्च पोङ्गश
धर्मोऽयमंशरूपेण पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिरः । धार्योरंशाद्धीमसेनो घञ्पृंशावर्जुनः स्वयम् ॥
नकुलः सहदेवश्च स्वर्वैद्यांशसमुद्रपः । सूर्यांशः कर्णवीरश्च धिदुरः शमनः स्वयम् ॥
दुष्येधनः कलेरंशः समुद्रांशश्चशान्तनुः । अश्वत्थामा शङ्करांशो द्रोणीवह्मणंशसम्भवः
चन्द्रांशोऽप्यभिमन्युश्चभीष्मश्चैवस्वयंघसुः । घासुदेवः कश्यपांशोऽप्यवित्यंशाच्चदेवकी
वस्वंशो नन्दगोपश्च यशोदा वसुकामिनी । द्रौपदी कमलांशा च यज्ञकुण्डसमुद्भवा ॥
हुताशनांशो भगवान् धृष्टद्युम्नो महायलः । सुभद्राशतरूपांशा देवकीगर्भसम्भवा ॥ १८१ ॥
देवा गच्छन्तु पृथिवीमंशेन भारह्मरकाः । कलया देवपत्न्यश्च गच्छन्तु पृथिवीतलम् ॥
इत्येवमुक्त्वा भगवान् विररामे च नारद । सर्वं विवरणं श्रुत्वा तत्रोवाच प्रजापतिः ॥

कृष्णस्य वामे वाग्देवी दक्षिणे कमलालया ।

पुरतो देवताः सर्वाः पार्वती चापि नारद ॥ १८४ ॥

गोप्यो गोपाश्च पुरतो राधा वक्षःस्थलस्थिता । एतस्मिन्नन्तरेसाच तमुवाच वज्रेश्वरी
राधिकोवाच ।

शृणु नाथ प्रवक्ष्यामि किङ्करीवचनं प्रभो । प्राणा दहन्ति सततमन्दोलयति मे मनः ॥
चक्षुर्निमीलनङ्कुर्तुमशक्ता तव दर्शने ।

त्वया चिना कथं नाथ यास्यामि धरणीतलम् ॥ १८७ ॥

कतिकालान्तरं बन्धो मेलनं मे त्वया सह । प्राणेश्वर ब्रूहि सत्यं भविष्यत्येव गोकुले
निमेषश्च युगशतंभवितामे त्वयाचिना । कं द्रक्ष्यामि कयास्यामि कोवामांपालयिष्यति
मातरं पितरं बन्धं भ्रातरं भगिनीं सुतम् ।

तस्या चिनाहं प्राणेश चिन्तयामि न कं क्षणम् ॥ १६० ॥

करोपि माययाच्छ्रान्तां माञ्जिन्मायेशभूतले । विस्मृतां विभयं दत्त्वा सत्यं मे शपथं कुरु
अणुक्षणं मम मनोमधपो मधसूदन । करोतु ध्रमणं नित्यं समाध्वीके पदाम्बुजे ॥१६२॥

यत्र तत्र च यस्यां वा योनीं जन्म भवत्विदम् ।

त्वं स्वस्य स्मरणं दास्यं मह्यं दास्यसि वाञ्छितम् ॥ १६३ ॥

कृष्णस्त्वं राधिकाहञ्च प्रेमसोभाग्यमावयोः । न चित्प्ररामि भूमीच देहिमह्यं परंचरम्
यथा तन्वा सह प्राणाः शरीरं छायाया सह । तथाचयोर्जन्म यातु देहि मह्यं वरं विभो
चक्षुर्निमेषविच्छेदो भविता नाचयोर्भुवि । तत्रागत्यापि कुत्रापि देहि मह्यं वरं प्रभो ॥
मम प्राणैस्तव तनुः केन वा चार्प्यते हरेः । आत्मना मुरली पादौ मनसा चापिनिर्मितौ
स्त्रियः कतिविधाः सन्ति पुरुषा धा पुरपूतः ।

नास्ति कुत्रापि कान्ता या कान्तासक्ता च मादृशी ॥ १६८ ॥

तद्यदेहार्द्धभागेनकेतवाहं विनिर्मिता । इदमेवाययोर्भेदो नास्त्यतस्त्वयि मे मनः ॥१६॥
ममात्ममानसःप्राणांस्त्वयिसंस्थाप्यकेतवा । तवात्ममानसःप्राणामयिधासंस्थिताभयि
शतो निमेषविरहादात्मनो विक्रयं मनः । प्रदग्धं सन्ततं प्राणा वहन्ति चिरहृत्प्रतां ॥२०॥

इत्येवमुक्त्वा सा देवी तत्रैष सुरसंसदि ।

भूयोभूयो श्रोतृदोषैर्धृत्वा तच्चरणाम्बुजे ॥ २०२ ॥

क्रोडे कृत्वा च तां कृष्णो मुखं समृज्य वाससा ।

बोधयामास विविधं सत्यं तप्यं हितं षष्ठः ॥ २०३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

ध्यात्मिकपरंयोगशोकच्छेदनकर्तनम् । शृणुदेविप्रवक्ष्यामि योगीन्द्राणाञ्च दुर्लभम्

आधाराधेययो सर्वब्रह्माण्डं पश्य सुन्दरि । आधारव्यतिरेकेण नास्त्याधे यस्यसम्भव
फलाधारश्च पुष्पश्च पुष्पाधारश्चपलवम् । स्कन्धश्च पलवाधार स्कन्धाधारस्तर्ह स्वयम्
वृक्षाधारोऽप्यङ्कुरश्च बीजशक्तिसमन्वित । अष्टिरेवाङ्कुराधारश्चाष्ट्याधारो वसुन्धरा ॥
शोषोवसुन्धराधार शेषाधारो हि कच्छप । घायुश्च कच्छपाधारो वाय्वाधारोऽहमेव च
ममाधारस्वरूपा त्व त्वयि तिष्ठामि शाश्वतम् ।

त्वञ्च शक्तिसमूहा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ २०६ ॥

त्व शरीरस्वरूपासि त्रिगुणाधाररूपिणी । तवात्माह निरीहश्च चेष्टावाश्च त्वया सह ॥
पुरुषाद्वीर्यमुत्पन्न वीर्यात् सन्ततिरेव च । तयोराधाररूपा च कामिनी प्रकृते फला ॥
विना देहेन कुत्रात्मा क शरीरविनात्मना । प्राधान्यञ्च द्वयोर्देवि विना द्वाभ्याकुतोभव
न कुत्राप्यावयोर्भेदो राधे ससारजीवयो । यत्रात्मा तत्र देहश्च न भेदो विनयेन किम्
यथा क्षीरे च धावत्य दाहिका च हुताशने ।

भूमौ गन्धो जले शैत्य तथा त्वयि मम स्थिति ॥ २१४ ॥

धावत्यदुग्धयोरैक्य दाहिकानलयोर्यथा । भूगन्धजलशैत्याना नास्ति भेदस्तथावयो ॥
मया विना त्व निर्जीवा चाद्रश्योऽह त्वया विना ।
त्वया विना भव कर्तुं नाल सुन्दरि निश्चितम् ॥ २१६ ॥

विना मृदा घट कर्तुं यथा नालकुलालक । विना स्वर्णस्वर्णकारोऽलङ्कारकर्तुंमक्षम
स्वयमात्मा यथा नित्यस्तथा त्व प्रकृति स्वयम् ।
सर्वशक्तिसमायुक्ता सर्वाधारा सनातनी ॥ २१८ ॥

मम प्राणसमा लक्ष्मीर्वाणी च सर्वमङ्गला । ब्रह्मेशानन्तधर्माश्च त्वमे प्राणाधिका प्रिया
समीपस्था इमे सर्वे सुरादेव्यश्चराधिके । एतेभ्योऽप्यधिकानोचेत्कथं वक्ष स्थलस्थिता
त्यजाश्रुमोक्षेण राधे भ्रान्तिञ्च निष्फला सति ।

विहाय शङ्का नि शङ्क वृषभानुग्रह व्रज ॥ २२१ ॥

कलावत्याश्च जठरे मासानां नव सुन्दरि । घायुना पूरयित्वा च गर्भं रोधय मायया ॥
दशमे समनुप्राप्ते त्वमाविर्भव भूतले । आत्मरूप परित्यज्य शिशुरूप विधाय च २२३

वायुनिःसरणे काले कलावत्याः समोपतः । भूमौ विवसनीभूय पतित्वा रोदिषिध्रुवम्
अयोनिसम्भवा त्वञ्च भवितागोकुले सति । अयोनिसम्भवोऽहञ्च नावयोर्गर्भसंस्थितिः
भूमिष्ठमात्रा तातो मां गोकुलं प्रापयिष्यति । तव हेतोर्गमिष्यामि कृत्वाकंसभयंछलम्
यशोदामन्दिरे माञ्च सानन्दं नन्दनन्दनम् । नित्यंद्रक्ष्यसिकल्याणि समाश्लेषणपूर्वकम्
स्मृतिस्ते भविता काले घरेण मम राधिके । स्वच्छन्दं विहरिष्यामि नित्यं वृन्दाघने घने
त्रिःसप्तशतकोटिभिर्गोपिभिर्गोकुलं व्रज । त्रयस्त्रिंशद्वयस्याभिः सुशीलादिभिरेव च ॥

संस्थाप्य संख्यारहिता गोपीर्गोलोक एव च ।

समाश्वास्य प्रयोधैश्च मितया च सुधागिरा ॥ २३० ॥

ब्रह्मसंख्यान् गोपालान् संस्थाप्यात्रैव राधिके ।

वसुदेवाश्रयं पश्चाद् यास्यामि मधुरां पुरीम् ॥ २३१ ॥

व्रजं व्रजन्तु क्रीडार्थं मम सङ्गे प्रियात् प्रियाः । बह्वानां गृहे जन्म लभन्तु गोपकोटयः
इत्येवमुक्ता श्रीकृष्णो विरराम च नारद । ऊर्पुर्देवाञ्च देव्यञ्च गोपा गोप्यञ्च तत्र वै ॥
ब्रह्मेशधर्मशेषाञ्च श्रीकृष्णं तं परात्परम् । शिवापरासरस्यत्यस्तुष्टुषुः परया मुदा ॥
भक्त्या गोपाञ्च गोप्यञ्च विरहञ्चरकातरा । तत्र संस्तूय श्रीकृष्णं प्रणेसुः प्रेमचिह्नलाः

प्राणाधिकं प्रियं फान्तं राधा पूर्णमनीरथा ।

परितुष्टाव भक्त्या च विरहञ्चरकातरा ॥ २३६ ॥

साश्रुपूर्णातिदीनाञ्च दृष्ट्वा राधां भयाकुलाम् । प्रयोधवसनं सत्यमुवाच तां हृदिःस्वयम्
श्रीकृष्ण उवाच ।

प्राणाधिके महादेवि स्थिरा भव भयं त्यज ।

यथा त्वञ्च तथाहञ्च का चिन्ता ते मयि स्थिते ।

किन्तु ते कथयिष्यामि किञ्चिद्देवास्त्यमङ्गलम् ॥ २३८ ॥

वर्षाणां शतकं पूर्णं त्पद्भिर्ज्जोदो मया सह । श्रीदामशापजन्येन कर्मभोगेन सुन्दरि ! ॥

भविष्यत्येव मम च मथुरागमनं ततः ॥ २४० ॥

तत्र भाराघतरणं पित्रोर्वन्धनमोक्षणम् । मालाकारतन्तुवायकुब्जिकलाञ्च मोक्षणम् ॥

घातयित्वा च यवनं मुचकुन्दस्य मोक्षणम् । द्वारकायाश्च निर्माणं राजसूयस्य दर्शनम्
 उद्वाहं राजकन्यानां सहस्राणाञ्च षोडश । दशाधिकशतस्यापि शत्रूणां वमनन्तथा ॥
 मित्रोपकरणञ्चैव चाराणस्याश्च दाहनम् । हरस्य जृम्भणं तत्र घाणस्य भुजकर्त्तनम् ॥
 पारिजातस्य हरणं यद् यत् कर्मान्यदेव च । गमनं तीर्थयात्रायां मुनिसङ्घप्रदर्शनम् ॥
 सम्भाषणञ्च बन्धूनां यत्सम्पादनं पितुः । शुभक्षणे पुनस्तत्र त्वया सार्द्धं प्रदर्शनम् ॥
 करिष्यामि च तत्रैव गोपिकानाञ्च दर्शनम् ।

तुभ्यमाध्यात्मिकं दत्त्वा पुनः सत्यं त्वया सह ॥ २४७ ॥

विद्वानिशमचिच्छेदो मया सार्द्धमतः परम् । भविष्यति त्वया सार्द्धं पुनरागमनं ब्रजे ॥
 कान्ते विच्छेदसमये वर्षाणां शतके सति । नित्यं संगीलनं स्वप्ने भविष्यति त्वया सह
 गतस्य द्वारकां त्वत्तो मम नारायणांशस्य (नस्य च) ;

शतवर्षान्तरे साध्याग्येताग्येव सुनिश्चितम् ॥ २५० ॥

भविष्यति पुनस्तत्र वने वासस्तवया सह । पुनः पित्रोश्च गोपीनां शोकसम्मार्जनं परम्
 कृत्वा भारघटरणं पुनरागमनं मम । त्वया सहपि गोल्लोकं गोपैर्गोपीभिरैव च ॥
 ममनारायणांशस्य घाण्याच्च पप्रया सह । वैकुण्ठगमनं राधे नित्यस्य परमात्मनः ॥ २५३
 श्येतद्वीपे धर्मगेहमंशानाञ्च भविष्यति । देवानाञ्चैव देवीनामंशा यास्यन्ति चाक्षयम् ॥

पुनः संस्थितिरनैव गोल्लोके मे त्वया सह ॥ २५४ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं भविष्यञ्च शुभाशुभम् । मया निरूपितं यत्तत् कान्ते केन निघार्यते
 इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः कृत्वा राधां स्ववक्षसि ।

तस्थी तस्थुः सुराः सर्वे सुरपत्न्यश्च विस्मिताः ॥ २५६ ॥

उवाच श्रीहरिर्दिधान् देवीञ्च समयोचितम् ।

देवा गच्छत कार्प्यायं स्वालयं विषयोचितम् ॥ २५७ ॥

गच्छ पार्यति किलासं सुतान्यांस्वामिना सह । मयानियोजितं कर्मसर्वकाले भविष्यति
 भविता कलया जन्म सर्वेषाञ्च ब्रजेश्वरि । श्रुद्राणाञ्चैव महतां देवं लभ्योदरं विना ॥
 प्रणम्य श्रीहरिं देवाः स्वालयं प्रययुर्मुदा । लक्ष्मीं सरस्वतीं भक्त्या प्रणम्य पुरयोत्तमम्

हरिणा योजितं कर्म कर्तुं व्यग्रा महीं ययुः ।

भर्त्रा निरूपितं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ॥ २६१ ॥

उद्यच्च राधिकां कृष्णो वृषभानुगृहं प्रज । गोपगोपीसमूहश्च सह पूर्वनिरूपितैः २६२

अहं यास्यामि मथुरां बभ्रुदेवालये प्रिये ।

पश्चात् कंसभयव्याजाद् गोकुलं तव सन्निधिम् ॥ २६३ ॥

राधा प्रणम्य श्रीकृष्णं रक्तपङ्कजलोचना । भृशं हरोद पुरतः प्रेमचिच्छेदकातरा ॥ २६४ ॥

स्थाप्यं स्थाप्यं क्वचित् यान्ती गत्वा गत्वा पुनः पुनः ।

पुनः पुनः समागत्य दशं दशं हरेर्मुखम् ॥ २६५ ॥

पयो बभ्रुधकोराभ्यां निमेषरहिता सती । शरत्पार्वणचन्द्राभस्तुधापूर्णं प्रभोर्मुखम् ॥

सतः प्रदक्षिणीकृत्य सतथा परमेश्वरी । प्रणम्य सतथा श्वैव पुनस्तस्थौ हरेः पुरः ॥

आजगमुर्गोपिकानाञ्च त्रिःसप्तशतकोटयः । आजगाम च गोपानां समूहः कोटिसंख्यकः

गोपानां गोपिकानाञ्चसमूहैःसह राधिका । पुनः प्रणम्य तं कृष्णं तत्र-तस्थौ च नारद!

त्रयस्त्रिंशद्वयस्याभिर्गोपीभिः सह सुन्दरी । गोपानाञ्च समूहैस्तु प्रणम्य प्रययौ महीम्

हरिणा योजितं स्थानं प्रजगमुर्नन्दगोकुलम् । वृषभानुगृहं राधा गोप्यो गोपगृहं ययुः

महीं गतायां राधायां गोपीभिः सह गोपकैः ।

बभूव श्रीहरिः सद्यः पृथिवीगमनोन्मुखः ॥ २७२ ॥

सम्भाष्य गोपान् गोपीञ्च नियोज्य स्वीयकर्मणि ।

मनोयायी जगन्नाथो जगाम मथुरां हरिः ॥ २७३ ॥

पूर्वं यद्वयदपत्यञ्च देवर्काचसुदेवयोः । बभूव सद्यस्तत् कंसः पुत्रपदकं जघान ह २७४

शेषांशं सप्तमं गर्भं माया चारुप्य गोकुले । निधाय रोहिणीगर्भे जगाम चाजया हरेः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणतारदसंवादे श्रीकृष्णजन्म-

खण्डे श्रीराधाकृष्णसम्वादवर्णनं नाम पष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्णजन्मपूर्वोपक्रमवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

तस्यातिरिक्तं कृष्णस्य महत्पुण्यकरं परम् । वद जन्म महाभाग जन्ममृत्युजरापहम् ॥
वसुदेवः कस्य पुत्रः कस्य कन्या च देवकी । कोवा वसुर्देवकी वा विधाहञ्च तयोर्वद
कथं जघान कंसस्तत्पुत्रपदकं सुदारुणः । कस्मिन् दिने हरेर्जन्म श्रोतुमिच्छामि तद्वद
नारायण उवाच ॥

कश्यपो वसुदेवश्च देवमाता च देवकी । पूर्वपुण्यफलेनैव प्रापतुः श्रीहरिं सुतम् ॥ ४ ॥
देवमीदृग्नारिपायां वसुदेवो महानभूत् । यस्योद्भवे देवसङ्घो वादयामास तुन्दुभिम् ॥
भानकञ्च महाहृष्टो श्रीहरेर्जनकञ्च तम् । सन्तः पुरातनास्तेन वदन्त्यानकतुन्दुभिम् ॥ ६ ॥
भाहुकस्य सुतः श्रीमान् यदुवंशसमुद्भवः । देवको ज्ञानसिन्धुश्च तस्य कन्या च देवकी
गर्गो यदुकुलाचार्यः सम्यग्धं वसुना सह ।

देवक्याः कारयामास विधिवच्च यथोचितम् ॥ ८ ॥

महासम्भृतसम्भारो वसुदेवाय सुक्षणे । उद्वाहे देवकीं तस्मै देवकः प्रददौ किल ॥ ९ ॥
अश्वानाञ्च सहस्राणि स्वर्णपात्राणि नारद । सालंकृतानां दासीनां शतानि सुन्दराणि च
नानाविधानि द्रव्याणि रत्नानि विविधानि च । मणिश्रेष्ठानि वज्राणि रत्नपात्राणि नारद
सद्रत्नभूषितां कन्यां शतचन्द्रसमप्रभाम् ।

त्रैलोक्यमोहिनीं धन्यां मान्यां श्रेष्ठाञ्च योषिताम् ॥ १२ ॥

रूपाधारां गुणाधारां सस्मितां धकलोचनाम् । नवसङ्गमयोग्याञ्च प्रोद्विन्नवयीधनाम्
तां गृहीत्वा रथे कृत्वा प्रस्थानमकरोत्तदा ॥ १३ ॥

कंसो हृष्टः सहचरो भगिन्युद्वाहकर्मणि ।

तस्या रथसमीपेवागच्छत्कंसोऽपि तत्क्षणात् ॥ १४ ॥

कंसं संवोध्य गगनेषाम् बभूवाशरीरिणी । कथं हृष्टोऽसिराजेन्द्र शृणु सत्यवचोदित
देवक्या अष्टमो गर्भा मृत्युहेतुस्तवैव हि ॥ १५ ॥

श्रुत्वायं देवकीकंसः खड्गहस्तो महाबलः । दैववाक्याद्वयात् कोपात् पापिष्ठो हन्तुमुद्य
तां हन्तुमुद्यतं दृष्ट्वा वसुदेवः सुपण्डितः । बोधयामास नीतिबो नीतिशास्त्रविशारदः
वसुदेव उवाच ।

राजनीतिं न जानासि शृणुमेवचनं हितम् । यशस्करञ्च दीपञ्च शास्त्रोक्तं समयोचित
अस्या पयादृमात् गर्भात् मृत्युध्येत् तव भूमिप ।

इमां हत्वा हि दुष्कीर्तिं करोषि नरकं च किम् ॥ १६ ॥

यथे च ध्रुवजन्तूनां हिंसकानाञ्च पण्डितः । कार्पापणं समुत्सृज्य मृत्युकाले प्रमुच्य
अहिंसकानां क्षुद्राणां यथे शतगुणं ध्रुवम् । प्रायश्चित्तं मृत्युकाले कथितं पद्मयोनिना
यथे विशिष्टजन्तूनां पश्वादीनाञ्च कामतः । ततः शतगुणं पापं निश्चितं मनुरग्रधीत् ।

नराणां म्लेच्छजातीनां यथे शतगुणं ततः ॥ २२ ॥

म्लेच्छानाञ्च शतानाञ्च यत् पापं लभते यथे । सच्छूद्रैकस्य च यथेतत् पापं लभते पुमान् ।
सच्छूद्राणां शतानाञ्च यत् पापं लभते यथे । तत्पापं लभते नूनं गोवधेनैव निश्चितः
गयां दशगुणं पापं ब्राह्मणस्य यथे भवेत् । विप्रहत्यासमं पापं स्त्रीयथे लभते नरः ॥ २५ ॥
विशेषतो हि भगिनी पोष्या या शरणागता । स्त्रीहत्याशतपापञ्च भवेत् तस्या यथे नृप
तपोजपञ्च दानञ्च पूजनं तीर्थदर्शनम् । विप्राणां भोजनं द्रोमं स्वर्गार्थं कुरुते नरः ॥ २७ ॥
जलधुदुधधत् सद्यं स्वप्नवदु भयद् भवम् । पश्यन्ति सततं सन्तो धम्मं कुर्यन्ति यदातः
भग्नीं (भगिनीं) च त्यज धर्मिष्ठ स्ववंशपद्मभास्कर ।

बुधाः कतिविधाः सन्ति सभायां पृच्छ तान् नृप ॥ २६ ॥

अस्याश्चेचाष्टमे गर्भे यदपत्यं भवेन्नम्रम् । वन्द्यो तुभ्यं प्रदास्यामि तेन मे किं प्रयोजनम्
अथवा यान्यपत्यानि भवन्ति भ्रान्तिनां वर । तानिसर्वाणि दास्यामि त्वत्तौने कौघः प्रियः
भगिनीं त्यज राजेन्द्र कन्यानुस्यां प्रियां तव । मिष्टान्नपानदानेन वर्द्धितामनुजां सदा
वसुदेवयवः ध्रुत्वा हत्वाज भगिनीं नृपः । वसुदेवः प्रियां नीत्वा जगाम निजमन्दिरम्

कमादपत्यपट्कञ्च यद् यद्भूतञ्च नारद ।

ददौ तस्मै वसुः सत्यात् स जघान क्रमेण तान् ॥ ३४ ॥

देवक्याः सप्तमे गर्भे कंसो रक्षां ददौ भिया । रोहिणीजठरे माया तमाकृष्य ररक्ष च ॥
रक्षकाः कथयामासुर्गर्भस्त्राघो बभूव ह । तस्माद् बभूव भगवन्नाम्ना सङ्कल्पेणः प्रभुः ॥ ३६ ॥

तस्या एवाष्टमो गर्भो वायुपूर्णो बभूव ह ॥ ३७ ॥

गते च नवमे मासि दशमे समुपस्थिते । दृष्टिं ददौ च गर्भे स भगवान् सर्वदर्शनः ॥ ३८ ॥
स्वयं रूपवती देवी सर्वासां योषितां वरा । बभूव दर्शनात् सद्यः सुन्दरी सा चतुर्गुणा
ददर्श देवकीं कंसः प्रफुल्लवदनेक्षणाम् । तेजसा प्रज्वलन्तीञ्च मायामिव विशोदश ॥ ४० ॥
उपोषितां संहतिञ्चैव यथा भूर्त्तिमतीमिव । दृष्ट्वा तामसुरेन्द्रञ्च विस्मयं परमं ययौ ॥
अस्माद्गर्भादपत्यञ्च मृत्युधीजं ममैव च । इत्येवमुक्त्वा कंसञ्च चक्रे रक्षां प्रयत्नतः ।

देवकीं वसुदेवञ्च सप्तद्वारे ररक्ष च ॥ ४२ ॥

पूर्णे च दशमे मासि गर्भः पूर्णो बभूव ह । बभूव सा चलस्पन्दा जङ्गरूपा च नारद ॥ ४३ ॥
गर्भे च वायुना पूर्णे निर्लिप्ते भगवान् स्वयम् । हृत्पद्मदेशे देवक्या ह्यधिष्ठानं चकार ह
सा विश्वम्भरणार्भा च मन्दिराभ्यन्तरे सती । उवासजङ्गरूपा च क्लेशयुक्ता बभूव ह ॥ ४५ ॥
उवास च क्षणं देवी क्षणमुत्थाय तिष्ठति । क्षणं व्रजति पादैकं क्षणं स्वपिति तत्र वै ॥
दृष्ट्वा च देवकी शीघ्रं वसुदेवो महामनाः ।

प्रसूतिसमयं दृष्ट्वा सस्मार हरिमीश्वरम् ॥ ४७ ॥

रत्नप्रदीपसंयुक्तमन्दिरे सुमनोहरे । स्थापयामास खड्गञ्च लौहं तोयं हुताशनम् ॥ ४८ ॥
मन्त्रज्ञञ्च नखञ्चैव बन्धुपत्नीर्मयाकुलः । विद्वांसं ब्राह्मणञ्चैव ततोऽन्यथञ्च सादरम् ॥ ४९ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तस्यां रात्रौ द्विप्रहरे गते । व्यासञ्च गगनं मेघैः क्षणद्युतिसमन्वितैः ॥ ५० ॥
चक्षुश्च घायकश्चेष्टा ययुर्निद्राञ्च रक्षकाः । अचेष्टिताश्च शयने मृता इव विचेतनाः ॥ ५१ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्रचाजग्मुस्त्रिदशेश्वराः । तुष्टुबुधर्ममहोशा गर्भस्थं परमेश्वरम् ॥ ५२ ॥

देवा ऊचुः ।

जगद्व्योनिरप्योनिस्त्यमनन्तोऽव्यय एव च । ज्योतिःस्वरूपोऽनघः सगुणो निर्गुणो महान्

भक्तानुरोधात् साकारो निराकारो निरुद्धः ।

स्वेच्छामयश्च सर्वेशः सर्वः सर्वगुणाश्रयः ॥ ५३ ॥

सुखदो दुःखदो दुर्गो दुर्जनान्तक एव च । निर्व्यूहो निखिलाधारो निःशङ्को निरुपद्रव
निरुपाधिश्च निर्लिप्तो निरीहो निधनान्तकः । स्वात्मारामः पूर्णकामो निर्दोषो नित्यएव च
सुभगो दुर्भगो पाप्मी दुराराध्यो दुरत्ययः । वेदहेतुश्च वेदाश्च वेदाङ्गो वेदविद्विभुः ।
इत्येवमुक्त्वा देवाश्च प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः । हर्षाश्रुलोचनाः सर्वेयवर्षुः कुसुमानि च ॥ ५८ ॥

द्विचत्वारिंशन्नामानि प्रातस्तथाय यः पठेत् ।

ब्रह्मा भक्तिं हरेर्दास्यं लभते चाच्छित्तं फलम् ॥ ५९ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते ब्रह्मादिकृतश्रीरुष्णस्तोत्रम् ।

नारायण उवाच ।

इत्येवं स्तवनं कृत्वा देवास्ते स्वालयं ययुः । बभूव जलवृष्टिश्च निश्चेष्टा मथुरा पुरी

घोरान्धकारनिविडा बभूव यामिनी मुने ॥ ६० ॥

गते सप्तमुहूर्त्ते तु चाष्टमे समुपस्थिते ॥ ६१ ॥

वेदातिरिक्ते दुर्हये सर्वोत्कृष्टे शुभेक्षणे । शुभग्रहेर्हृष्टलनेऽप्यदृष्टे चाशुभग्रहेः ॥ ६२ ॥
अर्द्धरात्रे समुत्पन्ने रोहिण्यामष्टमीतिथौ । जयन्तीयोगयुक्ते च चार्द्धचन्द्रोदये मुने

दृष्ट्वा दृष्ट्वा क्षणं लग्नं मीताः सूर्यादयस्तथा ।

गमने क्रममुल्लङ्घ्य जगुर्मूर्धनि शुभाशुभाः ॥ ६३ ॥

सुप्रसन्ना ग्रहाः सर्वे बभूवुस्तत्र संस्थिताः ।

एकादशस्थास्ते प्रीत्या मुहूर्त्तं धातुराज्ञया ॥ ६५ ॥

घवर्षुश्च जलधरा घवुर्पाताः सुशीतलाः । सुप्रसन्ना च पृथिवी प्रसन्नाश्च दिशो दश
ऋषयो मनवश्चैव यक्षगन्धर्वकिन्नराः । देवा देव्यश्च मुदिता ननृतुश्चाप्सरोगणाः
जगुर्गन्धर्वपतयो विद्याधर्यश्च नारद । सुखेन सुसुवर्णद्यो जज्वलुश्चानयो मुदा
नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे चानकाश्च मनोरमाः । प्रफुल्लपारिजातानां पुष्पवृष्टिर्वभूव ह ॥ ६६ ॥
जगाम सूतिकागेहं नारीरूपं विधाय भूः । जयशब्दः शंखशब्दो हृष्टिशब्दो बभूव ह ॥

कमादपत्यपट्कञ्च यदु यदुभूतञ्च नारद ।

ददौ तस्मै वसुः सत्यात् स जघान क्रमेण तान् ॥ ३४ ॥

देवक्याः सप्तमे गर्भे कंसो रक्षां ददौ भिया । रोहिणीजठरे माया तमारुण्य ररक्ष च ॥
रक्षकाः कथयामासुर्गर्भेन्नाथो यभूव ह । तस्माद् यभूव भगवन्नाम्ना सङ्कल्पणः प्रभुः ॥ ३६ ॥

तस्या एवाष्टमो गर्भो वायुपूर्णो यभूव ह ॥ ३७ ॥

गते च नवमे मासि दशमे समुपस्थिते । दृष्टिं ददौ च गर्भे स भगवान् सर्वदर्शनः ॥ ३८ ॥
स्वयं रूपयती देवी सर्वासां योषितां वरा । यभूव दर्शनात् सद्यः सुन्दरी सा चतुर्गुणा
ददर्श देवकीं कंसः प्रफुल्लवदनेक्षणाम् । तेजसा प्रज्वलन्तीञ्च मायामिव विशोदशः ॥ ४० ॥
उयोतिषां संहतिञ्चैव यथा मूर्त्तिमतीमिव । दृष्ट्वा तामसुरेन्द्रश्च विस्मयं परमं ययौ ॥
अस्माद्गर्भादपत्यञ्च मृत्युवीजं ममैव च । इत्येवमुक्त्वा कंसश्च चक्रे रक्षां प्रयत्नतः ।

देवकीं वसुदेवञ्च सप्तद्वारे ररक्ष च ॥ ४२ ॥

पूर्णे च दशमे मासि गर्भः पूर्णो यभूव ह । यभूव सा चलस्पन्दा जङ्गरूपा च नारदः ॥ ४३ ॥
गर्भे च वायुना पूर्णो निर्लिप्तो भगवान् स्वयम् । हृत्पद्मदेशे देवक्या ह्यधिष्ठानं चकार ह
सा विश्वम्भरगर्भा च मन्दिराम्भरतरे सती । उवासजङ्गरूपा च क्लेशयुक्ता यभूव ह ॥ ४५ ॥
उवास च क्षणं देवी क्षणमुत्थाय तिष्ठति । क्षणं व्रजति पादैकं क्षणं स्वपिति तत्र वै ॥
दृष्ट्वा च देवकी शीघ्रं वसुदेवो महामनाः ।

प्रसूतिसमयं दृष्ट्वा सस्मार हरिर्मेश्वरम् ॥ ४७ ॥

रत्नप्रदीपसंयुक्तमन्दिरे सुमनोहरे । स्थापयामास खड्गञ्च लोहं तोयं हुताशनम् ॥ ४८ ॥
मन्त्रज्ञञ्च नरञ्चैव चन्द्रपत्नीर्मयाकुलः । विद्वांसं ब्राह्मणञ्चैव ततोयन्धूञ्च सादरम् ॥ ४९ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तस्यां रात्रौ द्विप्रहरे गते । व्यासञ्च गगनं मेघैः क्षणद्युतिसमन्वितैः ॥ ५० ॥
चतुश्च पापचक्ष्रेण ययुर्निद्राञ्च रक्षकाः । अचेष्टिताश्च शयने मृता इव विचेतनाः ॥ ५१ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्रचाजमुस्त्रिदशेश्वराः । तुष्टुवुधर्ममब्रह्मेशा गर्भस्थं परमेश्वरम् ॥ ५२ ॥

देवा ऊचुः ।

जगदुयोनिरयोनिस्त्वमनन्तोऽन्यथ पथच । ज्योतिःस्वरूपोद्धानयः सगुणो निर्गुणो महान्

भक्तानुरोधात् साकारो निराकारो निरङ्कुशः ।

स्वेच्छामयश्च सर्वेशः सर्वः सर्वगुणाश्रयः ॥ ५४ ॥

सुखदो दुःखदो दुर्गो दुर्जनान्तक एव च । निर्व्यूहो निखिलाधारो निःशङ्को निरुपद्रव
निरुपाधिश्च निर्लिप्तो निरीहो निधनान्तकः । स्वात्मारामः पूर्णकामो निर्वोषो नित्यएव च
सुभगो दुर्भगो धाम्नी दुराराध्यो दुरत्ययः । वेदहेतुश्च वेदाश्च वेदाङ्गो वेदविद्भिः ॥
इत्येषमुक्त्वा देवाश्च प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः । हर्षाश्रुलोचनाः सर्वेष्वर्पुः कुसुमानि च ॥ ५८ ॥

द्विबत्वारिंशन्नामानि प्रातस्तथाय यः पठेत् ।

हृदां भक्तिं हरेर्दास्यं लभते पाञ्चितं फलम् ॥ ५९ ॥

इति श्रीब्रह्मर्षेयर्त्तं ब्रह्मादिकृतश्रीकृष्णस्तोत्रम् ।

नारायण उवाच ।

इत्येषं स्तवनं कृत्वा देवास्ते स्वालयं ययुः । यभूव जलवृष्टिश्च निःश्रेष्ठा मथुरा पुरी ॥

घोरान्धकारनिविडा यभूव यामिनी मुने ॥ ६० ॥

गते सप्तमुहूर्त्ते तु चाष्टमे समुपस्थिते ॥ ६१ ॥

वेदातिरिक्ते दुर्ज्ञेये सर्वोत्कृष्टे शुभेक्षणे । शुभप्रहर्हृष्टलग्नेऽप्यदृष्टे चाशुभप्रहः ॥ ६२ ॥

अर्द्धरात्रे समुत्पन्ने रोहिण्यामष्टमीतिथौ । जयन्तीयोगयुक्ते च चार्द्धचन्द्रोदये मुने ॥

दृष्ट्वा दृष्ट्वा क्षणं लग्नं भीताः सूर्यादयस्तथा ।

गमने क्रममुल्लङ्घ्य जग्मुर्मानं शुभाशुभाः ॥ ६४ ॥

सुप्रसन्ना ब्रहाः सर्वे यभूवुस्तत्र संस्थिताः ।

एकादशस्थास्ते श्रीत्या मुहूर्त्ते धातुराद्यया ॥ ६५ ॥

यवर्षुश्च जलधरा घवुर्वाताः सुशीतलाः । सुप्रसन्ना च पृथिवी प्रसन्नाश्च दिशो दश ।

ऋषयो मनवश्चैव यक्षगन्धर्वकिन्नराः । देवा देव्यश्च मुदिता ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।

जगुर्गन्धर्वपतयो विद्याधर्यश्च नारद । सुरेन सुसुवूर्णद्यो जज्वलुश्चानयो मुदा ।

नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गो चानकाश्च मनोरमाः । प्रकृत्युपाजितातानां पुष्पवृष्टिर्वभूव ह ॥ ६६ ॥

जगाम सृत्तिकागेहं नारीरूपं विधाय भूः । जयशब्दः शंखशब्दः । नृशिब्दो यभूव ह ॥ ७ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र पपात देवकी सती । निःससार च वायुश्च देवकीजठरात्ततः ॥७१॥

तत्रैव भगवान् कृष्णो दिव्यरूपं विधाय च ।

हृत्पद्मकोपाद् देवक्या हरिराविर्वभूव ह ॥ ७२ ॥

भतीचकमनीयञ्च शरीरं सुमनोहरम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥७३॥

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् । मणिरत्नेन्द्रसाराणां भूषणैश्च विभूषितम् ॥ ७४ ॥

नवीनतीरदृश्यामं शोभितं पीतधाससा । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्वितम् ॥ ७५ ॥

शारत्पार्यणचन्द्राख्यं विभ्याधरमनोहरम् । मयूरपुच्छचूडञ्च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥७६॥

त्रिभङ्गवक्रमध्यञ्च वनमालाविभूषितम् । श्रीवत्सयक्षसं चादकौस्तुभेन विराजितम् ॥

किशोरख्यसं शान्तं कान्तं ब्रह्मेशयोः परम् ॥ ७७ ॥

ददर्श वसुदेवश्च देवकीपुरतो मुने । तुष्टाव परया भक्त्या विस्मयं परमं ययौ ॥ ७८ ॥

पुढाक्षलियुतो भूत्वा भक्तिमन्नास्यकन्धरः ।

अश्रुपूर्णः सपुलको देवक्या च स्त्रिया सह ॥ ७९ ॥

वसुदेव उवाच ।

श्रीमन्तमिन्द्रियातीतमक्षरं निर्गुणं विभुम् । ध्यातासाध्यञ्च सर्वेषां परमात्मानमीश्वरम्

स्वेच्छामयं सर्वरूपं स्वेच्छारूपधरं परम् । निर्लिप्त परमं ब्रह्म बीजरूपं सनातनम् ॥८१॥

स्थूलात् स्थूलतरं व्याप्तमतिसूक्ष्ममदर्शनम् । स्थितं सर्वशरीरेषु साक्षिरूपमदृश्यकम् ॥

शरीरवन्तं सगुणमशरीरं गुणोत्करम् । प्रकृतिं प्रकृतीशञ्च प्राकृतं प्रकृतेः परम् ॥ ८३ ॥

सर्वेशं सर्वरूपञ्च सर्वान्तकरमव्ययम् ।

सर्वाधारं निराधारं निर्व्यूहं स्तौमि किं विभो ॥ ८४ ॥

अनन्तः स्तवनेऽशकौऽशक्ता देवी सरस्वती । यं स्तोतुमसमर्थश्चपञ्चवक्त्रःपङ्कजनः ॥

चतुर्मुखो वेदकर्त्ता यं स्तोतुमक्षमः सदा । गणेशो न समर्थश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥

ऋषयो देवताश्चैव मुनीन्द्रमनुमानवाः । स्वप्ने तेपामदृश्यञ्च त्वामेवं किं स्तुवन्ति ते

श्रुतयः स्तवनेऽशकाः किं स्तुवन्ति विपश्चित ।

विहायैवं शरीरञ्च वालो भवितुमर्हसि ॥ ८८ ॥

वसुदेवकृतं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । भक्तिदास्यमवाप्नोति श्रीकृष्णचरणान्बुजे ॥
 विशिष्टपुत्रं लभते हरिदासं गुणान्वितम् । सङ्कटं निस्तरेत् तूष्णं शत्रुभीत्याः प्रमुच्यते ॥
 इति श्री ब्रह्मवैवर्ते वसुदेवकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम् .

नारायण उवाच ।

वसुदेववचः श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम् । प्रसन्नवदनः धीमान् भक्तानुग्रहकातरः ॥
 श्रीकृष्ण उवाच ।

तपसाञ्च फलेनैव पुत्रोऽहं तव साम्प्रतम् । परं धृणुष्व भद्रन्ते भविष्यति न संशयः ॥
 पुरा तपस्विनां श्रेष्ठः सुतपास्त्वं प्रजापतिः । पत्न्यासहस्रतपस्विन्यातपसाराधितस्त्वया
 पुत्रो मत्सदृशस्तत्र दृष्ट्वा माञ्च धृतो वरः । मया दत्तो वरस्तुभ्यं मत्समो भविता सुतः
 वत्सा तुभ्यं वरं तात मनसालोच्य चिन्तितम् ।

मत्समो नास्ति भुवने पुत्रोऽहं तेन हेतुना ॥ ६५ ॥

तपसाञ्च प्रभावेण त्वमेव कश्यपः स्वयम् । सुतपा देवमातेयमदितिश्च पतिव्रता ॥ ६६ ॥
 अधुना कश्यपांशस्त्वं वसुदेवः पिता मम । देवकी देवमातेयमदितेरंशसम्भवा ॥ ६७ ॥
 त्वत्तोऽदित्यां धामनोऽहं पुत्रस्तेऽशीन सम्भवः ।

अधुना परिपूर्णोऽहं पुत्रस्ते तपसः फलात् ॥ ६८ ॥

मांवात्वं पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन वा पुनः । मां प्राप्तोऽसि महाप्राज्ञर्जीयन्मुकोभविष्यसि
 यशोदाभवनं शीघ्रं मां गृहीत्वा व्रजं व्रज । संस्थाप्यतत्रमांतात मायामावाय स्थापय ॥
 इत्युत्तवा श्रीहरिस्तत्र बालरूपो बभूव ह । नग्नं भूमी शयानश्च ददर्श श्यामलं सुतम् ॥
 दृष्ट्वा स बालकं तत्र मोहितो विष्णुमायया । किंपा कृत्यञ्च तन्द्रापामपूर्णं सृत्किमगृहे ॥

इत्युत्तवा वसुदेवश्च समालोच्य स्त्रिया सह ।

गृहीत्वा बालकं क्रोदे जगाम नन्दगोकुलम् ॥ १०३ ॥

गत्वा नन्दव्रजं शीघ्रं चिवेश सृत्किमगृहम् ।

ददर्श शयने न्यस्तां यशोदां निद्रयान्विताम् ।

निद्रान्वितश्च नन्दश्च सर्वं तत्र गृहे स्थितम् ॥ १०४ ॥

ददर्श चालिकां नगनां तप्तकाञ्चनसन्निभाम् । ईषद्वास्यप्रसन्नास्यां पश्यन्तीं गृहशेखरम्
तां दृष्ट्वा वसुदेवश्च विस्मयं परमं ययौ ॥ १०६ ॥

संस्थाप्य तत्र पुत्रश्च कन्यामादाय सत्त्वरम् ।

जगाम मथुरां त्रस्तः स्वकान्तासूतिकागृहम् ॥ १०७ ॥

स्थापयामास तत्रैव महामायाञ्चचालिकाम् । रोदधमानां तामेव दृष्ट्वा त्रस्ता च देवकी
रोदनेनैवसावाला बोधयामास रक्षकान् । उत्थाय रक्षकाः शीघ्रंजगृह्णन्चालिकां तदा ॥

गृहीत्वा चालिकां ते च प्रजग्मुः कंससन्निधिम् ।

जगाम देवकी पश्चात् वसुदेवश्च शोकतः ॥ ११० ॥

दृष्ट्वा च चालिकां कंसो नातिद्वयो महामुने । रोदधमानां कल्पाणीं सह्या न यभूव ॥
तां गृहीत्वा च पापाणे हन्तुं यान्तं सुदारुणम् । ऊचतुर्वसुदेवश्च देवकी परमादरम् ॥
भो भो कंस नृपश्रेष्ठ नीतिशास्त्रविशारद । निबोध वाक्यं सत्यञ्च नीतियुक्तं मनोहरम्
हत्वाद्ययोः पुत्रपदकं दद्या ते नास्ति चान्यथ । अधुना चाष्टमे गर्भे चालिकामवलं मम
हत्वा किं ते महैश्वर्य्यं भविष्यति महीतले । श्रीमेव हन्तुमवला किं क्षमा रणमूर्धनि ॥
इत्येवमुक्त्वा तं वसुदेवको च सभातले । रुरीद पुरतस्तत्र कंसस्य च दुरात्मनः ११६
कंसस्तयोर्वचः श्रुत्वा तामुवाच सुदारुणः । शृणु वाक्यं मर्दायञ्चनि बोधबोधयामि ते
कंस उवाच ।

तृणेन पर्वतं हन्तुं शक्तो धाता च दैवतः ।

कीटेन सिंहशार्दूल मशकेन गजं तथा ॥ ११८ ॥

शिशुना च महावीरं महान्तं क्षुद्रजन्तुभिः । मूषिकेण च मार्जारं मण्डुकेन भुजङ्गमम् ॥

एवं जन्तेन जनकं मध्येणैव च भक्षकम् । वह्निना च जलं नष्टं वह्निशुष्कतृणेन च ॥

पीताः सप्त समुद्राश्च द्विजेनैकेन जह्नुना । धातुर्गतिर्विचित्रा च दुर्ज्ञेया भुवनत्रये ॥

देवेन चालिका नष्टुं मां समर्था भविष्यति ।

चालिकाञ्च पचिष्यामि नात्र कालविचारणा ॥ १२२ ॥

इत्येवमुक्त्वा कंसश्च गृहीत्वा बालिकां तदा । हन्तुमारब्धवान् कंसस्तमुवाच वसुस्तदा
 वृथा हिंसितवान् राजन् देहि बालां कृपानिवे ॥ १२३ ॥
 स तच्छ्रुत्वा विचारयः कंसस्तुष्टो महामुने । संवोधयन्ती तत्रैववाग्वमूवाशरीरिणी ॥
 हे कंस हंसि कां मूढ न विज्ञाय धिधेर्गतिम् ।
 कुत्रचित्से निहन्तास्ति काले व्यक्तो भविष्यति ॥ १२५ ॥
 श्रुत्वैवं दैवचाणीञ्च तत्याज बालिकां नृपः ॥ १२६ ॥
 वसुदेवो देवकी च तामादाय मुदान्वितः । जग्मतुःस्वगृहं तौ च कन्यां कृत्वा स्वयक्षसि
 मृतामिव पुनः प्राप्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् । सा परा भगिनी विप्रकृष्णस्य परमात्मनः
 एकान्तोऽन विख्याता पार्वत्यंशसमुद्भवा ॥ १२८ ॥
 वसुस्तां द्वाष्कायान्तु क्वमिष्युद्राहकर्मणि । ददौ दुर्वाससे भक्त्या शङ्करांशायभक्तिः
 एवं निगदितं सर्वं कृष्णजन्मानुकीर्तनम् । जन्ममृत्युजराविघ्नं सुखदं पुण्यदं मुने ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे
 श्रीकृष्णजन्मखण्डे श्रीकृष्णजन्मानुकीर्तनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः

जन्माष्टमीव्रतमाहात्म्यकथनम् ।

नारद उवाच ।

जन्माष्टमीव्रतं ब्रूहि व्रतानां व्रतमुत्तमम् । फलं जयन्तीयोगस्य सामान्येन च साम्प्रतम् ॥
 को वा दोषोऽप्यकरणे भोजने वा महामुने । उपवासफलं किंवाजयन्त्याञ्जसुसम्मतम्
 व्रतपूजाविधानञ्च संयमस्य च साम्प्रतम् । उपवासपारणयोः सुविचार्य पदं प्रभो ! ॥
 नारायण उवाच ।
 कृत्वा हविष्यं सप्तम्यां संयतः पारणे तथा । अरुणीदयवेलायां समुत्थाय परंऽहनि ॥

प्रातःकृत्यं संविधायस्नात्वासङ्कल्पमाचरेत् । प्रतोपवासयोर्ब्रह्मन् श्रीकृष्णप्रीतिहेतुकम्
मन्वादिदिवसे प्राप्ते यत् फलं स्नानपूजनैः । फलं भाद्रपदेऽष्टम्यां भवेत्कोटिगुणं द्विज

तस्यां तिथौ चारिमात्रं पितृणां यः प्रयच्छति ।

गयाश्राद्धं कृतं तेन शताब्दं नात्र संशयः ॥ ७ ॥

स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा निर्माय सूतिकागृहम् ।

लौहखड्गं घह्निजालैर्युक्तं रक्षकसङ्कैः ॥ ८ ॥

तत्र द्रव्यं बहुविधं नाङ्गीच्छेदनकर्त्तनम् । घात्रीस्वरूपां नारीञ्च यत्नतःस्थापयेद्बुधः ॥

पूजाद्रव्याणि चारुणि सोपचाराणि पोडश ।

फलान्यष्टौ च मिष्टानि द्रव्याण्येव हि नारद ॥ १० ॥

जातीफलञ्च कक्कोलं दाडिमं श्रीफलन्तथा । नारिकेलञ्च जम्बीरं कूष्माण्डञ्च मनोहरम्

आसनं वसनं पादं मधुपर्कं तथैव च । अर्घ्यमाचमनीयञ्च स्नानीयं शयनन्तथा ॥ १२ ॥

गन्धपुष्पञ्च नैवेद्यं ताम्बूलमनुलेपनम् । धूपदीपौ भूषणञ्च सोपचाराणि पोडश ॥ १३ ॥

पादप्रक्षालनं कृत्वा धृत्या धीते च वात्सली ।

आचम्य चासने स्थित्वा स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ १४ ॥

घटस्यारोपणं कृत्वा सम्पूजय पञ्च देवताः । घटे ह्यावाहनं कृत्वा श्रीकृष्णं परमेश्वरम्

चतुर्देवं देवकीञ्च यशोदां नन्दमेव च । रोहिणीं घलदेवञ्च षष्ठीं देवीं चतुन्धराम् ॥ १६ ॥

रोहिणीं ब्राह्मणीञ्चैव ह्यष्टमीं स्थानदेवताम् ।

अश्वत्थाम्ना सह बलिं हनूमन्तं विभीषणम् ॥ १७ ॥

कृपं परशुरामञ्च व्यासदेवं मृकण्डिकम् । सर्वस्यावाहनं कृत्वा ध्यानं कुर्याद्वरेस्तथा

पुष्पकं मस्तके न्यस्य पुनर्ध्यायेद्विचक्षणः । ध्यानञ्च सामवेदोक्तं शृणु यक्ष्यामि नारद

ब्रह्मणा कथितं पूर्वं कुमाराय महात्मने ॥ १९ ॥

बालं नीलाम्बुदाभमतिशयदचिरं स्मेरवक्त्राम्बुजाभं

ब्रह्मेशानन्तधर्मैः कति कति दिवसैः स्तूयमानं परं यत् ।

ध्यानासाध्यमृदीन्द्रेर्मुनिमनुजवरैः सिद्धसङ्क्षेपसाध्यं

योगीन्द्राणामचिन्त्यमतिशयमनुलं साक्षिरूपं भजेऽहम् ॥ २० ॥

ध्यात्वा पुष्पञ्चदत्त्वातुतत्सर्वं मन्त्रपूर्वकम् । दत्त्वाद्यतीवतंकुर्प्यात्शृणुमन्त्रं यथाक्रमम्
आसनं सर्वशोभाढ्यं सद्रत्नमणिनिर्मितम् । विचित्रितञ्च चित्रेण गृह्यतां शोभनं हरे ॥
वसनं वह्निशुद्धञ्च निर्मितं विश्वकर्मणा । प्रतप्तस्वर्णस्रचितं वसनं गृह्यतां हरे ॥ २३ ॥
पादप्रक्षालनार्थञ्च स्वर्णपात्रस्थितं जलम् । पवित्रं निर्मलं चारुपुष्पं पाद्यञ्च गृह्यताम् ॥
मधु सर्पिर्दधिक्षीरं शर्करासंयुतं परम् । स्वर्णपात्रस्थितं देयं स्नानार्थं गृह्यतां हरे ॥ २५ ॥
वूर्वाक्षितं शुक्लपुष्पं स्वच्छतोयसमन्वितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीसहितं गृह्यतां हरे ॥ २६ ॥

सुस्वादु स्वच्छतोयञ्च वासितं गन्धवस्तुना ।

शुद्धमाचमनार्हञ्च गृह्यतां परमेश्वर ॥ २७ ॥

गन्धद्रव्यसमायुक्तं विष्णुतैलं सुवासितम् । आमलक्या द्रवञ्चैव स्नानीयं गृह्यतां हरे ॥
सद्रत्नमणिसारेण रचितां सुमनोहराम् । छादितां सूक्ष्मवस्त्रेण शय्याञ्च गृह्यतां हरे ॥

सचूर्णो वृक्षभेदानां मूलानां द्रवसंयुतः ।

कस्तूरीरससंयुक्तो गन्धोऽयं गृह्यतां हरे ॥ ३० ॥

पुष्पं सुगन्धिसंयुक्तं घनस्पतिसमुद्रयम् । सुप्रियं सर्वदेवानां गृह्यतां परमेश्वर ॥ ३१ ॥

शर्करास्वस्तिकाक्षञ्च मिष्टद्रव्यसमन्वितम् । सुपक्वफलसंयुक्तं नैवेद्यं गृह्यतां हरे ॥ ३२ ॥

शीतलं शर्करायुक्तं क्षीरं स्वादु सुपक्वकम् । लङ्गुलं मोदकञ्चैव सर्पिर्क्षीरं गुडं मधु

नवोद्भूतं दधि तप्तं नैवेद्यं गृह्यतां हरे ॥ ३३ ॥

ताम्रमूलं भोगसारञ्च कर्पूरादिसमन्वितम् । मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां परमेश्वर ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् । आवीरचूर्णं रुचिरं गृह्यतां परमेश्वर ॥ ३५ ॥

तलभेदरसोत्कर्षो गन्धयुक्ताग्निना सह । सुप्रियः सर्वदेवानां धूपोऽयं गृह्यतां हरे ॥ ३६ ॥

धोरान्धकारनाशकहेतुरेव शुभावहः । सुप्रदीपो दीप्तिकरो दीपोऽयं गृह्यतां हरे ॥ ३७ ॥

पवित्रं निर्मलं तोयं कर्पूरादिसुवासितम् ।

जीघनं सर्वजीवानां पानार्थं गृह्यतां हरे ॥ २८ ॥

नानापुष्पसमायुक्तं प्रथितं सूक्ष्मतन्तुना । शरीरभूषणवरं माल्यञ्च प्रतिगृह्यताम् ॥

दत्त्वा देयानि द्रव्याणि पूजोपयोगितानि च । व्रतस्थानस्थितं द्रव्यं हरये देयमेव च ॥
 फलानि तरुवीजानि स्वादूनि सुन्दराणि च । वंशवृद्धिकरण्येव गृह्यतां परमेश्वर ॥४१॥
 आवाहितांश्च देवांश्च प्रत्येकंपूजयेद् व्रती । संपूज्य भक्तिभावेन दद्यात् पुष्पाञ्जलित्रयम्
 सुनन्दनन्दकुसुदान् गोपान् गोपीश्च राधिकाम् ।

गणेशं कार्तिकेयञ्च ब्रह्माणञ्च शिवं शिवाम् ॥ ४३ ॥

लक्ष्मी सरस्वतीञ्चैव दिक्पालांश्च ब्रह्मांस्तथा । शेषं सुदर्शनञ्चैव पार्षदप्रघरांस्तथा
 संपूज्य सर्वदेवांश्च प्रणम्य दण्डवद् भुवि । ब्राह्मणेभ्यश्च नैवेद्यं दत्त्वा दद्याच्च दक्षिणाम्
 कथाञ्च जन्माध्यायोकां शृणुयाद्भक्तिभावतः ।

तदा कुशासने स्थित्वा कुर्याज्जागरणं व्रती ॥ ४६ ॥

प्रभाते चाह्निकं कृत्वा संपूज्य श्रीहरिं मुदा ।

ब्राह्मणान् भोजयित्वा च कुर्यात् श्रीहरिकीर्तनम् ॥ ४७ ॥

नारद उवाच ।

व्रतकालव्ययस्थाञ्च वेदोकां सर्वसम्मताम् । वेदार्थञ्च समालोक्य संहिताञ्च पुरातनीम्
 उपवासे जागरणे व्रते वा किं फलं भवेत् । किं वा पापं तत्र भुक्त्वा च वेदविदां घर
 नारायण उवाच ।

अष्टमीपादमैकन्तु राज्यर्द्धे यदि दृश्यते । स एव मुख्यकालश्च तत्र जातः स्वयं हरिः ॥
 जयं पुण्यञ्च कुरुते जयन्ती तेन सास्मृता । तत्रोपोष्यव्रतं कृत्वा कुर्याद्जागरणंबुधः
 सर्वापघादःकालोऽयं प्रधानः सर्वसम्मतः । इति वेदविदां वाणी चेत्युक्ता वेधसा पुरा
 तत्र जागरणं कृत्वा यश्चोपोष्य व्रतं चरेत् ।

कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ५३ ॥

वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंहिताष्टमी । सा संक्षीणि न कर्तव्या सप्तमी संहिताष्टमी ॥
 आविद्धायान्तु ऋक्षायां जातो देवकीनन्दनः । वेदवेदाङ्गगुप्ते च विशिष्टे मङ्गले क्षणे ।
 न्यतीति रोहिणीऋक्षे व्रती कुर्याच्च पारणम् ॥ ५५ ॥

तिथ्यन्ते च हरिं स्मृत्वा कृत्वा देवासुरार्चनम् । पारणं पावनं पुंसां सर्वपापप्रणाशनम्

उपवासाद्भूतञ्च फलदं शुद्धिकारणम् । सर्वेष्वेवोपवासेषु दिवापारणमिष्यते ॥५७॥

अन्यथा फलहानिः स्याद् कृते धारणपारणे ॥ ५८ ॥

न रात्रौ पारणं कुर्याद्भूते वै रोहिणीव्रतात् ।

निशायां पारणं कुर्याद्भूतं वर्जयित्वा महानिशाम् ॥ ५९ ॥

पूर्वाह्ने पारणं शस्तं कृत्वा विमसुरार्चनम् । सर्वेषां समस्तकुर्याद्भूते वै रोहिणीव्रतम्

युधसोमसमायुक्ता जयन्ती यदि लभ्यते । न कुर्याद्भूतं गर्भवासञ्च तत्र कृत्वा व्रतं व्रती

उदये चाष्टमी किञ्चिन्नवमी सकला यदि । भवेद् युधेन्दुसंयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता ॥

अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वा न लभ्यते । व्रती च तद् व्रतं कृत्वा पुंसां फोटीः समुद्धरेत्

नृणां विना व्रतेनापि भक्तानां हीनसम्पदाम् ।

कृतेनैवोपवासेन प्रीतो भवति माधवः ॥ ६४ ॥

भक्त्या नानोपचारेण रात्रौ जागरणेन च ।

फलं ददाति दैत्यारिर्जयन्तीव्रतसम्भवम् ॥ ६५ ॥

वित्तशाठ्यमकुर्वाणः सम्पत्फलमवाप्नुयात् । कुर्वाणः वित्तशाठ्यञ्च लभते सद्रूपं फलम्

अष्टम्यामथ रोहिण्यां न कुर्यात्पारणं बुधः । इत्यात् पूर्ववृत्तं पुण्यमुपवासार्जितं फलम्

तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रञ्च चतुर्गुणम् । तस्मात्प्रयत्नतः कुर्यात् तिथिभान्तेव पारणम्

महानिशायां प्राज्ञायां तिथिभान्तं यदा भवेत् । तृतीयेऽङ्घ्रि मुनिश्रेष्ठ पारणं कुरुते व्रती ॥

पण्मुहूर्ते व्यतीते तु रात्रावेव महानिशा । लभते ब्रह्महत्याञ्च तत्र भुक्त्वा च नारद ॥ ७० ॥

गोमांसधिण्मूत्रसमं तामूलञ्च फलं जलम् ।

पुंतामभक्ष्यं शुद्धायामोदनस्यापि का कथा ॥ ७१ ॥

त्रियामां रजनीं प्रादुस्त्यक्त्वा यन्तचतुष्टयम् । दण्डानां तदुभे सन्ध्ये द्विसाद्यन्तसंज्ञिते

जन्माष्टम्याञ्च शुद्धायां कृत्वा जागरणं व्रतम् । शतजन्मवृत्तात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः

जन्माष्टम्याञ्च शुद्धायामुपोष्य केवलं नरः । अश्वमेधफलं तस्य व्रतं जागरणं विना ॥

यद्वाल्ये यच्च कौमारे यौवने यच्च पार्दके । सप्तजन्मवृत्तात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः

धौरुणजन्मदियसे यच्च भुङ्क्ते नराधमः । स भवेन्मातृगामी च ब्रह्महत्याशतं लभेत्

कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम् ।

अनर्हश्चाशुचिः शश्वत् दैवे पैत्रे च कर्मणि ॥ ७७ ॥

अन्ते पसेत् कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरो । कृमिभिः शूलतुल्यैश्च तीक्ष्णदंष्ट्रैश्च भक्षित-
पापी ततः समुत्थाय भारते जन्म चेष्टमेत् । पष्टिचर्पसहस्राणि विष्टायाञ्च कृमिर्भवेत् ॥
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः । श्वापदं शतजन्मानि शृगालः शतजन्मसु
सप्तजन्मसु सर्पश्च काकश्च सप्तजन्मसु ॥ ८० ॥

ततो भवेन्नरोमूको गल्लकुष्टी सदाऽऽतुरः । ततोभवेत् पशुघ्नश्च व्यालग्राही ततोभवेत्
तदन्ते च भवेद्दस्युर्धर्महीनो नरघ्नकः ॥ ८२ ॥

ततो भवेत् स रजकस्तैलकारस्ततो भवेत् । ततो भवेद्देवलश्च ब्राह्मणश्च सदाशुचिः ॥
उपवासात्ममर्थश्चेदेकं विप्रश्च भोजयेत् । तावन्नानि वा दद्याद् यद्भुक्तं द्विगुणं भवेत्
सहस्रसम्मितां देवीं जपेद् वा प्राणसंयमम् ।

कुप्याद् द्वादशसंख्याकान् यथार्थं तद् व्रते नरः ॥ ८५ ॥

इत्येवं कथितं वत्स धृतं यद्गर्भवन्नतः । व्रतोपवासपूजानां विधानमकृते च यत् ॥ ८६ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणभारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे जन्माष्टमीवत-
पूजोपवासनिरूपणं नामाष्टमोऽध्यायः ।

नवमोऽध्यायः

यशोदानन्दयोः पूर्वजन्मवृत्तान्तकथनम् ।

नारद उवाच ।

संस्थाप्य गोकुलेकृष्णं यशोदामन्दिरेषु । जगाम स्वगृहंनन्दः किं चकारसुतोत्सवम्
किं चकार हरिस्तत्र कतिचर्पस्यितिर्बिभोः ।
बालक्रीडनकं तस्य वर्णय क्रमशः प्रभो ॥ ३ ॥

पुरा कृता या प्रतिज्ञा गोलोके राधया सह । तत् कृतं केन विधिना प्रतिज्ञापालनं वने
कीदृग् वृन्दावनं रासमण्डलं किंविधंचद । रासक्रीडां जलक्रीडां संव्यस्य वर्णय प्रभं
नन्दस्तपः किं चकार यशोदा वाथ रोहिणी । हरेः पूर्वञ्च हलिनः कुत्र जन्म यभूषह
पीयूषखण्डमालयानमपूर्वं श्रीहरैः स्मृतम् । विशेषतः कविमुखे काव्यं नूतनं पदे पदे
स्वरासमण्डलक्रीडां वर्णयस्व त्वमेव च । परोक्षवर्णनं काव्यं प्रशस्तं दृश्यवर्णनम्
श्रीकृष्णो भगवान् साक्षाद् योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ।

यो यस्यांशः स तु जनस्तस्यैव सुप्रतः सुखी ॥ ८ ॥

त्ययैव वर्णितौ पादौ विलीनौ ॥ युषां हरे ।

साक्षाद् गोलोकनाथांशस्त्वमेव तत्समो महान् ॥ ९ ॥

नारायण उवाच ।

ब्रह्मेशोपविन्नेशाः कुर्मो धर्मोऽयमेव च । नरश्च कार्तिकेयश्च श्रीकृष्णांशा धर्यं नव ।

अहो गोलोकनाथस्य महिमा केन वर्ण्यते ।

यं स्वयं नो विजानीमो न वेदाः किं विपश्चितः ॥ ११ ॥

शूकरो वामनः कल्की दौढः कपिलमीनकौ । एतेवांशाः कलाध्यान्ये सन्त्येव कतिधामुं
पूर्णौ नृसिंहो रामश्च श्वेतद्वीपधिराद्विभुः । परिपूर्णतमः कृष्णो वैकुण्ठे गोकुले स्वयम्
वैकुण्ठे कमलाकान्तो रूपभेदाचतुर्भुजः । गोलोकगोकुले राधाकान्तोऽयं द्विभुजः स्वयम्
अस्यैव तेजो नित्यञ्च चित्ते कुर्वन्ति योगिनः । भक्ताः पादाम्बुजंतेजः कुतस्तेजस्विनं धिन

शृणु विप्र वर्णयामि यशोदानन्दयोस्तपः ।

रोहिण्याश्च यतो हेतोर्ददृशुस्ते हरेर्मुग्धम् ॥ १६ ॥

वसूनां प्रवरो नन्दो नागना द्रोणस्तपोधनः । तस्यापत्नीधरासाध्वीयशोदासा तपस्विर्न
रोहिणी सर्पमाता च कद्रुश्च सर्पकारिणी । एतेषां जन्मचरितं निबोध कथयामि ते ।
एकदा च धराद्रोणौ पर्वते गन्धमादने । पुण्यदे भारते वर्षे गौतमाश्रमसन्निधौ ॥ १६ ॥
चक्रतुश्च तपस्तत्र वर्षाणामयुतं मुने । कृष्णस्य दर्शनार्थञ्च निर्जने सुप्रभातटे ।

न ददर्श हरिं द्रोणो धरा चैव तपस्विनी ॥ २० ॥

कृत्वाऽग्निकुण्डं वैराग्यात् प्रवेष्टुं समुपस्थितौ ॥ २१ ॥

तौ मर्तुकामौ ब्रूयाच्च वाग्चभूवाशरोरिणी । द्रक्ष्यथःश्रीहरिं पृथ्व्यां गोकुले पुत्ररूपिणम्
जन्मान्तरे वसुध्रेष्ठ दुर्दर्शं योगिनां विभुम् । ध्यानासाध्यञ्च विदुषां ब्रह्मादीनाञ्चवन्दितम्
श्रुत्वैवं तज्जराद्रोणीं जन्मतुः स्वालयं सुखात् । लब्ध्यानुभारतेजसं दृष्टं ताम्ब्यां हरेर्मुखात्
यशोदानन्दयोरेव कथितं चरितं तव । सुगोप्यं देवतानाञ्च रोहिणीचरितं श्रृणु ॥ २५ ॥

एकदा देवतामाता पुष्पोत्सवदिने सती ।

विज्ञापनञ्चरद्वारा चकार कश्यपं मुने ॥ २६ ॥

सुस्ताता सुन्दरी देवी रत्नालङ्कारभूषिता । चकार वेशं विविधं वदशं दर्पणे मुखम् ॥
कस्तूरीबिन्दुना सान्नं सिन्दूरबिन्दुसंयुतम् । रत्नकुण्डलशोभाढ्यं पद्मभरणभूषितम् ॥
गजमौक्तिकसंयुक्तं नासाग्रं सुमनोहरम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम् ।

एकधूमङ्गिसंयुक्तं विचित्रकजलोज्ज्वलम् ॥ २७ ॥

एकदाडिमवीजमदन्तराजिविराजितम् ।

एकविम्याधरोष्ठञ्च सस्मितं सुन्दरं सदा ॥ ३० ॥

अतीव कमनीयञ्च मुनीन्द्रचित्तमोहनम् ॥ ३१ ॥

एवम्भूतं मुखं ब्रूयात् सुन्दरी स्वगृहे स्थिता । पश्यन्ती पतिमार्गञ्च कामबाणप्रयोजिता

शुधाव घातार्तामदितिः कश्यपं कद्रुसंयुतम् ।

रत्नभाषलमारम्भे तस्या वक्षःस्थले स्थितम् ॥ ३३ ॥

श्रुत्वा चुकोप साध्वी सा इताशा रतिकातरा ।

न शशाप पतिं प्रेम्णा शशाप सर्पमातरम् ॥ ३४ ॥

न देवालययोग्या सा धर्मिष्ठा धर्मनाशिनी ।

दूरं गच्छन्तु स्थल्लोकान् यातु योनिञ्च मानवीम् ॥ ३५ ॥

श्रुत्वैवं सा चरद्वारा शशाप देवमातरम् । सा चैवं मानवीं योनिं यातु मर्त्यं जरायुताम्
कश्यपो बोधयामास कद्रुञ्च सर्पमातरम् । काले यास्यसि मर्त्यञ्च मया सह शुचिस्मिते

त्यज्य भीतिं लभ मुदं द्रक्ष्यसि श्रीहरेर्मुखात् ॥ ३७ ॥

एवमुक्त्वा कश्यपश्च प्रजगामादितेष्टुहम् । वाञ्छां पूर्णाञ्च तस्याश्च चकारभगवान्विशुः ।

ऋतौ तत्र महेन्द्रश्च बभूव ह सुर्यभः ॥३६॥

भदितिर्देवकी चैव सर्पमाता च रोहिणी ।

कश्यपो वसुदेवश्च श्रीकृष्णजनको महान् ॥ ४० ॥

रहस्यं गोपनीयञ्च सर्वं निगदितं मुने । अधुना बलदेवस्य जन्माख्यानं मुने शृणु ॥

अनन्तस्याग्रमेयस्य सहस्रशिखः प्रभोः ॥ ४१ ॥

रोहिणी वसुदेवस्य भार्यारत्नश्च प्रेयसी ॥ ४२ ॥

जगाम गोकुलं साध्वी वसुदेवानया मुने । सङ्कल्पस्य रक्षार्थं कंसभीता पलायिता ॥

देवस्याः सप्तमं गर्भं भावा कृष्णाग्रया तदा । रोहिण्या जठरे तत्र स्थापयामास गोकुले

संस्थाप्य च तदा गर्भं कैलासं सा जगाम ह ॥ ४४ ॥

दिनान्तरे कतिपये रोहिणी नन्दमन्दिरे ॥ ४५ ॥

सुपाव पुत्रं कृष्णांशं तप्तरोप्याभमीश्वरम् । ईषद्भास्यं प्रसन्नास्यं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा

तत्सपैव जन्ममात्रेण देवाः प्रमुदिरे तदा । स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुरानका मुरजादयः ॥

जयशब्दं शङ्खशब्दं चकुर्वेद्या मुदान्विताः ॥ ४७ ॥

नन्दो हृष्टो ब्राह्मणेभ्यो धनं बहुविधं ददौ ।

बिच्छेद नाडी धात्री च स्नापयामास बालकम् ॥ ४८ ॥

जयशब्दं जगुर्गोप्यः सर्वाभरणभूषिताः । परपुत्रोत्सवं नन्दश्चकार परमादरात् ॥४९॥

ददौ यशोदा गोपीभ्यो ब्राह्मणीभ्यो धनं मुदा । नानाविधानिद्रव्याणि सिन्दूरतेलमेघच

इत्येवं कथितं वत्स यशोदानन्दयोस्तपः । जन्माख्यानञ्च हलिनो रोहिणीचरितं तथा

अधुना वाञ्छनीयन्ते नन्दपुत्रोत्सवं शृणु । सुखदं मोक्षदं सारं जन्ममृत्युजरापहम्

मङ्गलं कृष्णचरितं वैष्णवानाञ्च जीवनम् । सर्वाशुभविनाशञ्च भक्तिदास्यप्रदं हरेः ॥५३॥

वसुदेवश्च श्रीकृष्णं संस्थाप्यनन्दमन्दिरे । गृहीत्वा बालिकां हृष्टो जगाम निजमन्दिरम्

कथितं चरितं तस्याः श्रुतं यत् सुपदं मुने । अधुना गोकुले कृष्णचरितं शृणु मङ्गलम्

वसुदेवे गृहे याते यशोदा नन्द एव च । मङ्गले स्तिकागारे जयागारे जयान्विते ॥५६॥

ददर्श पुत्रं भूमिष्ठं नवीननीरदप्रसम् । अतीव सुन्दरं नग्नं पश्यन्तं गृहशेखरम् ॥ ५७ ॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं नीलेन्दीवरलोचनम् । रुदन्तश्च हसन्तश्च रेणुसंयुक्तविग्रहम् ॥

हस्तद्वयं भुविन्यस्तं प्रेमवन्तं पदाम्बुजम् ॥ ५८ ॥

दृष्ट्वा नन्दः स्त्रिया सार्द्धं हरिं हृष्टो यभूष ह ॥ ५९ ॥

धात्री तं स्नापयामास शीततौयेन बालकम् ।

चिच्छेद नाडीं बालस्य हर्षान्नु गोप्यो जयं जगुः ॥ ६० ॥

आजगमुर्गोपिकाः सर्वा गृहत्थोण्यध्वलत्कुचाः ।

बालिकाश्च वयःस्थाश्च विप्रपत्न्यश्च सृत्तिकाम् ॥ ६१ ॥

आशिषं युयुजुः सर्वा दद्रुशुर्बालकं मुदा । कीडे चक्रुः प्रशंसन्त्य ऊपुस्तत्र च काश्चन
नन्दः सन्तैलः स्नात्वा च धृत्या धीते च घाससी । पारम्पर्यं विधिं तत्र चकार हृष्टमानसः

ब्राह्मणान् भोजयामास कारयामास मङ्गलम् ।

पाद्यानि पादयामास पन्दिभ्यश्च ददुर्धनम् ॥ ६४ ॥

ततो नन्दश्च सानन्दं ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ । सद्रत्नानि प्रनालानि हीरकाणि च सादरम्
तिलानां पर्यतान् सप्त सुपर्णशतकं मुने । रोप्यं धान्याचलं पश्यं गोसहस्रं मनोरमम्
यधि दुग्धं शर्कराञ्च नयनीतं पुतं मधु । मिष्टान्नं लड्डुकोषञ्च स्वादूनि मोदकानि च
भूमिश्च सर्वशस्यादयं पायुषेगांस्तुरङ्गमान् । ताम्बूलानि च तैलानि दत्त्वा हृष्टो यभूष ह
रक्षितुं सृत्तिकागारं योजयामास ब्राह्मणान् ।

तत्र मन्थजमनुजान् स्थपिरान् गोपिकागणान् ॥ ६६ ॥

यैवांश्च पाठयामास हरेर्नामिकमङ्गलम् । भक्त्या च ब्राह्मणद्वारा पूजयामास देवताः ॥ ७० ॥
सस्मिता विप्रपत्न्याश्च वयस्थाः स्थपिराचराः । बालिकाबालकयुताद्याजगमुर्नन्दमन्दिरम्
तैभ्योऽपि प्रददौ रत्नं धनानि पिपिधानि च ॥ ७१ ॥

गोपालिकाश्च गुराश्च रत्नालद्वारभूषिताः । सस्मिताः शीघ्रगामिन्य आजगमुर्नन्दमन्दिरम्
यहुपस्याणि रोप्याणि गोसहस्राणि सादरम् ॥ ७२ ॥
नानापिधाश्च गणका ज्योतिःशास्त्रपिसारदाः ।

वाक्सिद्धाः पुस्तककरा आजगमुर्नन्दमन्दिरम् ॥ ७३ ॥

नन्दस्तेभ्यो नमस्कृत्य चकार चिनयं मुदा । आशिषं युयुजुः सर्वं ददृशुर्गालकं परम् ॥
पवं संभृतसम्भारो बभूव ब्रजपुङ्गवः । गणकैः कारयामास यद्गविष्यं शुभाशुभम् ॥
पवं वषट्कं बालश्च शुक्लपक्षे यथा शशी । नन्दादये हली चैव भुङ्क्ते मातुः पयोधरम्
तदा च रोहिणीं हृष्टा तत्र पुत्रोत्सवे मुदा । तैलसिन्दूरताम्बूलं धनं ताम्ब्यो ददौ मुने
दत्त्वाशिषश्च शिरसि ताश्च ते स्यालये ययुः । यशोदारोहिणीनन्दास्तत्पुण्ड्रेभ्यमुवाच्यताः

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

नन्दपुत्रोत्सवो नाम नवमोऽध्यायः ।

दशमोऽध्यायः

पूतनामोक्षवर्णनम्

नारायण उवाच ।

अथ कंसः सभामध्ये स्वर्णसिंहासनस्थितः । शुभ्राय वाचं गगने स्रज्ज्वलामशारिणीम् ॥
किं करोषि महामूढ चिन्तां स्वश्रेयसःकुल । जातकालो धरण्यांते तिष्ठोपाधे नराधिय
नन्दाय तनयं दत्त्वा पसुदेवस्तवान्तकम् । कन्यामादाय तुभ्यञ्च दत्त्वा संमाययास्थितः
मायांशा कन्यकेयञ्च वासुदेवः स्वयं हरिः । तव हन्ता गोकुले च वर्द्धते नन्दमन्दिरे ।

देवकीसप्तमो गर्भो वर्द्धते नन्दमन्दिरे ॥ १ ॥

देवकीसप्तमो गर्भो न सुखाच्च मृतं सुतम् । स्थापयामास माया तं रोहिणीजदरे किल
तत्र जातश्च शेषांशो बलदेवो महाबलः ॥ ५ ॥

गोकुले तौ च वर्द्धते कालौ ते नन्दमन्दिरे ॥ ६ ॥

श्रुत्या तद्वचनं राजा बभूव नतकन्धरः । चिन्तामयाप सहसा तत्प्राजाहारमुन्मनाः ॥ ७ ॥

पूतनाञ्च समानीय प्राणेभ्यः प्रेयसीं सतीम् ।

उवाच भगिनी राजा सभामध्ये च नीतिवित् ॥ ८ ॥

कंस उवाच ।

पूतने गोकुलं गच्छ कार्पथं नन्दमन्दिरे । धिपाक्तञ्च स्तनं कृत्वा शिशवे देहि सत्वग्रम्
त्वं मनोयायिनी घत्से मायाशास्त्रचिंशारदा । मायामानुषरूपञ्च विधाय ब्रज योगिनी
दुर्घाससौ महामन्त्रं प्राप्य सर्वत्रगामिनी । सर्वरूपं विधातुं त्वं शक्ताऽसि सुप्रतिष्ठिते
इत्युक्त्वा तां महाराजस्तथौ संसदि नारद । जगाम पूतना कंसं प्रणम्य कामचारिणी
तप्तकाञ्चनपर्णाभा नानालङ्कारभूषिता । विभ्रती कवरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् ॥
कस्तूरीविन्दुना युक्तं सिन्दूरं विभ्रती मुदा । मञ्जीररशानाभ्याञ्च कलशब्दं प्रकुर्वती ॥
संप्राप्य गोष्ठं ददर्श नन्दालयं मनोहरम् । परिलभिर्गभीराभिर्दुर्लभ्याभिश्च वेष्टितम् ॥
रचितं प्रस्तरैर्दिव्यैर्निर्मितं विश्वकर्मणा । इन्द्रनीलैर्मरकतैः पद्मरागैश्च भूषितम् ॥ १६ ॥
सुवर्णकलशैर्दिव्यैश्चित्रितैः शेषरोज्ज्वलैः । प्राकारैर्गगनस्पर्शैश्चतुर्द्वारसमन्वितैः ॥ १७ ॥

युक्तं लोहकपाटैश्च द्वारपालसमन्वितैः ।

वेष्टितं सुन्दरं रम्यं सुन्दरीगणवेष्टितम् ॥ १८ ॥

मुक्तामाणिक्यपद्मैः पूर्णं रत्नादिभिर्धनैः । स्वर्णपात्रघटाक्षौण्डी गवां कोटिभिरन्वितम्
भरणीयैः किङ्करीश्च गोपलक्षैः समन्वितम् । दासीनाञ्च सहस्रैश्च कर्मव्यग्रैः समन्वितम्
प्रविधेशाश्रमसाध्वी सस्मिता सुमनोहरा । दृष्ट्वा तां प्रविशन्तां च गोप्यस्तायदुमेनिरे
किंवा पद्मालयादुर्गा कृष्णं द्रष्टुं समागता । प्रणोमुर्गोपिका गोपाःप्रचक्षुः कुशलञ्चताम्
ददौ सिंहासनं पाद्यं घासयामास तत्र वै ॥ २२ ॥

पप्रच्छ कुशलं सा च गोपानां बालकस्य च ।

उवास सस्मिता साध्वी पाद्यं जग्राह सादरम् ॥ २३ ॥

तामूचुर्गोपिकाः सर्वाः का त्वमीश्वरि साम्प्रतम् ।

पासस्ते कुत्र किञ्चाम किं वात्र कर्म तद्वद ॥ २४ ॥

तासाञ्च वचनं श्रुत्वा साप्पुवाच मनोहरम् । मथुरावासिनीगोपी साम्प्रतं विप्रकामिनी
श्रुतं पाचिकवक्त्रेण तत्त्वं महलसूचकम् । यभूष स्थपिरे काले नन्दपुत्रो महानिति ॥

श्रुत्वागताहं तं द्रष्टुमाश्रितं कर्तुमीप्सितम् । पुत्रमानय तं दृष्ट्वा यानि कृत्वा तदाश्रितम्
ब्राह्मणीवचनं श्रुत्वा यशोदा हृष्टमानसा । प्रणमय्य सुतं क्रोडे ददौ ब्राह्मणयोपिते ॥

कृत्वा क्रोडे शिशुं साध्वी खुचुम्ब च पुनः पुनः ।

स्तनं ददौ सुखासीना हरिं पुण्यवती सती ॥ २६ ॥

अहोऽद्भुतोऽयं बालस्ते सुन्दरो गोपसुन्दरि । गुर्णनारायणसमो बालोऽयमित्युवाच ह
कृष्णोधिपस्तनं पीत्वा जहास वक्षसि स्थितः । तस्याः प्राणैः सह पयो विपक्षीरंसुधामिव
तत्याज बालकं साध्वी प्राणांस्त्यक्त्वा पपात ह । विकृताकारवदना चोत्तानवदना मुने

स्थूलदेहं परित्यज्य सूक्ष्मदेहं विवेश सा ।

आदरोह रथं शीघ्र रत्नसारविनिर्मितम् ॥ ३३ ॥

पार्वदप्रवरैर्दिव्यैर्वेष्टितं सुमनोहरैः । श्वेतचामरलक्ष्णेन वेष्टितं लक्षद्वर्पणैः ॥ ३४ ॥
वह्निशौचेन वस्त्रेण सूक्ष्मेण शोभितं धरम् । नानाचित्रविचित्रैश्च सद्गतकलसैर्युतम् ।
सुन्दरं शतचक्रजं ज्वलितं रत्नतेजसा । पार्वदास्तां रथे कृत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ।

दृष्ट्वा तमद्भुतं गोपा गोपिकाश्चापि विस्मिताः ।

कंसः श्रुत्वा च तत् सर्वं विस्मितश्च बभूव ह ॥ ३७ ॥

यशोदाबालकं नीत्वा क्रोडे कृत्वा स्तनं ददौ । मङ्गलं कारयामास विप्रद्वारा शिशोर्मुं
ववाह देहं तस्याश्च नन्दः सानन्दपूर्वकम् । वन्दनागुरुकस्तूरीसमं संप्राप्य सौरभम्

नारद उवाच ।

सा वा का राक्षसीरूपा कथं पुण्यवती सती ।

केन पुण्येन तं दृष्ट्वा जगाम कृष्णमन्दिरम् ॥ ४० ॥

नारायण उवाच ।

बलियज्ञे धामनस्य दृष्ट्वा रूपं मनोहरम् । बलिकन्या रत्नमाला पुत्रस्नेहं चकार तम
मनसा मानसं चक्रे पुत्रस्य सदृशो मम । भवेद् यदि स्तनं दत्त्वा करोमि तच्च वक्ष
हरिस्तन्मानसं ज्ञात्वा पपीजन्मान्तरे स्तनम् । ददौ मातृगतिं तस्यै कामपरः कृपानिर्वा
दत्त्वा विपस्तनं कृष्णं पूतना राक्षसी मुने ।

भक्त्या मातृगतिं प्राप कं भजामि विना हरिम् ॥ ४४ ॥

इत्येवं कथितं विप्र श्रीकृष्णगुणवर्णनम् । पदे पदे सुमधुरं प्रवरं कथयामि ते ॥ ४५ ॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

पूतनामोक्षणं नाम वंशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः

श्रीकृष्णबाललीलानिरूपणम्

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा गोकुले साध्वी यशोदानन्दगेहिनी । गृहकर्मणि संसक्ता कृत्वा बालं स्वयक्षसि

घात्यारूपं तृणावर्तमागच्छन्तञ्च गोकुले । श्रीहरिर्मनसा ध्यात्वा भारयुक्तो बभूव ह ॥

भाराक्रान्ता यशोदा च तत्याज बालकं तदा । शयने कारयित्वा च जगाम यमुनां मुने ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र घात्यारूपधरोऽसुरः । आदाय तं भ्रामयित्वा गत्वा च शतयोजनम्

यमञ्ज वृक्षशायाश्च ह्यन्धीभूतञ्च गोकुलम् । चकार सद्यो मायायी पुनस्तत्र पपात ह ॥

असुरोऽपि हरिस्पर्शाज्जगाम हरिमिन्द्रिम् । सुन्दरं रथमारुह्य कृत्वा कर्मक्षयं स्वकम्

पाण्ड्यदेशोद्भवो राजा शापाद् दुर्वाससोऽसुरः ।

श्रीकृष्णचरणस्पर्शाद् गोकुलं स जगाम ह ॥ ७ ॥

घात्यारूपे गते गोपा गोप्यश्च भयविह्वलाः । न दृष्ट्वा बालकं तत्र शयानं शयने मुने ॥

सर्वे निजघ्नुः स्वं वक्षःस्थलं शोकाकुलामयात् ।

केचिन्मूर्च्छामवापुश्च रुरुदृश्वापि केचन ॥ ८ ॥

अन्वेषणं प्रकुर्वन्तो बह्वंशुर्बालकं व्रजे । धूर्तिधूपरसर्वाङ्गं पुष्पोद्यानान्तरस्थितम् ॥ १० ॥

बाह्यैकदेशे सरसस्तारे नीरसमन्विते । परस्परं गगनं शश्वद् घटन्तं भयकातरम् ॥ ११ ॥

गृहीत्वा बालकं नन्दः कृत्वा पश्यादि सत्त्वम् ।

दर्शं दर्शं मुखं तस्य स्रोदं च शुभ्रान्वितः ॥ १२ ॥

यशोदा रोहिणी शीघ्रं दृष्ट्वा बालं स्रोदं च । कृत्वा वक्षसि तद्वक्त्रं चुचुम्य च मुहुर्मुहुः
मङ्गलं कारयामास ह्यापयामास बालकम् । स्तनं ददौ यशोदा च प्रसन्नवदनेक्षणा ॥

नारद उवाच ।

कथं शशाप दुर्वासाः पाण्ड्यदेशोद्ध्वं नृपम् । सुविचार्य वदन्न ह्यभितिहासं पुरातनम्
नारायण उवाच ।

पाण्ड्यदेशोद्ध्वो राजा सहस्राक्षः प्रतापवान् ।

स्त्रीसहस्रं समादाय कामबाणप्रपीडितः ॥ १६ ॥

मनोहरे निर्जने च पर्वते गन्धमादने । विजहार नदीतीरे पुण्योद्याने मनोरमे ॥ १७ ॥

नानाप्रकारशृङ्गारं विपरीतादिकं नृपः । नपदन्तक्षताङ्गश्च कामिनीनां चकार सः ॥ १८ ॥

कृत्वा मूर्त्तिसहस्रञ्च योगीन्द्रो नृपतीश्वरः । कृत्वा स्थले विहारश्च जलक्रीडां चकार सः

नार्यो विचक्ष्णः सर्वा नानाश्च नृपयोपितः । विजहृद्ध्य पुष्पभद्रानदीतीरे मनोरमे ॥

पतस्मिन्तन्तरे तत्र समायातो महामुनिः । शिष्यलक्षैः परिवृतः गच्छन् ये शङ्करं प्रति ॥

दृष्ट्वा मुनिं महामतो मोक्षणीं न नताम्र च ।

पाया हस्तेन राजा तु सम्भाषां न चकार ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा चुकोप नृपतिं शशाप स्फुरिताधरः ।

असुरो भव पापिष्ठ योगाद् भ्रष्टो भुवं मज्ज ॥ २३ ॥

भारते लक्षवर्षञ्च स्वातन्त्र्यं ते नराधम । ततो हरिपदस्पर्शाद् गोलोकं यास्यसि ध्रुवम् ॥

स्थाने स्थाने हे महिष्यो जनिं लभत भारते । राजेन्द्रगेहे राजेन्द्रात् भविष्यथ मनोहराः ॥

इत्युक्त्या तु मुनीन्द्रश्च जगाम राट्टरालयम् । हाहाभन्दं विचमृध्वा शिष्यसङ्घाः कृपालयः

गते मुनीन्द्रे राजेन्द्रो ह्रीद च सरित्ते । छट्ट रमणीयाश्चर मण्यो विरहानुराः ॥ २७ ॥

हे नाथ रमण्येष्टेत्युच्चार्य्य च पुनः पुनः ।

त्वां पिता वा क यास्यामो वयं त्वं वा क यास्यसि ॥ २८ ॥

पर्यं न विहरिष्यामस्त्वया सादं मुनिर्जने ।

योगनिद्रोवान् ।

दूरीभूतं कुरु भयं भयं किन्ते हरो स्थिते । स्थितायां मयि च ब्रह्मन्सुखंतिष्ठजगत्पते ॥
 धीहरिः पातु ते वक्त्रं मस्तकं मधुसूदनः । श्रीकृष्णश्चक्षुषीपातु नासिकां राधिकापतिः
 कर्णयुग्मञ्च कण्ठञ्च कपालं पातु माधवः । कपोलं पातु गोविन्दः केशांश्च केशवः स्वयम्
 अधरोष्ठं हृषीकेशो दन्तपंक्तिं गदाग्रजः । रासेश्वरश्च रसनां तालुकं धामनो विभुः ॥
 वक्षः पातु मुकुन्दस्ते जठरं पातु देत्यहा । जनार्दन पातु नाभिं पातु विष्णुश्च ते हनुम् ॥
 नितम्बयुग्मं गुह्यञ्च पातु वै पुरुषोत्तमः । जानुयुग्मं जानकीशः पातु ते सर्वदा विभुः ॥
 हस्तयुग्मं नृसिंहश्च पातु सर्वत्र सङ्कटे । पादयुग्मं चराहश्च पातु ते कमलोद्भवः ॥ २३ ॥

ऊर्ध्वं नारायणः पातु ह्यधस्तात् कमलापतिः ।

पूर्वस्थां पातु गोपालः पातु वह्नी दशास्यहा ॥ २४ ॥

वनमाली पातु याम्यां बैकुण्ठः पातु नैऋती ।

वारुण्यां पातु देवश्च सतोरक्षाकरः स्वयम् ॥ २५ ॥

ते सन्ततमजो वायव्यां विष्टरश्वाः । उत्तरे च सदा पातु तेजसा जलजासनः ॥
 पृथान्यामीश्वरः पातु सर्वत्र पातु शत्रुजित् । जले स्थले चान्तरीक्षे निद्रायां पातु राघवः
 इत्येवं कथितं ब्रह्मन् कवचं परमाद्भुतम् । कृष्णेन कृपया दत्तं स्मृतेनैव पुरा मया ॥
 शुभमेव सह संग्रामे निर्लक्ष्ये घोरदारुणे । गगने स्थितया सद्यः प्राप्तिमात्रेण सो जितः ॥
 कवचस्य प्रभावेण धरण्यां पतितो मृतः । पूर्वं वर्षशतं खे च कृत्वा युद्धं भयावहम् ॥
 मृते शुम्भे च गोविन्दः कृपालुर्गगनस्थितः । माल्यञ्च कवचं दत्त्वा गोलोकं सजगाम ह
 कल्पान्तरस्य वृत्तान्तं कृपया कथितं मुने । अभ्यन्तरभयं नास्ति कवचस्य प्रभायतः ॥

कोटिशः कोटिशो नष्टा मया दृष्टाश्च वेधसः ।

अहश्च हरिणा साध्वं कल्पे कल्पे स्थिरा सदा ॥ ३३ ॥

इत्युक्त्वा कवचं दत्त्वा सान्तरद्धानं चकार ह ।

निःशङ्को नाभिकमले तस्थौ स कमलोद्भवः ॥ ३४ ॥

मवर्णमटिकायान्तं कृत्वेदं कवचं परम् ।

कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ बध्नीयाद् यः सुधीः सदा ॥ ३५ ॥

विपाशिसर्पेशचुभ्यो भयं तस्य न विद्यते । जले स्थले चान्तरिक्षे निद्रायां रक्षतीश्वरः ।
संग्रामे वज्रपाते च विपत्तौ प्राणसङ्कटे । कवचस्मरणादेव सद्यो निःशङ्कतां व्रजेत् ॥ ३५ ॥
यदुध्येदं कवचं कण्ठे शङ्करखिपुरं पुरा । जघान लीलामात्रेण दुरन्तमसुरेश्वरम् ॥ ३६ ॥
यदुध्येदं कवचं काली रक्तग्रीवं चक्षाद् सा । सहस्रशीर्षा ध्रुत्वेदं विश्वं धत्ते तिलं यथ
भावां सनतकुमारश्च धर्मसाक्षी च कर्मणाम् । कवचस्य प्रसादेन सर्वत्र जयिनीवया
तस्य नन्दशिशोः कण्ठे चकारकवचं द्विजः । भात्मनः कवचं कण्ठे धधार च स्वयं हवि
प्रभावः कथितः सर्वः कवचस्य हरेस्तथा । अनन्तस्याच्युतस्यैव प्रभावमतुलं मुने ॥ ४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मपण्डे

शकटभञ्जनकवचन्यासो नाम द्वादशोऽध्यायः ।



त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीकृष्णमाहात्म्ये बालचरित्रकथनम्

नारायण उवाच ।

अपरं कृष्णमाहात्म्यं शृणु किञ्चिन्महामुने । विप्रनिष्ठं पापहरं महापुण्यकरं परम् ॥ १ ॥
एकदा नन्दपत्नी सा हृत्या कृष्णं स्वयश्चक्षि । स्वर्णसिंहासनस्थाचक्षुधिततस्तनन्द
पतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्रेन्द्रेकः समागतः । वृतः शिष्यसमूहेक्ष्य प्रच्यवन् ब्रह्मवैवर्तं
प्रजपन् परमं ब्रह्म शुद्धस्फटिकमालया । दण्डं चतुर्गुणं शुरुपासा दन्तपट्किचिराजित
उद्योतिर्ग्रन्थो मूर्त्तिमांध वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ४ ॥

परिविभ्रज्जगद्भारं तप्तकाञ्चनसन्निभम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यो गौराङ्गः पद्मलोचनः

योगीन्द्रो धूर्जटेः शिष्यः शुद्धभक्तो गदाभृतः ।

व्याख्यामुद्राकरः धोमान् शिष्यान्ध्यापयन् मुदा ॥ ६ ॥

वेदव्याख्यां कतिविधां प्रकुर्वन्तवलीलया । पर्काभूय चतुर्वेदेतेजसा मूर्त्तिमानिव ॥७॥

साक्षात् सरस्वतीकण्ठः सिद्धान्तैकविशारदः ।

ध्यानेकनिष्ठः श्रीकृष्णपादाम्भोजे दिवानिशम् ॥ ८ ॥

जीवन्मुक्तो हि सिद्धेशः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः । तं दृष्ट्वा सा समुत्तस्थौ यशोदा प्रणनाम च

पादं गां मधुपर्कश्च स्वर्णसिंहासनं ददौ । बालकं चन्दयामास मुनीन्द्रं सस्मितं मुदा ॥

मुनिश्च मनसा चक्रे प्रणामशतकं हरिम् । आशिषं प्रददौ प्रीत्या वेदमन्त्रोपयोगिकम्

प्रणनाम च शिष्यांश्च ते तां युयुजुराशिषम् ।

शिष्यान् पाद्यादिकं भक्त्या प्रददौ च पृथक् पृथक् ॥ १२ ॥

सशिष्योऽङ्गिरी च प्रक्षाल्य समुपासनुस्नासने । समुद्यता गतिं प्रष्टुं पुटाञ्जलियुता सती

स्वक्रीडे बालकं कृत्वा भक्तिनम्रास्यकन्धरा । स्यात्मारामं मङ्गलञ्च प्रष्टुं यद्यपि न क्षमा

तथापि भवतो नाम शिषं पृच्छामि साम्प्रतम् ।

अथला बुद्धिहीना या दोषं क्षन्तुं सदाहसि ॥ १५ ॥

मूढस्य सततं दोषक्षमां कुर्वन्ति साधवः ॥ १६ ॥

अङ्गिरा पाथयात्रिषां मरीचिर्गोतमोऽथवा । क्रतुः किं वा प्रचेतावागुलस्त्यः पुलहोऽथवा

दुर्वासाः कर्दमस्त्यं वा वशिष्ठो गर्ग एव वा ।

जैगीपन्थो देवलो वा कपिलो वा स्वयं विभुः ॥ १८ ॥

सनत्कुमारः सनकः सनन्दो वा सनातनः । धोदुःपञ्चशिखो घातपमासुरिः सौभरिः किमु

विश्वामित्रोऽथ घातमीको घामदेवोऽथ कश्यपः ।

संवर्त्तः किमुतथ्यो वा किं कचो वा वृहस्पतिः ॥ २० ॥

भृगुः शुकश्च्यवनोनरनारायणोऽथवा । शकृद्भिः पराशरो व्यासः शुकदेवोऽथ जैमिनिः

मार्कण्डेयो लोमशश्च कण्वः कात्यायनस्तथा ।

आर्त्ताको वा जरत्कारु ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ॥ २२ ॥

पौलस्त्यस्त्यमगस्त्यो वा शरद्धान् गिरिरंज च ।

शर्माकाऽरिष्टनेमिश्च माण्डव्यः पैल एव च ॥ २३ ॥

त्रयोद्देशोऽध्यायः] * श्रीकृष्णनामकरणे शिष्यैः सह महर्षिगर्गप्रवेशवर्णनम् * ५६७

पाणिनिर्घा कणादोवाशाकल्यः शाकटायनः । अष्टावक्रो भागुर्त्वास्तुमन्तुर्वत्सएववा
जावालिर्याज्ञवल्क्यश्च वैशम्पायन एव वा । यतिर्हंसो पिप्पलादो मैत्रेयः करुपस्तथा ॥
उपमन्युर्गौरमुखोऽरुणिर्योर्वोऽथ कक्षिबान् । भरद्वाजो वेदशिराःशङ्कु कर्णोऽथ शौनकः
एतेषां पुण्यश्लोकानां को भवान् वद मे प्रभो । प्रत्युत्तरार्हा नाहं चेत्तथापि वक्तुमर्हसि
किङ्कुरः किङ्कुरी वापि समर्था प्रष्टुमीश्वरम् । यो यस्य सेवानिरतः स कं पृच्छति तं विना
धन्याहं कृतकृत्याहं सफलं जीवनं मम । त्वत्पादाब्जरजःस्पर्शाज्जन्मकोट्यहसां क्षयः
त्वत्पादौदकसंस्पर्शात् सद्यः पूता वसुन्धरा । तद्यागमनमात्रेण तीर्थीभूतो ममाश्रमः ॥
येये श्रुताः श्रुतौ ब्रह्मन् श्रुतिसारा महाजनाः । तेषामेकोमया दृष्टः पूर्वपुण्यफलोदयात्
शिष्या वेश मूर्त्तिमन्तो ग्रीष्ममध्याह्नभास्कराः ।

गोकुलं मतकुलं सद्यः पुनन्ति पादरेणुना ॥ ३२ ॥

आशियं कर्त्तुमर्हन्ति प्रसन्नमनसा शिशुम् । पूर्णं स्वस्त्वयनं सद्यो विप्राशीर्ष्वचनं ध्रुवम्
इत्येवमुत्तवा नन्दह्री भक्त्या तस्यो मुनेः पुरः । चरं प्रस्थापयामास नन्दमानयितुं सती
यशोदावचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुङ्गवः । जहसुः शिष्यसंघाश्च भासयन्तो दिशो दश ॥
हितं तथ्यं नीतियुक्तं महत्प्रतीतकरं परम् । तामुवाच मुदा युक्तः शुद्धबुद्धिर्महामुनिः ॥
श्रीगर्गउवाच ।

सुधामयं ते वचनं लौकिकं समशोचितम् । यस्य यत्र कुले जन्म स एव तादृशो भवेत्
सर्वेषां गोपपद्मानां गिरिभानुश्च भास्करः ।

पत्नी पद्मासमा तस्य नाम्ना पद्मावती सती ॥ ३८ ॥

तस्याः कन्या यशोदा त्वं यशोवर्द्धनकारिणी ॥ ३९ ॥

नन्दो यस्त्वञ्जयामद्रे यालोऽयं येन वागत । जानामिनिर्जनेतव्यं वक्ष्यामि नन्दसन्निधिम्
गर्गोऽहं यदुद्यंशानां चिरकालं पुरोहितः । प्रस्थापितोऽहं वसुना नान्यसाध्येच कर्मणि
एतस्मिन्नन्तरे नन्दः श्रुतमात्रं जगामह । ननाम दण्डवद् भूमौ मूर्ध्ना तं मुनिपुङ्गवम् ।

शिष्यान्ननाम मूर्ध्ना च ते तं ययुजुराशिपम् ॥ ४२ ॥

समुत्थायासनात् पूर्णं यशोदां नन्दमेव च । गृहीत्वाभ्यन्तरं रम्यं जगाम विदुषां वरः

गर्गो नन्दो यशोदा च सपुत्रा समुदान्विता । गर्ग उवाच तौ वाक्यं निगूढं निर्जनेमुने
श्रीगर्ग उवाच ।

अयि नन्द प्रवक्ष्यामि वचनं ते शुभावहम् । प्रस्थापितोऽहं वसुना येन तच्छ्रूयतामिति
वसुना सूतिकागारे शिशुः प्रत्यर्पणीकृतः । पुत्रोऽयं वसुदेवस्य उद्योतश्च तस्य च ध्रुवम्
कन्या ते तेन नीता च मथुरां कंसभीरुणा ॥ ४६ ॥

अस्यान्तप्राशनायाहं नामानुकरणाय च । गूढेन प्रेषितस्तेन तस्योद्योगं कुरु प्रजे ॥ ४७ ॥
पूर्णब्रह्मस्वरूपोऽयं शिशुस्ते मायया महीम् । आगत्य भारहरणं कर्त्ता धात्रा च सेवितः
गोलोकनाथो भगवान् श्रीकृष्णो राधिकापतिः । नारायणो यो बैकुण्ठे कमलाकान्त एव च
श्वेतद्वीपनिवासी यः पाताविष्णुश्च सोऽप्यजः । कपिलोऽन्ये तदंशाश्च नरनारायणावृषी
सर्वेषां तेजसां राशिर्मूर्त्तिमानागतः किमु । स वसुं दर्शयित्वा च शिशुरूपो बभूव ह ॥

साम्प्रतं सूतिकागारादाजगाम तबालयम् ।

अयोनिः सम्भवश्चायमाधिभूतो महीतले ॥ ५२ ॥

बांयुपूर्णं मातृगर्भं कृत्वा च मायया हरिः । आधिभूय वसुं मूर्त्तिं दर्शयित्वा जगाम ह
युगे युगे वर्णभेदो नामभेदोऽस्य बल्लव । शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥
शुक्लवर्णः सत्ययुगे सुर्ताग्रस्तेजसावृतः । त्रेतायां रक्तवर्णोऽयं पीतोऽयं द्वापरे पिबुः ॥
कृष्णवर्णः कलौ श्रीमान् तेजसां राशिरेव च । परिपूर्णतमं ब्रह्म तेन कृष्ण इति स्मृतः
ब्रह्मणो धाचकः कौऽयमृकारोऽनन्तवाचकः । शिवस्य वाचकः पञ्च णकारो धर्मधाचकः

अकारो विष्णोर्वचनः श्वेतद्वीपनिवासिनः ।

नरनारायणार्थस्य विसर्गो धाचकः स्मृतः ॥ ५८ ॥

सर्वेषां तेजसां राशिः सर्वमूर्त्तिस्वरूपकः । सर्वाधारः सर्वबीजस्तेन कृष्ण इति स्मृतः
कृपिर्निर्वाणवचनो णकारो मोक्ष एव च । अकारो दातृवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥

कृपिर्निश्चेष्टवचनो णकारो भक्तिवाचकः ।

अकारो दातृवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥ ६२ ॥

कर्मनिर्मलवचनः कृपिर्णा दास्यवाचकः । अकारो प्राप्तिवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥

नाम्नाभगवतो नन्द कोटीनां स्मरणे च यत् । तत्फलं लभते नूनं कृष्णेति स्मरणे नरः ।

यद्विधं स्मरणे पुण्यं घटनाच्छ्रवणात्तथा ।

कोटिजन्मां हसो नाशो भवेद् यत्स्मरणादिकात् ॥ ६४ ॥

विष्णोर्नाम्नाञ्च सर्वेषां सर्वात्सारं परात्परम् । कृष्णेति मङ्गलं नाम सुन्दरं भक्तिदायकम् ।

फकारोच्चारणादुभक्तः कैवल्यं जन्ममृत्युदम् ।

ऋकाराद् वास्यमतुलं पकारादुभक्तिमीप्सिताम् ॥ ६६ ॥

णकारात् सहवासञ्च तत्समं कालमेव च । तत्सारूप्यं विसर्गाच्च लभते नात्र संशयः ।

फकारोच्चारणादेव वेपन्ते यमकिङ्कराः । ऋकारोक्तेन तिष्ठन्ति पकारात्पातकानि च ।

णकारोच्चारणाद्भोगा अकारान्मृत्युरेव च । ध्रुवं सर्वे पलायन्ते नामोच्चारणभीरवः ।

स्मृत्युक्तिश्रवणोद्योगात् कृष्णनाम्नो व्रजेश्वर ।

रथं गृहीत्वा धापन्ति गोलोकात् कृष्णकिङ्कराः ॥ ७० ॥

पृथिव्या रजसः संख्यां कर्तुं शक्ता विपश्चिताः ।

नाम्नः प्रभावसंख्यानं सन्तो वक्तुं न च क्षमाः ॥ ७१ ॥

पुराशङ्करचक्रेण नाम्नोऽस्य महिमा श्रुतः । गुणनामप्रभावञ्च किञ्चिज्ज्ञातातिमदुगुहः ।

ब्रह्मानन्तश्च धर्मश्च सुरर्षिर्मनुमानवाः ।

दैवाः सन्तो न जानन्ति महिम्नः षोडशी कलाम् ॥ ७३ ॥

इत्येवं कथितो नन्द महिमा ते सुतस्य च । यथामति यथाज्ञानं गुरुपत्रान्मया श्रुतम् ।

कृष्णः पीताम्बरः कंसध्वंसी च विष्टरश्रवाः । देवकीनन्दनः श्रीशोयशोदानन्दनो वृष्टिः ।

सनातनोऽच्युतो विष्णुः सर्वेशः सर्वरूपधृक् । सर्वाधारः सर्वगतिः सर्वकारणकारणम् ।

राधावन्धूराधिकात्मा राधिकाजीविनः स्वयम् । राधिकासहचारी च राधामानसपूरकः ॥

राधाधनो राधिकाङ्गो राधिकासत्प्रमानसः ।

राधाप्राणो राधिकेशो राधिकारमणः स्वयम् ॥ ७८ ॥

राधिकाचित्तचोरश्च राधाप्राणाधिकः प्रभुः । परिपूर्णतमं प्रह्ला गोपिन्दो गददध्यजः ।

कृतं निरूपितं नाम्नां कनिष्ठस्य यथा श्रुतम् ।

ज्येष्ठस्य हलिनो नाम्नः सङ्केतं शृणु मे मुखात् ॥ ८१ ॥

गर्भसङ्कर्षणादेव नाम्ना सङ्कर्षणः स्मृतः ॥ ८२ ॥

नास्त्यन्तोऽस्यैव वेदेषु तेनानन्तइतिस्मृतः । बलदेवो बलोद्रेकाञ्जली च हलधारणात्
शितिघासा नीलघासान्मुपलीमुपलायुधात् । रैवत्यासह सम्भोगाद्रेवतीरमणःस्वयम्

रोहिणीगर्भघासाच्च रोहिणेयो महामतिः ॥ ८४ ॥

इत्येवं ज्येष्ठपुत्रस्य श्रुतं नाम निवेदितम् ।

यास्याम्यहं गृहं नन्द सुखं तिष्ठ स्वमन्दिरं ॥ ८५ ॥

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा नन्दः स्तब्धो बभूव ह ।

निश्चेष्टा नन्दपत्नी च जहास बालकः स्वयम् ॥ ८६ ॥

प्रणम्योवाच नन्दस्तं वापयं विनयपूर्वकम् ।

पुटान्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥ ८७ ॥

नन्द उवाच ।

गतश्चेत्त्वं तदा कर्म करिष्यत्येव को महान् । स्वयं शुभेक्षणं कृत्वा कुरुनामान्नप्राशनम्
यन्नामौघञ्च कथितोराधाप्राणादिकोदश । तस्यापिकावाराधेतिकन्यकाकस्यच ध्रुवम् ॥
नन्दस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुङ्गवः । निगूढं परमं तत्त्वं रहस्यं कथयामि ते ॥ ९०

श्रीगर्ग उवाच ।

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि इतिहासं पुरातनम् । पुरा गोलोकवृत्तान्तं श्रुतं शङ्करवक्त्रतः ॥
श्रीदाम्नो राधया सार्द्धं बभूव कलहो महान् । श्रीदामशापाद् देवेनगोपीराधाचगोकुले
वृषभानुसुता सा च मातातस्याःकलावती । कृष्णस्यार्द्धाङ्गसम्भूतानाथस्यसदृशीसती
गोलोकवासिनी सेयमत्र कृष्णाढयाधुना । त्रयोनिसम्भवा देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥
मातुर्गर्भं वायुपूर्णं कृत्वा च मायया सती । वायुनिःसरणे काले धृत्वाच शिशुचिग्रहम्
आचिर्वभूव मायेयं पृथ्व्यां कृष्णोपदेशतः । वर्धते सा व्रजे राधा शुक्ले चन्द्रकला यथा
श्रीकृष्णतेजसोऽर्द्धेन सा च मूर्त्तिमती सती । एका मूर्त्तिर्द्विधाभूता भेदो वेदेनिरूपितः

इयं स्त्रीसा पुमान् किंवा सा वा कान्ता पुमानयम् ।

द्वे रूपे तेजसा तुल्ये रूपेण च गुणेन च ।

पराक्रमेण बुद्ध्या वा ज्ञानेन सम्पदापि च ॥ ६८ ॥

पुरतो गमनेनैव किन्तु सा वयसाधिका । ध्यायते तामयं शश्वदिर्मसास्मरतिप्रियम् ॥
रचिता सास्य प्राणीश्च तत्प्राणैर्मूर्त्तिमानयम् । अस्य राधानुसारेण गोकुलागमनं परम्
स्वीकारं सार्धकं कर्तुं गोलोके यत् कृतं पुरा । कंसमोतिच्छलेनेष गोकुलागमनं हरः
प्रतिज्ञापालनार्थाय भयेशस्य भयं कुतः । राधाशब्दस्य व्युत्पत्तिः सामवेदे निरूपिता
नारायणस्तामुवाच ब्रह्माणं नाभिवद्भजे । ब्रह्मा तां कथयामास ब्रह्मलोकेच शङ्करम् ॥
पुरा कैलासशिखरे मामुवाच महेश्वरः । देवानां दुर्लभां तन्द निशामय वदामि ते ॥
सुरासुरमुनीन्द्राणां वाञ्छितामुक्तिदां पराम् । ऐकोहि कोटिजन्मायं कर्मभोगंशुभाशुभम्
आकारा गर्भवासश्च मृत्युश्चरोगमुत्सृजेत् । धकार आयुषो हानिमाकारो भवयन्धनम्
श्रवणस्मरणोक्तिभ्यः प्रणश्यति न संशयः ।

ऐको हि निधलां भक्तिं वात्स्यं कृष्णपदाम्बुजे ॥ १०७ ॥

सर्वेप्सितं सदातन्दं सर्वसिद्धीघम्रीश्वरम् । धकारः सहवासश्च तत्तुल्यफालमेव च ॥
वदति सार्धिसारूप्यं तत्त्वज्ञानं हरःसमम् । आकारस्तेजसां राशि दानशक्तिःहरौ यथा
योगशक्तियोगमतिस्वयंकालहरिस्मृतिम् । श्रुत्युक्तिस्मरणायोगान्मोहजालश्चकित्वियम्
रोगशोकमृत्युयमा घेपन्तेनाशसंशयः । राधामाध्ययीः किञ्चिद्व्यापयानश्चयतःश्रुतम्
तदुक्तञ्च यथाज्ञानं साफल्यं वक्तुमक्षमः । आराद्धं वृन्दावने नन्द विवाहो भवितानयोः

पुरोहितो जगद्धाता श्रुत्याग्निं साक्षिणं मुदा ।

कुवेरपुत्रमोक्षश्च गव्यस्याहृत्य भक्षणम् ॥ ११३ ॥

हिसनं धेनुकस्पैव कानने तालमोजनम् । चक्रेतिप्रलम्बानां हिसनश्चाथ लीलया ॥
मोक्षणं द्विजपत्नीनां मिष्टाद्यपानमोजनम् । भजनं शक्रपागस्य शक्राद्रोकुलरक्षणम् ॥
गोपीनां वस्त्रहरणं व्रतसम्पादनन्तथा । ताम्भ्यः पुनरंस्त्रदानं वस्त्रदानं यथेप्सितम् ॥ ११६ ॥

चेतसां हरणं तासामयं वश्याः करिष्यति ।

रासोत्सवं महारम्यं सर्वेषां हर्षवर्द्धनम् ॥ ११७ ॥

पूर्णचन्द्रोदये नक्तं वसन्ते रासमण्डले । गोपीनां नवसम्मोगात् कृत्वा पूर्णं मनोरथम्
ताभिः सह जलक्रोडां करिष्यतिकुतूहलात् । विच्छेदोऽस्य वर्षशतं श्रोदामाशापहेतुकम्
गोपालैर्गोपिकाभिश्च भविता राधया सह । मथुरागमनं तत्र गोपीनां शोकवर्द्धनम् ॥

पुनः प्रयोधनं तासां दानमाध्यात्मिकस्य च ।

स्यन्दनाक्रूरयो रक्षां सद्यस्ताभ्यां करिष्यति ॥ १२१ ॥

रथस्यारोहणं कृत्वा मथुरागमनं पुनः । पितृभ्रातृप्रजैः सार्द्धं विलङ्घ्य यमुनां व्रजे ॥ १२२ ॥
अक्रूराय ज्ञानदानं दर्शयित्वा स्वकं जले । कीतुकेन च सायाहे नगरात्सर्वदर्शनम् ॥
मालाकारतन्तुवायकुब्जानां धन्धमोक्षणम् । धनुर्मङ्गं शङ्करस्य यागस्थानप्रदर्शनम् ॥

हिंसनं गजमल्लानां दर्शनं नृपतेः पुरः ।

कंसस्य हिंसनं सद्यः पित्रोर्निगडमोक्षणम् ॥ १२५ ॥

प्रयोधनञ्च युष्माकमुग्रसेनाभिषेचनम् । तस्य तस्य बधूनाञ्च ज्ञानाच्छोकापनोदनम् ॥
भ्रातुः स्वस्योपनयनं विद्यादानं गुरोर्मुखात् । गुरुपुत्रप्रदानञ्च पुनरागमनं गृहे ॥ १२७ ॥
छलनं नृपसैन्यानां यवनस्य दुरात्मनः । निर्माणं द्वारकायाश्च मुचुकुन्दस्य मोक्षणम् ।
द्वारकागमनञ्चैव यादवैः सह कीतुकात् । स्त्रीसंघानां विहरणं ताभिः सार्द्धञ्चक्रीडनम्
सौभाग्यवर्धनन्तासापुत्रपौत्रादिकस्य च । मणिसम्यन्धिनोमिध्याकलङ्कस्यधमोक्षणम्
साहाय्यं पाण्डवानाञ्च भारावतरणादिकम् । निष्पन्नं राजसूयस्य धर्मपुत्रस्य लीलया
पारिजातस्य हरणं शक्राहङ्कारमर्दनम् ।

व्रतपूर्णाञ्च सत्याया वाणस्य भुजरन्तनम् ॥ १३२ ॥

मर्दनं शिवसैन्यानां हरस्य जृम्भणं परम् । हरणं वाणपुत्र्याश्चैवानिच्छस्य मोक्षणम् ।
वाराणस्याश्च दहनं विप्रदारिद्र्यमञ्जनम् । विप्रपुत्रप्रदानञ्च दुष्टानां दमनादिकम् ॥ १३४ ॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन युष्माभिः सह दर्शनम् । कृत्वा च राधया सार्द्धं व्रजमागमिता पुनः
प्रस्थापयित्वा द्वाराञ्च परं नारायणांशकम् । सर्वं निष्पादनं कृत्वा गोलोकं राधयासह
गमिष्यत्येव गोलोकं नाथोऽयं जगताम्पतिः ।

त्रयोदशोऽध्यायः] * श्रीकृष्णस्यान्नप्राशनसंस्कारसाङ्गतासिद्धयर्थदानवर्णनम् * ६०३ ।

नारायणश्च वैकुण्ठं गमिता स्म त्वया सह ॥ १३७ ॥

धर्मगृहमृषी द्वौ च विष्णुः क्षीरोदमेघ च । इत्येवं कथितं नन्द भविष्यं वेदनिर्णयम्
धूयतां साम्प्रतं कर्म यदर्थं गमनं मम । माघशुक्लचतुर्दश्यां कुरु कर्म शुभे क्षणे ॥ १३६ ॥
गुरुवारं च रैचर्यां विशुद्धे चन्द्रतारके । चन्द्रस्ये मीनलाने, च लग्नेशपूर्णदर्शने ॥ १४० ॥
षण्णजे करणोत्कृष्टे शुभयोगे मनोहरं । सुदुर्लभे दिने तत्र सर्वोत्कृष्टोपयोगिके ॥ १४१ ॥
भालोच्य पण्डितैः साङ्गं कुरुकर्ममुदान्वितः । इत्युक्त्वा बहिरागत्यसमुधासमुत्तीक्ष्णरः
हृष्टो नन्दो यशोवा च कर्मोद्योगं चकार ह । एतस्मिन्नन्तरं द्रष्टुं गमं गोपाश्चगोपिकाः
बालका बालिकाश्चैव आजगमुर्नन्दमन्दिरम् । दृष्टुं शुस्ते मुनिश्रेष्ठं ग्रीष्ममध्याह्नभास्करम्
शिष्यसङ्घैः परिवृत्तं उचलन्तं ब्रह्मतेजसा । गूढयोगं प्रबोचन्तं सिद्धाय पृच्छते मुदा ॥
पश्यन्तं सस्मितं नन्दभयनानां परिच्छदम् । स्वर्णसिंहासनस्थञ्च योगमुद्राधरं वरम्
भूतं भव्यं भविष्यञ्च पश्यन्तं ज्ञानचक्षुषा । हृदीश्वरं प्रपश्यन्तं सिद्धं मन्त्रप्रभावतः ॥

बहिर्यशोदाक्रोडस्थं तादृशं सस्मितं शिशुम् ।

महेशदत्तध्यानेन यदूषञ्च निरूपितम् ॥ १४८ ॥

तं ब्रूया परमप्रीत्या पूर्णभूतमनोरथम् । साश्रुनेत्रं पुलकितं निमग्नं भक्तिसागरे ॥ १४९ ॥
हृदि पूजां प्रणामञ्च कुर्वन्तं योगचर्यया । मूर्ध्नां प्रणेमुस्ते तञ्च स च तानाश्रितं बर्वा

आसनस्थो मुनिस्तस्थौ ते जग्मुः स्वालयं मुदा ।

नन्दः सानन्दयुतश्च बन्धून् मङ्गलपत्रिकाः ॥ १५१ ॥

प्रस्थापयामास शीघ्रमाराह्णं दूरस्थितान् मुदा ।

दधिकुल्यां दुग्धकुल्यां धृतकुल्यां प्रपूरिताम् ॥ १५२ ॥

गुडकुल्यां तैलकुल्यां मधुकुल्याञ्च विस्तृताम् । नवनीतकुल्यां पूर्णाञ्च तक्रकुल्यां यद्वृच्छया
शर्करोदककुल्याञ्च परिपूर्णाञ्च लीलया । तण्डुलानाञ्च शालीनामुद्यैश्च शतपर्वतान् ॥
पृथुकानां शीलशतं लवणानाञ्च सप्त च । सप्त शीलान् शर्कराणां लङ्गुलानाञ्च सप्त च ।
परिपक्वफलानाञ्च तत्र षोडश पर्वतान् । यवगोधूमचूर्णानां पक्कलङ्गुलपिण्डकान् ॥
मोदकानाञ्च शीलञ्च स्वस्तिकानाञ्च पर्वतान् । कपर्दकानामत्युच्चैः शीलान् सप्त च नारद

कर्पूरादिकयुक्तानां ताम्बूलानाञ्च मन्दिष्यम् । विस्तृतं द्वाग्हीनञ्च वासितोदकसंयुतम् ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन समन्वितम् । नानाविधानि रत्नानि स्वर्णानि विविधानि च
मुक्ताफलानि रम्याणि प्रवालानि मुदन्वितः ।

नानाविधानि चारुणि घासांसि भूषणानि च ॥ १६० ॥

पुत्रान्तप्राशने तन्दः कारयामास कौतुकात् । सस्कारयुक्तं रुचिरं चन्दनद्रवचर्चितम् ॥
प्राङ्गणं फदलीस्तम्भे रत्नालनघपङ्क्तयैः । प्रथितैः सूक्ष्मवस्त्रेण वेष्टयामास कौतुकात् ॥
युक्तं मङ्गलकुम्भैश्च फलपङ्क्तयसंयुतैः । चन्दनागुरुकस्तूरीपुष्पमालाविराजितैः ॥ १६३ ॥

मातृयामां वरयस्त्राणां राशिभिश्च विराजितम् ।

गवाञ्च मधुपर्काणामासनानाञ्च नारद ॥ १६४ ॥

फलानां जलकुम्भानां समूहैश्च समन्वितम् । नानाप्रकारैर्वाद्यैश्च दुर्लभैः सुमनोहरैः ॥
ढक्कानां दुन्दुभीनाञ्च पट्टहानां तथैव च । मृदङ्गमुरजादीनामानकानां समूहकैः ॥ १६६ ॥
वंशीसग्नहनीकांस्यसरयन्त्रैश्च शब्दितम् ।

विद्याधरीणां नृत्येन भङ्गिमाभ्रमणेन च ॥ १६७ ॥

गन्धर्वनायकानाञ्च सङ्गीतैर्मूर्च्छनायुतैः । स्वर्णसिंहासनानाञ्च रथानां निःस्पन्दैर्युतम् ॥
पद्मस्मिन्नन्तरे तन्दमुपाच वाचको मुश । आजमुर्वल्लवेन्द्राश्च वाग्धवा पङ्क्तयास्तथा ॥
अभ्यस्थाश्च गजस्थाश्च रथस्थाश्चेति सत्वरम् । भाजमूराजपुत्राश्च रत्नालङ्कारभूषिताः
भागतो गिरिभानुश्च सहस्रीकश्च सकिङ्करः । रथानाञ्च चतुर्लक्षं गजानाञ्च तथैव च ॥
नुरङ्गमाणां कोटिश्च शिविकानां तथैव च ।

ऋषीन्द्राणां मुनीन्द्राणां विप्राणाञ्च विपश्चिताम् ॥ १७२ ॥

चन्दितांमिश्रुकाणाञ्च समूहैश्च समीपतः । गोपानांगोपिकानाञ्च संख्यांकर्तुंश्चकःक्षमः
पश्यागत्य चहिर्मूयेत्युवाच प्राङ्गणे स्थितः । श्रुत्वेवं तानुपवज्य समानीय व्रजेश्वरः ॥
प्राङ्गणे वासयामास पूजयामास सत्वरम् । ऋष्यादिकसमूहञ्च प्रणम्य शिरसा भुवि ।

पादादिकञ्च तेभ्यश्च प्रददौ सुसमाहितः ॥ १७५ ॥

वस्तुभिर्वन्धुभिः पूर्णं बभूव नन्दगोकुलम् ।

त्रयोदशोऽध्यायः] * श्रीकृष्णस्यान्नप्राशननिमित्तकभूरिदानवर्णनम् # ६०५

न कोऽपि कस्य शब्दं च श्रोतुं शक्तश्च तत्र वै ॥ १७६ ॥

त्रिमुहूर्त्तं कुवेरश्च श्रीकृष्णप्रीतये मुदा । चकार स्वर्णरुष्टया च परिपूर्णञ्च गोकुलम् ॥
कौतुकापह्वयश्चतुर्वन्धुवर्गाश्च व्रीडया । आनम्रकन्धराः सर्वे दृष्ट्वा नन्दस्य सम्पदम् ॥
नन्दः कृताह्निकः पूतो धृत्वा धौते च वाससी । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेनैव भूषितः ॥

उवास पादौ प्रक्षाल्य स्वर्णपांठे मनोहरे ।

गर्गस्य च मुनीन्द्राणां गृहीत्वाज्ञां व्रजेश्वरः ॥ १८० ॥

संस्तृत्य विष्णुमाचान्तः स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । कृत्वाकर्मच वेदोक्तभोजयामासयालकम्
गर्गावाक्यानुसारेण बालकस्य मुदान्वितः । कृष्णेति मद्गलं नाम ररक्ष च शुभे क्षणे ॥
सघृतं भोजयित्वा च कृत्यानाम जगत्पतेः । वाद्यानि वादयामास कारयामासमद्गलम्

नानाविधानि स्वर्णानि धनानि विविधानि च ।

भक्ष्यद्रव्याणि वासांसि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥ १८४ ॥

घन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च सुवर्णं विपुलं ददौ । भाराक्रान्ताश्च ते सर्वे न शक्ता गन्तुमेव च
ब्राह्मणान् यन्धुवर्गाश्च भिक्षुकांश्च विशेषतः । मिष्टान्नं भोजयामास परिपूर्णं मनोहरम्
दीयतां दीयताञ्चैव पाद्यतां पाद्यतामिति । बभूव शब्दोऽत्युद्योश्च सततं नन्दगोकुले ॥

रत्नानि परिपूर्णानि वासांसि भूषणानि च । प्रवालानि सुवर्णानि मणिसाराणि यानि च
चाक्राणि स्वर्णपात्राणि कृतानि विद्रवकर्मणा ।

गत्वा गर्गाय विनयं चकार व्रजपुङ्गवः ॥ १८६ ॥

शिष्येभ्यः स्वर्णभारांश्च प्रददौ विनियान्वितः । द्विजेभ्योऽप्ययशिष्टेभ्यः परिपूर्णानि नारद

धोनारायण उवाच ।

गृहीत्वा श्रीहरिं गर्गां जगाम निभृतं मुदा । तुष्टाय परया भक्त्या प्रणम्य च तमीदृशम्
साधुनेत्रः सपुलको भक्तिनम्रात्मकन्धरः । पुष्टाञ्जलियुतो भूयोवाच कृष्णपदाम्बुजे ॥

गर्ग उवाच ।

हे कृष्ण जगतां नाथ भक्तानां भयभञ्जन । प्रसन्नो भव मामीदा देहि दास्यं पदाम्बुजे ॥
त्वत्पित्रा मे धनं दत्तं तेन मे किं प्रयोजनम् । देहि मे निश्चलां भक्तिं भक्तानामभयप्रद

अणिमादिकसिद्धिषु योगेषु मुक्तिषु प्रभो । ज्ञानतत्त्वेऽमरत्वेवा किञ्चिन्नास्ति स्पृहामम
इन्द्रत्वेवा मनुत्वेवा स्वर्गलोकफलेचिरम् । नास्तिमेमनसो वाञ्छा त्वत्पादसेवनंविना
सालोक्यं सार्ष्टिसारूप्ये सामीप्यैकत्वमीप्सितम् ।

नाहं गृह्णामि ते ब्रह्मन् त्वत्पादसेवनं विना ॥ १६७ ॥

गोलोकेवापि पाताले वासे नास्ति मनोरथः । किन्तु ते चरणाभ्योजे सन्ततं स्मृतिरस्तु मे
त्वन्मन्त्रं शङ्करात् प्राप्य कतिजन्मफलोदयात् । सर्वज्ञोऽहं सर्वदर्शी सर्वत्र गतिरस्तु मे
कृपां कुर्व कृपासिन्धो दीनबन्धो पशाम्बुजे । रक्ष मामभयं दत्त्वा मृत्युर्मे किं करिष्यति
सर्वेयामीश्वरः सर्वस्त्वत्पादाम्भोजसेवया । मृत्युञ्जयोऽस्तकारश्च बभूव योगिनांशुः
ब्रह्मा विधाता जगतां त्वत्पादाम्भोजसेवया । यस्यैकदिषसे ब्रह्मन् पतन्तीन्द्राश्चतुर्दश
त्वत्पादसेवया धर्मः साक्षी च सर्वकर्मणाम् ।

पाता च फलदाता च जित्वा कालं सुदुर्जयम् ॥ २०३ ॥

सहस्रवदनः शेषो पत्पादाम्बुजसेवया । धत्ते सिद्धार्थवद्विश्वं शिवः कण्ठे चिपं यथा ॥
सर्वसम्पद्विधात्रीया देवीनाञ्च परात्परा । करोति सततंलक्ष्मीः केशैस्त्वत्पादमार्जनम्
प्रकृतिर्योजरूपा सा सर्वेषां शक्तिरूपिणी । स्मरं स्मरं त्वत्पदाब्जं बभूव तत्परा धरा
पार्वती सर्वरूपासा सर्वेषां बुद्धिरूपिणी । त्वत्पादसेवया कान्तं ललाभ शिवमीश्वरम्

चिदाधिष्ठात्री देवी या ज्ञानमाता सरस्वती ।

पूज्या बभूव सर्वेषां संपूज्य त्वत्पदाम्बुजम् ॥ २०८ ॥

सावित्री वेदजननी पुनाति भुवनत्रयम् । ब्रह्मणो ब्राह्मणानाञ्च मतिस्त्वत्पादसेवया ॥
क्षमा जगद्भिर्तुञ्च रत्नगर्भा वसुन्धरा । प्रसूतिः सर्वशस्यानां त्वत्पादपद्मसेवया ॥
राधाममांशसम्भूता तव तुल्याचतेजसा । स्थित्वा वक्षसितेपादं सेवतेऽन्यस्यकाकया
यथा शर्वादयो देवा देव्यः पशूदयो यथा । सनाथं कुर्व मामीश ईश्वरस्य समाठ्ठा ॥
न यास्यामि गृहं नाथ न गृह्णामि धनं तव । कृत्वा मां रक्ष पादाब्जसेवायां सेवकंरतम्
इति स्तुत्वा साधुनेत्रः पपात चरणे हरेः । करोद् च भृशं भक्त्यापुलकाञ्चितविग्रहः ॥

मार्गस्य वचनं श्रुत्वा जहास भक्तपत्सलः ।

उवाच तं स्वयं कृष्णो मयि ते भक्तिरस्त्विति ॥ २१५ ॥

इदं गर्गकृतं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं य पठेन्नरः । दृढां भक्तिं हरेर्दास्यं स्मृतिञ्च लभते ध्रुवम्
जन्ममृत्युजरारोगशोकमोहादिसङ्कुटात् । तीर्णो भवति श्रीकृष्णदाससेवनतत्परः ॥
कृष्णस्य सह कालञ्च कृष्णसार्द्धञ्च मोदते । कदाचिन्न भवेत्तस्य विच्छेदो हरिणा सह
श्रीनारायण उवाच ।

हरिं मुनिः स्तनं कृत्वा इदो नन्दाय तं मुदा । उवाच तं गृहं यामि कुर्वाहामिति बल्लभ
अहो विचित्रं संसारो मोहजालेन वेष्टितः । सम्मीलनञ्च विरहो नराणां सिन्धुफेनवत्
गर्गस्य घनं ध्रुत्वा हरोद मन्द एव च । सखिच्छेदो हि साधूनां मरणादतिरिच्यते ॥
सर्वशिष्यैः परिवृतं मुनीन्द्रं गन्तुमुद्यतम् । सर्वे तन्दादयो गोपा रुदन्तो गोपिकास्तदा
प्रणेमुः परमप्रीत्या चक्रुस्तं चिनयं मुने । दत्त्वाशिषं मुनिश्रेष्ठो जगाम मथुरां मुदा ॥
ऋपयो मुनयश्चैव बन्धुवर्गाश्च बल्लभाः । सर्वे जगमुर्धनैः पूर्णाः स्वालयं दृष्टमानसाः ॥

प्रजगमुर्वन्दिनः सर्वे परिपूर्णमनोरथाः ।

मिष्टद्रव्यांशुकोत्कृष्टतुरगस्वर्णभूषणैः ॥ २१५ ॥

आकण्ठपूर्णा भुक्त्या च भिक्षुका गन्तुमक्षमाः ।

स्वर्णचक्रभरोद्रेकपरिधान्ता मुदान्विताः ॥ २१६ ॥

सुमन्दगामिनः केचित् केचिदुभूमी च शेरते । केचिद्वर्त्मनि तिष्ठन्तश्चोत्तिष्ठन्तश्च केचन
केचिदूपुः प्रमुदिता हसन्तस्तत्र केचन । कपर्दकानां घस्तूनां शेषांश्चोर्वरितान् बहून् ॥
केचित्तानादबुः स्थित्वा दर्शयन्तश्च केचन । केचिन्नृत्यं प्रकुर्वन्तो गायन्तस्तत्र केचन
केचिदुपहृविषा गाथाः कथयन्तः पुरातनाः । मस्तश्चेतसगरमान्धातृणाञ्च भूभृताम् ॥
उत्तानपादनहुपनलादीनाञ्च याः कथाः । श्रीरामस्याश्वमेधस्य रन्तिदेवस्य कर्मणाम् ॥

येषां येषां नृपाणाञ्च श्रुत्वा वृद्धमुपात् कथाः ।

कथयन्तश्च ताः केचित् श्रुतवन्तश्च केचन ॥ २१७ ॥

स्थायं स्थायं गताः केचित् स्वापं स्थापञ्च केचन ।

एवं सर्वे प्रमुदिताः प्रजप्सुः स्वालयं मुदा ॥ २१८ ॥

दृष्टो नन्दो यशोदा च बालङ्कृत्वा च वक्षसि । तस्थौ स्वमिन्दरे रम्ये कुबेरभवनोपमे
पदं प्रवर्द्धतौ बालौ शुक्लचन्द्रकलोपमौ । गवां पुच्छञ्च मित्तिञ्च धृत्वा चोत्तस्थतुमुदा
शब्दाद्धं वा तद्वर्द्धंवा क्षमौ यक्तुं दिने दिने । पित्रोर्हर्षञ्च घर्द्धन्ती गच्छन्ती प्राङ्गणे मुने

बालो द्विपादं पादं वा गन्तुं शक्तो बभूव ह ।

गन्तुं शक्तो हि जानुभ्यां प्राङ्गणे वा गृहे हरिः ॥ २३७ ॥

वर्षाधिको हि वयसा कृष्णात्सङ्कर्षणः स्वयम् ।

ततो मुदं वर्द्धयन्तौ वर्द्धितौ च दिने दिने ॥ २३८ ॥

प्रजन्तौ गोकुले बालौ प्रकृष्टगमने क्षमौ । उक्तवन्तौ स्फुटं वाक्यं मायाबालकविग्रहौ
गर्गो जगाम मधुरां वसुदेवाश्रमं मुने । स तं ननाम पप्रच्छ पुत्रयोः कुशलं तयोः ॥
मुनिस्तं कथयामास कुशलं सुमहोत्सवम् । आनन्दाश्रुनिमग्नश्च धृतमात्राद् बभूव ह ॥
देवकी परमप्रीत्या पप्रच्छ च पुनः पुनः । आनन्दाश्रुनिमग्ना सा करोद च मुहुर्मुहुः ॥
गर्गस्तावाशिपं दत्त्वा जगाम स्वालयं मुदा । स्वगृहे तस्थतुस्तौ च कुबेरभवनोपमे ॥
यत्र कल्पे कथा चैयं तत्र त्वमुपवर्द्धणः । पञ्चाशत्कामिनीनाञ्च पतिर्गन्धर्वपुङ्गवः ॥
तासां प्राणाधिकस्त्वञ्च शृङ्गारनिपुणोयुवा । ततोऽभूर्नृद्वयः शपाद्ददासीपुत्रोद्विजस्यच
ततोऽधुना ब्रह्मपुत्रो वैष्णवोच्छिष्टभोजनान् ।

सर्वदर्शी च सर्वज्ञः स्मारको हरिर्सेवया ॥ २४६ ॥

कथितं कृष्णचरितं नामान्नप्राशनादिकम् । जन्ममृत्युजरानिज्जमपरं कथयामि ते ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे कृष्णान्नप्राशनं

नामकरणप्रस्तावो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीकृष्णबालचरित्रवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा नन्दपत्नी च स्नानार्थं यमुनां ययौ । गव्यपूर्णं गृहं दृष्ट्वा जहास मधुसूदनः ॥१॥
दधिदुग्धाज्यतक्रञ्च नवनीतं मनोरमम् । गृहस्थितञ्च यत्किञ्चिच्चखाद मधुसूदनः ॥२॥
मधु हैयङ्गवीनंयत्स्वस्तिकंशकटस्थितम् । भुञ्ज्या पीत्वांशुकैर्वक्त्रसंस्कारं कर्त्तुमुद्यतम्
ददर्श बालक गोपी स्नात्वागत्य स्वमन्दिरम् ।
गव्यशून्यं भग्नभाण्डं मध्वादिरिक्तमाजितम् ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा पप्रच्छ बालांश्च बहो कर्मदमद्भुतम् ।
यूयं घदत सत्यञ्च कृतं केन सुदारुणम् ॥ ५ ॥

यशोदायचनं धृत्वा सर्वमूक्षुश्च बालकाः । चखाद सत्यं बालस्ते नास्मभ्यं वृत्तमेव च
बालानां घवनं धृत्वा चुकोप नन्दगेहिनी । येन गृहीत्वा दुद्राव रक्तपङ्कजलोचना ७ ॥
पलायमानं गोविन्दं गृहीतुं शशाक ह । ध्यानासाध्यं शिवादीनां दुरापमपियोगिनाम्
यशोदा भ्रमणं कृत्वा विश्रान्ता घर्मसंयुता । तस्थौ कोपपरीतात्मा शुष्ककण्ठौष्ठालुका
विश्रान्तां मातरं दृष्ट्वा कृपालुः पुरुषोत्तमः । सन्तस्थौ पुरतो मातुः सस्मितोजगदीश्वरः
करे धृत्वा च तं देवी समानीय स्वमालयम् । वध्या वस्त्रेण वृक्षे च तताड मधुसूदनम्
वध्या कृष्णं यशोदा सा जगाम स्वालयं प्रति । हरिस्तस्थौ वृक्षमूले जगतां पतिरीश्वरः
श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण सहसा तत्र नारद । पपात वृक्षः शैलामः शब्दं कृत्वा भयानकम् ॥
सुवेशः पुरुषो दिव्यो वृक्षादाविर्वभूव ह । दिव्यस्यन्दनमाख्य जगाम स्वालयं पुरः ॥
प्रणम्य जगतीनाथं शातकुम्भपरिच्छदम् । किशोरः सस्मितो गोरो रत्नालङ्कारभूषितः
सा वृक्षपतनं दृष्ट्वा भिया त्रस्ता व्रजेश्वरी । कोडे चकार बालतं रुदन्तं श्यामसुन्दरम्
आजमुर्गाकुलस्थाश्च गोपा गोप्यश्च तद्गृहम् ।

यशोदां भर्त्सयामासुः शान्तिं चक्रुः शिशोर्मुदा ॥ १७ ॥

अत्यन्तस्थविरे काले तनयोऽयं बभूव ह ।

धनं धान्यञ्च रत्नं चा तत्सर्वं पुत्रहेतुकम् ॥ १८ ॥

सुमतिर्नास्ति ते सत्यं क्लृप्तं नन्दप्रजेश्वरि ।

न भक्षितं यत्पुत्रेण तत् सर्वं निष्फलं भुवि ॥ १९ ॥

पुत्रं यदध्वा गन्धहेतोर्घृक्षमूले च निष्ठुरे ।

गृहकर्मणि व्यव्रायां वैधातु वृक्षः पपात ह ॥ २० ॥

वृक्षस्य पतनाद्गोपीभाग्याद् बालोऽपि जीवितः ।

प्रनष्टे बालके मूढे वस्तूनां किं प्रयोजनम् ॥ २१ ॥

आशिषं युयुत्सुर्षिप्रा वन्दिनश्च शुभावहाम् ।

द्विजेन कारयामासुर्नामसङ्कीर्त्तनं हरं ॥ २२ ॥

एवं कृत्वा जनाः सर्वे प्रययुर्निजमन्दिरम् ।

उवाच पत्नी नन्दश्च रक्तपङ्कजलोचनः ॥ २३ ॥

नन्द उवाच ।

यास्यामि तीर्थमद्यैव कण्ठे कृत्वा तु बालकम् ।

अथवा त्वं गृहाद्गच्छ त्वया मे किं प्रयोजनम् ॥ २४ ॥

शतकृपाधिका वापी शतवापीसमं सरः । सरःशताधिको यद्गः पुत्री यद्गशताधिकः ॥

तपोदानोद्भवं पुण्यं जगन्मन्तरसुखप्रदम् । सुखप्रदोऽपि सत्पुत्र इहैव च परत्र च ॥

पुत्रादपि परो बन्धुर्न भूतो न भविष्यति ॥ २६ ॥

एषमुक्त्वा स्वभार्याञ्च तस्थौ नन्दः स्वमन्दिरे । यशोदा रोहिणीचैव नियुक्ते गृहकर्मणि

नारद उवाच ।

सुवेशःपुरुषः फो चा वृक्षरूपी च गोकुले । भगवन् हेतुना केन वृक्षत्वं समावाप ॥ ॥

नारायण उवाच ।

कुयेरस्तनयः श्रीमान्नाम्ना यो नलकूपरः । जगाम नन्दनधनं क्रीडार्थं सह रम्भया ॥ २६ ॥

निर्जने सरसस्तीरे पुष्पोद्याने मनोहरे । चटवृक्षसमीपे च सौरभे पुष्पवायुना ॥ ३० ॥

विधाय पुष्पशयनं रत्नदीपैश्च दीपितम् । चन्दनायुष्कस्तूरीकुङ्कुमद्रवसंयुतम् ॥ ३१ ॥

परितः पुष्पमाल्यैश्च क्षौमवस्त्रैश्च वेष्टितम् ।

तत्र रम्भां समानीय विजहार यथेच्छया ॥ ३२ ॥

शृङ्गाराष्ट्रकारञ्च विपरीतादिकं सुखम् । सुग्वनं पद्मप्रकारञ्च यथास्थानं निरूपितम् ॥

भङ्गप्रत्यङ्गसंयोगत्रिविधाश्लेषणं मुदा । नखदन्तकर्णकीडां चकार रसिकेश्वरः ॥ ३४ ॥

जलात् स्थले स्थलात्तोये कामशास्त्रविशारदः । रतिभोगंप्रकुर्वन्तददर्शदेवलो मुनिः ॥

नम्रां रम्भां मुक्तकेशीं पीनभ्रोजिपयोधराम् । नखदन्तक्षताङ्गीञ्च पुलकाश्रितविग्रहाम् ॥

पश्यन्तीं प्राणनाथञ्च पश्यन्तं सस्मितं मुदा । चक्रभूभङ्गयुक्ताञ्च कामुकीञ्च ददर्श ताम्

रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् । विचित्ररत्नमाल्यैश्च पुष्पमाल्यैश्च भूषिताम्

किङ्किणीजालसंयुक्तां सिन्दूरविन्दुसंयुताम् ।

तया युक्तं पुलकितं नोत्तिष्ठन्तं स्मरान्वितम् ॥ ३६ ॥

वृक्षत्वं याहि पाविष्टेत्युवाच मुनिपुङ्गवः । शशाप रम्भां कामार्त्तां मानुषीत्वं भवेति च

जनमेजयस्य सुभोग्या भविता कामिनीति च । त्वमेव गोकुलं गच्छ वृक्षरूपी भवेति च

श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण पुनरायास्यसि गृहम् । रम्भेत्वमिन्द्रसंयोगात् पुनरायास्यसि ध्रुवम्

इत्येवमुक्ता स मुनिर्जगाम निजमन्दिरम् । कुवेरतनयः ध्रोणान् स जगाम निजालयम् ॥

इत्येवं फथितं विप्र रम्भाख्यानं वदामि ते । सुचन्द्रस्य गृहे रम्भा ललाभ जन्म भारते

कन्या लक्ष्मीस्वरूपा च यभूव सुन्दरी घरा ।

ताञ्च सालङ्कृतां कृत्वा सुचन्द्रो नृपतीश्वरः ॥ ४५ ॥

नानाकौतुकसंयुक्तां ददौ जन्मेजयाय च । जन्मेजयस्य सुभगा यभूव महिषी घरा ॥

स्थाने स्थाने निर्जने च राजा रमे तथा सद्यः । एकश नृपतिश्रेष्ठ अश्वमेधेन दीक्षितः ॥

अश्वसङ्गोपनं कृत्वा तस्थौ शक्रश्च मन्दिरे । यद्वाय्वं रुचिरं मत्वा कौतुकेन च सुन्दरी

द्रष्टुं जगाम सा साध्वी चाश्वमेकाकिनी मुदा ।

शक्रोऽश्वनिकटे भूत्वा धर्ययामास तां सतीम् ॥ ४६ ॥

तया निवार्यमाणश्च रेमे तत्र तया सह । मूर्च्छामवाप शक्रश्च वुवुधे न दिवानिशम् ५०

सा च सम्भोगमात्रेण देहं तत्याज योगतः ।

नृपस्य लज्जया भीत्या शक्रः स्वर्गं जगाम ह ॥ ५१ ॥

राजा श्रुत्वा मृतां दृष्ट्वा विललाप भृशं मुहुः ।

यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो ददौ पूर्णाञ्च दक्षिणाम् ॥ ५२ ॥

रम्भा च मानवं देहं त्यक्त्वा स्वर्गं जगाम ह । इत्येवं कथितं सर्वं वृक्षार्जुनविभञ्जनम्

नलकुचरमोक्षञ्च रम्भायाश्च महामुने ॥ ५३ ॥

पुण्यदं कृष्णविरितं जन्ममृत्युजरापहम् । इत्येवं कथितं सर्वमपरं कथयामि ते ॥ ५४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

वृक्षार्जुनभञ्जनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

पञ्चदशोऽध्यायः

राधास्वरूपवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा कृष्णसहितो नन्दो वृन्दावनं ययी । रात्रोपवनभाण्डीरे चारयामास गोधनम् ॥

सरःसुस्यादुतोयश्च पाययामास तत् पपी । उवास वृक्षमूले च बालं कृत्वा स्ववक्षसि

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो मायामानुषविग्रहः । चकार मायया कस्मान्मेघाच्छन्नं नभो मुने

मेघावृतं नभो दृष्ट्वा श्यामलं काननान्तरम् । भङ्गभाषातं महाशब्दं घञ्जशब्दश्च दारुणम्

वृष्टिधारामतिस्थूलं कम्पमानांश्च पादपान् ।

दृष्ट्वेवं पतितस्कन्धानन्दो भयमवाप ह ॥ ५ ॥

कथं यास्यामि गोवत्सान् विहाय स्वाश्रमं घत ।

गृहं यदि न यास्यामि भविता बालकस्य किम् ॥ ६ ॥

पयं नभे प्रचदति करोद श्रीहरिस्त्विदा । पयोमिया इरिचैव पितुः कण्ठं दधार सः ॥
 एतस्मिन्नन्तरे राधा जगाम रुष्णसन्निधिम् । गमनं कुर्वती राजहंसखञ्जनाञ्जनम् ॥८॥
 शरत्पार्वणचन्द्राभामुष्टकत्रा मनोहरा । शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचना ॥९॥
 परितस्तारकापक्षमघिचित्रकज्जलोज्ज्वला । खगेन्द्रबन्धुचारुश्रीशंसानाशकनासिका ॥
 तन्मध्यस्थलशोभाहस्यूलमुक्ताफलोज्ज्वला । कवरीवेशसंयुक्ता मालतीमादयवेष्टिता ॥
 श्रीममध्याह्नमार्तण्डप्रभामुष्टककुण्डला । पक्वविम्बफलानाञ्च श्रीमुष्टाधरयुग्मका १२

मुक्तापङ्क्तिप्रभान्तैकदन्तपङ्क्तिसमुज्ज्वला ।

ईपत्प्रफुल्लकुन्दानां सुप्रभानाशकस्मिता ॥ १३ ॥

फस्तूरीचिन्दुसंयुक्तसिन्दूरचिन्दुभूषिता । कपालं मल्लिकायुक्तं विभ्रती श्रीयुतं सती ॥
 सुचारुवर्तुलाकारकपोलपुलकान्विता । मणिरत्नेन्द्रसारणां हारोरःस्थलभूषिता ॥१५॥
 सुचारुश्रीफलयुगकठिनस्तनसङ्गता । पत्रावलीधिया युक्ता दीप्ता सद्रत्नतेजसा ॥१६॥
 सुचारु वर्तुलाकारमुदरं सुमनोहरम् । विचित्रत्रिचलीयुक्तं निम्ननाभिञ्च विभ्रती ॥१७॥
 सद्रत्नसाररचितमेखलाजालभूषिता । कामास्त्रसारभूभङ्गयोगीन्द्रचित्तमोहिनी ॥१८॥
 कठिनधोणियुगलं धरणीधरनिन्दितम् । स्थलपद्मप्रभामुष्टवरणं दधती मुदा ॥१९॥
 रत्नभूषणसंयुक्तं यावकद्रवसंयुतम् । मणीन्द्रशोभासंमुष्टसालक्तकपुनर्भयम् ॥ २० ॥
 सद्रत्नसाररचितम्वणम्लीररञ्जितम् । रत्नकङ्कणकेयूरचारुशङ्खविभूषिता ॥ २१ ॥
 रत्नागुलीयनिकषहिशुद्धांशुकोमला । चारुचम्पकपुष्पाणां प्रभामुष्टकलेवरा ॥ २२ ॥
 सहस्रदलसंयुक्तक्रीडाकमलमुज्ज्वलम् । श्रीमुखश्रीदर्शनार्थं विभ्रती रत्नदर्पणम् ॥२३॥

दृष्ट्वा तां निर्जने नन्दो विस्मयं परमं ययौ ।

चन्द्रकोटिप्रभामुष्टां भासयन्ती दिशो दश ॥ २४ ॥

ननाम ता साधुनेत्रो भक्तिमघात्मकन्धरः ।

जानामि त्वां गर्गमुखात् पद्माधिकप्रियां हरेः ॥ २५ ॥

जानामीमं महाविष्णोः परं निर्गुणमच्युतम् । तथापि मोहितोऽहञ्च मानवो विष्णुमायया
 गृहाण प्राणनाथञ्च गच्छ भदे यथासुखम् । पञ्चादास्यसि मत्पुत्रं कृत्वा पूर्णमनोरथम्

इत्युक्त्वा प्रददौ तस्यै रुदन्तं बालकं भिया ।

जग्राह बालकं राधा जहास मधुरं मुखात् ॥ २८ ॥

उवाच नन्दं सा यत्नाच्च प्रकाश्यं रहस्यकम् । अहं दृष्ट्वा त्वयानन्दकतिजन्मफलोदयात्
प्राज्ञस्त्वं गर्गवचनात्सर्वं जानासि कारणम् । अकथ्यमावयोगोर्गोप्यं चरित्रं गोकुले ब्रज
धरं वृष्ण व्रजेश त्वं यत्र मनसि चाञ्छितम् । ददामि लीलया तुभ्यं देवानामपि दुर्लभम्
राधिकावचनं श्रुत्वा तामुवाच व्रजेश्वरः । युषयोश्चरणेभक्तिं देहि नान्यत्र मे स्पृहा ॥

युषयोः सन्निधौ वासं दास्यसि त्वं सुदुर्लभम् ।

आवाभ्यां देहि जगतामभ्युक्ते परमेश्वरि ॥ ३३ ॥

श्रुत्वा नन्दस्य वचनमुवाच परमेश्वरी । दास्यामि दास्यमतुलमिदानीं भक्तिरस्तु ते ॥
आवयोश्चरणाभ्युक्ते युषयोश्च दिधानिशम् । प्रकुलहृदये शश्वत् स्मृतिरस्तु सुदुर्लभा

मायायुवाञ्च प्रच्छन्नौ न करिष्यति मदरात् ।

गोलोके यास्यथान्ते च विहाय मानवी तनुम् ॥ ३६ ॥

एवमुक्त्वा तु सानन्दकृत्वा कृष्णं स्पृशसि । दूरं निनाय श्रीकृष्णं बाहुभ्याञ्च यथेप्सितम्
कृत्वा वक्षसि तं कामात् श्लेपं श्लेपं चुचुभ्य च ।

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी सस्मार रासमण्डलम् ॥ ३८ ॥

एतस्मिन्नन्तरं राधा मायासद्गलमण्डपम् । ददर्श रत्नफलशशतेन च समन्वितम् ॥

नानाविचित्रचित्रादयः चित्रकाननशोभितम् ।

सिन्दूरं कारमणिभिः स्तम्भसंघैर्विराजितम् ॥ ४० ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवयुक्तया । संयुक्तं मालतीमालासमूहपुष्पशय्यया ॥ ४१ ॥

नानाभोगसमायुक्तं दिव्यदर्पणसंयुतम् । मणीन्द्रमुक्तामणिकयमालाजालैर्विभूषितम् ॥

मणीन्द्रसाररचितफपाटेन समन्वितम् । भूषितं भूषितैर्वस्त्रैः पताकानिकरैर्वरैः ॥

कुङ्कुमाकारमणिभिः सप्तसोपानसंयुतम् ॥ ४३ ॥

युक्तं पद्मपदसंयुक्तैः पुष्पोद्यानञ्च पुष्पितैः । सा देवी मण्डपं दृष्ट्वा जगन्मान्यन्तरं मुदा
ददर्श तत्र ताम्बूलं कपूरादिसमन्वितम् । जलञ्च रत्नकुम्भस्थं स्थच्छं शीतं मनोहरम्

सुधामधुन्या पूर्णानि रत्नकुम्भानि नारद । पुरय कमनीयञ्च किशोरश्यामसुन्दरम् ॥
 कोटिकन्दर्पलीलाभ चन्दनेन विभूषितम् । शयान पुष्पशय्याया सस्मित सुमनोहरम् ॥
 पीतवस्त्रपरीधान प्रसन्नवदनेक्षणम् । मणीन्द्रसारनिर्माण कण्ठमञ्जीररञ्जितम् ॥ ४८ ॥
 सद्रत्नसारनिर्माणकेयूरचलयान्वितम् । मणीन्द्रकुण्डलाभ्याञ्च गण्डस्थलविराजितम् ॥
 कांस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्ष स्थलसमुज्ज्वलम् ।

शरत्पार्वणचन्द्रास्यप्रभामुष्टमुखोज्ज्वलम् ॥ ५० ॥

शरत्प्रफुल्लकमलप्रभामोचनलोचनम् । मालतीमाल्यसश्लिष्टशिखिपिच्छशुशोभितम् ॥
 त्रिचङ्कचूडा विश्रन्त पश्यन्त रत्नमन्दिरम् । क्रोड बालकशून्यञ्च दृष्ट्वा त नवयौवनम् ॥
 सर्वस्मृतिस्वरूपा सा तथापि विस्मय ययौ । रूपरासेश्वरी दृष्ट्वा मुमोह सुमनोहरम् ॥
 कामाचक्षुश्चकोराभ्या मुखचन्द्र पपौ मुद्रा । निमेषरहिता राधा नवसङ्गमलालसा ॥
 पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी सस्मिता मदनातुरा । तामुवाच हरिस्तत्र स्मेराननसरोरुहाम् ॥ ५५ ॥
 नवसङ्गमयोग्याञ्च पश्यता वक्रचक्षुषा ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

राधे स्मरसिगोलोकवृत्तान्त सुरससदि ॥ ५६ ॥

अद्य पूर्णं करिष्यामि स्वीकृत यत् पुरा प्रिये । त्वमेप्राणाधिकाराधेप्रेयसी च वरानने ॥
 यथा त्वञ्च तथाऽहञ्चभेदोहिनावयौध्रुवम् । यथाक्षीरेबधावल्ययथाग्नौदाहिकासती ॥
 यथा पृथिव्या गन्धश्च तथाहृत्त्वयिसन्ततम् । विनामृदाघटकर्तुं विनास्वर्णेनकुण्डलम् ॥
 कुलाल स्वर्णकारश्च न हि शक्नोति कदाचन । तथा त्वया विना सृष्टिमहद्भर्तुं नचक्षम ॥
 सृष्टेराधारभूता त्व वीजरूपोऽहमच्युत । आगच्छ शयने सार्ध्वीकुस्वक्ष स्थलेहिमाम् ॥
 त्व मे शोभास्वरूपासि देहस्य भूषण यथा । तृष्णवदन्तिमालोकास्त्वयैवरहितयदा ॥
 श्रीकृष्णश्च तदस्तेऽपित्वयैव सहितपरम् । त्वञ्चश्रीस्त्वञ्चसम्पत्तिस्त्वमाधारस्वरूपिणी ॥
 सर्वशक्तिस्वरूपासिसर्वरूपोऽहमक्षर । यदा तेज स्वरूपोऽहतेजोरूपासि त्व तदा ॥ ६४ ॥
 न शरीरी यदाहञ्च तदा त्वमशरीरिणी । सर्ववीजस्वरूपोऽह सदा योगेन सुन्दरि ॥
 त्वञ्च शक्तिस्वरूपा च सर्वस्त्रीरूपधारिणी ।

इत्युक्त्वा प्रददौ तस्यै रुदन्तं बालकं भिया ।

जग्राह बालकं राधा जहास मधुरं मुक्तात् ॥ २८ ॥

उघाच नन्दं सा यत्नाच्चप्रकाश्यं रहस्यकम् । अहं दृष्ट्वा त्वयानन्दकतिजन्मफलोदयात्
प्राज्ञस्त्वं गर्गवचनात्सर्वं जानासि कारणम् । अकथ्यमावयोगोऽप्यं हरित्रं गोकुले प्रज
घरं वृष्ण व्रजेश त्वं यत्रे मनसि वाञ्छितम् । ददामि लीलया तुभ्यं देवानामपिबुलंभम्
राधिकावचनं ध्रुत्वा तामुघाच व्रजेश्वरः । युवयोश्चरणोभक्तिं देहि नान्यत्र मे स्पृहा ॥

युवयोः सन्निधौ वासं दास्यसि त्वं सुदुर्लभम् ।

आवाभ्यां देहि जगतामम्बिके परमेश्वरि ॥ ३३ ॥

ध्रुत्वा नन्दस्य वचनमुघाच परमेश्वरी । दास्यामि दास्यमतुलमिदानीं भक्तिरस्तु ते ॥

आवयोश्चरणाम्भोजे युवयोश्च विधानिशम् । प्रफुल्लहृदये शश्वत् स्मृतिरस्तु सुदुर्लभा

मायायुवाञ्च प्रच्छन्नौ न करिष्यति महारात् ।

गोलोके यास्यथान्ते च विहाय मानवीं तनुम् ॥ ३६ ॥

एवमुक्त्वा तु सानन्दकृत्वा कृष्णं स्वयक्षसि । दूरनिनायध्रीकृष्णं बाहुभ्याञ्चयथेप्सितम्

कृत्वा वक्षसि तं कामात् श्लेपं श्लेपं चुबुम्ब्य च ।

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी सस्मार रासमण्डलम् ॥ ३८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राधा मायासद्रत्नमण्डपम् । ददर्श रत्नकलशशतैर्न च समन्वितम् ॥

नानाविविन्नचित्राढ्यं चित्रकाननशोभितम् ।

सिन्दूराकारमणिभिः स्तम्भसंघैर्विराजितम् ॥ ४० ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रव्ययुक्तया । संयुक्तं मालतीमालासमूहपुष्पशय्याया ॥ ४१ ॥

नानामोगसमायुक्तं दिव्यदर्पणसंयुतम् । मणीन्द्रमुक्तामणिक्वमालाजालैर्विभूषितम् ॥

मणीन्द्रसाररचितकपाटेन समन्वितम् । भूषितं भूषितैर्वस्त्रैः पताकानिकरैर्वरेः ॥

कुङ्कुमाकारमणिभिः सप्तसोपानसंयुतम् ॥ ४३ ॥

युक्तं पद्मपदसंयुक्तैः पुष्पोद्यानञ्च पुष्पितैः । सा देवी मण्डपं दृष्ट्वा जगामान्यन्तरं मुदा

ददर्श तत्र ताम्बूलं कर्पूरादिसमन्वितम् । जलञ्च रत्नकुम्भस्थं स्वच्छं शीतं मनोहरम्

सुधामधुभ्यां पूर्णानि रत्नकुम्भानि नायद । पुरुषं कमनीयञ्च किशोरश्यामसुन्दरम् ॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं चन्दनेन विभूषितम् । शयानं पुष्पशय्याया सस्मितं सुमनोहरम् ॥
पीतवस्त्रपरीधानं प्रसन्नवदनेक्षणम् । मणीन्द्रसारनिर्माणं कणन्मञ्जीररञ्जितम् ॥ ४८ ॥
सद्रत्नसारनिर्माणकेयूरयलयान्वितम् । मणीन्द्रकुण्डलाभ्याञ्च गण्डस्थलविराजितम् ॥

कौस्तुभेन मणीन्त्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ।

शरत्पार्वणचन्द्रास्यप्रभामुष्टमुज्ज्वलम् ॥ ५० ॥

शरत्प्रफुल्लकमलप्रभामोचनलोचनम् । मालतीमाल्यसंश्लिष्टशिखिपिच्छशुशोमितम् ॥
त्रिघङ्गूचूडं विभ्रन्तं पश्यन्तं रत्नमन्दिरम् । क्रोडं बालकशून्यञ्च दृष्ट्वा तं नवयौघनम् ॥
सर्वस्मृतिस्वरूपा सा तथापि विस्मयं ययौ । कुरंगसेश्वरी दृष्ट्वा मुमोह सुमनोहरम् ॥
कामाद्यधुव्यकोराम्यां मुखचन्द्रं ययौ मुदा । निमेषरहिता राधा नयसङ्गमलालता ॥
पुलकाङ्कितसर्पाङ्गी सस्मिता मदनातुरा । तामुवाच हरिस्तत्र स्मेराननसरोदहाम् ॥ ५५ ॥
नयसङ्गमयोग्याञ्च पश्यती पक्वक्षुषा ।

श्रीरुण उवाच ।

राधे स्मरसिगोलोकवृत्तान्तं सुरसंसदि ॥ ५६ ॥

अथ पूर्णं करिष्यामि स्वीकृतं यत् पुरा प्रिये । त्वमेप्राणाधिकाराधेप्रेयसी च वरानने ॥
यथा त्वञ्च तथाऽहञ्चभेदोद्दिनाययोध्रुवम् । यथाक्षीरेवधायल्पयन्धाग्नौदाहिकासती ॥
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहंत्ययिसन्ततम् । विनामृदाघटं कर्तुं विनास्वर्गेन कुण्डलम् ॥
कुलालः स्वर्णकारश्च न हि शक्नोति कदाचन । तथा त्वया विना सृष्टिमहद्भूतं न चक्षमः ॥
सृष्टेराधारभूता त्वं बीजरूपोऽहमच्युतः । आगच्छ शयने सार्धार्थकुर्यक्षःस्थलेहिमाम् ॥
त्वं मे शोभास्वरूपासि देहस्य भूषणं यथा । रुष्णंवदन्तिमालोकास्त्वयैपरहितं यदा ॥
श्रीरुणञ्च तदस्तेऽपित्येषै सहितं परम् । त्वञ्चश्रीस्त्वञ्चसम्पत्तिस्त्वमाधारस्वरूपिणी
सर्वशक्तिस्वरूपासि सर्वरूपोऽहमक्षरः । यदा तेजःस्वरूपोऽहतेजोरूपासि त्वं तदा ॥ ६४ ॥
न शरीरी यदाहञ्च तदा त्वमशरीरिणी । सर्वबीजस्वरूपोऽहं सदा योगेन सुन्दरि ॥

त्वञ्च शक्तिस्वरूपा च सर्वव्रीक्षधारिणी ।

इत्युक्त्वा प्रददौ तस्यै रुदन्तं बालकं मिया ।

जग्राह बालकं राधा जहास मधुरं मुखात् ॥ २८ ॥

उवाच नन्दं सा यत्नाञ्जप्रकाश्यं रहस्यकम् । अहं दृष्ट्वा त्वयानन्दकतिजन्मफलोदयात्
प्राज्ञस्त्वं गर्गवचनात्सर्वं जानासि कारणम् । अकथ्यमावयौर्गोप्यं चरित्रं गोकुले व्रज
धरं वृष्णु व्रजेश त्वं यत्रे मनसि वाञ्छितम् । ददामि लीलया तुभ्यं देवानामपि दुर्लभम्
राधिकावचनं श्रुत्वा तामुवाच व्रजेश्वरः । युवयोश्चरणेभक्तिं देहि नान्यत्र मे स्पृहा ॥

युवयोः सन्निधौ वासं दास्यसि त्वं सुदुर्लभम् ।

आवाभ्यां देहि जगतामग्निके परमेश्वरि ॥ ३३ ॥

श्रुत्वा नन्दस्य वचनमुवाच परमेश्वरी । वास्यामि दास्यमतुलमिदानीं भक्तिरस्तु ते ॥
आवयोश्चरणाम्भोजे युवयोश्च दिवानिशम् । प्रकुलहृदये शश्वत् स्मृतिरस्तु सुदुर्लभा
मायायुवाञ्च प्रच्छन्नौ न करिष्यति महरात् ।

गोलोके यास्यथान्ते च विहाय मानवी तनुम् ॥ ३६ ॥

एवमुक्त्वा तु सानन्दं कृत्वा कृष्णं स्ववक्षसि । दूरं गताय श्रीकृष्णं बाहुभ्याञ्च यथेप्सितम्
कृत्वा वक्षसि तं कामात् श्लेपं श्लेपं चुचुम्ब च ।

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गा सस्मार रासमण्डलम् ॥ ३८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राधा मायासद्वत्तमण्डपम् । ददर्श रत्नकलशशतेन च समन्वितम् ॥

नानाविचित्रचित्रालयं चित्रकाननशोभितम् ।

सिन्दूराकारमणिभिः स्तम्भसंगैर्विराजितम् ॥ ४० ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमव्रजयुक्तया । संयुक्तं मालतीमालासमूहपुष्पशय्यया ॥ ४१ ॥
नानाभोगसमायुक्तं दिव्यदर्पणसंयुतम् । मणीन्द्रमुकामाणिक्यमालाजालैर्धिभूषितम् ॥
मणीन्द्रसाररचितकपाटेन समन्वितम् । भूषितं भूषितैर्वस्त्रैः पताकानिकरैर्वरेः ॥

कुङ्कुमाकारमणिभिः सप्तसोपानसंयुतम् ॥ ४३ ॥

युक्तं पद्मदसंयुक्तैः पुष्पोद्यानञ्च पुष्पितैः । सा देवी मण्डपं दृष्ट्वा जगामाभ्यन्तरं मुदा
ददर्श तत्र ताम्बूलं कपूरादिसमन्वितम् । जलञ्च रत्नकुम्भस्थं स्वच्छं शीतं मनोहरम्

सुधामधुभ्यां पूर्णानि रत्नकुम्भानि नारद । पुरुषं कमनीयञ्च किशोरश्यामसुन्दरम् ॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं चन्दनेन विभूषितम् । शयानं पुष्पशय्यायां सस्मितं सुमनोहरम् ॥
पीतवस्त्रपरीधानं प्रसन्नवदनेक्षणम् । मणीन्द्रसारनिर्माणं कणन्मञ्जीररञ्जितम् ॥ ४८ ॥
सद्रत्नसारनिर्माणकेयूरचलयान्वितम् । मणीन्द्रकुण्डलाभ्याञ्च गण्डस्थलविराजितम् ॥
कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ।

शरत्पार्वणचन्द्रास्यप्रभामुष्टमुखोज्ज्वलम् ॥ ५० ॥

शरत्प्रफुल्लकमलप्रभामोचनलोचनम् । मालतीमाल्यसंश्लिष्टशिखिपिच्छशुशोभितम् ॥
त्रिचङ्कचूडं विभ्रन्तं पश्यन्तं रत्नमन्दिरम् । कोडं बालकशून्यञ्च दृष्ट्वा तं नवयौवनम् ॥
सर्वस्मृतिस्वरूपा सा तथापि विस्मयं ययौ । रूपरासेश्वरी दृष्ट्वा मुमोह सुमनोहरम् ॥
कामाक्षश्चक्षुकोराभ्यां मुखचन्द्रं पयो मुदा । निमेषरहिता राधा नवसङ्गमलालसा ॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी सस्मिता मदनातुरा । तामुवाच हरिस्तत्र स्मेराननसरोद्वहाम् ॥ ५५ ॥
नवसङ्गमयोग्याञ्च पश्यती वक्त्रक्षुया ।

श्रीरुण उवाच ।

राधे स्मरसिगोलोकवृत्तान्तं सुरसंसदि ॥ ५६ ॥

अथ पूर्णं करिष्यामि स्वीकृतं यत् पुरा प्रिये । त्वमेप्राणाधिकाराधेप्रेयसी च परानते ॥
यथा त्वञ्च तथाऽहञ्चभेदोहिनावयोर्ध्रुवम् । यथाक्षीरेषधाघहयंयथानौदाहिकासती ॥
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहंत्वयिसन्ततम् । विनामृदाघटं कर्तुं विनास्पर्शेनकुण्डलम् ॥
कुलालः स्वर्णकारश्च न हि शक्तः कदाचन । तथा त्वया विना सृष्टिमहद्वर्तुं नचक्षमः ॥
सृष्टेराधारभूता त्वं बीजरूपोऽहमच्युतः । आगच्छ शयने साध्वीकुरुवक्षःस्थलेहिमाम् ॥
त्वं मे शोभास्वरूपासि देहस्य भूषणं यथा । रुण्णवदन्तिमांलोकास्त्वपैवरहितंयदा ॥
श्रीरुणञ्च तदातेऽपित्वयैव सहितंपरम् । त्वञ्चश्रीस्त्वञ्चसम्पत्तिस्त्वमाधारस्त्वरूपिणी ॥
सर्वशक्तिस्वरूपासिसर्वरूपोऽहमक्षरः । यदा तेजःस्वरूपोऽहंतेजोरूपासि त्वं तदा ॥ ६४ ॥
न शरीरी यदाहञ्च तदा त्वमशरीरिणी । सर्वबीजस्वरूपोऽहं सदा योगेन सुन्दरि ॥
त्वञ्च शक्तिस्वरूपा च सर्वस्त्रीरूपधारिणी ।

ममाङ्गांशस्वरूपा त्वं मूलप्रकृतिरोश्वरी ॥ ६६ ॥

शक्त्या बुद्ध्या च ज्ञानेन मया तुल्या चरानने । आचयोर्भेदबुद्धिश्च यः करोति नराधमः
तस्य घासः कालसूत्रे याचञ्चन्द्रदिवाकरो । पूर्वान् सप्त परान् सप्तपुदपान् पातयत्यधः
कौटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम् ।

भजानादाचयोर्निन्दां ये कुर्वन्ति नराधमाः ॥ ६६ ॥

पश्यन्ते नरके घोरे याचञ्चन्द्रदिवाकरो । राशब्दं कुर्वतस्त्रस्तो ददामि भक्तिमुत्तमाम्
धा शब्दं कुर्वतः पश्चाद्यामि श्रवणलोभतः । ये सेवन्ते च दत्त्वा मामुपचारांश्च योऽश
याचञ्जीवनपर्यन्तं या प्रीतिर्जायते मम ॥ ७१ ॥

सा प्रीतिर्मम जायते राधाशब्दास्ततोऽधिका ।

प्रिया न मे तथा राधे राधा चका ततोऽधिकः ॥ ७२ ॥

ब्रह्मानन्तः शिषो धर्मो नरनारायणावृषी । कपिलश्च गणेशश्च कार्तिकेयश्च मत्प्रियः
लक्ष्मीः सरस्वतीदुर्गा सावित्रीप्रकृतिस्तथा । ममप्रियाश्च देवाश्च तस्तथापि न तत्समाः
ते सर्वे प्राणतुल्या मे त्वं मे प्राणाधिका सति ।

मिम्नस्थानस्थितास्ते च त्वञ्च वक्षःस्थले स्थिता ॥ ७५ ॥

या मे चतुर्भुजा मूर्तिर्विभक्तिं वक्षसि प्रियाम् ।

सोऽहं कृष्णस्वरूपस्त्वां विवहामि स्वयं सदा ॥ ७६ ॥

इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णस्तथी तल्पे मनोरमे । उवाच राधिकानाथं भक्तिनम्रात्मकन्धरा
राधिकोवाच ।

स्मरामिसर्वजानामि विस्मरामि कथं बिभो । यस्त्वं वदसि सर्वाहं त्वत्पादाब्जप्रसादतः
ईश्वरस्याप्रियाः केचित् प्रियाश्च कुत्र केचन ।

ये यथा मां न स्मरन्ति तथा तेषु तवाकृपा ॥ ७६ ॥

तृणञ्च पर्वतं कर्तुं समर्थः पर्वतं तृणम् । तथापि योग्यायोग्ये च सम्पत्तौ च समाकृपा
तिष्ठत्यहं शयानस्त्वं कथामिर्व्यतक्षणं गतम् । तत्क्षणञ्च युगसमं नाहं गणयितुं क्षमा
वक्षःस्थले च शिरसि देहि ते चरणाम्युजम् ।

दुनोति मन्मनः सद्यस्त्वदीयचिरहानलात् ॥ ८२ ॥

पुरः पपात मे द्रष्टिस्त्वदीयचरणाम्बुजे । नीता मया न हि क्लेशाद् द्रष्टुमन्यत् कलेवरम्
प्रत्येकमङ्गं द्रष्टव्यं दत्ता शान्ते मुखाम्बुजे । दृष्ट्वा मुखारविन्दञ्च नान्यद्गन्तुं न साक्षमा
राधिकाद्यच्चनं श्रुत्वा जहास पुरुषोत्तमः । तामुवाच हितं तथ्यं श्रुतिस्मृतिनिरूपितम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

न खण्डनोयं तत्तत्र मया पूर्वं निरूपितम् ।

तिष्ठ भद्रे क्षणं भद्रं करिष्यामि तव प्रिये ॥ ८६ ॥

स्वयमनोरथपूर्णस्य स्वयङ्कालः समागतः । यस्य यद्विहितं पूर्वं यत्र काले निरूपितम् ॥

तदेव खण्डितुं राधे क्षमो नाहञ्च को विधिः ।

विधातुश्च विधाताहं येषां यद्वलेखनं कृतम् ॥ ८८ ॥

ब्रह्मावीनाञ्च क्षुद्राणां न तत् खण्ड्यं कदाचन । एतस्मिन्नन्तरै ब्रह्मा जगाम पुरतो हरैः

मालाफमण्डलुकर ईषत्स्मेरचतुर्मुखः । गत्वा ननाम तं कृष्णं प्रतुष्टाव यथागमम् ॥ ९०

साश्वनेत्रः पुलकितो भक्तिप्रवात्मकन्धरः । स्तुत्यान्त्या जगद्धाता जगाम हरिसन्निधिम्

पुनर्नत्वा प्रभुं भक्त्या जगाम राधिकान्तिकम् ।

मूर्ध्ना ननाम भक्त्या च मातुस्तच्चरणाम्बुजे ॥ ९२ ॥

चकार सम्भ्रमेणैव जटाजालेन वेष्टितम् । कमण्डलुजलेनैव शीघ्रं प्रक्षालितं मुदा ॥ ९३

यथागमं प्रतुष्टाय पुटाञ्जलियुतः पुनः ।

ब्रह्मोवाच

हे मातस्त्वत्पदाम्भोजं द्रष्टुं कृष्णप्रसादतः ॥ ९४ ॥

सुदुर्लभञ्च सर्वेषां भारते च विशेषतः । पण्डितैरसहस्राणि तपस्तप्तं पुरा मया ॥ ९५ ॥

भास्करो पुष्करे तीर्थे कृष्णस्य परमात्मनः । आजगाम वरं दातुं वरदाता हरिः स्वयम्

वरं वृणीष्वेत्युक्ते च स्वाभीष्टञ्च वृतं मुदा । राधिकाचरणाम्भोजं सर्वेषामपि दुर्लभम्

हे गुणातीत मे शीघ्रमधुनैव प्रदर्शय । मयेत्युक्तो हरिरयमुवाच मां तपस्विनम् ॥ ९८ ॥

दर्शयिष्यामि काले च घटसैदानीं क्षमेति च ।

न हीश्वराज्ञा विफला तेन द्रष्टुं पदाम्बुजम् ॥ १६ ॥

सर्वेषां वाञ्छितं मातर्गोलोके भास्तेऽधुना ।

सर्वा देव्यः प्रकृत्यंशा जन्याः प्राकृतिका ध्रुवम् ॥ १०० ॥

त्वंकृष्णाङ्गार्धसम्भूतातुल्याकृष्णेनसर्वतः । श्रीकृष्णस्त्वमयंराधात्वंराधाचाहरिःस्वयम्
न हि वेदेषु मे द्रष्टुं इति केन निरूपितम् ।

ब्रह्माण्डाद्वहिरूर्ध्वञ्च गोलोकोऽस्ति यथाम्यके ॥ १०२ ॥

वैकुण्ठध्वाप्यजन्यश्चत्वमजन्यातथाम्यके । यथा समस्तब्रह्माण्डे श्रीकृष्णांशांशजीविनः
तथा शक्तिस्वरूपा त्वं तेषु सर्वेषु संस्थिता ।

पुरुषाश्च हरेरंशास्त्वदंशा निखिलाः स्त्रियः ॥ १०४ ॥

भात्मना देहरूपात्वमस्याधारस्त्वमेव हि । अस्यानुप्राणैस्त्वंमातस्त्वत्प्राणैरयमीश्वरः
किमहो निर्मितः केन हेतुना शिल्पकारिणा ।

नित्योऽयञ्च तथा कृष्णस्त्वञ्च नित्या तथाम्यके ॥ १०६ ॥

अस्यांशा त्वं त्वदंशो चाप्ययं केननिरूपितः । अहं विधाताजगतां वेदानांजनकःस्वयम्
तं पठित्वा गुह्यमुक्ताद्वचन्त्येव बुधा जनाः । गुणानां वा स्त्वानां वै शतांशं वक्तुमक्षमः

वेदो वा पण्डितो वान्यः को वा त्वां स्तोतुमीश्वरः ।

स्त्वानां जनकं ज्ञानं बुद्धिर्ज्ञानाम्यिका सदा ॥ १०८ ॥

त्वं बुद्धेर्जननी मातः को वात्वांस्तोतुमीश्वरः । यद्वस्तु द्रष्टुं सर्वेषांतद्विचक्षुंबुधः क्षमः
यद्वद्विद्वद्भुतं वस्तु तन्निर्यक्तञ्चकःक्षमः । अहं महेशोऽनन्तश्च स्तोतुं त्वां कोऽपि न क्षमः
सरस्वती च वेदाश्च क्षमः कः स्तोतुमीश्वरि । यथागमं यथोक्तञ्च न मां निन्दितुमर्हसि
ईश्वराणामीश्वरस्य योग्यायोग्ये समा कृपा । जनस्य प्रतिपाल्यस्य क्षणेदोषःक्षणेगुणः
जननी जनको यो वा सर्वं क्षमतिस्नेहतः । इत्युक्त्वा जगतां धातातत्स्यो चपुरतस्तयोः

प्रणम्य चरणाम्मोजं सर्वेषां वन्दामीप्सितम् ।

ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।

राधामाधवयोः पादे भक्तिदास्यं लभेद् ध्रुवम् ॥ ११५ ॥

कर्मनिर्मूलनं कृत्वाभृत्युजित्वासुदुर्जयम् । विलङ्घ्यसर्वलोकांश्चयाति गोलोकमुत्तमम्
श्रीनारायण उवाच ।

ब्रह्मणः स्तवतं श्रुत्वा तमुवाच ह राधिका ॥ ११७ ॥

घरं वृणु विधातस्त्वं यत्ते मनसि वर्त्तते । राधिकावचनं श्रुत्वा तामुवाच जगद्विधिः ॥
घरञ्च युषयोः पादपद्ममक्तिञ्च देहि मे । श्रुत्युक्ते विधिना राधा तूर्णमोमित्युवाच ह ॥
पुनर्ननाम तां भक्त्या विधाता जगतांपतिः । तदा ब्रह्मा तयोर्मध्ये प्रज्वाल्य च हुताशनम्
हरिं संस्मृत्य हवनं चकारविधिना विधिः । उत्थायशयनात्कृष्ण उवाच बह्विस्त्रिधौ
ब्रह्मणोक्तेन विधिना चकार हवनं स्वयम् । प्रणमय्यपुनःकृष्णं राधां तां जनकःस्वयम्
कौतुकं कारयामास सप्तधा च प्रदक्षिणम् । पुनः प्रदक्षिणं राधां कारयित्वा हुताशनम्
प्रणमय्य ततः कृष्णं वासयामास तं विधिः । तस्या हस्तञ्च श्रीकृष्णं ब्राह्मयामास तं विधिः
वेदोक्तसप्तमन्त्रांश्च पाठयामास माधवम् । संस्थाप्य राधिकाहस्तं हरेर्वक्षसि वेदवित्

श्रीकृष्णहस्तं राधायाः पृष्ठदेशे प्रजापतिः ।

स्थापयामास मन्त्रांस्त्रीन् पाठयामास राधिकाम् ॥ १२६ ॥

पारिजातप्रसूनानां मालां जानुघिलम्बिताम् ।

श्रीकृष्णस्य गले ब्रह्मा राधाद्वारा ददौ मुदा ॥ १२७ ॥

प्रणमय्य पुनः कृष्णं राधाञ्च कमलोद्भवः । राधागले हरिद्वारा ददौ मालां मनोहराम् ॥

पुनश्च वासयामास श्रीकृष्णं कमलोद्भवः ॥ १२८ ॥

तद्वामपार्श्वे राधाञ्च सस्मितांकृष्णचेतसम् । पुटाञ्जलिं कारयित्वा मगधधनं राधिकां विधिः
पाठयामास वेदोक्तान् पञ्चमन्त्रांश्च नारद । प्रणमय्य पुनः कृष्णं समर्प्य राधिकां विधिः
कन्यकाञ्च यथा तातो भक्त्या तस्थौ हरेः पुरः । एतस्मिन्नन्तरं देवाः सानन्दपुलकोद्भवाः
दुन्दुभिर्वा दायामासुश्चानकं मुरजादिकम् । पारिजातप्रसूनानां पुष्पवृष्टिर्यभूव ॥ १२९ ॥
जगुर्गन्धर्वप्रवरा ननृतुश्चाप्सरोगणाः । तुषाव श्रीहरिं ब्रह्मा तमुवाच ह सस्मितः ॥ १३० ॥

युषयोश्चरणाम्भोजे भक्तिं मे देहि दक्षिणाम् ।

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम् ॥ १३४ ॥

मदीयचरणाम्भोजे सुदृढा भक्तिरस्तु ते । स्वस्थानं गच्छ भद्रन्ते भविता नात्र संशयः
 मया नियोजितं कर्म कुरु वत्स ममाश्रया । श्रीकृष्णस्यचक्रःश्रुत्वा विधाता जगतां मुने
 प्रणम्य राधां कृष्णञ्च जगाम स्वालयं मुदा । गते ब्रह्मणि सा देवी सस्मिताचक्रचक्षुषा
 सा ददर्श हरेर्वस्त्रं चच्छाद योड्या मुखम् । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी कामवाणप्रपीडिता ॥
 प्रणम्य श्रीहरिं भक्त्या जगाम शयनं हरेः । चन्दनागुरुपङ्कजं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥
 ललाटे तिलकं कृत्वा ददौ कृष्णस्य वक्षसि । सुधापूर्णं रत्नपात्रं मधुपूर्णं मनोहरम् ॥
 प्रददौ हरये भक्त्या युभुजे जगतीपतिः । ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥१४१॥

ददौ कृष्णाय सा राधा सार्धं युभुजे हरिः ।

चत्वारं सस्मिता राधा हृदि तत् सुधारसम् ॥ १४२ ॥

ताम्बूलं तेन दत्तञ्च युभुजे पुरतो हरेः । कृष्णञ्चरितताम्बूलं राधिकायै मुदा ददौ ॥१४३॥
 चत्वारं परया भक्त्या पयो तन्मुखपङ्कजम् । राधाचरितताम्बूलं ययाचे मधुसूदन ॥१४४॥

जहास न ददौ राधा क्षमेत्युक्तं तया मुदा ।

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवमुत्तमम् । राधिकायाश्च सर्वाङ्गे प्रददौ माधवः स्वयम् ॥
 यः कामोऽध्यापते नित्यं यस्यैकचरणाम्बुजम् । बभूवतस्यसबशो राधासन्तोषकारणात्
 यद्बभूवभृत्यैर्मदनो जितः सर्वक्षणं मुने । स्वेच्छामयो हि भगवान् जितस्तेनकुतूहलात्
 करे धृत्वा च तां कृष्णः स्थापयामास वक्षसि । चकारशिथिलं वस्त्रं चुम्बनञ्च वनुर्विधम्
 बभूव रतिगुप्तेन विच्छिन्ना क्षुद्रघण्टिका । चुम्बनेनीष्टरागञ्च हाश्लेपेन च पत्रकम् ॥
 शृङ्गारेणैव कथरी सिन्दूरतिलकं मुने । जगामालककाङ्कुञ्च विपरीतादिकेन च ॥ १५० ॥
 पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी बभूव नवसङ्गमात् । मूर्च्छामवाप सा राधा युयुधे न दिधानिशम् ॥
 प्रत्यङ्गेनैव प्रत्यङ्गमङ्गेनाङ्गं समाश्लिषत् । शृङ्गाराएविविधं कृष्णश्चकार कामशास्त्रचित्
 पुनस्ताञ्च समाश्लिष्य सस्मितां चकलोचनाम् ।

क्षतविक्षतसर्वाङ्गी नखदन्तैश्चकार ह ॥ १५१ ॥

कङ्कणानां किङ्किणीनां मञ्जीराणांमनोहरः । बभूव शब्दस्तत्रैव शृङ्गारसमरोद्धवः ॥१५४॥
 पुनस्ताञ्च समारुप्य शय्यायाञ्च निवेश्य च । चकार रहितां राधां फलीवन्ध्याससा

निर्जने कौतुकात् कृष्णः कामशास्त्रविशारदः । चूडावेशांशुकैर्हीनञ्चकार तञ्च राधिका
न फस्य कस्माद्भानिश्च तौ द्वौ कार्प्यविशारदौ ।

जग्राह राधा हस्तात्तु माधवो रत्नदर्पणम् ॥ १५७ ॥

मुरलीं माधवकराज्जग्राह राधिका बलात् । चित्तापहारं राधायाश्चकार माधवो बलात्
जहार राधिका रासान्माधवस्यापि मानसम् । निवृत्ते कामयुद्धे च सस्मिताय कलौचना
प्रवदौ मुरलीं प्रीत्या श्रीकृष्णाय महात्मने । प्रवदौ दर्पणं कृष्णः क्रीडाफलमुज्ज्वलम्
चकार कथरीं रस्यां सिन्दूरतिलकं ददौ । विचित्रपत्रकं वेशञ्चकारैवं विधं हरिः ॥ १६१
विश्वकर्मा न जानाति सखीनामपि का कथा ।

वेशं विधातुं कृष्णस्य यदा राधा समुद्यता ॥ १६२ ॥

बभूव शिशुरुपञ्च कैशोरं च विहाय च । ददर्श चालरूपं तं रुदन्तं पीडितं क्षुधा ॥ १६३
यादृशं प्रवदौ नन्दो भीतं तादृशमव्युतम् । धिनिश्चस्य च सा राधा हृदयेन विक्रियता
इतस्ततस्तं पश्यन्ती शोकार्ता विरहानुरा । उवाच कृष्णमुद्दिश्य काकूकिमिति कातरा
मायां करोषि मायेश किङ्करी कथमीदृशीम् । इत्येवमुक्त्वा सा राधा पपातचररोद च
ररोद कृष्णस्तत्रैव घाग् बभूवाशरीरिणी । कर्णारोदिपि राधेत्वं स्मर कृष्णपदाम्बुजम्
भारासमण्डलं यावन्तकमत्रागमिष्यति ।

करिष्यसि रतिं नित्यं हरिणा सार्द्धमीप्सिताम् ॥ १६८ ॥

छायां विधाय स्यगृहेस्वयमागत्य मा रद । कृत्वा क्रीडे च प्राणेशं मायेशं चालकपिणम्
त्यज शोकं गृह गच्छ सुन्दरीत्यर्थप्रबोधिता । धृत्यैवं घनं राधाकृत्वा क्रीडेच्चालकम्
ददर्श पुष्पोद्यानञ्च घनं सद्गन्तमण्डपम् । तूर्णं चुन्दाघनाद्राधा जगाम नन्दमन्दिरम् ॥
सा मनोयायिनी देवी निमिषार्धेन नारद । संसिक्तस्निग्धमधुररसना रक्तलोचना ॥ १७२

यशोदाम्ये शिशुं दातुमुद्यता सेत्युवाचः ह ।

गृहीत्यैवं शिशुं स्थूलं रुदन्तञ्च क्षुधानुरम् ॥ १७३ ॥

गोष्ठे त्वत्स्यामिना दत्तं प्राप्नोति यातना पथि ।

संसिक्तं पसनं पत्से मेघाच्छ्रेऽतिदुर्दिने ॥ १७४ ॥

पिच्छले कर्दमोद्रेके यशोदा घोडुमक्षमा । गृहाण बालकं भद्रे स्तनं दत्त्वा प्रबोधय ॥
 गृहं चिरं परित्यक्तं यामि तिष्ठ सुखं सति । इत्युक्त्वा बालकं दत्त्वा जगाम स्वगृहं प्रति
 यशोदा बालकं नीत्वा चुचुम्ब च स्तनं ददौ । बहिर्निविष्टा सा राधास्वगृहे गृहकर्मणि
 नित्यं नक्तं रतिं तत्र चकार हरिणा सह । इत्येवं कथितं वत्स श्रीकृष्णचरितं शुभम् ।
 सुखदं मोक्षदं पुण्यमपरं कथयामि ते ॥ १७८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधाकृष्णविवाह-
 नचसङ्गमप्रस्तावना नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

षोडशोऽध्यायः

चक्रप्रलम्बकेशीनामुद्गारवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

माधवो बालकैः सार्द्धमेकदा हलिना सह । भुक्त्वा पीत्वा च क्रीडायं जगाम श्रीवर्नमुने
 तत्र नानाविधां क्रीडांचकार मधुसूदनः । कृत्वा तां शिशुभिः सार्द्धं चालयामास गोधनम्
 ययौ मधुवनं तस्माच्छ्रीकृष्णो गोधनैः सह । तत्र स्यादु जलं पीत्वा घनेचस महाबलः
 तत्रैकदैत्यो यलवान् श्वेतवर्णो भयदूरः । विहृताकारवदनो घकाकारश्च शैलघत् ॥
 दृष्ट्वा च गोकुलं गोष्ठे शिशुभिर्वैलकेशवौ ।

यथा ह्यगस्त्यो घातापि सर्वे जग्रास लीलया ॥ ५ ॥

चक्रप्रस्तं हरिं दृष्ट्वा सर्वे देवा भयान्विताः । चन्द्रार्हा इति सन्त्रस्ता धावन्तः शस्त्रपाणयः
 शक्रश्चिदेष पद्मञ्च मुनेरस्थिचिनिर्मितम् । न ममार चक्रस्तस्मात्पक्षमेकं ददाह च ॥ ७ ॥
 नीहारास्त्रं शशधरः शीतार्तस्तेन दानवः । यमदण्डं सूर्यपुत्रस्तेन कुण्डो घभूष ह ॥ ८ ॥
 पायव्याखञ्ज पायुध तेन स्थानान्तरं ययौ । घरुणश्च शिलावृष्टिं चकार तेन पीडितः
 द्रुताशनश्च घाहेन पक्षांश्चैव ददाह सः । कुनेरस्पाध्वं चन्द्रेण छिन्नपादो घभूव ॥ १० ॥

ईशानस्य च शूलेन वधूय मूर्च्छितोऽसुरः ।

ऋषयो मुनयश्चैव कृष्णञ्जकुर्मियाशिपम् ॥ ११ ॥

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः प्रज्ज्वलन् ब्रह्मतेजसा । ददाह दैत्यसर्पाङ्गं बाह्याभ्यन्तरमीश्वरः
तत्सर्वं घमनं हृत्वा प्राणांस्तत्याज दानवः । धकं निहत्य बलवान् शिशुभिर्गोधनैः सह
ययौ केलिकदम्बानां काननं सुमनोहरम् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र वृषरूपधरोऽसुरः ॥ १४ ॥

नाम्ना प्रलम्बो बलवान् महाधूर्तश्च शैलघत् ।

भृङ्गाभ्याञ्च हरिं धृत्वा भ्रामयामास तत्र ये ॥ १५ ॥

दुद्रुषुर्यालकाः सर्वे रुद्रुध्व भयानुराः । बली जहास बलवान् घात्वा भ्रातरमीश्वरम् ॥
बालकान् बोधयामास भयं किमित्युच्यते ह । तद्विषाणं गृहीत्वाच स्ययं धीमधुसूदनः
भ्रामयित्वा च गगने पातयामास भूतले । प्राणांस्तत्याज दैत्येभ्यो निपत्यच महीतलम्
जहसुर्यालकाः सर्वे ननृतुध्व जगुर्मुदा । हत्वा प्रलम्बं धीरुष्णो बलेन सह सत्वरम् ॥
गोधनं चारयामास ययौ भाण्डीरमीश्वरः । गच्छन्तं माधवं दृष्ट्वा केशी दैत्येश्वरो बली
घेष्टयामास तं शीघ्रं गुरेण पिलिराग्नमर्हाम् ।

मूर्ध्नि हृत्वा हरिं तुष्टो गगनं शतयोजनम् ॥ २१ ॥

उत्पात्य भ्रामयामास पपात च महीतले । जग्राह स हरिं पापी चरयामास कोपतः ॥
स भग्नदन्तो दैत्यध्व घ्नान्नाङ्गवर्षणांद्दहो । धीरुष्णतेजसा दग्धः प्राणांस्तत्याज भूतले
स्पर्गे बुन्दुभयौ नेदुः पुष्पवृष्टिर्यभूवद् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र पार्षदा दिव्यरूपिणः ॥ २४ ॥
तत्राजगमुः स्वन्दनस्था त्रिभुजाः पातयाससः । किरीटिनः कुण्डलिनो घनमालाभिभूषिताः
पिनोदमुल्लोहस्ताः कण्ठमञ्जोररञ्जिताः । चन्दनोद्गिनसर्पाङ्गा गोपयेश्वरा पराः ॥ २६ ॥

ईशानस्य प्रसन्नाभ्या भक्तानुग्रहकातराः ।

प्रदीप्तं रथमाभ्याय रथासारविनिर्मितम् ॥ २७ ॥

भाण्डीरणमराजमुपेय सन्निहितो हरिः । दिव्यवस्त्रपरीधाना रथालङ्कारभूषिता ॥ २८ ॥
प्रणम्यच हरिस्तुत्या जम्बुगोलोऽमुत्तमम् । मुनयैर्देहं पतित्यच घेभ्यपापुरवाहयः
सम्प्राप्य दानवीं योनिं वधूतुः कृष्णपाण्डराः ।

नारद उवाच ।

के ते च दिव्यपुरुषा वैष्णवा दैत्यरूपिणः ॥ ३० ॥

कथयस्व महाभाग श्रुतं किं परमाद्भुतम् ।

नारायण उवाच ।

शृणु ब्रह्मन् प्रचक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ॥ ३१ ॥

श्रुतं महेशधनात् सूर्यपर्वणि पुष्करे । हरैर्गुणप्रसङ्गेन कथयामास शङ्करः ॥ ३२ ॥

संपृष्टो मुनिसङ्घैश्चमया धर्मेण ब्रह्मणा । ब्रह्मपुत्र महाभाग कथाम्भुवनपावनीम् ॥ ३३ ॥

कथयामास विस्तार्य सावधानं निशामय । गन्धर्वेशो गन्धर्वाहः पर्वते गन्धमादने ॥ ३४ ॥

महास्तपस्वी प्रवरो हरिसेवनतत्परः । यभूयुधतुरः पुत्रा गन्धर्वप्रचरा मुने ॥ ३५ ॥

सस्मरुः कृष्णपादाब्जं स्वप्ने हाने दिवानिशम् ।

ते च दुर्वाससः शिष्याः श्रीकृष्णार्चनतत्पराः ॥ ३६ ॥

नित्यं दत्त्वा च कमलं सम्पूज्य तं पपुर्जलम् ।

घसुदेधः सुहोत्रश्च सुदर्शनसुपाश्वकी ॥ ३७ ॥

चत्वारो वैष्णवध्रेष्ठास्तेपुस्ते पुष्करे तपः । विरकालं तपस्तप्त्वा यभूयुः सिद्धमन्त्रिणः

ज्येष्ठो दुर्वाससोयोगसम्प्राप्ययोगिनांघरः । सिद्धश्चाकृतदारश्च प्रज्यलन् ब्रह्मतेजसा ॥ ३८ ॥

सद्यो देहं परित्यज्य यभूव कृष्णपार्षदः । एकदा भ्रातरस्ते च जग्मुश्चित्रसरोधरम् ॥ ३९ ॥

पद्मानि कृष्णपूजार्थमाहर्तुमुदये रवेः । पद्मानाञ्चयन् कृत्वा गच्छतो वैष्णवान्मुने ॥ ४० ॥

दृष्ट्वा नियध्य संजग्मुः सर्वे शङ्करकिङ्कराः । बलिष्ठादुर्वलानधृत्वाजग्मुः शङ्करसन्निधिम्

ते सर्वे शङ्करं दृष्ट्वा प्रणेमुः शिरसा भुवि । तानुवाच शिवः शीघ्रं प्रयुज्याशिपमुत्तमाम्

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकातरः ।

शिव उवाच ।

के यूयं पद्महर्तारः पार्वत्याश्च सरोचरे ॥ ४४ ॥

लक्षयक्षे रक्षणीयं पार्वतीव्रतहेतवे । नित्यं सहस्रकमलं ददाति हरये सती ॥ ४५ ॥

व्रते त्रैमासिके भक्त्या पतिसौभाग्यवर्द्धने । शिवस्य वचनं श्रुत्वा तमूचुर्वैष्णवा मिया

पुटाञ्जलियुताः सर्वे भक्तिप्राप्तमकन्धराः ।

गन्धर्वा ऊचुः ।

वयं गन्धर्वप्रधरा गन्धवाहसुता विभो ॥ ४७ ॥

हरये कमलं दत्त्वा पिबामो जलमीश्वर । वयं न विप्रो हे नाथ पार्वत्या रक्षितं तरः ॥
गृहाण कमलं सर्वं युष्माकञ्च फलकुण्ड । न दास्यामोऽद्य कमलं पास्यामोऽद्यजलं हर ॥

किं वा कथं न पास्यामस्तुभ्यं दत्तानि तानि च ।

नित्यं ध्यात्वा यत्पदाब्जं पद्मेन पूजयामहे ॥ ५० ॥

साक्षात् तस्मै प्रदत्त्वा च पद्मं पूता वयं प्रभो । एकग्रहद्वितीयं क देहकचरूपवान् ॥
भक्तानुग्रहतो देहो रूपभेदश्च मायया । किन्तु गृहाण पद्मानि त्वमेव मत्प्रभुः प्रभो ॥
यतो नो मानसम्पूर्णं तद्रूपं दर्शयान्मुत । विभुजं कमनीयञ्च किशोरं श्यामसुन्दरम् ॥
विनोदमुरलीहस्तं पीताम्बरधरं परम् । एकवक्त्रं द्विनयनं चन्दनागुरुचर्चितम् ॥ ५४ ॥
ईषद्वास्यप्रसन्नास्यं रत्नालङ्कारभूषितम् । कौस्तुभेन मणीन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ॥
मयूरपिच्छचूडञ्च मालतीमाल्यभूषितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाराजिचिभूषितम् ॥
कोटिकन्दर्पलाघण्यलीलाधाम मनोहरम् । गोपीसङ्घैर्दृश्यमानं सस्मितैर्वक्त्रलोचनैः ॥
नवयौवनसम्पन्नं राधायक्ष स्थलस्थितम् । ग्रहादिभिः स्तूपमानं वन्द्यन्ध्येयमभीप्सितम् ॥
स्वात्मारामं पूर्णकामं भक्तानुग्रहकातरम् । इत्युक्त्वा पुरतः शम्भोस्तत्पुनर्गन्धर्वपुङ्गवाः ॥
श्रीकृष्णरूपधरणात् पुलकाङ्कितविग्रहः । गन्धर्वाणां वचः श्रुत्वा शिवस्तानित्युवाच ॥
श्रीकृष्णरूपधरणात् साश्रुपूर्णधिलोचनः । मयैव यूयं विज्ञाता वैष्णवप्रधरा मर्हाम् ॥
पूतां कर्तुञ्च भ्रमथ चरणाम्भोजरेणुना । अहं धाञ्छां करोम्येव श्रीकृष्णभक्तदर्शनम् ॥
समागमो हि साधूनां त्रिषु लोकेषु दुर्लभः । पार्वत्याश्च सुराणाञ्च सदायूपममप्रियाः
आत्मनश्चात्मभक्तेभ्यो वैष्णवाश्च प्रियाश्च नः ।

किन्तु मोघञ्च न भवेन्मया यत् स्वीकृतं पुरा ॥ ६४ ॥

तच्छ्रूयतां महामागाः पार्वतीव्रतकर्मणि । सरस्वत्यैव पद्मानि यैर्दत्तानि प्रतान्तरे ॥ ६५ ॥
ते तूर्णमासुरीं योनिं गमिष्यन्ति न संशयः । नहि श्रीकृष्णभक्तानामशुभं विद्यते कचित्

सम्प्राप्य मानवीं योनिं गोलोकं यास्यथ ध्रुवम् ।

यूयं श्रीकृष्णरूपञ्च प्रत्यक्षं द्रष्टुमुत्सुकाः ॥ ६७ ॥

ध्रुवं द्रक्ष्यथ भो घत्सा वृन्दारण्ये च मारते ।

दृष्ट्वा कृष्णं ततो मृत्युं सम्प्राप्य वैष्णवोत्तमाः ॥ ६८ ॥

दिव्यं सन्धनमारुह्य गमिष्यथ हरैर्गृहम् । अधुना वाञ्छनीयञ्च रूपं द्रष्टुमिहोत्सुकाः ॥

तत्सर्वं पश्यथेत्युक्त्वा दर्शयामास तच्छिवः । रूपं दृष्ट्वा साधुनेत्राः प्रणम्य सर्वरूपिणम्

आजमुर्दानवी योनिमिति ते दानवेश्वराः । घसुदेवः पुरा मुक्तः सुहोत्रश्च धकाक्षुरः ॥

सुदर्शनः प्रलम्बोऽयं स्वयं केशी सुपार्श्वकः । हरस्य वरदानेन दृष्ट्वा रूपमनुत्तमम् ॥ ७२

मृत्युं सम्प्राप्य श्रीकृष्णाङ्गमुस्ते कृष्णमन्दिरम् ।

इत्येवं कथितं विप्र हरेश्वरितमद्भुतम् ॥ ७३ ॥

वक्केशिप्रलम्बानां मोक्षणं मोक्षकारकम् ।

नारद उवाच ।

श्रुतं सर्वं महाभाग त्वत्प्रसादाद्यद्भुतम् ॥ ७४ ॥

अधुना श्रोतुमिच्छामि पार्वत्या किं कृतं व्रतम् ।

को धाराध्योव्रतस्यास्य किं फलं नियमश्च कः ॥ ७५ ॥

कानि द्रव्याणि भगवन् व्रतोपयोगिकानि च ।

कति कालं व्रतं किं वा प्रतिष्ठायां निरूपणम् ॥ ७६ ॥

सुविचार्य्य वद विभो श्रोतुं कीर्तुहलं मम ।

श्रीनारायण उवाच ।

व्रतं त्रैमासिकं नाम पतिसौभाग्यवर्द्धनम् ॥ ७७ ॥

धाराध्योभगवान्कृष्णो राधिकासहितो मुने । विपुलेन समारम्भः समाप्तिर्दक्षिणायने

संयम्य पूर्वदिचसेरुत्वाघश्यंहविष्यकम् । स्नात्वा चैशाखसंक्रान्त्यांसङ्कल्प्यजाह्नवीतटे

घटे मणौ शालग्रामे जले वा पूजयेद् व्रती । ध्यायेद्भक्त्या च राधेशं संपूज्य पञ्च देवताः ॥

ध्यानञ्च सामवेदोक्तं निबोध कथयामि ते । नवीननीरवश्यामं पीतकोशेयवाससम् ॥

शरत्पार्वणचन्द्रास्यामीपद्मास्यसमन्वितम् । शरत्प्रकुलपाद्माक्षं मञ्जुलान्जनरञ्जितम् ॥

मानसं गोपिकानाञ्च मोहयन्तं मुहुर्मुहुः ।

राधया दृश्यमानञ्च राधावक्ष्यलसितम् ॥ ८३ ॥

ग्रहानन्तेशधर्माद्यैः स्तूपमानमहं भजे । ध्यात्वा कृष्णञ्च ध्यानेन तमावाहयती मुदा ॥

ध्यायेत् तदा राधिकाञ्च ध्यानं मध्यन्दिने रतम् ।

राधां रासेश्चरी रम्यां रासोद्धासरसोत्सुकाम् ॥ ८५ ॥

रासमण्डलमध्यस्थाराधाधिष्ठातृदेवताम् । रासेश्चरोरःस्थलस्थारसिकारसिकप्रियाम्

रसिकप्रपरां रम्यां रमाञ्च रमणोत्सुकाम् । शरद्जाजीवरार्जानां प्रभामोचनलोचनाम् ॥

पद्मभूषणसंयुक्तां मञ्जोरेणैव रञ्जिताम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यामीपद्मास्यमनोहराम् ॥

चारुचम्पकवर्णाभां चन्दनेन विभूषिताम् । कस्तूरीविन्दुना सार्द्धं सिन्दूरविन्दुनायुताम्

चारुपद्मावलीयुक्तां पद्मिशुद्धांशुकोज्ज्वलाम् ।

सद्गतकण्डलाभ्याञ्च सुकपोलस्थलोज्ज्वलाम् ॥ ९० ॥

रत्नेन्द्रसारहरेण पक्षस्थलविराजिताम् । रत्नकण्ठनकेयूरकिङ्किणीरत्नरञ्जिताम् ॥ ९१ ॥

सद्गतसाररचितारुणन्मञ्जीररञ्जिताम् । ग्रहादिमिथ्य सेव्येन श्रीकृष्णेनैव सेयिताम् ॥

सर्वेशेन स्तूयमानां सर्ववीजाम्भजाम्यहम् ।

इति ध्यात्वा च कृष्णेन सहितां ताञ्च पूजयेत् ॥ ९३ ॥

भक्त्या दत्त्वा प्रतिदिनमुपचारांश्च षोडश । प्रत्येकञ्च पृथक् कृत्वा सर्वं दद्यादुन्नतीमुदा

सहस्रकमलं दिव्यं शतमष्टोत्तरं मुने । होमं कुर्यादुन्नती नित्यमष्टोत्तरशताहुतीः ॥ ९५ ॥

दद्याद् भक्त्या च कृष्णाय स्वाहेत्युच्चार्य यत्नतः ।

रसालस्य कदल्याश्च ह्यारमं घा पकमेव च ॥ ९६ ॥

नित्यमष्टोत्तरशतं दद्याद्भक्त्या क्षुण्णैः फलम् । नित्यञ्च भोजयेद्भक्त्या ब्राह्मणानां शतं मुने

होमं कुर्यादुन्नती नित्यमष्टोत्तरशताहुतीः । दद्याद्भक्त्या च कृष्णायराधिकासहिताय च

तिलेन हवनं कुर्यादाज्यमिश्रेण नारद । चापञ्च पादयेन्नित्यं कारयेद्भरिकीर्तनम् ॥ ९८ ॥

एवं मासत्रयं कृत्वा प्रतिष्ठां तद्वन्तरम् । प्रतिष्ठादिवसे तत्र विधानमष्टगु नारद ॥ १०० ॥

कमलानाञ्च नवतिसहस्राण्यक्षतानि च । ब्राह्मणानां सहस्राणि नव विमेन्द्र यत्नतः ॥
भोजयेत्परमान्तानि स्वादूनि मिष्टकानि च । फलं विंशाधिकं सप्तशतं नवसहस्रकम् ॥

दद्यान्नानाविधं द्रव्यं नैवेद्यं सुमनोहरम् ।

संस्तृताग्निञ्च संस्थाप्य होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥ १०३ ॥

नवतिञ्च सहस्राणि हुत्वाऽथैन तिलेन च । सवस्त्रञ्च सुभोज्यञ्च यज्ञसूत्रफलान्वितम्
गन्धपुष्पाक्षितान् भक्त्या दद्यान्तिललङ्घुकान् ।

दद्यान्घतिकुम्भाञ्च शीततोयप्रपूरितान् ॥ १०५ ॥

पर्वविधं व्रतं कृत्वा दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् । दक्षिणायाः परिमितं वेदेषु यन्निरूपितम्
वृषेन्द्राणां सहस्रञ्च स्वर्णभृङ्गसमन्वितम् । इत्येवं कथितं विप्र कृतं त्रैमासिकव्रतम् ॥
विशिष्टसन्ततिकरं पतिसौभाग्यवर्द्धनम् । व्रतस्यास्य प्रभावेण सौभाग्यं शतजन्मनि ॥
सत्पुत्रजननी सा च भवेज्जन्मशतं ध्रुवम् । कदापि न भवेत्तस्या भेदश्च पतिपुत्रयोः
दासतुल्यो भवेत्पुत्रो भर्ता च स्वयवस्कारः । अनुक्षणं भवेद्राधाकृष्णभक्तिशुभा सती
भवेद्भुतप्रभावेण प्राप्तज्ञानहरिस्मृतिः । व्रतञ्च सामवेदोक्तं कृतं पूर्वमधाचयोः ॥ १११
सर्वपाञ्च यतानाञ्च श्रेष्ठं शृणु यदामिते । स्वाम्भुवस्य च मनोः शतरूपाभिधा सती ॥
तया कृतं प्रथमतः कृत्वागस्त्यं पुरोहितम् । तदाकृतं देवहूत्या चाकृत्या च कृतं तदा ॥
पुरोहितं पुलस्त्यञ्च कृत्वा श्रुत्युक्तयामुने । चकार रोहिणी तत्तु कर्तुं कृत्वा पुरोहितम्
रतिश्चकार तद्वक्त्या गौतमस्तत्पुरोहितः । अकारिद्विदुव्रतंभक्त्या तारया गुरुकान्तया ॥
महासंभृतसम्भारो वशिष्ठस्तत्पुरोहितः । तद् दृष्ट्वा गुरुपत्न्याश्च शक्राख्या कृतं व्रतम्
महासंभृतसम्भारस्तत्पुरोधा बृहस्पतिः । व्रतं चकार स्वाहा च सर्वतोऽपि धिलक्षणम्
अतिसंभृतसम्भारो मरीचिस्तत्पुरोहितः । तद् दृष्ट्वा पार्वती ग्रहन्नुवाच शङ्करं मुदा ॥

पुटाञ्जलियुता देवी भक्तिप्रदात्मकन्धरा ।

पार्वत्युवाच ।

आज्ञां कुरु जगन्नाथ करोमि व्रतमुत्तमम् ॥ ११६ ॥

आचयोरिष्टदेवस्य व्रतानाञ्च परं व्रतम् । हरेपराधनं नाथ सर्वमङ्गलकारणम् ॥ १२० ॥

इष्टं दत्तं श्रुतेः पाठं तीर्थं पृथ्व्याः प्रदक्षिणम् ।

हरेराराधनस्यापि कलानार्हन्ति पोङ्गशीम् ॥ १२१ ॥

बहिरभ्यन्तरे यस्य हरिस्मृतिरनुक्षणम् । जीवन्मुक्तस्य तस्यैव मुक्तिर्भवति दर्शनात् ॥

तस्य पादाब्जरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा । तस्य दर्शनमात्रेण पुनाति भुवनत्रयम् ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च धर्मश्च शेषस्त्वञ्च गणेश्वरः ।

ध्यायं ध्यायं यत्पदाब्जं तेजसा तत्समो महान् ॥ १२४ ॥

यश्च यं सन्ततं ध्यायेत् स समाप्नोति निश्चितम् ।

गुणेन तेजसा बुद्ध्या ज्ञानेन तत्समो भवेत् ॥ १२५ ॥

कृष्णस्य स्मरणाद् ध्यानात्तपसा तस्य सेवया ।

मया प्राप्नो हि भगवान् स्वामी वा पुत्र एव च ॥ १२६ ॥

प्रलब्धं लीलया सर्वं पूर्णं मन्मानसं तदा । स्वामी मे त्वाद्वैशः पुत्रोऽकार्तिकेयगणेश्वरो
पिता हिमाद्रिः कृष्णांशो मम किं दुर्लभं प्रभो ।

पार्श्वती घनं श्रुत्वा सुप्रीत शङ्करः स्वयम् ॥ १२८ ॥

प्रहस्योवाच मधुरं पुलकाङ्कितविग्रहः ।

श्रीमहादेव उवाच ।

महालक्ष्मीस्वरूपासि किमसाध्यं तवेश्वरि ॥ १२९ ॥

सर्वं सम्पत्स्वरूपा त्वमनन्तशक्तिरूपिणी ।

त्वञ्च यस्य गृहे देवि सर्वैश्वर्यस्य भाजनम् ॥ १३० ॥

न लक्ष्मीर्यदुगृहे तस्य जीवनान्मरणं घमम् । अहं ब्रह्मात्रं विष्णुश्च त्वयिभक्तया शुभप्रदे
संसारसृष्टिकाले च त्वत्प्रसादाद्वयं क्षमाः ।

को वा हिमालयः कोऽहं को कार्तिकेयगणेश्वरो ॥ १३२ ॥

त्वद्विहीना हाशक्ताश्च त्वयाच वयमीश्वराः । युक्ता पतिव्रतायाश्च या पुराताश्रुतो श्रुता
गृहीत्यात्माश्वरस्य व्रतं कुरु पतिव्रते । प्रतमेतत् कृतं यामिस्तान्यः कुरु विलक्षणम्

सनत्कुमारो भगवान् व्रते तेऽस्तु पुरोहितः ।

कमलानाञ्च नवतिसहस्राण्यक्षतानि च । ब्राह्मणानां सहस्राणि नव विप्रेन्द्र यत्नतः ॥
भोजयेत्परमान्तानि स्यादूनि मिष्टकानि च । फलं विशाधिकं सप्तशतं नवसहस्रकम् ॥

दद्यान्नानाधिधं द्रव्यं नैवेद्यं सुमनोहरम् ।

संस्कृताग्निञ्च संस्थाप्य होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥ १०३ ॥

नवतिञ्च सहस्राणि हुत्वाज्येन तिलेन च । सधस्त्रञ्च सभोज्यञ्च यशसूत्रफलान्वितम्
गन्धपुष्पाचितान् भक्त्या दद्यान्नतिललङ्घुकान् ।

दद्यान्नघतिकुम्भाञ्च शीततोयप्रपूरितान् ॥ १०५ ॥

पञ्चविधं व्रतं कृत्वा दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् । दक्षिणायाः परिमितं वैदेषु यन्निरूपितम्
वृषेन्द्राणां सहस्रञ्च स्वर्णशृङ्गसमन्वितम् । इत्येवं कथितं विप्र कृतं त्रैमासिकव्रतम् ॥

विशिष्टसन्ततिकरं पतिसौभाग्यघटनम् । व्रतस्यास्य प्रभावेण सौभाग्यं शतजन्मनि ॥
सत्पुत्रजननी सा च भवेज्जन्मशतं ध्रुवम् । कदापि न भवेत्तस्या भेदश्च पतिपुत्रयोः

दासतुल्यो भवेत्पुत्रो भर्त्ता च स्वधनस्करः । अनुक्षणं भवेद्राधाकृष्णमक्रियुता सती
भवेद्भूतप्रभावेण प्राप्तज्ञानहरिस्मृतिः । यतश्च सामयेदोक्तं कृतं पूर्वमथाचयोः ॥ १११

सर्वेषाञ्च व्रतानाञ्च श्रेष्ठं शृणु घदामिते । स्वाम्मुषस्य च मनोः शतरूपामिधा सती ॥
तया कृतं प्रथमतः कृत्वागस्त्यं पुरोहितम् । तदाकृतं देवहूत्या चाकृत्या च कृतं तदा ॥

पुरोहितं पुलस्त्यञ्च कृत्वा श्रुत्युक्तयामुने । चकार रोहिणी तत्तु कर्तुं कृत्वा पुरोहितम्
रतिश्चकार तद्वक्त्या गौतमस्तत्पुरोहितः । अकारिदत्तद्व्रतं भक्त्या तारया गुरुकान्तया ॥

महासंभृतसम्मारो पशिष्टस्तत्पुरोहितः । तद् दृष्ट्वा गुरुपत्न्याश्च शक्रशच्या कृतं व्रतम्
महासंभृतसम्भारस्तत्पुरोधा बृहस्पतिः । व्रतं चकार स्वाहा च सर्वतोऽपि विलक्षणम्

अतिसंभृतसम्मारो मरीचिस्तत्पुरोहितः । तद् दृष्ट्वा पार्वती ब्रह्मनुवाच शङ्करं मुदा ॥
पुटाञ्जलियुता देवी भक्तिप्रदात्मकन्धरा ।

पार्वत्युवाच ।

आज्ञां कुरु जगन्नाथ करोमि व्रतमुत्तमम् ॥ ११६ ॥

आवयोरिष्टदेवस्य व्रतानाञ्च परं व्रतम् । हरेराराधनं नाथ सर्वमङ्गलकारणम् ॥ १२० ॥

इष्टं दत्तं श्रुतेः पाठं तीर्थं पृथ्व्याः प्रदक्षिणम् ।

हरैराराधनस्यापि कलांनार्हन्ति पोङ्गशीम् ॥ १२१ ॥

बहिरभ्यन्तरे यस्य हरिस्मृतिरनुक्षणम् । जीवन्मुक्तस्य तस्यैव मुक्तिर्भवति दर्शनात् ॥

तस्य पादाब्जरजसा सद्यः पूना वसुन्धरा । तस्य दर्शनमात्रेण पुनाति भुवनत्रयम् ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च धर्मश्च शेषस्त्वञ्च गणेश्वरः ।

ध्यायं ध्यायं यत्पद्मञ्जं तेजसा तत्समो महान् ॥ १२४ ॥

यश्च यं सन्ततं ध्यायेत् स तमाप्नोति निश्चितम् ।

गुणेन तेजसा बुद्ध्या ज्ञानेन तत्समो भवेत् ॥ १२५ ॥

कृष्णस्य स्मरणाद् ध्यानात्तपसा तस्य सेवया ।

मया प्राप्तो हि भगवान् स्वामी वा पुत्र एव च ॥ १२६ ॥

प्रलब्धं लीलया सर्वं पूर्णं मन्मानसं तदा । स्वामी मे त्वादृशः पुत्रोऽकार्तिकेयगणेश्वरो

पिता हिमाद्रिः कृष्णांशो मम किं दुर्लभं प्रभो ।

पार्थवी वचनं श्रुत्वा सुप्रीतः शङ्करः स्वयम् ॥ १२८ ॥

प्रहस्योवाच मधुरं पुलकाङ्कितविग्रहः ।

श्रीमहादेव उपाच ।

महालक्ष्मीस्वरूपासि किमसाध्यं तवैश्वरि ॥ १२९ ॥

सर्वं सम्पत्स्वरूपा त्वमनन्तशक्तिरूपिणी ।

त्वञ्च यस्य गृहे देवि सर्वैश्वर्यस्य भाजनम् ॥ १३० ॥

न लक्ष्मीर्यद्गृहे तस्य जीवनान्मरणं घरम् । अहं ब्रह्माश्च विष्णुश्च त्वयिमत्तया शुभप्रदे

संसारसृष्टिकाले च त्वत्प्रसादाद्वयं क्षमाः ।

को वा हिमालयः कोऽहं कौ कार्तिकगणेश्वरो ॥ १३२ ॥

त्वद्विहीना ह्यशक्ताश्च त्वयाच वयमीश्वराः । युक्ता पतिव्रतायाश्च यां पुराणाश्रुतां श्रुता

गृहीत्वाज्ञामीश्वरस्य व्रतं कुरु पतिव्रते । व्रतमेतत् कृतं यामिस्ताभ्यः कुरु विलक्षणा-

सनत्कुमारो भगवान् व्रते तेऽस्तु पुरोहितः ।

कमलानां ब्राह्मणानां द्रव्याणां दायकोऽप्यहम् ॥ १३५ ॥

कुबेरं द्रव्यकोशे च रक्षकं कुरु सुन्दरि ।

व्रते च दानाध्यक्षोऽहं धनदात्री च श्रीः स्वयम् ॥ १३६ ॥

पाठको बहिर्देवश्च घरुणो जलदायकः । घस्तूनां चाहका यक्षास्तदध्यक्षः पद्माननः ॥
स्थानसंस्कारकर्ता च व्रतेऽत्र पवनः स्वयम् । परिवेष्टास्वयं शकश्चन्द्रोऽधिष्ठापकोऽव्रते

सूर्यश्च दाननिर्धक्ता योग्यायोग्यं यथोचितम् ।

व्रतोपयुक्तं यद्द्रव्यं दत्त्वा नियमितं प्रिये ॥ १३६ ॥

ततोऽधिकं फलं पुष्पं हरये देहि सुन्दरि ।

व्रते नियमितान् विप्रान् भोजयिष्या ततोऽधिकान् ॥ १४० ॥

असंख्यब्राह्मणानाञ्च भक्त्या कुरु निमग्नणम् ।

समाप्तिदिवसे स्वर्णं रत्नं मुक्तां प्रबालकम् ॥ १४१ ॥

व्रतोक्तां दक्षिणां दत्त्वा सर्वं देहि द्विजातये ।

इत्युत्तमा शङ्करस्ताञ्च कारयामास तद् व्रतम् ॥ १४२ ॥

व्रतञ्चकार सा दुर्गा सर्वाभ्यश्च विलक्षणम् ।

इत्येवं कथितं विप्र पार्वत्या यद् व्रतं कृतम् ॥ १४३ ॥

रत्नं धौदुमशक्ताञ्च ब्राह्मणाः पार्वतीव्रते । इतिहासः श्रुतः सर्वैः प्राकृतं शृणु नारद ॥
श्रीकृष्णबालचरितं नूतनं नूतनं पदे पदे । इत्वा तान् दानवेन्द्राञ्च शिशुभिः सह गोकुले
जगाम स्वगृहं कृष्णः कुबेरभवनोपमम् । सर्वेभ्यो वनवार्तां च प्रोक्ता च शिशुभिर्मदा
श्रुत्वा विस्मिताः सर्वे नन्दो भयमवाप ह ।

आनीय वृद्धान् गोपाञ्च गोपिकाः स्थविरास्तथा ॥ १४७ ॥

युक्तिश्चकारतैः सार्द्धं मालोच्य समयोचिताम् । कृत्वा युक्तिञ्च गोपेशस्तत्स्थानंत्यक्तुमुद्यतः
गन्तुं वृन्दावनं सर्वानुशाच तत्क्षणे मुने । नन्दाञ्च समान्कर्ण्य ते सर्वे गन्तुमुद्यताः ॥

गोपाश्च गोपिकाश्चैव बालका बालिकास्तथा ।

कृष्णेन हलिना सार्द्धं प्रययुर्बालका मुदा ॥ १५० ॥

सङ्गीतञ्च प्रगायन्तो नानावेशसमन्विताः । वेणुप्रवादकाः केचित् केचिच्छृङ्गप्रवादकाः
फरतालकराः केचिद्वीणाहस्ताश्च केचन । शरयन्त्रकराः केचिच्छृङ्गहस्ताश्च केचन ।
नवपल्लवकर्णाश्च केचिद्वीणापालवालकाः । केचिन्मुकुलकर्णाश्च पुष्पकर्णाश्च केचन ।
नवमातृकराः केचित् केचिदाजानुमालिनः । केचित्पल्लवचूडाश्च पुष्पचूडाश्च केचन ॥

गोपालवालकाः सर्वे चिप्रेन्द्रनवकोटयः ।

जग्मूर्गोप्यो घयस्याश्च कोटिशः कोटिशो मुदा ॥ १५५ ॥

वृद्धाश्च कोटिशस्तत्र वृहच्छ्रोण्यश्चलत्कुचाः ।

राधिकासहचारिण्यो बाला गोपालिका मुने ॥ १५६ ॥

ताः सुशीलादयो भव्या नानालङ्कारभूषिताः । दिव्यवस्त्रपरीधानाः सस्मितास्ता ययुर्मुदा
काश्चिदारुह्य शिघिकां रथमारुह्य काश्चन । राधा स्यन्दनमारुह्य शातकुम्भपरिच्छदम् ॥
ताभिर्युक्ता ययौ देवी रत्नालङ्कारभूषिता । यशोदा रोहिणी चैव रत्नालङ्कारभूषिता ॥
ययौ स्यन्दनमारुह्य शातकुम्भपरिच्छदम् । नन्दः सुनन्दः श्रीदामा गिरिभानुर्धिभाकरः
धीरभानुश्चन्द्रभानुर्गजस्थाः प्रययुर्मुदा । श्रीकृष्णवलदेवौ तौ रत्नालङ्कारभूषितौ ॥ १६१
स्वर्णस्यन्दनमास्थायजग्मतुः परथामुदा । कोटिशः कोटिशोगोपावृद्धाश्च रथयानाग्नयिताः

भद्रस्थाश्च गजस्थाश्च रथस्थाश्चैव केचन ।

गोपा ययुर्मुदायुक्ताश्चोद्धता नन्दकिङ्कराः ॥ १६३ ॥

वृषस्था गर्दभस्थाश्च सङ्गीततानतत्पराः ।

भपरा राधिकादास्यस्त्रिसप्त शतकोटयः ॥ १६४ ॥

मुदान्विताः सस्मिताश्च स्वर्णालङ्कारभूषिताः ।

काश्चित् सिन्दूरहस्ताश्च काश्चित् फञ्जलवाहिकाः ॥ १६५ ॥

काश्चित् कन्दुकहस्ताश्च काश्चित् पुत्तलिकाकराः ।

भोगद्रव्यकराः काश्चित् फीडाद्रव्यकरा वराः ॥ १६६ ॥

वेशद्रव्यकराः काश्चित् काश्चिन् मालाकरा वरा ।

काश्चित्तापकहस्ताश्च प्रययुर्गोपिका मुदा ॥ १६७ ॥

बहिर्गुद्रांशुकानाञ्च बाहिकाश्चैव काश्चन । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रववाहिकाः ॥ १६८ ॥

काश्चित्सङ्गीतनिरताः काश्चिच्चित्रकथारताः ।

कोटिशः कोटिशो रम्याः प्रययुः शिचिकान्विताः ॥ १६९ ॥

कोटिशः कोटिशश्चाश्वाः कोटिशः कोटिशो रथाः ।

कोटिशः कोटिशश्चैव शकटा द्रव्यपूरिताः ॥ १७० ॥

कोटिशः कोटिशश्चैव वृषेन्द्रा द्रव्यवाहकाः ।

कोटिशः कोटिशश्चैव दशलक्षानि दस्तिनाम् ॥ १७१ ॥

दस्तिपाङ्कशयुक्तानि ययुर्वृन्दावनं वनम् । सर्वे वृन्दावनं गत्वा दृष्ट्वा शून्यं गृहं मुने ॥

वृक्षमूले यथास्थानं तस्थुः सर्वे यथोचितम् ।

उवाच गोपान् श्रीकृष्णो गृहांश्चेष्टतमान् व्रजाः ॥ १७३ ॥

अथ सन्तिष्ठतेत्येवं श्रुत्वा श्रीकृष्णभाषितम् । कुत्रसन्तिगृहाः कृष्णेत्येवमूचुस्तुगोपकाः

इति तेषां वचः श्रुत्वा श्रीकृष्णो बाक्यमब्रवीत् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

अत्र स्थाने गृहाः सन्ति प्रसन्ना देवनिर्मिताः ॥ १७५ ॥

देवप्रीतिं विना शक्ता नहि द्रष्टुञ्च केचन । अथ तिष्ठत गोपालाः संपूज्य वनदेवताः ॥

प्रातर्यूयं गृहान् रम्यान् द्रक्ष्यथाय ध्रुवं मुवा । भूपदीपादिनेघैर्घर्षलिभिः पुष्पचन्दनैः ॥

देवीञ्च बटमूलस्थां पूजांकुरुतचण्डिकाम् । कृष्णस्य वचनं श्रुत्वागोपाः संपूज्यदेवताम्

मुत्तवा भोगान् दिने रात्रौ तत्रैव सुपुपुर्मुदा ॥ १७८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

यकप्रलम्बकेशी(नामुद्गारो)वृन्दावनगमनं (च) नाम षोडशोऽध्यायः ।

सप्तदशोऽध्यायः

नगरनिर्माणवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

सुतेषु यजनन्देषु मत्तं वृन्दावने वने । सुनिद्रिते च निद्रेशे मातृवक्षःस्थलस्थिते ॥
निद्रितासु च गोपीषु रम्यतल्पस्थितासु च । यूनांश्च सुखसंयोगानुपक्तमानसासु च ॥

कासुचिच्छिशुयुक्तासु सखीयुक्तासु कासुचित् ।

कासुचिच्छकटस्थासु स्पन्दनस्थासु कासुचित् ॥ ३ ॥

पूर्णेन्दुकौमुदीयुक्ते स्वर्गादपि मनोहरे । नानाप्रकारकुसुमवायुना सुरभीकृते ॥ ४ ॥

सर्वप्राणिनि निश्चेष्टे मुहूर्त्तं पञ्चमे गते । तत्राजगाम भगवान् शिल्पिनाञ्च गुरोर्गुरुः ॥

विभ्रदिव्यांशुकं सूक्ष्मं रत्नमाल्यं मनोहरम् । रत्नालंकारमनुलं श्रीमन्मकरकुण्डलम् ॥ ६ ॥

ज्ञानेन वयसा वृद्धो दर्शनीयः किशोरवत् । अतीव सुन्दरः श्रीमान् कामदेवसमप्रभः ॥

विशिष्टशिल्पिपुणैः सार्द्धं शिल्पित्रिकोटिभिः ।

मणिरत्नैर्हर्मरत्नैर्लोहास्त्रयुतहस्तकैः ॥ ८ ॥

आजगमुर्यक्षनिकराः कुवेरवनर्किकराः । स्फाटिका रत्नवेशाश्च दीर्घस्कन्धाश्च केचन ॥

पद्मरागकराः केचिदिन्द्रनीलकरा घराः । केचित्स्यमन्तककराश्चन्द्रफान्तकरास्तथा ॥

सूर्यफान्तकराश्चान्ये प्रभाकरकरा घराः । केचित्परशुहस्ताश्च लोहसारकरा घराः ॥

केचिच्च गन्धसारणां मणीन्द्राणाञ्च वाहकाः । केचिच्चाभरहस्ताश्च केचिद्वर्णवाहकाः ॥

स्वर्णपात्रघटादीनां वाहकाश्चैव केचन । विश्वकर्मा च सामग्री दृष्ट्वा तु सुमनोहराम् ॥

नगरं कर्तुमारमे ध्यात्वा कृष्णं शुभेक्षणम् । पञ्चयोजनविस्तीर्णं भारते श्रेष्ठमुत्तमम् ॥

पुण्यक्षेत्रं तीर्थसारमतिप्रियतमं हरेः । तत्रस्थानां मुमुक्षूणां परं निर्वाणकारणम् ॥ १५ ॥

गोलोकस्य च सोपानं सर्वेषां वाञ्छितप्रदम् ।

चतुष्कोटि चतुःशालं तत्रैवाद्रिमनोहरम् ॥ १६ ॥

कपाटस्तम्भसोपानसहितं प्रस्तरेर्धरैः । चित्रपुत्तलिकापुष्पकलशोज्ज्वलशेखरम् ॥१७॥
 शैलजाश्मविनिर्माणवेदिप्राङ्गणसंयुतम् । शिलाप्राकारसंयुक्तं प्रचकाराथ लीलया ॥१८॥
 यथोचितवृहत्क्षुद्रद्वारद्वयसमन्वितम् । स्फाटिकाकारमणिभिर्मुदायुक्तो विनिर्ममे ॥१९॥
 सोपानैर्गन्धसाराणां स्तम्भैः शंकुचिनिर्मितैः ।

कपाटैर्लोहसाराणां राजतैः फलशोज्ज्वलैः ॥ २० ॥

वज्रसारविनिर्माणप्राकारैः परिशोभितम् । कृत्वाभ्रमं वल्लवानां यथास्थानं यथोचितम्
 वृषभानोगृहं रम्यं कर्तुमारब्धवान् पुनः ॥ २१ ॥

प्राकारपरिखायुक्तं चतुर्द्वारान्वितं परम् । चारुचिंशद्यतुःशालं महामणिविनिर्मितम् ॥
 रत्नसारविकारैश्च तूलिकानिकरैर्धरैः । सुवर्णाकारमणिभिरारोहैरतिमुन्दरैः ॥ २३ ॥

लोहसारफपाटैश्च शोभितं चित्रकृन्निमैः । मन्दिरे मन्दिरे रम्ये सुवर्णकलशोज्ज्वलम् ॥
 तदाऽऽश्रमैकदेशे च निर्जनैऽतिमनोहरे । चारुचम्पकवृक्षाणामुद्यानाभ्यन्तरे मुने ॥२५॥

सम्भोगार्थं कलावत्याः स्वामिना सह कौतुकात् ।

विशिष्टेन मणीन्द्रेण चकाराट्टालिकालयम् ॥ २६ ॥

युक्तं नवभिरारोहैरिन्द्रमीलविनिर्मितैः । स्थूणाकपाटनिकरैर्गन्धसारविकारजैः ॥
 भव्युष्कृतिं मनोरम्यं सर्वतोऽपि विलक्षणम् ॥ २७ ॥

नारद उवाच ।

कलावती का भगवन् कस्य पत्नी मनोहरा । यत्नतो यदुगृहं रम्यं निर्ममे सुरकारुणा
 नारायण उवाच ।

पितॄणां मानसी कन्या कमलांशा कलावती । सुन्दरी वृषभानोश्च पतिव्रतपरायणा ।
 यस्याश्च तनया राधा कृष्णप्राणाधिका प्रिया ॥ २६ ॥

श्रीकृष्णार्द्धांशसम्भूता तेनतुल्या च तेजसा । यस्याश्च चरणाभ्यामजरजःपूता वसुन्धरा
 यस्याश्च सुदृढां भक्तिं सन्तो वाञ्छन्ति सन्ततम् ॥ ३० ॥

नारद उवाच ।

पितॄणां मानसी कन्यां व्रजे तिष्ठन् कथं मुने । मानवकेन पुण्येन कथमाप सुदुर्लभाम्

वृषभानुर्वज्रपतिः पुराऽऽसीत् को महानहो । कस्य वा केन तपसाराधाकन्या बभूव ह
सूत उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा महर्षिर्ज्ञानिनां वरः । प्रहस्योवाच प्रीत्या तमितिहासं पुरातनम्
नारायण उवाच ।

बभूवुः कन्यकास्तिस्रः पितृणां मानसात्पुरा ॥ ३४ ॥

कलावतीरत्नमालामेनकाश्चातिदुर्लभाः । रत्नमाला च जनकं वरयामास कामुकी ॥ ३५ ॥

शैलाधिपं हरैरंशं मेनका सा हिमालयम् । दुहिता रत्नमाला या अयोनिसम्भवा सती ॥

श्रीरामपत्नी श्रीः साक्षात्सीता सत्यपराधना ।

कन्यका मेनकायाश्च पार्वती सा पुरा सती ॥ ३७ ॥

अयोनिसम्भवा सा च हरैर्माया सनातनी ।

सा लेभे तपसा देवं हरं नारायणात्मकम् ॥ ३८ ॥

कलावती सुवर्गश्च मनुवंशसमुद्बधम् । स च राजा हरैरंशस्तां संप्राप्य कलावतीम्

मन्ये गुणवतां श्रेष्ठमात्मानमतिसुन्दरम् । अहो रूपमहो वेशमहो अस्या नयं वयः ॥

सुकौमलाङ्गं ललितं शरच्चन्द्राधिकाननम् । गमनं दुर्लभमहो गजजञ्जनगञ्जनम् ॥

कटाक्षैर्मोहितुंशक्तामुनीन्द्राणाञ्चमानसम् । श्रोणीयुग्मं सुललितं रम्भास्तम्भविनिर्मितम् ॥

स्तनद्वयं सुकठिनमतिपीनोन्नतं मुने । नितम्बयुगलं चारु रथचक्रादिनिर्मितम् ॥ ४३ ॥

हस्तौ पादौ च रक्तौ च पद्मविम्बफलाधरम् । पद्मदाङ्गिमधीजाभं दन्तपङ्क्तिमनौहरम् ॥

शरम्भध्याह्नपशानां प्रभामोचनलोचनम् । भूषणैर्भूषिणै रूपां कृतं सद्रत्नभूषणम् ॥ ४५ ॥

इतीव मत्वा दृष्ट्वा च कामयागप्रपीडितः । दिव्यं स्यन्दनमारुह्य कामुन्या सह कामुकः

कीडाश्चकार रहसि स्थाने स्थाने मनोहरे । रम्यायां मलयद्रोण्यां चन्दनागुरुवायुना ॥

चारुचम्पकपुष्पाणां तल्पे रतिसुखाचहे । मालतीमल्लिकानाञ्च पुष्पोद्यानेऽतिपुष्पिते ॥

पुष्पभद्रानदीतीरे निर्जने केतकीवने । पश्चिमाध्वितटान्तस्थकानने जन्तुवर्जिते ॥ ४६ ॥

नन्दने मन्दारद्रोण्यां कावेरीतीरजे वने ।

शैले शैले सुरम्ये च नद्यां नद्यां नदे नदे ॥ ५० ॥

द्रीपेद्रीपे तु रहसि स रेमे वामया सह । नवसद्गमसंयोगाद् व्युधे न दिवानिशम् ॥५१॥
 एवं वर्षसहस्रं तद् गतमेव मुहूर्त्तवत् । कृत्वा विहारं सुचिरं स विरक्तो बभूव ह ॥
 जगाम तपसे चिन्ध्यशूलं तीर्थं तथा सह । भारतेऽतिप्रशस्यञ्च पुलहाश्रममुत्तमम् ॥
 तपस्तेपे नृपस्तत्र दिव्यवर्षसहस्रकम् । मोक्षाकाङ्क्षी निस्पृहश्च निराहारः कृशोदरः ॥
 मूर्च्छामाप मुनिधेदो ध्यात्वारुष्णपद्मयुजम् । तन्नामव्यासवल्मीकंसाध्वीदूरञ्चकार सा
 निश्चेष्टितं पतिं दृष्ट्वा त्यक्तं प्राणैश्च पञ्चभिः । मांसशोणितरिकन्तमस्थिसंसक्तविग्रहम्
 उच्चैररोद शोकार्ता निर्जने तु कलावती । हे नाथ नाथेत्युच्चार्य कृत्वा धक्षसि मूर्च्छितम्
 विललाप महावीना पतिवतपरायणा । दृष्ट्वा नृपं निराहारं कृशं धमनिसंयुतम् ॥
 श्रुत्वा च रोदनं तस्याः रूपया च रूपानिधिः । भाविर्वभूव जगतां विधाता कमलोद्भवः
 क्रोडे कृत्वा च तन्तूर्णं ररोद भगवान् विभुः । ब्रह्मा कमण्डलुजलेनासिच्य नृपविग्रहम्
 जीवं सञ्चारयामास ब्रह्मज्ञानेन ब्रह्मवित् । नृपेन्द्रश्चेतनां प्राप्य पुरो दृष्ट्वा प्रजापतिम्
 • प्रणताम च तं दृष्ट्वा तञ्च कामसमप्रभम् ।

तमुवाचेति सन्तुष्टो धरं वृणु यथेप्सितम् ॥ ६२ ॥

स विधेर्वचनं श्रुत्वा धत्ते निर्वाणमोप्सितम् । दयानिधे त्वं दयया धरं दातुं समुद्यतः
 प्रसन्नवदनः शोभान् स्मेराननसरोरुहः । कृत्वाऽनुमानं मनसि शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ॥
 तमुवाच सती त्रस्ता धरं दातुं समुद्यतम् ।

कलावत्युवाच ।

यदि मुक्तिं नृपेन्द्राय ददासि कमलोद्भवः ॥ ६५ ॥

अतोऽवलाया हे ब्रह्मन् का गतिर्मविता च द ।

यिना कान्तश्च कान्तानां का शोभा चतुरानन ॥ ६६ ॥

अतं पतिव्रतायाश्च पतिरेव श्रुती श्रुतम् । गुह्यवाभीष्टदेवश्च तपोधर्ममयः पतिः ॥६७॥
 सर्वपाञ्च प्रियतरो न कन्धुः स्वामिनः परः । सर्वधर्मात्परा ब्रह्मन् पतिसेवा सुदुर्लभा
 स्वामिसेवाविहीनायाः सर्वं तन्निष्फलमवेत् । अतं दानं तपःपूजा जपहोमादिकञ्च यत्
 स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु पृथिव्याश्च प्रदक्षिणम् । दीक्षा च सर्वयज्ञेषु महादानानि यानि च॥

पठनं सर्ववेदानां सर्वाणि च तपांसि च । वेदज्ञानां ब्राह्मणानां भोजनं देवसेवनम् ।

एतानि स्वामिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।

स्वामिसेवाधिहीना या घटन्ति स्वामिने कटुम् ॥ ७२ ॥

पतन्ति कालसूत्रे च यावच्चन्द्रदिवाकरी । सर्पप्रमाणाः कृमयो दंशन्ति च दिवानिशम्
सन्ततं विपरीतञ्च कुर्वन्ति शब्दमुल्वणम् । मूत्रश्लेष्मपुरीषाणां कुर्वन्ति भक्षणं मुदा ॥
मुखे तासां ददत्येवमुत्कां च यमकिङ्कराः । भुक्त्वा भोगञ्चनरके कृमियोनिप्रयान्तिताः
भक्षन्ति जन्मशतकं रक्तमांसपुरोपकम् । श्रुत्वाऽहं विदुषां वक्त्राद्देवाक्येषु निश्चितम्

जानामि किञ्चिदघला त्वं वेदजनको विभुः ।

गुरोर्गुरुश्च विदुषां योगिनां ज्ञानिनां तथा ॥ ७३ ॥

सर्वज्ञमेवंभूतं त्वां धोषयामि किमरुपुत ।

प्राणाधिकोऽयं कान्तो मे यदि मुक्तो धर्भूव ॥ ७४ ॥

मम को रक्षिता ब्रह्मन् धर्मस्य यौवनस्य च । कौमारैरक्षितातातोदत्त्वापात्रायसत्कृती
सर्वदा रक्षिता कान्तस्तदभावे च तत्सुतः । शिष्यवक्षापु नारीणां भ्रातारश्च त्रयः स्मृताः
याः स्वतन्त्राश्च ता नष्टाः सर्वधर्मवहिष्कृताः । असत्कुलप्रसूतास्ता कुलटादुष्टमानसाः
शतजन्मकृतं पुण्यं तासां नश्यति पश्यज । पुत्रस्नेहो यथा बाल्ये तथा न यूनि चार्द्धके
पतिव्रतानां कान्ते च सर्वकाले समास्पृहा । सुते स्तनगन्धये स्नेहो मातृणां चातिशोभिते

पतिस्नेहस्य साध्वीनां कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।

स्तनान्धे स्तनदानान्तं मिष्टान्ते भोजनावधि ॥ ८४ ॥

कान्ते चित्ते सतीनाञ्च स्वप्ने ज्ञाने च सन्ततम् ।

दुःखान्तो बन्धुचिच्छेदः पुत्राणाञ्च ततोऽधिकः ॥ ८५ ॥

सुदारुणः स्वामिनश्च दुःखं नातः परं स्त्रियः ।

अधिदग्धा यथा दग्धा जलदग्धौ विपादने ॥ ८६ ॥

तथा विदग्धा दग्धा स्याद्विदग्धविरहानले ।

नान्ते तृष्णा जले तृष्णा साध्वीनां स्वामिनं विना ॥ ८७ ॥

चिरहास्यो मनो दग्धं बह्वी शुष्कतृणं यथा ।
 नहि कान्तात् परो बन्धुर्नहि कान्तात् परः प्रियः ॥ ८८ ॥
 नहि कान्तात् परो देवो नहि कान्तात् परो गुरुः ।
 नहि कान्तात् परो धर्मो नहि कान्तात् परं धनम् ॥ ८९ ॥
 नहि कान्तात् पराः प्राणा न कः कान्तात् परः स्त्रियः ।
 निमग्नं कृष्णपादाब्जे वैष्णवाणां यथा मनः ॥ ९० ॥
 यथैकपुत्रे मातुश्च यथा स्त्रीषु च कामिनाम् ।
 धेनुषु कृष्णानाञ्च चिरकालार्जितेषु च ॥ ९१ ॥
 यथा भयेषु भीतानां शास्त्रेषु विदुषां यथा ।
 स्तनादाने शिशूनाञ्च शिल्पेषु शिल्पिनां यथा ॥ ९२ ॥
 यथा जारे पुंश्चलीनां साध्वीनाञ्च तथा प्रिये ।
 तं विना जीवितुं ब्रह्म क्षणमेकं न च क्षमम् ॥ ९३ ॥

मरणं जीवनं तासाञ्जीवनं मरणाधिकम् । सद्गुरुं रहितानाञ्च शोकेन हतचेतसाम् ॥
 अन्यशोकनिमग्नानां कालेन पानभोजनात् ॥ ९४ ॥

विपरीतः कान्तशोको वर्द्धते भक्षणादहो । कर्मच्छाया सतीनाञ्च सङ्गिनीनां सती वरा
 इतरे भोगदेहान्ते साध्वी जन्मनि जन्मनि । करोषि चेज्जगद्वातरिमंमुक्तं मया विना ॥
 त्वां शप्त्याहं त्वयि विभो पश्य दास्यामि स्त्रीवधम् ।
 श्रुत्वा कलावतीयाप्यमुषाच विस्मितो विधिः ॥ ९७ ॥
 हितं पीयूषसदृशं भयसंविग्नमानसः ।

ब्रह्मोवाच ।

वत्से मुक्तिं न दास्यामि स्वामिने च त्वया विना ॥ ९८ ॥
 मुक्तं कर्तुं त्वया सार्द्धं साम्प्रतं नाहमीश्वरः ।
 मातर्मुक्तिर्यिना भोगाद् दुर्लभा सर्वसम्पत्ता ॥ ९९ ॥
 निर्वाणतां समाप्नोति भोगी भोगनिवृत्तने ।

कतिवयं स्वर्गभोगं कुरुष्व स्वामिना सह ॥ १०० ॥

ततस्तु युवयोर्जन्म भविता भारते सति ।

यदा भविष्यसि सती कन्या ते राधिका स्वयम् ॥ १०१ ॥

जीवन्मुक्तौ तथा साद्वै गोलोकञ्च गमिष्यथ ।

कति कालं नृपश्रेष्ठ भुङ्क्ष्व भोगं स्त्रिया सह ॥ १०२ ॥

साध्वी वै सत्त्वयुक्ता च मा मां शतं त्वमर्हसि ।

जीवन्मुक्ताः समाः सन्तः कृष्णपादाब्जमानसाः ॥ १०३ ॥

वाञ्छन्ति हरिदास्यञ्च दुर्लभं न च निर्वृतिम् ।

इत्युक्त्वा तौ धरीं दत्त्वा सन्तस्थौ पुरतस्तयोः ॥ १०४ ॥

ययतुस्तौ तं प्रणम्य जगाम स्वालयं विधिः ।

आजगमुस्तौ कालेन भुक्त्वा भोगञ्च भारतम् ॥ १०५ ॥

परं पुण्यप्रदं दिव्यं ब्रह्मादीनाञ्च पाञ्चितम् । सुचन्द्रो वृषभानुश्चललामज्जमगोकुले ॥

पद्माद्यत्याश्च जठरे सूरभानोश्च रैतसा । जातिस्मरो हरेरंशः शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ १०७ ॥

वयदर्शानुदिनं तत्र यजगेहे यजाधिपः । सर्वेशश्च महायोगी हरिपादाब्जमानसः ॥ १०८ ॥

नन्दयन्धुर्वदान्यश्च रूपवान् गुणवान्सुधीः । कलावती कान्यकुब्जे बभूवाग्नौनिसम्भवा

जातिस्मरा महासाध्वी सुन्दरी कमलाकला । कान्यकुब्जे नृपश्रेष्ठो भनन्दन उरुक्रमः ॥

स तां संप्राप्य योगान्ते यत्नकुण्डसमुत्थिताम् ।

नम्रां हसन्ती रूपाढ्यां स्तनान्धामिव बालिकाम् ॥ १११ ॥

तैजसा प्रञ्चलन्तीञ्च प्रतप्तकनकप्रभाम् । कृत्वा वक्षसि राजेन्द्रः स्वकान्तायै ददौमुदा

मालावती स्तनं दत्त्वा तां पुषीप प्रहर्षिता । तदक्षप्राशनदिने सतां मध्ये शुभे क्षणे ११३

नामरक्षणकाले च घाग्वभूवाशरीरिणी । कलावतीति कन्याया नाम रक्ष नृपेति च ॥

इत्येवं वचनं श्रुत्वा तच्चकार महीपतिः । विप्रेभ्यो मिश्रुकैम्यश्च वन्दिम्यश्च धनं ददौ ॥

सर्वेभ्यो भोजयामास चकार सुमहोत्सवम् ।

कालेन सा रूपवती यौवनस्था बभूव ह ॥ ११६ ॥

अतीवसुन्दरश्यामा मुनिमानसमोहिनी । चारुचम्पकवर्णाभा शरच्चन्द्रनिभानना ११७
 ईषदास्यप्रसन्नास्या प्रकुलपद्मलोचना । नितम्बश्रोणिभारार्त्ता स्तनभारनता सती ११८
 गच्छन्ती राजमार्गेण गजेन्द्रमन्दगामिनी । ददर्श नन्दः पथि तां गच्छन्तीञ्च मुदान्वितः ॥

जितेन्द्रियश्च ज्ञानी च मूर्च्छामाप तथापि च ।

त्रस्तो लोकान् पथि गतान् तूर्णं पप्रच्छ सादरम् ॥ १२० ॥

गच्छन्ती कस्य कन्येवमिति होवाच तं जनः ।

मनन्दनस्य नृपतेः कन्या नाम्ना कलावती ॥ १२१ ॥

कमलाकलया धन्या सम्भूता नृपमन्दिरैः । कौतुकेन च गच्छन्तीकीदृशं सखिमन्दिरम्
 व्रजं व्रजं व्रजश्रेष्ठेत्युक्त्वा लोको जगाम ह । प्रहृष्टमानसो नन्दो जगाम राजमन्दिरम् ॥
 भवत्स्व रथात्तूर्णं विधेश नृपतेः सभाम् । उत्थाय राजा सम्भाष्य स्वर्णसिंहासनं द्वौ
 इष्टालापं बहुतरङ्गकार च परस्परम् । चिनयावनतो नन्दः सम्बन्धोक्तिं चकार ह ॥ १२५
 नन्द उवाच

शृणु राजेन्द्र पक्ष्यामि विशेषवचनं शुभम् ।

सम्बन्धं कुरु कन्याया विशिष्टेन च साम्प्रतम् ॥ १२६ ॥

सुरभानुसुतः श्रीमान् वृषभानुर्व्रजाधिपः । नारायणांशो गुणवान् सुन्दरश्च सुपण्डितः
 स्थिरयौधनयुक्तश्च योगीजातिस्मरोयुषा । कन्या तेऽयोनिसम्भूता यद्वकुण्डसमुद्रया ॥
 त्रैलोक्यमोहिनी शान्ता कमलांशा कलावती ।

स च योग्यस्त्वद्बुद्धितुस्तद्योग्या ते च कन्यका ॥ १२६ ॥

चिदग्धाया चिदग्रेण सम्बन्धो गुणवान् नृप । इत्येवमुक्त्वा नन्दस्तु पिरराम च संसदि ॥

उवाच तं नृपश्रेष्ठो चिनयावनतो मुने ।

मनन्दन उवाच ।

सम्बन्धो हि विधिचशो न मे साध्यो व्रजाधिप ॥ १२१ ॥

प्रजापतिर्योगकर्ता जन्मदाताऽहमेव च । का कस्य पत्नी कन्या धावतः कोपास्वसाधनः
 कर्मानुरूपफलदः सर्वेषां कारणं विधिः । भवितव्यं कृतं कर्म तदमोघं श्रुतो श्रुतम् ॥

अन्यथा निष्फलं सर्वमनीशस्योद्यमो यथा । वृषभानुप्रिया धात्रा लिखिताचेतसुताम
पुरा भूतैव को घाहं केनान्येन निवार्यते । इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रो विनयानतकन्धरः
मिष्टान्नं भोजयामास सादरेण च नास्व । नृपानुज्ञामुपादाय व्रजराजो व्रजं गतः ॥१३॥
गत्वा स कथयामास सुरभानोश्च संसदि । सुभानुश्च यत्नेन नन्देन च समादरम् ॥१३॥
सम्यन्धं योजयामास गर्गद्वारा च सत्वरम् । विवाहकाले राजेन्द्रो विपुलर्योतुकं ददौ
गजक्लामश्वरत्नं रत्नानि मणिभूषणम् । वृषभानुर्मुदायुक्तः प्राप्य ताञ्च फलापतीम् ॥१३६॥
रमे सुनिर्जनै रम्ये बुबुधे न दिवानिशम् । चक्षुर्निमेषविरहाद् व्याकुला स्वामिना चिता
व्याकुलो वृषभानुश्च क्षणेन च तया चिता ।

जातिस्मरा च सा कन्या मायामानुषरूपिणी ॥ १४१ ॥

जातिस्मरो हरेरंशो वृषभानुर्मुदान्वितः । वचर्द्धं च तयोः प्रेम नित्यं नित्यं नवं नवम् ॥
सदा सकामा सा प्रौढा सच कामसमोयुधा । तयोःकन्याच कालेनराधिकासावभूयद्
दैवात्सुदामशापेन श्रीकृष्णस्याद्यया पुरा ॥ १४३ ॥

अयोनिस्तम्भया सा च कृष्णप्राणाधिका सती ।

यस्या दर्शनमात्रेण तौ विमुक्तौ यभूवतुः ॥ १४४ ॥

इतिहासश्च कथितः प्रकृतं शृणु साम्प्रतम् । पापेन्धनानां दाहे च ज्वलद्गिश्शिष्योपमः ॥
वृषभान्वाध्रमं गत्वा शिल्पिनां प्रवरौ मुदा । स्थानान्तरं दिश्यकर्मा जगामस्यगर्णैःसह
क्रोशमार्थं स्थलं चारु मनसालोन्पतस्यचित् । आध्रमं कर्तुमारेभे नन्दस्य सुमहात्मनः
कृतवानुमानं बुद्ध्या च सर्वतोऽपि विलक्षणम् ।

परिष्ठाभिर्गभीराभिश्चतुर्भिः संयुतं परम् ॥ १४८ ॥

दुर्लभ्याभिर्वैरिभिश्च प्रचिताभिश्च प्रस्तरेः । पुष्पोद्यानैःपुष्पिताभिःपारापारैःपुष्पितैः
चारुचम्पकदृक्षैश्च पुष्पितैः सुमनोहरेः । परितो वासिताभिश्च सुगन्धिष्यायुता मुने ॥
आघ्रिर्गुपाकैः पनसैः राजूरैर्नारिकेलकैः । दालिमैः धोकरैर्भृङ्गैर्जम्बोरेर्नारदद्वैतैः ॥१५१॥
तुङ्गैराघ्रातकैर्जम्बुसमूहैश्च फलान्वितैः । फदलीनां केतकीनां फदम्बानां फदम्बकैः ॥

सर्पतः शोभिताभिश्च फलेस्तेः पुष्पितैरहो ।

क्रीडाहानिर्निगूढामिर्वाञ्छितामिश्र सर्वदा ॥ १५३ ॥

परिखानां रहःस्थाने चकार मार्गमुत्तमम् । दुर्गमं पथवर्णाणां स्वानाञ्च सुगमं सदा ॥
सङ्केतेन मणिस्तम्भैश्छादितैः स्थलपथसा । स्तम्भसीमाकृतमहो न सङ्कीर्णविस्तृतम्
परिखोपरिभागे च प्राकारं सुमनोहरम् । धनुःशतप्रमाणञ्च चकारातिसमुच्छ्रितम् ॥
प्रस्तरस्य प्रमाणञ्च पञ्चविंशतिहस्तकम् । सिन्दूराकारमणिभिर्निर्मितञ्चातिसुन्दरम् ॥

बाह्ये द्वान्याञ्च संयुक्तमन्तरे सप्तभिस्तथा । द्वार्मिश्र सन्निवृद्धाभिर्मणिसारकपाटकैः ॥

द्विन्मणीनां कलशैश्चिप्रयुक्तैर्विराजितम् ।

मणिसारविकारैश्च कपाटैश्च सुशोभितम् ॥ १५६ ॥

स्वर्णसारपिनिर्माणकलसोज्ज्वलशेखरम् । नन्दालयं विनिर्माय यन्नाम नगरं पुनः ॥

राजमार्गांश्च विविधान् स च चारुंश्चकार ह ।

रक्तभानुविकारैश्च वेदीभिश्च सुपत्तनैः ॥ १६१ ॥

पारावारे च परितो निवर्द्धाश्च मनोहरान् । घाणिज्याहंश्च घणिजां परितो मणिमण्डपैः
सर्वतो दक्षिणे घामे ज्वलद्भिश्च विराजितान् । ततो वृन्दाघनं गत्वा निर्ममैरासमण्डलम्

सुन्दरं मण्डलाकारं मणिप्राकारसंयुतम् । परितो योजनायामं मणिवेदिभिरन्वितम् ॥

मणिसारविकारैश्च मण्डपेर्नवकोटिभिः । शृङ्गाराहंश्च चित्राढ्यैः रतितल्पसमन्वितैः ॥

नानाजातिप्रसूनानां घायुना सुरभीकृतैः । रत्नप्रदीपसंयुक्तैः सुवर्णकलसोज्ज्वलैः ॥ १६६ ॥

पुष्पोद्यानैः पुष्पितैश्च सरोभिश्च सुशोभितम् ।

रासस्थलं विनिर्माय जगामान्यत् स्थलम्पुरः ॥ १६७ ॥

दृष्ट्वा वृन्दापनं रम्यं परितुष्टो बभूव ह । वृन्दावनाभ्यन्तरे च स्थाने स्थाने सुनिर्जने ॥

श्रुत्वा परिमितं बुद्ध्या मनसाऽऽलोच्य यत्नतः ।

विलक्षणानि रम्याणि तत्र त्रिशद्वनानि च ॥ १६८ ॥

राधामाधवयोरेव क्रीडार्थञ्च विनिर्ममे । ततो मधुवनाभ्यासे निर्जनेऽतिमनोहरे ॥ १७० ॥

वटमूलसमीपे च सरसः पश्चिमे तटे । चम्पकोद्यानपूर्वायां केतकीवनमध्यतः ॥ १७१ ॥

पुनस्तयोश्च क्रीडार्थञ्चकार रत्नमण्डलम् । चतुर्भिर्वेदिकामिश्च परीतमतिसुन्दरम् ॥ १७२ ॥

सद्रत्नसाररचिते राजितं तूलिकाशतैः । अमूल्यरत्नरचितैर्नानाचित्रेण चित्रितैः ॥१७३॥
कपाटैर्नवभिर्युक्तं नवद्वारेर्मनोहरेः । रत्नेन्द्रवित्रकलशैः कृत्रिमैश्च त्रिकोटिभिः ॥१७४॥

परितः परितो मित्यामूर्ध्वञ्च परिशोभितम् ।

महामणीन्द्रचिह्नैरारोहैर्नवभिर्युतम् ॥१७५॥

सद्रत्नसाररचितकलशोज्ज्वलशेखरम् । पताकातोरणैर्युक्तं शोभितं श्वेतचामरैः ॥
सर्वतः पुरतो वीक्ष्यमानमूल्यरत्नवर्पणैः । धनुःप्रमाणशतकमूर्ध्वमग्निशिखोपमम् ॥ १७७ ॥
शतहस्तप्रमाणञ्च प्रस्तारं वर्तुलाकृतम् । शोभितं रत्नतल्पैश्च तदभ्यन्तरमुत्तमम् ॥१७८॥
घह्निशुद्धांशुकैर्वस्त्रैर्मालाजालविचित्रितैः । पारिजातप्रसूनानां माल्योपधानसंयुतैः ॥१७९॥
चन्द्रनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैः सुरभीकृतम् । नयभृङ्गारयोग्यैश्च कामघर्जनकारिभिः ॥१८०॥
मालतीचम्पकानाञ्च पुष्पराजिभिरन्वितम् । सक्पूरैश्च ताम्बूलैः सद्रत्नपात्रसंस्थितैः ॥
घञ्जसारेण रचितैर्मुक्ताजालविलम्बिभिः । रत्नसारघटाकीर्णं रत्नपीठैः सुसंयुतम् ॥१८२॥
रत्नसिंहासनैर्युक्तं रत्नचित्रेण चित्रितैः । क्षरितैश्चन्द्रकान्तैश्च सुसिक्तं जलविन्दुभिः ॥
शीतवासिततोयेन संयुक्तं भोग्यवस्तुभिः । कृत्या रतिगृहं रम्यं नगरञ्च पुनर्ययौ ॥१८३॥
यानि येषां मन्दिराणि तन्नामानि लिलेप सः ।

मुदायुक्तो विश्वकर्मा शिष्यैर्व्यक्षगणैः सह ॥१८५॥

निद्रेण निद्रितं नत्वा प्रययौ स्वालयं मुने । सर्वत्रैवं सुकृतिनां समस्तं भगवत्कृपा ॥
नेहाध्वर्यञ्च नगरं यभूवेशेच्छया भुवि । इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमङ्गलम् ॥१८७॥

सुपङ्गं पातकद्वरं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ।

नारद उवाच ।

कथं वृन्दावनं नाम काननस्यास्य भारते ॥ १८८ ॥

न्युत्पत्तिरस्य संज्ञा वा तत्त्वं धृद सुतत्त्ववित् ।

सून उवाच ।

नारदस्य पचः श्रुत्वा ऋषिर्नारायणो मुदा ॥१८९॥

प्रहस्योवाच निपिलं तत्त्वमेव पुरातनम् ।

नारायण उवाच ।

पुरा केदारनृपतिः सप्तद्वीपपतिः स्वयम् ॥१६०॥

वासीत्सत्ययुगे ब्रह्मन् सत्यधर्मरतः सदा । स रेमे सह नारीभिः पुत्रपौत्रगणैः सह ॥

पुत्रानि च प्रजाः सर्वाः पालयामास धार्मिकः ।

कृत्वा क्रतुशतं राजा लेभे नेन्द्रत्वमीप्सितम् ॥१६२॥

कृत्वा नानाविधं पुण्यं फलाकाङ्क्षी न च स्वयम् ।

नित्यं नैमित्तिकं सर्वं श्रीकृष्णप्रीतिपूर्वकम् ॥१६३॥

केदारतुल्यो राजेन्द्रो न भूतो भविता पुनः ।

पुत्रेषु राज्यं संन्यस्य प्रियां त्रैलोक्यमोहिनीम् ॥१६४॥

जैगीपर्व्योपदेशेन जगाम तपसे वनम् । हरैरैकान्तिकोऽभक्तो ध्यायते सन्ततं हरिम् ॥

शश्वत् सुवर्शनञ्चक्रमस्तियत्सन्निधौ मुने । चिरंतप्त्वा मुनिध्रेष्ठो गोलोकञ्चजगामसः

केदारं नाम तीर्थञ्च तन्नाम्ना च बभूव ह ।

तत्राद्यापि मृतः प्राणी सद्यो मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥१६७॥

कमलांशातस्य कन्या नाम्ना वृन्दा तपस्विनी । न वधेसाधरं कञ्चिद्योगशास्त्रविशारदा

वृत्तो दुर्वाससा तस्यै हरैर्मन्त्रः सुदुर्लभः । सा चिरक्ता गृहं त्यक्त्वा जगाम तपसे वनम्

पट्टिचर्पसहस्राणि तपस्तेपे सुनिर्जने । आविर्धूय श्रीकृष्णस्तत्पुरो भक्तवत्सलः ॥२००॥

प्रसन्नवदनः श्रीमान्वरं घृण्वित्युवाच सः ।

दृष्ट्वा सा राधिकाकान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम् ॥२०१॥

मूर्च्छां सम्प्राप सा सद्यः कामवाणप्रपीडिता । सा च शीघ्रं वरं वधे पतिस्त्वमेभवेति च

ओमित्युक्त्वा च रहसि चिरं रेमे तथा सह । सा जगाम च गोलोकं कृष्णेन सह कौतुकात्

राधासमा सा सौभाग्याद्गोपीध्रेष्ठा बभूव ह । वृन्दा यत्र तपस्तेपे तत्तु वृन्दावनं स्मृतम्

वृन्दयान् कृता क्रीडा तेन वा मुनिपुङ्गव । अथान्यञ्चेतिहासञ्च शृणुष्व घटस्य पुण्यदम्

येन वृन्दावनं नाम निबोध कथयामि ते । कुशध्वजस्य कन्ये द्वे धर्मशास्त्रविशारदे ॥

तुलसीदेवत्यो च चिरक्ते भवकर्मणि । तपस्तप्त्वा वेदवती प्राप नारायणं परम् ॥२०७॥

सीता जनककन्या सा सर्वत्र परिकीर्तिता ।

तुलसी च तपस्तप्त्वा वाञ्छां कृत्वा हरिं पतिम् ॥ २०८ ॥

दैवाद् दुर्वाससः शापान् प्राप्य शङ्खासुरं प्रति ।

पश्चात्सम्प्राप कमलाकान्तं कान्तं मनोहरम् ॥ २०९ ॥

सा चैव हरिशापेन वृक्षरूपा सुरेश्वरी । तस्याः शापेन च हरिः शालग्रामो बभूव ह ॥

तथा तस्यौ च सततं शिलावक्षसि सुन्दरी । विस्तीर्णं कथितं सर्वं तुलसीचरितञ्च ते ॥

तथापि च प्रसङ्गेन किञ्चिदुक्तं मुने पुनः ॥ २११ ॥

तस्याश्च तपसः स्थानं तदिदञ्च तपोधन । तेन वृन्दाधनं नाम प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

अथवा ते प्रवक्ष्यामि परं हेत्वन्तरं शृणु । येन वृन्दाधनं नाम पुण्यक्षेत्रेच भारते ॥ २१३ ॥

राधा षोडशनाम्नाञ्च वृन्दानाम श्रुतौश्रुतम् । तस्याः क्रीडाधनं रम्यं तेन वृन्दाधनं स्मृतम्

गोलोके प्रीतये तस्याः कृष्णेन निर्मितं पुरा ।

क्रीडार्थं भुवि तन्नाम्ना धनं वृन्दाधनं स्मृतम् ॥ २१५ ॥

नारद उवाच ।

कानि षोडश नामानि राधिफाया जगद्गुरो । तानिमे वद शिष्याय श्रोतुं कौतूहलंमम

श्रुतं नाम्ना सहस्रञ्च सामवेदे निरूपितम् ।

तथापि श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो नामानि षोडश ॥ २१७ ॥

अभ्यन्तराणितेषां तदन्यान्येवमेविभो । अहो पुण्यस्वरूपाणि भक्तानां वाञ्छितानि च

नामानि तेषां व्युत्पत्तिं सर्वेषां दुर्लभानि च । पाधनानि जगन्मातुर्जगतामादिकारणम्

श्रीनारायण उवाच ।

राधारासेश्वरी रासचासिनीरसिकेश्वरी । कृष्णप्राणधिका कृष्णप्रियाकृष्णस्यरूपिणी

कृष्णयामाङ्गसम्भूता परमानन्दरूपिणी । कृष्णा वृन्दाधनी वृन्दा वृन्दाधनविनोदिनी ॥

चन्द्रायती चन्द्रकान्ता शतचन्द्रनिभानना । नामान्येतानि साराणि तेषामभ्यन्तराणि च

राधेत्येषञ्च संसिद्धा राकारोदानवाचकः । स्वयंनिर्माणदात्रीया सा राधापरिकीर्तिता

रासेश्वरस्य पत्नीयं तेन रासेश्वरी स्मृता ।

रासे च वासो यस्याश्च तेन सा रासवासिनी ॥ २२४ ॥

सर्वासां रसिकानाञ्च देवीनामीश्वरी परा । प्रवदन्ति पुरा सन्तस्तेन तां रसिकेश्वरीम्
प्राणाधिकाप्रेयसीसा कृष्णस्यपरमात्मनः । कृष्णप्राणाधिकासाच कृष्णेनपरिकीर्त्तिता
कृष्णस्यातिप्रिया कान्ता कृष्णो वास्याः प्रियः सदा ।

सर्वैर्देवगणैरुक्ता तेन कृष्णप्रिया स्मृता ॥ २२७ ॥

कृष्णरूपं सन्निधातुं या शक्ता चाचलीलया । सर्वांशैः कृष्णसदृशी तेन कृष्णस्वरूपिणी
चामाङ्गार्द्धेन कृष्णस्य या सम्भूतापरासती । कृष्णचामाङ्गसम्भूतातेन कृष्णेन कीर्त्तिता
परमानन्दराशिश्च स्वयं मूर्तिमती सती । श्रुतिभिः कीर्त्तिता तेन परमानन्दरूपिणी ॥
कृपिर्माक्षार्धवचनो न एषोत्कृष्टवाचकः । आकारो दातुवचनस्तेन कृष्णा प्रकीर्त्तिता
अस्ति वृन्दाधने यस्यास्तेनवृन्दाधनी स्मृता । वृन्दाधनस्याधिदेवीतेन बाध प्रकीर्त्तिता
सङ्गः सखीना वृन्दस्यादकारोऽप्यस्तिवाचकः ।

सखिवृन्दोऽस्ति यस्याश्च सा वृन्दा परिकीर्त्तिता ॥ २३३ ॥

वृन्दाधने धिनोदश्च सोऽस्या हस्तिश्च तत्रवै । वेदा वदन्तितां तेनवृन्दाधनधिनोदिनीम्
नखचन्द्राघलीघनचन्द्रोऽस्ति यत्रसन्ततम् । तेन चन्द्राघलीसाच कृष्णेन परिकीर्त्तिता
कान्तिरस्ति चन्द्रतुल्या सदा यस्या दिवानिशम् ।

सा चन्द्रकान्ता हर्षेण हरिणा परिकीर्त्तिता ॥ २३६ ॥

शरच्चन्द्रप्रभा यस्याश्चाननेऽस्ति दिवानिशम् । मुनिना कीर्त्तिता तेन शरच्चन्द्रप्रभातना
इदं षोडशनामोक्तमर्थव्याख्यानसंयुतम् । नारायणेन यद्वत् ब्रह्मणे नामिषङ्कजे ।

ब्रह्मणा च पुरा दत्तं धर्माय जनकाय मे ॥ २३८ ॥

धर्मेण कृपया दत्तं महामादित्यपर्वणि । पुष्करे च महातीर्थे पुण्याहे देवसंसदि ।

राधाप्रभावप्रस्ताये सुप्रसन्नेन चेतसा ॥ २३९ ॥

इदं स्तोत्रं महापुण्यं तुभ्यं दत्तं मया मुने । निन्दकायावैष्णवाय न दातव्यं महामुने ॥
यावज्जीवमिदं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । राधामाधवयोः पादपद्मे भक्तिर्भवेदिह ॥
अन्ते लभेत्तयोर्दास्यं शश्वत्सहचरोभवेत् । अणिमादिकसिद्धिञ्च संप्राप्य नित्यविग्रहम् ॥

व्रतदानोपवासैश्च सर्वैर्नियमपूर्वकैः । चतुर्णाञ्चैव वेदानां पाठैः सर्वार्थसंयुतैः ॥२४३॥
 सर्वेषां यज्ञतीर्थानां करणैर्विधिवोधितैः । प्रदक्षिणेन भूमेश्च कृत्स्नाया एव सप्तधा ।
 शरणागततरक्षायामज्ञानां ज्ञानदानतः । देवानां वैष्णवान्ताञ्च दर्शनेनापि यत् फलम् ।
 तदेव स्तोत्रपाठस्य कलां नार्हति पोडुशीम् ।

स्तोत्रस्यास्य प्रभावेण जीवन्मुक्तोभवेन्नरः ॥ २४६ ॥

नारद उवाच ।

सम्प्राप्तं परमाश्चर्यं स्तोत्रं सर्वसुदुर्लभम् । कथञ्चापि देव्याश्च संसारविजयं प्रभो ॥
 कृतं स्तोत्रं सुयज्ञेन प्राप्ततदपि दुर्लभम् । श्रुत्वाकृष्णकथां चित्रां त्वत्पादाब्जप्रसादतः
 अधुना श्रोतुमिच्छामि यद्गहस्यञ्च तद्गद । प्राप्तञ्च नगरं दृष्ट्वा किमूचुर्वल्लभा मुने ॥२४६॥

श्रीनारायण उवाच ।

गतायां तत्र यामित्यां गते च विश्वकर्मणि । अरुणोदयवेलायां जनाः सर्वे जजागरुः
 उत्थाय दृष्ट्वा नगरं सर्वेभ्योऽपि विलक्षणम् । किमाश्चर्यं किमाश्चर्यमित्यूचुर्ब्रजवासिनः
 कांश्चिद्गोपान् केचिदूचुः कुत एतदभूदिदम् । न जाने केन रूपेण को भूमौ प्रभवेदिति
 वुबुधे मनसा नन्दो गर्गवाक्यमनुस्मरन् । श्रीहरेरिच्छया सर्वजगदेतच्चराचरम् ॥२४७॥

ब्रह्मादितृणपर्यन्तं यस्य भूमङ्गलीलया ।

आविर्भूतं तिरोभूतं तस्यासाध्यञ्च किं कुतः ॥ २५४ ॥

चिचरेष्वेवमहोम्नां ब्रह्माण्डान्यखिलानि च । ईशस्य तन्महाविष्णोः किमसाध्यंदरेरहो ।
 ब्रह्मानन्तेशधर्माश्च ध्यायन्ते यत्पदाम्बुजम् । किमसाध्यं तदीशस्य मायामानुषरूपिणः
 भ्रामं भ्रामं तन्नगरं दशं दशं गृहं गृहम् । पाठं पाठञ्च नामानि सर्वेभ्यो निलयं द्वौ ॥
 कृत्वा शुभक्षणं नन्दो वृषमानुश्च कौतुकी । चकार सगणैः सार्द्धं मुदाधमनिवेशनम्
 सर्वे वृन्दावनस्याश्च प्रसन्नवदनेक्षणाः । मुदा प्रवेशनश्चक्रुः स्वं स्वमाश्रममुत्तमम् ॥२५६॥

सर्वे मुमुदिरे गोपाः स्वे स्वे स्थाने मनोहरं ।

चालका चालिकाश्चैव चिक्रीडुश्च प्रहर्षिताः ॥ २६० ॥

श्रीकृष्णो यलदेवश्चिशुभिः सहकौतुकात् । कीडाञ्चकारतत्रैव स्थाने स्थाने मनोहरं

श्यामं किशोरं वयसा पीतकीशेयवाससम् । सुन्दरं सस्मितं शान्तं राधाकान्तमनोहरम्
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं रत्नालङ्कारभूषितम् । रत्नकुण्डलयुग्माभ्यां गण्डसलचिराजितम् ॥
रत्नकेयूरफलपररत्ननूपुरभूषितम् । आञ्जानुलम्बतां शुभ्रां विभ्रतं रत्नमालिकाम् ॥ ३० ॥

मालतीमालया कण्ठयक्षः स्थलचिराजितम् ।

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमार्चितविग्रहम् ॥ ३१ ॥

सुनपं सुकपोलञ्च पद्मविन्वाधरं परम् । पद्मदाङ्गिमचोजामं विभ्रतं दन्तमुत्तमम् ॥ ३२ ॥
शिखिपिच्छसमायुक्तं यद्वच्चूडं परात्परम् । कदम्बपुष्पयुग्माभ्यां कर्णमूले पिराजितम्
ध्यानासाध्यं योगिनाञ्च भक्तानुग्रहकातरम् । ब्रह्मेशधर्मशेपेन्द्रेः स्तूयमानं मुनीश्वरैः ॥
द्वैवर्माश्वरं भक्त्या प्रणेमुर्द्धिजयोपितः । स्वानां ज्ञानानुरूपञ्च तुष्टुर्मुधुसूदनम् ॥ ३५ ॥

विप्रपत्न्य ऊचुः ।

त्वं ब्रह्म परमं धाम निरीहो निरहङ्कृतिः । निर्गुणश्च निराकारः साकारः सगुणः स्वयम्
साक्षिरूपश्च निर्लिप्तः परमात्मा निराकृतिः । प्रकृतिः पुरुषस्त्वञ्च कारणञ्च तयोः परम्
सृष्टिस्थित्यन्तविषये येष देपालयः स्मृताः । तत्त्वदंशाः सर्वबीजा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः
यस्य लोन्नाञ्च विधरेचाखिलं विश्वमीश्वर । महाविराट्महाविष्णुस्त्वं तस्य जनको विभो
तेजस्त्वञ्चापि तेजस्वो ज्ञानं ज्ञानी च तत्परः ।

वेदेऽनिर्वचनीयस्त्वं कस्त्यां स्तोतुमिहेश्वरः ॥ ४० ॥

महदादि सृष्टिसूत्रं पञ्च तन्मात्रमेव च । बीजं त्वं सर्वशक्तीनां सर्वशक्तिस्वरूपकः ॥
सर्वशक्तीश्वरः सर्वः सर्वशक्त्याश्रयः सदा । त्वमनो ह स्वयं ज्योतिः सर्वानन्दः सनातनः
अहोऽप्याकारहीनस्त्वं सर्वविग्रहवानपि । सर्वेन्द्रियाणां विषयं जानासि नेन्द्रियभवान्
सरस्वती जङ्गीभूताय त्वस्तोत्रे यन्निरूपणे । जङ्गीभूतो महेशश्च शेषो धर्मो विधिः स्वयम्
पार्यती कमला राधा सावित्री वेदसूरपि । वेदश्च जङ्गतां याति के वा शक्ता चिपश्चितः
वयं किं स्तवनं कुर्मः स्त्रियः प्राणेश्वरेश्वर । प्रसन्नो भव नो देव दीनबन्धो कृपां कुरु

इति पेतुश्च ता विप्रपत्न्यस्तच्चरणाभ्युजे ।

अभयं प्रददौ ताम्यः प्रसन्नचन्दनेक्षणः ॥ ४१ ॥

विप्रपत्नीकृतं स्तोत्रं पूजाकाले च यः पठेत् ।

स गतिं विप्रपत्नीनां लभते नात्र संशयः ॥ ४८ ॥

नारायण उवाच ।

ताः पद्मभोजपतिता वृद्धा श्रीमधुसूदनः । परं वृणुत कल्याणं भविता चेत्युवाच ह ।
श्रीकृष्णस्य घञ्-श्रुत्याविप्रपत्न्योमुदान्विताः । तमूचुर्वचनं भक्त्याभक्तिनम्रात्मकन्धरा
द्विजपत्न्य ऊचुः ।

परं कृष्ण न गृह्णीमो नः स्पृहा त्यतपदाम्बुजे ।

देहि स्वं दास्यमस्मभ्यं वृद्धां गतिं सुदुर्लभाम् ॥५१॥

पश्यामोऽनुक्षणं वक्त्रसरोजं तव केशव । अनुग्रहं कुरु विभो न यस्यामो गृहं पुनः ॥

द्विजपत्नीवचः श्रुत्या श्रीकृष्णः कक्षाननिधिः ।

ओमित्युत्तया त्रिलोकेशस्तस्थौ बालकसंसदि ॥५३॥

प्रदत्तं विप्रपत्नीभिर्मिष्टमन्नं सुधोषमम् । बालकान् भोजयित्वा तु स्वयञ्च युभुजे पिभुः

एतस्मिन्नन्तरं तत्र शातकुम्भं रथं परम् । ददृशुर्चिप्रपत्न्यश्च पतन्तं गगनावहो ॥५५॥

रत्नदर्पणसंयुक्तं रत्नसारपरिच्छदम् । रत्नस्तम्भैर्नियदञ्च सद्गतकलशोज्ज्वलम् ॥५६॥

श्वेतचामरसंयुक्तं पद्मिशुद्धांशुकान्वितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजितम् ॥

शतचक्रसमायुक्तं मनोयायि मनोहरम् ।

वेष्टितं पार्षदैर्दिव्यैर्वनमालाविभूषितैः ॥५८॥

पीतयस्त्रपरीधानै रत्नालङ्कारभूषितैः । नयनोचनसम्पन्नैः श्यामलैः सुमनोहरैः ॥५९॥

द्विभुजैर्मुग्लीहस्तैर्गोपवेशधरैर्वरैः । शिग्रिपिच्छगुञ्जमालावद्धवकिमचूङ्कैः ॥ ६० ॥

अथैषा रथात्तूर्णं ते प्रणम्य हरेः पदम् । रथस्यारोहणं कर्तुमूचुर्गल्लणकामिनीः ॥६१॥

विप्रभार्या हरिं नत्वा जग्मुर्गोलोकमपिस्ततम् ।

यभूवुर्गोपिकाः सद्यस्त्यक्त्वा मानुषविग्रहान् ॥६२॥

हस्त्रिछायां विनिर्माय तासाञ्च विष्णुमायया ।

प्रस्थापयामास गृहान् ब्राह्मणानां स्वयं विभुः ॥६३॥

विप्राश्च भार्या उद्दिश्य परमोद्विग्नमानसाः । अन्वेषणं प्रकुर्वन्तो ददृशुः पथि कामिनीः
दृष्टोच्चुर्ब्राह्मणाः सर्वे तास्ते च विनयान्विताः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः प्रसन्नवदनेक्षणाः ॥

ब्राह्मणा ऊचुः ।

अहोऽतिधन्या यूयञ्च दृष्टो युष्माभिरोऽवरः । अस्माकं जीवनं व्यर्थं चेद्पाठोऽप्यनर्थकः
वेदे पुराणे सर्वत्र विद्वद्भिः परिकीर्तिता । हरेर्विभूतयः सर्वाः सर्वेषां जनको हरिः ॥
तपो जपो धृतं ज्ञानं चेदाध्ययनमर्चनम् । तीर्थस्नानमनशनं सर्वेषां फलदो हरिः ॥६८॥

श्रीकृष्णः सेवितो येन किं तस्य तपसां फलैः ।

प्राप्तः कल्पतरुर्न किं तस्यान्येन शाखिना ॥६९॥

श्रीकृष्णो हृदये यस्य तस्य किं कर्मभिः कृतैः । किं पीतसागरस्यैव पौरुषं कूपलङ्घने ॥
इत्येवमुक्त्वा विप्राश्च गृहीत्वा कामिनी वराः ।

आजगमुः स्वगृहं हृष्टास्ताभिः सार्धञ्च रेमिरे ॥७१॥

तासां ततोऽधिकं प्रेमक्रीडासु सर्वकर्मसु । दाक्षिण्यमाययाशक्त्याब्राह्मणानामर्कितम्
॥ नारायणः सोऽयं बलेन शिशुभिः सह । जगाम स्वालयं तूष्णं पूर्णब्रह्मसनातनः ॥
येन कथितं सर्वं हरेर्माहात्म्यमुत्तमम् । पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात् किंभूयः धोतुमिच्छसि

नारद उवाच ।

।पीन्द्र केन पुण्येन बभूव विप्रयोषिताम् । मुनीन्द्रयोगसिद्धानां दुर्लभा गतिरीदृशी ॥

इमाः का वा पुण्यवत्यः पुरा तत्सुर्महीतलम् ।

आजगमुः केन दोषेण बद्ध सन्देहभञ्जनम् ॥७६॥

श्रीनारायण उवाच ।

।सर्वोणां रमण्यश्च रूपेणाप्रतिभाः पराः । गुणवत्यः सुशीलाश्च धर्मिष्ठाश्च पतिव्रताः ॥

।वीनयौचना सर्वाः पीनश्रोणिपयोधराः । दिव्यवस्त्रपरीधाना रत्नालङ्कारभूषिताः ॥

।सकाञ्चनवर्णाभाः स्मेराननसरोरुहाः । मुनीनां मोहितं शक्ता मानसं चकचक्षुषा ॥७८॥

।इ तासां स्तनश्रोणिमुखानि सुन्दराणि च । अनलश्चक्रे ताश्च भदनानलपीडितः ॥

अग्निस्थानस्थितानाञ्च शिखया सुरतोन्मुखः ।

स्पृष्ट्वा चाङ्गानि तासाञ्च बभूव हतचेतनः ॥८१॥

पतिव्रता न जानन्ति पतिपादाब्जमानसाः । अग्निरङ्गानि तासाञ्च दर्शं दर्शं मुमोह च ॥
 घट्टेऽथ मानसं ज्ञात्वा भगवानङ्गिरा मुनिः । शशाप तं चेत्युवाच सर्वभक्षो बभूव ह ॥
 घट्टिः सचेतनो भूत्वा तुष्टाव मुनिपुङ्गवम् । ब्रौड्या नम्रयदनश्चकम्पे द्रष्टतेजसा ॥८४॥
 कुस्रोऽमुनिः परस्पृष्टाः कामिनीश्च शशाप ह । यात यूयं पापयुक्ता गान्तुपीं योनिमेष च
 भारते ब्राह्मणानाञ्च गृहे लभत जन्म वै । करिष्यन्ति विवाहञ्च गुप्ताकंकुलजा द्विजाः
 श्रुत्वा वाक्यं मुनेस्ताश्च रुद्रतुः प्रेमचिह्नलाः । पुटाञ्जलियुताः सर्वा ऊचुस्तं विदुषांघरम्
 मुनिपत्न्य ऊचुः ।

न त्यजास्मान्मुनिश्रेष्ठ निष्पापाश्च पतिव्रताः ।

अजानन्त्यः परस्पृष्टा न च नस्त्यकुमर्हसि ॥८८॥

भक्तानां किङ्करीणाञ्च न दण्डं कर्तुमर्हसि । गुप्ताकं चरणाभ्योजं कदा द्रक्ष्यामहेवयम्
 खड्गच्छेदाद्ब्रजपातात्सर्वप्रहरणान्मुने । दारुणः कान्तविच्छेदः सार्ध्वीनां दुःसंहः सदा ॥

ब्रह्मिष्ठानां गुणवतां परान् कान्तान्महामुनीन् ।

एवम्भूतान् कथं त्यक्त्वा यास्यामः पृथिवीतलम् ॥९१॥

यास्यामो यदि विप्रेश कदात्रागमनं वद । अज्ञानस्पर्शबोधश्च न स्यान्नो विधिवोधितः
 अहल्यया पुनः प्राप्तः स्वामीन्द्रस्य प्रार्थयणात् ।

सा सम्भोगात् पुनः शुद्धा स्पर्शनाद् धर्जिता धयम् ॥९३॥

विचारं कुरु धर्मिष्ठ वेदवेदाङ्गपारग । विश्वकर्तुश्च पुत्रस्त्यं सर्ववेदविदां घर ॥ ९४ ॥

अन्येषाञ्च भयात्कान्ता व्रजन्ति शरणम्पतिम् ।

स्वकान्तभयसंविग्नाः शरणं कं व्रजन्ति ताः ॥९५॥

अभयं देहि धर्मिष्ठ भययुक्ताम्य एव च । पुत्रे शिष्ये कलत्रे च को दण्डं कर्तुमक्षमः ॥

दुर्यलः सयलो वापि स्वयस्तूनामपीश्वरः । स्वद्रव्यविक्रयं कर्तुं न चान्यो रक्षितुं क्षमः

कामिनीनां वचः श्रुत्वा दयालुर्मुनिपुङ्गवः ।

प्रेम्णा रुरोद तासाञ्च निरोक्ष्य मुरपङ्कजम् ॥९८॥

वेदवेदाङ्गपाख्यो ज्ञानिनां योगिनां वरः । पत्नीविच्छेदविषये मूर्च्छां प्राप तथापि सः ॥

सर्वे बभूवुः शोकार्ता विरहोद्विग्नमानसाः ।

निरीक्ष्य तासां वक्त्राणि तस्थुः पुत्तलिका यथा ॥१००॥

कृत्वा विलापं सुचिरं सर्ववेदविदां वरः । भ्रातृभिश्च सहालोच्य ता उवाच शुचातुरः
अङ्गिरा उवाच ।

यूयं शृणुत वक्ष्यामि वचनं सत्यमेव च ।

स्वकर्मभोगिनाम्भोगमाकर्माच्च श्रुतो ध्रुतम् ॥१०२॥

गतो भोगश्च युष्माकमस्माभिः सह निश्चितम् । गते भोगे पुनर्भोगो नहि वेदेनिरूपितः
शुभाशुभश्च यत्कर्म भारते कृतिभिः सह । नाभुक्तं क्षीयते कर्म जन्मकोटिशतैरपि ॥

परमुक्ताश्च कान्ताश्च यो मुङ्क्ते स नराधमः ।

स पच्यते कालसूत्रे यावद्यन्द्रदिवाकरी ॥१०५॥

न सा दैवे न सा नैत्र्ये पाकार्हा पापसंयुता ।

तस्या धालिङ्गने भर्ता भ्रष्टश्चीस्तेजसा हतः ॥१०६॥

दैवताः पितरस्तस्य हव्यदाने च तर्पणे । सुपिनो न भवन्त्येवमित्याह कमलोद्भवः ॥
तस्माद्यज्ञेन भार्याया रक्षणं कुरुते सुधीः । अन्यथा पापभागभर्ता निश्चितं नरकं प्रजेत्

पदे पदे सावधानः कान्तां रक्षति पण्डितः ।

न व्रती न स्थली योवा दोषाणाञ्च करण्डिका ॥१०९॥

कलत्रं पाकपात्रञ्च सदा रक्षतुमर्हति । परस्पर्शाद्दशुदाश्च शुद्धां स्वस्पर्शने सदा ॥११०॥

स्वकान्तश्च परित्यज्य परंगच्छति याऽधमा । कुम्भीपाकं सा प्रयाति यावद्यन्द्रदिवाकरी
तामेव यमदूताश्च संस्थाप्य नरकान्तरे । उत्तिष्ठति विदूराच्चेत् कुर्वन्ति दण्डसादनम् ॥

सर्पप्रमाणाः कीटाश्च तीक्ष्णदंष्ट्राः सुदारुणाः । दशन्ति पुंश्चलीतत्रसततश्च दिवानिशम्

चिट्ताकारशब्दश्च करोति शाश्वतस्मिया । न ममार प्रहारेण सूक्ष्मदेहविधारिणी ॥११४॥

गन्नादं सुखं भुङ्क्वा लोकेऽत्र यशसा हता । पतिता परलोके च गतिमेतादृशीं लभेत्

परस्पृष्टा च या नारी या स्पृष्टां कुरुते परम् ।

सापि दुष्टा परित्याज्या चेत्याह कमलोद्भवः ॥११६॥

तस्मान्नारी परैर्यत्नाददृष्टा कृतिभिः कृता । असूर्यम्पश्या यादाराः शुद्धास्ताश्च पतिव्रताः
स्वच्छन्दगामिनी या च स्वतन्त्रा सूकरीसमा । अन्तर्दुष्टा सदा सैव निश्चितंपरगामिनी

स्वामिसाध्या च या नारी कुलधर्मभिया स्थिता ।

कान्तेन साजं सा कान्ता यैकुण्ठं याति निश्चितम् ॥११६॥

यात यूयञ्च पृथिवीं मानुषीं योनिमीप्सिताम् ।

कृष्णदर्शनमात्रेण गोलोकं यास्यथ ध्रुवम् ॥१२०॥

हरिणा निर्मिताश्छाया युष्माकं योगमायया ।

ता विप्रमन्दिरे स्थित्वा वागमिष्यन्ति नो ध्रुवम् ॥१२१॥

पुनरंशेन नो पत्न्यो भविष्यथ न संशयः । युष्माकं मम शापश्च यभूव च पराधिकः ॥

इत्येवमुक्त्या स मुनिर्विरराम शुचान्वितः । ता भागत्य महीं शापाद् यभूयुर्धिप्रयोपितः

वत्त्वान्नं हरये भक्त्या प्रजग्मुर्हृषिमन्दिरम् । यभूव निश्चितं तासां शापश्च सम्पदोऽधिकः

नित्या नीचाश्च सम्पत्तिर्विपत्तिर्महतो परा । महो सद्यः सतां कौपक्षोपकाराय कल्पते

यिना विपत्तेर्महिमा कुतः कस्य भवेदुषि । भूताः कान्तपरित्यागान्मुक्ता प्राप्स्यन्त्योपितः

इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमुत्तमम् । महो पुण्ययतीनाञ्च मोक्षाख्यानं मनोहरम् ॥

श्रीकृष्णाख्यानं विप्रेन्द्र नूतनं नूतनं पदे पदे ।

न हि तृप्तिः श्रुतयतां केन श्रेयसि तृप्यते ॥१२८॥

यावद्रम्यं तत् कथितं यच्छ्रुतं गुरुवक्त्रतः । पद मां घाञ्छितयत्तेर्किंभूयःश्रोतुमिच्छसि

नारद उवाच ।

यद्यच्छ्रुतं त्वया पूर्वं गुरुवक्त्रात् छापान्विते । मङ्गलं कृष्णचरितं तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो !

सूत उवाच ।

ध्रुत्वा देवर्षिचनमृषिर्नारायणः स्वयम् । अपरं कृष्णमाहात्म्यं प्रयत्नुमुपचक्रमे ॥१२१॥

इति श्रीकृष्णवैपत्ते महानुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

विप्रपत्नीमोक्षणप्रस्तावो नामाष्टादशोऽध्यायः ।

ऊनविंशोऽध्यायः

कालीयदमनाख्यानम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा बालकैः सार्धं बलदेवं पिना हरिः । जगाम यमुनातीरं यत्र कालीयमन्दिरम् ॥१॥

परिपक्वफलं भुक्त्वा यमुनातीरजे बने । स्वेच्छामयस्तुट्परोतः पपी च निर्मलं जलम् ॥

गोकुलं चारयामास शिशुभिः सह कानने ।

विजहार च तैः सार्धं स्थापयामास गोकुलम् ॥३॥

क्रीडानिमग्नचित्तोऽयं बालकाश्च मुदान्विताः ।

भुक्त्वा नवतृणं गावो विपतोयं पपुर्मुने ॥ ४ ॥

विपाक्तञ्च जलं पीत्वा वारुणान्तकचेष्टया ।

उवालाभिः कालकूटानां सद्यः प्राणांश्च तत्पुत्रैः ॥५॥

दृष्ट्वा मृतं गोसमूहं गोपाश्चिन्ताकुला भिया । विपण्णवदनाः सर्वे तमूचुर्मधुसूदनम् ॥६॥

ह्यात्वा सर्वं जगन्नाथो जीवयामास गोकुलम् ।

उत्तस्युस्तत्क्षणं गावो ददृशुः श्रीहरिमुखम् ॥७॥

कृष्णः कदम्बमारुह्य यमुनातीरनीरजम् । पपात सर्पमवने नागमध्ये नराकृतिः ॥ ८ ॥

शतहस्तप्रमाणञ्च जलोत्थानं यभूव ह । बाला हर्षं विपादञ्च मेनिरे तत्र नारद ॥ ९ ॥

सर्पो नराकृतिं दृष्ट्वा कालियः क्रोधविह्वलः । अप्राह श्रीहरिं तूर्णं तत्तलोहं यथा नरः ॥

दग्धकण्ठोदरो नागश्चोद्विग्नो ब्रह्मतेजसा । प्राणा यान्त्येवमुक्त्वा च चकारोद्वमनंपुनः

मग्नदन्तो रक्तमुखः कृष्णवज्राङ्गुचर्वणात् । रक्तवक्त्रस्य भगवानुत्तस्थो मस्तकोपरि ॥

नागो विश्वम्भराक्रान्तः स प्राणांस्त्यक्तुमुद्यतः । चकार रक्तोद्वमनं पपात मूर्च्छितोमुने

दृष्ट्वा तं मूर्च्छितं नागा रुद्धुः प्रेमविह्वलाः ।

केचित्पलायिता भीताः केचित् प्रविशिशुर्विलम् ॥ १४ ॥

मरणाभिमुख कान्त दृष्ट्वा सा सुरसा सती ।

नागिनीभि सह प्रेम्णा करोद पुरतो हरे ॥१५॥

पुटाञ्जलियुता तूर्णं प्रणम्य श्रीहरिं भिया । धृत्वा पादारविन्दे च तमुवाच भियाकुला ॥

सुरसोवाच ।

हे जगत्कान्त कान्त मे देहि मानञ्च मानम् ।

पति प्राणाधिक स्त्रीणा नास्ति यन्मुञ्च सत्पर ॥१७॥

अयि सुरसरनाथ ! प्राणनाथ मदीय ! न कुरु वधमनन्तप्रेमसिन्धो ! सुवन्धो ! ।

अपिलभुवनवन्धो ! राधिकाप्रेमसिन्धो ! पतिमिह कुरु दान मे विधातुर्विधात ॥१८॥

त्रिनयनविधिशेषा यन्मुखश्चास्यसङ्घै स्तवनविषयजाड्या स्तोतुमीशा न यापी ।

न खलु निखिलवेदा स्तोतुमन्येऽपि देवा स्तवनविषयशक्ता सन्ति सन्तस्तवैव ॥

कुमतिरहमविज्ञा योपिता काधमा वा क भुवनगतिरीशश्चभुषो गोचरोऽपि ।

विधिहरिहरशेषै स्तूयमानश्च यस्त्वमतनुमनुजमीश स्तोतुमिच्छामि त त्वाम् ॥२०॥

स्तवनविषयभीता पार्वती यस्य पद्मा श्रुतिगणजनयित्री स्तोतुमीशा न य त्वाम् ।

कलिकलुपनिमग्ना वेदवेदाङ्गशास्त्रध्वजविषयमूढा स्तोतुमिच्छामि किं त्वाम् ॥२१॥

शयानो रत्नपर्यङ्के रत्नभूषणभूषित ।

रत्नभूषणभूषाङ्गी राधावक्षसि सस्थित ॥२२॥

चन्दनोक्षितसर्वाङ्ग स्मेराननसरोरुह ।

प्रोद्यत्प्रेमरसाम्भोधीं निमग्न सतत सुखात् ॥ २३ ॥

मल्लिकामालतीमालाजालै शोभितशेखर ।

पारिजातप्रसूनाना गन्धामोदितमानस ॥ २४ ॥ .

पुष्कोकिलकलपानैर्भ्रमरध्वनिसयुतै । कुसुमेषु विकारण पुलकाङ्कितविग्रह ॥२५॥

प्रियाप्रदत्ताभ्यूल भुक्तवान् य सदा मुदा । वेदा अशक्ता य स्तोतु जडोभूताविचक्षणा

तमनिर्वचनीयञ्च किं स्तोमि नागवल्लभा । घन्देऽह त्वत्त्वदाम्भोज त्रहेशशेषसेवितम् ॥

लक्ष्मीसरस्वतीदुर्गाजाड्यविदेमातृभि । सेवित सिद्धसङ्घैश्च मुनीन्द्रैर्मनुभि सदा ॥

निष्कारणायाखिलकारणाय सर्वेश्वरायापि परात्पराय ।

स्थयं प्रकाशाय पराचराय पराचराणामधिपाय ते नमः ॥ २६ ॥

हे कृष्ण हे कृष्ण सुरासुरेश ब्रह्मेश शेषेश प्रजापतीश ।

मुनीश मन्वीश चराचरेश सिद्धीश सिद्धेश गुणेश पाहि ॥ ३० ॥

धर्मेश धर्मोश शुभाशुभेश वेदेश वेदेष्ट्वनिरूपितश्च ।

सर्वेश सर्वात्मक सर्ववन्धो जीवीश जीवेश्वर पाहि मत्प्रभुम् ॥ ३१ ॥

इत्येवंस्तवनं कृत्वा भक्तिमन्नात्मकन्धरा । विधृत्य चरणाम्भोजं तस्यौ नागेशवल्लभा

नागपत्नीकृतं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । सर्वपापात् प्रमुक्तस्तु यात्यन्ते श्रीहरेः पदम्

इहलोके हरेर्भक्तिमन्ते दास्यं लभेद्भुवम् । लभते पार्यदो भूत्वा सालोक्ष्यादिवत्तुष्टयम्

नारद उवाच ।

नागपत्नीवचः श्रुत्वा भगवान् सर्वनन्दनः ।

ब्रह्मद्योत्कुलनयनः किमुवाच हरिः स्थयम् ॥ ३५ ॥

कथयस्व महाभाग रहस्यं परमाद्भुतम् ॥ ३६ ॥

सूत उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा भगवान् सर्वदर्शनः । उवाच परमाख्यानं मधुवृन्द् पदे पदे ॥ ३७

नारायण उवाच ।

नागपत्नीवचः श्रुत्वा श्रीकृष्णस्तामुवाच ह । पुटाञ्जलियुतां पादे पतितान् भयविह्वलान्

श्रीकृष्ण उवाच

उत्तिष्ठोऽत्तिष्ठ नागेशि वरं वृणु मयं त्यज । गृहाण कान्तं हे मातर्महाराजजगामरम् ॥

कालिन्दीवदमुत्सृज्य स्वकीयं भवनं व्रज ॥ ३९ ॥

भर्त्ता स्वगोप्त्रया सार्द्धञ्च गच्छ घत्से त्वमीप्सितम् ।

अद्य प्रभृति नागेशि भूता कन्या च त्वं मम ॥ ४० ॥

त्यत् प्राणाधिकं पवार्यं जामाता च न संशयः ।

पादपद्मचिह्नेन गरुडस्त्यत्पतिं शुभे ॥ ४१ ॥

कृत्वा च स्तवनं भक्त्या प्रणमिष्यति मत्पदम् ।

त्यज त्वं गरुडाद्वीतिं शीघ्रं रमणकं व्रज ।

हृदाग्निर्गच्छ तत्से त्वं वरं वृणु यथेप्सितम् ॥ ४२ ॥

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रसन्नवदनेक्षणा । उवाच साश्रुनेत्रा सा भक्तिनम्रात्मकन्धरा
सुरसोवाच ।

वरं दास्यसि चेन्मह्यं वरदेश्वर हे पितः । त्वत्पादाब्जे वृद्धांभक्तिं निश्चलां दातुमर्हसि ॥
मन्मनस्त्वत्पदाम्भोजे भ्रमतु भ्रमरो यथा । तव स्मृतेर्विस्मृतिर्मे कदापि न भविष्यति
स्वकान्ते मम सौभाग्यं कान्तोऽयं हानिनां वरः ।

इत्येवं प्रार्थनीयञ्च परिपूर्णं कुरु प्रभो ॥ ४६ ॥

इत्येवमुक्त्वा सर्पस्त्री प्रतस्थौ पुण्यो हरिः । शरत्पार्वणवन्त्रास्यं ददर्श श्रीहरेर्मखम् ॥
लोचनाभ्यां पयो वक्त्रं निमेषरहितं सती । सर्वाङ्गपुलकोद्भिन्ना सानन्दाश्रुपरिप्लुता ॥
सुन्दरं बालकं वृद्धा पुत्रस्नेहं प्रकुर्वती । उवाच पुनरेवेवं भवयुक्तेकपरिप्लुता ॥ ४६ ॥

न यास्यामि रमणकं तत्र नास्ति प्रयोजनम् । सर्पः करोतु संसारंकुरु मां निजकिकरीम्
न वाञ्छा मम हे कृष्ण सालोक्यवादिबतुष्ये ।

त्वत्पदाम्भोजसेवायाः कलां नार्हसि षोडशीम् ॥ ५१ ॥

विना त्वत्पादसेवाञ्च यो वाञ्छति वरान्तरम् ।

भारते दुर्लभं जन्म लब्ध्वाऽसौ वञ्चितः स्वयम् ॥ ५२ ॥

नागपत्नीवचः श्रुत्वा स्मेराननसरोरुहः । प्रसन्नमानसः श्रीमानोमित्येवमुवाच ॥ ५३ ॥
एतस्मिन्नन्तरे दिव्यः सद्भक्तसारनिर्मितः । आजगाम रथस्तूर्णमुद्गीतस्तेजसा मुने ॥ ५४ ॥
पार्वदप्रवरैर्युक्तो घल्लमालापरिच्छदः । शतचक्रो वायुवेगो मनोयायी मनोहरः ॥ ५५ ॥

अवहृष्टा रथात्तूर्णं श्यामलाः श्यामकिङ्कराः ।

प्रणम्य कृष्णं तां नीत्वा जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ॥ ५६ ॥

हरिश्छायां विनिर्माय ददौ सर्पाय तेजसा । सच किञ्चिन्न युवुषे मोहितो विष्णुमायया
अवहृष्टा सर्पमूर्धनः श्रीकृष्णः कण्ठानिधिः । ददौ हस्तञ्च कृपया शीघ्रं कालीयमस्तके ॥

सम्प्राप्य चेतनां सद्यो ददर्श पुरतो हरिम् । पुटाञ्जलियुतां साश्रुपूर्णाञ्च सुरसां सतीम्
प्रणनाम हरिं सद्यो रुरोद प्रेमविह्वलः । भक्त्युद्रेकात्साश्रुनेत्रां पुलकाङ्कितविग्रहाम् ॥ ६० ॥
तूष्णीम्भूताञ्च तान् दृष्ट्वा समुवाच कृपानिधिम् । मदीश्वरस्य सततं योग्यायोग्येसमाकृपा

श्रीकृष्ण उवाच ।

वरं वृणु त्वं कालीय यस्ते मनसि वर्तते । त्वं मे प्राणाधिको वत्स सुखं तिष्ठ भयं त्यज
तस्याहमनुगृह्णामि योऽतिभक्तो ममांशजः । किञ्चित्त्वहमनं कृत्वा प्रसादं हि करोम्यहम्
त्वदंशजातान् सर्पांश्च हन्ति यो मानवाधमः । ब्रह्महत्यासमं पापं भविता तस्य निश्चितम्
मत्पादपद्मविह्वे यः करोति दण्डताडनम् । द्विगुण ब्रह्महत्याया भविता तस्य किं विषमम्
लक्ष्मीर्यास्यति तद्देहाच्छापदस्त्वा सुदारुणम् । वंशायुर्यंशसाहानिर्भविता तस्य निश्चितम्

भुवं वर्षशतं कालसूत्रे यास्यति मन्त्रिरा ॥ ६६ ॥

त्वत्प्रमाणाः कीटसङ्गा दंशिष्यन्ति च सन्ततम् ।

भोगान्ते जन्म लब्ध्वा च तस्मै युर्वै हि वंशनात् ॥ ६७ ॥

तस्य वंशोद्भवानाञ्च त्वद्वंशाद्भविता भयम् । ये च त्वद्वंशजान् दृष्ट्वा सुपदाङ्कं मदीयकम्
प्रणमिष्यन्ति भक्त्या ते मुच्यन्ते सर्वपातकात् । गच्छन्तीं प्रमणकं त्यज भीतिं खगाधिपात्
मत्पदाङ्कं मूर्ध्नि दृष्ट्वा त्वां भक्त्या प्रणमिष्यति । तव त्वद्वंशजानाञ्च गरुडान्नभयं क्वचित्
सर्वेषां क्षातिसर्पाणां घरोऽद्य भयं भवरात् । वरं किं परमं वत्स वाञ्छितं वरयाधुना
भयं त्यक्त्वा फथय मां त्वदीयं दुःखभञ्जनम् । श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा कालीयः कसिपतो भिया

पुटाञ्जलियुतो भूत्वा तमुवाच भुजङ्गमः ।

कालीय उवाच ।

परेऽन्यस्मिन् मम विभो वाञ्छा नास्ति वरप्रद ! ॥ ७२ ॥

भक्तिस्मृतिं त्वत्पदाब्जे देहि जन्मनि जन्मनि । जन्मब्रह्मकुले वापि तिर्यग्योनिपुत्रासमम्
तद्भवेत् सफलं यत्र स्मृतिस्त्वचरणगुजे ।

तन्निष्फलः स्वर्गवासो नास्ति चेत् त्वत्पदस्मृतिः ॥ ७५ ॥

त्वत्पादध्यानयुक्तस्य यत्तत्स्थानञ्च तत्परम् । क्षणं चाकोटिकत्वं वापु रपायुः क्षयोऽस्तु वा

यदि त्वत् सेवया याति सफलो निष्फलोऽथवा ।

तेषाञ्चायुर्व्ययो नास्ति ये त्वत्पादाञ्जसेवका ॥ ७७ ॥

न सन्ति जन्ममरणरोगशोकास्तिमीतय । इन्द्रत्वे वामरत्वे वा ब्रह्मत्वे चातिदुर्लभे ॥
घाञ्छा नास्त्येव भक्तानां त्वत्पादसेवन विना । सुजीर्णपटपण्डस्य सम नूतनमेव च
पश्यन्ति भक्ता किञ्चान्यत् सालोक्यादिचतुष्टयम् ।

सप्राप्तस्त्यन्मनुर्ब्रह्मजनन्ताद् यावदेव हि ॥ ८० ॥

तावत् स्वद्वायनेनेव त्वद्गणऽहमनुग्रहात् । मा च भक्तमपक्व वा विज्ञाय गच्छ स्वयम्
देशाद् दूरञ्च न्यकार चकार दृढभक्तिमान् । भवता च दृढाभक्तिर्वत्ता मे वरदेष्वर ॥ ८२ ॥

न च भक्तश्च भक्तोऽहं न मा त्यक्तु क्षमोऽधुना ।

त्वत्पादपद्मचिह्नाक दृष्ट्वा श्रीमस्तक मम ॥ ८३ ॥

सदोपगुणयुक्त मा सोऽधुना त्यक्तुमर्हति । ममाराध्याश्चनानेन्द्रा न तदुचभ्योऽहमीश्वर
भय न केभ्य सर्वत्र तमनन्त गुरु पिना । य देवेन्द्राश्च देवाश्च मुनयो मनवो नरा ॥

स्वप्ने ध्यानेन पश्यन्ति चतुर्गोर्गाचर स मे ।

भक्तानुरोधात् साकार कुतस्ते विप्रहो विभो ॥ ८६ ॥

सगुणस्त्वञ्च साकारो निराकारश्च निर्गुण । स्वेच्छामय सर्वधामसर्वार्थाज सनातनम्
सर्वेषामीश्वर साक्षी सर्वात्मा सर्वरूपशुक् । त्र्यलेशशश्रमेन्द्रा वैदवेदान्तपारगा ॥ ८८ ॥

स्तोतु यमीश ते जाट्या सर्पस्तोत्र्यति न विभुम् ।

हे नाथ ' करुणासिन्धो ' दीनगन्धो ' क्षमाधमम् ॥ ८९ ॥

राजस्वभावाद्राजानात् वृष्ण ! त्वञ्चर्चितो मया ।

नात्रलक्ष्यो यथाकाशो न दृश्यान्तो न लप्स्यक ॥ ९० ॥

न स्पृश्यो हि न चाप्यर्प्यस्तथा तेजस्वमेव च । इत्येवमुक्त्वा नागेन्द्र पपात चरणाभ्युजे
भोमित्युक्त्वा दृष्टिस्तुष्ट सर्वं तस्मै वरं ददौ । नागराजवृत्तं स्तोत्रं प्राप्तव्याय य पठेत्
तद्दृश्यानाञ्चतस्यैव नागेभ्यो न भयमयेत् । स नागराण्या वृत्तैव स्वन् शक्त सशभुवि
चिपयीयूपयोर्मदो नास्त्येव तस्य भक्षणे । नागप्रस्ते नागघाते प्राणान्ते विकभोजनात्

स्तोत्रश्रवणमात्रेण सुस्थो भवति मानवः । भूर्जे हृत्वा स्तोत्रमिदं कण्ठे वा दक्षिणेकरे

विभक्तं यो भक्तियुक्तो नागेभ्योऽपि न तद्वयम् ।

यत्र गेहे स्तोत्रमिदं नागस्तत्र न तिष्ठति ॥ ६६ ॥

चिपाग्रिवज्रभीतिश्च न भवेत्तत्र निश्चितम् । इहलोके हरेर्भक्तिं स्मृतिश्च सततं लभेत् ॥

अन्ते च स्वकुलं पूत्वा दास्यश्च लभते ध्रुवम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

नागेन्द्राय वरं दत्त्वा पुनस्तं जगदीश्वरः ॥ ६८ ॥

उवाच मधुरं वाक्यं परिणामसुखावहम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

गच्छ त्वञ्च रामकं यथेन्द्रनगरं परम् ॥ ६९ ॥

सार्द्धं स्वगोष्ठ्या नागेन्द्र यमुनाजलवर्त्मना । श्रुत्वानागो हरेराज्ञां करोद् प्रेमविह्वलः

कदा द्रक्ष्यामि त्वत्पादपद्मं नाथेशुवाच ह । प्रणम्यशतकृत्वञ्च स्त्रियागोष्ठ्यामहेश्वरम्

जगाम जलमार्गेण नागेन्द्रो विरहातुरः । यमुनाहवतोयञ्च बभूवामृतकल्पकम् ॥ १०२ ॥

प्रसन्ना जन्तयः सर्वे बभूवुस्तेन नारद । गत्वा ददर्श भवनं यथेन्द्रनगरं परम् ॥ १०३ ॥

आज्ञया च कृपासिन्धोर्निर्मितं विश्वकर्मणा ।

तत्र तस्थौ च नागेन्द्रः स्त्रिया पुत्रगणैः सह ॥ १०४ ॥

निःशङ्कोहर्षयुक्तश्च हरिभावनतत्परः । इत्येवं कथितं सर्वं हरेर्भरितमनुत्तम् ॥ १०५ ॥

सुखदं मोक्षदं सारं परं किं श्रोतुमिच्छसि ।

सूत उवाच ।

महर्षेर्वचनं श्रुत्वा नारदो हर्षविह्वलः । क्षर्पि पप्रच्छ सन्देहं सर्वसन्देहभञ्जनम् ॥ १०६ ॥

नारद उवाच ।

कथं चिदाय कालीयः स्वपूर्वभवनं परम् । जगाम यमुनार्तीरं तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो ॥

श्रीनारायण उवाच ।

शृणु नारद धर्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ॥ १०८ ॥

यच्छ्रुतं धर्मवक्त्राण्ये मलये सूर्यपर्वणि । रुष्णाख्यानप्रसङ्गेन सुप्रभापश्चिमे तटे ॥
 पप्रच्छ धर्मं पुलहः कथितं मुनिसंसदि । इदमाख्यानमाश्चर्य्यमुवाच तं रूपानिधिः ॥
 तत्र श्रुतं मयाधिप्र निबोध कथयामि ते । शेषाक्षया नागगणाः प्रतिसंवत्सरं भिया ॥
 कार्तिकीपूर्णिमायान्तु कुर्वन्ति गरुडार्चनम् । पुष्पैर्धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्बलिभिर्मुदा ॥
 पुष्करे च महातीर्थे सुज्ञातो भक्तिसंयुतः । तस्य पूजाञ्च कालीयो न चकारात्यहंकृतः ॥
 नागपूजोपकरणं यत्नद्वक्षितुमुद्यतः । चक्रुर्निवारणं नागा नीतिमूचुर्मदोद्धतम् ॥११४॥
 न शक्ता वारणे ते चेत्याकिर्भूतः खगेश्वरः । दृष्ट्वा खगेश्वरं नागा कालीयप्राणरक्षया ॥
 प्राणशक्त्या च युयुधुर्याघत्सूर्य्योदयं मुने । पक्षीन्द्रतेजसा सर्वे समुद्दिग्नाः पलायिताः ॥
 अनन्तं शरणं जग्मुः सर्वेषामभयप्रदम् । पलायनपरान् दृष्ट्वा नागांश्च कण्ठानिधिः ॥
 तत्र तस्थौ च निःशङ्कः कालीयस्तं ददर्श ह । स्मृत्वा हरिपदाम्भोजं कालीयो युयुधेमुने
 मुहूर्तश्च तयोर्युद्धं बभूयातीवदारुणम् । पराजितश्च नागेन्द्रस्तेजसा गरुडस्य च ॥११६॥
 भिया पलायनं कृत्वा जगाम यमुनाहवम् । न तं सौभरिशापेन खगेन्द्रो गन्तुर्माश्वरः ॥

तत्र तस्थौ भिया नागो जग्मुः पश्चाच्च तत्रणाः ॥ १२० ॥

नारद उवाच ।

कथं तु सौभरः शापो बभूव गरुडाय वै । कथं न शक्नो गन्तुं तं हृदयमीश्वरवाहनः ॥

श्रीनारायण उवाच ।

दिव्यं धर्मसहस्रञ्च वर्षाणां तत्र सौभरिः । तपस्तप्त्वा मदासिद्धो दध्यौरुष्णपदाम्बुजम्
 समीपे ध्यायमानस्य कूले च यमुनाजले । गणेन सादं निःशङ्कः करोति भ्रमणं मुदा ॥
 पुच्छमुत्फाल्य बहुधा परितः परमेष्ठया । मुनिं प्रदक्षिणीकृत्य यात्यायाति मुदान्वितः
 शकुलं सुमहात्मनं दर्शं दर्शं सगाधिपः । जग्राह चञ्चुना तूर्णं मुनीन्द्रस्य समीपतः ॥
 गच्छन्तं तं मीनमुखं ददर्श कोपचक्षुषा । प्रकोपतो मुनेर्दृष्ट्वा मीनस्तोये पपात ह ॥
 तमुवाच मुनीन्द्रश्च पुनरादातुमुद्यतम् । मीनश्च गरुडत्रासात्तस्थौ मुनिसमीपतः ॥

सौभरिख्याच ।

गच्छ दूरं गच्छ दूरं खगेन्द्र मत्समीपतः । का योग्यता मत्पुरस्ते प्रदीतुं जीवमुत्थणम्

श्रीकृष्णवाहनं ज्ञात्वा चात्मानं बहुमन्यसे । त्वद्विधान्कोटिशः कृष्णः स्रष्टुं शकश्च वाहकान्
 करोमि भस्मसात्तूर्णं त्वाञ्च भूभङ्गलीलया । वाहनञ्च त्वमीशस्य ॥ वयं तव किङ्कराः
 अद्य प्रभृति पक्षीन्द्र यद्यागच्छति मे हृदम् । मदीयशापात्तूर्णञ्च भस्मसाद्वचिता भुवम् ॥
 मुनीन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रवचाल खगेश्वर । स्मारं स्मारं कृष्णपादं तं प्रणम्य जगाम ह
 अद्य प्रभृति विप्रेन्द्र पतगेन्द्रस्य सन्ततम् । हृदस्य श्रुतिमात्रेण कम्पो भवति निश्चितम् ॥
 इतिहासश्च कथितो यः श्रुतो धर्मवक्त्रतः । सरहस्यं श्रुतिसुखं प्रकृतं शृणु मङ्गलम् ॥
 विज्ञाय सुविरं बाला नोत्तस्थौ तज्जलाद्वरिः । चक्रुर्विपादं मोहाच्च रुरुर्धुर्मुनातटे ॥

स्य वक्षो घातनञ्चक्रुः केचिद्बालाः शुचाकुलाः ।

केचिन्निपत्य भूमौ च मूर्च्छां प्रापुर्हरिं विना ॥ १३६ ॥

इदं प्रवेष्टुं केचिच्च विरहेण समुद्यताः । केचिद्गोपालबालाश्च चक्रुश्च तन्निवारणम् ॥
 कृत्वा विलापं केचिच्च प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यताः । तेषां केचिज्ज्ञानवन्तो रक्षाञ्चक्रुः प्रयत्नतः
 केचिद्बुधश्च हावेति कृष्ण कृष्णेति केचन । केचिद्बुधं प्रवृत्तिञ्च प्रययुर्नन्दसन्निधिम् ॥

केचित्सम्मीलितास्तत्र शोकमोहमयातुराः ।

इत्युचुः किं करिष्यामः कुतोऽस्माकं गतो हरिः ॥ १४० ॥

हे नन्दसूतो हे कृष्ण प्राणेभ्योऽप्यधिकप्रिय ।

हे बन्धो दर्शनं देहीत्युचुः प्राणाः प्रयान्ति हि ॥ १४१ ॥

पतस्मिन्नातरे केचिद्बालका नन्दसन्निधिम् । संप्रापुरतिलोलाश्च रदन्तः शोकपिह्वलाः
 प्रवृत्तिमूचुस्तं शीघ्रं यशोदां मूलतो बलम् । गोपान्गोपालिकाश्चैव रक्तपंकजलोचनाः
 ध्रुत्वावार्त्ताञ्च ते सर्वेशीघ्रं जग्मुः शुचान्विताः । कलिन्दनन्दिनीतीरं रुरुर्वालकैर्युताः
 गत्वासम्मीलिताः सर्वैरुदुः शोकमूर्च्छिताः । हृदं विशन्तीमम्यांतां केचिच्चक्रुर्निवारणम्
 गोपा गोपालिकाश्चैव जग्मुर्द्वानि शोकतः । केचिद्विललपुस्तत्र मूर्च्छां प्रापुश्च केचन
 हृदं विशन्तीं तां राधां धारयामास काञ्चन । मूर्च्छाञ्च प्रापसाशोकान्मृतेवच सरित्तटे

विलप्यातिभृशं नन्दो मूर्च्छां प्राप पुनः पुनः ।

भूयोऽपि रोदनं कृत्वा भूयो मूर्च्छामवाप ह ॥ १४८ ॥

विलपन्त भृश नन्द यशोदा शोककर्षिताम् ।
गोपाश्च गोपिकाश्चैव राधिकामतिमूर्च्छिताम् ॥ १४६ ॥
रुदतो बालकान् सर्वान् बालिकाश्च शुचान्विता ।
सर्वाश्च बोधयामास बलश्च ज्ञानिना पर ॥ १५० ॥

शीरलदेव उवाच ।

गोपा गोपालिका बाला सर्वेऽश्रुणुतमद्वच । हे नन्द ज्ञानिना श्रेष्ठगर्गवाक्यस्मृतिरुत ॥
जगद्विभर्तु शेषस्य सहर्तु शङ्करस्य च । विधातु सविधातुश्च भुवि कस्मात्पराजय
परमाणु परो व्यूह स्थूलात् स्थूल परात्पर ।
विद्यमानोऽप्यविद्वश्य सयोगो योगिनामपि ॥ १५३ ॥
दिशा नास्ति समाहार स्पृश्योनाकाश एव च ।
अपि सर्वेश्वरो दाभ्य इत्यूचु धृतय स्फुटम् ॥ १५४ ॥
नात्मा दृश्यो नास्त्रलक्ष्यो न वयो न हि दृश्यक ।
नानिन्द्रस्तो न हिस्यश्वापीदमाध्यात्मिका विदु ॥ १५५ ॥
विग्रहोऽस्यैव कृष्णस्य मक्तध्यानार्थमेव च ।
ज्योति स्वरूपस्य विभीर्नाद्यन्तमध्यमात्मन ॥ १५६ ॥

जलप्लुते च ग्रहाण्डे जलशायी जनार्दन । यत्राभिपद्यतो ग्रहा तस्येशस्य हृदे विपत्
मशकञ्चेत् क्षमो प्रस्तु ग्रहाण्डमखिलपित । न तथापि तद्दीश त ग्रस्त सर्प क्षमोभवेत्
इत्येव कथित सर्वमाध्यात्मिकमनुत्तमम् । निगूढ योगिना सार सशयच्छेदकारणम्
बलदेवस्य श्रुत्या गर्गवाक्यमनुस्मरन् । तत्वाज शोक नन्दश्च व्रजाश्च व्रजयोपित
प्रबोध मेनिरे सर्वे न यशोदा न राधिका । बन्धुविच्छेदविषये प्रबोधेन स्थित मन ॥
एतस्मिन्नन्तरं कृष्णमुत्पतन्त जलान्मुने । ददृशुस्त सुप्रसन्ना व्रजाश्च व्रजयोपित ॥ १६२ ॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्य सस्मित सुमनोहरम् । अस्निग्धवल्लभस्निग्धमलुप्तचन्दनाञ्जनम् ॥
सर्वाभरणसयुक्त ज्वलन्त ग्रहतेजसा । मयूरपिच्छचूडञ्च वशीवदनमच्युतम् ॥ १६४ ॥
यशोदा बालक दृष्ट्वा कृत्वा वक्षसि सस्मृता । चुचुभ्य वदनाम्भोज प्रसन्नवदनक्षणा ॥

क्रोडे चकार नन्दश्च बलश्च रोहिणी मुदा । निमेषरहिताः सर्वे देवशुः श्रीमुखं हरेः
 प्रमाणा बालका सर्वे चक्रुरालिङ्गनं हरेः । पपुश्चक्षुश्चकोरेश्च मुखचन्द्रश्च गोपिका ॥
 पतस्मिन्नन्तरे तत्र सहसा काननान्तरम् । दावाग्निर्वेष्टयामास तैः सर्वैः सहगोकुलम् ॥
 दृष्ट्वा शैलप्रमाणान्निं परितः काननान्तरे । प्रणाशं मेनिरै सर्वे भयमापुश्च सङ्कटे ॥
 श्रीकृष्णं तु पुत्रुः सर्वे सम्पुष्टाञ्जलयो व्रजाः । बालागोप्यश्च सन्त्रस्ताभक्तिनम्रात्मकन्धराः
 बाला ऊचुः ।

यथा संरक्षितं ब्रह्मन् सर्वापत्स्वेव नः कुलम् । तथा रक्षां कुरु पुनर्दावानेर्मधुसूदन ॥
 त्वमिष्टदेवतास्माकं त्वमेव कुलदेवता । स्रष्टा पाता च संहर्त्ता जगताञ्च जगत्पते ॥
 वह्निर्वा वरुणो वापि चन्द्रो वा सूर्य एव वा । यमः कुबेरः पवन ईशानाद्याश्च देवताः ॥
 ब्रह्मेशोपधर्मेन्द्रा मुनीन्द्रा मनवः स्मृताः । मानवाश्च तथा दैत्या यक्षराक्षसकिन्नराः
 ये ये चराचराश्चैव सर्वे तप विभूतयः । आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषाञ्च तवेच्छया ॥
 अभयं देहि गोविन्द वह्निसंहरणं कुरु । वयं त्वां शरणं यामो रक्ष नः शरणागतान् ॥
 इत्येवमुक्तवाते सर्वे तस्थुर्ध्यात्वापदायुजम् । दूरीभूतस्तु दावाग्निः श्रीकृष्णानृतद्वष्टितः
 दूरीभूते च दावाग्नौ ननृतुस्ते मुदान्विताः । सर्वापदः प्रणश्यन्ति हरिस्मरणमाश्रितः ॥
 इदं स्तोत्रं महापुण्यं प्रातस्तथाय यः पठेत् । वह्नितो न भवेत्तस्य भयं जन्मनि जन्मनि
 शत्रुप्रस्ते च दावाग्नौ विपत्तौ प्राणसंकटे । स्तोत्रमेतत् पठित्वा तु मुच्यते नाशसंशयः
 शत्रुसैन्यं क्षयं याति सर्वत्र विजयी भवेत् । इह लोके हरेर्भक्तिमन्तेदास्यं लभेद्बुधयम्

श्रीनारायण उवाच ।

दावाग्निमोक्षणं कृत्वा तैः साङ्गं शृणु नारद । जगाम श्रीहरिर्गोहं कुबेरभवनोपमम् ॥
 ब्राह्मणेभ्यो धनं नन्दः परिपूर्णदंष्ट्री मुदा । भोजनं कारयामास ज्ञातिवर्गाश्च धान्यधानं
 नानाविधं मङ्गलञ्च हरेर्नामानुकीर्तनम् । वेदांश्च पाठयामास विप्रद्वारा मुदान्वितः ॥
 एवं मुमुदिरे सर्वे घृन्दारण्ये गृहे गृहे । श्रीकृष्णचरणाम्भोजध्यानैकतानमानसाः ॥
 इत्येवं कथितं सर्वं हरेर्धरितमङ्गलम् । कलिकलियपकाष्ठानां दहने दहनोपमम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे

श्रीकृष्णजन्मखण्डे कालीयदमनदावाग्निमोक्षणं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।

विंशोऽध्यायः

ब्रह्मणा गोवत्सादिहरणम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

...१ बालकैः सार्धं बलेन सह माधवः ।

भुक्त्वा पीत्वाजुलितश्च वृन्दारण्यं जगाम ह ॥ १ ॥

क्रीडाञ्चकार भगवान् कौतुकेन च तैः सह ।

क्रीडानिमग्नचित्तानां दूरं तद् गोकुलं ययौ ॥ २ ॥

तस्य प्रभावं विज्ञातुं विधाता जगताम्पतिः ।

जहार गाश्च सर्वाश्च वत्सांश्च बालकानपि ॥ ३ ॥

विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञः सर्वकारकः । पुनश्चकार तःसर्वयोगीन्द्रो योगमायया ॥४॥

जगाम श्रीहरिर्गोहं चारयित्वा च गोकुलम् । बलेन बालकैः सार्धं क्रीडाकौतुकमानस-

एवं चकार भगवान् वर्षमेकञ्च प्रत्यहम् । यमुनागमनं गोभिर्वलेन सह बालकैः ॥ ६ ॥

ब्रह्मा प्रभावं विज्ञाय लज्जानम्रात्मकन्धरः । आजगाम हरेः स्थानं भाण्डीरवटमूलके ॥

ददर्श कृष्णं तत्रैव गोपालगणवेष्टितम् । यथा पार्वणचन्द्रश्च विभान्तं भगणैः सह ॥८॥

रत्नसिंहासनस्थश्च दसन्तं सस्मितं मुदा । पीतवस्त्रपरीधानं उचलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥९॥

रत्नकैयूरघलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् । रत्नकुण्डलयुग्माभ्यां स्वकपोलस्थलोऽञ्जलम् ॥१०॥

कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमार्चितविग्रहम् ॥११॥

पारिजातप्रसूतानां मालाजालैर्विभूषितम् ।

नवीननीरदश्यामं प्रोद्भिन्नवयोवनम् ॥ १२ ॥

मालतीमाल्यसंयुक्तं मयूरपिच्छचूडकम् । स्वाङ्गसौन्दर्य्यदीप्त्या च कृतभूषणभूषितम् ॥

शरत्पार्वणचन्द्रस्य प्रभामुष्टास्यसुन्दरम् । पक्षिभ्वाधरीष्ठञ्च खगेन्द्रचञ्चुनासिकम् ॥

शरन्मध्याह्नपशानां प्रभामोचनलोचनम् । मुक्तापङ्क्तिविनिन्यैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम् ॥

कौस्तुभेन मणीन्द्रेण पक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ।

शान्तञ्च राधिकाकान्तं परिपूर्णतमं परम् ॥ १६ ॥

एवंभूतं प्रभुं दृष्ट्वा प्रणनामातिविस्मितः । दर्शं दर्शमीश्वरं तं प्रणनाम पुनः पुनः ॥ १७ ॥
यत्तु दृष्टं हृदयाम्भोजे तद्रूपं घहिरेष च । या मूर्तिः पुरतो दृष्टा सा पश्चात्पस्तिस्ततः ॥
तत्र वृन्दावने सद्यं दृष्ट्वा कृष्णसमं मुने । ध्यायं ध्यायञ्च तद्रूपं तत्र तस्थौ जगद्गुरुः ॥
गावो घत्साश्च चालाश्च लता गुल्माश्च वीरुधः । सर्वं वृन्दावनं ब्रह्मा श्यामरूपं ददर्श ह
दृष्ट्वैव परमाश्चर्य्यं पुनर्ध्यानञ्चकार ह । ददर्श त्रिजगद् ब्रह्मा माम्यत् कृष्णंविना मुने

क च वृक्षः क वा शैलः क्व मही क्व च सागराः ।

क्व देवाः क्व च गन्धर्वा मुनीन्द्राः क्व च मानवाः ॥ २२ ॥

क्व चात्मा क्व जगद्बीजं क्व स्वर्गाः गाव एव च ।

सर्वञ्च स्यद्रुशा ब्रह्मा ददर्श मायया हरेः ॥ २३ ॥

क्व कृष्णो जगतां नाथः क्व वा मायाविभूतयः ।

सर्वं कृष्णमयं दृष्ट्वा किञ्चिन्निर्व्यकुमक्षमः ॥ २४ ॥

किं स्तौमि किं करोमीति मनसैवं प्रगृह्य च ।

तत्र स्थित्वा जगदाता जपं कर्तुं समुद्यतः ॥ २५ ॥

सुखं योगासनं कृत्वा बभूव सम्पुटाञ्जलिः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साधुनेत्रोऽतिदीनवत्
इडां सुपुत्रां मध्याञ्च पिङ्गलां नलिनीन्धुराम् । नाडीपट्कञ्च योगेन निबध्यचप्रयत्नतः
मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम् । विशुद्धं परमाश्चर्य्यं पट्चक्रञ्च निबध्य च ॥
लङ्घनं कारयित्वा च तं पट्चक्रं क्रमाद्विधिः । ब्रह्मरन्ध्रं समानीय घायुपूर्णञ्चकार ह ॥

निबध्य घायुं मध्यान्तामानीय हृदयाम्बुजम् ।

तं घायुं भ्रमयित्वा च योजयामास मथ्यया ॥ ३० ॥

एवं कृत्वा तु निष्पन्दो यो दत्तो हरिणा पुरा । जज्ञाप परम मन्त्रं तत्सर्वैव दशाक्षरम्
मुहूर्तञ्च जपं कृत्वा ध्यायं ध्यायं पदाम्बुजम् । ददर्श हृदयाम्भोजे सर्वतेजोमयं मुने
तत्तेजसोऽन्तरे रूपमतीव सुमनोहरम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं भूषितं पीतवाससा ॥ ३१ ॥

श्रुतिमूलस्थलन्यस्तज्जलन्मकरकुण्डलम् । ईषद्वास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ॥ ३१ ॥
यद् दृष्टं ग्रहसन्धे च हृदि तद्वहिरिव च । दृष्ट्वा च परमाश्चर्यं तुष्टाव परमेश्वरम् ।
यत् स्तोत्रञ्च पुरा दत्तं हरिणैकार्णवे मुने । तमोशं तेन विधिना भक्तिनम्रात्मकन्धर
ब्रह्मोवाच ।

सर्वस्वरूपं सर्वेशं सर्वकारणकारणम् ।

सर्वानिर्वचनीयं तं नमामि शिवरूपिणम् ॥ ३७ ॥

नवीनजलदाकारं श्यामसुन्दरविग्रहम् । स्थितं जन्तुषु सर्वेषु निर्लिप्तं साक्षिरूपिणम् ॥
स्वात्मारामं पूर्णकामं जगद्व्यापि जगत्परम् । सर्वस्वरूपं सर्वेषां धीजरूपं सनातनम्
सर्वाधारं सर्ववरं सर्वशक्तिसमन्वितम् । सर्वाराध्यं सर्वगुरुं सर्वमङ्गलकारणम् ॥ ४० ॥
सर्वमन्त्रस्वरूपञ्च सर्वसम्पत्करं वरम् । शक्तियुक्तमयुक्तञ्च स्तोमिस्वेच्छामयं विभुम् ॥
शक्तीशं शक्तिबीजञ्च शक्तिरूपधरं वरम् । संसारसागरे धोरे शक्तिनौकासमन्वितम् ॥

कृपालुं कर्णधारञ्च नमामि भक्तवत्सलम् ।

भात्मस्वरूपमेकान्तं लिप्तं निर्लिप्तमेव च ॥ ४३ ॥

सगुणं निर्गुणं ब्रह्म स्तोमि स्वेच्छास्वरूपिणम् ।

सर्वेन्द्रियाधिदेवं तमिन्द्रियालयमेव च ॥ ४४ ॥

सर्वेन्द्रियस्वरूपञ्च विराड् रूपं नमाम्यहम् । वेदं च वेदजनकं सर्ववेदाङ्गरूपिणम् ॥ ४५ ॥
सर्वमन्त्रस्वरूपञ्च नमामि परमेश्वरम् । सारात्सारतरं द्रव्यमपूर्वमनिरूपिणम् ॥ ४६ ॥
स्वतन्त्रमस्वतन्त्रञ्च यशोदानन्दनं भजे । शान्तं सर्वशरीरेषु तमदृष्टमनूहकम् ॥ ४७ ॥

ध्यानासाध्यं चित्तमानं योगीन्द्राणां गुरुं भजे ।

रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम् ॥ ४८ ॥

गोपीभिः सेव्यमानञ्च तं राधेशं नमाम्यहम् । सतां सदैव सन्तन्त्रमसन्तमसतामपि ॥
योगीशं योगसाध्यञ्च नमामि शिवसेवितम् । मन्त्रबीजं मन्त्रराजं मन्त्रदं फलदं फलम्
मन्त्रसिद्धिस्वरूपं तं नमामि च परात्परम् । सुखं दुःखञ्च सुखदं दुःखदं पुण्यमेव च ॥
पुण्यप्रदञ्च शुभदं शुभबीजं नमाम्यहम् । इत्येवं स्तवनं कृत्वा दत्त्वा गाञ्च सवालकान्

निपत्य वण्डवद् भूमौ स्तोद प्रणनाम च । ददर्श चक्षुरुमोक्ष्य विधाता जगतां मुने ॥

ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् ।

इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ॥ ५४ ॥

लभते दास्यमतुलं स्थानमोश्वरसन्निधौ । लब्ध्वा च कृष्णसान्निध्यं पार्षदप्रचरोनयेत्
श्रीनारायण उवाच ।

गते जगत्कारणे च ब्रह्मलोके च ब्रह्मणि । श्रीकृष्णो बालकैः सार्धंजगामस्वालयविभुः
गावो घत्साश्च बालाश्च जन्मुर्वर्षान्तरे गृहम् । श्रीकृष्णमायया सर्वे मेतिरे ते दिनान्तरम्
गोपा गोपालिकाः किञ्चित् तर्कितुं न क्षमास्तदा ।

योगिनः कृत्रिमं सर्वं किं नूनं वा पुरातनम् ॥ ५५ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं श्रीकृष्णवस्तिं शुभम् । सुखं मोक्षं पुण्यं सर्वकालसुखाद्यहम् ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
गोघत्सबालकहरणप्रस्तावो नाम विंशोऽध्यायः ।

एकविंशोऽध्यायः

इन्द्रयागवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एकदानन्दयुक्तश्च नन्दगोपो व्रजे मुने । दुन्दुभिं वादयामास शक्रयागरुतोद्यमः ॥ १ ॥
वधि क्षीरं घृतं तक्रं नवनीतं गुडं मधु । एतान्यादाय शक्रस्य पूजां कुर्वन्तिषति ब्रुवन् ॥
ये ये सन्त्यत्र नगरे गोपा गोप्यश्च बालकाः ।

बालिकाश्च द्विजा भूयो चैश्याः शूद्राश्च भक्तितः ॥ २ ॥

इत्येवं श्रावयित्वा च स्वयमेव मुदान्वितः । यष्टिमारोपयामास रम्यस्थाने सुविस्तृते ॥
ददौ तत्र क्षौमघट्टं मालाजालं मनोहरम् । चन्दनागुरुफस्तूरीकुङ्कुमद्रवमेव च ॥ ५ ॥

स्नातः कृताह्निको भक्त्या धृत्या धौते च वाससी ।

उवास स्वर्णपीठे च प्रक्षालितपदाम्बुजः ॥ ६ ॥

नानाप्रकारपात्रैश्च ब्राह्मणैश्च पुरोहितैः । गोपालैर्गोपिकामिश्र बालाभिः सह बालकैः
एतस्मिन्नन्तरे तत्राजग्मुर्नगरवासिनः । महासम्भृतसम्भारा नानोपायनसंयुताः ॥ ८ ॥
आजग्मुर्मनयः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा । शान्ताः शिष्यगणैः सार्द्धं वेदवेदाङ्गपारागः
गर्गश्च गालवश्चैव शाकल्यःशाकटायनः । गौतमःकरुपःकण्वो वात्स्यःकात्यायनस्तथा
सौभरिर्धामदेवश्च याज्ञवल्क्यश्च पाणिनिः । ऋष्यशृङ्गो गौरमुखो भरद्वाजश्च घामनः ॥
कृष्णद्वैपायनः शृङ्गी सुमन्तुर्जैमिनिः कचः । पराशरश्च मैत्रेयो वैशम्पायन एव च ॥

ब्राह्मणाश्च कतिविधा मिश्रुका घन्दिनस्तथा ।

भूपा वैश्याश्च शूद्राश्च समाजग्मुर्महोत्सवे ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा मुनीन्द्रान् नन्दश्च ब्राह्मणान् भूमिपांस्तथा ।

स्वर्णपीठात् समुत्तसैर्धौ ब्रजाश्चोत्तस्थुरेव च ॥ १४ ॥

प्रणम्य वासयामास मुनीन्द्रान् विप्रभूमिपान् ।

तेषामनुमतिं प्राप्य तत्रोवास पुनर्मुदा ॥ १५ ॥

पाकञ्च यष्टिनिकटे कर्तुमाज्ञाञ्चकार ह । पाकप्राज्ञं ब्राह्मणानां शतमानीय सादरम् ॥ १६ ॥
तत्र रत्नप्रदीपाश्च जज्वलुः परितस्तथा । अन्धीभूतश्च धूपेन स्थानं तत् सुरभीकृतम् ॥
नानाविधानि पुष्पाणि मादयानि विविधानि च । नैवेद्यञ्च बहुविधमपूर्धं सुमनोहरम्
तिललड्डुकपूर्णञ्च मण्डकानां सहस्रकम् । स्वस्तिकैः परिपूर्णञ्च यष्टिस्थानञ्च तारद ॥
कलशानां सहस्रञ्च पूर्णं शर्करया मुने ॥ यवगोधूमचूर्णानां लड्डुकैर्मधुरैर्वरेः ॥ २० ॥
घृतपक्वैर्विप्रकृतैः पूर्णानि कलशानि च । धुक्षपक्वानि रम्याणि चादरस्माफलानि च
फलानि परिपक्वानि कालदेशोद्भवानि च । क्षीराणां कुम्भलक्षाणिदध्नां तावन्तिनारद
मधूनां कुम्भशतकं सर्पिः कुम्भसहस्रकम् । कलशानां त्रिलक्षाणि तक्रपूर्णानि निश्चितम्
घटानां पञ्चलक्षाणि गुडपूर्णानि निश्चितम् ।

विष्णुतैलेन पूर्णञ्च कलशानां सहस्रकम् ॥ २४ ॥

वृषेन्द्राश्च बहुविधा भोगार्हद्रव्यवाहकाः । नानाविधानि पात्राणि सौवर्णराजतानि च
 स्वर्णपीठानि च ब्रह्मन्नाज्जमुर्यष्टिसन्निधिम् ।
 घट्पाणि घरणार्हाणि चारुणि भूषणानि च ॥ २६ ॥
 नानाविधानि पाद्यानि चारुणि मधुराणि च ।
 वादकाः स्वरयन्त्राणि वादयामासुस्तस्ये ॥ २७ ॥
 छागलानां सहस्राणि महिषाणां शतानि च । मेघकाणाञ्च लक्षाणि ह्यानयामासतत्र ये
 शतान्येव गण्डकानामाज्जमुर्यष्टिसन्निधिम् ।
 प्रोक्षितानि च सर्वाणि रक्षितानि च रक्षकैः ॥ २८ ॥
 बालकानां बालिकानां वृक्षाणां वृक्षयोपिताम् ।
 युधानां युधतीनाञ्च संख्यां कर्तुञ्च कः क्षमः ॥ २९ ॥
 गायकानाञ्च सङ्गीतं नर्तकानाञ्च नर्तनम् । श्रुत्वा हृष्टा जनाः सर्वे मुमुहुः सुमहोरस्ये
 रम्भोर्वशी मेनका च घृताक्षी मोहिनी रती । प्रभावती भानुमती विप्रचित्तिस्तिलोत्तमा
 चन्द्रप्रभा सुप्रभा च रत्नमाला मवालसा । रेणुका रमणी ब्रह्मन्नेता आज्जमुस्तस्ये ॥
 तासां नृत्येनगीतेन स्तनास्वश्रोणिदर्शनात् । रूपेणवक्रदृष्ट्याच मूर्च्छां प्रापुश्चमानवाः
 पतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम हरिः स्वयम् । गोपालबालकैः सार्धं वलेन बलशालिनः
 हृष्टा तञ्च जनाः सर्वे सम्भ्रान्ता हर्षविह्वलाः । उत्सथुराराद्वीताश्च पुलकाङ्कितविग्रहाः
 क्रीडास्थानात् समायान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम् ।
 विनोदमुखलीवेणुशृङ्गशब्दसमन्वितम् ॥ ३० ॥
 सद्रत्नसारभूपाभिर्मूपितं कौस्तुभेन च । चन्दनागुरुषट्केन चर्चितं श्यामविग्रहम् ॥ ३१ ॥
 शरन्मध्याह्नपद्मास्यं पश्यन्तं रत्नदर्पणे । चारुचन्दनचन्द्रेण कस्तूरीविन्दुना सह ॥ ३२ ॥
 शशाङ्केनयथाकाशंमालमध्यविराजितम् । मालतीमालयाश्यामकण्ठवक्षस्थलोज्ज्वलम्
 वक्त्रपङ्क्त्या यथाकाशंशारदीयं सुनिर्मलम् । चारुणापीतवस्त्रेणशोभितं श्यामविग्रहम्
 विभान्तं विद्युता शशन्ननीनं नीरदं यथा ।
 कुन्दप्रसूतेर्गुञ्जागिर्वद्वचकिमचूडकम् ॥ ४२ ॥

यथेन्द्रधनुषा भाति विभान्तं भगणैर्नभः । रत्नकुण्डलदीप्त्याचस्मितवक्त्रं सुशोभितम्
शरत्प्रफुल्लपद्मञ्च द्युमणेः किरणैर्यथा ॥ ४३ ॥

विप्रक्षत्रियवैश्याश्च मुनयो षष्ठ्या मुने । प्रणम्य घासयामासु रत्नसिंहासने शुभे ॥ ४४ ॥
उघास रत्नपीठे स तेषां मध्ये जगत्पतिः । यथा बभौ शरच्चन्द्रो ज्योतिषामन्तरे च खे
श्रुत्वा तमुन्मूस्ते सर्वे जगतामीश्वरं परम् ॥ ४५ ॥
स्वेच्छामयं गुणातीतं ज्योतीरूपं सनातनम् । दृष्ट्वा महोत्सवं शीघ्रमुवाच पितरं हरिः
सर्वेषां दुर्लभां नीतिं नीतिशास्त्रविशारदः ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

भो भो बह्ववराजेन्द्र किं करोषीह सुग्रह । आराध्यः कक्षका पूजा किं फलं पूजनेभवेत्
फलेन साधनं किं वा फः साध्यः साधनेन च ।
देवे रुष्टे भवेत् किं वा पूजायाः प्रतियन्धके ॥ ४८ ॥

तुष्टो देवः किं ददाति फलमत्र परत्र किम् । काश्चिद्वात्यत्र फलं परत्र नेह काचन ॥
काचिच्च नोभयत्रापि चोभयत्रापि काचन । अवेदविहिता पूजा सर्वहानिकरणिङ्का ॥
पूजेयमधुना या ते किमु वा पुरुषक्रमात् । दृष्टो देवस्थया कस्मिन्पूजेयं चानुसारिणी
साक्षात् खादति देवस्ते वा साक्षात् किं न खादति ।

साक्षाद् भुङ्क्ते च यो देवः सुप्रशस्तं तदर्चनम् ॥ ५२ ॥

साक्षात् खादति नैवेद्यं विप्ररूपी जनार्दनः । ब्राह्मणे परितुष्टे च सन्तुष्टाः सर्वदेवताः ॥
किं तस्य देवपूजायां यो नियुक्तो द्विजार्चने । पूजिता ब्राह्मणायेन पूजिताः सर्वदेवताः
देवाय दत्त्वा नैवेद्यं द्विजाय न प्रयच्छति । भस्मीभूतञ्च नैवेद्यं पूजनं निष्फलं भवेत् ॥
चिप्राय देवनेवेद्यं दानात् ध्रुवमनन्तकम् । तुष्टो देवो वरं दत्त्वा प्रयाति च स्वमन्दिरम्
दत्त्वा देवाय नैवेद्यं मूढो भुङ्क्ते स्वयं यदि ।

दत्तापहारी देवस्त्वं भुक्त्वा च नरकं व्रजेत् ॥ ५७ ॥

देवदत्तं न भोक्तव्यं नैवेद्यञ्च विना हरेः । प्रशस्तं सर्वदेवेषु विष्णुनैवेद्यभोजनम् ॥ ५८ ॥
अन्नं विष्टा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् । सर्वेषाञ्च क्रममिदं ब्राह्मणानां विशेषतः

न दत्त्वा वस्तु देवाय दत्तं विप्राय चेत्सुधीः । भुक्त्वा विप्रमुखे देवास्तुष्टाः स्वर्गं प्रयान्ति च
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन विप्राणामर्चनं कुरु । प्रशस्तफलदातृणामिह लोके परत्र च ॥ ६१ ॥

जपस्तपश्च पूजा वा यज्ञदानं महोत्सवम् ।

सर्वेषां कर्मणां सारं विप्रमुष्टिश्च दक्षिणा ॥ ६२ ॥

ब्राह्मणानां शरीरेषु तिष्ठन्ति सर्वदेवताः । पादेषु सर्वतीर्थानि पुण्यानि पादधूलिषु ॥
पादोदके च विप्राणां तीर्थतोयानि सन्ति च । तत्स्पर्शात् सर्वतीर्थेषु ज्ञानजन्यफलं लभेत्
नश्यन्ति भक्षणाद्भोगा भक्तिभावेन बलवत् । सतजन्मकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः
पापं पञ्चविधं कृत्यायो विप्रप्रणमेद् द्विजः । स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वपापात् प्रमुच्यते
ब्राह्मणस्पर्शमात्रेण मुक्तो भवति पातकी । दर्शनान्मुच्यते पापादिति वेदे निरूपितम्

अप्राज्ञो वाध प्राज्ञो वा ब्राह्मणो विष्णुविग्रहः ।

प्रियाः प्राणाधिका विष्णोर्ये विप्रा हरिसेविनः ॥ ६८ ॥

द्विजानां हरिभक्तानां प्रभावो दुर्लभः श्रुतौ । येषां पादाब्जरजसा सयः पूता वसुन्धरा
तेषाञ्च पादचिह्नं यत्तीर्थं तत् परिकीर्तितम् । तेषाञ्च स्पर्शमात्रेण तीर्थपापं प्रणश्यति
आलिङ्गनात्सदा लापात्तेषामुच्छिष्टभोजनात् । दर्शनात्स्पर्शनाच्चैव सर्वपापात् प्रमुच्यते
भ्रमणे सर्वतीर्थानां यत्पुण्यं स्नानतो भवेत् । इच्छास्य विप्रस्य तत् पुण्यं दर्शनाल्लभेत्
ये विप्रा हरये दत्त्वा नित्यमन्नञ्च भुञ्जते । उच्छिष्टभोजनात्तेषां हरेर्दास्यं लभेन्नरः ॥

न दत्त्वा हरये भक्त्या भुञ्जते चेद् भ्रमादपि ।

पुत्रीपसदृशं वस्तु जलं मूत्रसमं भवेत् ॥ ७४ ॥

शूद्रश्चेद्भूमिभक्तश्च नैवेद्यभोजनोत्सुकः । आमन्त्रं हरये दत्त्वा पार्श्वं कृत्वा च खादति
विप्रक्षत्रियवैश्यानां शालग्रामशिलाचर्चने । अधिकारो ॥ शूद्राणां हरेरप्यर्चने तथा ॥ ७६ ॥
द्रव्याण्येतानि गोपेन्द्रविप्रेभ्यश्चेन्न दास्यति । भस्मीभूतानि सर्वाणि भविष्यन्ति न संशयः
अन्नञ्च सर्वजीवेभ्यः पुण्यार्थं दातुमर्हति । दत्त्वा विशिष्टजीवेभ्यो विशिष्टफलमाप्नुयात्

अतो दत्त्वा मानुषेभ्यो लभतेऽष्टगुणं फलम् ।

शूद्राणां द्विगुणं पुण्यं चैश्वरेभ्योऽन्नं प्रदाय च ॥ ७६ ॥

दत्त्वान्नक्षत्रियेभ्योऽपिवैश्यानां द्विगुणं भवेत् । क्षत्रियाणां शतगुणं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदाय च
विप्राणाञ्च शतगुणं शास्त्रज्ञे ब्राह्मणे फलम् । शास्त्रज्ञानां शतगुणं भक्ते विप्रे लभेद् ध्रुवम्
सत्त्वान्नं हरये दत्त्वा भुङ्क्ते भक्त्या च सादरम् । विष्णवे विप्रभक्ताय दत्त्वा दातुश्च यत्फलम्
तत् फलं लभते नूनं भक्तब्राह्मणभोजने । भक्ते तुष्टे हरिस्तुष्टो हरी तुष्टे च देवता ॥ ८३ ॥

भवन्ति सिद्धाः शाखाश्च यथा मूलनिषेचनात् ।

ब्रह्मण्येतानि देवाय यद्येकस्मै प्रयच्छति ॥ ८४ ॥

सर्वे देवाश्च रुद्राश्चेदेवैकः किं करिष्यति । अथ वार्द्धञ्च घस्तूनां देहि गोवर्धनाय च ॥
गा वर्धयति नित्यं यस्तेन गोवर्धनः स्मृतः । गोवर्धनसमस्तातपुष्यवान्न महीतले ॥

नित्यं ददाति गोभ्यो यो नवीनानि तृणानि च ।

तीर्थस्नानेषु यत् पुण्यं यत् पुण्यं विप्रभोजने ॥ ८७ ॥

सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च । यत् पुण्यञ्च महादाने यत् पुण्यं हरिसेवने ॥ ८८
भुवः पर्यटने यत् सर्ववाक्येषु यद्भवेत् । यत् पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षायाम्च लभेन्नरः ॥

तत् पुण्यं लभते प्राज्ञो गोभ्यो दत्त्वा तृणानि च ॥ ८९ ॥

भुक्तवन्ती तृण यश्च गां चारयति कामतः । ब्रह्महत्या भवेत्तस्य प्रायश्चित्ताद्विशुध्यति ॥
सर्वे देवा गयामङ्गे तीर्थानि तत्पदेषु च । तद्गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदा पितः
गोप्यदाक्तमृदा यो हि तिलकं कुरुते नरः । तीर्थस्नातो भवेत्सद्यो जयस्तस्य पदे पदे
गावस्तिष्ठति यत्रैव तत्तीर्थं परिकीर्तितम् ।

प्राणांस्त्यजत्वा नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥ ९३ ॥

ब्राह्मणानां गयामङ्गं यो हन्ति मानवाधमः । ब्रह्महत्यासमं पापं भवेत्तस्य न संशयः ॥
नारायणांशान् विप्रांश्च गाश्च ये हनन्ति मानवाः ।

कालसूत्रञ्च ते यान्ति यावच्छत्रदिघातकरी ॥ ९५ ॥

इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णो विरराम च नारद । आनन्दयुक्तो नन्दश्च तमुवाच स्मितात्मनः ॥

नन्द उवाच ।

पौर्वापर्यं पूजति महेन्द्रस्य महात्मनः । सुवृष्टिसाधनीसाध्यं सर्वशस्यमनोहरम् ॥ ९७

शस्यानि प्राणिनां प्राणाः शस्याज्जीवन्ति जीविनः ।

पूजयन्ति ब्रजस्थाश्च महेन्द्रं पुरुषकमात् ॥ ६८ ॥

महोत्सवो घट्सरान्ते निर्धिघ्नाय शिवाय च । इत्येवं घवनं श्रुत्वा बलेन सह माधवः

उच्चैर्जहास स पुनरुवाच पितरं मुदा ॥ ६९ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

अहो श्रुतं विचित्रं ते घवनं परमाद्भुतम् । उपहास्यं लोकशास्त्रं वेदेष्वेव विगर्हितम् ॥

निरूपणं नास्ति कुत्र शक्राद् वृष्टिः प्रजायते । अपूर्वं नीतिघवनं श्रुतमद्य मुखात्तव ॥

शृणु नीतिं श्रुतिमतां हे तात नानयं वदे । घवनं सामवेदोक्तं सन्तो जानन्ति सर्वतः ॥

प्रश्नं कुरुष्व मन्त्रांश्च विविधानपि संसदि । द्रुवन्तु परमार्थश्च किमिन्द्राद् घृष्टरेव च

सूर्यादि जायते तोयं तोयात् शस्यानि शाखिनः ।

तेभ्योऽन्नानि फलान्येव तेभ्यो जीवन्ति जीविनः ॥ १०४ ॥

सूर्यप्रस्तश्च नीरश्च काले तस्मात्समुद्भवः । सूर्यो मेघादयः सर्वे विधात्रा ते निरूपिताः

यत्राद्ये यो जलधरो गजश्च सागरो मतः । शस्याधिपोनृपो मन्त्रीविधात्रा ते निरूपिताः

जलादृकानां शस्यानां तृणानाञ्च निरूपितम् ।

अध्वेऽध्वेस्त्येव तत् सर्वं कल्पे कल्पे युगे युगे ॥ १०७ ॥

हस्ती समुद्रादादाय करेण जलमीप्सितम् । दद्याद् घनाय तद् दद्याद्वातेन प्रेक्षितोद्यनः ॥

स्थाने स्थाने पृथिव्याञ्च काले काले यथोचितम् ।

ईशेच्छयाचिभूतश्च न भवेत् प्रतिबन्धकम् ॥ १०९ ॥

भूतं भव्यं भविष्यच्च महत् सुद्रश्च मध्यमम् । धात्रा निरूपितं कर्म केन तात निधार्यते

जगच्चराचरं सर्वं कृतं तेनेद्वराक्षया । आदौ विनिर्मितं भक्ष्यं पञ्चाज्जीव इति स्मृतः ॥

अभ्यासात् स स्वभाषो हि स्वभाषात्कर्म एव च ।

जायते कर्मणाम्मोगो जीविनां सुखदुःखयोः ॥ ११२ ॥

यातनाजन्ममरणरोगशोकभयानि च । समुत्पत्ताघपद्विद्या कथिता या यशोऽयशः ॥

पुण्यश्च स्वर्गपापश्च पापं नरकसंस्थितिः । भुक्तिर्भुक्तिर्हरेर्दास्यं कर्मणा घटते नणाम् ॥

सर्वेषां जनको हीशश्चाभ्यासः शीलकर्मणाम् ।

धातुश्च फलदाता च सर्वं तस्येच्छया भवेत् ॥ ११५ ॥

चिनिर्मितो विराटेन तत्त्वानि प्रकृतिर्जगत् । कूर्मश्च शेषो धरणी चाब्रह्मस्तम् एष च
यस्याहया मयत् कूर्मं भक्तेशेपं चिमत्तिसः । शेषो वसुन्धरां सूर्णासाच सर्वञ्चराचरम्
यस्याहया सदा घाति जगत्प्राणो जगत्त्रये । तपतिघ्नमणं कृत्वा भूगोलं सुप्रभाकरः
दहत्यग्निः सञ्चरते मृत्युश्च सर्वजन्तुषु । विभर्त्ति शापिनः काले पुष्पाणि च फलानि च
स्वे स्वे स्थाने समुद्राश्च तूर्णं मञ्जन्त्यधोऽधुना ।

तमीशं भज भक्त्या च शक्नोति कर्तुमीश्वरः ॥ १२० ॥

ब्रह्माण्डश्च कतिविधमाविर्भूतं तिरोहितम् । विधयश्च कतिविधा यस्य भूभङ्गलीलया
मृत्योर्मृत्युः कालकालो विधातुर्विधिरप्यसः । भज तं शरणं तातसत्तैर्गक्षां करिष्यति
ब्रह्मोऽष्टाविंशदिन्द्राणां पतने यदहर्निशम् । विधातुरेव जगतामप्रोत्तरशताधिकः ॥
निमेषाद्यस्य पतनं निर्गुणस्यात्मनः प्रभोः । एवंभूते तिष्ठतीशे शनःपूजा चिद्धम्यनम् ॥
इत्येषमुक्त्वा श्रीकृष्णो विरराम च नारद । प्रशशंसुश्च मुनयो भगवन्तं सभासदः ॥
नन्दः सपुलको हृष्टः सभायां साधुलोचनः । आनन्दयुक्ता मनुजा यदि पुत्रैः पराजिताः
श्रीकृष्णाज्ञां समाश्रय चकार स्थस्तिवाचनम् ।

क्रमेण परणं तत्र सर्वेनाञ्च चकार ह ॥ १२७ ॥

पर्यंतस्य मुनीन्द्राणां चकार पूजनं मुदा । युधानां ब्राह्मणानाञ्च गयां पद्मे च सादरम्
तत्र पूजासमाप्तौ च मत्तो च मुमदोत्सवे । नानाप्रकारघातानां यभूय शब्द उन्वयः ॥
जयशब्दः शङ्खशब्दो हृषिशब्दो यभूय ह । वेदमङ्गलकाण्डश्च पपाठ मुनिपुङ्गवः ॥ १३० ॥
पन्दितां प्रपरो विष्णुं कंसस्य सचिवः प्रियः ।

उद्योः यथाठ पुरतो मङ्गलं मङ्गलाष्टकम् ॥ १३१ ॥

कृष्णः शैलान्तिकं गत्वा भिन्नां मूर्तिं विधाय च ।

पस्तु गादामि शैलोऽस्मि परं पृष्वित्युवाच ह ॥ १३२ ॥

उवाच नन्दं धीकृष्णः पश्य शैलं पितः पुरः । परं प्रार्थय मद्रं ते अयिता चेत्युवाच ह

हरेर्दास्यं हरेर्भक्तिं वरं वव्रे स बह्वचः । द्रव्यं भुक्त्वा वरं दत्त्वा सोऽन्तर्धानञ्चकार ह
 मुनीन्द्रान् ब्राह्मणांश्चैव भोजयित्वा च गोपपः ।
 वन्दिभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च मुनिभ्यश्च धनं ददौ ॥ १३५ ॥
 मुनिभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽपि दत्त्वा नन्दो मुदान्वितः ।
 रामकृष्णौ पुरस्कृत्य सगणः स्वालयं ययौ ॥ १३६ ॥
 दीप्यं वस्त्रं सुवर्णञ्च चरमश्वं मणिं तथा । भक्ष्यद्रव्यं बहुविधं वन्दिने डिण्डिने ददौ
 स्तुत्या नत्वा रामकृष्णौ मुनयो ब्राह्मणा ययुः ॥ १३७ ॥
 ययुरप्सरसः सर्वा गन्धर्वाः किन्नरास्तथा । राजानो बह्वचाः सर्वे चागता ये महोत्सवे
 सर्वे प्रणम्य श्रीकृष्णं ययुः सादरपूर्वकम् ॥ १३८ ॥
 पतस्मिन्नन्तरे शक्रः कोपप्रस्फुरिताधरः । मयमङ्गे बहुविधां नित्वां ध्रुवा सुरैश्वरः
 मदद्विर्घास्त्रिदैः साङ्गं रथमारुह्य सत्वरम् ॥ १३९ ॥
 जगाम नन्दनगरं वृन्दारण्यं मनोहरम् । सर्वे देवा ययुः पश्चाद् युद्धशास्त्रविशारदाः ॥
 शस्त्रास्त्रपाणयः कोपाद्रथमारुह्य नारद । वायुशस्त्रैर्मैघशस्त्रैः सैन्यशस्त्रैर्भयानकैः ॥ १४१ ॥
 चक्रन्ते नगरं सर्वं तद्दो भयमवाप ह । भाष्यां सम्बोध्य स्वगणमुवाच शोककातरः
 रहःस्थलं समानीय नीतिशास्त्रविशारदः ॥ १४२ ॥
 नन्द उवाच ।
 हे यशोदे समागच्छ वचनं शृणु रोहिणि ।
 रामकृष्णौ समादाय यज दूरं व्रजात् प्रिये ॥ १४३ ॥
 बालका बालिकानार्यां यान्तु दूरं भयाकुलाः । बलवन्तश्चगोपालास्तिष्ठन्तुमत्समीपतः
 पश्चाच्च निर्गमिष्यामो वयश्च प्राणसद्गुटात् । इत्युक्त्वा बह्वचध्रेष्ठः सस्मार श्रीहरिर्भिया
 पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिप्रदात्मकन्धरः ।
 काण्वशापोक्तस्तोत्रेण तुष्टाय श्रीशर्चापतिम् ॥ १४६ ॥
 नन्द उवाच ।
 इन्द्रः सुरपतिः शक्रो विततिजः पचनाग्रजः । सहस्राक्षो भगाङ्गश्च कश्यपात्मज एव च ।

चिङ्गौजाश्च शुनासीरोमरुत्वान् पाकशासनः । जयन्तजनकः श्रीमान् शचीशो दैत्यसूदनः ॥
वज्रहस्तः कामसखो गौतमीव्रतनाशनः । वृत्रहा वासवश्चैव दधीचिदेहमिश्रुकः ॥
जिष्णुश्च वामनभ्राता पुरहूतः पुरन्दरः । दिवस्पतिः शतमखः सुत्रामा गोत्रमिद्विभुः ॥
लेखपंभो कलारातिर्जम्भभेदी सुराश्रयः । संक्रन्दनो दुश्कथयनस्तुरापाणमेघवाहनः ॥
आखण्डलो हरिद्वयो नमुचिप्राणनाशनः । वृद्धश्च वा वृषश्चैव दैत्यदर्पनिपूदनः ॥ १५२ ॥

पदचत्वारिंशन्नामानि पापघ्नानि विनिश्चितम् ॥ १५३ ॥

स्तोत्रमेतत् कौथुमोक्तं नित्यं यदि पठेन्नरः । महाविपत्तीं शक्नोति वज्रहस्तश्च रक्षति ॥
अतिवृष्टिशिलावृष्टिं वज्रपातान्चदारुणात् । कदाचिन्न भयं तस्य रक्षिता वासवः स्वयम् ॥
यद्य गेहे स्तोत्रमिदं यश्च जानाति पुण्यवान् । न तत्र वज्रपतनं शिलावृष्टिश्च नारद ॥
श्रीनारायण उवाच ।

स्तोत्रं तन्मुखाच्छ्रुत्वा शुकोप मधुसूदनः । उवाच पितरं नीतिं प्रज्जलन् ब्रह्मतेजसा
कं स्तौपि भीरो को वेद्मस्त्यज भीतिं ममान्तिके ।

क्षणार्द्धे भस्मसात् कर्तुं क्षमोऽहमघलीलया ॥ १५८ ॥

गाश्च वत्साश्च बालाश्च योपितो या भयातुराः । गोवर्द्धनस्य कुहरे संस्थाप्य तिष्ठ निर्भयम् ॥
बालस्य वधनं श्रुत्वा तच्चकार मुदान्वितः । हरिर्दधार शैलन्तं धामहस्तेन दण्डयत् ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दीप्तोऽपि रत्नतेजसा । अन्धीभूतश्च सहसा बभूव रजसावृतम् ॥
सपातो मेघनिकरश्चच्छादगगनं मुने । वृन्दावने बभूवातिवृष्टिरेव निरन्तरम् ॥ १६२ ॥
शिलावृष्टिर्ध्वजवृष्टिरूकापातः सुदारुणः । समस्तं पथतस्पर्शात् पतितं दूरतस्ततः ॥
विफलस्तत्समारम्भो यथानीशोद्यमो मुने । दृष्ट्वा मोघश्च सत्सर्वं सद्यः शक्रश्चुकोप ॥
जग्राहामोघकुलिशं दधीच्यस्यविनिर्मितम् । दृष्ट्वा तं वज्रहस्तश्च जहास मधुसूदनः ॥
सहस्तं स्तम्भयामास वज्रमेवातिदारुणम् । सहामरणमैर्मेघश्चकार स्तम्भनं विभुः ॥

सर्वं तस्युर्निश्चलास्ते भित्तौ पुत्तलिका यथा ।

हरिणा जृम्भितः शक्रः सद्यस्तन्द्रामवाप ह ॥ १६७ ॥

ददर्श सर्वं तन्द्रायां तत्र कृष्णमयं जगत् । द्विभुजं मुरलीदस्तं रत्नालङ्कारभूषितम् ॥

पीतवस्त्रपरीधानं रत्नसिंहासनस्थितम् । ईषद्वास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ॥१६६॥
 चन्दनोक्षितसर्पाङ्गमेतत् सर्वं चराचरम् । दृष्ट्वाद्भुततमं तत्र सद्यो मूर्च्छामिवाप ह ॥१७०॥
 जजाप मन्त्रं तत्रैष प्रदत्तं गुरुणा पुरा । सहस्रदलपत्रस्थं ददर्श ज्योतिरत्नवनम् ॥१७१॥
 तत्रान्तरे दिव्यरूपमतीवसुमनोहरम् । नयोनजलशेत्कर्पश्यामसुन्दरविग्रहम् ॥ १७२ ॥
 सद्रत्नसारनिर्माणं ज्वलन्मकरकुण्डलम् । ज्वलन्मणीन्द्रमकरकिरीटोज्ज्वलशेपरम् ॥

ज्वलता कौस्तुभेन्द्रेण कण्ठवक्षस्थलोज्ज्वलम् ।

मणिकेयूरचलयमणिमञ्जीररञ्जितम् ॥ १७३ ॥

अन्तर्यहिः समं दृष्ट्वा तुष्टाय परमेश्वरम् ॥ १७५ ॥

इन्द्र उवाच ।

भक्षरं परमं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम् । गुणातीतं निराकारं स्वेच्छामयमनन्तकम् ॥
 भक्तव्यानाय सेवायै नानारूपधरं वरम् । शुक्लरक्तपीतश्यामं युगानुक्रमेण(णेन)च ॥१७७॥
 शुक्लतेजः स्वरूपश्च सत्ये सत्यस्वरूपिणम् । ब्रैतायां कुङ्कुमाकारं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥
 द्वापरं पीतवर्णश्च शोभितं पीतवाससा । कृष्णवर्णं कलौ कृष्णं परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥
 नवधाराधरोत्कृष्टश्यामसुन्दरविग्रहम् । नन्दैकनन्दनं घन्दे यशोदानन्दनं प्रभुम् ॥१८०॥
 गोपिकाचेतनहरं राधाप्राणाधिकं परम् । विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं फौतुकेन च ॥
 रूपेणाप्रतिमेनैव रत्नभूषणभूषितम् । कन्दर्पकोटिसौन्दर्यं विभ्रन्तं शान्तमीश्वरम् ॥

क्रीडन्तं राधयासार्धं घृन्दारण्ये च कुत्रचित् ।

कुत्रविन्निर्जनेऽरण्ये राधावक्षस्थलस्थितम् ॥ १८३ ॥

जलक्रीडां प्रकुर्वन्त राधया सह कुत्रचित् । राधिकाकवरीभारं कुर्वन्तं कुत्रचिद्वने ॥
 कुत्रचिद्राधिकापादे दत्तवन्तमलककम् । राधावर्षिततम्बूलं गृह्णन्तं कुत्रचिन्मुदा ॥
 पश्यन्तं कुत्रचिद्राधां पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा । दत्तवन्तश्च राधायै कृत्वा मालाञ्च कुत्रचित्
 कुत्रचिद्राधयासार्धं गच्छन्तं रासमण्डलम् । राधादत्तां गले मालां धृतवन्तश्च कुत्रचित्
 सार्धं गोपालिकाभिश्च विहरन्तश्च कुत्रचित् ।
 राधां गृहीत्वा गच्छन्तं विहाय ताञ्च कुत्रचित् ॥ १८८ ॥

विप्रपत्नीदत्तमन्नं भुक्त्वन्तश्च कुत्रचित् । भुक्त्वन्तं तालफलं बालकैः सह कुत्रचित् ॥
 घर्षं गोपालिकानाञ्च हरन्तं कुत्रचिन्मुदा । गवाङ्गणं व्याहरन्तं कुत्रचिद् बालकैः सह
 कालीयमूर्ध्निपादाब्जं दत्तवन्तश्च कुत्रचित् । चिनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कुत्रचिन्मुदा ॥
 गायन्तं रम्यसंगीतं कुत्रचिद् बालकैः सह । स्तुत्वा शक्रस्तवेन्द्रेण प्रणनाम हरि भिया
 पुरा दत्तेन गुरुणा रणे वृषासुरेण च । कृष्णेन दत्तं कृपया ब्रह्मणे च तपस्यते ॥१६३॥
 एकादशाक्षरो मन्त्रः कवचं सर्वलक्षणम् । दत्तमेतत् कुमाराय पुष्करे ब्रह्मणा पुरा ॥

कुमारोऽङ्गिरसे दत्तो गुह्येऽङ्गिरसा मुने ।

इवमिन्द्रकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् ॥ १६५ ॥

इहप्राप्य ब्रह्मा भक्तिमन्तैदास्यं लभेद् ध्रुवम् । जन्ममृत्युजराव्याधिशोकैर्न्योमुच्यतेनरः
 न हि पश्यति स्वप्नेऽपि यमदूतं यमालयम् ॥ १६६ ॥

नारायण उवाच ।

इन्द्रस्य घञ्जनं ध्रुत्वा प्रसन्नः श्रीनिकेतनः । प्रीत्या तस्मै घरं दत्त्वा स्थापयामास पर्यतम्
 प्रणम्य च हरिं शक्रः प्रययौ स्वर्गणैः सह ॥ १६७ ॥

गह्वरस्था जनाः सर्वे प्रजर्मुगह्वराद् गृहम् । ते सर्वे मेनिरे कृष्णं परिपूर्णतमं विभुम् ॥
 पुरस्कृत्य प्रजस्थांश्च प्रययौ स्वालयं हरिः ॥ १६८ ॥

तुष्टाय नन्दः पुत्रं तं पूर्णब्रह्म सनातनम् । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भक्तिपूर्णाश्रुलोचनः ॥
 नन्द उवाच ।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः । नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥
 अनन्तकोटिब्रह्माण्डधामधाम्ने नमोऽस्तुते । नमो मत्स्यादिरूपाणां जीयरूपायसाक्षिणे

निलिप्ताय निर्गुणाय निराकाराय ते नमः ॥ २०१ ॥

अतिसूक्ष्मस्वरूपाय स्थूलात्स्थूलतमाय च । सर्वेश्वराय सर्वाय तेजोरूपाय ते नमः
 अतिसूक्ष्मस्वरूपाय ध्यानासाध्याय योगिनाम् ।

ब्रह्मचिष्णुमहेशानां धन्याय नित्यरूपिणे ॥ २०३ ॥

धाम्ने चतुर्णां घर्णानां युगेष्वेव चतुर्षु च । शुक्लरक्तपीतश्यामाभिधानगुणशालिने ॥
 योगिने योगरूपाय गुरवे योगिनामपि । सिद्धेश्वराय सिद्धाय सिद्धानां गुरवे नमः ॥
 यं स्तोतुमक्षो ब्रह्मा विष्णुयंस्तोतुमक्षमः । यंस्तोतुमक्षमो रुद्रः शेषो यं स्तोतुमक्षमः ॥
 यं स्तोतुमक्षमो धर्मा यंस्तोतुमक्षमोरविः । यंस्तोतुमक्षमो लम्बोदरश्चापि पङ्कजनः
 यं स्तोतुमक्षमाः सर्वे मुनयः सनकादयः । कपिलो नक्षमस्तोतुं सिद्धेन्द्राणां गुरोर्गुरुः
 न शक्तो स्तवयं कर्तुं नरनारायणावृषी । अन्ये जङ्घियः केवास्तोतुंशक्ताः परात्परम्
 वेदा न शक्ता नौघाणी नच लक्ष्मीः सरस्वती । नराधास्तवने शक्ता किंस्तुवन्तिविपश्चितः
 क्षमस्य निखिलं ब्रह्मन्नपराधं क्षणे क्षणे । रक्ष मां कृपासिन्धो दीनवन्धो भवार्णवे ॥
 पुरा तीर्थे तपस्तप्त्वा पुत्रः प्राप्तः सनातनः । स्वकीयचरणाम्भोजे भक्तिं दास्यञ्चदैहिमे

ब्रह्मत्वममरत्वं वा सालोन्मादिकमेव वा ।

त्वत्पदाम्भोजदास्यस्य फलां नार्हन्ति पोङ्गशीम् ॥ २१३ ॥

इन्द्रत्यं वा सुरत्वं वा संप्राप्तिं सिद्धिस्वर्गयोः ।

राजत्यं चिरजीवित्यं सुधियो गणयन्ति किम् ॥ २१४ ॥

एतद्यत् फथितं सर्वं ब्रह्मत्वादिकमीश्वर । भक्तसङ्गक्षणादस्य नोपमा ते किमर्हति ॥
 त्वद्भक्तोयस्त्यत्सङ्गशः कस्त्यां तर्कितुमीश्वरः । क्षणार्द्धालापमात्रेण पारं कर्तुं सचेष्टरः
 भक्तसङ्गाद्वचत्येव भक्तिं कर्तुमनेकधा । त्वद्भक्तजलदालापजलसेकेन वर्द्धते ॥ २१७ ॥

भक्तकालापतापात्तु शुष्कतां याति तत्क्षणम् ।

तद्गुणस्मृतिसेकाच्च वर्द्धते तत्क्षणे स्फुटम् ॥ २१८ ॥

त्वद्भक्त्यङ्गुलिभूतं स्फीतं मानसजं परम् । न नश्यं वर्द्धनीयञ्च नित्यं नित्यं क्षणे क्षणे
 ततः संप्राप्य ब्रह्मत्वं भक्तस्य जीवनाय च । ददात्येव फलं तस्मै हरिदास्यमनुत्तमम्
 संप्राप्य दुर्लभं दास्यं यदि दासो यभूव ह । सुनिश्चयेन तेनैव जितं सर्वं भयादिकम् ॥
 इत्येवमुक्त्वा भक्त्याच नन्दस्तस्थौदरैः पुरः । प्रसन्नचदनः कृष्णोद्दो तस्मेतदीप्सितम्

पयं नन्दकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् ।

सुष्टदां भक्तिमाप्नोति सद्यो दास्यं लभेदरैः ॥ २२३ ॥

तपस्तप्त्वा यदा द्रोणस्तीर्थे च धरया सह ।

स्तोत्रं तस्मै पुरा दत्तं ब्रह्मणा तत् सुदुर्लभम् ॥ २२४ ॥

हरैः पङ्क्षरो मन्त्रः कवचं सर्वरक्षणम् । इह सौभरिणा दत्तं तस्मै तुष्टेन पुष्करे ॥

तदेव कवचं स्तोत्रं स च मन्त्रः सुदुर्लभः । ब्रह्मणोऽंशेन मुनिना नन्दाय च तपस्यते ॥

मन्त्रः स्तोत्रञ्च कवचमिष्टदेवो गुरुस्तथा ।

या यस्य विद्या प्राचीना न तां त्यजति निश्चितम् ॥ २२७ ॥

इत्येवं कथितं स्तोत्रं श्रीकृष्णाख्यानमब्रुतम् । सुखदं मोक्षदं सारं भवबन्धविमोचनम्

इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

इन्द्रयागभञ्जनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ।

द्वाविंशोऽध्यायः

धेनुकासुरोपाख्यानवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा राधिकानाथो वलेन सह बालकैः । जगाम तत्तालवर्तं परिपक्वफलान्वितम् ॥ १ ॥

धृक्षाणां रक्षिता दैत्यैः खरकृपी च धेनुकः । कीटसिंहसमयलो देवानां दर्पनाशनः ॥

शरीरं पर्वतसमं कृपतुल्ये च लोचने । ईषाण्डकिसमा दन्तास्तुण्डं पर्वतगह्वरम् ॥ ३ ॥

शतहस्तपरिमिता जिह्वा लोला भयानका । कासारसदृशा नाभिः शब्दस्तस्य भयानकः

दृष्ट्वा तालवर्तं बाला दर्पमापुरनिन्दिताः । कीनुकात् कृष्णमूचुस्ते स्मराननसरोरहाः ॥

बाला ऊचुः ।

हे कृष्ण कृष्णासिन्धो दीनबन्धो जगन्पते । महाबलबलघ्नात समस्तवलिनां वर ॥

अवधानं कुरु विमो क्षणाद्वै नो निवेदने । धुधिताना शिशूनाञ्च भक्तानां भक्त्यत्सल

सादूनि सुन्दराण्येव पश्य तालफलानि च ।

भङ्क्तुं चालयितुं वृक्षान् पातितुञ्च फलानि च ॥ ८ ॥

नानावर्णानि पुष्पाणि पक्वानि दुर्लभानि च ।

आज्ञां करोषि चेत् कृष्ण चेष्टां कर्तुं धर्मक्षमाः ॥ ९ ॥

किन्त्यत्र दैत्यो बलवान् खररूपो च धेनुकः । भजितस्त्रिदशैः सर्वैर्महाबलपराक्रमः ॥
दुर्निवार्यश्च सर्वेषां कंसस्य सचिवो महान् । हिसकः सर्वजन्तूनां वनानामस्ति रक्षिता
सुविचार्य जगत्कान्तं वद नो वदतां वर । युक्तं कार्प्यमयुक्तं वा कर्तव्यमथवा न वा
बालकस्य वचः श्रुत्वा भगवान् मधुसूदन । उवाच मधुरं बालान् धनन्तत्सुप्तावहम्
श्रीकृष्ण उवाच ।

किं वो दैत्याद्वयं बाला यूयं मत्सहचारिणः ।

वृक्षान् भङ्क्त्वा चालयित्वा फलानि प्रादतामयम् ॥ १४ ॥

श्रीकृष्णाज्ञां समादाय बालका बलशालिनः । उत्पेतुर्वृक्षशिखरं क्षुधिताश्च फलार्थिनः
नानाप्रकारवर्णानि स्वादूनि सुन्दराणि च । फलानि पातयामासुः परिपक्वानि नारद ॥
केचिद् वभञ्जुर्वृक्षांश्च चालयामासुरेव । केचित् कौलादलश्चकुर्ननृतस्तत्र केचन ॥१७
अवक्त्वा तरुभ्यश्च बालका बलशालिनः । फलान्यादाय गच्छन्तो दहशूर्दैत्यपुङ्गवम् ॥१८
महाबलं महाकायं घोरं गर्दभरूपिणम् । आगच्छन्त महावेगान् कुर्वन्तं शब्दमुत्थणम्
तं दृष्ट्वा खड्गुः सर्वे फलानि तत्पुत्रमिया । कृष्ण कृष्णेति शब्दश्च प्रचकुर्वद्बुधा भूशम् ॥

अस्मान् रक्ष समागच्छ हे कृष्ण करुणानिधे ।

हे सङ्कर्षण नो रक्ष प्राणा नो यान्ति दानवात् ॥ २१ ॥

हे कृष्ण हे कृष्ण हरे मुरारे गोविन्द दामोदर दीनबन्धो ।

गोपीश गोपेश भवार्णवेऽस्मान्नन्त नारायण रक्ष रक्ष ॥ २२ ॥

भयेऽभये वाथ शुभेऽशुभे वा सुखेऽपु दुःखेऽपु च दीननाथ ।

त्वया चिनात्यं शरणं भवार्णवे न मोऽस्ति हे माधव रक्ष रक्ष ॥ २३ ॥

तय जय गुणसिन्धो कृष्णभक्तैकबन्धो बहुतरभययुक्तान् बालकान् रक्ष रक्ष ।

जहि दनुजकुलानामीशमस्माकमन्तं सुरकुलबलदपं धर्मयेमं निहत्य ॥२४ ॥

बालानां चिक्षुष्य दृष्ट्वा चलेन सह माधव । आजगाम शिशुस्थानं भयहा भक्तवत्सल ॥
भयनास्तिभयनास्तीत्युक्त्यादुद्रावसत्वरम् । ईषद्वास्यप्रसन्नास्यो निर्भय दत्तवान् शिशून्
दृष्ट्वा कृष्ण यत्नं बाला ननृतुर्विजहुर्ययम् । हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमङ्गलदायिका ॥ २७ ॥
आकृष्णो दानव दृष्ट्वा ग्रसन्तं पुरतः शिशून् । यत्नं सम्बोध्य बलिमुवाच मधुसूदनः
श्रीकृष्ण उवाच ।

दानवी बलिपुत्रोऽयं नाम्ना साहसिको बली । गर्दभो ब्रह्मशापेन शप्तो दुर्वाससा पुरा
पापिष्ठो मम बध्योऽयं महाबलपराक्रम । अहमेन बधिष्यामि त्वं रक्ष बालकान् यत्नं ॥
आदाय बालकान् सर्वान् दूरं गच्छेत्पुवाच ह ।

तान् गृहीत्वा यत्नं शास्त्रं जगाम त्वरयाज्ञया ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वा कृष्ण दानवेन्द्रो महाबलपराक्रम । जग्रास लीलया कोपाज्ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥
यभूवासिदाहयुक्तो मर्तुकामोऽतितेजसा । उज्जग्रास पुनर्देव्यो विभु तेजस्विन भिया ॥
उज्जिह्वतः सन्ततमीशश्च दृष्ट्वा देव्यो मुमोच ह । अतीवसुन्दरं शान्तं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा
कृष्णदर्शनमात्रेण यभूवास्य पुरा स्मृति । आत्मानं बुबुधे कृष्णं जगतां कारणं परम्
तेजस्वरूपमीशान्तं दृष्ट्वा तुष्टाय दानव । यथागम यथा जन्म गुणातीतं श्रुते परम् ॥

दानव उवाच ।

पामनोऽसि त्वमश्वेन मतिपतुर्व्यङ्गमिभुक् । राज्यहर्ता च श्रीहर्ता सुतलस्थलदायक ॥
बलिभक्तिवशो धीर सर्वेशो भक्तवत्सल ।

शीघ्रं त्वं हिंस मां पापशापाद्गर्भरूपिणम् ॥ ३८ ॥

मुनेर्दुर्वाससः शापादीदृशं जन्म कुत्सितम् । मृत्युरुक्तश्च मुनिना त्वत्तो मम जगत्पते
पोडशारेण चम्रेण सुतीक्ष्णेनातितेजसा । जहि मां जगतां नाथ सद्गच्छि कुरु मोक्षद ॥
त्वमश्वेन पराहृष्य समुद्धर्तुं धनुन्धराम् । वेदानां रक्षिता नाथ हिरण्यकशिपुर्नृप ॥
त्वं नृसिंह स्वयं पूर्णा हिरण्यकशिपोर्वधे । ब्रह्मादानुग्रहाभ्यां देवानां रक्षणाय च ॥
त्वञ्च वेदोद्धारकर्ता मीनाशेन दयानिधे ।

नृपस्य ज्ञानदानाय रक्षायै मुरचिप्रयो ॥ ४३ ॥

शेषाधारश्च कूर्मस्त्वमंशेन सृष्टिहेतवे । विश्वाधारश्च शेषस्त्वमंशेनापि सहस्रद्वक् ॥
 रामो दाशरथिस्त्वञ्च जानक्युद्धारहेतवे । दशकन्धनिहन्ता च सिन्धो सेतुविधायकः
 कलया पर्शुरामश्च जमदग्निसुतो महान् । त्रिःसप्तकृत्यो भूपानां निहन्ता जगतीपते ॥
 अंशेन कपिलस्त्वञ्च सिद्धानाञ्च गुरोर्गुरुः । मातृज्ञानप्रदाता च योगशास्त्रविधायकः
 अंशेन ज्ञानिनां श्रेष्ठो नरनारायणावृषी । त्वञ्च धर्मसुतो भूत्वा लोकविस्तारकारकः ॥
 अधुना कृष्णरूपस्त्वं परिपूर्णतमः स्वयम् । सर्वेषामवताराणां जीवरूपः सनातनः ॥

यशोदाजीवनो नित्यो नन्दैकानन्दवर्धनः ।

प्राणाधिदेवो गोपिनां राधाप्राणाधिकः प्रियः ॥ ५० ॥

वसुदेवसुतः शान्तो देवकीदुःखभञ्जनः । अयोनिसम्भवः श्रीमान् पृथिवीभारहारकः ॥
 पूतनायै मातृगतिं प्रदाता च कृपानिधिः । बलकेशिप्रलम्बानां ममापि मोक्षकारकः ॥
 स्वैच्छामय गुणातीत भक्तानां भयभञ्जन । प्रसीद राधिकानाथ प्रसीद कुरु मोक्षणम्
 हे नाथ गार्दभीयोनेः समुद्धर भवार्णवात् । मूर्खस्त्यङ्गकपुत्रोऽहं मामुद्धर्तुं त्वमर्हसि
 वेदा ब्रह्मादयो यञ्च मुनीन्द्रास्तोतुमक्षमाः ।

किं स्तोमि तं गुणातीतं पुरा दैत्योऽधुना खरः ॥ ५१ ॥

एवं कुरु कृपासिन्धो येन मे ॥ भवेज्जनुः । दृष्ट्वा पादारविन्दं तै कः पुनर्मघनं व्रजेत् ॥
 ब्रह्मास्तोताखरःस्तोता नोपहासितुमर्हसि । सदीश्वरस्य विश्वस्य योग्यायोग्येसमाकृपा
 इत्येवमुक्त्वा दैत्येन्द्रस्तस्मै च पुरतो हरेः । प्रसन्नवदनः धीमान्तितुष्टो बभूव ह ॥ ५२ ॥

इदं दैत्यकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् ।

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यं लीलया लभते हरेः ॥ ५३ ॥

इह लोके हरेर्मक्तिमन्ते दास्यं सुदुर्लभम् ।

चिदां ध्रियं सुकवितां पुत्रपौत्रान् यशो लभेत् ॥ ६० ॥

श्रीनारायण उवाच ।

धुत्वानुमेने दैत्येन्द्रस्तवनं करुणानिधिः । कथं करोमि संहारमीदृशं भक्तमित्यहो ॥
 अनुमन्य स्मृतिं तस्यसंजहाद्वरिः स्वयम् । नहि युक्तोऽयमस्तोनुर्दुर्धर्तुर्धिरिरीश्वरात्

दानवो मायया विष्णोर्विसस्मार पुनः स्वकम् । दुर्धर्कं कण्ठदेशे तदधिष्ठानं चकार ह
उवाच श्रीहरिदैत्यः कोपात् प्रस्फुरिताधरः । मुनेस्यो मर्त्तुकामो दैवग्रस्तो विचेतनः
दैत्य उवाच ।

ध्रुवं त्वं मर्त्तुकामोऽसि दुर्युद्धे मानवार्मक । अद्य प्रस्थापयिष्यामि त्वामहं यममन्दिरम्
आयासि जीघनाकाङ्क्षी मम तालवनं शिशो ।
न यास्पसि पुनर्गेहं बान्धवं न हि द्रक्ष्यसि ॥ ६६ ॥
न कंसो न जरासन्धो नरको न समो मम ।
देहाः कस्पन्ति मे नित्यं के खात्ये मत्समा भुवि ॥ ६७ ॥
न हि संहारकर्त्ता च मां संहर्तुं क्षमः शिवः ।
न च प्रह्ला न विष्णुश्च न मृत्युः काल एव च ॥ ६८ ॥
मम तालतकम् भङ्गत्वा पातयित्वा फलानि च ।
अहङ्कारोऽति सहसा किमहो कस्य तेजसा ॥ ६९ ॥

कस्त्वं वद घटो सत्यं कमनीयोऽतितुन्दरः । दुर्लभं जीवनं दातुं मया कथमिहागतः ॥
इत्युक्त्वा मस्तके कृत्वा प्रेरयित्वा ॥ तं बली । दूरतः पातयामास श्रीकृष्णं मरणोन्मुखः
पातयित्वाच तं भूमी विषाणाभ्यां जघानत् । कृष्णाङ्गस्पर्शमात्रेण तद्विषाणौ यमजतुः
दैत्यो भग्नविषाणश्च तमीशं कोपतो मुने । जग्रास चर्वणं कर्त्तुं भग्नदन्तो बभूव ह ॥
तेजसा दग्धवक्त्रश्च तमुज्जग्राह तत्क्षणे । ज्वाल व्यधितः कोपाद्द्वार पुरतोमहीम्
घूर्णयित्वा तु लांगूलं शब्दं कृत्वा भयानकम् । स जगाम शिशुस्थानं बुद्बुद्बुर्चलकाभिया
चलञ्च प्रेरयामास मस्तकेन महाबली । बली मुष्टिं ददौ तस्मै मूर्च्छामाप ततोऽसुरः ॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य जगाम हरिसन्निधिम् । वज्रमुष्ट्याच व्यधितः पुनर्मूर्च्छामवाप सः
पुनश्च चेतनां प्राप्य समुत्सृज्य व्यथाकुलः । उत्ससर्ज बहल्लेदं (ण्ड) मूत्रञ्च भयमाप ह
क्षणात् सन्धिक्षणं प्राप्य महाबलपराक्रमः । कृत्वा शिरसि गोचिन्दं घूर्णयामास दानवः
पातयामास भूमी तं घूर्णयित्वा पुनः पुनः । उत्पाट्य तालवृक्षं ताडयामास माधवः ॥
यथा केशापहारेण मानवस्य भवेत्तु व्यथा । तथा बभूव दैत्यस्य तालवृक्षस्य ताडनात्

त्रयोविंशोऽध्यायः] * दुर्वाससः शापेन बलिनन्दनस्य गर्दभत्वम् *

६८६

भुक्त्वा पीत्वा हरिः शीघ्रं बलेन बालकैः सह । जगाम स्वालयं ब्रह्मनिहत्य दानवेश्वरम्
इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
धेनुकचधो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।

त्रयोविंशोऽध्यायः

दुर्वाससःशापेन बलिनन्दनस्य गर्दभत्वम् ।

नारद उवाच ।

केन पापेन बलिजो गर्दभत्वमवाप ह । दुर्वासाः केन दोषेण शशाप दानवेश्वरम् ॥१॥
केन पुण्येन वा नाथ बलिनः श्रीहरेः पदम् । सहस्रैकत्वमुक्तिञ्च संप्राप दानवाधिपः ॥
मुने सर्वं सुविस्तार्य्य घद सन्देहभञ्जन । अहो कविमुखे कान्यं नूतनं नूतनं पदे पदे ॥

श्रीनारायण उवाच ।

शृणु वत्स प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । पुरा ध्रुतं धर्मवक्त्रात् पर्यते गन्धमादने ॥
पाप्मकरूपे च वृत्तान्तं विचित्रं सुमनोहरम् । नारायणकथोपेतं कर्णपीयूषमुत्तमम् ॥५॥
यत्र कल्पे कथा चैर्यं तत्र त्वमुपवर्णनः । आकल्पजीवी सध्रीकः सुन्दरः स्थिरयौघनः ॥
पञ्चाशत्कामिनीनाञ्च पति शृङ्गारतत्परः । वरेण ब्रह्मणस्त्वञ्च सुकण्ठो गायनेश्वरः ॥
अनुक्षणं पपुस्तास्ते सुन्दरं मुखपङ्कजम् । निमेषरहिताः सर्वाः कामवाणप्रपीडिताः ॥
तासां प्राणैश्च घटितो विधिना त्वमिष श्रुतम् ।

दिशानिर्गम्य सहचरा न जीवन्ति त्वया विना ॥ ६ ॥

पुष्पोद्याने च रहसि स्थाने स्थाने मनोरमे । गह्वरेषु च शैलानां कन्दरेषु नदीषु च ॥
काननेषु च रम्येषु शमशाने जन्तुवर्जिते । यथामनोरथं ताञ्च कीडाञ्चकुस्त्वया सह ॥
तदा दैवाद्विधेः शापाद् भूत्वा दासीसुतो भवान् ।

अधुना ब्रह्मणः पुत्रो वैष्णवोच्छिष्टमोजनात् ॥ १२ ॥

निरूपितं यत्तेनैव वार्यते केन तत् प्रिये ॥ ४६ ॥

वाक्यं पीयूषसदृशं सस्मितं वद सुन्दरि । शीघ्रं भुजलतापाशैर्वन्धनं कुरु निर्जने ॥ ५० ॥

भासनं देहि कल्याणि स्वोदं कनकसन्निभम् ।

स्तनमण्डलकुम्भञ्च यात्रायोग्यं प्रदर्शय ॥ ५१ ॥

तीक्ष्णास्त्रेण कटाक्षेण जर्जरं कुरु भामिनि । कामसर्पक्षतं पादस्पर्शनं नीरुजं कुरु ॥ ५२ ॥

अधरोष्ठाभृतं स्वादु देहि मे क्षुधिताय च । पक्वदाडिमयीजामं दन्तं दर्शय सुन्दरम् ॥

गम्भीरतार्मि त्रिघली द्रष्टुमिच्छामि सुन्दरि ।

नीधीप्रमोक्षणं कर्तुमिच्छा मे वर्तते सदा ॥ ५४ ॥

धोर्णि पश्यामि ललिता मुनिमानसमोद्वितीम् ।

शरत्पार्वणाहपद्मानां प्रभामोचनलोचनाम् ॥ ५५ ॥

शरत्पार्वणबन्ध्यास्यं प्रसन्नञ्च प्रदर्शय । सा च तद्वचनं श्रुत्वा तमुवाच स्मरानुरा ।

द्वष्ट्वार्तं कामधाणेन मानसं यक्षकामिनी ॥ ५६ ॥

तिलोत्तमोवाच ।

पतिस्त्वत्सदृशो नाथ कामिनीना मनीषितः ।

बलिपुत्रोऽसि धर्मिष्ठो रूपवान् गुणवान् युवा ॥ ५७ ॥

शृङ्गारनिपुणः कान्तः कामशास्त्रविशारदः । सदा मनोज्ञः स्त्रीणां त्वं सुवेशश्च स्वभावतः,

सुवेशं सुन्दरं शान्तं कान्तं दान्तमरोगिणम् । शृङ्गारज्ञं गुणज्ञं त्वां युवानं रसिकं शुचिम्,

स्त्रीमनोज्ञं दयालुञ्च बलिष्ठं सन्तमीश्वरम् । दातारमनुरक्तञ्च कान्तमिच्छति कामिनी

एते सर्वे गुणाः कान्त सन्ति कान्ते त्वयि ध्रुवम् ।

त्वां न वाञ्छन्ति याः कान्तास्ता अविज्ञाश्च वञ्चिताः ॥ ६१ ॥

सन्तोषं ते करिष्यामि समागम्य विधोगृहात् ।

वेशं कृत्वा तु चन्द्रार्थं यात्राद्य तस्य कामिनी ॥ ६२ ॥

अन्याश्लेषणमात्रेण भविता धर्मलङ्घना । याश्च धर्माश्च रक्षन्ति तासाञ्च जीवनं वृथा ॥

चन्द्राश्लेषं न जानन्ति यास्ता मूढाः प्रकीर्त्तिताः ।

ता एव मातृगर्भस्था न प्राप्ताः पौरुषैस्तेः ॥ ६४ ॥

स्ववद्यो मदनश्चन्द्रो महत्त्वान्तलङ्घरः । एभिर्नालिङ्गिता यास्ता वञ्चिता रतिकर्मभिः
दिधानिशं मानसं मे तेषां कीडाञ्चिन्तयेत् । विशेषतः कामदेवो निपुणो रतिकर्मणि
चन्द्रशृङ्गारमाश्लेषमालापममृताधिकम् । अद्य तस्य रतिदिनं तेन तं चिन्तयेन्मनः ॥ ६५

तिलोत्तमावचः श्रुत्वा जहास वलिनन्दनः ।

सकामश्च सपुलकस्तामुवाच रहःस्थले ॥ ६८ ॥

साहसिक उवाच ।

प्रहृष्टा निर्मिता त्वञ्च कौतुकेन तिलोत्तमे ।

अतो वरा चाप्सरसां विदग्धरसिकेद्वरो ॥ ६९ ॥

सुन्दोपसुन्दयोर्नाशनिमित्तं प्रयत्नतः । सर्वरूपगुणाधारा विधिना च कृता पुरा ॥ ७० ॥
सर्वं जानासि सर्वज्ञे पित्रे सुस्तकर्मणि । हर्षेण श्रोतुमिच्छामि पदं यो मानसं पथः ॥
अतिप्रियश्च को वा च कः स्वभाषो वरानने । अवश्यं गोपनीयञ्च श्रोतुमिच्छामि सुन्दरि
गन्धर्वाणां सुराणाञ्च राज्ञां पुण्ययतामपि । सर्वेषां प्राणतुल्या त्वमेव ते कः परः प्रियः
असुरस्य पथः श्रुत्वा प्रहस्य सा तिलोत्तमा ।

मुपमाच्यदयामास पिलीप्लवकचक्षुषा ॥ ७४ ॥

सत्यं सारमन्तरस्यमव्यक्तप्रतिगोपनम् । उवाच मानसं वाक्यमजानं विदुषामपि ॥ ७५ ॥
तिलोत्तमोवाच ।

कथनीयं साहसिक गुंथलीनां मनोपच । स्त्रीजार्तानाञ्च सर्पासामुपहासकरं परम् ॥
सर्वेषामपि दुर्घेयं चरितं योषितामपि । विशेषतोऽपि दुर्घेयं गुंथलीना मनोपचः ॥ ७७ ॥
येदं येदाङ्गशास्त्रान्तं सर्वं जानाति पण्डितः ।

कान्तं नान्तं विजानाति दिशामाकाशयोषिताम् ॥ ७८ ॥

पिगादप्यप्रियो गृहो रघादपि च योषिताम् ।

गुप्ता सर्वस्यहर्ता चेतप्राप्तेन्योऽपि पटः प्रियः ॥ ७९ ॥

गुप्तानं सुन्दरं ददा ह्यस्तां भवति गुंथली । विशेषतः सुप्रेम्य दृष्ट्यैव दत्तमेव ।

निमेषरहिता तस्य लोचनाभ्यां पथौ मुखम् ॥ ८० ॥

योनीं जलं क्षरेत्तस्याः सद्यः कण्डूयनं भवेत् ।

मनोऽतिलोलमस्यैष्यं सर्वाङ्गानि चकम्परे ।

जङ्गीभूतं शरीरञ्च प्रदग्धं मदनानलात् ॥ ८१ ॥

संप्राप्य तं चेद्रहसि सालापं कुरुते स्फुटम् । सकटाक्षं स्मेरवक्त्रं दर्शयित्वा पुनः पुनः

तथा यदि वशं कर्तुं न शशाक जितेन्द्रियम् । स्वमङ्गं दर्शयित्वा तमन्तर्वाक्यं स्फुटं वदेत्

दुःसाध्ये नायके दुःखं भवेदाजन्म जन्मनि । तत्तुल्यं तत्परं प्राप्य तं विस्मरति पुंश्चली

पुंश्चलीनामप्रियः कः कः प्रियो वा महीतले ।

योऽतिभृङ्गारनिपुणः स च प्राणाधिकः प्रियः ॥ ८५ ॥

पूर्वजारं पतिं पुत्रं भ्रातरं पितरं प्रसूम् । विशिष्टं नूतनं प्राप्य सर्वं त्यजति लीलया ॥ ८६ ॥

न दानेन न मानेन सत्येन स्तवनेन वा । नोपकारेण प्रीत्या वा सा साध्या सुरतिविना

शयने भोजने चापि स्वप्ने हाने दिवानिशम् । नित्यं सतपुरुषाश्लेषं स्मरन्ति कुलटाः स्त्रियः

शृङ्गारनिपुणानाञ्च ध्यानसाध्या चिरं परम् । दारुणापुंश्चली जातिः प्रार्थयन्ती नघं नवम्

सर्वासा कुलटानाञ्च चरित्रं कथितं मया । अकथ्यं गोपनीयञ्च मम हृदयचनं शृणु ॥ ९० ॥

मम सन्ति प्रियतरा गन्धर्वे वृक्षेषु च । युवानो रतिशूराश्च कामशास्त्रविशारदाः ॥ ९१ ॥

विशेषतः शशधरे स्नेहो मे विद्यते परः । ततोऽतिरिक्तः सर्वस्मादपि कामः प्रियो मम

प्रियो मे कामसदृशो न भूतो न भविष्यति ।

स्मरस्य स्मरणात् तूर्णं सुस्निग्धं मानसं मम ॥ ९३ ॥

इत्येवं कथितं सर्वमात्मनो योपितामपि । आद्यां कुरुमहाराज यास्यामि चन्द्रसन्निधिम

चन्द्रस्थानात्तच्च स्थानं समागत्य सुनिश्चितम् । सन्तोषं तव दैत्येन्द्रकरिष्यामि न संशयः

श्रुत्वा च वलिपुत्रश्च जहासोच्चैः पुनः पुनः । सा वक्त्रचक्षुपालोक्य तं जहास स्मरानुरा ॥

छलेन दर्शयामास कठिनं स्तनयोर्युगम् । चारुचम्पकवर्णामं वस्तुलं पीतमुच्छ्रितम् ॥ ९७ ॥

श्रोणीं सुकठिना रम्यां रम्भास्तम्भविनिन्दिताम् ।

सकटाक्षं स्मेरमुखं कपोलं पुलकाञ्चितम् ॥ ९८ ॥

रुहःस्थानं समासाद्य कामेन हतचेतसा ।

पुलकाद्वितसर्वाङ्गी लोचनाभ्यां षणौ मुणम् ॥ ६६ ॥

तस्य रूपञ्च वेशञ्च दशो दशो पुनः पुनः । मुग्धस्याच्छादनं भावान् कुर्वन्तीमूलपात्तसा
धत्तिकामानुरां दृष्ट्वा सुप्राज्ञो बलिनन्दनः । पप्रच्छकामिनी कामी भावं पिनातुमुत्सुकः

साहसिक उवाच ।

किं करिष्यसि मां सत्यं यद् पटुजलोचने । काप्यान्तरं करिष्यामि सुचिरंस्थातुमक्षमः

कामिनीषु बलात्कारो न धर्मो धर्मिणां प्रिये ।

विशेषतोऽतिपिदुषां नास्माकं स्वकुलोचितः ॥ १०३ ॥

शृङ्गारं देहि पागच्छ रतिं कर्तुं सुरान्तिके । कक्षमांषा परीक्षन्तुं पुंभ्यनीयदुगामिनीम्
दानपम्य पचः धृष्ट्या शुष्कफण्टोद्धतालुका । भारमानमधममन्या भियमानास्मराव्रतः

तिलोत्तमोवाच ।

कथमेवं ब्रूहि त्वं मे कान्त प्राणाधिकः प्रियः ।

कथं वा कोपयुक्तोऽसि कुरु काप्यं मनोदितम् ॥ १०६ ॥

त्वामेवं विमुषं दृष्ट्वा यामि नन्त्रान्तिकं यदि ।

तयामिश्रापात्तत्रेण सद्यो विप्रो भविष्यति ॥ १०७ ॥

विहारं कुरु नन्दं ते करिष्यति हारिः स्वयम् । वदे वदे गुनं तस्य यः स्वीमान् ॥ रक्षति
भवमान्य स्त्रियं मृदो यो याति पुरयाभयः । वदे वदे तद्गुनं करोति पापंतां रतां ॥
तिलोत्तमापचः धृष्ट्या उहास बलिनन्दनः । कामशास्त्रेषु निष्णातस्तद्वाचं मुमुषे सुधीः
भावं विहाय भाषयः कामशास्त्रविशारदः । करे धृष्ट्या समान्तिष्य मुमुष्यमुग्धशृङ्गम्
जगाम च तया सायं गन्धमादनगहम् । दृष्ट्वा तत्र गतया च स्नानं तन्नुपिषिञ्चिन् ॥
गत्वाप्य रत्नरीपांश्च पूषञ्च सुमनोदाम् । कृष्यो रतिकरी दृष्ट्वा मुष्यन् च तया सह
नामाप्रकारशृङ्गम् ॥ कार काममोदितः । तिलोत्तमा न मुमुषे मुगुरति विद्यान्म् ॥
विपरीतार्तो मुष्टा क्लृप्त रतिर्द्विषति । विपानिर्ग न मुमुषे नवशङ्कमूर्च्छित ॥ ११० ॥
तिलोत्तमा कामभाषाद् बलिपुत्रमुवाच ह । दृष्ट्वा कासि प्रान्तिं स्नयन्तीत्यग्रे मुष्टा

तिलोत्तमोवाच ।

कदा द्रष्टव्यम्यहं कान्त मुखचन्द्रं मनोहरम् । एवंभूतं शुभदिनं कदा मे भविता पुनः ॥
अयि किं रूपमाश्चर्यं गुणो वा तव दानव । भ्रूवंशद्वारनिपुणस्त्वत्परो नास्तिकधन-
मां पिस्मरसि कालेन पुरयः पश्यदो यथा ।

स्त्रीणां सत्पुरुषास्तेषु भाजीवं मनसि स्थितः ॥ ११६ ॥

सत्सङ्गमः शुभदिने पुण्यात् पुण्यपतां भवेत् । सद्रिच्छेदो दुःखहेतुर्मरणादतिरिच्यते
पीयूषभोजनात्स्पर्गघासादपिचतुर्लभः । सत्सङ्गमः सुखमयोऽप्यसत्सङ्गो विषाधिकः
क्षणं तिष्ठ महाराज पुनरालिङ्गनं कुरु । त्वया सार्धं मम प्राणा यास्यन्ति चेतसा सह
इत्येषमुक्त्वा कुलटां कृत्वा पक्षसि सादम् । पुमङ्गसङ्गोत्पुलका मूर्च्छामाप सुयेन च
कुलटालिङ्गनालापात् सोऽतिकामी यभूय ॥

यथा दातः कृष्णघर्मां पथंते हविषाधिकम् ॥ ११७ ॥

पुनश्चकार शृङ्गारमसुरोऽष्टपिधं मुने । शुम्भश्च तपपिधं यथाभ्याने यथाचितम् ॥
नक्षत्रन्तकरैः म्रीडां चकार विविधां पुनः । किट्टिणीनां कट्टुनानां यभूय शम्भु उरुषः
मुनेर्दुर्पाससस्तेन ध्यानमङ्गो यभूय ह । अट्टपस्य तयोस्तत्र पद्मीकाञ्छादितस्य च ॥
योगासनं कुर्वन्तश्च गन्धमादनगह्वरे । ध्यायतश्चरणाम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः ॥
न पपात तयोर्दृष्टिः समीपस्थे महामुनी ।

कामात्मनोर्न हि ध्यानं कामेन हतचेतसोः ॥ ११८ ॥

सहसा चेतनो प्राप्य प्रचलन् प्रपन्नैजसा । ददस्य पुरस्सो नु मुनिगुणीषु लोचने ॥
दिपानिरो न जानन्तो संयुक्तो काममोहिनी ॥ ११९ ॥
द्रष्टुं युक्तोऽसौ त्रिभुवनो भगवान् पिबुः । उवाच नो विद्वान्मो रक्षाद्रुज्जयोचनः
ध्यानशतपरामर्शोऽविच्छेदोऽपिप्रमानतः ॥ १२० ॥

दुर्पातो उपाच ।

अतिष्ठ गङ्गाकार निर्द्वय पुरुषार्थमे । नक्षत्रध्यानस्पर्धः पुनः पशुममग्रतः ॥ १२१ ॥
देवो वा मानवो पारि उदगज्यं गतसाः ।

लज्जां कुर्वन्ति सततं स्वजाती च पशून् विना ॥ १३३ ॥

ज्ञानलज्जाविहीना च खरजातिर्विशेषतः । तस्मात्त्वं दानवश्रेष्ठ खरयोनिं व्रजाधुना ॥
तिलोत्तमे त्वमुत्तिष्ठ लज्जाहीना च पुंश्चली । एतादृशीस्पृहा दैत्ये व्रज योनिञ्च दानवीम्
इत्येवमुक्त्वा स मुनिस्तस्यो तत्रस्था ज्वलन् । तौ च तुष्टुवतुर्भोताबुधाय प्रोड़ितौ मुनिम्
साहसिक उवाच ।

एवंग्रह्मात्यञ्च विष्णुश्चत्यञ्चसाक्षान्महेश्वरः । हुताशनस्त्वंसूर्यश्चसृष्टिस्थित्यन्तकारकः
क्षमापरार्थं भगवन् कृपां कुरु कृपानिधे । मूढापरार्थं सततं यः क्षमेत् स सदीश्वरः ॥
इत्येवमुक्त्वा दैत्येन्द्रो रुरोदोद्यैः पुरो मुनेः । कृत्वा नृणानि दशने पपात चरणाम्भुजे ॥
तिलोत्तमोवाच ।

हे नाथ करुणासिन्धो दीनयन्धो कृपांकुव । विधिसृष्टौ च सर्वेषां मूढा स्त्रीजातिरेषव
ततोऽतिमत्ता कुलटा सदा कामातुरा परा ।

लज्जाभीतिचेतनाश्च न सन्ति कामुके विभो ॥ १४१ ॥

इत्युक्त्वा रोद्धन् कृत्वा जगाम शरणं मुने । विना विपत्तौ केवाञ्जिज्ञानं भयति भूतले
तयोर्दृष्ट्वा च वैकल्यं यभूय करुणा मुनेः । उवाच ताम्न्यामभयं दत्त्वा मुनिपरो मुने ॥
दुर्वासा उवाच ।

अतिशयः प्रसादो वा भवेद्देवेन दानव । सत्कीर्तिर्यत्कीर्तिर्वा प्राक्तनप्रभया ध्रुवम् ॥
विष्णुभक्तयले पुत्रः सद्गुणप्रभवो जनः ।

जनकाद्विष्णुभक्तोऽसि जानामि त्वां सुनिश्चितम् ॥ १४५ ॥

जनकस्य स्वमायो हि अन्ये तिष्ठतिनिश्चितम् । यथाश्रीकृष्णपादाङ्गः कालीयवंशमस्तके
संप्राप्य गार्दभो योनिं घटस्य निर्वाणताम्रज । पूर्वकृष्णार्चनफलं हि लुप्तं सतां चिरात्
वृन्दारण्यं तालवनं यज शीघ्रं ॥ ज्ञान्तिकम् ।

प्राणांस्त्यक्त्वा हरेश्चकान्मुक्तिं प्राप्स्यसि निश्चितम् ॥ १४८ ॥

तिलोत्तमे भारते त्वं याणपुत्री भविष्यसि । श्रीकृष्णपौत्राश्लेषेण पुनः पूता भविष्यसि
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम महामुने । तौ जग्मतुर्ध्यास्थानं प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् ॥

इत्युक्तं सर्ववृत्तान्तं दैत्यस्य खरजन्मनः । तिलोत्तमा चाणपुत्री ह्युपानिर्द्धकामिनी ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे तिलोत्तमावलि-
पुत्रयोर्व्रह्मशापप्रस्तावो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।

चतुर्विंशोऽध्यायः

कन्दलीदुर्वाससोः परिणयः ।

श्रीनारायण उवाच ।

निगूढं शृणु वृत्तान्तं मुनेर्दुर्वाससो मुने । अहोऽस्य दारसंयोगः कथं तदूर्ध्वरेतसः ॥१॥
दृष्ट्वा तयोश्च शृङ्गारमुनिः कामीवभूवह । जितेन्द्रियोऽसत्संसर्गाहोपः सांसर्गकोभवेत्
सहसा तस्य हृदये बभूव सुरते स्पृहा । तपस्तप्त्वा तत्र द्यूयौ कामिनी मदनातुरः ॥
एतस्मिन्नन्तरे तेन पथा याति मुनीश्वरः । प्रार्थयन्त्या पतिं सन्तमोर्वश्च सुतया सह ॥
ऊरुद्वयो ब्रह्मणश्च पुराकल्पे तपस्यतः । ऊर्ध्वरेताश्च योगीन्द्र और्वस्तेन इति स्मृतः ॥

तस्य जानूद्रवा कन्या कन्दली नाम विश्रुता ।

दुर्वाससं प्रार्थयन्ती नान्यं मनसि रोचते ॥ ६ ॥

ससुतो हि मुनिश्रेष्ठो मुनेर्दुर्वाससः पुरः । तस्यै महाप्रसन्नश्च ज्वलदग्निशिखोपमः ॥
मुनीन्द्रोऽपि मुनीन्द्रं तं पुरो दृष्ट्वा ससम्भ्रमः । प्रजवेन समत्तस्यै ननाम च मुदाश्वितः
और्वो दुर्वाससं तत्र समान्निष्य मुदान्वितः । उवाच मुनये सर्वं कन्यकाया मनोरथम्
और्व उवाच ।

विख्याताकन्दलीनाम मम कन्यामनोहरा । प्रौढात्वामेवध्यायन्ताश्रुत्वावाचिकवक्त्रतः
अयोनिसम्भवा कन्या त्रैलोक्यं मोहितुं क्षमा । सर्वरूपगुणाधारा दीपेणैकेन संयुता
अतीवकलहाविष्टा कोपेन कटुभाषिणी । नानागुणयुतं द्रव्यं न त्यजेदेकदोषतः ॥१२॥
और्वस्य घचनं श्रुत्वा दर्पशोकान्वितो मुनिः । ददर्श कन्यां पुरतो गुणरूपसमन्विताम्

शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम् । ईपद्मास्यप्रसन्नास्यां वीनश्रोणिपयोधराम्
नवयौचनसंयुक्तां पश्यन्तीं चक्रचक्षुषा । खलालङ्कारशोभाद्व्यां वक्षिशुद्धांशुकान्विताम् ॥
मुनिर्मुमोक्ष तां दृष्ट्वा कामघाणप्रपीडितः । उवाच तं मुनिश्रेष्ठं हृदयेन विदूयता ॥ १६ ॥

दुर्वासा उवाच ।

नारीरूपं त्रिभुवने मुक्तिमार्गनिरोधनम् । व्ययधानं तपस्यायाः सततं मोहकारणम् ॥
कारागारे च संसारे दुर्वर्ते निगडं परम् । अच्छेयं ज्ञानपादौक्ष महद्भिः शङ्करादिभिः ॥

सङ्गिच्छायातिरिक्तञ्च कर्मभोगात् परात्परम् ।

इन्द्रियादिन्द्रियाधाराद्विद्यायाश्च मतेरपि ॥ १७ ॥

भावेहंसङ्गिनी छाया भोगान्तर्भोग एव च । देहेन्द्रियाणि जीवान्तं विद्याचैवापशीलनम्
मतिश्चैवापशीलाः तासुस्त्रीजन्मनिजन्मनि । यावज्जीवीचसुस्त्रीकोन तावज्जन्मपण्डनम्
यावद्य जीविनो जन्म तावद्भोगः सुखायहः । परं मुनीन् सर्वस्माद्दरिद्रादाञ्जसेधनम्
ध्यायतः कृष्णपादाब्जं मम विप्रो यभूव ह । न जाने कर्मदोषेण येन या पूर्वजन्मनः ॥
पुंश्चल्या सह शृङ्गारं दृष्ट्वा वैत्यस्य मन्मनः । यभूव कामसंयुक्तदत्तं धाम्ना य तत्फलम् ।

किन्त्वहं तव कन्यायाः कटृक्तिशतकं मुने ।

ध्रुवं क्षमां करिष्यामि दास्यामि च ततः फलम् ॥ २५ ॥

सर्वतोऽपिपरा निन्दा खीकटूक्तिसहिष्णुता । भर्तायनिन्दित सारसु स्त्रीजितोभुवनप्रये
तदाशां मस्तके वृत्त्या प्रहीष्यामि सुतांतय । उपेतो कामिनीं त्यक्त्वा कालखूर्जनजेषरः
रहस्युपस्थातां कामात् पुंश्चलीं चेज्जितेन्द्रियः ।

परित्यजेद्धर्मभयाद्धर्माग्नरकं यजेत् ॥ २८ ॥

इत्येवमुक्त्वा दुर्वासा विरराम हरेः पुरः । मुनिर्यदोक्तविधिना ददौ तस्मै सुतां मुने ॥
स्वस्तीत्युवाच दुर्वासा मुनिश्च फौतुकं ददौ । कन्यासमर्पणं वृत्त्या मोक्षायैव कृतं ह
मूर्च्छामपाप स मुनिः स्वकन्याविह्वानुरः । अपत्यभेदशोकाच्च स्वात्मारामं न मुञ्चति

क्षणेन चेतनां प्राप्य बोधयामास कन्यकाम् ।

मूर्च्छितां तातपिच्छेदादुदन्तीं शोफसंयुताम् ॥ ३२ ॥

श्रीर्व उवाच ।

शृणु वत्से प्रवक्ष्यामि नीतिसारं सुदुर्लभम् । हितं सत्यञ्च वेदोक्तं परिणामसुखावहम्
स्वकान्तश्च परो बन्धुरिह लोके परत्र च ।

न हि कान्तात् परः प्रेयान् कुलस्त्रीणां परो गुह्यः ॥ ३४ ॥

देवपूजाप्रतं दानं तपश्चानशनं जपः । ज्ञानञ्च सर्वतीर्थेषु दीक्षा सर्वमलेषु च ॥ ३५ ॥

प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च ब्राह्मणातिथिसेवनम् ।

सर्वाणि पतिसेवायाः कलां नार्हन्ति योऽशीम् ॥ ३६ ॥

किमेतैः पतिभक्ताया अभक्तायाश्चभारते । यदादुःखी सुखारम्भे साकाङ्क्षः प्रथमो भवेत्
पतिसेवा परो धर्मः सर्वशास्त्रेषु पठ्यते । स्वप्रज्ञानेन सततं कास्तं नारायणाधिकम् ।

दृष्ट्वा तच्चरणाम्भोजं सेवां नित्यं करिष्यति ॥ ३८ ॥

परिहासेन कोपेन भ्रमेणावश्यामुने । कटूक्तिं स्वामिनः साक्षात् परोक्षान्न करिष्यति
स्त्रियो वाग्योनिदुष्टायाः कामतोभारतेभुवि । प्रायश्चित्तं भृतौ नास्ति नरकं ब्रह्मणः शतम्
सर्वधर्मपरीता या कटूक्तिं कुरुते पतिम् । शतजन्मकृतं पुण्यं तस्या नश्यति निश्चितम्
वस्त्राकन्यायोधयित्वा जगाम मुनिपुङ्गवः । स्वात्मारामं स्वाधमेव तस्यौस्त्रीसहितो मुवा
सम्भोगेच्छावृते चित्ते कामी संप्राप कामिनीम् ।

बहो सुकृतिनां कामो वाञ्छामात्रेण सिध्यति ॥ ४३ ॥

शय्यां रतिकरी कृत्वा मुनिश्रेष्ठो महामुने । शुभे क्षणेतां गृहीत्वा सुप्त्वाप निर्जने प्रियाम्
नारीरसानभिज्ञः स्यादाजन्म मुनिपुङ्गवः । तथापि सुरतो विद्वः कामशास्त्रविशारदः
नानाप्रकारच्छृङ्गारश्चकार विधिपूर्वकम् । नवसङ्गममात्रेण मूर्च्छां संप्राप कन्दली ॥ ४६ ॥
मूर्च्छां प्राप मुनिश्रेष्ठो बुबुधे न दिवानिशम् । एवं प्रतिदिनं तत्र चकार सुरर्तिं मुने ॥

तथाया विदाधेन बभूव सङ्गमः समः । संवभूव गृहासकस्तपस्त्यक्त्वा मुनीश्वरः ॥

करोति कलहं नित्यं कन्दली स्वामिना सह ।

मुनीन्द्रो बोधयामास नीतिवाक्येन कामिनीम् ॥ ४६ ॥

सा तन्न बुबुधे किञ्चित् करोति कलहे स्पृहाम् ।

तात्प्रदत्तज्ञानेन सा न शान्ता बभूव ह ॥ ५० ॥

न जहाति प्रयोधेन स्वभावो दुरत्किम्भः । नित्यं कटूक्तिं कान्तंसा करोति हेतुनाविना
जगत् प्रकम्पितं येनतया कोपात् स कम्पितः । तयाकृतां कटूक्तिश्च क्षमसंस्थाचकारत्
योधयामास तां नित्यं सद्यो मोहाद्व्यानिधिः । कटूक्तिशतकं पूर्णं तत्कालेन बभूव ह
क्षमां चकार रूपया कटूक्तिश्च शताधिकाम् । पत्नीकटूक्त्या नियतं प्रदग्धं मानसं मुने
तस्याः कटूक्तिकारिण्याः कर्म पूर्णं बभूव ह ।

स्वात्मारामो दयालुश्च कोपं त्यक्तुं न सक्षमः ॥ ५५ ॥

शशाप कामिनीं मोहाद्वस्मराशिर्भवेति च । मुनेरिङ्गितमात्रेण भस्मसात् सा बभूव ।
एवमत्युच्छ्रितानाञ्च न कल्याणं जगत्त्रये । शरीरेभस्मसाद्भूते प्रतिविम्बः स चात्मन
जीपस्तत्रान्तरिक्षस्थो ह्रुवाच्च विनयात् प्रभुम् ॥ ५८ ॥

जीप उवाच ।

हे नाथ सर्वदशीं त्वं सततं ज्ञानचक्षुषा । सर्वं जानासि सर्वज्ञ किमहं योधयामि ते ।

सङ्कुर्वा कटूक्तिर्वा कोपः सन्ताप एव च ।

लोभो मोहश्च कामश्च क्षुत्पिपासादिकश्च यत् ॥ ६० ॥

स्थौल्यकार्श्यञ्च नाशश्च दृश्यादृश्यं समृद्धयम् । सर्वशरीरधर्मश्च न जीपस्य न चात्मन
सत्त्वं रजस्तम इति शरीरं त्रिगुणात्मकम् । तच्च नानाप्रकारश्च नियोध कथयामि ।
किञ्चित्सत्त्वातिरिक्तश्चकिञ्चिद्वरजोधिकम् । तमोऽतिरिक्तंकिञ्चिच्चनसमंकुप्रचिन्म
सत्योदयाच्च मुक्तीच्छाकर्मच्छाचरजोगुणात् । तमोगुणाजीवहिंसाकोपोऽहङ्कारपण-
कोपात्कटूक्तिनियतं कटूक्त्यां शत्रुतामयेत् । तयाचाप्रियता सद्यः शत्रुः कः कस्यभूत-
को वा प्रियोऽप्रियः कः किं मित्रं को रिपुर्भवेत् ।

इन्द्रियाणि च रीजानि सर्वत्र शत्रु मित्रयोः ॥ ६६ ॥

प्राणाधिकः प्रियः स्त्रीणां भर्तुः प्राणाधिका प्रिया ।

बभूव शत्रुता सद्यो दुरक्त्या च क्षणाद् द्वयोः ॥ ६७ ॥

यद्गतं तद्गतं सर्वं कामदोषेण वै प्रभो । क्षमापराधं निविलं किं कर्तव्यं पदधुना ॥ ६८ ॥

किं करोमि कं यामोनिभविना कुत्र जन्म मे । तत्रानन्दस्य जायाहंभविष्णामि जगत्त्रये
 हस्तेषमुपया ज्ञापय मीनोभूतो यन्मूय ह । मूर्ध्निमयाप हा मुनिः शोकेन हृत्केशिनः ॥
 स्वामागमो महाजानां जहास्वेतनामहो । स्वोविन्देहो विदग्धानां संप्रसो कात्परहृत्परः
 क्षणेन जेतवो प्राप्य प्राजास्वकुं समुपतः । तत्र योगासने वृत्त्या गकार पायुभाषणम्
 एतन्मिथन्तरे तत्र जगाम ब्राह्मणोऽर्भकः ।

दृष्ट्वा चको रजपाता विवृणितज्जुलमम् ॥७३॥

सहिमः क्षयमपलां प्रत्यक्षं प्रज्ञोऽजया । पपसानिष्ठिगुः शान्तोजानां गेद्विहापरः
 दृष्ट्वा तं सम्मनेनैव दृष्ट्वांसाः प्रजनान ह । पासपानाग तत्रैव पूजयामाग भविष्यः ॥
 उपान ब्रह्मजपदुर्गवा गमे सशक्तिम् । तद्वर्गनाशकिपा ग राये दृष्ट्वां गले मुने ॥
 सिगुर्गं क्षणं स्थित्वा तदुपानविशक्तः । पादूतदुर्गं निर्वोऽर्थं नातिशायविशारदः
 सिगुध्यान ।

दैत्यस्तालघनं गत्वा वभूव गर्दभाकृतिः । तिलोत्तमा चाणपुत्री वभूव समये मुने ॥८८॥

दैत्येन्द्रो विष्णुचक्रेण प्राणांस्त्यक्त्वा सुवाञ्छितम् ।

संप्राप चरणाम्मोजं मुनेरपि सुदुर्लभम् ॥ ८९ ॥

काले तिलोत्तमा भूत्वा जगाम स्वालयं पुनः । कृष्णपीत्रालिङ्गनेन परिपूर्णमनोरथा ॥

इत्येवं कथितं श्रुत्वा श्रीकृष्णाख्यानुत्तमम् ।

पदे पदे सुन्दरञ्च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ९१ ॥

इति श्रीमहर्षिवर्ये महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे तालमक्षणप्रसङ्गे वलिपुत्र-

मोक्षणं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

पञ्चविंशोऽध्यायः

दुर्वाससं प्रति और्वशापः ।

नारद उवाच ।

श्रुतं किमद्भुतं प्रहसन् हरेश्चरितमङ्गलम् । विशेषतस्तथ मुखे ह्यतीव सुमनोहरम् ॥ १ ॥

मृतायां मुनिकन्यायां शापाद् दुर्वाससो मुने ।

समागत्य किं चकार तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥ २ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

सरस्वतीनदीतीरे तपस्यां कुर्वतो मुनेः । पपात धौतमूर्ध्वाच्च धार्यमाणञ्च वायुना ॥ ३ ॥

पृथिव्यां पतितं वल्ले तपस्त्यक्त्वा मुनीश्वरः । ध्यानेन बुबुधे सर्वं कन्यासम्यन्धिसङ्कुटम्

जगाम शोकाविष्टोऽपि तूष्णं जामातुराश्रमम् । सिपेचपृथिवीरेणून् शभ्यन्नयनचिन्दुना

गत्वालयसमीपञ्च विप्रः कातग्मानसः । हे वत्से कन्दलीत्येवमुवाच च पुनः पुनः ॥

श्वशुरस्य स्वरं श्रुत्वा दुर्वासो मयविह्वलः । पद्भिर्भूय शीघ्रञ्च पपात चरणान्मुजे ॥ ५ ॥

प्रणम्य श्वशुरं शोकाद्विललाप भृशं पुनः । संप्राप्य चेतनां शीघ्रमुवाच तं पुरस्थितम् ॥

जामातरं शोकयुक्तं भीतं प्रणतकन्धरम् । महाशोकादध्रुपूर्णरक्तपङ्कजलोचनः ।
कोपात् कम्पितवान् शश्वत् संत्रस्तः स्फुरिताधरः ॥ ६ ॥

भोर्व उवाच ।

अत्र ब्रह्मत्रिवंशं पौत्रस्त्वं जगतीपतेः । स्वल्पदोषे बहुतरः कृतो दण्डस्त्वया कथम्

त्वज्जन्म शङ्करांशेन शिष्यस्तस्य जगद्गुरोः ।

वेदवेदाङ्गविलम्ब सर्वज्ञो गुणघान् स्वयम् ॥ ११ ॥

अनुसूया महासाध्वी कमलांशा तव प्रसू । न जाने केन दोषेण तव यैतादृशी मतिः ॥

गुणघान् जनको यस्य माता गुणघती सती ।

तयोः पुत्रो दयाहीनो गतिः सूक्ष्मा श्रुतेरहो ॥ १३ ॥

मम प्राणाधिका कन्या मुदा त्वयि समर्पिता ।

महागुणान्विता स्वल्पदोषेण परिमिश्रिता ॥ १४ ॥

घाग्दुष्टायाश्च दण्डो हि परित्यागः श्रुतौ श्रुतः ।

त्वया यदि परित्यक्ता पित्रा यत्नेन पालिता ॥ १५ ॥

मदपत्यं स्वल्पदोषे यतो भस्मीकृतं त्वया । पराभवस्तव महान् भविष्यति न संशयः

महतां क्षुद्रजन्तूनां सर्वेषां जीविनां सदा ।

क्षप्ता पाता च शास्ता च भगवान् कर्णानिधिः ॥ १७ ॥

इत्युक्त्वाच मुनिश्रेष्ठो विलप्यच पुनःपुनः । हेवत्से वत्स इत्युक्त्वा जगामस्वालयंरूपा

गते मुनीन्द्रे दुर्वासा विललाप भृशं पुनः । ज्ञानेन विस्मृतः शोको बभूव द्विगुण पुनः ॥

शोकानलो हि कालेन संच्छन्नो ज्ञानभस्मना । बन्धुदर्शनशुष्केन्धदानेन वर्द्धतां पुनः ॥

स्मारं स्मारं प्रियां तत्र विलप्य च पुनः पुनः ।

बोधयित्वा भ्रमं सर्वं तपस्यायां मनो ददौ ॥ २१ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं मुनेः शापस्य कारणम् । बभूव तस्य कालेन दुःसहश्च परामयः ॥

नारद उवाच ।

दुर्वासाः शङ्करस्यांशः शिघ्रतुल्यश्च तेजसा । तेजस्वी को महानेव चकार तत्पराभवम्

नारायण उवाच ।

अम्बरीषो हि राजेन्द्रः सूर्यवंशसमुद्भवः । श्रीकृष्णचरणाम्भोजे तन्मनः सन्ततं मुने ॥
न रात्र्येषु न भार्यासु न पुत्रेषु प्रजासुच । न संसत्सु क्षणं चित्तं पूर्वकर्माजितासु च
ध्यायतेऽहर्निशं धर्मां स्वप्नेहाने हर्षमुदा । महान् जितेन्द्रियःशान्तो विष्णुधृतपरायणः
एकादशीधृततः कृष्णपूजासु तत्परः । सर्वकर्मसु लिप्तश्च कर्त्ता कृष्णार्पितेषु च ॥
सुतीक्ष्णं षोडशारं तच्चक्रं नाम सुदर्शनम् । तेजसा हरितुल्यञ्च सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥
ब्रह्मादिभिः स्तूयमानं पूजितञ्च सुरासुरैः । प्रभुणा रचितं शम्भद्रक्षायै नृपसन्निधौ ॥
एकादशीधृतं कृत्वा द्वादशीदिवसे सति । स्नात्वा विधायपूजाञ्च कालेन विधिपूर्वकम्
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु भोजनार्थमुवास ह ॥ ३० ॥

एतस्मिन्नन्तरे विप्रस्तपस्वी क्षुधितो मुने । दण्डीलम्बो शुक्लवासा विभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम्
जटिलोऽतिकृशस्त्रस्तः शुष्ककण्ठीष्टतालुकः । तत्राजगाममगवान् दुर्घासा नृपतेःपुरः
स च दृष्ट्वा मुनीन्द्रञ्च तमुत्थाय प्रणम्य च । दत्त्वापाद्यञ्च संप्रीत्या स्थण्डिलं सहासनं ददौ
तस्मै दत्त्वाशिपं विप्रः समुवाच सुखासने ।

पप्रच्छ राजा तं भीतः काज्ञा ते वद मामिति ॥ ३४ ॥

नृपस्य वचनं श्रुत्वा प्रोवाच मुनिपुङ्गवः । मां भोजय नृपश्रेष्ठ क्षुधात्तोऽहमुपागतः ॥
किन्त्यद्यमर्पणमन्त्रन्तु जप्त्वा याम्यचिरेण हि ।

क्षणं प्रतीक्ष्यतां राजन्नित्युवाच गतो मुनिः ॥ ३६ ॥

गते विप्रे न राजर्षिश्चिन्तां प्राप दुःख्ययाम् । विलोका विगतप्रायां द्वादशीं भयसंयुतः
एतस्मिन्नन्तरे तत्र समायान्तं गुरुं मुदा । नत्वा निवेद्य सर्वन्तु नृपतिः समुवाच ह ॥
नायातिमुनिशार्दूलप्रयातिद्वादशीतिथिः । सङ्कटेऽस्मिन्विधेयञ्चपि विच्यविधिपूर्वकम्
शीघ्रं वद मुनिश्रेष्ठ मद्रमद्रञ्च मामिति ॥ ३८ ॥

श्रुत्वा नृपोक्तिं त्वयिमुवाच मुनिपुङ्गवः । हितं तथ्यञ्च वेदोक्तं परिणामसुखाद्यहम् ॥
।
वशिष्ट उवाच ।

द्वादश्यां समतीतायां त्रयोदश्यान्तु पारणम् ।

उपवासफलं हत्वा वतिनं हन्ति निश्चितम् ॥ ४१ ॥

ब्रह्महत्यासमं पापं भवेत्तस्य श्रुतो श्रुतम् । भक्ष्यद्रव्यं सुरातुल्यमित्याह कमलोद्भवः ॥

न भोजयित्वा मूढश्चेदतिथिं समुपस्थितम् ।

स त्रस्तः क्षुधितो भुङ्क्ते कुम्भीपाके व्रजेद् ध्रुवम् ॥ ४३ ॥

शतवर्षं तत्र तिष्ठन्नरक्षाण्डालतां व्रजेत् । व्याधियुक्तो दग्धिश्च भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥

अतोऽतिसूक्ष्मं किं द्रूमोऽयुना परमसंकटे । रक्षां कुरु द्वयोर्धर्मं समालोक्य वदामि ते ॥

उपवासफलं रक्ष कृष्णस्य चरणोदकम् । भुक्त्वा शीघ्रमपो राजन्तद्रक्षणमभक्षणम् ॥

इत्युत्तया ब्रह्मणः पुत्रो विरराम महामुने ।

बुभुजे तज्जलं किञ्चित् कृष्णपादाम्बुजं स्मरन् ॥ ४७ ॥

एतस्मिन्नन्तरं ब्रह्मनाजगाम मुनीश्वरः । चिच्छेद कोपात्सर्वहः स्वजटां नृपतेः पुरः ॥

ततः समुत्थितः शीघ्रं पुरुषोऽग्निशिखोपमः । खड्गहस्तो महामीमोराजेन्द्रं हन्तुमुद्यतः ॥ ५० ॥

हरेर्ध्रकञ्च तं दृष्ट्वा सूर्यकोटिसमप्रभम् । चिच्छेद कृत्यापुरुषं ब्राह्मणं छैत्तुमुद्यतम् ॥ ५१ ॥

दृष्ट्वा सुदर्शनं चिम्रो दुद्राव भयविह्वलः । द्विजः पश्चात्तं ददर्श उचलदग्निशिखोपमम् ॥

ब्रह्माण्डकमणं कृत्वा निर्विण्णोऽतिभयाकुलः । तच्च मत्वा जगन्नाथं ब्रह्माणं शरणं ययौ

ब्राहि ब्राह्मीत्येवमुक्त्वा विवेश ब्रह्मणः सभाम् । उत्थाय ब्रह्मा विप्रेन्द्रं पप्रच्छकुशलं मुने

सर्वं स कथयामास वृत्तान्तं मूलतोऽधिकम् ।

श्रुत्वा ब्रह्मा निशश्वास तमुवाच भयाकुलः ॥ ५४ ॥

ब्रह्मोवाच ।

हरिदासं वत्स शर्तुं गतोऽसि कस्य तेजसा । रक्षिता यस्य भगवान्तत्कोहन्ताजगत्त्रये

क्षुद्राणां महताञ्चैव भक्तानां रक्षणाय च । रक्ष सन्ततञ्चकं श्रीहरिर्भक्तवत्सलः ॥ ५६ ॥

यो मूढो वैष्णवं द्वेष्टि विष्णुप्राणसमं द्विजं । तस्य संहारकर्तारं संहर्तुमीश्वरो हरिः ॥

शीघ्रं स्थानान्तरं गच्छ वत्स-त्राणं न बाधुना ।

अन्यथा त्वां मया साधं हनिष्यति सुदर्शनम् ॥ ५८ ॥

किं ब्रह्मलोकं ब्रह्माण्डं दग्धं शुकं क्षणेन यत् ।

तेजसा विष्णुतुल्यं यत् केनान्येन निवार्यते ॥ ५६ ॥

ब्रह्मणो घचनं श्रुत्वा ततो दुद्राव ब्राह्मणः । ब्रह्मो जगाम कैलासं शङ्करं शरणं भिया
कृपानिधानं मां रक्षेत्युवाच शङ्करं भिया । न हि पप्रच्छ कुशलं सर्वज्ञो ब्राह्मणं शिवः
उवाच दीनदीनेशः संहर्ता जगतां क्षणात् । स्थितो भव द्विजश्रेष्ठ मदीयं घचनं शृणु ॥

शङ्कर उवाच ।

पौत्रस्त्यं जगतां धातुरग्रेष्ठ तनयो मुने । वेदज्ञातासि सर्वज्ञ मूर्धनृत्यन्तु कर्म ते ॥
वेदेषु च पुराणेषु चेतिहासेषु सर्वतः । निरूपितो यः सर्वेशस्तं न जानासि मूढघत् ॥

अहं ब्रह्मा च रुद्रश्च आदित्या घसघस्तथा ।

धर्मेन्द्रो च सुराः सर्वे मुनीन्द्रा मनयस्तथा ॥ ६५ ॥

आचिर्भूतास्तिरोभूता यस्य भूभङ्गलीलया ।

तस्य प्राणाधिकां भक्तं हंसि त्वं कस्य तेजसा ॥ ६६ ॥

अहं ब्रह्मा च कमला दुर्गा पाणी च राधिका ।

न हि भक्तात्पराः प्रेम्णा भक्ताश्च सर्वतः प्रियाः ॥ ६७ ॥

शुद्धांश्च महतो भक्तान् शश्वद्रक्षसि यक्षतः । सर्वाङ्तरात्मा भगवान् चक्रेण तु सहेन च
नियुज्य चक्रं दुर्घाट्यं स्वात्मतुल्यञ्च तेजसा । तथापि न प्रतोतिश्च स्वयगच्छतिरक्षितुम्
स्वकीयगुणनाम्नाञ्च ध्रुवणादतिसंभ्रमः । भक्तसङ्गे भ्रमत्येष छायेष सन्ततं हरिः ॥

फान्ता प्राणाधिका शश्वन्नहि कोऽपि ततोधिकः ।

भक्तान् द्वेष्टि स्वयं सा चेतूर्णं त्यज्यति तां प्रभुः ॥ ७१ ॥

सर्वेषाञ्च प्रिया चित्राः स्वशरीरादपि द्विज । ब्राह्मणेभ्यः प्रिया भक्ताः प्राणेभ्यश्च हरेरपि ॥

ईश्वरस्य प्रियः को चाप्रियः को वा जगत्प्रिये ।

यः शिष्टस्तं भजेच्छश्वद् ध्यायते सततं सदा ॥ ७३ ॥

महति प्रलये प्रलम् ब्रह्माण्डोघे जलप्लुते । न तत्र नाशो भक्तानां सर्वेषाञ्च भविष्यति
मज्ज ब्राह्मण गोविन्दं स्मर तस्य पद्मभ्युजम् । सर्वापदेशोपनिश्यन्ति धीहरेः स्मरणादपि
मज्ज शीघ्रञ्च चैकुण्ठं चैकुण्ठः शरणं तव । दास्यत्येषाभयं तुभ्य कुरुणासागरो विभुः ॥

एतस्मिन्नन्तरे व्याप्तं कैलासं चक्रतेजसा । यथा च सूर्यकिरणैः सुप्रदीप्तं महीतलम् ॥
 दग्धा ज्वालाकरालैश्च सर्वे कैलासवासिनः । त्राहि त्राहीत्येवमुक्त्वा शङ्करं शरणंययुः
 दृष्ट्वा चक्रं दुर्विपहं शङ्करः करुणानिधिः । पार्वत्या सह संप्रीत्या ब्राह्मणायाशिपं ददौ
 तेजः सत्यं तपः सत्यं यदि चेच्चिरसञ्चितम् ।
 कृतापराधो भीतश्च द्विजो भवतु विज्वरः ॥ ८० ॥

पार्वत्युवाच ।

यत् प्रभोर्मम पुण्येषु ब्राह्मणः शरणागतः ।

ममाशिषा महामीत्या शीघ्रं भवतु विज्वरः ॥ ८१ ॥

इत्येवमुक्त्वा कृपया विरराम शिवा शिवः । मुनिः प्रणम्य देवेशं वैकुण्ठं शरणं ययौ ॥
 गत्वा वैकुण्ठभवनं मनोयायी मुनीश्वरः । दृष्ट्वा सुदर्शनं पञ्चाद्विवेशान्तःपुरं हरैः ॥
 ददर्श श्रीहरिं विप्रो रत्नसिंहासनस्थितम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ॥ ८४ ॥

श्यामं चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ।

रत्नालङ्कारशोभाढ्यं रत्नमालाविभूषितम् ॥ ८५ ॥

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् । सद्गुणसाररचितं किरीटोज्ज्वलदोन्नरम् ॥ ८६ ॥
 पार्यदप्रवरैर्न्द्रेण सैवितं श्वेतचामरैः । पद्मासेवितपादाढ्यं सरस्वत्या स्तुतं पुरः ॥
 सुनन्दनदकुमुदप्रचण्डादिभिरावृतम् । गुणानुवादं गायन्तं तन्त्रैः पश्यन्तमीप्सितम् ॥
 एवम्भूतं प्रभुं दृष्ट्वा दण्डयत्प्रणनाम च । तुष्टाश्च सामवेदोक्तस्तोत्रेण परमेश्वरम् ॥ ८९ ॥

दुर्वासा उवाच ।

त्राहि मां कमलाकान्त त्राहि मां करुणानिधे ।

दीनबन्धोऽतिदीनेश करुणासागर प्रभो ॥ ९० ॥

वेदवेदाङ्गसंस्पृष्टविधानुश्च स्वयं विधे । मृत्योर्मृत्युः कालकाल त्राहिमां सङ्कटार्णवे
 संदारकर्तुः संहारः सर्वेशः सर्वकारण । महाविष्णुतरोर्योज रक्ष मां । भवसागरे ॥ ९२ ॥
 शरणागतशोकार्तमयत्राणपरायण । भगवन्ध्वं मां भीतं नारायण नमोस्तु ते ॥ ९३ ॥

वेदेष्याद्यच्च यद्वस्तु वेदाः स्तोतुं न च क्षमाः ।

सरस्वती जड़ीभूता किं स्तुवन्ति विपश्चितः ॥ ६४ ॥

शेषः सहस्रवक्त्रेण यं स्तोतुं जडतां व्रजेत् । पञ्चवक्त्रो जड़ीभूतो जड़ीभूतश्चतुर्मुखः
श्रुतयः स्मृतिकर्तारो घाणी चेत् स्तोतुमक्षमा ।

कोऽहं विप्रश्च वेदज्ञः शिष्यः किं स्तौमि मानव ॥ ६६ ॥

मनूनाञ्च महेन्द्राणामष्टाविंशतिमे गते । दिवानिशं यस्य विधेरष्टोत्तरशतायुषः ॥ ६७ ॥
तत्पपातो भवेद्यस्य चक्षुर्गमोलनेन च । तमनिर्वचनीयञ्च किं स्तौमि पाहिमां प्रभौ ॥

इत्येवं स्तवनं कृत्वा पपात चरणाम्बुजे । नयनाम्बुजनीरेण सियेच भयविह्वलः ॥ ६८ ॥
दुर्वाससा कृतंस्तोत्रं हरेश्च परमात्मनः । पुण्यदं सामयेदोक्तं जगन्मङ्गलनतामकम् ॥

यः पठेत्संकटप्रस्तो भक्तियुक्तश्च संयुतः । नारायणस्तं रूपया शीघ्रमागत्य रक्षति ॥
राजद्वारे श्मशाने च कारागारे भयाकुले । शत्रुग्रस्ते दस्युभीते हिंस्रजन्तुसमन्विते ॥

वेष्टिते राजसैव्येन मग्नयोते महार्णवे । स्तोत्रस्मरणमात्रेण मुच्यते तात्र संशयः ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे दुर्वाससारूढं श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम्
नारायण उवाच ।

मुनेश्च स्तवनं ध्रुत्वा भगवान् भक्तवत्सलः । प्रहस्योवाच मधुरं पीयूषवृष्टिचमुदा ॥
श्रीभगवानुवाच ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रन्ते भविष्यति वरेण मे । किन्तु मे घवनं नित्यं शृणुसत्यं सुखायहम्
अन्धेषाञ्च भयेज्ज्ञानं ध्रुत्वा शास्त्रं सतां मुपात् ।

स्वमूर्तिमन्ति शास्त्राणि भवेत् सन्तश्चरन्ति हि ॥ १०६ ॥

कर्मवेदविरुद्धञ्च सर्वेषामतिगर्हितम् । करोति विद्वांश्चेत् श्रुत्वा सच जीवन्मृताधिकः
पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु ब्राह्मण । वैष्णवानाञ्च महिमा श्रुतः सर्वेश्च सर्वतः ॥

अहं प्राणा वैष्णवानां ममप्राणाश्च वैष्णवाः । तानेव द्वेष्टियो मूढो ममासूनाञ्च हिंसकः
पुत्रान् पीत्रान् कलत्राश्च राज्यं लक्ष्मीं विहाय च ।

ध्यायन्ते सततं ये मां फो मे तेभ्यः परः प्रियः ॥ ११० ॥

परा भक्ता न मे प्राणा न च लक्ष्मीर्न शत्रुरः । न भारती न च ब्रह्मा न दुर्गान गणेश्वरः

न ब्राह्मणो न वेदाश्च न वेदजननी परा । न गोपी नच गोपाला न राधा प्राणतः प्रियाः ।
 इत्येवं कथितं सर्वसत्यं सारञ्च वास्तवम् । न प्रशंसापरं तेषां तेच प्राणाधिकाः प्रियाः
 मां द्विपन्तिच ये मूढाज्ञानहीनाश्च घञ्जिताः । आत्मानं येन जानन्ति तेयान्तिनिरयश्चिरम्
 ये द्विपन्तिच मद्भक्तान् प्राणानामधिकं प्रियान् । तेषां शास्तात्वहं तूर्णं परत्र निरयश्चिरम्
 प्रभावोऽहञ्च सर्वेषामीश्वरः परिपालकः । नचन्यापीत्यतन्त्रोऽहं भक्ताधीनो दिधानिशम्
 गोलोके वाथ वैकुण्ठे द्विभुजञ्च चतुर्भुजम् । रूपमात्रमिदं शश्वत्प्राणा मे भक्तसन्निधौ
 यदुक्तं भक्तदत्तञ्च भक्षणीयञ्च तन्मम । अभक्ष्यं द्रव्यमन्येन दत्तञ्चेदमृतोपमम् ॥११८॥
 अम्बरीषं नृपश्रेष्ठं निरीहं तमर्हिसकम् । कथं हंसि दयाशीलं सर्वप्राणिहिते रतम् ॥
 दयां कुर्वन्ति ये सन्तः सततं सर्वजन्तुषु । तान् द्विपन्तिच ये मूढास्तेषां हन्ताहमेवच ।
 भक्तानां हिसक्तं शत्रुमहं रक्षितुमक्षमः । अम्बरीपालयं गच्छ स त्थां रक्षितुमीश्वरः ॥

नारायण उवाच ।

इदं वाक्पञ्च तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणो भयविह्वलः । विपण्णमानसस्तस्यौस्मरन् कृष्णपदाम्बुजम्
 एतस्मिन्नन्तरं ब्रह्मा भवान्या सह शङ्करः । धर्मश्चेन्द्रादयो देवा आजग्मुर्मुनिपुङ्गवाः ॥
 प्रजम्य तुष्टुषुः सर्वे परमात्मानमीश्वरम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गा भक्तिनम्रात्मकन्धराः ॥

ब्रह्मीवाच ।

स्वात्मस्वरूपं निर्लिप्तं भक्तानुग्रहकातरं । भक्तापराधजनकं रक्ष ब्राह्मणपुङ्गवम् ॥१२५॥

महादेव उवाच ।

दीनकन्धो जगन्नाथ नायं विप्रो जगद्बहिः । कृतापराधं दीनञ्च पाहीमं शरणागतम् ॥१२६॥
 पार्वत्युवाच ।

भक्तः पदाम्बरीपस्ते न द्विजा न सुरा वयम् । सर्वेषामीश्वरस्त्वञ्च रक्ष चिप्रं कृतागतम्
 धर्म उवाच ।

सर्वेषां जनकस्त्वञ्च पाता दण्डकदीश्वरः । शिशुहेतोः शिशुं हन्ति पितेत्येवं कुतः प्रभो
 इन्द्र उवाच ।

कृपया समता शश्वत्सर्वेषु जीविषु प्रभो । अपराधफलं भूतमधुना पातुमर्हसि ॥१२६॥

पञ्चविंशोऽध्यायः] * दुर्वाससो मोक्षणार्थं सर्वदेवानां भगवत्स्तुतिकरणम् * ७१

रुद्र उवाच ।

शान्तिं कर्तुं समुचितमुचितं साम्प्रतं कुर्व । कृतकुण्डस्य मूलस्य पालनं कर्तुमर्हसि ।

दिवपाल उवाच

कृतापराधं विप्रञ्च छेत्तुमर्हसि न श्रुतौ । अपराधशमं कृत्वा सदा पाति सदीश्वरः ।

ग्रहा ऊचुः ।

यो द्वेष्टि वैष्णवं मूढस्तं रुष्टाः सर्वदेवताः । पीडां कुर्मो बयं शश्वत्पश्चात्स्वं पातुमर्हसि

मुनय ऊचुः ।

नाथ विप्रे पराभूते सर्वे जीवन्मृता वयम् । दण्डं विधातुमेकस्य भवेद्भज्जा स्वजाविष्य ॥

अभिरुवाच ।

त्वयैव दत्तः पुत्रो मे क्रोधी त्वत्सेवकः सदा ।

न कं विभेति त्रैलोक्ये तेजस्वी तेजसा तव ॥ १३४ ॥

लक्ष्मीरुवाच ।

क्षमापराधं भगवन् ब्राह्मणं शरणागतम् । स्तुवन्ति देवा विप्राश्च न विप्रं हन्तुमर्हसि ॥

सरस्वत्युवाच ।

बोधयिष्यामि देवानां जनकं कामर्हश्रुतिम् । भगवान्स्वामी सर्वेषां सर्वाश्च पातुमर्हसि
पार्षदा ऊचुः ।

भयतः स्मृतिमात्रेण सर्वेषां सर्वमङ्गलम् । भवेत्सर्वापदो यान्ति पाहीमं शरणागतम् ॥

नर्चका ऊचुः ।

दारिद्र्यमञ्जनं वयं मिश्रकास्तव सन्ततम् । मिश्रां नो साम्प्रतं देहिपरित्राणं द्विजस्य च
एतेषां स्तवनं श्रुत्वा प्रभुः शरणघटसलः । प्रहस्योवाच वचनं सर्वसन्तोषकारणम् ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सर्वे शृणुत मद्वाक्यं नीतियुक्तं सुखावहम् । विप्ररक्षां करिष्यामि युष्माकमाप्तयाधुवम्
किं त्वयं यातु वैकुण्ठादम्बरीपालयं पुनः । करोतु पारणं तत्र राक्षः सुप्रीतये मुनिः ॥
विप्रस्तस्यातिथिभूत्वा निर्दोषं शम्भुमुद्यतः । सुदर्शनन्तु तं रक्ष्यं ब्राह्मणं हन्तुमुद्यतम् ।

पूर्णं वर्षमयं भीतो भ्रमत्येव भुवं मुदा । उपवासी स राजेन्द्रः सस्त्रीकश्च शुनान्वितः ॥
ततोऽहमुपवासी च भक्तोपवासकारणात् । स्तनान्धं बालकं दृष्ट्वा न भुङ्क्ते जननीयथा
ममाशिषा मुनिश्रेष्ठः सद्यो भवतु विज्वरः । पथि तत्रास्य हिंसाञ्च मच्चक्रं न करिष्यति
अहमेवाद्य निश्चिन्तः सुखं भोक्ष्यामि निश्चितम् ।

भक्तदत्तञ्च यद्वस्तु पीत्वा कृत्या सुधोषमम् ॥ १४६ ॥

लक्ष्मीदत्तञ्च यद्वद्रव्यं न चाहं भोक्तुमीश्वरः । विना भक्तप्रदानेन न तृप्तिं दातुमीश्वरः ॥
हे मुनीन्द्र महाप्राज्ञ गच्छ घटस नृपालयम् । सर्वे देवाश्च देव्यश्च गच्छन्तु मुनयो गृहम्
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तूर्णं ययौ स्वान्त पुरं मुदा । ययुः सर्वे मुदा युक्ताः प्रणम्य जगदीश्वरम्
ब्राह्मणश्च मनोयायी जगाम हरिमन्दिरम् । सुदर्शनञ्च तच्चक्रं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥
उपोष्य घटस्तरं राजा शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । सिंहासनस्थो ददर्श पुरतो मुनिपुङ्गवम् ॥

उत्थाय सम्भ्रमात् सद्यः प्रणम्य सादरं मुदा ।

भोजयित्वा तु मिष्टान्नं ब्राह्मणं वुभुजे स्वयम् ॥ १५२ ॥

भुक्त्वा तुष्टो द्विजश्रेष्ठो युयुजे परमाशिवम् । जगाम स्वालयं तूर्णं प्रशशंस पुन पुनः ॥

उवाच पथि विप्रेन्द्रो मनसा विस्मयाकुलः ॥ १५३ ॥

महात्म्यं दुर्लभमहो वैष्णवानामिति द्विजः ॥ १५४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

मुनिभोक्षणप्रस्तावो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।

पञ्चविंशोऽध्यायः

एकादशीव्रतविधानवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

द्वादशीलुङ्घने दोषः श्रुतस्त्वन्मुखतो मुने । परमबो मुनेश्चैव नृप चाणं हरेरहो ॥ १ ॥

अधुना श्रोतुमिच्छामिसर्वेषामीप्सितञ्च मे । एकादशीव्रतस्यास्य विधानं वदन्निश्चितम् ।

अहो धृतो धृतं किञ्चिन्मतमेदान्न निश्चितम् ।

धृतीनां कारणमुखाच्छ्रोतुं कीतूहलं मम ॥ ३ ॥

नारायण उवाच ।

एकादशीव्रतमिदं देवानामपि दुर्लभम् । श्रीकृष्णप्रीतिजनकं तपः श्रष्टं तपस्विनाम् ॥

देवानाञ्च यथा कृष्णो देवीनां प्रकृतिर्यथा । माश्रमाणां यथाविप्रो वैष्णवानां यथाशिवः

यथा गणेशः पूज्यानां यथा पाणी विपश्चिताम् ।

शास्त्राणाञ्च यथा वेदास्तीर्थानां जाह्नवी यथा ॥ ६ ॥

तैजसानां यथा स्वर्णं प्राणिनां वैष्णवो यथा ।

धनानाञ्च यथा विद्या सङ्गिनाञ्च यथा प्रिया ॥ ७ ॥

प्रमथानां यथा वरः श्रेयसाञ्च यथा मतिः । आत्मा यथेन्द्रियाणाञ्च चञ्चलानां यथा मनः

गुरुस्त्रीणां यथा माता बन्धूनाञ्च यथा पतिः । बलिष्ठानां यथा दैवं कालः कलयतां यथा

सुशीलञ्चैव मित्राणां शत्रूणां स्वयथा मुने ।

यथा कीर्तिः कीर्तिमतां गृहिणाञ्च यथा गृहम् ॥ १० ॥

यथा खलो हिंसकानां दुष्टानाञ्चैव पुंश्चली । तेजस्विनां ग्रहेशश्च सहिष्णुनां यथा क्षितिः

यथाऽमृतं भक्षणाणां दाहकानां यथानलः । यथा धीर्धनदातॄणां सतीनाञ्च यथा सती ॥

प्रजेशानां यथा ब्रह्मा सरितां सागरो यथा । यथा साम धृतीनाञ्च गायत्रीहृन्दां यथा

वृक्षाणाञ्च यथाऽश्वत्थः पुष्पाणां तुलसी यथा ।

यथा मार्गो हि मासानामृतूनाञ्च यथा मधुः ॥ १४ ॥

आदित्यानां यथासूर्यो रुद्राणां शङ्करो यथा । यथा भोष्मो वसूनाञ्च वर्षाणां भारतं यथा

देवर्षीणां यथा त्वष्टा ब्रह्मर्षीणां यथा भृगुः । नृपाणाञ्च यथा रामः सिद्धानां कपित्थो यथा

यथा सवत्सुमारश्च योगिनां ज्ञानि नां वरः । पेरवतो गजेन्द्राणां पशूनां शरभो यथा

यथा हिमाद्रिः शैलानां मणीनां कीस्तुभो यथा ।

सरस्वती नदीनाञ्च यथा पुण्यस्वरूपिणी ॥ १८ ॥

गन्धर्वाणां चित्ररथो यथा श्रेष्ठश्च नारद । यथा कुबेरो यक्षाणां सुमाली रक्षसां यथा
यथा श्रेष्ठा च नारीणां शतरूपा घरा परा । मनूनाञ्च तथा श्रेष्ठः स्वयं स्थायम्भुवोमनुः
सुन्दरीणां यथा रश्मा यथा माया च मायिनाम् ।

एकादशीव्रतमिदं व्रतानाञ्च वरं तथा ॥ २१ ॥

कर्त्तव्यञ्च चतुर्णाञ्च घर्णानां नित्यमेव च । यत्तानां वैष्णवानाञ्च ब्राह्मणानां विशेषतः
सत्यं सर्वाणि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च । सत्येवोदनमाश्रित्य श्रीकृष्णव्रतघरासरे ॥

भुक्तवैतानि च पापानि यो भुङ्क्ते तत्र मन्धीः ।

इहातिपातकी सोऽपि यात्यन्ते नरकं ध्रुवम् ॥ २४ ॥

एकादशीप्रमाणानि युगसंख्याकृतानि च ।

कुम्भीपाके महाघोरे स्थित्वा चाण्डालतां व्रजेत् ॥ २५ ॥

गलितव्याधियुक्तश्च ततः सप्तसु जन्मसु । पश्चाद्भुको भवेत्पापादित्याह कमलोद्भवः ॥

इत्येवं कथितं ब्रह्मन् यो दोषस्तत्र भोजने । द्वादशीलङ्घने दोषो मयोक्तश्च ध्रुतः पुरा ॥

दशमीलङ्घने दोषं निबोध कथयामि ते । पुराध्रुतो धर्मवक्त्राङ्गेदसारोद्भूतोऽपि च ॥ २८ ॥

दशमी यः कलामात्रां मूढो ज्ञानेन लङ्घयेत् ।

याति श्रीस्तद्गृहान्तर्णं शापं दत्त्वा तु दारुणम् ॥ २९ ॥

इह तद्वंशहानिश्च यशोहानिर्भवेद् ध्रुवम् । अन्ते मन्वन्तरशतमन्वकूपे वसेद् द्विज ॥

दशम्येकादशी वापि द्वादशी यत्र वासरे । तत्र भुक्त्वा परदिने उपोष्य व्रतमाचरेत् ॥

द्वादश्याञ्च व्रतं कृत्वा त्रयोदश्याञ्च पारणम् । द्वादशीलङ्घने दोषो व्रतिनां तत्र चिद्यते

सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते किञ्चिदेव सा । तत्रोपोष्या द्वितीया च परा चेद्यदि वर्धते

पष्टिदण्डात्मिका यत्र प्रभाते च तिथित्रयम् । कुर्वन्तिगृहिणः पूर्वञ्चैव यत्याव्यस्तथा

परत्रानशनं कृत्वा नित्यकृत्यं समाचरेत् । व्रते जागरणं सर्वं पूर्वत्रैवाचरेद् ध्रुवः ॥ ३५ ॥

तत्पूर्वदिवसे नित्यं व्रतं कृत्वा परेऽहनि । एकादश्यां व्यतीतायां पारणन्तु समाचरेत्

वैष्णवानां यतीनाञ्च विधवानां तथैव च ।

सर्वाः समा उपोष्यास्ता भिक्षूणां ब्रह्मचारिणाम् ॥ ३७ ॥

शुक्लमेव तु कुर्वन्ति गृहिणो वैष्णवेतराः । न कृष्णालङ्घने दोषस्तेषां वेदेषु नायद् ॥

शयनी बोधनी मध्ये या कृष्णैकादशी भवेत् ।

सैद्योपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन ॥ ३६ ॥

इत्येवं कथितो ब्रह्मनिर्णयो यः श्रुतो श्रुतः । व्रतस्यास्य विधानञ्च नियोधकथयामिते
कृत्या हविष्यं पूर्वाह्णे न च भुङ्क्ते पुनर्जलम् । एकाकी कुशशय्यायां नक्तंशयनमाचरेत्

ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय प्रातःकृत्यं विधाय च ।

नित्यकृत्यं विधायाथ ततः स्नानं समाचरेत् ॥ ४२ ॥

व्रतोपवासं सङ्कल्प्य श्रीकृष्णप्रीतिपूर्वकम् ।

कृत्या सन्ध्यातर्पणञ्च विधायाह्निकमाचरेत् ॥ ४३ ॥

नित्यपूजादिने कृत्या व्रतद्रव्यं समाहरेत् । कृत्या पोद्गशोपचारं प्रहृष्टं विधियोधितः
आसनं घसनं पाद्यमर्घ्यं पुष्पाञ्जुलेपनम् । धूपं दीपञ्च नैवेद्यं यक्षसूत्रञ्च भूषणम् ॥ ४५ ॥
गन्धस्नानीयताम्यूलं मधुपर्कं पुनर्जलम् । पतान्याहृत्य दिवसे व्रतं नक्तं समाचरेत् ॥

उपविश्यासने पूतो धृत्वा र्धोत्तेयवाससी ।

आचम्य श्रीहरिं नत्वा स्वतिपासनमाचरेत् ॥ ४७ ॥

आरोप्य मङ्गलघटं धान्याधारे शुभे क्षणे । फलशाय्याचन्दनार्कं वेदोक्तं मुनिभिर्मुदा ॥
वेदपट्कं समावाह्य पृथक् धान्यैः समाचरेत् । पूजां पञ्चोपचारैश्च प्रहृष्टैश्च पिचक्षणः
गणेश्वरं दिनकरं बह्विं विष्णुं शिवं शियाम् ।

सम्पूज्यैतान् प्रणम्याथ व्रतं कुर्याद्भरि स्मरन् ॥ ५० ॥

नाराध्य वेदपट्कञ्च यदि कर्म समाचरेत् ।

नित्यं नैमित्तिकञ्चापि तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥ ५२ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं व्रताङ्गभूतमेव च । कण्वशास्त्रोक्तमिष्टञ्च व्रतं गृणु महामुने ॥ ५२ ॥
सामवेदोक्तध्यानेन ध्यात्वा कृष्णं परात्परम् ।

पुष्पञ्च शिरसि न्यस्य पुनर्ध्यानं समाचरेत् ॥ ५३ ॥

ध्यानं गृणु निगूढञ्च सर्वेषामपि वाञ्छितम् । न प्रकाश्यमभक्ताय भक्तप्राणाधिकं परम्

नवीननीरदो यद्वत् श्यामसुन्दरविग्रहम् । शरत्पार्वणचन्द्राभाविनिन्द्यास्यमनुत्तमम् ॥
 शरत्सूर्योदयादजानां प्रभामोचनलोचनम् । स्वाङ्गसौन्दर्यशोभाभी रत्नभूषणभूषितम्
 गोपीलोचनकोणैश्च प्रसन्नैरतिसूचकैः । शश्वन्निरीक्ष्यमाणं तत्प्राणैरिव विनिर्मितम्
 रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम् । राधाषक्त्रशरच्छन्द्रसुधापानचकोरकम् ॥

कौस्तुभेन मणीन्ध्रेण चक्षुःस्थलसमुज्ज्वलम् ।

पारिजातप्रसूनानां मालाजालेर्विराजितम् ॥ ५६ ॥

सद्गुणसारनिर्माणं किरीटोज्ज्वलशेखरम् । विनोदमुरलीहस्तम्यस्तं पूज्यं सुरासुरैः ॥ ६० ॥
 ध्यानासाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मादीनाञ्च चन्दितम् । कारणं कारणानां यं तमीश्वरमहंभजे ॥
 ध्यात्वाऽनेन तमावाह्य चोपहाराणि पोडश । कृत्वा संपूजयेद्वक्त्या मन्त्रैरेभिश्च नारद ॥
 आसनं स्वर्णनिर्माणं रत्नसारपरिच्छिदम् । नानावित्रविचित्रालयं गृह्यतां परमेश्वर ॥
 बह्विप्रक्षालितं वस्त्रं निर्मितं विश्वकर्मणा । मूल्यानिर्वचनीयञ्च गृह्यतां राधिकापते ॥
 पादप्रक्षालनार्हञ्च सुवर्णपात्रसंस्थितम् । सुवासितं शीतलञ्च गृह्यतां करुणानिधे ॥ ६५ ॥
 इदमर्घ्यं पवित्रञ्च शङ्खतोयसमन्वितम् । पुष्पं दूर्वाचन्दनाकं गृह्यतां भक्तवत्सल ॥
 सुवासितं शुक्लपुष्पं चन्दनागुरुसंयुतम् । सद्यस्ते प्रीतिजनकं गृह्यतां सर्वकारण ॥ ६७ ॥
 चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमोशीरमुत्तमम् । सर्वेप्सितमिदं कृष्ण गृह्यतामनुलेपनम् ॥ ६८ ॥
 रसो वृक्षविशेषस्य नानाद्रव्यसमन्वितः । सुगन्धियुक्तः सुखदो धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्
 दिवानिशं सुप्रदीप्तो रत्नसारविनिर्मितः । पुनर्ध्वान्तनाशवीजं दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
 नानाविधानि द्रव्याणि स्वादूनि सुरभीणि च ।

चोप्यादीनि पवित्राणि स्वात्माराम प्रगृह्यताम् ॥ ७१ ॥

सावित्रीप्रन्धिसंयुक्तं स्वर्णतन्तुविनिर्मितम् । गृह्यता देवदेवेश रचितं चारुकारुणा ॥
 अमूल्यरत्नरचितं सर्वावयवभूषणम् । त्विषा जाज्वल्यमानञ्च गृह्यतां नन्दनन्दन ॥ ७३ ॥
 प्रधानो वर्णनीयश्च सर्वमङ्गलकर्मणि । प्रगृह्यतां दीनबन्धो गन्धोऽयं मङ्गलप्रदः ॥ ७४ ॥
 धात्रीश्रीफलपत्रोत्थं विष्णुनैलमनोहरम् । वाङ्मृतं सर्वलोकानां भगवन् प्रतिगृह्यताम्
 वाञ्छनीयञ्च सर्वेषां कर्पूरादिसुवासितम् । मया निवेदितं नाथ ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्

सर्वेषां प्रीतिजनकं सुमिष्टं मधुरं मधु । सद्गुणसारपात्रस्थं गोपीकान्तं प्रगृह्यताम् ॥
निर्मलं जाह्नवीतोयं सुपवित्रं सुवासितम् । पुनराचमनीयञ्च गृह्यतां मधुसूदन ॥ ७८ ॥

इति षोडशोपचारान् दत्त्वा भक्तो मुदान्वितः ।

मन्त्रेणानेन पुष्पाणि माह्वं दत्त्वा प्रयत्नतः ॥ ७९ ॥

नानाप्रकारपुष्पैश्च ग्रथितं शुरुतन्तुना । प्रवरं भूषणानाञ्च माह्वञ्च गृह्यतां प्रभो ॥ ८० ॥

इति पुष्पाञ्जलिं दद्यान्मूलमन्त्रेण च प्रती । कुर्व्यात्तत्स्तवनं भक्त्या पुटान्नलियुतः सुधीः
भक्त उवाच ।

हे कृष्ण राधिकानाथ कठणासागर प्रभो । संसारसागरे घोरे मामुद्धर भयानके ॥

शतजन्मरुतायासादुद्विग्नस्य मम प्रभो । स्वकर्मपाशनिगडैर्यदस्य मोक्षणं कुरु ॥ ८१ ॥

प्रणतं पादपद्मे ते पश्य मां शरणागतम् । भयपाशभयाद्भीतं पाहि त्वं शरणागतम् ॥

भक्तिहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च वेदतः । वस्तु मन्त्रविहीनं यत्तत् सम्पूर्णं कुरु प्रभो

वेदोक्तविहिताज्ञानात् स्याद्गृहीते च कर्मणि । त्वन्नामोच्चारणेनैव सर्वं पूर्णं भवेद्धरं

इति स्तुत्वा तं प्रणम्य दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ।

महोत्सवं विधायाथ कुर्व्याज्जागरणं प्रती ॥ ८२ ॥

ष्टत्वा प्रतोपचासञ्च यदि निद्रां निषेधते । पुनरेव जलं शुद्धं प्रतापफलभाभयेत् ॥

यत्नेन च हविष्याश्रं सरुदेव समाचरेत् । मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र श्रीकृष्णचरणं स्मरन् ॥

अन्नं हि प्राणिनां प्राणा ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।

देहि मे विष्णुरूपं त्वं प्रतोपचासथोः फलम् ॥ ८३ ॥

एवं यः कुरुते भक्त्या मारुते व्रतमुत्तमम् । पूर्वान् सप्तपरान् सप्तस्यात्मानमुद्धरेद्भुञ्जम्

मातरं भ्रातरञ्चैव श्वश्रूञ्च श्वशुरं सुताम् । जामातरं तथा भृत्यमुद्धरेन्निधितं नरः ॥

इत्येवं कथितं विप्र श्रीकृष्णचरितव्रतम् । सुगदं मोक्षदं सारमपरं कथयामि ते ॥ ८४ ॥

इति ध्याव्रतवैचर्त्तं महापुराणे नारायणनारदसंचादे श्रीकृष्णव्रतमण्डे एकादशीवत-

निरूपणं नाम पद्मिनीशोऽध्यायः ।

सप्तविंशोऽध्यायः

गोपीवस्त्रापहरणे जयदुर्गाव्रतकथनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

पृणु नारद वक्ष्यामि श्रीकृष्णचरितं पुनः । गोपीनां वस्त्रहरणं वरदानं मनोपितम् ॥१॥

हेमन्ते प्रथमे मासि गोपिकाः काममोहिताः ।

कृत्वा हविष्यं भक्त्या च यावन्मासं सुसंयुताः ॥ २ ॥

स्नात्वा सूर्यसुतातीरे पार्वती घालुकामयीम् ।

कृत्वावाह्यं च मन्त्रेण पूजां कुर्वन्ति नित्यशः ॥ ३ ॥

व्रन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च मनोहरैः । नानाप्रकारपुष्पैश्च माल्यैर्वहुविधैरपि ॥ ४ ॥

सूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्वस्त्रैर्नानाफलैर्मुने । मणिमुक्ताप्रवालैश्च वाद्यैर्नानाविधैरपि ॥ ५ ॥

इ देवि जगतां मातः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि । नन्दगोपसुतं कान्तमस्मभ्यं देहि सुव्रते

मन्त्रणानेन देवेशीपरिहारं विधाय च । ततः कृत्वा तु संकल्पं पूजयेन्मूलमन्त्रतः ॥७॥

मन्त्रस्तु सामवेदोक्तोऽयातयामः सवीजकः ।

ओं श्रीदुर्गायै सर्वविघ्नविनाशिन्यै नम इति ॥ ८ ॥

पुष्पं माल्यञ्च नैवेद्यं धूपं दीपं तथांशुकम् ।

मन्त्रेणानेन तां भक्त्या वदुः सर्वा मुदान्विताः ॥ ९ ॥

खालमालया भक्त्या चेमं मन्त्रं सहस्रधा । जपं कृत्वाच स्तुत्वाच प्रणमः शिरसाभुवि

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये सर्वकामप्रदे शिवे । देहि मे वाञ्छितं देवि नमस्ते शङ्करप्रिये ॥११॥

इत्युक्त्वा च नमस्कारं कृत्वा दत्त्वा च दक्षिणाम् ।

नैवेद्यानि च सर्वाणि ब्राह्मणेभ्यो ययुर्गृहम् ॥ १२ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

स्तवराजं शृणु मुने तुष्टुर्बुधेन पार्वतीम् ।

भक्त्या गोपाङ्गनाः सर्वाः सर्वाभीष्टफलप्रदाम् ॥ १३ ॥

जगत्प्रेक्षार्णवे घोरे चन्द्रसूर्यविघजिते । अञ्जनाकारतोयेन संप्लुते च चराचरे ॥१४॥
दत्तं पुरा ब्रह्मणे च हरिणा जलशायिना । तस्मै दत्त्वा सर्वमिदं निद्रां मेजे जगत्पतिः
नाभिपद्मे जगत्प्राप्ता मधुना कैटभेन च । पीडितः परितुष्टाय मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥१५॥

ओं नमो जयदुर्गायै ।

ब्रह्मोवाच ।

दुर्गे शिवेऽभये माये नारायणि सनातनि । जये मे मङ्गलं देहि नमस्ते सर्वमङ्गले ॥१७॥
दैत्यनाशार्थवचनो वफारः परिकीर्तितः । उकारो विघ्ननाशार्थवाचको वेदसम्मतः ॥
रेफो रोगघ्नवचनो गश्च पापघ्नवाचकः । भयशत्रुघ्नवचनश्चाकारः परिकीर्तितः ॥१६॥

स्मृत्युकिस्मरणाद्यस्यापते नश्यन्ति निश्चितम् ।

भतो दुर्गा हरेः शक्तिर्हरिणा परिकीर्तिता ॥ २० ॥

विपत्तिवाचको दुर्गश्चाकारो नाशवाचकः ।

दुर्गं नश्यति या नित्यं सा दुर्गा परिकीर्तिता ॥ २१ ॥

दुर्गो दैत्येन्द्रघ्नोऽप्याकारो नाशवाचकः । तं ननाश पुरा तेन दुर्धेदुर्गा प्रकीर्तिता ॥
शश्च फल्याणवचन इकारोत्कृष्टवाचकः । समूहघातकश्चैव वाफारो दातृवाचकः ॥
श्रेयःसंघोत्कृष्टद्वारी शिवा तेन प्रकीर्तिता । शिवराशिभूमूर्तिमती शिवा तेन प्रकीर्तिता ॥

शिवो हि मोक्षवचनश्चाकारो दातृवाचकः ।

स्वयं निर्वाणद्वारी या सा शिवा परिकीर्तिता ॥ २५ ॥

अभयो भयनाशोक्तश्चाकारो दातृवाचकः । प्रददात्यभयं सद्यः साऽभया परिकीर्तिता ॥
राजश्रीवचनो माध्वाध्वा प्रापणवाचकः । तां प्रापयति या सद्यः सा मायापरिकीर्तिता
माध्वा मोक्षार्थवचनो याध्वा प्रापणवाचकः । तं प्रापयति या नित्यं सा माया परिकीर्तिता
नारायणार्धाङ्गभूता तेन तुल्या च तेजसा । तदा तस्य शरीरस्था तेन नारायणी स्मृता
निर्गुणस्य च नित्यस्य वाचकश्च सनातनः ।

सदा नित्या निर्गुणा या कीर्तिता सा सनातनी ॥ ३० ॥

जयः कल्याणवचनो यकारो दातृवाचकः ।

जयं ददाति या नित्यं सा जया परिकीर्त्तिता ॥ ३१ ॥

सर्वमङ्गलशब्दश्च संपूर्णेश्वर्यवाचकः । आकारो दातृवचनस्तद्वात्री सर्वमङ्गला ॥ ३२ ॥

नामाष्टकमिदं सारं नामार्थसहसंयुतम् । नारायणेन यद्वत्तं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ॥ ३३ ॥

तस्मै दत्त्वा निद्रितश्च बभूव जगतां पतिः । मधुकैटभौ दुर्गान्तौ ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ ॥

स्तोत्रेणानेन स ब्रह्मा स्तुतिं नत्वा चकार ह ।

साक्षात् स्तुता तदा दुर्गा ब्रह्मणे कवचं ददौ ॥ ३५ ॥

श्रीकृष्णकवचं दिव्यं सर्वरक्षणनामकम् । दत्त्वा तस्मै महामाया सान्तरधानं चकार ह

स्तोत्रं कुर्वन्ति निद्राश्च संरक्ष्य कवचेन वै । निद्रानुग्रहतः सद्यः स्तोत्रस्यैव प्रभावतः ॥

तत्राजगाम भगवान् धृतरूपी जनार्दनः । शक्त्या च दुर्गया सार्धं शङ्करस्य जयाय च ॥

सरथं शङ्करं मूर्ध्नि कृत्वा च निर्भयं ददौ । अत्यूर्ध्वं प्रापयामास जया तस्मै जयं ददौ ॥

स्तोत्रस्यैव प्रभावेण संग्राप्य कवचं विधिः । वरञ्च कवचं प्राप्य निर्भयं प्राप निश्चितम्

ब्रह्मा ददौ महेशाय स्तोत्रञ्च कवचं वरम् । त्रिपुरस्य च संग्रामे सरथे पतिते हरौ ॥

ब्रह्मास्त्रञ्च गृहीत्वा स सनिद्रं श्रीहरिं स्मरन् ।

स्तोत्रञ्च कवचं प्राप्य जघान त्रिपुरं हरः ॥ ४२ ॥

स्तोत्रेणानेन तां दुर्गां कृत्वा गोपालिकाः स्तुतिम् ।

लेभिरे श्रीहरिं कान्तं स्तोत्रस्यास्य प्रभावतः ॥ ४३ ॥

गोपकन्याकृतं स्तोत्रं सर्वमङ्गलनामकम् । वाञ्छितार्थप्रदं सद्यः सर्वविघ्नविनाशनम् ॥

त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं भक्तिगुक्तश्च मानवः ।

शैवो वा वैष्णवो वापि शाक्तो दुर्गात् प्रमुच्यते ॥ ४५ ॥

राजद्वारे श्मशाने च दायाग्रौ प्राणसङ्कटे । हिंस्रजन्तुभयग्रस्तो मग्नः पोते महार्णवे ॥

शत्रुग्रस्ते च संग्रामे कारागारे विपद्गते । गुरुशापे ब्रह्मशापे बन्धुभेदे च दुस्तरे ॥ ४७ ॥

स्थानघ्नष्टे धनघ्नष्टे जातिघ्नष्टे शुचान्विते । पतिभेदे पुत्रभेदे खलसर्पविपान्विते ॥ ४८ ॥

स्तोत्रस्मरणमात्रेण सद्यो मुच्येत निर्भयः । वाञ्छितं लभते सद्यः सर्वेश्वर्यमनुत्तमम्

इहलोके हरेर्भक्तिं दृढाञ्च सततं स्मृतिम् । अन्ते दास्यञ्च लभते पार्वत्याञ्च प्रसादतः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

गोपकन्याकृतं सर्वमङ्गलस्तोत्रं समाप्तम् ।

भनेन स्तवराजेन तुष्टुबुनित्यमीश्वरीम् । प्रणेमुः परया भक्त्या यावन्मासं प्रजाङ्गनाः
एवं पूर्णं च मासे च समाप्तिदिद्यसे तथा । स्नातुं प्रजग्मुर्गाप्यञ्च वस्त्राण्याधाय तत्तटे

नानाविधानि द्रव्याणि रत्नमूल्यानि नारद ।

पीतलोहितशुक्लानि चारुणि मिश्रितानि च ॥५३॥

तीरावृतान्यसंख्यानि तैश्च तीरं सुशोभनम् । चन्दनागुरुकस्तूरीवायुना सुरभीकृतम् ॥

नेत्रेद्यैश्च बहुविधैः कालदेशोद्भवैः फलैः । धूपैः प्रदीपैः सिन्दूरैः कुङ्कुमैश्च विराजितम् ॥

जले क्रीडोन्मुक्ता गोप्यो वभूवुः कौतुकेन च ।

नग्नाः क्रीडाभिरासक्ताः श्रीकृष्णार्पितमानसाः ॥५६॥

दृष्ट्वा कृष्णञ्च वस्त्राणि द्रव्याणि विविधानि च ।

वासास्यादाय वस्तूनि चत्वाद शिशुभिः सह ॥५७॥

गत्वा दूरञ्च गोपालास्तस्थुः सर्वे मुदान्विताः ।

वस्त्राणि पुञ्जीकृत्यादौ ऊवुः स्कन्धेऽतिलोलुपाः ॥५८॥

श्रीदामा च सुदामा च वसुदामा तथैव च । सुवलञ्च सुपार्श्वश्च शुभाङ्गः सुन्दरस्तथा

चन्द्रभानुर्योरभानुः सूर्यभानुस्तथैव च । वसुभानू रत्नभानु गोपालाद्वादश स्मृताः ॥

श्रीकृष्णो धलदेवश्च प्रधानाश्च चतुर्दश । गोपा हरैर्वयस्याश्च कोटिशः कोटिशो मुने ॥

वस्त्राण्यादाय ते सर्वे तस्युरेकत्र दूरतः । शतशः पुञ्जिकास्तत्र स्थापयामासुरुन्मुखाः ॥

किञ्चिद्वस्त्रं समादाय कृत्वा च पुञ्जिकां मुदा ।

समाह्वय कदम्बाग्रमुवाच गोपिकां हरिः ॥६३॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

मो मो गोपालिकाः सर्वा विनष्टा व्रतकर्मणि ।

कृत्वा विधानं मद्भाष्यं श्रुत्वा व्रीडित मनसात् ॥६४॥

सङ्कल्पिते व्रताहं च मासे भङ्गलकर्मणि । यूयं नगनाः कथं तोये व्रताद्ब्रह्महानिकारिकाः ॥

परिधेयानि वासांसि पुष्पमाल्यानि यानि च ।

व्रतार्हाणि च वस्तूनि केन नीतानि घोऽधुना ॥६६॥

व्रते तु नगना यास्नातितानां रुष्टो वरुणः स्वयम् । वरुणानुचरा वासश्चक्रुर्वस्तुविनिर्द्दतिम्

कथं यास्यथ नगनाश्च व्रतस्य किं भविष्यति ।

व्रताराध्या कथं सा च वस्तूनि किं न रक्षति ॥६८॥

चिन्तां कुरुत तां पूज्यां तुष्टाव बलिरीश्वरीम् । युष्माकमीदृशीदेवीनशकावस्तुरक्षणे ॥

कथं व्रतफलं सावो दातुं शकासुरेश्वरो । फलं प्रदातुं या शका सा शक्ता सर्वकर्मणि

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा चिन्तामापुर्वजस्त्रियः । ददृशुर्वमुनातीरं वस्त्रवस्तुविहीनकम्

चक्रुर्विपादं तोये च नगनास्ता रुदुर्भुशम् ।

वच गतानि च वस्त्राणि वस्तूनीत्युचुरत्र नः ॥७२॥

कृत्वा विपादं तत्रैव तमूचुर्गोपकन्यकाः । पुटाञ्जलियुताः सर्वा भक्त्या विनयपूर्णकम् ॥

गोपालिका ऊचुः ।

परिधेयानि वस्त्राणि किंकरीणां सदीश्वरः । निमोभयात्मानमेव स्पर्शं कर्तुं त्वमर्हसि

व्रतार्हाणि च वस्तूनि देवस्वानि च साम्प्रतम् । अदत्तानि नोचितानि गृहीतुं वैदविद्वद्

देहि धीतानि धृत्वा च करिष्यामो व्रतं वयम् ।

वस्तुनान्येन गोविन्द वस्तूनां भक्षणं कुरु ॥७६॥

पतस्मिन्नन्तरे तत्र श्रीदामा वस्त्रपुञ्जिकाम् । दर्शयित्वा च ताः सर्वा दूरं दुद्रावततपुरः

दृष्ट्वा सवस्त्रं गोपालं सर्वात्तामीश्वरीपरा । सर्वावयस्याश्चोवाच कोपयुक्ताजलप्लुता

श्रीराधिकोवाच ।

हे सुशीले शशिकले हे चन्द्रमुखि माधवि । कदम्बमाले हे कुन्ति यमुने सर्वमङ्गले ॥७९॥

हे पद्ममुखि सावित्रि पारिजाते च जाह्नवि । सुधामुखि शुभे पथे हे गौरि हे स्वयंप्रमे

कालिके कमले दुर्गे हे सरस्वति भारति । अपूर्णे रति हे गङ्गे चाम्बिके सति सुन्दरि

कृष्णप्रिये मधुमति चम्पेचन्दननन्दिनि । यूयं सर्वाः समुत्थाय वदुध्यानयत पल्लभम् ॥

सर्वा राधाद्वया तूर्णं समुत्थाय जलात् कुधा ।

प्रजग्मुर्गोपिका नग्ना योनिमाच्छाद्य पाणिना ॥८३॥

पतासां सहचारिण्यो गोप्यस्तूर्णं सहस्रशः । प्रजग्मुस्तेन रूपेण कोपादारक्तलोचनाः॥

वेगेन बुद्बुदुः सर्वाः श्रीदामानञ्च बालिकाः । वेगेन च प्रधावन्तं विभ्रन्तं घस्त्रपुञ्जिकाम्

जगामशीघ्रं श्रीदामा यत्र गोपाः सहांशुकाः । जवेन बुद्बुदुर्गोप्यस्तत्पश्चाद्बलसंयुताः॥

घस्त्रचोरांश्च गोपांश्च घेष्टयामासुराशु ताः ।

मिषा प्रदुद्बुदुर्वाला यत्र कृष्णः सहांशुकः ॥ ८७ ॥

श्रीकृष्णसहितान् बालान् चरयामासुराशु च ।

गोपिकानां मिषा गोपा द्दुर्दृष्टाणि माधवम् ॥ ८८ ॥

माधवः स्थापयामास स्कन्धे स्कन्धे तरोस्तथा । कदम्बवृक्षः शुशुभे घस्त्रैर्नाताविधैरपि

पद्माणां पुञ्जिकाः सर्वाः स्कन्धेषु धिनिधाय च ।

उधाच गोपिकाः कृष्णः परिहासपरं वचः ॥ ९० ॥

श्रीकृष्ण उधाच ।

ओमो गोपालिकानप्राश्नानीं किं करिष्यथ । पद्मपाच्छ्रांप्रकर्तुंश्चकुरुताशु पुटाञ्जलिम्

गत्वा घदत युष्माकमोभ्यरीमथ राधिकाम् ।

करोतु शीघ्रं पद्माणि याच्छ्रां कृत्वा पुटाञ्जलिम् ॥ ९२ ॥

अन्यथाहं न दास्यामियुष्मभ्यमंशुकानि च । युष्माकमीभ्यरीराधाकिं करिष्यति मेऽधुना

प्रताराध्या च या देवी सा वा मे किं करिष्यति ।

इत्येवं कथितं सर्वं ब्रूत यूयञ्च राधिकाम् ॥ ९४ ॥

श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा ताः सर्वा गोपकन्यकाः ।

दीक्ष्य स्नेचनकोणेन प्रजग्मू राधिकान्तिकम् ॥ ९५ ॥

चक्रुर्निवेदनं गत्वा यदुवाच हरिःस्थयम् । श्रुत्वा जहास सा राधा यभूय कामपीडिता

श्रुत्वा तासाञ्च वचनं पुलकाञ्चितविग्रहा । न जगाम हरेः स्थानं पीडया सस्मितासती

जले योगासनं कृत्वा दृष्ट्वा कृष्णपदाम्बुजम् ।

ब्रह्मेशानन्तु धर्माणां वन्द्यमीप्सितदं परम् ॥ ६८ ॥

स्मारं स्मारं पदाम्भोजं साधुसम्पूर्णलोचना । भावातिरेकात्प्राणेशन्तुष्टाव निर्गुणं परम्
राधिकोद्यात् ।

गोलोकनाथ गोपीश मदीश प्राणवल्लभ । हे दीनबन्धो वीनेश सर्वेश्वर नमोऽस्तुते ॥
गोपेश गोसमूहेश यशोदानन्दवर्धन । नन्दारमज सदानन्द नित्यानन्द नमोऽस्तु ते ॥
शतमन्योर्मन्युमग्न ब्रह्मवर्पचिनाशक । कालीयदमन प्राणनाथ कृष्ण नमोऽस्तुते ॥ १०२ ॥
शिवानन्तेश ब्रह्मेश ब्राह्मणेश परात्पर । ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मयीज नमोऽस्तुते ॥ १०३ ॥
चराचरतरोर्वीज गुणातीत गुणात्मक । गुणधीज गुणाधार गुणीश्वर नमोऽस्तु ते ॥
अणिमादिकसिद्धीश सिद्धेस्त्रिद्विस्वरूपक । तपस्तपस्विन्तपसां धीजरूप नमोऽस्तुते ॥
यदनिर्वचनीयञ्च वस्तुनिर्वचनीयकम् । तत्स्वरूप तयोर्वीज सर्वधीज नमोऽस्तु ते ॥

अहं सरस्वती लक्ष्मीर्दुर्गा गङ्गा श्रुतिप्रसूः ।

यस्य पादार्चनान्नित्यं पूज्या तस्मै नमो नमः ॥ १०७ ॥

स्पर्शने यस्य भृत्यानां ध्यानेन च दिवानिशम् ।

पवित्राणि च तीर्थानि तस्मै भगवते नमः ॥ १०८ ॥

इत्येवमुक्त्वा सा देवी जले संन्यस्य विग्रहम् ।

मनःप्राणांश्च श्रीकृष्णे तस्थौ स्थाणुसमा सती ॥ १०९ ॥

राधाकृतं हरेः स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । हरिभक्तिञ्च दास्यञ्च लभेद्वाधागतिं ध्रुवम्
विपत्तौ यः पठेद्भक्त्या सद्यः सम्पत्तिमाप्नुयात् । चिरकालगतं द्रव्यं हतं नष्टञ्च लभ्यते
बन्धुवृद्धिर्भवेत्तस्य प्रसन्नं मानसं परम् । चिन्ताग्रस्तः पठेद्भक्त्या परा निर्वृतिमाप्नुयात्
पतिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च सङ्कटे । मासं भक्त्या यदि पठेत्सद्यः स दर्शनं लभेत् ॥

भक्त्या कुमारी स्तोत्रञ्च शृणुयाद्वत्सरं यदि ।

श्रीकृष्णसदृशं कान्तं गुणवन्तं लभेद् ध्रुवम् ॥ ११४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधाकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ।

जलस्था राधिका ध्यात्वा श्रीकृष्णचरणाम्बुजम् ।

स्तुतृवञ्चक्षुस्त्वमीत्य दृष्ट्वा कृष्णमयं जगत् ॥ ११५ ॥

ददर्श यमुनातीरं वस्त्रद्रव्यमयंमुने । दृष्ट्वा तन्त्राथवा स्वप्नमिति मेने च राधिका ॥ ११६ ॥
यत्र स्थाने यदाधारे यद् द्रव्यं संस्थितं पुनः । वस्त्रैश्च सहितं सर्वं तत्प्रापुर्गोपकन्यकाः

जलावुत्थाय ताः सर्वा व्रतं कृत्वा मनीषितम् ।

संप्राप्य च वरं देव्यस्ताः सर्वाः स्वालयं ययुः ॥ ११८ ॥

नारद उवाच ।

व्रतस्य किं विधानञ्च किं नाम किं फलं प्रभो ।

कानि द्रव्याणि देयानि का देया तत्र दक्षिणा ॥ ११९ ॥

व्रतान्ते किं रहस्यञ्च वभूव सुमनोहरम् ।

व्याप्तं कृत्वा महाभाग पद नारायणी कथाम् ॥ १२० ॥

सुत उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मस्य मुनिपुङ्गवः । कथां कथितुमारमे कथीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥

नारायण उवाच ।

सर्वं व्रतविधानञ्च मत्तो घत्स निशामय । ध्यातं गौरीव्रतं नाम मार्गमासि कृतंस्त्रिया
पुंसाञ्च धर्मकामार्थमोक्षदं कृष्णभक्तिदम् । देशभेदे प्रसिद्धञ्च व्रतं पौर्वापरं स्मृतम् ॥

कामदं कामुकानाञ्च फलं फान्तनिमित्तकम् । उपोष्य पूर्वदिग्से वस्त्रं प्रक्षाल्यसंयता
प्रातश्च मार्गसंक्रान्त्यां भक्त्या गत्वा सरित्तरम् ।

भूत्वा धीते च स्नात्वा च नानाद्रव्येण कन्यका ॥ १२५ ॥

देधपट्कञ्च सम्पूज्य कृत्वा चावाहनं घटे । गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं नारायणं शिवम् ॥
दुर्गां पञ्चोपचारैश्च सम्पूज्य व्रतमारमेत् । घटाधःपिण्डकांकृत्वाचतुरध्नां सुविस्तृताम्

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च सुसंस्तृताम् ॥ १२७ ॥

निर्माय बालुकानाञ्च दुर्गां दशभुजां पराम् । भूत्वा कपाले सिन्दूरं तदधश्चन्दनेन्दुकम्
तां ध्यात्वाऽऽवाहयेद्देवीं ततो भूत्वा पुटाञ्जलिः । इमं मन्त्रं पठित्वा दौततः पूजां समाारमेत्

हे गौरि शङ्कवाधार्ङ्गि यथा त्वं शङ्कप्रिया ।

तथा मां कुरु कल्याणि कान्तकान्तां सुदुर्लभाम् ॥ १३० ॥

इमं मन्त्रं पठित्वा तु ध्यायेद्देवीं जगत्प्रसूम् । ध्यानं तत्सामवेदोक्तं निगूढं सर्वकामदम्

शृणु नारद वक्ष्यामि मुनीन्द्राणाञ्च दुर्लभम् ।

ध्यायन्त्यनेन सिद्धाश्च दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥ १३२ ॥

शिवां शिवप्रियां शैवां शिववक्षःस्थलस्थिताम् । ईषदास्यप्रसन्नास्यांसुप्रतिष्ठांसुलोचनाम्

नवयौवनसम्पन्नां रत्नाभरणभूषिताम् । रत्नकङ्कणकेयूररत्ननूपुरभूषिताम् ॥ १३४ ॥

रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलचिराजिताम् । मालतीमाल्यसंसक्तकवरीं भ्रमरान्विताम् ॥

सिन्दूरतिलकं चारु, कस्तूरीविन्दुना सह । चक्षिशुद्धांशुकां रत्नकिरीटां सुमनोहराम् ॥

मणीन्द्रसारसंसकरत्नमालासमुज्ज्वलाम् ।

पारिजातप्रसूनानां मालाजालानुलम्बिताम् ॥ १३७ ॥

सुपीनकठिनश्रोणीं विभ्रतीञ्च स्तनानताम् ।

नवयौवनभारौघादीपन्नघ्रां मनोहराम् ॥ १३८ ॥

ब्रह्मादिभिस्स्तूयमानां सूर्यकोटिसमप्रभाम् । पद्मविभवाधरोष्ठीञ्च चारुचम्पकसन्निभाम्

मुक्तापङ्क्तिधिन्यैकदन्तराजिधिराजिताम् । मुक्तिकामप्रदां देवी शरच्चन्द्रमुखीं भजे ॥

ध्यात्वैव मस्तके पुष्पं विन्यस्य च व्रती मुदा ।

पुष्पं गृहीत्वा भक्त्या च पुनर्ध्यात्वा च पूजयेत् ॥ १४१ ॥

दत्त्वा पौडशोपचारान् प्रहृष्टं तत्र नित्यशः । पूर्वोक्तेनैव मन्त्रेण मुदा भक्त्या व्रते व्रती

पूर्वोक्तेनैव स्तोत्रेण स्तुत्वा च प्रणमेत्तदा ।

कृत्वा प्रणामं भक्त्या च संयतः शृणुयात्कथाम् ॥ १४३ ॥

नारद उवाच ।

व्रतं व्रतविधानञ्च फलञ्च स्तोत्रमद्भुतम् ।

अधुना श्रोतुमिच्छामि गौरीव्रतकथां शुभाम् ॥ १४४ ॥

व्रतं केन कृतं पूर्वं भूमौ केन प्रकाशितम् ।

एतत्सर्वं सुविस्तार्य व्रतसन्देशमञ्जन ॥ १४५ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

कुशध्वजस्य हि सुता नाम्ना वेदवती सती । तया कृतं व्रतमिदं महातीर्थं च पुष्करे ॥
समाप्तिदिघसे साक्षादुद्यभूष जगदम्बिका । योगिनीलक्षसंयुक्ता सूर्यकोटिसमप्रभा ॥
शातकुम्भचिनिर्माणरथस्था परमेश्वरी । ईषद्वास्यप्रसन्नास्या तामुवाच सुसंयताम् ॥
पार्वत्युवाच ।

हे वेदघति भद्रन्ते परं वृणु यथेष्टितम् । तव व्रतेन तुष्टाहन्तुभ्यं दास्यामि पाञ्चितम् ॥
पार्वतीघचनं ध्रुत्वा दृष्ट्वा तां दृष्टमानसाम् । पुटाञ्जलियुता साध्वी प्रणम्योवाच नारद ॥
वेदवत्युवाच ।

देवि नारायणं कान्तं मह्यं देहि मनीषितम् ।

घरेऽन्यस्मिन् स्पृहा नास्ति दृढां भक्तिञ्च तत्पदे ॥ १५१ ॥

ध्रुत्वा वेदवतीवाक्यं प्रहस्य जगदम्बिका । भवरह्य रथात्तूष्णं तामुवाच हरिप्रियाम् ॥
पार्वत्युवाच ।

ज्ञातं सर्वं जगन्मातस्त्वञ्च लक्ष्मीः स्वयं सती । भारतं पादरजसा पूतं कर्तुं समागता ॥
त्वत्पादरजसा साध्वी सद्यः पूता वसुन्धरा । निपिलानिच तीर्थानि पूतानि परमेश्वरि ॥
मतन्ते लोकशिक्षार्थं तपश्चर तपस्विनि । नारायणस्य कान्तात्वं प्रिया जन्मनि जन्मनि ॥
भारायतरणे विष्णुर्वसुधामागमिष्यति । रामो दाशरथिः पूर्णः कर्तुं दत्स्युपिनिप्रदम् ॥
ब्रह्मशापाच्च च्युतयोर्मोक्षणाय च भक्तयोः । अयोध्यायाञ्च श्रेतायामापिभाषो हरेरपि ॥

त्वमेव मिथिलां गच्छ विधाय शिशुविप्रदम् ।

त्यागिमां प्राप्य जनकोऽप्ययोनिसम्भवां सुताम् ॥ १५८ ॥

पालयिष्यति यत्नेन सीता त्वञ्च भविष्यति ।

गत्या रामोऽपि मिथिलां त्वां विद्याहं करिष्यति ॥ १५९ ॥

नारायणस्य कान्ता त्वं कल्पे कल्पे भविष्यसि ।

इत्युक्त्वा तां समालिङ्ग्य पार्वती सालयं ययौ ॥ १६० ॥

गत्या सा मिथिलां साध्वी शिशुरूपं विधाय च ।

लाङ्गलस्य च रेखायां सुखान्तस्थौ च मायया ॥ १६१ ॥

घिलोक्य जनकस्ताञ्जनानां मुद्रितलोचनाम् । तप्तकाञ्चनवर्णाञ्च रुन्तीं तेजसान्विताम्
दृष्ट्वा ताञ्च गृहीत्वा च कृत्वा वक्षसि नारद । गच्छन्तंप्रतितत्रैवचात् यभूवाशरीरिणी ॥
अयोनिसम्भवां कन्यां कमलां ग्रहणं कुरु । नारायणस्ते जामाता भवितेत्येवमेव च ॥
श्रुत्वातदा देवचार्णीं गृहीत्वा कन्यकामृपिः । गत्वाद्ददौ स्वकान्तायै पालनाय मुदान्वितः
सा लब्धयौवना प्राप रामं दाशरथिं सती । व्रतस्यास्य प्रभावेण कान्तं त्रिजगतांपतिम्
प्रकाशितं वशिष्टेन पृथिव्यां भक्तिभावतः । राधा कृत्वा व्रतमिदं श्रीकृष्णप्राणवल्लभम् ॥
गोपाङ्गनाश्च तं प्रापुर्व्रतस्यास्य प्रभावतः । इत्येवं कथिता विप्र कथा गौरीव्रतस्य च
भारतेष्व व्रतमिदं या करोति कुमारिका । स्वामिनं कृष्णतुल्यञ्च सा प्राप्नोति न संशयः
इति गौरीव्रतकथा समाप्ता ।

श्रीनारायण उवाच ।

एवं व्रतञ्च चकुस्ता यावन्मासञ्च गोपिकाः । पूर्वस्तोत्रेण तां देवीं तुष्टुवुश्च दिने दिने
समाप्तिदिवसे गोप्पोव्रतकृत्चामुदान्विताः । कण्वशास्त्रोक्तस्तोत्रेण तुष्टुवु परमेश्वरीम्
येन स्तोत्रेणतां स्तुत्वासीता सत्यपरापणा । सद्यःसंप्राप कान्तञ्च रामं राजीबलोचनम्
जानक्युवाच ।

शक्तिस्वरूपे सर्वेषां सर्वाधारे गुणाश्रये । सदा शङ्करयुक्ते च पतिं देहि नमोऽस्तु ते ॥

सृष्टिस्थित्यन्तरूपेण सृष्टिस्थित्यन्तरूपिणि ।

सृष्टिस्थित्यन्तबीजानां बीजरूपे नमोऽस्तु ते ॥ १७४ ॥

हे गौरि पतिमर्मज्ञे पतिव्रतपरायणे । पतिव्रते पतिरते पतिं देहि नमोऽस्तु ते ॥ १७५ ॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये सर्वमङ्गलसंयुते । सर्वमङ्गलबीजे च नमस्ते सर्वमङ्गले ॥ १७६ ॥

सर्वप्रिये सर्वबीजे सर्वाशुभविनाशिनि । सर्वेशे सर्वजनके नमस्ते शङ्करप्रिये ॥ १७७ ॥

परमात्मस्वरूपे च नित्यरूपे सनातनि । साकारे च निराकारे सर्वरूपे नमोऽस्तु ते ॥

धुत्पृष्णेच्छा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा स्मृतिः क्षमा ।

पतास्तव कलाः सर्वा नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १७८ ॥

लज्जामेधानुष्टिपुष्टिशान्तिसम्पत्तिवृद्धयः । एतास्तव कलाः सर्वाः सर्वरूपे नमोऽस्तु ते
दृष्टादृष्टस्वरूपे च तयोर्वीजफलप्रदे । सर्वानिर्वचनीये च महामाये नमोऽस्तु ते ॥१८१॥
शिखे शङ्करसौभाग्ययुक्ते सौभाग्यदायिनि । हरिकान्तञ्च सौभाग्यं देहिदेवि नमोऽस्तुते

स्तोत्रेणानेन याः स्तुत्वा समाप्तिदिघसे शिवाम् ।

नमन्ति परया भक्त्या ता लभन्ति हरिं पतिम् ॥ १८३ ॥

इह कान्तसुखं भुक्त्वा पतिं प्राप्य परात्परम् ।

दिव्यं स्यन्दनमारुह्य यात्यन्ते कृष्णसन्निधिम् ॥ १८४ ॥

इति श्रीब्रह्मरैवर्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधाकृतं पार्वतीस्तोत्रं समाप्तम् ।

समाप्तिदिघसे राधा गोपीभिः सह संयुता ।

देवी प्रणम्य स्तुत्या च व्रतं पूर्णञ्चकार ह ॥ १८५ ॥

गोसहस्रं ब्राह्मणाय सुवर्णशतकं मुदा । विप्राय दक्षिणां दत्त्वा स्वगृहं गन्तुमुद्यता ॥
ब्राह्मणानां सहस्रञ्च भोजयामास सादरम् । घाद्यानि वाढ्यामास भिक्षुकाय धनं ददौ
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । आविर्बभूव गगनाज्ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या योगिनीशतसंयुता । सिंहस्था च दशभुजा रत्नालङ्कारभूषिता ॥
शातकुम्भमयादिव्याद्रत्नसारपरिच्छदात् । भवरुह्य रधातूर्णमालिङ्गयोरसि राधिकाम्

दृष्ट्वा गोपाङ्गना देवी प्रणेमुञ्च मुदान्विताः ।

आशिषं युयुजे दुर्गा बाञ्छासिद्धिर्मेविष्यति ॥ १९१ ॥

गोपिकाम्यो धरं दत्त्वा ताः सम्भाष्य च सादरम् ।

उवाच राधिकां दुर्गा स्मेराननसरोरुहा ॥ १९२ ॥

पार्वत्युवाच ।

राधे सर्वेश्वरप्राणादधिके जगदम्बिके । व्रतन्ते लोकशिक्षार्थं मायामानुषरूपिणी ॥
गोलोकनाथं गोलोकं श्रीशैलं गिरिजातटम् । श्रीरासमण्डलं दिव्यं वृन्दायनमनोहरम्

चरितं रतिचोरस्य स्त्रीणां मानसहारकम् ।

विदुषः कामशास्त्राणां किञ्चित् स्मरसि सुन्दरि ॥ १९५ ॥

श्रीकृष्णार्धाङ्गसम्भूता कृष्णतुल्या च तेजसा । तवांशकलया देव्यः कथं त्वं मानुषी सती
भवती च हरेः प्राणा भवत्याश्च हृदिः स्वयम् । वेदेनास्ति द्वयोर्भेदः कथं त्वं मानुषी सती
पट्टिर्वर्षसहस्राणि ब्रह्मा तप्त्या तपः पुरा । न ते ददर्श पादाब्जं कथं त्वं मानुषी सती ॥

कृष्णाक्षया च त्वं देवी गोपीरूपं विधाय च ।

भागतासि महीं शान्ते कथं त्वं मानुषी सती ॥ १६६ ॥

सुयज्ञो हि नृपध्रेष्ठो मनुवंशसमुद्भवः । त्वत्तो जगाम गोलोकं कथं त्वं मानुषी सती
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां वकार पृथिवीं भृगुः । तव मन्त्रेण कथं त्वं मानुषी सती
शङ्करात्प्राप्य त्वन्मन्त्रं सिद्धं हृत्वा च पुष्करे । जघान कार्तवीर्य्यञ्च कथं त्वं मानुषी सती
वभञ्ज दर्पादन्तञ्च गणेशस्य महात्मनः । त्वत्तो नाम भयं चक्रे कथं त्वं मानुषी सती ॥
मय्युद्धतायां कोपेन भस्मसात्कर्तुमीश्वरः । ररक्षागत्य मत्प्रीत्या कथं त्वं मानुषी सती
कल्पे कल्पे तप पतिः कृष्णो जन्मनि जन्मनि ।

व्रतं लोकहितार्थाय जगन्मातस्त्वया कृतम् ॥ २०५ ॥

बहो श्रीदामशपेन भारावतरणेन च । भूमौ तवाधिष्ठानञ्च कथं त्वं मानुषी सती ॥
अयोनिसम्भवा त्वञ्च जन्ममृत्युजरापहा । कलावतीसुता पुण्या कथं त्वं मानुषी सती
त्रिषु मासेष्वतीतेषु मधुमासे मनोहरे । निर्जने निर्मले रात्रौ सुयोग्ये रासमण्डले ॥
सर्वाभिर्गोपिकाभिश्च सार्धं वृन्दायनेवने । हर्षेण हरिणा सार्धं क्रीडा ते भविता सति
विधात्रा लिखिता क्रीडा कल्पे कल्पे महीतले । तव श्रीहरिणा सार्धं केनराधेनिवार्य्यते
यथा सौभाग्ययुक्ताहं हरस्य श्रीहरिप्रिये । तथासौभाग्ययुक्तात्वं भव कृष्णस्य सुन्दरि
यथा क्षीरेषु घावत्यं यथा वह्नी च दाहिका ।

भुवि गन्धो जले शैत्यं तथा कृष्णे स्थितिस्तव ॥ २१२ ॥

देवी वा मानुषी वा पि गान्धर्वी राक्षसी तथा । त्वत्तः परा च सौभाग्या न भूतानभविष्यति
परात्परो गुणातीतो ब्रह्मादीनाञ्च वन्दितः । स्वयं कृष्णस्तवाधीनो मद्वरेण भविष्यति
ब्रह्मानन्तशिवाराध्यो भविता त्वद्वशः सति ।

ध्यानासाध्यो दुराराध्यः सर्वेषामपि योगिनाम् ॥ २१५ ॥

त्वञ्चभाग्यवतीराधेलीजातिषु न ते परा । कृष्णेनसार्द्धपश्चात् त्वंगोलोकञ्चगमिष्यसि
इत्युक्त्वा पार्वती सद्यस्तत्रैवान्तर्दधे मुने । साधं गोपालिकाभिश्च राधिका गन्तुमुद्यता
एतस्मिन्नन्तरं कृष्णो जगाम राधिकापुरः । राधा ददर्श श्रीकृष्णंकिशोरं श्यामसुन्दरम्
पीतवस्त्रपरीधानंनानालङ्कारभूषितम् । आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम् ॥२१६॥
ईपद्मास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥२२०॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं सद्गन्धमुकुटोज्ज्वलम् । पद्मदाङ्गिमधीजामदशनं सुमनोहरम् ॥
विनोदमुरलीहस्तन्यस्तलीलासरोरुहम् । कौटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् ॥

गुणातीतं स्तूयमानं ब्रह्मानन्तशियादिभिः ।

ब्रह्मस्वरूपं ब्राह्मण्यं श्रुतिभिश्च निरूपितम् ॥ २२३ ॥

अध्यक्तमक्षरं व्यक्तं ज्योतीरूपं सनातनम् । मङ्गल्यं मङ्गलाधारं मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ॥
दृष्ट्वा तदद्भुतं रूपं संभ्रमात् प्रणनाम तम् । तं दृष्ट्वा मूर्च्छिता राधा कामवाणप्रपीडिता
वशं वशं मुखाम्भोजं सस्मिता घक्लोचना । मुखमाच्छादयामास व्रीडया च पुनः पुनः
दृष्ट्वा हरिस्तामुवाच प्रसन्नवदनेक्षणः । गोपालिकासमूहानां सर्वेषां पुरतः स्थितः ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

प्राणाधिकेराधिके त्वंवरंवृणुमनीषितम् । भो भो गोपालिका.सर्वा परंवृणुतवाञ्छितम्

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा वरं वदे च राधिका ।

गोपालिकाश्च प्रहृष्टाः सर्वशः कल्पपादपम् ॥ २२६ ॥

राधिकोवाच ।

त्वत्पादाब्जे मन्मनोऽलिः सततं भ्रमतु प्रभो ॥ पानु भक्तिरसं पश्ये मधुपश्च यथा मधु
मदीयप्राणनाथस्त्वं भव जन्मनि जन्मनि । त्वदीयचरणाम्भोजे देहि भक्तिं सुदुर्लभाम्
तव स्मृतौ गुणे चित्तं सज्जे ह्यानेदिवानिशम् । भवेन्निमग्नं सततमेतन्मम मनीषितम् ॥

गोपालिका ऊचुः ।

यथाराधां तथा नञ्च प्राणबन्धोदिवानिशम् । भविष्यसिप्राणनाथोरक्ष्यसि प्रतिजन्मनि
आसाञ्च घचनं श्रुत्वा तथास्त्वेवमुवाच ह । प्रसन्नवदनः श्रीमान् यशोदानन्दवर्धनः ॥

क्रीडापद्मं राधिकायै सहस्रदलसंयुतम् । ललितां मालतीमालां ददौ प्रीत्या जगत्पतिः ।

मालासमूहं पुष्पाणि गोपीभ्यो गोपिकापतिः ।

प्रहस्य परमप्रीत्या प्रददावित्युवाच ह ॥ २३६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

त्रिषु मासेष्वतीतेषु यूयं क्रीडां मया सह । रासमण्डलरम्ये च वृन्दारण्ये करिष्यथ ॥

यथाऽहञ्च तथा यूयं न हि मेदः श्रुतो श्रुतः ।

प्राणा ब्रह्म युष्माकं यूयं प्राणा मम प्रभो ॥ २३८ ॥

व्रतं घो लोकरक्षणं न हि स्वार्थमिदं प्रियाः । सहायताश्च गोलोकाद्रमनञ्च मया सह

गच्छत स्वालयं शीघ्रं घोऽहं जन्मनि जन्मनि ।

प्राणभ्योऽपि गरीयस्यो यूयं मे नात्र संशयः ॥ २४० ॥

इत्युक्त्वा धीहरिस्तत्र तस्यौ सूर्यसुतातटे । तस्युर्गोपालिकाः सर्वा वीक्ष्यकृष्णं पुनः पुनः

सर्पाः प्रहृष्टवदनाः सस्मिता घमलोचनाः । प्रीत्या चक्षुश्चकोराम्बां मुखचन्द्रं पपुर्हरेः

ताः शीघ्रं प्रययुर्गोहं जयं दत्त्वा पुनः पुनः । हरिश्च शिशुभिः सार्धं प्रसन्नः स्वालयं ययौ

इत्येवं कथितं सर्वं हरेश्चरितमङ्गलम् । गोपीनां वस्त्रहरणं सर्वलोकसुखायहम् ॥ २४४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

गोपिकावस्त्रहरणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।

अष्टाविंशोऽध्यायः

रासक्रीडाप्रस्ताववर्णनम् ।

नारद उवाच ।

त्रिषु मासेष्वतीतेषु तासाञ्च हरिणा सह । यद केन प्रकारेण बभूव तनुसङ्गमः ॥ १ ॥

वृन्दावनं किंप्रकारं किंचिदं रासमण्डलम् । हरिरिहस्ताश्च बह्व्यः केन क्रीडा बभूव ह ॥

कुतूहलं भवति मे इदं श्रोतुं नवं नवम् । कथयस्व महाभाग पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ ३ ॥

कथा पुराणसाराणां रासयात्रा हरैर्हो ।

हरिलीलाः पृथिव्यान्तु सर्वाः श्रुतिमनोहराः ॥ ४ ॥

सूत उवाच ।

नारदस्य घञः श्रुत्वा ऋषिर्नारायणः स्वयम् । प्रहस्य सुप्रसन्नास्यः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥

श्रीनारायण उवाच ।

एकदा श्रीहरिरिक्तं घनं वृन्दावनं ययौ । शुभे शुक्लत्रयोदश्यां पूर्णे चन्द्रोदये मुने ॥ ६ ॥

यूथिकामालतीकुन्दमाधवीपुष्पवायुना । वासितं कलनादेन मधुघ्राणां मनोहरम् ॥ ७ ॥

नवपल्लवसंयुक्तं पंस्फोकिरुतश्रुतम् । नवलशरासयाससंयुक्तं सुमनोहरम् ॥ ८ ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन सुवासितम् । कर्पूरान्वितताम्रबलभोगद्रव्यसमन्वितम् ॥ ९ ॥

प्रसूतैश्चम्पकानाञ्च कस्तूरीचन्दनान्वितैः ।

रतियोग्यैर्विरचितैर्नानातल्पैः सुशोभितम् ॥ १० ॥

दीप्तं रत्नप्रदीपैश्च धूपेन सुरभीरुतम् । नानापुष्पैश्च रचितं मालाजालैर्विराजितम् ॥ ११ ॥

परितो पञ्चुलाकारं तत्रैव रासमण्डलम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन सुसंस्कृतम् ॥ १२ ॥

पुष्पोद्यानैः पुष्पितैश्च युक्तं क्रीडासरोधरेः । हंसकारण्डवाकीर्णजलकुङ्कुदकृतैः ॥

क्रीडनीयैः सुन्दरैश्च सुरतभ्रमहारिभिः । शुद्धस्फटिकसंकाशतोयपूर्णैः सुनिर्मलैः ॥ १४ ॥

दधिपूर्णशुक्रधान्यजलैर्निर्मलनीरुतम् ।

रम्भास्तम्भसमूहेन सुन्दरेण सुशोभितम् ॥ १५ ॥

भाप्रपल्लवयुक्तेन सूत्रबन्धेन चारुणा । भूषितं मङ्गलघटेः सिन्दूरचन्दनान्वितैः ॥ १६ ॥

मालतीमाल्यसंयुक्तैरिक्केलफलान्वितैः । स रासमण्डलं दृष्ट्वा जहास मधुसूदनः ॥ १७ ॥

चकार तत्र कुतुकाङ्गिनोदमुखीरवम् । गोपीना कामुकीनाञ्च कामवर्धनकारणम् ॥ १८ ॥

तच्छ्रुत्वा राधिका सद्यो मुमोह मदनानुरा । यभूव स्याणुवदेहा ध्यानेकतानमानसा ॥

क्षणेन चेतनां प्राप्य पुनः शुभ्राय सा ध्वनिम् ।

उवाच सा समुत्तस्थौ समुद्दिग्ना पुनः पुनः ॥ २० ॥

त्यक्त्वा चावश्यकं कर्म निःससाराद्भुतं गृहात् । ययौ तदनुसारेण प्रसमीक्ष्य चतुर्दिशम्
ध्यायन्ती चरणाम्भोजं श्रीकृष्णस्य महात्मनः । तेजसा च द्योतयन्ती सद्रत्नसारभूषणैः

वह्निर्वभूवुस्तास्त्रस्ता घरेण हृतचेतनाः ।

कुलधर्मं परित्यज्य निःशङ्काः काममोहिताः ॥ २३ ॥

अयस्त्रिंशद्वयस्याश्च ताः सुशीलादयः स्मृताः ।

राधिकायाः प्रियतमा गोपीनां प्रवरा ययुः ॥ २४ ॥

तासां पश्चाद्युगोप्यस्तासां संख्यां निबोध मे । समावेशेन वयसा रूपेण च गुणेन च
ययुः सुशीलासङ्गेन सहस्राणि च षोडश । ययुश्चन्द्रमुखीपश्चात्सहस्राणि च षोडश ॥
एकादशसहस्राणि माधव्याल्यश्च निर्ययुः । जग्मुः कदम्यमालाल्यः सहस्राणि त्रयोदश

ययुः कुन्तीवयस्याश्च सहस्राणि दश स्मृताः ।

चतुर्दशसहस्राणि ययुस्ता यमूनानुगाः ॥ २८ ॥

जाह्नवीसहचारिण्यः सहस्राणि ययुर्नव ।

ययुर्नव सहस्राणि पद्ममुख्याल्य एव च ॥ २९ ॥

सावित्र्याल्यः पञ्चदश सहस्राणि ययुर्ब्रजात् ।

पारिजातावयस्याश्च सहस्राणि ययुर्दश ॥ ३० ॥

स्वयंप्रमानुगाः सप्त सहस्राणि ययुर्ब्रजात् ।

ययुः सुधामुखीगोप्यः सहस्राणि चतुर्दश ॥ ३१ ॥

शुभानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश । पद्मानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश ॥

गौरी पद्मा ययुर्गोप्यः सहस्राणि चतुर्दश । ययुः सर्वमङ्गलाल्यः सहस्राणि च षोडश

कालिकाल्यो ययुर्गोप्यः सहस्राणि च षोडश । निर्ययुः कमलाल्यश्च सहस्राणि त्रयोदश

दुर्गानुगा ययुर्गोप्यः सहस्राणि च षोडश । ययुः सरस्वतीपश्चात्सहस्राणि त्रयोदश ॥

प्रजामुर्मरतीपश्चात्सहस्राणि दश व्रजात् । अपर्णासहचारिण्यः सहस्राणि चतुर्दश ॥

रतिपश्चाद्वयस्याश्च सहस्राणि ययुर्दश । गङ्गावयस्याः प्रययुः सहस्राणि चतुर्दश ॥ ३७

प्रजामुरग्विका पश्चात्सहस्राणि च षोडश ।

सतीपद्माद्युर्गोप्यः सहस्राणि त्रयोदश ॥ ३८ ॥

नन्दिनीसहचारिण्यः सहस्राणि ययुर्दश । प्रययुः सुन्दरीपद्मात्सहस्राणि त्रयोदश ॥ ३९ ॥

ययुः कृष्णप्रियापद्मात्सहस्राणि च षोडश । ययुर्मधुमतीपद्मात्सहस्राणि च षोडश ॥

ययुश्चम्पानुगा गोप्यः सहस्राणि त्रयोदश ।

खन्दनाल्यो ययुः पद्मात्सहस्राणि च षोडश ॥ ४१ ॥

सर्वा यभूयुरेकत्र तत्र तस्युः पलं मुदा । तत्राययुर्गोपिकाश्च मालाहस्ताश्च काश्चन ॥ ४२ ॥

चायचन्दनहस्ताश्च काश्चित्त्राययुर्मजात् । श्वेतचामरहस्ताश्च काश्चित्त्राययुर्मुदा ॥ ४३ ॥

तत्राययुर्गोपकन्याः काश्चित् कुङ्कुमचाहिकाः ॥ ४४ ॥

काश्चित् तत्राययुर्गोप्यस्ताम्बूलपात्रचाहिकाः ।

यावत्काञ्चनवस्त्राणां चाहिका गोपकन्यकाः ॥ ४५ ॥

काश्चित्त्राययुः शीघ्रं यत्र चन्द्रायली मुदा ।

सर्वाश्चैकत्र संभूय सस्मिताश्च मुदान्विताः ॥ ४६ ॥

विधाय राधिकावेशं स्थानाच्च प्रययुर्मुदा । चक्रुः पुनःपुनस्ताश्च हृदयार्द्धं जयं पथि ॥

प्रापुर्बृन्दावनं रम्यं ददृशू रासमण्डलम् । स्वर्गोभ्यः सुन्दरं दृश्यं राकापतिकरान्वितम् ॥

सुनिर्जनं कुसुमितं वासितं पुष्पयायुना । नारीणां कामजननं मुनिमोहनकारणम् ॥ ४७ ॥

शुश्रूयुस्तत्र ताः सर्वाः पुंस्कोकिलकलघ्यनिम् ।

अतिसूक्ष्मकलञ्चापि भ्रमराणां मनोहरम् ॥ ५० ॥

प्रसूतमधुमत्तानां भ्रमरीसङ्घसङ्गिनाम् । शुभे क्षणे प्रविशेश राधिका रासमण्डलम् ॥ ५१ ॥

सर्पामिरालिभिः सार्धं ध्यात्वा कृष्णपदाम्बुजम् ।

राधामारान्तु संवीक्ष्य कृष्णस्तत्र मुदान्वितः ॥ ५२ ॥

जगामानुमजं प्रीत्या सस्मितोमदनानुरः । मध्यस्थां सप्तिसद्गुणां रत्नालङ्कारभूषिताम्

दिव्यघट्टपरीधानां सस्मितां परलोचनाम् । गजेन्द्रगामिनीं रम्यां मुनिमानसमोहिनीम्

नर्पानधेरावयसा रूपेणातिमनोहराम् । तल्लोचनितम्बानां भारदोषान्वितां पराम् ॥ ५३ ॥

चायचम्पकपर्णाभां शरच्चन्द्रनिभाननाम् । चित्रन्तीं कपरीनारं मालतीमाल्यसंगुताम् ॥

राधा ददर्श श्रीकृष्णं किशोरं श्यामसुन्दरम् । नवयौवनसम्पन्नं रत्नाभरणभूषितम् ॥५७॥
 कन्दर्पकोटिलावण्यलीलाधाममनोहरम् । प्राणाधिकां तां पश्यन्तं पश्यन्ती वक्रचक्षुषा
 परमाद्भुतरूपञ्च सर्वत्रानुपमं परम् । विचित्रवेशं चूडाञ्च विभ्रन्तं सस्मितं मुदा ॥५८॥
 वक्रलोचनकोणेन दशं दशं पुनः पुनः । मुखमाच्छादयामास प्रीडया सस्मिता सती ॥
 मूर्च्छामवाप सा सद्यः कामयागप्रपीडिता । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी बभूव हतचेतना ॥६१॥

कटाक्षकामवाणैश्च विद्वः क्रीडारसोन्मुखः ।

मूर्च्छां प्राप्य न पपात तस्यौ स्थाणुसमो हरिः ॥ ६२ ॥

पपात मुरली तस्य क्रीडाकमलमुज्ज्वलम् । द्वितीयं पीतवस्त्रञ्च शिखिपिच्छं शरीरतः ॥

क्षणेन चेतनां प्राप्य ययौ राधान्तिकं मुदा ।

कृत्वा वक्षसि तां प्रीत्या समाश्लिष्य चुचुम्ब सः ॥ ६४ ॥

श्रीकृष्णस्पर्शमात्रेण संप्राप्य चेतनां सती । प्राणाधिकं प्राणनाथं समाश्लिष्यचुचुम्ब ह

मनो जहार राधायाः कृष्णस्तस्य च सा मुने ।

जगाम राधया सार्धं रसिको रतिमन्दिरम् ॥ ६६ ॥

रत्नप्रदीपसंयुक्तं रत्नदर्पणसंयुतम् । चारुचम्पकशय्यामिश्रन्दनाकाभा राजितम् ॥६७॥

कर्पूरान्वितताम्बूलभोगद्रव्यैः समन्वितम् ।

उवास राधया सार्धं कृष्णस्तत्र मुदान्वितः ॥ ६८ ॥

राधाप्रदत्तताम्बूलं खलाद मधुसूदनः । रासेश्वरी कृष्णदत्तं ताम्बूलं चुभुजे मुदा ॥६९॥

दत्तं चचितताम्बूलं राधायै प्रभुणा मुदा । खलाद भक्त्या सा तूर्णं प्रहस्य मदनानुरा ॥

राधान्वर्चितताम्बूलं ययाचे प्राधवो मुदा । न ददौ राधिका भीता पपात चरणाम्बुजे ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सकामः सुरतोन्मुखः । सुध्याप राधया सार्धं रतितल्पे मनोहरे ॥७२॥

शृङ्गाराष्ट्रकारञ्च चिपरोतादिकं विभुः । नखदन्तकराणाञ्च प्रहारञ्च यथोचितम् ॥७३॥

कामशास्त्रेषु यदुगोप्यं चुम्बनाष्टविधं परम् । कामिनीनां मनोहारि चकार रसिकेश्वरः

अङ्गैरङ्गानि प्रत्यङ्गैः प्रत्यङ्गानि स्मरातुरः । चकाराश्लेषणं तत्र कामुकीनां सुखावहम् ॥

शृङ्गारकुशलो तौ तु कामशास्त्रसुपण्डितौ । रतियुद्धधिरामश्च न चभूव द्वयोरपि ॥७६॥

एवं गृहे गृहे रम्ये नानामूर्ति विधाय च । रमे गोपाङ्गनामिश्च सुरम्ये रासमण्डले ॥७३॥
गोपीनां नवलक्ष्याणि गोपानाञ्च तथैव च । लक्ष्याण्यष्टादश मुने युक्तानि रासमण्डले ॥

मुक्तकेशानि मग्नानि विच्छिन्नभूषणानि च ।

वेशोच्छिन्नानि मत्तानि मूर्च्छितानि स्मरेण च ॥ ७६ ॥

फट्फणानां किङ्किणीनां घलयानाञ्च नारद । सद्रत्ननूपुराणाञ्च शब्दयुक्तानि सन्ततम् ॥
एवं कृत्वा स्थलक्रीडां ययुस्तानि जलं मुदा ।

कृत्वा तत्र जलक्रीडां परिध्रान्तानि साम्प्रतम् ॥ ८१ ॥

तूर्णं जलात्समुत्थाय वासांसि परिधाय च । दद्रुशुर्मुखपद्मानि सद्रत्नदर्पणेषु च ॥८२॥
चन्दनागुरुकस्तूरीद्रव्याणि पुष्पमालिकाः । मुदा परिधुस्तानि सम्प्रापुञ्चेतनानि च ॥

सकपूरञ्च ताम्बूलं भुत्वा सर्धाणि कौतुकात् । दद्रुशुर्मुखपद्मानि सद्रत्ने दर्पणेऽमले ॥८४॥
काचित्कामातुरा कृष्णं बलादाकृष्य कौतुकात् । इस्ताद्वशी निजग्राह वसनञ्च चकर्प ह

काचित्कामप्रमत्ता च नग्नं कृत्वा तु माधवम् ।

निजग्राह पीतवस्त्रं परिहास्यं पुनर्ददौ ॥ ८६ ॥

युक्तिं शृण्वत्येवमुत्त्वा काचित्संगृह्य स्वामिनम् ।

बुधुम्य गण्डे विम्योष्ठे समाश्लिष्य पुनः पुनः ॥ ८७ ॥

सस्मितं सकटाक्षश्च मुखचन्द्रस्तनोघ्नतम् । काचिच्छोर्णिसुललितां दर्शयामासकामतः
काचित्कान्तं करे कृत्वा संस्थाप्य ध्रौणिदेशतः ।

चकार चूडानिर्माणं मालतीमाल्यसंयुतम् ॥ ८९ ॥

काचिचूडां समारुप्य मयूरपिच्छकं ददौ । गुह्यां माल्यञ्च चूडायां घेष्टयामास काचन
प्रददौ स्वामिने कामात् प्रेमवर्धनहेतवे । काचित्काञ्चित्समारुप्य नग्नानृत्यातु कामतः

प्रेषयामास कृष्णस्य कोट्टे चन्दनचर्चिते । ननृतुश्च जयुः काञ्चित् फान्तरुत्थातुकामतः
नर्तनं फारयामास तञ्च काचिद्वलेन च । कृष्णाञ्च वस्त्रं कस्याश्च विचकर्प कुतूहलात्

काञ्चित् कृत्वा तु नगनाञ्च फस्यैचिदंशुकं ददौ ।

कृष्णो राधां समारुप्य वासयामास वक्षसि ॥ ९४ ॥

तस्याश्च कवरीं रम्यां सुनिर्माणञ्चकार ह । सिन्दूरञ्च ददौ माले कस्तूरीविन्दुमिः सह
 अतिसूक्ष्मं चन्दनेरदुं कौतुकात्तदधो ददौ । पत्रावलीं सुललितां सुकपोले चकार ह ॥
 बहिःशुद्धांशुकं चाह परिधायैव प्रयत्नतः । ददौ सद्रत्नमञ्जीरे गृहीत्वा चरणाम्बुजे ॥ ६७ ॥
 नखनिर्माणं कृत्वा सुन्दरं याचकं ददौ । भूषणैर्मूषितां कृत्वा सम्प्रलिप्यानुलेपनैः ॥ ६८ ॥
 दत्त्वा च मालतीमालां सुचुम्ब्य च पुनः पुनः । चारुलोचनपद्मे च चकाराञ्जनसंयुते ॥ ६९ ॥
 प्रददौ नासिकामध्ये दुर्लभं गजमौक्तिकम् । शोणितशे च स्तनयोर्नखच्छिद्रं चकार ह
 चकार दन्तदलनं पक्वविभ्याधरे परे । सरसश्च तटे रम्ये पुण्योद्याने सुनिर्जने ॥ १०१ ॥
 बहिःश्चन्द्रोदये रम्ये पुष्पचन्दनचर्चिते । अगुरुचन्दनाकेन धायुना सुरभीकृते ॥ १०२ ॥
 भ्रमरप्यनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरतभृते । बहुमूर्त्तीः संविधाय योगितां परमो गुरुः ॥ १०३ ॥
 पुनश्चकार भृङ्गारं गोपीनां चित्तहारकः । किङ्किणीनां कङ्कणानां नूपुराणाञ्च नारद ॥
 भृङ्गारोद्रेकतस्तत्र चभूय सुन्दरो वरः । मूर्च्छामघापुस्ताः सर्वा नयसङ्गममावृतः ॥ १०५ ॥
 यभूपुरचलास्पन्दाः पुलकाञ्चितविप्रहाः । भृङ्गारविरते भूते संप्रापुञ्चेतनां पुनः ॥ १०६ ॥
 नखदन्तप्रहारञ्च प्रचकार परस्परम् । कृष्णः कररुहाघातं ददौ तासां कुचोपरि ॥ १०७ ॥

शोणीदेशे सुकठिने नखचित्रं चकार ह ।

नोवीविहंसिता तासां कवरी क्षुद्रघण्टिका ॥ १०८ ॥

दूरीभूतं सुवसनं सुवेशं सुमनोहरम् । आलिङ्गनं नवविधं चुम्बनाष्टविधं मुदा ॥ १०९ ॥
 भृङ्गारं षोडशविधं चकार रसिकेश्वरः । अङ्गेरङ्गानि प्रत्यङ्गैः प्रत्यङ्गानि च योषिताम् ॥

चकारालिङ्गनं प्रीत्या कामुकीनाञ्च कामुकः ।

नारीणां षोडश कलाः शृङ्गारस्तत्प्रमाणकः ॥ १११ ॥

कलाभेदेन तदुभेदं कामशास्त्रविदो विदुः । प्रकृतं द्वादशविधं चकार रसिकेश्वरः ॥ ११२ ॥

निरूपितं कामशास्त्रे चकारेशस्ततोऽधिकम् ।

कीदृशरम्भे च मध्ये च विरतौ कर्म योषिताम् ॥ ११३ ॥

प्रीत्यर्थमपि कर्त्तव्यं चकारेशस्ततोऽधिकम् ।

गोपीकङ्कणरेताभिः पादालककचिह्नितः ॥ ११४ ॥

शुशुभे कृष्णदेहश्च यथाद्विगैस्त्रिणेन च । एवम्भूते पूर्णराससंभूते रासमण्डले ॥ ११५ ॥

समाजग्मुः सुराः सर्वेसकलत्राश्रसानुगाः । सुवर्णस्यन्दनस्थाश्चकौतुकात्स्वगणावृताः

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गाः कामवाणप्रपीडिताः ।

ऋपयो मुनयश्चैव सिद्धाश्च पितरस्तथा ॥ ११७ ॥

विद्याधराश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः । सस्त्रीकाश्च समाजमुर्द्वदृशुश्च मुदान्विताः ॥

दिव्यस्यन्दनमारुह्य शातकुम्भचिनिर्मितम् ।

सुशोभितञ्च मणिना रत्नसारपरिच्छदम् ॥ ११६ ॥

बहिःशुद्धांशुकेनैव वेष्टितं सुमनोहरम् । श्वेतचामरयुक्तञ्च सद्गन्तव्यदर्पणास्त्युजम् ॥ १२० ॥

शतचक्रं चित्रयुक्तं मनोयायिम नोहरम् । सद्गन्तसारनिर्माणकलशोज्ज्वलशेखरम् ॥ १२१ ॥

समाजगाम भगवान् पार्थव्या सह शङ्करः ।

वामपार्श्वे महाकालो दक्षिणे नन्दिकेश्वरः ॥ १२२ ॥

पुरतः कार्तिकेयश्च स्वयं देवो गणेश्वरः । पिङ्गलाक्षादयः सर्वे पार्षदाः परितस्तयोः ॥

क्षेत्रपालादयः सर्वे तथाष्टौ भैरवेश्वराः ।

वक्षःस्थलस्थिता दुर्गा सस्मिता वक्रलोचना ॥ १२४ ॥

भारत्या सह ब्रह्मा च शातकुम्भरथस्थितः । वामे सत्पथस्तस्य दक्षिणे सनकादयः ॥

सुवर्णस्यन्दनस्थाश्च धर्मः साक्षी च कर्मणाम् ।

वक्षःस्थलस्थिता तस्य मूर्तिः स्मेरानना सती ॥ १२६ ॥

पश्यन्ती पूर्णरासञ्च सकामा वक्रलोचना । परितः पार्षदाः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा ॥

शच्या सह महेन्द्रश्च रोहिण्या च कलानिधिः ।

स्वाहासार्धं स्वयं बहिः सूर्यश्च संज्ञया सह ॥ १२८ ॥

समाजगाम कामश्च रति कृत्वाच पक्षसि । सर्वे ब्रह्माश्चदिकपाला आजग्मुःसकलत्रकाः

आकाशस्थाश्च ददृशुः सरासं रासमण्डलम् । केचिच्च मुमुदुस्तत्र मूर्च्छामापुश्च केचन ॥

मुहूर्त्तश्च सुराः सर्वे सस्मिताश्च मुदान्विताः । चन्दनद्रववृष्टिञ्च पुष्पवृष्टिञ्च चिक्षिपुः ॥

कस्तूरीयुक्तमाढ्यानां वृष्टिञ्चकुर्मुनीश्वराः । रासं दृष्ट्वा देवपत्न्यः कामवाणप्रपीडिताः ॥

स्थले रतिरसं कृत्वा जगाम यमुनाजलम् । राधया सह कृष्णश्च पूर्णब्रह्मसनातनः ॥

गोपीभिः सह जग्मुश्च मायाः श्रीकृष्णरूपिकाः ।

प्रपीडिताः कामबाणेः क्रीडाञ्चक्रुर्जले मुदा ॥ १३४ ॥

जलं ददौ राधिकायै स कामो माधवः स्वयम् ।

ददौ सा च माधवाय कामार्तायाञ्जलित्रयम् ॥ १३५ ॥

वस्त्रं जग्राह तस्याश्च सा च नग्रा बभूव ह । मालाञ्चिच्छेद कवरीं चकार शिथिलाहरिः
सिन्दूरपत्रकं लुप्तं वेशञ्च जलताडनैः । भूविचित्रमोष्ठरागं लुप्तं कज्जललोचनम् ॥ १३७ ॥
ताञ्च नग्रां समाश्लिष्य निममज्ज जलेहरिः । प्रहृत्याभ्यन्तरे क्रीडां सुतस्थौ च तया सह
ताञ्च नग्रां दर्शयित्वा गोपिकां ब्रीडया नताम् । सस्मितां प्रेरयामास दूरतो यमुनाजले
सा वेगेन समुत्थाय बलाजग्राह माधवम् । गृहीत्वा मुरलीं कोपात् प्रेरयामास दूरतः
गृहीत्वा पीतवसनश्चकार तं दिगम्बरम् । घनमालाञ्च चिच्छेद ददौ तोयं पुनः पुनः ॥
हरिं पुनः समाकृष्ण प्रेरयामास पाथसि । गम्भीरे स्रोतसि मुने निममज्ज जगत्पतिः ॥
उत्थाय माधवः शीघ्रं तां गृहीत्वा प्रहस्य च । कृत्वा वक्षसि नग्राञ्च चुचुभ्यच पुनः पुनः
एवन्ता मूर्त्तयः सर्वा गोपीभिः सह कौतुकात् । क्रीडां विचक्रुर्मुनातीरनीरे मनोहरे ॥
तीरं गत्वा तया सार्धं हरिर्निग्रश्च मग्नया । सातं ययाचे वसनं सच तां सस्मितां सतीम्
राधिकायै ददौ वस्त्रं रयां मालाञ्च माधवः । प्रददौ हरये वस्त्रं वंशीं राशेश्वरी तथा
चन्दनागुरुकस्तूरीं सर्वाङ्गे कुङ्कुमान्विताम् ।

कृष्णस्य परया भक्त्या ददौ श्रोणिस्थितस्य च ॥ १४७ ॥

निर्माय चूडां ललितां कामिनीचित्तमोहिनीम् । शोभनैर्मालतील्यैश्चकार वेष्टनं पुनः ॥
श्रीकृष्णो राधिकायाश्च कवरीं सुमनोहराम् । कृत्वा कुन्तलसंस्कारं निर्ममे पत्रकावलीम्
ददौ ललाटे सिन्दूरं कस्तूरीविन्दुभिः सह । तदधश्चन्दनेन्दुश्च सुसूक्ष्मं सुमनोहरम् ॥
नद्याङ्कं स्तनयोरूपोदरस्येव घनं मुदा । दत्त्वा तां वासयामास वह्निशुद्धांशुकेन वै ॥ १५१ ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमानां द्रवेण सः । कृत्वा वक्षसि संलिप्य चुचुभ्यच मुहुर्मुहुः ॥
पुनराश्लेषणं कृत्वा ददौ मालां गले पुनः । भूयणीभूषितां कृत्वा मञ्जीरश्चरणे ददौ ॥ १५३ ॥

धलककञ्चरणयोर्नखेषु च ददौ पुनः । एवं गोपश्च गोपीनां विदधौ च पृथक् पृथक् ॥
 पुनः प्रजमुस्ता मत्ताः सुन्दरं रासमण्डलम् । पूर्णेन्दुचन्द्रिकायुक्तं रतियोग्यं सुनिर्जनम्
 माधवीकेतकीकुन्दमालतीनां मनोहरैः । चम्पयूथीमल्लिकानां पुष्पीश्च सुरभीकृतम् ॥१५६॥
 दृष्ट्वा च स्फुटितं पुष्पञ्चयनं कर्तुमीश्वरी । गोपीर्नियोजयामास कौतुकेनच राधिका ॥
 काश्चिन्नियोजयामास मालानिर्माणकर्मणि । काश्चित् ताम्बूलसञ्जेपुकाश्चिच्चन्दनघर्षणे
 मालाचन्दनताम्बूलं गोपीदत्तञ्च सुन्दरी । ददौ कृष्णाय संप्रीत्या सस्मिता वक्त्रलोचना
 काश्चिन्नियोजयामासुः कृष्णसद्गीतकर्मणि । मृदङ्गमुरजादीनां वादनेषु च काश्चन ॥
 एवं रासे रतिं कृत्वा लीलया हरिणा सह । विजहार च सर्वत्र निर्जनेषु मनोहरम् ॥
 पुष्पोद्यानेषु रम्येषु सरसाञ्च तटेषु च । कन्दरे कुन्दरे रम्ये नदेषु च नर्देषु च ॥१६२॥
 भतीचनिर्जनस्थाने श्मशाने गिरिगह्वरे । धाञ्छितेषुच नारीणां त्रयस्त्रिंशद्दनेषु च ॥१६३॥
 भाण्डीरे श्रीवने रम्ये कदम्बकानने तथा । तुलसीकानने कुन्दघने चम्पककानने ॥१६४॥
 निम्बारण्ये मधुघने जम्बीरकानने तथा । नारिकेलघने पूगघने च कदलीघने ॥ १६५ ॥
 वदरीकानने विल्वघने नारिङ्गकानने । अश्वत्थकानने वशवने दाडिमकानने ॥ १६६ ॥
 मन्दारकानने तालघने चूतघने तथा । केतकीकाननेऽशोकघने यजूरकानने ॥ १६७ ॥
 आम्रातकघने जम्बूगह्वने शालकानने । कटकीकानने पद्मघने जातिघने मुने ॥ १६८ ॥
 न्यग्रोधगह्वने घोरे श्रीपण्डकानने तथा । प्रहृष्टकेसरघने सर्वतोऽपि पिलक्षणे ॥१६९॥
 एवं रमे कौतुके कामार्तित्रशदिवानिशम् । तथापि मानसम्पूर्णं न च किञ्चिद्व्यभूय ह ॥
 न कामिनीता कामश्च शृङ्गारेण निवर्तते । अधिकं घर्दते शब्दयथाग्निर्घृतधारया ॥१७१॥
 जगमुर्वेदाः स्वर्गोद्देशं देव्यश्च मुनयस्तथा । ते सर्वे प्रशशंसुश्च विस्मयञ्च यगुर्मदा ॥
 गेहे गेहे नृपेन्द्राणां लेभिरे जन्म भारते । दग्धाः कामाग्निनाशेन देव्यः शृङ्गारलालसाः
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मपरवर्ते रास-

क्रीडाप्रस्तावो नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ।

ऊनात्रंशोऽध्यायः

रासक्रीडावर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ गोपाङ्गनाः सर्वाः काममत्ततया मुने । अतिप्रौढाश्च मानिन्यो नेश्वरं मेनिरे पतिम्
काश्चिदूचुरहो कृष्णं सस्मिता चकलोचना । मालतीपुष्पमुत्तोल्य देहि मे मालिकामिति

काश्चिदूचुरये कृष्ण स्वक्रोडेऽस्मांश्च कुर्विति ।

गृहीत्वा श्रीहरेः स्कन्धमारुरोह च काचन ॥ ३ ॥

उवाच काचिहर्षेण प्रमत्ता प्राणवल्लभम् । स्वकीयपीतवसनं परिधारय मामिति ॥ ४ ॥

उवाच काचिद्रीशान्तं सिन्दूरं देहि मामिति ।

उवाच काचित् प्राणेशं शीघ्रमागत्य साम्प्रतम् ॥ ५ ॥

कृत्वा कुन्तलसंस्कारं कुरु मे कवरीमिति । काश्चित्संप्रेरयामासुः श्रीखण्डं घल्लुवाय च
स्वाङ्गवेशविधायिन्यो भूपार्थं श्रुतिमूलतोः । उवाच काचित् कामेन परं सङ्केतपूर्वकम्
पश्यन्ती तन्मुखाभोजं सस्मिता मैथुनाय च ।

काचिज्जग्राह मुरली बलादाकृष्य माधवम् ॥ ८ ॥

जहार पीतवसनं कृत्वा नग्नश्च कामिनी । कामिन्यः काश्चिदित्यूचुर्मानिन्यो मधुसूदनम्
अलक्तकद्रव्यं देहि पादयोर्नखरेषु च । उवाच काचित्प्रेम्णा तं गण्डयोः स्तनयोर्मम ॥
नानाचित्रविचित्राढ्यं कुरु पत्रावलीमिति । कृत्वानुमानं मनसा दृष्ट्वा तासां प्रमत्तताम्
माधवो राधया सार्द्धमन्तर्धानं चकार ह । अतीवनिर्जने स्थाने मुदा स्वेच्छामयोविभुः
कलामानप्रकारश्च शृङ्गाश्च चकार ह । पर्वते पर्वते रम्ये द्वीपे द्वीपे सुनिर्जने ॥ १३ ॥
तटे तटे नदीनाञ्च सर्वजन्तुविचर्जिते । श्रीगोष्ठे रत्नशैले च वेलागङ्गातटेऽपि च ॥ १४ ॥
कालिन्दे च पुलिन्दे च मन्दिरे गन्धमादने । मनोहरे कुन्दघने काचेरीतीरनीरजे ॥ १५ ॥
पुष्पभद्रापुलिनजे पुष्पोद्याने सुपुष्पिते । सर्वत्र रमणं कृत्वा राधावेशं विधाय च ॥

जगाम-मलयद्रोणी-रम्याश्चन्दनवायुना । शय्यां पुष्पमयी कृत्वा तत्र रेमे तथा सह ॥

अतीवसुखसम्मोगान्मूर्च्छां संप्राप्य राधिका ।

कृत्वा वक्षसि गोविन्दं पुलकाञ्चितविग्रहा ॥ १८ ॥

दृष्ट्वा तां मूर्च्छितां कृष्णो धनधोणिपयोधराम् ।

विलुप्तवेशां कामार्तां नद्यां शिथिलकुन्तलाम् ॥ १९ ॥

चेतनां कारयामास कृत्वा वक्षसि तन्निद्रिताम् । पासयामासयसनं राधाया मेखलाम्बरम्

कथरीं रचयामास किञ्चिद्वामेनवङ्किमाम् । मालतीमाल्यसंयुक्तां कुन्दपुष्पैश्च वैष्टिताम्

तस्याः कपाले सिम्बूरतिलकं सुन्दरं ददौ ।

गण्डयोः स्तनयोश्चित्रां चकार पत्रिकां मुदा ॥ २० ॥

सालककांश्च नखरान् चित्रितान् पद्मपत्रयोः । नखैःकृत्रिमपद्मानि निर्ममे श्रोणिवक्षसोः

उत्थायाथ तथा साङ्गं जगाम ह सरोवरम् । नानाप्रकारपद्मानां राजिभिश्च विराजितम्

निर्मलस्फटिकाकारजलपूर्णं मनोहरम् । हंसकारण्डवाकीर्णं जलकुमुदकूजितम् ॥ २५ ॥

मधुलुब्धमधुस्राणां पद्मस्थानं सुपद्मजम् । चावणा कलशश्चेन शब्दितं शश्वदेव हि ॥

तत्र स्नात्वा जलकीडाञ्चकार ह तथा सह ।

जलं ददौ राधिकायै मुदा सा माधवाय च ॥ २७ ॥

सहस्रदलपद्मे च गृहीत्वा माधवः स्वयम् । एकं ददौ राधिकायै ररक्ष स्वार्थमेककम् ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवमीप्सितम् । स्वाङ्गं दत्त्वा राधिकायै लिलेप राधिकेश्वरः

ततो गच्छन्तया साङ्गं ददर्श पुरतो घटम् । अतीवोत्तुङ्गशालाग्रमतिविस्तृतमेव च ॥ ३० ॥

मूले योजनपर्यन्तं छावया परिवेष्टितम् । उवास तत्र गोविन्दः केतकीवनसन्निधौ ॥

पुष्पाक्तेन सुशीतेन वायुना सुरभीकृतं । चित्रं रहस्यं सुचिरं पुराणञ्च पुरातनम् ॥ ३२ ॥

प्रहर्षितश्च श्रीकृष्णः कथयामास राधिकाम् ।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श मुनिपुङ्गवम् ॥ ३३ ॥

भागच्छन्तश्च तं दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणम् । न दृष्ट्वा हृदये रूपमीशस्य परमात्मनः ॥ ३४ ॥

ध्यानाद्विरतमग्रे च पश्यन्तं बहिरेव तत । सर्वावयवचक्रञ्च कृष्णं यच्च दिगम्बरम् ॥ ३५ ॥

नाम्नाऽष्टवक्त्रं जटिलं ज्जलन्तं ब्रह्मतेजसा । मुखतोऽग्निमुद्गिरन्तं तपोराशिमिचोत्थितम्
अहो किं वा ब्रह्मतेजो मूर्त्तिमन्तमिव स्वयम् । नखश्मश्रुसुदीर्घञ्च शान्तं तेजस्विनं परम्
पुटाञ्जलियुतं भक्त्या भीतं प्रणतकन्धरम् ।

दृष्ट्वा हसन्ती राधां तां वारयामास माधवः ॥ ३८ ॥

प्रभावं कथयामास मुनीन्द्रस्य महात्मनः । अथ प्रणम्य गोविन्दं तुष्टाव मुनिपुङ्गवः ॥
यत् स्तोत्रञ्च पुरा वक्तुं शङ्करेण महात्मना ॥ ३९ ॥

अष्टावक्त्र उवाच ।

गुणातीत गुणाधार गुणधीज गुणात्मक । गुणीश गुणिनां योज गुणायन नमोऽस्तु ते
सिद्धिस्वरूप सिद्ध्यर्थंश सिद्धिधीज परात्पर । सिद्धिसिद्धगुणाधीशसिद्धानां गुरवे नमः
वेदधीज वेदज्ञ वेदिन् वेदविदां पर । वेदाज्ञातोऽसि रूपेश वेदज्ञेश नमोऽस्तु ते ॥४२॥
ब्रह्मानन्तेश शोपेन्द्र धर्मादीनामधीश्वर । सर्वं सर्वेश सर्वेश योजरूप नमोऽस्तु ते ॥४३॥
प्रकृते प्राकृत प्राज्ञ प्रकृतीश परात्पर । संसारवृक्ष तनुधीज फलरूप नमोऽस्तु ते ॥

सृष्टिस्थित्यन्तबीजेश सृष्टिस्थित्यन्तकारण ।

महाविराट् तरोर्वीज राधिकेश नमोऽस्तु ते ॥ ४५ ॥

अहो यस्य त्रयः स्कन्धा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।

शाखा प्रशाखा वेदाद्यास्तपांसि कुसुमानि च ॥ ४६ ॥

संसारधिकला एव प्रकृत्यङ्कुरमेव च । तदाधार निराधार सर्वाधार नमोऽस्तु ते ॥
तेजोरूप निराकार प्रत्यक्षानूहमेव च । सर्वाकारातिप्रत्यक्ष स्वेच्छामय नमोऽस्तु ते ॥
इत्युक्त्वा स मुनिश्रेष्ठो निपत्यचरणाम्बुजे । प्राणांस्तत्याज योगेन तथोःप्रत्यक्ष एव च
पपात तत्र तद्देहः पादपद्मसमीपतः । तत्तेजश्च समुत्तस्थौ ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥५०॥
सप्ततालप्रमाणान्तु चोत्थाय च पपात ह । भ्रामं भ्रामश्च परितो लीनं कृत्वा पदाम्बुजे ॥
अष्टावक्त्रस्तं स्तोत्रं प्रातर्हृत्पाय यः पठेत् । परं निर्वाणमोक्षञ्च समाप्नोति न संशयः ॥
प्राणाधिको मुमुक्षुणां स्तोत्रराजश्च नारद । हरिणाहो पुरा वक्तो वैकुण्ठे शङ्कराय च
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
मुनिमोक्षणं नामोन्विंशोऽध्यायः ।

त्रिंशोऽध्यायः

राधाश्रीकृष्णसंवादवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

महामुने रहस्यञ्च श्रुतं ब्रह्मन् किमद्भुतम् । मृते मुनौ किञ्चकार श्रीकृष्णो भक्तयत्सलः
श्रीनारायण उवाच ।

दृष्ट्वा मृतं मुनिं कृष्णः संस्कारं कर्नमुद्यतः । कृत्वा वक्षसि तद्देहं हरोदोच्चैर्यथा नरः ।
बाहुभ्याञ्च समाश्लिष्य पिपेयोद्रिक्तमोहतः । निर्गतं भस्मनिकरं शयाद्वज्राङ्गघर्पणात् ।
रक्तमांसास्थिहीनं तच्छरीरञ्च महात्मनः । पट्थिर्वर्धसहस्राणि निराहारः कृतो मुने ।
वर्धं लोहितमांसास्थि ज्वलता जडराग्निना । बाह्याश्चानविहीनस्य हरिपादाब्जचेतसः ।

चितां चन्दनकाष्ठेन निर्माय मधुसूदनः ।

कृत्वाऽग्निकार्यं तत्रैव स्थापयामास शोकतः ॥ ६ ॥

वदौ चितायामग्निञ्च काष्ठं दत्त्वा शवोपरि ।

ज्वलितायां चितायाञ्च मूर्च्छामाप क्षणं विभुः ॥ ७ ॥

तेद्देहे भस्मसाद्भूते नेदुर्दुन्दुभयो विधि । यभूव पुष्पवृष्टिश्च तत्क्षणाद्गगनादहो ॥८॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र रत्नसारविनिर्मितम् । स्पन्दनञ्च मनोयायि घस्त्रमाल्यपरिच्छदम् ॥

पार्षदप्रवरैर्गुक्तं श्रीकृष्णसदृशैर्वरेः । भाविर्वभूव गोलोकात्सुन्दरं पुरतो हरेः ॥ १० ॥

अथरुह्य रथान्तूर्णं पार्षदप्रवरा हरेः । सर्वे समानरूपास्ते प्रणम्य राधिकेश्वरो ॥ ११ ॥

धृतयन्तं सूक्ष्मदेहं प्रणमय्य मुनीश्वरम् । रथे कृत्वा तु तं देहं जग्मुर्गोलोकमुत्तमम् ॥१२॥

गते मुनीन्द्रे गोलोकं वृन्दावनविनोदिनी । यभूव विस्मिता साध्वी पप्रच्छ जगद्दीश्वरम्

श्रीराधिका उवाच ।

कोऽयं नाथ मुनिश्रेष्ठः सर्वावयववङ्किमः । भतिपर्योऽञ्जनाकारस्तेजीयानतिकुत्सितः ॥

कथं या निर्गतं भस्म देहादस्य किमद्भुतम् ।

ब्रह्माजगद्विधातापि न विरक्तः कलत्रवान् । त्यागेदोपस्तत्कदाविन्नास्माकं त्यक्तयोपिताम्
स्वभार्याञ्च परित्यज्य यो गृह्णाति परस्त्रियम् । यशोधनानुपांहा निर्भवे जीवन्मृतस्य च
भुवि नास्ति यशो यस्य जीवनं तस्य निष्फलम् ।

सुसम्पदः किं राज्येन सुखेन च तपस्विनः ॥ ६१ ॥

निष्कामेन च वृद्धेन मया कित्ते प्रयोजनम् । सुवेशं सुन्दरं मातर्पुत्रानं पश्य सुन्दरि ॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा चुकोपाप्सरसांवरा । उवाच भूयोवाक्यं तं अस्ता प्रस्फुरिताधरा
रम्भोवाच ।

आरुचम्पकवर्णामः कन्दर्पसमसुन्दरः । तपःप्रभावात्सशोकः सुवेशः सम्मतः स्त्रियाः

त्वया विनाभ्यं कं यामि को वास्ति त्वत्परः पुमान् ।

पुंश्चली त्वां परित्यज्य का जीवति स्मरातुरा ॥ ६५ ॥

शीघ्रं मां भज विप्रेन्द्र दग्धां कामाग्निना सदा ।

कामो नश्यति मां त्वत्तो यथा रम्भां मतङ्गजः ॥ ६६ ॥

न चेच्छापं प्रदास्यामि यद् वेदविदां पर । मां वा दारुणशापं वा सत्वरं स्वीकुरु प्रभो
दग्धाः प्राणामनो दग्धं स्वात्मा वा इतिसन्ततम् । नवभृङ्गारपीयूषपाननिर्वाणताम्रजेत्

स्वान्तदुःखेन दुःखार्तो योऽयं शपति निश्चितम् ।

तं शापं खण्डितुं शक्नो न विधाता जगत्पतिः ॥ ६६ ॥

द्विजोत्सवावच श्रुत्वा यभूयध्यानतत्परः । नोवाच किञ्चिन्मौनस्थः सातं कोपाच्छापह

हे वक्रचित्त ते विप्र सर्वावयववक्रिमम् । शरीरमञ्जनाकारं रूपयोधनवर्जितम् ॥ १०१ ॥

अतीवचिरुताकारं त्रिषु लोकेषु गर्हितम् । पुरातनं तपो नष्टं सद्यो भवतु निश्चितम् ॥

इत्युत्वा पुंश्चली कामात्कामलोकं जगाम सा । अविरेण मुनीन्द्रश्च न ददर्श हरेः पदम्

पदारविन्दविरहात्समुद्विग्नो यभूव ह । स्वाङ्गञ्च दृष्ट्वा विरुतं पूर्वपुण्यविषर्जितम् ॥

कृत्वाऽग्निकुण्डं शोकेन प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः ।

मया दृष्टो वरो दत्तो दिव्यज्ञानेन बोधितः ॥ १०५ ॥

आश्वासश्चरुतः प्रीत्या ततः शान्तो यभूव ह । अङ्गान्यष्टौ च वक्राणि दृष्टातूर्णं महामुनेः

—अष्टावक्रोति तन्नाम कौतुकेन मया कृतम् ॥ १०६ ॥

मद्राक्ष्यात् मलयद्रोणीमिमामागम्य सत्वरः । पट्टिर्वर्षसहस्राणि चकार परमन्तपः ॥
तपोऽघसाने मद्भक्तो मया युक्तः कृतः प्रिये । सर्वस्मिन्प्रलये नष्टे न मद्भक्तः प्रणश्यति ॥
सुचिरेणैव तपसा ज्वलता जठराग्निना । त्यक्तवाहारस्यान्तरञ्च भस्मपूर्णं तपो मुनेः ॥
आगतं मलयद्रोणिं मुनिहेतोर्भम प्रिये । मष्टावक्राच्च मद्भक्तो न भूतो न भविष्यति ॥
एवम्भूतस्तपोनिष्ठः प्रपौत्रो ब्रह्मणो मुनिः ।

निष्कलः पुंश्चलीशापाद् ब्रह्माऽपूज्यो यथा पुरा ॥ १११ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं रहस्यञ्च महात्मनः । सुखदं पुण्यदं गूढं किं भूयः श्रोतुमर्हसि ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
राधामंशने त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

एकत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मणः शापकारणकथनम् ।

श्रीराधिकोवाच ।

किमाश्चर्यं ध्रुतं नाथ चरितं सुमनोहरम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि ब्रह्मणः शापकारणम्
यो विधाता त्रिजगतां तपसां फलदायकः । स कथं कुलटाशापादपूज्यश्च बभूव ह ॥ २ ॥
श्रीकृष्ण उवाच ।

मन्वन्तरे रेवतश्च सुचन्द्रो नृपुङ्गवः ॥ तपस्वी वैष्णवश्रेष्ठो ज्ञानी परमधार्मिकः ॥ ३ ॥
स च पूर्वं तपः कुर्वन्नाजगाम मम प्रिये । इमाञ्च मलयद्रोणी भारतेषु मनोहराम् ॥ ४ ॥
तपश्चकार राजेन्द्रो वर्णाणाञ्च सहस्रकम् । जीर्णं तस्य शरीरञ्च कठोरेण तपस्विनः ॥ ५ ॥
पत्नीकाञ्छादितं देहं दृष्ट्वा धाता रूपानिधिः ।
आजगाम घरं दातुं तपःस्थानं सुनिर्जनम् ॥ ६ ॥

गच्छन्तीं कामलोकञ्च सकामां पश्य मां प्रिये ।

सह संख्या समालोच्य मनसा गच्छ तं प्रियम् ॥३६॥

निवद्ध्य नीचीं केशाञ्च कृत्वा वेशमभीप्सितम् । मुनिमोहनवीजञ्च तन्मोहं कुचमोहिनि
कथयस्व महाभागे वचनं हृदयङ्गमम् । रक्षात्मानं प्रभाषञ्च स्त्रीजातीनां जगत्त्रये ॥३७॥
स्वामिप्रायश्च सुरती न प्रकाश्यः कदाचन । स्वान्तं कान्तं स्यानुत्कृष्टमृज्यीसहचरीयिना
तस्माद्यत्नेन हृद्वाक्यं प्रकाश्यञ्च प्रिये प्रिये । अन्यथा चोपहासाय मरणायैव कल्पते ॥
तस्याश्च वचनं श्रुत्वा सस्मिता सा सुलज्जिता । इद्यञ्च कथयामास यद्वेतोस्तादृशीगतिः
मोहिन्युवाच ।

यावद् दृष्टो मया रम्भे निर्जने चतुराननः । ताघन्मनो मेऽतिदग्धं शश्वन्मनसिजानलैः
न दत्तमात्मने भक्ष्यमन्तरे न हि रोचते । जानामि नाहमुदयं यामिनीशदिनेशयोः ॥३८॥
अधुना न हि भेदो मे सततं रघुपञ्चानयोः । मम प्राणाः प्रतीक्षन्ते तस्यालिङ्गनमेव च
क्षणं विज्ञाय न चिरं यास्यन्ती नान्यथा प्रिये ।

कामज्वालाकलापैश्च स्वर्णाकारं कदेवरम् ॥३९॥

अनादारेण चैवानी यभूष दग्धशैलवत् । गन्तुं स्थातुं न शकारं शयनं कर्तुमुद्यता ॥४०॥
धिगस्तु पुंश्चलीजातिं मामेव च विशेषतः । कमुपायं करिष्यामि यद् रम्भेति साम्प्रतम्
लज्जां वापि शरीरं वा विसृजामि च किं द्वयोः ॥४१॥

मोहिनीवचनं श्रुत्वा प्रहस्याप्सरसां वरा । तामुवाच हितं नीतमुपायं शुभकारणम् ॥
रम्भोवाच ।

पयमेतद्दहो भद्रे भद्रस्य कारणं तव । सर्वं त्वपनयिष्यामि शृणुपायं भयं त्यज ॥४२॥
कृत्वा वेशमपूर्वञ्च पूर्वमारार्य्य मन्मथम् । तेन साधुं स्वयं गत्वा मोहं कुरु च मामिनि
जितेन्द्रियाणां प्रवरं साक्षान्नायायणात्मकम् । बिना कामसहायेन काशक्ताजितुमीश्वरम्
भज कामं तपः कृत्वा पुष्करं व्रज मोहिनि । सद्यः साक्षात् स भवितादयालुर्योपितां प्रभुः
इत्युक्त्वा तामप्सरसां प्रवरा काममन्तिकम् ।

जगामेन्द्रियशान्त्यर्थं सा जगाम च पुष्करम् ॥४३॥

पुष्करे च तपः कृत्वा कामं सम्प्राप्य मोहिनी । जगाम तेन सार्धञ्च ब्रह्मलोकमनामयम्
ददर्श निर्जनस्थञ्च मोहिनी कमलोद्भवम् । तमेव मुग्धं कर्तुञ्च समारेभे पुरःस्थिता ॥
क्षणं ननर्त सुचिरं सुगानेन क्षणं जगौ । सङ्गीतं मम सम्यन्धि भक्तानां चित्तमोहनम् ॥

विधाता जगतां तस्याः श्रुत्वा सङ्गीतमीप्सितम् ।

पुलकाञ्चितसर्पाङ्गो मुमोह साधुलोचनः ॥६०॥

दृष्ट्वा मुग्धं चतुर्वक्त्रं मोहिनी दृष्टमानसा । कलाप्रमाणं भावंञ्च चकार तत्र लीलया ॥
स्याङ्गं सन्दर्शयामास स्मेरमूर्ध्निपूर्वकम् । का लज्जा तस्य संसारे यः कामहतचेतनः ॥
विधाय ब्रह्मा तद्भावं नतयम्बो यभूय ह । प्रदाय तस्य दानञ्च धिरतः श्रीहरिं स्मरन् ॥
विधाय ब्रह्मणो भावं शुष्कफण्टोष्ठताल्रका । हतोद्यमा सा तुष्टाय कामं कामप्रदं धरम्
मोहिन्युवाच ।

सर्वेन्द्रियाणां प्रधरं विष्णोरंशञ्च मानसम् । तद्वै कर्मणां बीजं तदुद्वय नमोऽस्तु ते ॥

स्वयमात्मा हि भगवान् ज्ञानरूपो महेश्वरः ।

नमो ब्रह्मन् जगत्स्रष्टस्तदुद्वय नमोऽस्तु ते ॥ ६६ ॥

सृष्टिः सर्वशरीरेषु दृष्टिश्च योगिनामपि । जगत्साध्यं तुराराध्यं दुर्निवारं नमोऽस्तु ते
सर्वाजित जगज्जेता जीवजीव मनोहर । रतिबीजं रतिस्वामिन् रतिप्रियं नमोऽस्तु ते
शश्वद्योपिदधिष्ठानं योपिप्राणाधिकं प्रियं ।

योपिद्वाहनं योपास्त्रं योपिदुबन्धो नमोऽस्तु ते ॥६६॥

पतिसाध्यकराशेरूपाधारं गुणाश्रयं । सुगन्धिवातसन्धिं मधुमित्रं नमोऽस्तु ते ॥
शश्वद्योनिरुताधारं स्त्री सन्दर्शनवर्धनं । विदग्धानां धिरहिणां प्राणान्तकं नमोऽस्तु ते
अरूपा येषु ते नार्थं तेषां ज्ञानविनाशनम् ।

अनूहरूपभक्तेषु रूपासिन्धो नमोऽस्तु ते ॥७२॥

तपस्विनाञ्च तपसां विघ्नबीजावलीलया ।

मनः सकामं मूक्तानां कर्तुं शकं नमोऽस्तु ते ॥७३॥

तपः साध्याश्च राध्याश्च सदैवं पाञ्चभौतिकाः । पञ्चेन्द्रियरुताधारं पञ्चयाणं नमोऽस्तु ते

मोहिनीत्येषमुत्तथा तु मनसा सा विधेः पुरः । विरराम नम्रवक्त्रा बभूव ध्यानतत्परा ॥
 उक्तं माध्यन्दिने कान्ते स्तोत्रमेतन्मनोहरम् ।
 पुरा दुर्वाससा दत्तं मोहिन्यै गन्धमादने ॥७६॥
 स्तोत्रमेतन्महापुण्यं कामी भक्त्या यदा पठेत् ।
 अभीष्टं लभते नूनं निष्कलङ्को भवेद् ध्रुवम् ॥७७॥
 चेष्टा न कुरुते कामः कदाचिदपि तं प्रियम् । भवेदरोगी श्रीयुक्तः कामदेवसमप्रभः ।
 वनितां लभते साध्वी पत्नी त्रैलोक्यमोहिनीम् ॥७८॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
 राधाप्रश्ने मोहिनीरुतस्तोत्रप्रसङ्गो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।

द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्ममोहिन्योः संवादः ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

मोहिनीस्तवनेनैव कामस्तुष्टो बभूव ह । चकार शरसन्धानमन्तरिक्षे स्थितः स्वयम् ॥
 मन्त्रपूतं महास्त्रञ्च चिक्षेप पितरं मुदा । बभूव सञ्जलो ब्रह्मा कामास्त्रेण च कामुकः ॥
 क्षणं निरीक्षणं स्रक्ते मोहिन्यास्ये पुनः पुनः ।
 ज्ञानं प्राप्य तदा धाता विरराम हरिं स्मरन् ॥३॥
 बुबुधे मनसा सर्वं चरितं मन्मथस्य च । शशाप तं सुतमपि विधाता क्रोधचिह्नलः ॥४॥
 हे काम योपनोन्मत्त मूढैश्वर्य्येण गर्धितः । भविता दर्पमङ्गस्ते शुरोर्मै हेलनादिति ॥५॥
 हतोद्यमो जगामाशु मन्मथो मधुना सह । ब्रह्मणः शापभीतश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥
 इत्युवाच जगद्धाता मोहिनी मदनातुराम् ।
 चतुर्वक्त्रञ्च पश्यन्ती सस्मितं वक्त्रचक्षुषा ॥६॥

मातर्मोहिनि गच्छ त्वं निष्फलं कर्म चात्र ते ।

ज्ञातस्तपाभिप्रायश्च नाहं योग्योऽस्य कर्मणः ॥८॥

वेदे जुगुप्सितं कर्म तदेव कर्तुमक्षमः । वेदकर्ता स्वयमहं व्यवस्थाकारको भवे ॥९॥

अर्फीर्त्तिर्वेदघक्तुश्च निन्द्यश्च किमतः परम् ।

उपस्थिता च या योषिवत्याज्या रागिणामपि ॥ १० ॥

श्रुती श्रुतमितित्याज्या सर्वदेवतपस्थिनाम् । अहोसर्वैः परित्याज्या पुंश्चलीच विशेषतः
धन्यायुःप्राणयशसां नाशिनी दुःखदायिनी । स्वकार्य्यतत्परा शश्वत्परकार्य्यचिन्ताशिनी
निष्ठुरानघघातिभ्यः सर्वापद्वयीजरूपिणी । विद्युद्दीप्तिर्जले रेखा लोभान्मैत्री यथामवेत्
परद्रोहाद्यथा सम्पत्कुलद्रोमेव तत्समम् । सर्वेभ्यो हिंस्रजन्तुभ्यो विपद्वयीजासदैव हि
यो विश्वसेतां समूढो विपत्तस्य पश्येपदे । त्वञ्च रूपवतीधन्या वञ्चिता कामुकैःसदाः

यूनां सम्पत्स्वरूपा च विपत्तुल्या तपस्थिनाम् ।

त्यमेवाप्सरसां श्रेष्ठा सर्वदा स्मिरयोधना ॥ १६ ॥

सर्वैव कर्मयोग्यञ्च युधानं पश्य सुन्दरि । त्वं विदग्धा च योषित्सु विदग्धान्वेषणं कुर्व
विदग्धाया विदग्धेनसङ्गमो गुणवान्भवेत् । जरातुरोऽहंघृद्धश्च तपस्वी वैष्णवो द्विजः
अस्यतन्त्रः पराधीनः का रति पुंश्चलीषु मे । भवे वत्सेगच्छ शीघ्रे विहाय पितरञ्जमाम्
नाम्नाऽहञ्च जगत्त्रष्टा तस्मात्तव पिता सदा । मन्मथञ्चन्द्रमित्रञ्च जयन्तं नलकृषणम् ॥

स्वर्वेद्यौ चन्द्रतनयं दितिपुत्रांश्च सुन्दरान् ।

कामशास्त्रेषु निष्णातान् रतिकर्मचिशारदान् ॥ २१ ॥

या मां यासि हि तांस्त्यक्त्वा सा विदग्धा च कामुकी ।

सदा सम्भोगविषये स्त्रियं प्रार्थयते पुमान् ॥ २२ ॥

इती चेत् प्रयाति पुरुषं विपरीतं विङ्मयनम् । सर्वपात्रेषु रत्नानां स्त्रीरत्नां दुर्लभं परम्
स्वयंप्रार्थयतेस्वामी न तुस्यामिनमेव च । योषिन्नातिपुष्टिक्ताश्चस्वयंपा समुपस्थिताः
भवेदु दूरं स्वल्पमूल्यं रत्नं स्वयमुपस्थितम् ।

नित्यं पुमान् स्त्रियं याति स्त्री वा याति च न प्रियम् ॥ २५ ॥

लोकाचारेपुवेदेपुन स्वीयातिपरप्रियम् । स्ववस्तुमुङ्क्त्यः कालेशास्त्रोक्तविधिपूर्वकम्
स पूज्यो न भवेत् पूज्यो यदतिः परवस्तुपु । कः कस्य शत्रुरबले निशामय जगत्त्रये
स्वेन्द्रियाः शत्रवः सर्वे शत्रुता यन्निमित्ततः । वेदोक्ताचरणे सर्वं मित्रञ्च जगतां जगत्
कृते वेदपिरुद्धे च मित्रं शत्रुर्भवेद् ध्रुवम् । वेदोक्तं कृतवन्तश्च हरिस्तुष्टो दिवानिशम् ॥

हरौ तुष्टे जगत्तुष्टं तस्मिन् कष्टे भयो रिपुः ।

कुत्रास्ति कुलटाजातिः साध्वीजातिश्च कुत्र वा ॥ ३० ॥

स्वकीयाचरणात्सर्वं भवे भवति कर्मणः । स्त्रीजातिः प्रकृतेरंशा नारायणविनिर्मिता ॥
दुःशीलापुंश्चली निन्द्यासुशीला च पतिव्रता । पतिव्रतास्तु त्रिविधाः पुंश्चलीपुत्र योपितः
तासामेवविधानास्ति स्वयंयातिपरप्रियम् । स्त्रीजातीनाञ्चमध्ये च कास्त्येवंकुलकज्जला
भवे रत्येस्वयं दूढावेशं कृत्वाप्रयातितम् । क्षोभितायदि पश्यन्ती भक्ष्यद्रव्यमसाध्यकम्
वैकुल्यान्नहि तत्साध्यं सामान्यमेव केवलम् । इत्येवमुक्त्वा जगतां विधाता विरराम च
वक्तुं समुद्यता सा च क्रोपप्रस्फुरिताधरा ॥ ३५ ॥

मोहिन्युधाच ।

वार्त सर्वं जगद्भातश्चरितं तव साम्प्रतम् । त्वया निषोधितानीतिर्मनो मे न स्थिरंभवेत्
भूतं त्वयि विशिष्टञ्च यावद् दूष्टः क्षणे भवान् ।

त्वद्वक्तृदृष्टिमात्रेण सर्वं जाराश्च विस्मृताः ॥ ३७ ॥

दैर्घं कामाग्निना दग्धं यदा त्यक्तुं समुद्यता । निसिपेच च मां रम्भाप्रवक्षो मन्त्रमीदृशम्
तदा कामसहायेन त्वत्समीपं समागता । स मधुस्तव शापेन स जगाम हतोद्यमः ॥
अहो गन्तुमशक्ताहं त्वया यद्यपिमर्त्सिता । सर्वाद्वेषेव मे जाड्यंचभूव साम्प्रतंचिभो
कृपां कुरु कृपासिन्धो न मां हन्तुं त्वमर्हसि ।

तवाश्लेषणमात्रेण विज्वराहं सुनिश्चितम् ॥ ४१ ॥

त्वमेवजगतां धाता कुलटाऽहञ्च कर्मणा । सन्तो गवं न कुर्वन्ति कर्मसाध्याश्च जीचिनः
कश्चित् प्रयाति यानेन यदन्ति तञ्च केचन । करं गृह्णाति नृपतिः कर्मणा ददति प्रजाः ॥
कश्चित् सिंहासनस्यश्च नृपपात्रश्च कश्चन । कर्मणा धातृकाः केचित् केचिद्वाहनपालकाः

शूकरीजठरं कश्चित् संप्रयाति स्वकर्मणा । कश्चिच्छ्रद्धयाश्च जठरं तव पुत्राश्च केचन
केचित् श्रुत्वा हरेर्मर्त्तिकं कर्मणा तस्य पार्षदाः ।

केचिद्वचन्ति ह्रमयो विद्यायां देवदोषतः ॥ ४६ ॥

स्वर्गं प्रयान्ति राजेन्द्राः केचिद्यस्यस्यकर्मणा । केचित्प्रयान्तिनरकं विण्मूत्रे तत्रपच्यते
कर्मणाकश्चिदित्थेन्द्रःसुराणां प्रथमस्ययम् । केचित्सुरानरा.केचित् केचिद्यभुद्रजन्तवः
केचिच्च कर्मणा विप्रा वर्णधेष्टा महीतले । केचिद्रुभूपा वैश्यशूद्राः केचिच्चम्लेच्छजातयः
केचित्स्यकर्मणा ब्राह्म ज्ञानेनसर्वदाशनः । केचिन्मूर्खा.केचिदन्धाः स्वाङ्गहीनाश्चकेचन
केचिच्छास्त्रं बोधयन्ति शिष्यवर्गान् स्वकर्मणा ।

केचित् पठन्ति सर्वाथं जानन्ति गुरुवक्त्रतः ॥ ५१ ॥

भवन्ति कर्मणा केचिद्देहे स्थावरजङ्गमे । तपस्वी नवघाती च त्वञ्च ब्रह्मा च कर्मणा
काचित्स्यकर्मणासाध्वीपूज्येह च परत्र च । काचिद्वेद्यातदाहारभुंक्ते श्रुत्वाङ्गविक्रयम्
स्ववैश्याहं सुरपुरे सुरभोग्या सुपूजिता । येवामालिङ्गनेनैव कर्मणां खण्डनं भवेत् ॥
मनः स्वभाववीजश्च स्वभावः कर्मवीजकः । तत्कर्म फलवीजश्च सर्वेषां जनको हरिः
फलं ददाति नियतं कर्मद्वारा विभुः स्वयम् । सर्वेभ्यो यत्तवात्रित्यं कर्मरूपं जनार्दनः
फुतो हेतोर्निन्दिताऽ त्वयैव भर्त्सिता कथम् ।

जगत्स्रष्टुरीश्वरस्य पादाब्जं द्रष्टुमागता ॥ ५७ ॥

स्यन्ते यस्य पदद्वन्द्वं न हि पश्यन्तियोगिनः । तमीश्वरं पतिं कस्मिच्छया स्वयमागता
गत्वा हि कस्यचित्स्थानमस्पृश्येहपरत्र च । कस्यचित्पादरजसायशसाभान्तियोपितः
इत्युत्तपा मोहिनीशीघ्रं गत्योचास हरे.पुरः । स्वयं विधाता जगताञ्चकम्पेकुलटामयात्
सस्मिता पद्मनयना कामभावं चकार ह । स्वाङ्गञ्च दर्शयामास कामयाणप्रपीडिता ॥
पतस्मिन्नन्तरे कामः सर्वज्ञः सर्वयोगचित् । आविर्भूय पञ्चवाणान्निचिक्षेप च ब्रह्मणि
संमोहनं समुद्वेगं योजस्तम्भितकारणम् । उन्मत्तवीजं ज्वलद्दं शदयचेतनहारकम् ॥
एतान् प्रक्षिप्य मदनोऽप्यन्तरिक्षस्थितः स्वयम् ।

किदुरान् प्रेपयामास संमोहाय पितुर्मुदा ॥ ६४ ॥

घसन्तं कोकिलालीश्व गन्धचातं मनोहरम् । नियुज्याम्यन्तरं गत्वा तद्विकारं चकारह
 पुंस्कोकिलः कलं राघमुवाच तत्समीपतः । पट्पदः सुन्दरं सूक्ष्मं त्रुगुञ्जे पुरतः स्थितः
 शश्वद्वयौ गन्धवहो मन्दोऽतिशीतलः प्रिये । सन्ततं मुदितस्तत्र बभ्राम च मधु स्वयम्
 पुलकाञ्चितसर्चाङ्गो यभूय जगतां विधिः । ददर्श मोहिनीभावं ग्रहस्य च पुनः पुनः ॥
 अतीववक्रनयना कामास्त्रहतचेतना । विधाता मुबुधे सर्वं सर्वबन्धनिबन्धनम् ॥ ६६ ॥

नियन्तुं न मनः शक्तः सस्मार श्रीहरिं भ्रिया ।

तुष्टाय मनसा कृष्णं शान्तं हृत्पङ्कजस्थितम् ॥ ७० ॥

बिभुजं मुरलीहस्तं हरिं पीताम्बरं परम् । अतीवकमनीयञ्च किशोरं स्थिरयौवनम् ।

रत्नालङ्कारभूषाढ्यं सस्मितं श्यामसुन्दरम् ॥ ७१ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एक्ष रक्ष हरे माञ्च निमग्नं कामसागरे । दुष्टकीर्तिजलपूर्णं च दुष्पारं बहुसङ्कुटे ॥ ७२ ॥

भक्तिविस्मृतिवीजे च विपत्सोपानदुस्तरे । अतीवनिर्मलज्ञानबधुः प्रच्छन्नकारणे ॥ ७३ ॥

जन्मोर्मिसङ्घसहिते योषिन्नक्रीडसङ्कुले । रतिस्त्रोतः समायुक्तं गम्भीरे धोर एव च ॥

प्रथमामृतरूपे च परिणामविपालये । यमालयप्रदेशाय मुक्तिद्वारातिविस्मृते ॥ ७५ ॥

बुद्ध्या तरण्या विज्ञानैरुद्धरास्मानतः स्वयम् ।

स्वयञ्च त्वं कर्णधारः प्रसीद मधुसूदन ॥ ७६ ॥

मद्विधाः कतिचिन्नाथ नियोज्या भवकर्मणि ।

सन्ति विश्वेश विधयो हे विश्वेश्वर माधव ॥ ७७ ॥

न कर्मक्षेत्रमेवेदं ब्रह्मलोकोऽयमीप्सितः । तथापि न स्पृहा कामे तद्वक्तव्यवधायके ॥

हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो रुपां कुरु । त्वं महेश महाज्ञाता दुःखज्ज्ञं मां न दर्शय

इत्युचवा जगतां धाता विरराम सनातनः ।

ध्यायं ध्यायं मत्पदाब्जं शश्वत्सस्मार मामिति ॥ ८० ॥

ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तञ्च यः पठेत् ।

स चैवाकर्णधिषये न निमग्नो भवेद् ध्रुवम् ॥ ८१ ॥

मम मायां विनिर्जित्य स ज्ञानं लभते ध्रुवम् । इह लोके भक्तियुक्तो मद्भक्तप्रचरो भवेत्
इति श्रीब्रह्मवेवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीरुष्णजन्मखण्डे
ब्रह्ममोहिनीसंवादे नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्माणं प्रति मोहिन्याः शापः ।

श्रीरुष्ण उवाच ।

कृत्या ब्रह्मा हरः स्तोत्रं तस्यो तस्याः समीपतः ।

मनोमत्तगजेन्द्रश्च कामासक्तं निवारयन् ॥ १ ॥

दिव्यज्ञानाद्भुतेनैव मया दत्तेन राधिके । उवाच मोहिनी तञ्च परिहासपरं वचः ॥ २ ॥

मोहिन्युवाच ।

इङ्गितेनैव नारीणां सद्यो मत्तंभवेन्मनः । करोत्यारुण्यसम्भोगं यः स पवोत्तमो विभो

ज्ञात्वा स्फुटमभिप्रायं नाय्यां संप्रेषितो हि यः ।

पश्चात् करोति शृङ्गारं पुरुषः स च मध्यमः ॥ ४ ॥

पुनः पुनः प्रेषितश्च स्त्रिया कामार्तया च यः ।

तया न लितो रहसि स ऋषो न पुमानहो ॥ ५ ॥

गृही तपस्वी कामी वा त्यजेत् स्त्रियमुपस्थिताम् । प्रजेत् परत्र नरकमपूज्यश्च भवेद्दिह

नष्टश्रीर्नष्टरूपश्च नष्टबुद्धिर्भवेद्भु ध्रुवम् । स सद्यः ऋष्यतां याति ब्रह्मशापेन योषितः ॥

उत्तिष्ठ जगतीनाथ पारं कुर्व स्मरणंघं । निमग्नो दुस्तरे घोरे कर्णधारभयानके ॥ ८ ॥

अतीवनिर्जनस्थाने सर्वजन्तुविचर्जिते । सुगन्धिचायुना रम्ये पुंस्कोकिलस्तध्रुते ॥ ९ ॥

सततं त्पन्मनस्कामां दासीं जन्मनि जन्मनि ।

प्रीणादि रतिपुण्येनामूल्यरत्नेन सत्वरम् ॥ १० ॥

श्रुत्वा रहस्यं तत्सर्वं ग्रहस्योवाच तं विभुः ।

सत्यं सारं हितं वाक्यं जगताञ्च सुखावहम् ॥ ४६ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

स्वयं त्वं वेदविदसि विदुषाञ्च गुरोर्गुरुः । त्वया कृतञ्च यत् कर्म इह केन न तत् कृतम्
स्त्रीजातिः प्रकृतेरंशा जगतां थीजरूपिणी । स्त्रीणां विडम्बनेनैव प्रकृतेश्च विडम्बनम् ॥
न तद्भारतवर्षञ्च पुण्यक्षेत्रमनुत्तमम् । कीडाक्षेत्रे ग्रहलोके कस्तवेन्द्रियनिग्रहः ॥ ५२ ॥

यदि तद्भारते देवात्कामिनी समुपस्थिता ।

स्ययं रहसि कामार्ता न सा त्याज्या जितेन्द्रियैः ॥ ५३ ॥

त्यक्त्वा परत्र नरकं प्रजेदिति विडम्ब्यतः । भवेदेव हि दुःखार्ता शापं दद्याच्च तं ध्रुवम् ।

विहाय स्वकलत्रञ्च यो गृह्णाति परस्त्रियम् ।

लोभात् कामसुखाद्वापि सोऽधमो नात्र संशयः ॥ ५५ ॥

पातयित्वा सच पतेद्दश पूर्वान् दशापरान् ।

त्यक्त्वा स्वस्वामिनं या च परं गच्छति कामतः ॥ ५६ ॥

न पुमान् च वेश्याञ्च कुलस्त्री तत्र दुष्यति । उपायेनच या साध्यं करोति परपूरयम् ॥

सा तिष्ठत्येवान्धकूपे यावच्चन्द्रविघाकरो । स्वर्घेश्या च दिवं याति सततं कुलधर्मतः ॥

ध्रुवंभवेत् सोऽपराधी तस्या अप्ययमानतः । तमुपायं करिष्यामि शतो यत्र विशुध्यति
क्षणं तिष्ठ जगन्नाथ पापिनञ्च भवार्णवे । एतस्मिन्नन्तरे कश्चिदाजगाम हरैः पुरः ।

द्वारपालः शीघ्रगामीत्युवाच नतकन्धरः ॥ ६० ॥

द्वारपाल उवाच ।

अन्यग्रह्माण्डाधिपतिर्ब्रह्मा दशमुखः स्वयम् । द्वारे तिष्ठन्महामकस्त्वां द्रष्टुं स्वयमागतः

द्वारपालवचः श्रुत्वा स चैवानुमतिं ददौ । द्वारपालाज्ञया ब्रह्मा तुष्टावागत्य भक्तिः ॥

स्तोत्रैरतिविचित्रैश्च चतुर्वक्त्राश्रुतेरहो । स्तुत्योवासाज्ञया विष्णोः कृत्वा पश्चाच्चतुर्मुखम्

नारायणो द्वारपालानित्युवाच चतुर्भुजान् । आगन्तुकं जनमपि प्रवेशयत सादरम् ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वृन्दावनविनोदिनि । आजगामात्तिप्रणतो ब्रह्मा शतमुखः स्वयम् ॥

दिव्यैः स्तोत्रैश्च तुष्टाय निगूढमतिमुन्दरैः । स्तुत्वोचास परैः स्तोत्रैः सर्वेषामश्रुतेरहो ॥
 तदनन्तरयोरग्रे भक्त्या शतमुपः स्वयम् । जगद्विधौ सभायाश्च तत्र तिष्ठति तत्क्षणे ॥
 आजगामातिब्रह्माण्डाधिपो ब्रह्मा हरैःपुरः । सहस्रवदनश्रीमान् भक्त्या तन्नात्मकन्धरः
 स्तुत्वोचास परैः स्तोत्रैः सर्वेषामश्रुतेरहो । तच्च पप्रच्छसर्वेषां ब्रह्माण्डानाञ्च ब्रह्मणाम्
 धार्तां विषयिणाञ्चैव सुराणाञ्च क्रमेण च ॥ ६६ ॥

चतुर्मुखस्य तान् दृष्ट्वा दर्पभङ्गो बभूव ह । आत्मानं विष्णुसदृशं मन्यमानस्य वर्पतः ॥
 अस्यान् स दर्शयामास ब्रह्माण्डस्थान् विधीन् हरिः ।
 दृष्ट्वा च कृपया तत्र मृततुल्यं चतुर्मुखम् ॥ ७१ ॥
 यावन्ति गान्धर्वलोमानि सन्ति नारायणस्य मे ।
 तत्प्रमाणाश्च ब्रह्माण्डा ब्रह्मणः सन्ति सन्ततम् ॥ ७२ ॥

नारायणं प्रणम्याशु जग्मुस्ते स्थालयं प्रति । स मेने विधिरात्मानमत्यल्पं विषयाधिपम्
 पप्रच्छ प्रणतं विष्णुर्लज्जानम्रंचतुर्मुखम् । षट् तत् किमिदं दृष्टं स्वप्रवद्वधताधुना ॥ ७४
 नारायणवचः श्रुत्वा विधिरित्युक्त्वास्तवा । भूतं भव्यं भविष्यञ्च तव मायासमुद्भवम्
 इत्येषमुक्त्वा स विधिस्तस्थौ संसदि लज्जया ।
 सर्वान्तर्द्वामी भगवान् तस्योपायं विनिर्ममे ॥ ७६ ॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
 मोहिनीशापब्रह्मदर्पभङ्गो नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

जाह्नव्या जन्मवृत्तान्तः ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शङ्करः समुपस्थितः । सस्मितो वृषभेन्द्रस्थो विभूतिभूषणः स्वयम्
 व्याघ्रचर्मग्वरधरो नागयज्ञोपवीतकः । स्वर्णाकारजटाभारमर्धचन्द्रश्च संदधत् ॥ २ ॥

त्रिशूलपट्टिशकरो विघ्नत् खट्वाङ्गमुत्तमम् । सद्गन्तसाररचितस्वरयन्त्रकरो मुदा ॥ ३॥
 बाहनादघरुहाशु भक्तिनघ्रात्मकन्धरः । प्रणम्य कमलाकान्तं धामे चोवास भक्तिः ॥
 आजगमुर्मुनयः सर्वे सुराः शक्रादयस्तथा । आदित्या वसवो रुद्रा मनवः सिद्धचारणाः
 पुलकाञ्चितसर्वाङ्गास्तुष्टुयुः पुरुषोत्तमम् । प्रणम्य तं शिवं सर्वं सुराश्च नम्रकन्धराः ॥
 एतस्मिन्मन्तरे तत्र सङ्गीतं शङ्करो जगौ । कृत्वाऽतीव सुतालश्च स्वरयन्त्रसमन्वितः ॥

भावयोश्च गुणाढ्यानं राससम्यन्धि सुन्दरम् ।

समयोचितरागेण मनोमोहनकारिणा ॥ ८ ॥

यत्र कण्ठैकतानेत्र चैकमानेन चारुणा । पद्मेदचिरामेण गुरुणा लघुना क्रमात् ॥ ९ ॥
 गमकेतातिवीर्षेण मदेन मधुरेण च । भवेति दुर्लभं खट्वं प्रीत्या स्वेन विनिर्मितम् ॥ १० ॥
 पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रः पुनः पुनः । तदैव ध्रुतिमात्रेण मूर्च्छां प्राप्य विचेतनाः ।
 बभूव रुद्ररूपाश्च मुनयः पुरतः प्रिये । रुद्ररूपाः सुराः सर्वे विधातृहरिपार्षदाः ॥ १२ ॥
 नारायणश्च लक्ष्मीश्च गायकश्च शिव स्वयम् । जलपूर्णञ्च वैकुण्ठं दृष्ट्वा व्रस्तोऽहमीश्वरि
 गत्या मूर्तीर्विनिर्माय सर्वाश्च तादृशीरिति । तत्स्वरूपास्तदस्त्राश्च तत्स्वबाहनभूषणा
 तत्स्वभावास्तन्मनस्कास्तत्तद्विषयमानसाः । स्थानं निर्माय परितो वैकुण्ठस्य चतुर्दिशि
 सद्भिष्ठातृदेवी च आजगाम स्वमालयम् । शरीरजा सुराणां सा बभूव सुरनिम्नगा ।

मुक्तिदा च मुमुक्षूणां भक्तानां हरिभक्तिदा ॥ १६ ॥

कोटिजन्मार्जितं पापं विविधं पापिनामहो । यस्याश्च स्पर्शवायोश्च तत्पर्केण विनश्यति
 किं वा न जाने प्राणेशि स्पर्शदर्शनयोःफलम् । किमुतस्नानजन्यञ्च कथयामि निरूपणम्
 सर्वतीर्थोत्तरं पृच्छ्यां पुष्करं परिकीर्तितम् । वेदोक्तञ्च तदेवास्याः कलां नार्हति योऽशीम्
 भगीरथेन चानीता तेन भगीरथोऽस्मृता । गामागता स्रोतसोऽशाद्गङ्गा तेन प्रकीर्तिता
 जानुद्वारा पुरा दत्ता जह्नुना तोयकोपतः । तस्य कन्यास्वरूपा सा जाह्नवी तेन कीर्तिता
 भीष्मः स्वयं घसुर्जातस्तस्यां सा तेन भीष्मसुः ॥ २२ ॥

धारामिस्त्रिसृभिः स्वर्गं पृथिवीमतलं तथा । ममाज्ञया च गच्छन्ती तेन त्रिपथगामिनी
 प्रधानराधया स्वर्गसाच मन्दाकिनीऽस्मृता । योजनयुतविस्तीर्णा प्रस्थे च योजनाऽस्मृता

श्रीरतुल्यजलाशयवदत्युत्तुङ्गतरङ्गिणी । वैकुण्ठाद्ब्रह्मलोकञ्च ततः स्वर्गं समागता
स्वर्गाद्विमाद्विमार्गेण पृथिवीमागता मुदा । सा धारालकनन्दाख्या लवणोदेनमिश्रि
शुद्धस्फटिकसङ्काशा बहुवेगयती सती । पापिनां पापशुष्केभ्यं दग्धुं पावकरूपिणी
अतो सागरबंशेभ्यो निर्वाणमुक्तिदायिनी । वैकुण्ठगामिनी सा च स्रोपानरूपिणी च
अतोऽपि मृत्युसमये सतां पुण्यस्वरूपिणाम् ।

आदौ पादौ च संन्यस्य मुखे तोयं प्रदीयते ॥ २६ ॥

गङ्गास्रोपानमारुह्य सन्तो यान्ति निरामयम् । आब्रह्मलोकं संलंघ्य रथस्थाश्चनिराप
दैचात्पुरा प्राक्तनेन मग्ने चेत् कृतपातकैः । लोमप्रमाणवर्षञ्च मोदन्ते हरिमन्दिरे ॥ ३१ ॥
सतो भोगो भवेत्तेषां निश्चितं पापपुण्ययोः । अति स्वल्पेन कालेन कालव्यूहञ्च विभ्रता
सतःपुण्यवतां गेहे लब्ध्वा जन्म च भारते । संप्राप्य निश्चलाभक्तिं भवन्ति हरिरूपि
मृतद्विजानां देहांश्च दैचाच्छूदा वहन्ति चेत् । पद्मप्रमाणवर्षञ्च तेषाञ्च नरकं स्थितिः
सतस्तेषाञ्च साहाय्यं करोति हरिरूपिणी । ददाति मुक्तिं तेभ्योऽपि क्रमेण च कृपाम्
जन्मपुण्यवतां गेहे कारयित्वा च भारते ।

स्थलं ददाति वैकुण्ठे निश्चितं जन्मभिस्त्रिभिः ॥ ३६ ॥

यान्नां कृत्वा तु यः शुद्धो ह्यातुं याति सुरेश्वरीम् ।

पद्मप्रमाणवर्षञ्च वैकुण्ठे मोदते ध्रुवम् ॥ ३७ ॥

गङ्गां प्राप्यानुपद्वेण स्नातिचेत् समलो नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यः पुनर्यदि न लिप्यं
कलौ पञ्चसहस्रार्द्धं स्थितिस्तस्याश्च भारते । तस्याञ्च विद्यमानायांकः प्रभावः कलेर्द्धं
कलौ दशसहस्राणि वर्षाणि प्रतिमा मम । तिष्ठन्ति च पुराणानि प्रभावस्तत्र कः कले
अतलं याति या धारा सा च भोगवती स्मृता ।

पयःफेननिभा शयवदतिवेगयती सदा ॥ ४१ ॥

आकरामूल्यरत्नानां मणीन्द्राणाञ्च सन्ततम् । नागकन्याश्चतत्तीरेर्कीदृन्ति स्थिरयोचना
स्वर्गं देवी च वैकुण्ठे वेष्टयित्वा च सन्ततम् । सहस्रयोजनाप्रस्थे दैर्घ्यं च लक्षयोजन
अस्या घिनाशः प्रलये नास्त्येव दुहितुर्मम । नानारत्नाकरं दिव्यं तत्तीरं सुमनोहरम् ।

इत्येवं कथितं सर्वं जाह्नवीजन्मपुण्यदम् । ब्रह्मणश्च प्रतीकारो माहिनीशापतः ॥ २ ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
 जाह्नवीजन्मप्रस्तावो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मणो गोलोकगमनम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

नारायणश्च ब्रह्माणमुवाच कृपया पुनः । दृष्ट्वा गङ्गाञ्च सर्वेषां मम मायाञ्च मेनिरे ॥ १ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

उत्तिष्ठ गच्छ भद्रन्ते भविष्यति चतुर्मुख । भद्र स्नात्वाभिषत्तस्त्वं पूतो भव ममाज्ञया

त्वं चेत् सत्यं स्वयं पूतः स्पर्शं वाञ्छन्ति तानि च ।

वैष्णवेशस्य तीर्थानि सर्वाणि सततं मुने ॥ ३ ॥

तथापि शापमुक्तस्त्वमत्र प्रकृतिहेलनात् । भद्रङ्कारश्च सर्वेषां पापधीजममङ्गलम् ॥ ४ ॥

शीघ्रं त्वं गच्छ गोलोकं ममालयपरात्परम् ।

प्रकृत्यंशां मङ्गलदां तत्र प्राप्स्यसि भारतीम् ॥ ५ ॥

प्रकृतिं भज कल्याणसृष्टिवीजस्वरूपिणीम् । भद्रो कल्पान्तपर्यन्तं तपस्तप्तं त्वयाधुना

तव मन्त्रं न गृह्णन्ति केऽपि वेश्यामिश्रापतः । यदन्यदेवपूजायां तव पूजा भविष्यति ॥

त्वमेव जगतां धाता स्वात्मारामश्च योपितः । सर्वरूपी च पूजा च सर्वदेहेषु सर्वतः ॥

तदा ममाज्ञया ब्रह्मन् स्नात्वा च जाह्नवीजले । शीघ्रं जगाम गोलोकमांप्रणम्यजगद्गुरुः

ते देवा मुनयः सर्वे प्रजग्मुः स्वालयं मुदा । सुनिर्मलं मम यशो गायन्तश्च पुनः पुनः ।

विधिरागत्यगोलोकं संप्राप्यभारतीसतीम् । सर्वविद्याधिदेवीतां मद्रक्त्राब्जचिनिर्मिताम्

वागोश्वरीञ्च संप्राप्य ब्रह्मा प्रमुदितः स्वयम् । कामास्त्राणाञ्चव्यापारमनुमेनेस्वयंपिभुः

तत आगत्य मां नत्वा प्राप्य त्रैलोक्यमोहिनीम् ।

क्रीडां चकार भगवान् स्थाने स्थानेऽतिनिर्जने ॥ १३ ॥

रतिं चिरतरं कृत्वा विरराम स्वयं विधिः । वागीश्वरीमुवाचेदं त्वं वै ब्रह्मा च कर्मणा
काचित् स्वकर्मणा साध्वी पूज्या च स्थिरयौवना ।

तथैव कर्मयोगञ्च युवानं पश्य सुन्दरि ॥ १५ ॥

विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान् भवेत् । जरातुरोऽहंशुद्धश्चतुर्स्थावैष्णवो द्विजः
अस्वतन्त्रः पराधीनः का रतिः पुंश्चलीषु मे । आजगाम ब्रह्मलोकं पुनरैव निजालयम् ॥
इदंशुर्ब्रह्मलोकस्थस्तां देवीं कौतुकान्विताम् । अतीवसुन्दरीरम्यांशुभ्रवर्णाञ्चसस्मिताम्
शरच्छीतांशुवदनां शरत्पङ्कजलोचनाम् । पद्मविम्बप्रभामुष्ट दीप्तांघ्राधरपल्लवाम् ॥ १६ ॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिमनोहराम् । रत्नकेयूरघलयरत्ननूपुरशोभिताम् ॥ २० ॥
रत्नकुण्डलयुगेन कर्णमूलचिराजिताम् । रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलाम् ॥ २१ ॥
वह्निशुद्धांशुकं सूक्ष्मं विभ्रती नवयौवनाम् । अतीव कमनीयाञ्च पीनश्रोणिपयोधराम् ॥
घोणापुस्तकहस्ताञ्च व्याख्यामुद्राकरां धराम् । ते च निर्मञ्जुनं कृत्वाचक्रुः परममङ्गलम्
पुरी प्रवेशयामासुर्ब्रह्माणं भास्वी मुदा । ब्रह्मा तया सह क्रीडां चकार स दिवानिशम्
अतीव सुखसम्भोगे निमग्नः सततं मुदा । गूढं सर्वपुराणेषु किं पुनः धीमुमिच्छसि ॥

श्रीनारायण उवाच ।

प्राणेशयवनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी । भूयोऽपि परिप्रच्छ कौतुकान्मानसं पुरा ॥ २६ ॥

श्रीराधिकीवाच ।

ब्रह्मा कथं न जग्राह वैज्यां स्वयमुपस्थिताम् ।

न कर्मक्षेत्रे रहसि फलदाता च कर्मणाम् ॥ २७ ॥

उपस्थितायास्त्यागे च महान् दोषो हि योपितः ।

ज्ञातया देव विधाता स कथं तत्याज मोहिनी ॥ २८ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

राधिकायवनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । पादकलस्य कृतान्तमुवाच परमेश्वरीम् ॥

.. श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि पुरावृत्तान्तमोप्सितम् । अकथ्यंगोपनीयञ्च महतामभिनिन्दितम्
एकदा च प्रजाः स्रष्टुं विधाता प्रेरितो मया । ससर्ज मनसा पुत्रान्ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा
सनकञ्च सनन्दञ्च सनातनमनुत्तमम् । सनत्कुमारं चोदुञ्च कर्वि पञ्चशिल्पं विश्वम् ॥ ३२

असितं कपिलं सिद्धं सिद्धागममकलोद्भवान् ।

तान् नग्नान् पञ्चवर्षीयान् पिता स्रष्टुं जगत् ह ॥ ३३ ॥

प्रजाः स्रष्टुं प्रेरकञ्च जनकं तेऽयमग्न्य च । प्रजगमुस्तपसे तूर्णं ममार्चनपरायणाः ॥ ३४
तदा रुष्टो जगद्धाता पुनः पुत्रान् विनिर्ममे । रङ्गानेकादश वरान् खट्वो भीमविग्रहान् ॥

तस्मिन् प्रयुज्य तरसा पुनः पुत्रान् विनिर्ममे ।

योगी योगेन मां ध्यात्वा स्वात्मारामः स्वविग्रहे ॥ ३५ ॥

वशिष्ठं पुलहञ्चैव क्रतुमाङ्गिरसं तथा । भृगुमर्षिं पुलस्त्यञ्च दक्षं कर्षममेव च ॥ ३७ ॥

मरीचिञ्च विनिर्माय प्रजाः स्रष्टुं नियुज्य च । प्रहृष्टमानसः पुत्रं कन्यैकाञ्च ससर्ज ह ॥

कृष्णस्य कामिनः पुत्रः कामदेवो यमूव ह । कन्या पोङ्गशवर्षीया रत्नभूषणभूषिता ॥

उवाच पुत्रं स विधिः सुदीप्तं पुरतः स्थितम् ।

दुर्निवार्यं मत्कलांशं स्वात्मारामं मनोहरम् ॥ ४० ॥

ब्रह्मोवाच ।

स्त्रीपुंसोः क्रीडनार्थाय मुखा त्वञ्च विनिर्मितः ।

हृदि योगेन सर्वेषामधिष्ठानं करिष्यसि ॥ ४१ ॥

संमोहनं समुद्देगं वीजस्तम्भितकारणम् । उन्मत्तवीजं जलदं शश्वच्चेतनहारकम् ॥ ४२

प्रगृहीतान्मया दत्तान् सर्वसंमोहनं कुरु । दुर्घि वराद्वय घत्स भवेपु च ॥

क्षणेन चेतनां प्राप्य ददर्शत्रि च कन्यकाम् ।

तां संभोक्तुं मनश्चक्रे सा दुद्राव मिया सती ॥ ४७ ॥

दृष्ट्वा पश्चाच्च पितरं धावन्तं हतचेतनम् ।

जगाम शरणं शीघ्रं भ्रातृणाञ्च तपस्विनाम् ॥ ४८ ॥

तेषां समीपे संस्थाप्य तमूचुः पितरं क्रुधा । हितं तथ्यञ्च वेदोक्तं नीतिसारं परं वचः ॥

ऋषय ऊचुः ।

अहो किमेतज्जनककर्मतेति विगर्हितम् । नीचानां चरितं यत्तत्करोषि त्वं जगद्विधे ॥

पश्यन्ति सततं सन्तः प्रसूमिध परस्त्रियम् । ये ते सर्वत्र पूज्याश्च परब्रह्म जितेन्द्रियाः ॥

त्वं स्वयं वेदकर्ता च कन्यां संभोक्तुमिच्छसि ।

कन्या च मातृवर्गेषु प्रविष्टा च श्रुती श्रुता ॥ ५२ ॥

गुरोः पत्नी राजपत्नी विप्रपत्नी च या सती । परनी च भ्रातृसुतयोर्मित्र पत्नी च तत्प्रसू-

प्रसूः पित्रोस्तथा भ्रातुः पत्नी श्वश्रूः स्वकन्यकाः ।

जननी तत्सपत्नी च भगिनी सुरभी तथा ॥ ५४ ॥

स्याभीष्टसुरपत्नी च धान्निकान्नप्रदायिका । गर्भधारी स्वनाम्ना च भयात्रातुश्च कामिनी

पता वेदप्रणीताश्च सर्वेषां मातरः स्मृताः । पतास्वपि च सर्वसु न्यूनतानास्ति कातु च

कन्यादातान्नदाता च दानदाताभयप्रदः ।

जन्मदो मन्त्रदो ज्येष्ठप्राता च पितरः स्मृताः ॥ ५७ ॥

पता वहन्ति ये मूढा य एतान् जनकानपि ।

पच्यन्ते नरके ते च यावद्वै ब्रह्मणो घयः ॥ ५८ ॥

तानन्धरूपे संस्थाप्य दूतौ यमकिङ्कराः । कुर्वन्ति साङ्गं शश्वत्पुरीषं पापयन्ति च ॥

तमेव विश्वकर्ता च शास्ता वै शमनस्य च ।

स्वयं विधाता जगतां तेन गृह्णासि कन्यकाम् ॥ ६० ॥

अस्माकं पुरतो दूरं गच्छ कामार्तमानस । न शुर्मा भस्मसात्कर्तुं शक्ताध्यजनकं पपम्

शुरादीपसद्व्याणि क्षन्तुमर्हन्ति पण्डिताः । सर्वेभ्यस्तं विनिज्जन्ति नीतिज्ञाः स्वगुणविता

गृह्णन्तं यदि सर्वस्वं शपन्तं निष्ठुरं गुरुम् । साधवस्तनं निन्दन्ति प्रणमन्ति स्वभक्तितः
ये द्विपन्ति च निन्दन्ति गुरुमिष्टं सुरात्परम् ।

पच्यन्ते तेऽन्धकूपे च यावच्चन्द्रदिवाकरो ॥ ६४ ॥

पुरीषं भुञ्जते नित्यं क्षुभिता यमताडनैः । सर्पप्रमाणकीटैश्च दंशिताश्च दिवानिशम् ॥ ६५ ॥
इत्येषमुक्त्वा मुनयः प्रणेमुस्तत्पदाम्बुजम् । सर्वं भवति दैवेन प्रशान्तमनसा ध्रुवम् ॥
उन्मुखा मुनयः सर्वे यभूवुश्च स्वकर्मणि । ब्रह्मा शरीरं सन्त्यक्तुं व्रीडया च समुद्यतः ॥

योगेन मित्वा पट्चक्रं सर्वान् प्राणानिस्थाय च ।

ब्रह्मरन्ध्रं समानीय तत्प्राज स्वेन वर्त्मना ॥ ६८ ॥

मनसा श्रीहरिं स्मृत्या नमस्कारं चकार ह । न मे मनः परद्रव्ये भविता लोलमीश्वर ॥
प्राणत्यागात् परं दुःखमयशश्च यशस्विनाम् ।

यभूव हृदि कृत्यैकं ब्रह्मा लीनश्च ब्रह्मणि ॥ ७० ॥

कन्या तातं मृतं दृष्ट्वा विलप्य च भृशं मुहुः । योगेन देहन्तत्याज सा प्रलीनाचब्रह्मणि ॥
मृतं तातश्च भगिनी दृष्ट्वा च मुनिपुङ्गवाः । सस्मरुः श्रीहरिकोपात् स्वात्मारामं विलप्य च
नारायणो मदंशश्च कृपयागत्य सत्वरम् । ब्रह्माणं जीवयामास ब्रह्मज्ञानात् सुताश्च ताम्
ब्रह्मा पुरो हरिं दृष्ट्वा वरं वधे स्वधाञ्छितम् ।

भक्तिं त्वच्चरणे शश्वन्निश्चलामनपायिनीम् ॥ ७४ ॥

ब्रह्माणं विरसं दृष्ट्वा तमुवाच कृपानिधिः । प्रबोधवचनं सत्यं नीतिसारं मनोहरम् ॥ ७५ ॥
, श्रीनारायण उवाच ।

शृणु ब्रह्मन् प्रवक्ष्येऽहं मुखमुत्तोल्य साम्प्रतम् ।

त्यज लज्जां जगन्नाथ हृदयञ्चरूपिणीम् ॥ ७६ ॥

सत्कीर्तिरपकीर्तिर्वा सुप्रतिष्ठाप्युपद्रवः । क्षुद्राणाञ्चैव महतां भवन्त्येष स्वकर्मणा ॥
सर्वेषामपि सर्वेभ्यः स्वकर्म बलवन्तरम् । तस्मात्सन्तः प्रकुर्वन्ति नित्यं सत्कर्मसंततम्
केचित् कुर्वन्ति निर्मूलं सर्वेषामपि कर्मणाम् । कृतं कर्म परं भुक्त्वाहरिपादाब्जचेतसः ॥
कुकर्मणश्चापकीर्तिस्ततो लज्जा भवेद् ध्रुवम् । सुकर्मणः सुप्रतिष्ठा सर्वत्रनिर्मलं यशः ॥

कालेन रजसा देहो बलरूपं शुभाशुभम् । कोर्तिर्या त्रिगुणा चैव मोहश्चाप्यशो विधे ॥
ऋणघणापवादाश्च जन्तूनां यान्ति कालतः । महतां तौ च पूर्वोक्तौ नेतरश्च कदाचन ॥

सदापकीर्तिर्यसति परस्त्रीषु च वस्तुषु ।

तस्मात्तेनैव गृह्णन्ति सन्तः स्वहेतुशकारणे ॥ ८३ ॥

स्मर मामन्तरे ब्राह्मे मदीयं विषयं कुरु । अतस्तेन मनो लोलं भविता परवस्तुषु ॥८४॥
योपिदूपा च मे माया सर्वेषां मोहकारिणी । लीलया कुर्वतेमोहं स्यात्पामरास्य सन्ततम्
नानामुद्राश्रये देशे रागिणं सन्ततं रतिः । स्तनाभिधे मांसपिण्डेऽधरे लालालये शुचौ ॥
श्रोणिषक्त्रस्तनं तासां कामदेयालयं सदा । तस्मात्तेनहि पश्यन्ति सन्तोहि धर्मभौरयः

को धर्मः किं यशस्तेषां का प्रतिष्ठा च किं तपः ।

किं बुद्धिर्विद्या दानञ्च परस्त्रीषु च यन्मनः ॥ ८८ ॥

इहाप्यपयशो दुःखं नरकेषु परत्र च । वासः प्रहारस्तेषाञ्च ताडनैः कृमिभक्षणीः ॥८६॥
दुःखबीजं सुखं मत्वा मूढाश्च दैवदोषतः । परस्त्रीसेवनं प्रीत्या कुर्वन्ति सन्ततं मुदा ॥
उत्तमा मत्पदाम्भोजं सत् कर्म मध्यमा सदा । स्मरन्ति शश्वदधमाः परस्त्रीसेवनमुदा
धिपत्तिः सन्ततं तस्य परवस्तुषु यन्मनः । विशेषतः परस्त्रीषु सुवर्णेषु च भूमिषु ॥८२॥
दैवात्परस्त्रियं दृष्ट्वा विरमेद्यो हर्षि स्मरन् । दृष्ट्वा परसुवर्णञ्च हस्तप्रक्षालनाच्छुचिः ॥
सततं नैव संसक्ताः सन्तः स्वस्त्रीषु कामतः । यक्षमव्याधिसानदानिलोफनिन्दाभयेनच
तपस्विनस्तपस्यायां शास्त्रचिन्तासु पण्डिताः ।

योगिनी योगचिन्तासु वेदार्थेषु च वैदिकाः ॥ ९५ ॥

साध्यश्च पतितेषासु गृहस्था गृहकर्मसु । विषयेषु विषयिणो मदका मम सेवने ॥९६॥
एते नियुक्ता एतेषु सभासु च प्रशंसिताः । वेदोक्ताचरणेनैव तद्विरुद्धेन निन्दिताः ॥९७॥
तर्कं नित्यं प्रशंसन्ति शब्दस्तन्मार्गभ्रान्तिषु ।

हालिका अपि निन्दन्ति कुपतर्मगामिनं विधे ॥ ९८ ॥

भविता न परस्त्रीषु परवस्तुषु ते मनः । अय प्रभृति जीयन्तं निषिष्टं मय्रेण च ॥९९॥
मदीयविषये पाह्ये मयादत्तं कुरु प्रियम् । अन्तरा मत्पदाम्भोजचिन्ता धिप्रपिताशिताम्

कन्या भवतु मे ब्रह्मन् कामदेवस्य कामिनी । रतिर्नाम परित्याज्या रत्यधिष्ठातृदेवता॥
 इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमाश्वास्य कमलापतिः । जगाम नित्यं वैकुण्ठं वृन्दावनविनोदन॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधा-
 कृष्णसंवादो नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

हरदर्पभङ्गवर्णनम्

श्रीराधिकोवाच ।

पतेन नियमेनैव ब्रह्मा तत्याज मोहिनीम् । कथं स कुलटाशापादपूज्यः संभूय ह ॥ १ ॥
 कथं तस्य दर्पभङ्गश्चकार कमलापतिः । कथयस्व सर्ववीजं सर्वेपामीश्वरः स्वयम् ॥ २ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

रासेश्वरीवचः श्रुत्वा ब्रह्मस्य रसिकेश्वरः । निगूढमितिहासञ्च तां वक्तुमुपचक्रमे ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

ब्रह्मा चिरं तपस्तप्त्वा मत्तो लब्ध्वा धरं धरम् ।

सृष्टिं तानाविधां कृत्वा विधाता स बभूव ह ॥ ४ ॥

तपसां फलदाता च सर्वेषां शास्तिकृत् प्रभुः । आत्मानमीश्वरं ज्ञात्वा महागर्षोबभूव ह
 ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु गर्वपथ्यन्तमुन्नतिः । इति मत्वा ब्रह्मणश्च दर्पभङ्गः कृतो मया ॥ ६ ॥
 येषां येषां भवेद्दर्पो ब्रह्माण्डेषु परात्परः । विज्ञाय सर्वं सर्वात्मा तेषां शास्ताहमेव च ॥ ७ ॥
 प्रथमे ब्रह्माणो गर्वो मया चूर्णीकृतः श्रुतः । शङ्करस्य च पार्वत्याश्चन्द्रस्य च रवेस्तथा ॥
 चह्नेर्दुर्वाससश्चैव तथा धन्वन्तरैः प्रिये । क्रमेण दर्पभङ्गश्च कथयामि निशामय ॥ ६ ॥
 क्षुद्राणां महताञ्चैव येषाङ्गर्षो भवेत् प्रिये । एवंविधमहं तेषां चूर्णीभूतं करोमि च ॥

श्रीनारायण उवाच ।

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ।

पप्रच्छ राधा यत्नेन सन्त्रस्ता भयविह्वला ॥ ११ ॥

श्रोत्राधिकोवाच ।

कस्य केन प्रभावेण मत्तादर्पो बभूव ह । त्वया केन प्रभावेण तस्य भङ्गः कृतः पुरा ॥ १ ॥

कथयस्व प्राणनाथ सर्वेषां दर्पभञ्जन । दर्पहाभयद प्राणदानैककारणेश्वर ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

येन भूतं गर्वचूर्णं धृतं त्रिजगतां विधेः । अन्येषां श्रूयतां राधे व्यासेन कथयामि ते ।

स्वयं शिषो मदंशश्च संहर्त्ता जगताञ्च यः । तेजसा मत्समः पूर्णा हानेन च गुणेन च

ध्यायन्ति योगिनो यं स योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ।

ज्ञानानन्दस्वरूपोऽयं तस्याध्यानं शृणु प्रिये ॥ १६ ॥

युगपष्टिसहस्राणि तपस्तप्त्वा दिवानिशम् । भूत्वाच मत्कलापूर्णा बभूव मत्समोधिभुः

तपसा तेजसा शश्वत्तेजोराशिर्बभूव ह । सूर्यकोटिप्रभावश्च भक्तानां कल्पपादपः ॥ १८ ॥

ध्यायं ध्यायञ्च योगीन्द्रास्तत्तेजो बहुकालतः । तदन्तरे च पश्यन्ति स्वरूपमसिमुन्दरम्

शुद्धस्फटिकसङ्काशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् । त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्माम्बरधरम् ॥ २० ॥

जपन्तं स्वात्मनात्मानं श्वेताब्जबीजमालया । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं चन्द्रचूडं परात्परम्

स्वर्णाकारं जटाभारं दधतं शिरसा मुदा । शान्तं कान्तं त्रिजगतां भक्तानुग्रहकातरम् ॥

अथ स्वमीश्वरं मत्वा प्रदाता सर्वसम्पदाम् । ददाति सर्वं सर्वैर्म्योवाञ्छितं कल्पपादपः

यो यं वाञ्छति तस्मै वरं दत्त्वा वरेश्वरः । बभूव गर्वसंयुक्तः स्वात्मारामः स्थलीलया

एकदा च वृको दैत्यस्तपस्तेपे शिवस्य च । केदारे च कठोरेण वर्षमेकं दिवानिशम् ॥

नित्यं याति तत्समीपं कृपया च कृपानिधिः । वरं दातुं यथाभीष्टं न जप्राहासुरो धरम्

वर्षान्ते शङ्करः शश्वत्स्थो तत् पुरतः स्धयम् । वरदो भक्तिपाशेन क्षणं गन्तुं न स क्षमः

सर्वैश्वर्यं सर्वसिद्धिं भुक्तिं मुक्तिं हरेः पदम् ।

दैत्यः किञ्चिन्न गृह्णाति परितः शूलपाणिनः ॥ २८ ॥

ध्यायमानं तत्पदाब्जं दृष्ट्वा त्रस्तो महेश्वरः । अयाचितारं निश्चेष्टं करोद प्रेमविह्वलः ॥

अतीव रोदनात्तस्य ध्यानं भङ्गो बभूव । ददर्श पुरतः साक्षादातारं सर्वसम्पदाम् ॥ ३० ॥

कन्या भवतु मे ब्रह्मन् कामदेवस्य कामिनी । रतिर्नाम परित्याज्या रत्यधिष्ठातृदेवता ।
 इत्येषमुक्त्वा ब्रह्माणमाश्वास्य कमलापतिः । जगाम नित्यं वैकुण्ठं वृन्दावनपिनोदकः ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मसङ्घे राधा-
 कृष्णसंवादे नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

पट्त्रिंशोऽध्यायः

हरदर्पभङ्गवर्णनम्

धीराधिकोवाङ्म ।

पप्रच्छ राधा यत्नेन सन्त्रस्ता भयविह्वला ॥ ११ ॥

श्रीराधिकोवाच ।

कस्य केन प्रभावेण महादर्पो बभूव ह । त्वया केन प्रभावेण तस्य भङ्गः कृतः पुरा ॥ १२ ॥

कथयस्व प्राणनाथ सर्वेषां दर्पभञ्जन । दर्पहाभयद् प्राणदानैककारणेश्वर ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

येन भूतं गर्वचूर्णं श्रुतं त्रिजगतां विधेः । अन्येषां श्रूयतां राधे व्यासेन कथयामि ते ॥

स्वयं शिवो मदंशश्च संहर्त्ता जगताञ्च यः । तेजसा मत्समः पूर्णा ज्ञानेन च गुणेन च

ध्यायन्ति योगिनो यं स योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ।

ज्ञानानन्दस्वरूपोऽयं तस्याख्यानं शृणु प्रिये ॥ १६ ॥

युगपद्विस्मयाणि तपस्तपसा दिवानिशम् । भूत्वाच मत्कलापूर्णा बभूव मत्समो विभुः

तपसा तेजसा शश्वत्तेजोराशिर्बभूव ह । सूर्यकोटिप्रभावश्च भक्तानां कल्पपादपः ॥ १८ ॥

ध्यायं ध्यायञ्च योगीन्द्रास्तत्तेजो बहुकालतः । तदन्तरे च पश्यन्ति स्वरूपमसिसुन्दरम्

शुद्धस्फटिकसङ्काशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् । त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्माम्बरधरम् ॥ २० ॥

जपन्तं स्वात्मनात्मानं श्वेताब्जधीजमालया । ईषद्वास्यप्रसन्नास्यं चन्द्रचूडं परात्परम्

स्वर्णाकारं जटाभारं दधन्तं शिरसा मुदा । शान्तं कान्तं त्रिजगतां भक्तानुग्रहकातरम् ॥

अथ स्वामीश्वरं मत्वा प्रदाता सर्वसम्पदाम् । ददाति सर्वं सर्वेभ्योवाञ्छितं कल्पपादपः

यो यं वाञ्छति तं तस्मै वरं दत्त्वा वरेश्वरः । बभूव गर्वसंयुक्तः स्वात्मारामः स्थलीलया

एकदा च वृको दैत्यस्तपस्तेपे शिवस्य च । केदारे च कठोरेण धर्ममेकं दिवानिशम् ॥

नित्यं याति तत्समीपं रूपया च रूपानिधिः । पर दातुं यथाभीष्टं न जग्राहसुरो धरम्

वर्षन्ते शङ्करः शश्वत्स्थो तत्पुरतः स्वयम् । वरदो भक्तिपाशेन क्षणं गन्तुं न स क्षमः

सर्वेश्वर्यं सर्वसिद्धिं भुक्तिं मुक्तिं हरेः पदम् ।

दैत्यः किञ्चिन्न गृह्णाति परितः शूलपाणिनः ॥ २८ ॥

ध्यायमानं तत्पदाम्बुं दृष्ट्वा त्रस्तो महेश्वरः । अयाचितारं निश्चेष्टं करोद् प्रेमविह्वलः ॥

अतीव रोदनात्तस्य ध्यानभङ्गो बभूव । ददर्श पुरतः साक्षादातारं सर्वसम्पदाम् ॥ ३० ॥

यन्मायया वरं वद्रे दैत्येन्द्रो भक्तिपूर्वकम् । हस्तं दधेव यन्मूर्ध्नि स भस्म भवितेति च
ओमित्युक्त्वा प्रयातन्तं दुद्राव दैत्यपुङ्गवः ।

मृत्युञ्जयो मृत्युभयाद् दुद्राव त्रासविह्वलः ॥ ३२ ॥

पपात डमरुस्तस्य व्याघ्रचर्म मनोहरम् । दिगम्बरो दश दिशो भेजे दानवभीतये ॥ ३३ ॥
न हन्ति तञ्च कृपया भक्तञ्च भक्तवत्सलः । दुष्टानुसारं साधुश्च न करोति कदाचन ॥
साधवोऽग्नन्तिऽग्नन्तञ्च भृत्यं पुत्रं प्रियां चिना । प्रबोधितुं न शक्तश्च स्वात्मानं कृपया समम्
शिवः स्वमृत्युं मर्यादा च भीतश्च निरहङ्कृतः । स्मारं स्मारञ्च मां भद्रे मामेव शरणाययी
दृष्ट्वा स्वाश्रममायान्तं शुष्कण्डोष्ठतालुकम् ।

हे हरै रक्ष रक्षेति जपन्तं भयविह्वलम् ॥ ३७ ॥

संस्थाप्य तत्समीपे च स दैत्यो बोधितो मया । पृष्टश्च सर्ववृत्तान्तमुपाच मां क्रमेण च
तदा ममाज्ञया तूर्णं वञ्चितो मायया सुरः । दृष्ट्वा स्वमूर्ध्नि हस्तञ्च सद्यो भस्म यभूव ह
तदा सिद्धाः सुरेन्द्राश्च मुनीन्द्रा मनवो मुदा । तुष्टयुर्मां सुभक्त्या च लज्जया लज्जित शिवः
यभूवः चूर्णस्तद्वर्षो जगाम बोधितो मया । वरं ददाति वरदस्ततो वध्यो ह्यहं शिवः ॥
अथ गर्वान्वितो रद्वो हन्तुं त्रिपुरमुखवणम् । मर्यादा मनसि संहर्त्ता सर्वेषां जगतामिति
कोऽयं पतङ्गवदित्येति मत्वा ययी रणम् । विहाय शूलं महत्तं मदीयकवचं परम् ॥
चिरं यभूव समरं वर्षमेकं दिवा निशम् । न कोऽपि जेतुं कं शक्नो ज्ञौ समौ समरै तदा
पृथिव्याञ्च रणं कृत्वा दैत्येन्द्रो मायया प्रिये ।

अत्यूर्ध्वञ्च समुत्तस्थौ पञ्चाशत्कोटियो जनम् ॥ ४५ ॥

उत्तस्थौ शङ्करस्तूर्णं हन्तुं दैत्यं जगत्प्रभुः । यभूव तत्र युद्धञ्च मासमेकं निराश्रये ॥ ४६ ॥
अस्त्राणि चापं चिच्छेद शङ्करस्यासुरो बली । रथं वमञ्च दैत्येन्द्रश्चापमस्त्राणि शङ्करात्
जघान मुष्टिना रद्वो दानवेन्द्रं प्रकोपतः । वज्रमुष्टिप्रहारेण सद्यो मूर्च्छामवाप सः ॥ ४८ ॥
क्षणेन चेतनां प्राप्य कोपाद्दानवपुङ्गवः । शिवं शयानमुत्तोल्य पातयामास भूतले ॥ ४९ ॥
सरथे पातिने रुद्रे देवा देवर्षयो भिया । तुष्टयुर्मां परित्राहि कृष्णेत्युक्त्वा पुनः पुनः ॥
सस्मार मामेव निर्भयो भयकारणम् । तृष्टाव भक्त्या स्तोत्रेण मया दत्तेन सङ्कटे

तदाहं कलया शीघ्रं वृपरूपं विधाय च ।

शयानं शङ्करं धृत्वा विषाणान्यामुष्कमम् ॥ ५२ ॥

ददौ तस्मै स्वकचचं स्वशूलमग्निमर्दनम् । प्राप्य तद्दानवस्थानमत्यूर्ध्वञ्च निराश्रयम् ॥

मया दत्तेन शूलेन जघान त्रिपुरं हरः । मामेव दर्पहन्तारं तुष्टाव प्रीडितः पुनः ॥ ५४ ॥

सद्यः पपात दैत्येन्द्रश्चूर्णोभूतश्च भूतले । देवता मुनयः सर्वे तुष्टुष्टुः शङ्करं मुदा ॥ ५५ ॥

तत्याज शङ्करो दर्पं विघ्नपीजन्ततो विभुः । ज्ञानानन्दस्वरूपश्च निर्लिप्तः सर्वकर्मसु ॥

ततोऽहं वृपरूपेण बहामि तेन तं प्रियम् ।

मम प्रियतमो नास्ति त्रैलोक्येषु शिवात्परः ॥ ५७ ॥

मनःस्वरूपो ब्रह्मा मे ज्ञानरूपो महेश्वरः । बुद्धिर्मगचती दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ ५८ ॥

निद्रावयःशक्तयो यास्ताःसर्वाः प्रकृतेःकलाः । घागधिष्ठातृदेवी या सा स्वयंचतरस्यती

मम कल्याणाधिदेवो हर्षरूपो गणेश्वरः । परमार्थः स्वयं धर्मो मम भक्तो हुताशनः ॥

सर्वैश्वर्याधिदेवी मे सर्वगोलोकवासिनः । प्राणाधिष्ठातृदेवीत्वं सदा प्राणाधिकामम

गोपाङ्गनास्तद्य कला अतएव मम प्रियाः ।

महोमकूपजा गोपाः सर्वे गोलोकवासिनः ॥ ६२ ॥

तेजःस्वरूपः सूर्यश्च प्राणा मे वायवःस्मृताः । जलाधिदेवो वरुणः पृथिवीमे मलोद्भवा

मम शून्यो महाकाशो मदनो मानसोद्भवः । इन्द्रादयः सुराःसर्वे मत्कलांशांशसम्भवाः

एतानि सृष्टिबीजानि महदादीनि चैव हि । सर्वेषां बीजरूपोऽहं स्वयमात्मा निराश्रयः

जीवो मे प्रतियोग्यश्च कर्मभोगाधिकारकः । अहंसाक्षो निरीदृश्च न भोगी सर्वकर्मसु

भक्तध्यानार्थद्देशोऽयं मम स्वेच्छामयस्य च । प्रकृतिः पुण्योऽहञ्च एक एव परात्परः

इत्येवं कथितं त्रिं शिष्यदर्पचिमोचनम् । सृष्टिवीजञ्च शृणु मे पार्वतीदर्पमोचनम् ॥ ६८ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

इत्युक्तवन्तं श्रीरुण्णं परमात्मानमीश्वरम् । पप्रच्छ राधिकादेवी निगूढमभिधाञ्छितम्

श्रीराधिकोवाच ।

भगवन् सर्वतत्त्वज्ञ सर्वबीज सनातन । यद् मे धाञ्छितं प्रश्नं सर्वसन्देहभञ्जनम् ॥ ७० ॥

दृच्छया तन्नेवेद्यं यो भुङ्क्ते साधुसङ्गतः । पष्टिर्वर्षसहस्राणां प्राप्नोति तपसःफलम्

यो निवेद्य हरिं भुङ्क्ते भक्त्या भक्तश्च नित्यशः ।

किंवा तपस्यां कर्ता च स हरेस्तेजसा समः ॥ २८ ॥

भुतं पुरा त्वन्मुखतः पुष्करे मुनिसंसदि । अहं वेदविधाता न किमहं वक्तुमीश्वरी ॥

सुचिरञ्च तपस्तप्त्वामया लब्धस्त्वमीश्वरः । त्वया विष्णोः प्रसादेन वञ्चिताहं कथं प्रभो

यतो न वत्तं नैवेद्यं विष्णोर्मह्यं त्वयाधुना ।

अतो मत्तो गृहाणेत्तत् फलमेव महेश्वर ॥ ३१ ॥

अथ प्रभृति ये लोका नैवेद्यं भुञ्जते तव । ते जन्मैकं सारमेया भविष्यन्त्येष भारते ॥

इत्युक्त्वा पार्वती माता हरौ पुरतो विभोः । दृष्टिः पपात तत्कण्ठे नीलकण्ठो बभूवसः

तदा शिवः शिवां भक्त्या कृत्वा वक्षसि सादरम् ।

तन्मानभङ्गं स्तोत्रेण विनयेन चकार ह ॥ ३४ ॥

करेण वधूपो नीरं संमृज्य च पुनः पुनः । बोधयामास विविधैर्नैतिवाक्यैर्मनोहरैः ॥

परितुष्टा च सा देवी भर्तारं समुवाच ह । कलेवरञ्च त्यक्ष्यामि नैवेद्येन विना हरैः ॥ ३६ ॥

विभर्ति देहं सततं तव सौभाग्यवर्द्धनम् । कथं बहामि सौभाग्यरहितञ्च कलेवरम् ॥ ३७ ॥

अपूर्वं तव नैवेद्यं जन्ममृत्युजराहरम् । कृत दुष्टञ्च यत्तस्मात् पश्य देहं त्यजामि च ॥

लिङ्गोपरि च यद्वत्तं तदेवामाह्वामीश्वर । सुपवित्रं भवेत्तच्च विष्णोर्नैवेद्य मिश्रितम् ॥ ३९ ॥

इत्येवमुक्त्वा सा देवी देहं त्यक्तुं समुद्यता । व्रस्तो हरस्तत्पुरतः स्तुत्वा च स्वीचकार ह

शङ्कर उवाच ।

स्थिरा भव महादेवि चण्डिके जगदम्बिके । ममापराधमखिलं क्षन्तुमर्हसि सुन्दरि ॥

मां भृत्यं तपसा क्रीतं कृपां कुरु ममोपरि । ब्रह्मविष्णुमहेशानां बीजभूते सनातनि ॥

अहो गोलोकनाथस्य गुणातीतस्य निर्गुणे । सर्वशक्तिस्वरूपे च सदेव सहचारिणि ॥

साकार च निराकारे नित्ये स्वेच्छामये प्रिये ।

कृपया तद्विभोरेव मम वक्षसि साम्प्रतम् ॥ ४४ ॥

सर्वबीजस्वरूपे च महामागि मनोहरे । सर्वसिद्धिप्रदे देवि मुक्तिदे कृष्णभक्तिदे ॥ ४५ ॥

इच्छेयं श्रीहरः साक्षान्नाहं दातुमपि क्षमः । तदा देहं परित्यज्य निर्गुणं वज्र निर्गुणे ॥
 इत्येवमुक्त्वा पुरतस्तस्थौ च चन्द्रशेखरः । बभूव सुप्रसन्ना सा प्रणनाम हरं परम् ॥४७॥
 इत्येवं पार्वतीस्तोत्रं शङ्करेण कृतं पुरा । यः पठेद्विपदा ग्रस्तः स भयादेव मुच्यते ॥४८॥
 मित्रभेदो भवेद्दूरं तत्सम्प्रीतिर्भवेत् पुरा । पार्वती परितुष्टा च नात्यजस्तस्य मन्दिरम्
 इति धीब्रह्मवैवर्ते पार्वतीस्तोत्रं समाप्तम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

श्रुत्वा प्रतिज्ञां नाथस्य परितुष्टा बभूव सा । जगाम स्वर्णदीन्तूष्णानाथं शङ्कराह्वया ।
 स्नात्वा सम्पूज्य भक्त्या च सुरमिष्टञ्च निर्गुणम् ।
 चकार प्रस्तुतं शीघ्रं मिष्टान्नं व्यञ्जनानि च ॥ ५१ ॥
 शिष्यः स्नात्वा च सम्पूज्य ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ।
 तुष्टाव परया भक्त्या मामेव हृदयस्थितम् ॥ ५२ ॥
 गत्वा सर्वमहं भुक्त्वा तस्मै दत्त्वाभिवादिष्ठतम् । नैवेद्यं पार्वती लेभे तबमूलं समागता
 भुक्त्वावशेषं सा देवी सह भर्त्रा मुदान्विता । तुष्टाव शङ्करं भक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥
 इत्येवं कथितं सर्वं त्वया पृष्टं सुरेश्वरि । अभिशप्तं शङ्करस्य निर्मादयं येन हेतुना ॥
 इति धीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे धीकृष्णजन्मखण्डे हरनि-
 र्मात्यशापप्रसङ्गो नाम सतत्रिंशोऽध्यायः ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

दुर्गादर्पविमोचनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

दर्पभङ्गः श्रुतो देवि शङ्करस्य जगद्गुरोः । अधुना श्रूयतां मत्तो दुर्गादर्पविमोचनम् ॥१॥
 तेजसा सर्वदेवानामाधिभूय जगत्प्रभूः । दधार कामिनीरूपं कमनीयं मनोहरम् ॥ २ ॥

निहत्य दानवेन्द्रांश्च ररक्ष देवताकुलम् । लेभे जन्म ततो देवी जठरे दक्षयोपितः ॥ ३ ॥

पिताकपाणि जग्राह सा देवी सुरसाधनम् ।

शश्वत् परमभक्त्या च सिपेवे स्वामिनं सती ॥ ४ ॥

दक्षेण सार्द्धं दैवेन यभूय शिवशत्रुता । निरर्थकं दैवयोगात् पुरा वै सुरसंसदि ॥ ५ ॥

वक्षश्चकार यज्ञश्च तत आगत्य कोपतः । सर्वान् विहापयामास तत्रैव शङ्करं विना ॥ ६ ॥

सखीका देवताः सर्वा आजगमुर्दक्षमन्दिरम् । सगणः शङ्करः कोयाज्ञाजगामामिमानतः

सती पतिञ्च मोहेन बोधयामास यत्नतः । न तञ्चालयिन्तुं शक्ता यभूव चञ्चला स्वयम्

आजगाम पितुर्गेहं दर्पात्तस्य विनाजया । तस्य शापेन तस्याश्च दर्पभङ्गो यभूव ह ॥ ६ ॥

न हि सम्भाषणञ्चके थाङ्मात्रेण पिता च ताम् ।

ध्रुवा च निन्वां भर्तुंश्च देहं तत्याज मानतः ॥ १० ॥

एवं प्रिये निगदितं सतीदर्पविमोचनम् । तस्य जन्मान्तरं नित्यं दर्पभङ्गश्चभूयताम् ॥ ११ ॥

लेभे जन्म सतीशीघ्र जठरे शैलयोपितः । शिवस्तस्याश्चिताभस्म चासि जगाह भक्तिः

चकार मालास्थनाञ्चभस्मना तनुलेपनम् । स्मारंस्मारं सतीं प्रेम्णा भ्रामं भ्राम पुनःपुनः

सुपाय मेना तां देवीमतीव सुमनोहराम् । सृष्टौ विधातुस्तस्याश्च ह्युपमा नास्ति कुत्रच

गुणप्रसूर्गुणान् सर्वान् सर्वरूपान् विभर्ति सा ।

सर्वाश्च देवपत्न्यस्तत्कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥ १५ ॥

यभूव यज्ञमाना सा शुक्ले चन्द्रकला यथा । अतीव यौवनस्था च शैलगेहे दिने दिने ॥

यभूवाकाशवाणी च तां सम्बोध्य जगत्प्रसूम् । शिवे शिवश्च तपसा कठोरेण लभेतिव

यिनैश्वरं न तपसा प्राप्ता हि गर्भसम्भवम् । प्रहस्य तस्थौ ध्रुत्येति सा च यौवनगर्विता

मम जन्मान्तरीणञ्च भस्मास्थि च विमर्ति यः ।

स मां प्रीडां कथं दृष्ट्वा न गृह्णात्यत्र जन्मनि ॥ १६ ॥

यो विदग्धश्च ब्रह्माण्डं वज्राम मम शोकतः । स कथं मां न गृह्णाति दृष्ट्वा परमसुन्दरीम्

क्लृप्तयतं यो यमञ्च मम हेतोःकृपानिधिः । स कथं मां न गृह्णातिपत्नी जन्मनि जन्मनि

यायस्यपत्नी यो यस्या भर्ताप्राक्तनत पुरा । कुतोविश्वे तयोर्मदो निपेकोनान्यधामनेत्

सर्वरूपगुणाधारं मत्वा समत्मानतः । न चकार तपः साध्वी न विहाय तमीश्वरम् ॥
सुन्दरीपु च सर्वासु मत्तो नास्त्येव सुन्दरी । हृदीति मत्वा गर्वेण न चकार तपःशिषा
रूपयोचनवेशानां पुमान् ग्राही स्वयोपिताम् ।

शिवो मच्छ्रुतिमात्रेण मां गृह्णाति विना तपः ॥ २५ ॥

हृदीतिमत्वा गिरिजा तस्थौहिमगिरेर्गृहे । शश्वत्सहचरीमध्ये क्रीडोन्मत्ता दिवानिशम्
पतस्मिन्नन्तरे तूष्णं दूतः शैलेन्द्रसंसदि । उवाचागत्य मधुरं तत्पुरः संपुटाञ्जलिः ॥
दूत उवाच ।

वत्तिष्ठोत्तिष्ठ शैलेन्द्र गच्छाक्षयवटान्तिकम् । भाजगाम महादेवः सगणो ब्रुववाहनः ॥
मधुपर्कादिकं दत्त्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः । पूजनं कुरु शैलेन्द्र देवेन्द्रन्तमतीन्द्रियम् ॥
सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम् ।

मृत्युञ्जयं कालकालं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ ३० ॥

परमात्मस्वरूपञ्च सगुण निर्गुणं विभुम् । भक्तध्यानार्थममलं दधानं देहमीश्वरम् ॥ ३१ ॥
शैलो दूतवच श्रुत्वा समुत्तस्थी मुदान्वितः । मधुपर्कादिकं नीत्वाजगाम शङ्करान्तिकम्
देवी दूतवचः श्रुत्वा प्रसन्नवदनेक्षणा । हृदीति मेने मदेतोरजगाम महेश्वरः ॥ ३३ ॥
चकार वेशमतुलं दधार वस्त्रमुत्तमम् । रत्नेन्द्रसारालङ्कारान् रत्नमालां मनोहराम् ॥ ३४ ॥
पारिजातप्रसूतानां मालां चन्दनसंयुताम् । चकार शङ्करार्थञ्च मत्वा मालां मनोहराम्
रत्नसिंहासनस्था सा ददर्श दर्पणे मुखम् । कस्तूरीचिन्दुना सार्द्धं सिन्दूरचिन्दुभूषितम्
आरक्तेत्रयुगलं निर्मलाञ्जनसंयुतम् । शरन्मध्याह्नममलं यथा स्तितं त्रिवेष्टितम् ॥ ३७ ॥

सुकोमलोष्ठयुगलं ताम्बूलरागसंयुतम् ।

अतीव सुन्दरं रम्यं पक्वविम्बफलं यथा ॥ ३८ ॥

रत्नकुण्डलदीप्त्या च गण्डस्थलविराजितम् । सूर्योदयेन ज्वलितं सुमेरुशिखरं यथा ॥
अत्यनिर्वचनीयञ्च दत्तपंक्तिमनोहरम् । यथा मुकासमूहञ्च सजलं जलद्रागमे ॥ ४० ॥
गजमुकासमायुक्तं सुवाचनासिकोत्तमम् । सुशोभितं यथा मेघं स्वर्णदीजलधारया ॥
मालतीमाल्यसंयुक्तकवरीभारसंयुतम् । वक्त्रपंकिसुशोभाढ्यं नवीनं जलदं यथा ॥ ४२ ॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभं चारुवक्षस्थलोज्ज्वलम् ।

रत्नेन्द्रसारहाराक्तं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥ ४३ ॥

ब्राह्मचर्यकवर्णाभं स्तनयुग्मं मनोहरम् । बदरीफलतुल्यञ्च चारुपत्रकशोभितम् ॥ ४४ ॥

मध्यं मनोहरं क्षीणं निम्ननाभस्थलोज्ज्वलम् । भतीषु सुन्दरं रम्यं सुन्दरं वर्तुलाकृति

रम्भास्तम्भविनिन्द्यैकमूर्युग्मं मनोहरम् ।

कामालयं सुकठिनं निगूढमंशुकेन च ॥ ४६ ॥

स्थलपद्मप्रभामुष्णपदयुग्मं मनोहरम् । रत्नपाशकसंयुक्तं सिद्दालक्तकभूषितम् ॥ ४७ ॥

दधत् रत्नमञ्जीरं राजहंसानुकारि च । रत्नेन्द्रसारभरणं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ ४८ ॥

करं सुकोमलतरं सुन्दरं कनकप्रभम् । रत्नकङ्कणकेयूरशङ्खभूषणभूषितम् ॥ ४९ ॥

विभ्रत्सद्रत्नमुकुटं लीलाकमलमुज्ज्वलम् । रत्नाङ्गुलीयमतुलं दधत्तत्सुमनोहरम् ॥ ५० ॥

दृष्ट्वा स्वरूपमतुलं दधौ शङ्करमीश्वरम् । विशिष्य मनसा शश्वद्वत्तुं श्वरणपङ्कजम् ॥ ५१ ॥

पितरं मातरं बन्धुं साध्वीवर्गं सहोदरम् ।

अन्तरे सा न सस्मात् किञ्चिदेव शिवं विना ॥ ५२ ॥

अथ शैलेश्वरस्तत्र ददर्श चन्द्रशेखरम् । स्वर्णवीपुलिनाद्रम्यादुत्पतन्तञ्च सस्मितम् ॥

दधत् संस्कृतां मालां जपत् मम नामकम् । ततस्वर्णप्रभाजुष्टजटाराशिविराजितम् ॥

वृषभस्यं शूलपाणिं सर्वभूषणराजितम् । नागयन्त्रोपवीतञ्च सर्पभूषणभूषितम् ॥ ५५ ॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशं व्याघ्रचर्मधरं परम् ।

विभूतिभूषिताद्गन्तमस्थिमालं दिगम्बरम् ॥ ५६ ॥

पञ्चवक्त्रं त्रिनयनं सूर्य्यकोटिसमप्रभम् । ददर्श रुद्रान् परितोज्ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥ ५७ ॥

शिवं धामे महाकालं दक्षिणे नन्दिनेश्वरम् ।

भूतप्रेतपिशाचाश्च कुम्भाण्डान् ब्रह्मराक्षसान् ॥ ५८ ॥

वेतालान् क्षेत्रपालान् भीरवान् भीमविक्रमान् । सनकञ्च सनन्दञ्च कुमारञ्च सनातनम् ॥

जैगीपव्यं देवलञ्च काणादहोतमं तथा । पिप्पलादं कणखनं धोढुं पञ्चशिखं कचम् ॥

जाबालिं करणं कण्वं लोमशं सूर्य्यवर्चसम् । कात्यायनं पाणिनिञ्च शङ्खं दुर्वाससं ततः

शातातपं पारिमद्रमष्टाचक्रं मरुद्भवम् । एतान् पुरोगमात्रत्वा प्रणताम शिवं गिरिः ।

मूर्ध्ना निपत्य भूमौ स दण्डवत्संपुटाञ्जलिः ॥ ६२ ॥

अथोऽनल्पयाभक्त्या धृत्वा तच्चरणाभ्युजम् । ननाम चाश्रुनेत्रः स पुलकाञ्चितिविग्रहः
धर्मदत्तेनःस्तोत्रेण तुष्टाय परमेश्वरम् । तुष्टे ब्राह्मे दिनेऽतीते पुष्करे सूर्य्यपर्वणि ॥ ६४ ॥

हिमालय उवाच ।

त्वं ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता च त्वं विष्णुः परिपालकः ।

त्वं शिवः शिवोऽनन्तः सर्वसंहारकारकः ॥ ६५ ॥

त्यमीश्वरो गुणातीतो ज्योतीरूपः सनातनः । प्रकृतः प्रकृतीशश्च प्राकृतः प्रकृतेः परः ॥
नानारूपविधाता त्वं भक्तानां ध्यानहेतवे । येषु रूपेषु यत्प्रतीतिस्तत्तद्वत् विभर्षि च ॥
सूर्य्यस्त्वं सृष्टिजनक आधारः सर्वतेजसाम् । सोमस्त्वं शस्यपाता च सततंशीतरश्मिना
वायुस्त्वं वरुणस्त्वञ्च त्वमग्निः सर्वदाहकः । इन्द्रस्त्वं देवराजश्च काले मृत्युर्यमस्तथा
मृत्युञ्जयो मृत्युमृत्युः कालकालो यमान्तकः । वेदस्त्वं वेदकर्त्ता च वेदवेदाङ्गपारगः

विदुषां जनकस्त्वञ्च विद्वांश्च विदुषां गुरुः ।

मन्त्रस्त्वं हि जपस्त्वं हि तपस्त्वं तत्फलप्रदः ॥ ७१ ॥

पाक् त्वं वागधिदेवी त्वं तत्कर्त्ता तद्गुरुः स्वयम् ।

अहो सरस्वतीपीजं कस्तथा स्तोतुमिहेश्वरः ॥ ७२ ॥

इत्येवमुक्तवाशीलेन्द्रस्तस्थौ धृत्वापदाभ्युजम् । तत्रोवाच तमायोध्य चायकहावृषाच्छिव
स्तोत्रमेतन्महापुण्यं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । नुरुपते सर्वपापेभ्यो भवेभ्यश्च भवार्णवे ।
अपुत्रो लभते पुत्रं मासमेक पठेद्यदि । भार्याहीनो लभेद्भार्या सुशीला सुमनोहरा
चिरकालगतं वस्तु लभते सहसा ध्रुवम् । राज्यमग्रे लभेद्राज्यं शङ्करस्य प्रसादतः ।
कारागारं श्मशानं च शत्रुं तस्तेऽतिसङ्कटे । गभीरेऽतिजलाकीर्णे भग्नपोते विपादने ।
रणमध्ये महाभीते हिंस्रजन्तुसमन्विते । सर्वतो मुच्यते स्तुत्वा शङ्करस्य प्रसादतः ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीरुष्णजन्मखण्डे

दुर्गादर्पणमोचनं नामाष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

मेनकया पूर्वशिवरूपदर्शनम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

इति स्तुत्वा हिमगिरिर्यसतः शङ्करस्य च । उवास पुरतो दूरे लब्धाहः सर्वसम्मतः ॥
मधुपर्कादिकं तस्मै प्रददौ भक्तिपूर्वकम् । मुनीन् सम्पूजयामास ततः शङ्करपार्षदान् ॥
तदा तत्र समागत्य मेनका स्त्रीगणैः सह । ददर्श घटमूलस्थं शङ्करं चन्द्रशेखरम् ॥ ३ ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं वसन्तं व्याघ्रचर्मणि । मध्ये मुनिगणानाञ्च ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥

यथाकाशे तारकाणां द्विजराजं विराजितम् ।

परमाढादकं रूपं कन्दर्पकोटिसन्निभम् ॥ ५ ॥

विहाय घाट्ठकावस्थां दधत् नवयौघनम् । अतीव सुन्दरं रम्यं चित्तचौरञ्च योषिताम्
कामं कामातुराणाञ्च सतीनाञ्च सुतं यथा । वैष्णवानां महाविष्णुं शैवानाञ्च सदाशिवम्
शक्तिस्यरूपं शाक्तानां सौराणां सूर्यरूपिणम् । कालस्वरूपं दुष्टानां शिष्टानां परिपालकम्
कालकालसमं मृत्योर्मृत्युं मृत्युं भयानकम् । व्याघ्रचर्मं चारुवस्त्रं बभूव भस्मचन्दनम्
सर्पाः सुन्दरमाख्यानि कस्तूरी या विषप्रभा । जटा सुललिता चूडा चन्द्रमेलकचन्दनम्

सुचार्वी मालतीमाला गङ्गाधारा मनोहरा ।

अस्थिमाला रत्नमाला धत्तूरं चारु चम्पकम् ॥ ११ ॥

एकीभूतं पञ्चवक्त्रं नेत्रयुग्माब्जशोभितम् । शरत्पार्षणचन्द्राभं प्रच्छाद्य दीप्तमुत्तमम् ॥
बन्धुजीवविनिन्द्यैकमोष्ठाधरमनोहरम् । श्वेतश्चन्द्रो वृषेन्द्रश्च भूताद्या नर्तका इव ॥ १३ ॥
सद्यो व्यतिक्रमं सर्वं महेशस्य महेश्वरी । द्वृष्ट्वैवं शिघ्ररूपञ्च, मेना तुष्टा बभूव ह ॥ १४ ॥
काश्चिन्निमेषरहिताः कामेन पुलकाञ्चिताः । अतिकामातुराः सत्यः प्रापुर्मूर्च्छाञ्च काश्चन
काश्चिद्विनिन्द्य कान्ताश्च प्रशशंसुर्महेश्वरम् ।
मनोरथेन मनसा समाश्लिष्यन्ति काश्चन ॥ १६ ॥

काश्चिन्मानसिकं कामात् कुर्वन्ति शुभ्वनं मुदा ।

ध्रुवं कामं करिष्यामो वयञ्च कामसागरे ॥ १७ ॥

अस्माकमेवं भर्ता च परत्रैव यतो भवेत् । हृद्वैकं करिष्यामो वयं कान्तं रतीं रतम् ॥

दृष्ट्वा तपस्या सुचिरमिति जल्पन्ति काश्चन । काश्चिद्दृष्ट्वा शिवं किञ्चिन्मुखमाच्छाद्य वाससा

सस्मिता वक्रनयनाः पश्यन्त्येवं पुनः पुनः ।

वयं गृहं न यास्यामो यास्यामः शिवसन्निधिम् ॥ २० ॥

सरत्सुधांशुवदनं द्रक्ष्यामोऽहर्निशं मुदा । संसारं न करिष्यामः प्रविशामो हुताशनम्

भविता नः शिवः स्वामीत्येवं जल्पन्ति काश्चन ।

अहो पुण्यवती दुर्गा श्लाघ्यते जन्म भारते ॥ २२ ॥

यस्या ह्ययं शिवः स्वामीत्येवं जल्पन्ति काश्चन । मुदामेना शिवं दृष्ट्वा गृहन्ताभिर्जगाम ह

शिवं सम्पूज्य शैलेन्द्रः प्रणम्य स्वगृहं ययौ । कृत्वा नुमानं रहसि गिरीशो मेनया सह

दुर्गां प्रस्थापयामास शिवाय शिवसन्निधिम् । पार्वतीसखिभिः सार्द्धवेशं कृत्वा मनोहरम्

भावाचनुरक्ता हर्षेण जगाम शिवसन्निधिम् । दृष्ट्वा शिवा शिवं शान्तं प्रसन्नवदनेक्षणम्

सप्तप्रदक्षिणं कृत्वा सस्मिता प्रणनाम सा । अनन्यभाजं गुणिनममरं ज्ञानिनां वरम् ॥

सुन्दरं लभ भर्तारं सुन्दरीत्याशिषं वदौ ।

भविता तव सौभाग्यं शुभे स्वामिनि सन्ततम् ॥ २८ ॥

पुत्रस्ते भविता साध्वि नारायणसमोगुणैः । भविता ते परा पूजा त्रैलोक्ये जगदग्निके

ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु सर्वेषाञ्च परा भव । सप्तप्रदक्षिणीकृत्य यतो भक्त्या त्वया नतम्

सप्तजन्मनि तुष्टोऽहं तत्फलं लभ सुन्दरि । तीर्थे कान्तेऽभीष्टदेवे गुरोर्मन्त्रे तर्थाग्रे

मास्था च यादृशी यासां सिद्धिस्तासाञ्च तादृशी ।

इत्युत्तया शङ्करस्तूर्णं ब्रह्मज्योतिः पश्य माम् ॥ ३२ ॥

वध्यो योगासनं कृत्वा योगीशो व्याघ्रचर्मणि ।

प्रक्षाल्य चरणौ देवीं पपी तच्चरणोदकम् ॥ ३३ ॥

चकार मार्जनं भक्त्या वह्निशौचेन वाससा । रत्नसिंहासनं रम्यं विश्वकर्मादिनिर्मितम्

अपूर्वं कांस्यपात्रस्थं नैवेद्यं प्रददौ किल । अर्घ्यं मन्दाकिनीतोयसंयुक्तञ्चरणे ददौ ॥ ॥
 सुगन्धिचन्दनं चारु कस्तूरीकुङ्कुमाञ्चितम् । प्रददौ भालतीमालां गले गरलसुन्दरो ॥३६॥
 भक्त्या पूजाञ्चकाराथ पुष्पवृष्टिञ्च तुष्टये । पीयूषं स्वर्णपात्रस्थं प्रददौ मधुरं मधु ॥
 रत्नप्रदीपशतकं समन्ताद्भूपमुत्तमम् । त्रैलोक्यमदुर्लभं वस्त्रं स्वर्णयज्ञोपवीतकम् ॥३८॥
 सुगन्धि शीततोयञ्च पानार्थं पार्वती ददौ । अतीव सुन्दरं रम्यं रत्नसारैर्द्रभूषणम् ॥३९॥
 दुर्लभां कामधेनुञ्च स्वर्णशृङ्गसमन्विताम् । ज्ञानीयन्तीर्थतोयञ्च ताम्बूलञ्च मनोहरम् ॥

दत्त्वा पौडशोपचारं प्रणनाम पुनः पुनः ।

संपूज्य शूलिनं भक्त्या ययौ नित्यं पितृगृहम् ॥ ४१ ॥

शुभायाप्सरसां पक्वत्रादेर्वामिन्द्रो महेश्वरः । श्रुत्या चार्तां शुभाशीरो नतर्त्त हर्षसंयुतः
 दूतद्वारा कामदेवमानिनाय त्वरान्वितः । इन्द्राजया कामदेवः प्रजगामामराचलीम् ॥४३॥
 तूर्णं प्रस्थापयामास तञ्च यत्र शिवः शिवा । पञ्चसायकसंयुक्तो जगाम पञ्चसायकः ॥
 प्रसन्नवदनं ध्यामान् यत्र शक्तियुतः शिवः । गत्वा ददर्श मदतः शिवायुक्तं शिवं विभुम्
 शान्तं त्रैलोक्यकान्तञ्च प्रसन्नवदनेक्षणम् ।

कामः स्थितोऽन्तरीक्षे च धृत्वा च सशरं धनुः ॥ ४६ ॥

चिक्षेपास्त्रं दुर्निवार्यममोघं शङ्करे मुदा । यभूयामोघमस्यञ्च मोघन्तत्परमात्मनि ॥
 आकाश इव निर्लिप्ते निर्लिप्ते परमात्मनि । मोघीभूते च शस्त्रे च भयमाप च मग्नयः ॥
 चक्रमप्येकुरत स्थित्या दृष्ट्वा मृत्युञ्जयविभुम् । सस्मारन्निदशान् कामःशक्रादीन्भयविह्वलः
 धाययुर्दपताः सर्वाः शम्भुकोपेन धेपिताः । चक्रुः स्तुतिञ्च स्तोत्रेण शङ्करं त्रिदशेश्वरम्
 कोपाग्निमुद्गिरन्तं तं कपाललोचनादहो । स्तुतिं कुर्यत्सु देवेषु स पङ्क्तिः शम्भुसम्मयः ॥
 जञ्जालोर्ध्वशिखो दीप्तः प्रलयान्निशिखोपमः । उत्पत्य गगने धूम्रं निपत्य धरणीतले

भ्रामं भ्रामञ्च परितः पपात मदनोपरि ॥ ५२ ॥

यभूय भस्मसात्कामः क्षणेन हरकोपतः । विषण्णा देवताः सर्वा नतयक्त्रा च पार्यती ॥
 विललाप गद्गतरं हरस्य पुरतो रतिः । तुष्टयुर्दपताः सर्वाः कम्पिताधन्द्रोपरम् ॥५४॥
 रतिमूचुः सुराः सर्वे स्मरुध्व मुदमुग्धः । किञ्चिद्रस्म गृहीत्वा च रक्ष मातर्मयं त्यज ॥

ययं तं जीवयिष्यामो लमिष्यसि प्रियं पुनः । हरकोपायनयने सुप्रसन्ने दिने तथा ।

दृष्ट्वा रतेर्बिलापञ्च मूर्च्छां संप्राप पार्वती ।

अतीन्द्रियं गुणातीतं तुष्टाय चन्द्रशेखरम् ॥ ५७ ॥

रदन्तीं पार्वती त्यक्त्वा स्वस्थानं प्रययौ शिवः ।

सद्यो बभूव तत्रैव पार्वतीदर्पमोक्षणम् ॥ ५८ ॥

रूपयौवनयोगर्धं तत्याज शैलकन्यका । मुपं दर्शयितुं लज्जा तद्वयमूय सर्वाभाणे ॥ ५९ ॥

सुराश्च रतिमाश्रयास्य सर्वे जग्मुः स्वमन्दिरम् । प्रणम्य दण्डवद्बुद्धं शोकादुद्विग्नमानसाः

स्तुत्या रुदित्वा शोकेन भयेन कामकामिनो । कोपरत्तेक्षणं रत्नं राधिके स्थालयं ययौ

न जगाम पितुर्गहे पार्वती सा तु लज्जया ।

स्वालमिर्वाप्यमाणापि जगाम तपसे वनम् ॥ ६२ ॥

प्रजग्मुः सहचारिण्यस्तत्पश्चाच्छोकविह्वलाः ।

मातृमिर्वाप्यमाणा सा स्वर्णक्षीतीरजं वनम् ॥ ६३ ॥

सुचिच्छ तपस्तप्त्वा सा संप्राप त्रिलोचनम् । रतिः संप्राप मदनं शङ्करस्य वरेण च ॥

इत्येवं कथितं सर्वं पार्वतीदर्पमोक्षणम् । निगूढचरितं राधे किम्भूयः श्रोतुमिच्छति ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीरुष्णजन्मखण्डे

श्रीरुष्णराधिकासंवादे एकोनवत्वारिंशोऽध्यायः ।

चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

राधिकारुष्णसंवादवर्णनम्

ध्रीराधिका उवाच ।

अहो चिचित्रं चरितमपूर्वं किं श्रुतं किमो । सुन्दरं धृतिपीयूषं निगूढं ज्ञानकारणम् ॥ १ ॥

न विरोधं समासञ्च धृतं न व्यासमोप्सितम् ।

अधुना श्रोतुमिच्छामि पिस्तीर्णं कथय प्रभो ॥ २ ॥

जगो मम गुणाख्यानं कृत्वा नृत्यं मनोहरम् ।

पादयामास भृङ्गञ्च क्षणं डमस्कं तथा ॥ ७४ ॥

आजग्मुर्नागरा बाला बालिका हर्षचिह्नलाः ।

वृद्धा युवानो युवतीसमूहा वृद्धयोपितः ॥ ७५ ॥

श्रुत्वा तु सुन्दरं गीतं सुतानस्वरसंयुतम् । सहसा मुमुद्भुः सर्वे तेन मूर्च्छामिवाप्नुवन्
मूर्च्छां संप्राप सा दुर्गा ददर्श हृदि शङ्कम् । त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्मधरं परम् ॥
विभूतिभूषणं रम्यमस्थिमालां सुनिर्मलाम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं सुप्रसन्नं त्रिलोचनम्
मालाहस्तं पञ्चवक्त्रं नागयज्ञोपवीतकम् । वरं वृण्वित्युक्तवन्तं सुन्दरं चन्द्रशेखरम् ॥
हृदयस्थं हरं दृष्ट्वा मनसा तं ननाम सा । वरं चचे मानसे सा त्वं पतिर्मे भवेति च ॥
पथं दत्त्वा शिवस्तस्यै खान्तार्थानञ्जकार सः । न दृष्ट्वा हृदि तं दुर्गा संप्राप्य चेतनां पुनः
ददर्श चक्षुर्लम्बीय मिश्रुकं गायकं पुरः । नृत्यसंगीततः सा तु मिश्रुकस्य च मेनका ॥
दातुं ययौ सा रत्नानि स्वर्णपात्रस्थितानि च ।

भिक्षां ययाचे मिश्रुस्तां दुर्गां नाम्नां गृहीतवान् ॥ ८३ ॥

पुनश्च नर्तनं कर्तुमुद्यतः कौतुकेन च । मेना तद्वचनं श्रुत्वा चुकोप विस्मयं ययौ ॥
मिश्रुकं भर्त्सयामास बहिःकर्तुमुवाच तम् । पत्नी त्रिलोकनाथस्य शिवस्यपरमात्मनः
याव्ज्जामिमां प्रकुर्वन्तं दूरं कुरु सुभाषिणम् ।

एतस्मिन्नन्तरे तप्त्वा गिरिः स्वालयमाययौ ॥ ८६ ॥

ददर्श पुरतो मिश्रुं प्राङ्गणस्थं मनोहरम् । कृत्वा नारायणार्चाञ्च गङ्गातीरं मनोहरं ॥
तन्मूर्त्तिध्यानविश्लेषशोकादुद्विग्नमानसः । श्रुत्वा मेनामुखाद्दार्तां जहास च चुकोप सः
आज्ञां चकार स्वचरं बहिः कर्तुञ्च मिश्रुकम् । आकाशमिध दुःस्पर्शं प्रज्ज्वलन्तं स्पृतेजसा
न शशाक बहिः कर्तुं समीपं गन्तुमक्षमः । ददर्श मिश्रुकं शैलः क्षणञ्चावचतुर्भुजम् ॥
किरीटिनं कुण्डलिनं पीताम्बरधरं परम् । सुवेशं सुन्दरश्याममीषद्धास्यं मनोहरम् ॥
चन्दनोक्षितसर्पाङ्गं भक्तानुग्रहकातरम् । यद्यत् पुष्पं प्रदत्तञ्च पूजाकाले गदाभृते ॥ ९२ ॥
गात्रे शिरसि तत्सर्वं मिश्रुकस्य ददर्श ह । धूपः प्रदीपो यो दत्तो नैवेद्यं वा मनोहरम्

ददर्श शैलस्तत्सर्वं मिथुकस्य पुरःस्थितम् । क्षणं ददर्श ह्रिभुजं चिनोदमुखलीकरम् ॥
 गोपवेशं किशोरञ्च सस्मितं श्यामसुन्दरम् । मयूरपिच्छचूडञ्च रत्नालङ्कारभूषितम् ॥
 चन्दनोक्षितसर्पाङ्गं वनमालाविभूषितम् । क्षणं ददर्श स्वच्छञ्च शङ्करं चन्द्रशेखरम् ॥
 त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्माम्बरं परम् । विभूतिगात्रममलमस्थिमालाविभूषितम् ॥६७॥
 नागयक्षोपवीतञ्च ततस्थणजटाधरम् । उमरुष्टद्वस्तञ्च सुप्रशस्तं मनोहरम् ॥ ६८ ॥
 प्रजपन्तं हरेर्नाम श्वेताग्रजयोजमालया । ईषज्जास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ॥६९॥

स्वतेजसा प्रज्वलन्तं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।

क्षणं ददर्श जगतां ऋष्याञ्च चतुर्भुगम् ॥ १०० ॥

जपन्तं श्रीहरेर्नामस्यच्छ स्फटिकमालया ।

क्षणं सूर्यस्वरूपञ्च ददर्श त्रिगुणात्मकम् ॥ १०१ ॥

ददर्शातीवतीव्रं तं ज्वलन्तं प्रहृतेजसा । क्षणमग्निस्वरूपञ्च ज्वलन्तमतितेजसा ॥१०२॥

क्षणमाहादजनकं चन्द्ररुगं ददर्श ॥ । क्षणं तेजःस्वरूपञ्च निराकारं निरञ्जनम् ॥१०३॥

निलिप्तञ्च निरीहञ्च परमात्मस्वरूपिणम् । एवं स्थित्यामयं दृष्ट्वा नानारूपधरं परम् ॥

दृष्ट्वाश्रुपुलकः शैली दण्डवत् प्रणनाम तम् । भक्त्या प्रदर्शितोऽस्य प्रणम्य च पुनः पुनः

समुत्पत्य हर्षयुक्तो ददर्श पुनरेव तम् । वास्तवं मिथुनं दृष्ट्वा शैलेन्द्रोऽपि श्रुमायया

विसस्मार च तत्सर्वं नानारूपधरं परम् ।

निश्चां यथाचि मिथुनं मिश्रास्थालीम्यपान्त्रिकम् ॥ १०३ ॥

रत्नाकरः शृङ्ग्याद्यविनिप्रथमः करे ।

भारानुमुत्सुको दृष्ट्वा नान्या मिथुः पराचय ॥ १०८ ॥

तत्स्थानं तत्र शैलेन्द्रो मोहितो विष्णुमायया ।

मिथुः किञ्चिन् अत्राह तत्रैवान्तर्धात ॥ १०९ ॥

तदा यभूष मानञ्च मेनकाशैलयोः द्वये । भक्षो दृष्टो जगत्पथः प्रापान्या म्यज्जपरिणे ॥

भावां शिवां पञ्चस्थिया म्यज्जमानं गतवान् विभुः ।

तयोर्नन्दि द्विरे दृष्ट्वा सर्वे देवता निमित्ततः ॥ १११ ॥

चक्रुः शक्रादयो युक्तिं सुमेरो रक्षणे मयात् ।

एकान्तभक्त्या शैलश्चेत् कन्यां तस्मै प्रदास्यति ॥ ११२ ॥

ध्रुवं निर्वाणतांसघः संप्राप्तोत्येव भारते । अनन्तरत्नाधायचेत् पृथ्वीत्यक्तवाप्रयास्यति
रत्नगर्भाभिधा भूमेर्मिथ्यैव भविता ध्रुवम् । स्थावरत्वं परित्यज्य दिव्यरूपं विधायसः
कन्यां शूलभृतेदत्त्वा विष्णुलोकं गमिष्यति । नारायणस्यसारूप्यं भविष्यत्येव लीलया
संप्राप्य पार्यदत्तश्च हरिदासो भविष्यति ।

दशवापीसमा कन्या दीयते ब्राह्मणाय ताम् ॥ ११६ ॥

वेदज्ञाय पवित्राय चाप्रतिग्रहशालिने । सन्ध्यायज्ञवेदपाठकारिणे सत्यवादिने ॥ ११७ ॥
अस्मै प्रदत्ता कन्या च दशवापीफलप्रदा । त्रिसन्ध्याकारिणे सत्यवादिने गृहशालिने ॥
वेदज्ञाय सुविप्राय दत्त्वा सुफलदायिनी । परदारगृहीताय याजकाय द्विजाय च ॥
शठाय सन्ध्याहीनाय घाप्यैकफलदा सुता । सर्वसन्ध्यास्वगायत्रीविहीनाय शठाय च ॥
वैश्योद्भवाय दत्ता या वाप्यर्द्धफलदा स्मृता । पापिने शूद्रजाताय विप्रक्षत्रोद्भवाय च ॥

दत्ता चाण्डालतुल्याय कन्या सा नरकप्रदा ।

विष्णुभक्ताय विदुषे विप्राय सत्यवादिने ॥ १२२ ॥

जितेन्द्रियाय दत्ता या विंशद्वापीफलप्रदा । पण्डितवर्षसन्ध्याणि दिव्यरूपं विधाय च ॥ १२३ ॥
पथम्भूताय दत्ता चेन् मोदते विष्णुमन्त्रिरे । दत्त्वा कन्यां सुशीलाञ्च हराय हरयेऽथवा
नारायणस्वरूपञ्च भवेदेव श्रुती श्रुतम् । विष्णुभक्तो यदा कन्यां ददाति विष्णुप्रीतये ॥
स लभेद्धरिदास्यञ्च ध्रुवं विप्रोद्भवाय च । इत्यालोच्य सुराः सर्वे कृत्वाच मन्त्रणांप्रिये
गुरुं प्रस्थापितुं जम्बुहिमालयगृहं प्रति । गत्वा प्रणम्य च गुरुं सर्वे चक्रुर्निवेदनम् ॥
हिमालयगृहं गत्वा कुरु निन्दाञ्च शूलिनः । पिनाकिनं विना दुर्गा वरं नान्यं परिष्यति
अनिच्छया सुतां दत्त्वा फलं तूणं लभिष्यति । कालेन यातु शैलेन्द्रश्चेदानीं भुवि तिष्ठतु
अनन्तरत्नाधाय त्वमेव रक्ष भारते । देवानां पचन श्रुत्वा प्रद्वीर्ण कर्णयोः करो ॥
न स्वीचकार स्व गुरुः स्मरन्नारायणेति च । उवाच देववर्गाञ्च संभक्तस्य च पुनः पुनः

वेदवेदान्तविज्ञाता महाभक्तो हरी हरे ॥ १३१ ॥

बृहस्पतिरुवाच ।

धृत्यां मद्वचः सत्यं हे देवाः स्वार्थसाधकाः ।

नीतिसारञ्च वेदोक्तं परिणामसुखावहम् ॥ १३२ ॥

हरकेशवयोर्मत्तं ये च निन्दन्ति पापिनः । भूदेवान् ब्राह्मणाञ्चैव स्वगुरुं च पतिमता ॥

पतिभिश्चब्रह्मचारीसृष्टीर्वाजान् सुरांस्तथा ।

पचयन्ते कालसूत्रे ते यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ १३४ ॥

श्लेष्ममूत्रपुरीषेषु शरत्ते ते दिवानिशम् । भक्षिता कीटनिकरेः शब्दं कुर्वन्ति कातराः ॥

ये निन्दन्ति च ब्रह्मणं सृष्टारं जगतां गुरुम् ।

शिवं सुराणां प्रवरं दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥ १३६ ॥

गीताञ्च तुलसीं गङ्गां चेदाञ्च वेदमातलम् । व्रतं तपस्यां पूजाञ्च मन्त्रं मन्त्रप्रदं गुरुम् ॥

ते पचयन्तेऽन्धकूपे वै चायुषोऽद्वे विवेरहो । भक्षिताः सर्पसङ्घैश्च शब्दं कुर्वन्तिसन्ततम् ॥

ये निन्दन्ति द्वीपकेशं देवसाम्यं विधाय च । विष्णुभक्तिप्रदञ्चैव पुराणञ्च धृतैः परम् ॥

राधान्तद्वङ्गजां गोपीब्राह्मणाञ्च सदाचिताम् । ते पचयन्ते घटे देवा विधानुरायुषा समम् ॥

अधोमुखा ऊर्ध्वजंघाः सर्पसङ्घैश्च वेष्टिताः । भक्षिता विटताकारैः कीटैः सर्पसमावृताः ॥

अतीवकातराभीताःशब्दं कुर्वन्ति सन्ततम् । श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि ध्रुवं भक्षन्तिक्षोभिताः ॥

उदकां ददति रुष्टाश्च सन्मुचे यमकिङ्कराः ।

त्रिसन्ध्यन्तर्जनं कृत्वा कुर्वन्ति दण्डताडनम् ॥ १४३ ॥

कुर्वन्ति मूत्रपानञ्च ग्रहारेस्तृपितान् भिया । तदा कल्पान्तरे स्रष्टुं सृष्टिञ्च प्रथमे पुनः ॥

तेषां भवेन् प्रतीकार इत्याह कामलोद्भव ॥ १४५ ॥

कृत्वा हि शिष्यनिन्दाञ्च यास्यन्ति नरकं सुराः ।

इममेवोपकारञ्च कर्तुमिच्छथ पुत्रकाः ॥ १४६ ॥

ब्रह्मणा प्रेरितो दक्षो दत्त्वा शूलभृते सुताम् । न पापं परमेश्वर्यं संप्राप हरनिन्दकः ।

अनिच्छया सुतां दत्त्वा नुर्यपुण्यं ललाभ सः । भद्रो विहायसाक्ष्यं तुच्छं सगललामस

कधिन्मध्ये च गुप्ताकं गत्वा शैलगृहं सुराः । सम्पादयत स्वमतं शैलेन्द्रस्य प्रयदातः ॥

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा मेनोवाच हिमालयम् । शोकेन साश्रुनयना हृदयेन विदूयता ॥
मेनकोवाच ।

शृणु शैलेन्द्र मद्राक्षं परिष्यामस्तु त्वत्त्वहम् । पृच्छ शैलचरानस्मै न दास्यामि सुतामहम्
त्यक्ष्यामि सर्वांस्त्रिपयान् भक्ष्यामि विषमेव च ।

गले बध्वास्त्रिकां पश्य दास्यामि घोरफाननम् ॥ ३० ॥

गृहीत्वा पार्वतीमेना गत्वा कोपालयं ह्य । त्यक्त्वाऽऽहारं रुदन्ती च खकार शयनं भुवि
एतस्मिन्मन्तरे तत्र पशिक्षो भ्रातृभिः सह । आजगाम पुनस्तैश्च युक्ता पश्चादरुन्धती ॥
प्रणम्य शैलस्तान् सर्धान् स्वर्णसिंहासनंददौ । दृष्ट्वा षोडशोपचारं पूजयामासभक्तिः
ऋषयश्च सभामध्ये सुखमूपुः सुखासने । जगामारुन्धती तूर्णं यत्र मेना च पार्वती ॥ ३४

गत्वा ददर्श मेनाञ्च शयानां शोकमूर्च्छिताम् ।

उवाच मधुरं साध्वी सावधानां हितं धवः ॥ ३५ ॥

अरुन्धत्युवाच ।

उत्तिष्ठ मेनके साध्वि त्वद्गृहेऽहमरुन्धती ।

पितृणां मानसी कन्यां मां जानीहि विधेर्वधूम् ॥ ३६ ॥

अरुन्धत्याः स्वरं श्रुत्वा शीघ्रमुत्थाय मेनका । उवाच शिरसा नत्वा तां पद्मामिवतैजसा
मेनकोवाच ।

अहोऽयं किमिदं पुण्यमस्माकं पुण्यजन्मनाम् । बधूर्जगद्विधेः पत्नी पशिक्षस्य ममालये
सम्प्रमेणेदमेवोक्तं गृहं तेऽहश्च किङ्करी । ईश्वरी जगतां कपुरागता बहुपुण्यतः ॥ ३९ ॥

पादं दत्त्वा स्वर्णपीठे धासयामास तां सतीम् ।

भोजयामास मिष्टान्नं वुमुजे कन्यया सह ॥ ४० ॥

शिबस्य हेतोर्नीतिश्च बोधयामास मेनकाम् । अरुन्धन्ती प्रसङ्गेन सम्यन्धयोजनानि च ॥
अथ शैलमृषीन्द्राश्च नीतिसारं परं धवः । बोधयामासुः सम्यन्धयोजनानि प्रसङ्गतः ॥

ऋषय ऊचुः ।

शैलेन्द्र श्रूयतां धात्र्यमस्माकं शुभकारणम् । शिवाय पार्वतीं देहि संहर्तुः श्वशुरो भव ।

अयाचितारं देवेशं बोधयाशु प्रयत्नतः । तव शङ्काविनाशाय ब्रह्मा सम्बन्धकर्मणि ॥४४॥
नेच्छको दारसंयोगे शङ्करो योगिनां वरः । विधेः प्रार्थनया देवस्तव कन्यां प्रहीष्यति
हुहितुस्ते तपस्यान्ते प्रतिजानं चकार सः । हेतुद्वयेन योगीन्द्रो विवाहश्च करिष्यति ॥
ऋषीणां वचनं श्रुत्वा प्रहस्य च हिमालयः । उवाच किञ्चिद्दीप्तश्च परं चिनयपूर्वकम् ॥
हिमालय उवाच ।

शिवस्य राजसामग्री न हि पश्यामि काञ्चन ।

किञ्चिदाश्रममेश्वर्यं किं वा स्वजनबान्धवम् ॥ ४८ ॥

न कन्यामतिनिर्लसयोगिने दातुमर्हति । यूयं विधातुःपुत्राश्च सत्यं वदत निश्चितम् ॥
नानुरूपाय पुत्राय पिता कन्यां ददाति चेत् । कामालोभाद्भयान्मोहाच्छताब्दं नरकं व्रजेत्
न हि दास्याम्यहं कन्यामिच्छया शूलपाणिने । यद्विधानं भवेद्योग्यमृषयस्तद्विधीयताम्
हिमालयवचः श्रुत्वा वशिष्ठो विधिनन्दनः । वेदवेदाङ्गविज्ञाता वेदोक्तं वक्तुमुद्यतः ॥ ५२ ॥
वशिष्ठ उवाच ।

वचनं त्रिविधं शैल लोकिके वैदिके तथा । सर्वं जानाति शास्त्रज्ञो निर्मलज्ञानचक्षुषा ॥
असत्यमहितं पश्चात् साग्रतः श्रुतिसुन्दरम् । सुबुद्धं शत्रुर्चदति न हितञ्च कदाचन ॥ ५४ ॥
आपातप्रीतिजनकं परिणामसुखावदम् । दयालुर्धर्मशीलश्च बोधयत्येव बान्धवम् ॥ ५५ ॥

श्रुतिमात्रात् सुधातुल्यं सर्वकाले सुखावहम् ।

सत्यसारं हितकरं वचसां श्रेष्ठमीप्सितम् ॥ ५३ ॥

एवञ्च त्रिविधं शैल नीतिशास्त्रनिरूपितम् ।

कथ्यतां त्रिषु मध्ये किं पदमि वाङ्मयोप्सितम् ॥ ५७ ॥

बाह्यसम्पद्धिहीनश्च शङ्करस्त्रिदशेश्वरः । तत्त्वज्ञानसमुद्रेषु संनिमग्नैकमानसः ॥ ५८ ॥

आपातभ्रमसम्पत्तिर्विद्युच्छास्त्रि नाशिनी ।

सदानन्दस्येश्वरस्य स्वात्मारामस्य का स्पृहा ॥ ५६ ॥

गृही ददाति स्वसुतां राज्यसम्पत्तिशालिने ।

कन्यां विद्विषिणे दत्त्वा कन्याघातो भवेत् पिता ॥ ६० ॥

दत्त्वा विप्राय स्वसुतामनारण्यो नृपेश्वरः । ब्रह्मशापादिमुक्तश्च ररक्ष सर्वसम्पदम् ॥
तमाशु बोधयामासुर्नीतिशास्त्रविदो जनाः ।

ब्रह्मशापनिमग्नश्च ब्रह्मण्यमतिकातरम् ॥ ६६ ॥

त्वमेव शैलराजेन्द्र सुतां दत्त्वा शिवाय च । रक्ष सर्वान् यन्धुवर्गान् वशे कुरु सुरानपि
वशिष्ठस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मस्य पर्वतेश्वरः । पप्रच्छ नृपवृत्तान्तं हृदयेन विदूयता ॥ १०१ ॥
हिमालय उवाच ।

कस्य वंशोद्भवो ब्रह्मन्ननारण्यो नृपेश्वरः । सुतां दत्त्वा स च कथमरक्षत् सर्वसम्पदम्
वशिष्ठ उवाच ।

मनुर्वंशोद्भवो राजा सोऽनारण्यो नृपेश्वरः । चिरजीवी धर्मशीलो वैष्णवो विजितेन्द्रियः
स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं ब्रह्मपुत्रोऽतिधार्मिकः । राज्यं चकार धर्मेण युगानामेकसप्ततिम्
ततो जगाम वैकुण्ठं सहितः शतरूपया ।

संप्राप्य दास्यं सान्निध्यं हरैर्दासो बभूव ह ॥ १०५ ॥

मनुर्वभूव तत्पश्चात् स्वयं स्वारोचिषो महान् । स्वारोचिषे गते शैल बभूव मनुवत्तमः
उत्तमे निर्गते धर्मी तामसो मनुरेव च । ततो मनुर्वभूवात्र रैवतो ज्ञानिनां वरः ॥ १०७ ॥
चाक्षुषश्च ततो ज्ञेयः श्राद्धदेवश्च सप्तमः । सावर्णिरेष्टमो ज्ञेयः श्रीसूर्य्यतनयो महान् ॥

चैत्रवंशोद्भवो राजा पुराऽऽसीत् सुरधो भुवि ।

नवमो दक्षसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिको वरः ॥ १०६ ॥

एकादश मनुश्रेष्ठोऽधर्मसावर्णिरुच्यते । ततश्च रुद्रसावर्णिर्विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥
तत्परी देवसावर्णिरिन्द्रसावर्णिकस्ततः । इत्येवं कथितं बन्धो मनवश्च चतुर्दश ॥ १११ ॥
एतेषु समतीतिषु बभूव ब्रह्मणो दिनम् । इन्द्रसावर्णिवृत्तान्तं सर्वं मत्तो निशामय ॥
मनूनां प्रवरो धर्मी शुद्धभक्तो गदाभूतः । चकार राज्यं धर्मेण युगानामेकसप्ततिम् ॥

राज्यं दत्त्वा सुरेन्द्राय जगाम तपसे वनम् ।

सुरेन्द्रस्य सुतः श्रीमान् श्रीनिकेतुर्महाबलः ॥ ११४ ॥

तस्य पत्रो महायोगी परीषत्स्त्रेव च । तस्य पत्रोऽन्तिवर्त्तनी मेऽस्मिन् ॥

एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः] * अनारण्यकन्यकोपाख्यानम् *

वृद्धश्रवाः सुतस्तस्य तत्पुत्रो भानुरेव च । पुण्डरीकः सुतस्तस्य तत्पुत्रोजिह्वलस्तथा
जिह्वलस्यसुतः शृङ्गी तत्पुत्रो भीमएव च । तत्पुत्रोऽपि यशश्चन्द्रो यशसावशशीजितः
तत्कीर्तिनिर्मलां सन्तो गायन्ति सन्ततंसुराः । तस्य पुत्रो वरेण्यश्च पुरारण्यश्चतस्तुतः

तत्पुत्रो धार्मिकः श्रीमान् धरारण्यश्च एव च ।

तत्पुत्रो मङ्गलारण्यस्तपस्वी ज्ञानिना वरः ॥ ११६ ॥

अपुत्रको नृपश्चेष्टस्तपसे पुष्करं गतः । सुचिरञ्च तपस्तप्त्वा वरं लब्ध्वा महेश्वरात् ॥
संप्राप्य वैष्णवं पुत्रमनारण्यं जितेन्द्रियम् । दत्त्वा तस्मै च राज्यञ्च जगाम तपसेवतम्
अनारण्यो नृपश्चेष्टः सप्तद्वीपमहीपतिः । अकार यज्ञशतकं भृगुणा च पुरोधसा ॥ १२२ ॥
तुच्छंमत्वाशु शक्तत्वं न लेभेनश्वरंसुधीः । लीलया च जित शकोलीलया च जितोवलिः
जिताश्च दानवेन्द्रा वै ज्वलता स्वेन तेजसा । बभूवुः शतपुत्राश्च राजस्तस्य हिमालय ॥

कन्यैका सुन्दरी रम्या पसा पशालयासमा ।

सा कन्या यौवनस्था च बभूव पितृमन्दिरे ॥ १२५ ॥

चारं प्रस्थापयामास वराय नृपतीश्वरः ॥ १२६ ॥

एकदा पिप्पलादश्च गन्तुं स्वाश्रममुत्सुकः । तपःस्थाने निर्जने च गन्धर्वं स ददर्श ॥ ॥
स्त्रीषु निमग्नचित्तश्च शृङ्गाररससागरे । कामादतीवमत्तश्च न जानन्तं दिवानिशम् ॥

दृष्ट्वा तं मुनिशार्दूलः सकामश्च बभूव ह ।

ततः सुभग्वित्तः सन् विन्तयन् दारसंप्रभम् ॥ १२६ ॥

एकदा पुष्पमद्रायां छातुं गच्छन् मुनीश्वरः । ददर्श पद्मां युवतीं पद्मामिव मनोरमाम्
केयं कन्येति पप्रच्छ समीपस्थान् जनान् मुनिः । जना निवेदनञ्चक्रुः पद्मानारण्यकन्यका

मुनिः स्नात्वागीष्टदेवं सम्पूज्य राधिकेश्वरम् ।

जगाम कामी मिक्षार्थमनारण्यसमां गिरे ॥ १३२ ॥

राजा शीघ्रं मुनिं दृष्ट्वा प्रणनामभयाकुलः । मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तितः
कामात्सर्वं गृहीत्वा च ययाचे कन्यकां मुनिः । मौनी बभूव नृपतिः किञ्चिन्निर्वक्तुमक्षमः
मुनिः पुनर्ययाचे तं कन्यां देहीति मे नृप । अथवा भस्मसात्सर्वं करिष्यामि क्षणेन च

सर्वे बभूवुराच्छन्ना गणाश्च तेजसा मुने । खरोद राजा सगणो दृष्ट्वा घृष्टं जरातुरम्

महिष्यो रुरुवुः सर्वा इति कर्तव्यमक्षमाः ।

मूर्च्छां प्राप महाराज्ञी कन्यामाता शुचाकुला ॥ १३७ ॥

पण्डितो नीतिशास्त्रज्ञो बोधयामास भूपतिम् ।

महिषोञ्च नृपसुतान् कन्यकां नीतिमुत्तमाम् ॥ १३८ ॥

अथ चापि दिनान्ते वा दातव्या कन्यकानृप । पराय विप्राद्रव्यस्मै फल्मै वा दातुमर्हति

सत्पात्रं ब्राह्मणादन्य न पश्यामि जगत्त्रये । सुता दृष्ट्वा च मुनये रक्षस्य सर्वसम्पदम्

राजकन्यानिमित्तेन सर्वसम्पत् प्रणश्यति । सर्वं रक्षति तत्त्यक्त्वा विना तं शरणागतम्

राजा प्राज्ञवच श्रुत्वा विलप्य च मुहुर्मुहुः । कन्यां सालङ्कृता कृत्वा मुनीन्द्रायददौ किल

कान्तां गृहीत्वा स मुनिर्मुदितः स्वालय ययौ ।

राजा सर्वान् परित्यज्य जगाम तपसे शुचा ॥ १४३ ॥

भर्तुश्च दुहितुः शोकात् प्राणांस्तत्याज सुन्दरी ।

पुत्राः पौत्राश्च भृत्याश्च मूर्च्छां प्रापुर्नृपं विना ॥ १४४ ॥

अनारण्यस्तपस्तप्त्वा चिन्तयन् राधिकेश्वरम् । गोलोकनार्थं ससेव्यगोलोकञ्च जगाम ह

बभूव कीर्त्तिमान् राजा ज्येष्ठपुत्रो नृपस्य च । पुत्रवत् पालयामास प्रजाः सर्वामहीतले

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे ५-

नारण्यकन्यकोपाख्यान नामैकवत्वारिंशोऽध्यायः ।

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

अनारण्यकन्यकोपाख्यानम्

वशिष्ठ उवाच ।

अथानारण्यस्यकन्या सिपेने भक्तिरो मुनिम् । कर्मणामनसावाचा लक्ष्मीर्नारायणं यथा

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः] * अनारण्यकनृत्यकोपाख्यानम् *

एकदा स्वर्णदी स्नातुं गच्छन्ती सस्मितां सतीम् ।

ददर्श पथि धर्मश्च मायया नृपलिङ्गकः ॥ २ ॥

चारुत्तरस्थस्थश्च रत्नालङ्कारभूषितः । नवीनयौवन. श्रीमान् कामदेवसमप्रभः ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा तां सुन्दरीरम्यामुवाच माययाविभु । विज्ञातुमन्तस्तत्त्वञ्च तस्याश्च मुनियोषितः
धर्म उवाच ।

अयि सुन्दरि लक्ष्मीव राजयोग्ये मनोहरे । अतीचयौवनस्थे च कामिनि स्थिरयौवने ॥
जरातुरस्य वृद्धस्य समीपे त्वं न राजसे । चन्दनागुदसंलिप्ता राजसे राजवशसि ॥ ६ ॥
विप्रं तप सु निरतं सत्यज्ञं मरणोन्मुक्तम् । विहाय पश्य राजेन्द्रं रतिशूरं स्मरातुरम् ॥
प्राप्नोति सुन्दरं पुण्यात् सौन्दर्यं पूर्वंजनमतः । सफलं तद्वयेत्सर्वं रसिकालिङ्गनेन च
सहस्रसुन्दरोक्तान्तं कामशास्त्रपिशारदम् ।

किङ्कृतं कुरु मां कान्ते परित्यक्ष्यामि ता अपि ॥ ६ ॥

निर्जने निर्जने रम्ये शैले शैले नदे नदे । पुष्पोद्याने पुष्पिने च सुगन्धिपुष्पवायुना ॥ १० ॥
मलये चन्दनारण्ये चारुचन्दनवायुना । विहरिष्यामि कामेन कामिन्या च त्वया सह ॥
कामज्वरेण दग्धायाः शान्तिं कर्तुमहं क्षमः । विहरस्य मया साद्ये जन्मेदं सफलं कुरु
हृत्प्रेममुकचन्तं तं स्पर्धादवरह्य च । गृहीतुस्तुत्सुकं हस्ते तमुवाच पतिव्रता ॥ १३ ॥
पशोयाव ।

दूरं गच्छ गच्छ दूरं पाविष्ठ भूमिपाधम । मां चेत्पश्यसि कामेन सद्यो भस्मभविष्यसि
पिप्पलादं मुनिश्रेष्ठं तपसा पूतविग्रहम् । विहाय त्वां भजिष्यामि ह्रीजितं रतिलम्पटम्
ह्रीजितस्पर्शमात्रेण सर्वं पुण्यं प्रणश्यति ।

न भूमौ पातकी पापात् पापिना ह्रीजितात्परः ॥ १६ ॥

मा मातरञ्च ह्रीभावं कृत्वा येन प्रवीषि च । भविष्यति क्षयस्तेन कालेन मम शापतः
धृत्या धर्मः सतीशापं नृपमूर्तिं विहाय च । धृत्या स्वमूर्तिं देवेशः कम्पमान उवाच ताम्
धर्म उवाच ।

मातृजानीहि मां धर्मं धर्मज्ञानं गुरोरगदम् । परस्त्रीमातृयुद्धिञ्च कुर्वन्तं सन्ततं सति ॥

अहं तवान्तर्विज्ञातुमागतस्तव सन्निधिम् । युष्माकञ्च मनो याने तथापि देवबोधितः ॥

कृतं मे दमनं साधिव न विरुद्धं यथोचितम् ।

शास्तिः समुत्पथस्थानामीश्वरेण विनिर्मिता ॥ २१ ॥

धर्मं स्वधर्मं विज्ञातुं कालं कलयितुं क्षमः । विधातारं संविधातुं तस्मै कृष्णाय ते नमः
संहतुं यः क्षमः काले संहतारं भवं विभुः । स्रष्टारं लीलया स्रष्टुं तस्मै कृष्णाय ते नमः

शत्रुं विधातुं मित्रञ्च सुप्रीति कलहं क्षमः । स्रष्टुं नष्टुं तदेवञ्च तस्मै कृष्णाय ते नमः
शापं प्रदातुं सर्वार्थं सुखदुःखहरान् क्षमः । सम्पदं विपदं यो हि तस्मै कृष्णाय ते नमः

प्रकृतिनिर्मिता येन महाविष्णुश्च निर्मितः ।

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यास्तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥ २६ ॥

येन शुक्लीकृतं क्षीरं जलं शीतं कृतं पुरा । दाहीकृतो द्रुताशश्च तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥
अतितेजःसमुत्थाय तेजोरूपाय मूर्तये । गुणश्रेष्ठनिर्गुणाय तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥ २८ ॥

सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वेपामन्तरात्मने । सर्ववन्धुस्वरूपाय तस्मै कृष्णाय ते नमः ॥ २९ ॥
इत्युत्तचापुरतस्तस्यास्तस्थौ धर्मोजगद्गुरुः । सा साध्वीतञ्च विज्ञाय सहस्रोवाच पर्वत

पद्मोवाच ।

त्यमेव धर्मः सर्वपां साक्षी च सर्वकर्मणाम् । सर्वान्तरेषु सर्वात्मा सर्वज्ञः सर्वतरवदित्

कथं मनो मे विज्ञातुं विडम्बयसि किङ्करीम् ।

यत् कृतं त्यत्कृते ब्रह्ममपराधो यभूष मे ॥ ३२ ॥

त्वञ्च शक्तो मयाऽज्ञानात् स्त्रीस्वभावात् कुधा विभो ।

का व्यवस्था भवेत्तस्य चिन्तयामीति साम्प्रतम् ॥ ३३ ॥

आकाशोऽसौ दिशः सर्वा यदि नश्यन्ति धायवः ।

तथापि साध्वीशापस्तु न नश्यति कदाचन ॥ ३४ ॥

त्वञ्च नष्टो भवसि चेत् सृष्टिनाशो भवेत्तदा । इतिकर्तव्यतामूढा तथापित्वां वदाम्यहम्
सत्ये पूर्णश्चतुष्पादैः पौर्णमास्यां यथा शशी । विराजसे देवराज सर्वकालं दिवानिशम्

पादक्षयश्च त्रेतायां भगवन् भविता तव । पादौ परौ द्वापरे च तृतीयश्च कलौ विभो ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः] * अनारण्यकन्यकोपाख्यानम् *

कलिरोषे शेषपादस्तवाच्छत्रो भविष्यति । पुनः सत्ये समायाते परिपूर्णो भविष्यति ॥
सत्ये सर्वव्यापकस्त्वं तदन्येषु च कुत्रचित् । यत्र स्थानं तवाधारे वदामिभूयतांविभो
वैष्णवेषु च सर्वेषु यतिषु ब्रह्मचारिषु । पतिव्रतासु प्राज्ञेषु धानप्रस्थेषु भिक्षुषु ॥ ४० ॥
नृपेषु धर्मशीलेषु सत्सु सदैव्यजातिषु । द्विजसेविषु शूत्रेषु सत्संसर्गस्थितेषु च ॥ ४१ ॥
एषु त्वं सततं पूर्णा धर्मराज विराजसे । युगे युगे तवाधारा यत्र पुण्यतमा जनाः ॥
अश्वत्थवटविल्वेषु तुलसीचन्दनेषु च । दीक्षापरीक्षाशपथगोष्ठगोष्पद्भूमिषु ॥ ४३ ॥

विवाहेषु च पुण्येषु विद्यमानोऽसि शापिषु ।

देवालयेषु तीर्थेषु सतां शम्भुगृहेषु च ॥ ४४ ॥

वेदवेदाङ्गध्वजेषु जलेषु च समासु च । श्रीरुष्णगुणनामोक्तश्रुतिगीतस्थलेषु च ॥ ४५ ॥
व्रतपूजातपोन्याययज्ञसाक्षिस्थलेषु च । गवां गृहेषु गोप्येव विद्यमानो हि पश्यसि ॥
कृशता ते न भविता धर्मं तेषु स्थलेषु च । एतदन्येषु कृशता यदगम्यञ्च तच्छृणु ॥ ४७ ॥
पुंश्चलीषु च सर्पासु गृहेषु नरघातिनाम् । नरघातिषु नीचेषु मूर्खेषु च पलेषु च ॥ ४८ ॥
देवतागुरुविमेषुपाल्यानां धनहारिषु । असन्नरेषु धूर्तेषु बोरिषु रतिभूमिषु ॥ ४९ ॥
दुरोदरसुरापातफलदानां स्थलेषु च । शालग्रामसाधुतीर्थपुराणरहितेषु च ॥ ५० ॥
दस्युस्नेहेषु पादेषु तालच्छायासु गर्विषु । असिजीविमसीजीपिदेवलग्रामयाजिषु ॥ ५१ ॥
वृषपाहस्वर्णकारजीवहिंसोपजीविषु । भर्तृनिन्दितनारीषु स्त्रीजितेषु च पुंसु च ॥ ५२ ॥
दीक्षासन्ध्याधिष्णुभक्तिविहीनेषु द्विजेषु च ।

साङ्गकन्याधिकयिषु स्वयोपिद्विकयिष्वथ ॥ ५३ ॥

शालग्रामसुरग्रन्थभूमिचिकयिषु प्रभो । मित्रद्रोहिरुतज्जेषु सत्यविद्यासघातिषु ॥ ५४ ॥
शरणागतहीनेषु चाधितज्जेषु नृप्यपि । शश्वन्मिथ्याोक्तिशीलेषु तथा सोमापहारिषु ॥

कामात् क्रोधात्तथा लोभान्निध्यासाक्ष्यप्रवादेषु ।

पुण्यकर्मविहीनेषु पुण्यकर्मपिरोधिषु ॥ ५६ ॥

स्थानुमेतेषु निन्देषु नाधिकारस्तव प्रभो । ममापि वचनं सत्यं यभूय तत्क्षणं तव ।

यास्यामि पतिसंवायै गच्छ तात समन्दिम् ॥ ५७ ॥

हाहाकारं प्रचक्रुश्च सुराः सर्वेऽतिविस्मिताः ।

जग्मुः शङ्करसेनाश्च दक्षयज्ञं विनाश्य च ॥ ६३॥

पराभवञ्च सर्वेषां कृत्वा शोकातुराः पराः । सत्त्वरं सर्ववृत्तान्तं कथयामासुरीश्वरम् ॥

श्रुत्वा प्रवृत्तिं संहर्त्ता सर्वरुद्रगणैर्वृतः । जगाम स्वर्णदीतीरं यत्र देवीकलेयरम् ॥ ६५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे सतीदेह-

त्यागो नाम द्वित्वारिंशोऽध्यायः ।

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

सतीदेहत्यागान्तरं शङ्करविलापवर्णनम्

श्रीनारायण उवाच ।

अथ दुर्गां महादेवः सतीमूर्तिं मनोहराम् । अमृतापयवक्त्रां तां शयानां जाह्नवीतटे ॥ १ ॥

वधतीमक्षमालाञ्च प्रतप्तकाञ्चनप्रभाम् । तेजसा प्रज्वलन्तीञ्च दधानां शुक्लवाससम् ॥ २ ॥

वृष्ट्वा सतीशरीरञ्च प्रदग्धो विह्वलाग्निना । तत्स्वराशिर्मूर्तिमांश्च मूर्च्छां प्राप तथापि च ॥

कलत्रशोको यलयान् स्वात्मारामं परात्परम् ।

बाधते वेदवीजं तं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम् ॥ ४ ॥

क्षणेन चेतनांप्राप्य तामुवाच त्रिलोचनः । निरीक्ष्य वदनाम्भोजं स्थाणुः स्थाणुरिवापरः
साश्चुनेत्रोऽतिदीनश्च दीनानां शरणप्रदः । दीनदैन्यापहारी च विललाप परं वचः ॥ ६ ॥

शङ्कर उवाच ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुभगे सति प्राणेश्वरि प्रिये । शङ्करोऽहं तव स्वामी पश्यमां निकटागतम्
शिवं शिवप्रदं सर्वसंपद्वृषञ्च सिद्धिदम् । सर्वात्मानञ्च सर्वेशं शक्तुल्यं त्वया विना ॥
शक्तोऽहञ्च त्वया साद्वं सर्वशक्तिस्वरूपया । शक्तिहीनः शवसमो निश्चेष्टः सर्वकर्मसु
यश्च शक्तिं न जानाति ज्ञानहीनश्च निन्दति । तं त्यक्तुमुचितं विज्ञे कथं मा त्यजसि प्रिये

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः]

* शङ्करविलापणनम् *

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः साध्यभूतायं तव । सस्मितं सकटाक्षञ्च वद किञ्चित्सुधोपमम्

मधुरामासदृष्ट्या च मां दग्धं सेचनं कुतः ।

मां दृष्ट्वा दूरतः शीघ्रं स्निग्धं वदसि सस्मितम् ॥ १२ ॥

कथमद्यापि निश्चेष्टं विलपन्तं न भाषसे । प्राणाधिके समुत्तिष्ठ रुदन्तं मां न पश्यसि
परित्यज्य च नः प्राणान् गन्तुं नार्हसि सुन्दरि । जगदग्रे समुत्तिष्ठ प्राणाधारे परात्परे

पतिप्रते समुत्तिष्ठ कथं मां नाथ सेवसे । कथं करोषि विज्ञाय द्रतमङ्गं श्रुतिप्रसूः ॥ १५ ॥

इत्युत्त्वा मृतदेहञ्च प्रियाया विरहानुरः । निधायोरसि संश्लिष्य चुबुम्ब्य च पुनः पुनः

अधरे चाधरं दृष्ट्वा वक्षो वक्षसि शङ्करः । पुनः पुनः समाश्लिष्य पुनर्मूर्च्छामवाप सः

पुनः स चेतनां प्राप्य वेगादुत्थाय शोकतः । दुद्राय च यथोन्मत्तो ज्ञानिताञ्च गुरोर्गुरुः

सप्तद्वीपं सप्तसिन्धुं लोकालोकञ्चकाञ्चनम् । यन्मामग्नान्तवज्ज्ञानी सतीं कृत्वा स्ववक्षसि

शतशृङ्गगिरैः पार्श्वे जम्बुद्वीपे च भारते । सुनिर्जनेऽक्षयवटे गङ्गातीरे सरित्पटे ॥ २० ॥

करोदोद्यैः स्वयं कृत्वा सति साध्वीत्युदीर्य च । त्रिनेत्रनेत्रतीरेण सम्यभूव सरोधरम्

तन्नेत्रञ्च सरो नाम मुनीनां तपसः स्थलम् । योजनद्वयविस्तीर्णं पुण्यतीर्थं मनोहरम् ॥

यत्र स्नात्वा पुनर्जन्म नराणां ॥ भवेद्गिरे । शतजन्मकृतं पापं स्नानमात्रेण नश्यति ।

ह्युत्त्वा तां मानवीं मूर्तिं नरा यान्ति हरैः पदम् ॥ २३ ॥

तत्र संरोदनं त्यक्त्वा पुनर्यन्त्राम मेदिनीम् । पूर्णमद्वं महायोगी विरहानुरमानसः ॥ २४ ॥

सतीगलितप्रत्यङ्गैरङ्गैश्च पर्यतेश्वर । यभूव सिद्धपीठानां समूहो घाञ्छितप्रदाः ॥ २५ ॥

शेषाङ्गानां महादेवः संस्कारं वै विधाय च । अस्थिमालां विनिर्माय चकार कण्ठभूषणम्

नित्यं तद्गुणमभक्त्या चकार गात्रलेपनम् । सति प्राणेश्वरीत्युत्त्वा पुनर्मूर्च्छामवापसः

विसस्मार ब्रह्मपरमात्मानमात्मसम्भवं । स्वात्मारामः पूर्णकामो निश्चेष्टोऽपिरहस्यरात्

तं शयानं गिरिवरस्याभ्यासे धरमूलके । दृष्ट्वा देवाः समाजग्मुर्विस्मिताः शिवसन्निधिम्

नारायणञ्च भगवानीश्वरः सह पार्षदैः । रत्नयानेनाजगाम पद्माक्षितपदाम्बुजः ॥ ३० ॥

रत्नालङ्कारशोभाढ्यः पीतवासाश्चतुर्भुजः । ईषदास्यप्रसन्नास्यो घनमालाविभूषितः ॥

ब्रह्मा शेषश्च धर्मश्च सुराः सर्वे महर्षयः । समूपुरीशसदसि लक्ष्मीकान्तं प्रणम्य तं ॥

प्राधान्यञ्च यथा पुंसः प्रहृनेश्च सदा तथा । सतोमिच्छसि चेच्छम्भो प्रकृतेःस्तवनंकुरु

यत् स्तोत्रञ्च त्वया देवत्वं पुरा दुर्वाससे मुदा ।

तद्विव्यं कण्वशाखोक्तं भज तेन जगत्प्रसूम् ॥ ७० ॥

शोकनाशो भवतु ते शिवं शिव ममाशिषा ।

दूरं पितृघहेतुश्च यातुः सखीविहज्यरः ॥ ७१ ॥

इत्येवमुक्त्वा लक्ष्मीशो विरराम गिरीश्वर । स्तवनं कर्तुमारेमे प्रकृतेश्च महेश्वरः ॥ ७२ ॥

ज्जात्या नत्वा च श्रीकृष्णं ब्रह्माणं भक्तिसंयुतः । पुटाञ्जलियुतो भूत्वा पुलकाञ्चितचिप्रदः

महेश्वर उवाच ।

ओं नमः प्रहृत्यै मन्त्रः ।

ब्राह्मि ब्राह्मस्यरूपे त्वं मां प्रसीद सनातनि । परमात्मस्वरूपे च परमानन्दरूपिणि ॥ ७४ ॥

भद्रे भद्रप्रदे दुर्गे दुर्गघ्ने दुर्गनाशिनि । पोतस्वरूपेऽजीर्णे त्वं मां प्रसीद भयार्णवे ॥

सर्वस्यरूपे सर्वेशि सर्वपीजस्वरूपिणि । सर्वाधारे सर्वविधे मां प्रसीद जयप्रदे ॥ ७६ ॥

सर्वमङ्गलरूपे च सर्वमङ्गलदायिनि । समस्तमङ्गलाधारे प्रसीद सर्वमङ्गले ॥ ७७ ॥

निद्रे तन्द्रे क्षमे श्रेष्ठे तुष्टिपुष्टिस्वरूपिणि । लज्जे मेधे बुद्धिरूपे प्रसीद भक्तपत्सले ॥

वेदस्यरूपे वेदानां कारणे वेददायिनि । सर्ववेदाङ्गरूपे च वेदमातः प्रसीद मे ॥ ७९ ॥

द्वये जये मद्दामाये प्रसीद जगदम्बिके । क्षान्ते शान्ते च सर्धान्ते क्षुत्पिपासास्यरूपिणि

लक्ष्मीनारायणक्रोद्धे क्षप्युर्वक्षसि भारति । मम क्रोद्धे मद्दामाये विष्णुमाये प्रसीद मे ॥

कलाकाष्ठास्वरूपे च दिवारात्रिस्वरूपिणि । परिणामप्रदे देवि प्रसीद दीनपत्सले ॥

कारणे सर्वशक्तानां कृष्णस्योरसि राधिके । कृष्णप्राणाधिके भद्रे प्रसीद कृष्णपूजिते

यशःस्वरूपे यशसां कारणे च यशःप्रदे । सर्वदर्शस्यरूपे च नारीरूपविधायिनि ॥ ८४ ॥

समस्तकामिनोरूपे कल्याणेन प्रसीद मे । सर्वसम्पत्स्वरूपे च सर्वसम्पत्प्रदे गुप्ते ॥ ८५ ॥

प्रसीदपरमानन्दे कारणे सर्वसम्पदाम् । यशस्विनां पूजिते च प्रसीद यशसां निधे ॥

आधारे सर्वजगतां रक्षाधारे वसुन्धरे । चराचरद्वयस्य च प्रसीद मम मा गिरम् ॥

योग्यस्वरूपे योगांते योगदे योगकाणे । योगाधिष्ठात्रि देवीने प्रसीद सिद्धयोगिनि

सर्वसिद्धिस्वरूपे च सर्वसिद्धिप्रदायिनि । कारणे सर्वसिद्धीनां सिद्धेश्वरि प्रसीद मे ॥
व्याख्यानं सर्वशास्त्राणां मतभेदे महेश्वरि । ज्ञाने यदुक्तं तत्सर्वं क्षमस्य परमेश्वरि ॥
केचिद्वदन्ति प्रकृतेः प्राधान्यं पुरुषस्य च । केचित्तत्र मतद्वये व्याख्याभेदं विदुर्बुधाः ॥

महाविष्णोर्नाभिदेशे स्थितं तं कमलोद्भवम् ।

मधुकैटभौ महावैद्यौ लीलया हन्तुमुद्यतौ ॥ ६२ ॥

दृष्ट्वा स्तुतिं प्रकुर्यन्तं ब्रह्माणं रक्षितुं पुरा । बोधयामास गोविन्दं विनाशहेतये तयोः ।

नारायणस्त्वया भक्त्या जघान तौ महासुरौ ।

सर्वेश्वरस्त्वया सार्द्धमनीशोऽर्चं त्वया विना ॥ ६४ ॥

पुरा त्रिपुरसंग्रामे गगनात्पतिते मयि । खया च विष्णुना सार्द्धं रक्षितोऽहं सुरेश्वरि ॥

अधूना रक्ष मामीशे प्रदग्धं विरहाग्निना । स्वात्मदर्शनपुण्येन क्रीणीहि परमेश्वरि ॥ ६६ ॥

, इत्युक्त्या विरतः शम्भुर्ददर्श गगनस्थिताम् ।

रत्नसाररथस्थां तां देवीं शतभुजां मुदा ॥ ६७ ॥

तत्तत्काञ्चनवर्णाभां रत्नाभरणभूषिताम् । ईषद्वास्यप्रसन्नास्यां जगतां मातरं सतीम् ॥

दृष्ट्वा तां विरहासक्तः पुनस्तुष्टाव सत्वयम् । दुःखं निवेदयामास प्रदन्विरहोद्वयम् ॥

दर्शयामासास्थिमालां स्वाङ्गस्थं भस्मभूषणम् ।

कृत्वा बहुपरीहारं तोषयामास सुन्दरीम् ॥ १०० ॥

नारायणश्च ब्रह्मा च धर्मः शेषः सुरपंथः । शिवं रक्षेश्वरीत्युक्त्वा तुष्टुयुक्ते सनातनम्

बभूव परितुष्टा सा तेषां स्तोत्रेण तत्क्षणम् । उवाच रूपया शम्भुं प्राणेशं प्राणवत्प्रभा

प्रकृतिरुवाच ।

स्थिरो भव महादेव प्राणाधिकं मम प्रभो ।

भवानात्मा च योगीशः स्वामी जन्मनि जन्मनि ॥ १०३ ॥

अहं शैलेन्द्रकामिन्यां लब्ध्वा जन्ममहेश्वर । तव पत्नी भविष्यामि मुञ्चत्यं विरहज्वरम्

इत्युक्त्या शिवमाश्वास्य चान्तर्धानं चकार सा ।

सुरा जम्बुस्तमाश्वास्य लब्ध्वा नम्रस्मकन्धयम् ॥ १०५ ॥

हृषान्तरात्मा गिरिः कैलाशं तं जगामह । ननर्त सगणस्तूर्णं सन्त्यज्य विरहज्वरम् ॥
इदं शिवकृतं स्तोत्रं प्रकृत्या यः पठेन्नरः । न भवेत्कामिनीभेदस्तस्य जन्मनि जन्मनि ॥

इह लोके सुखं भुक्त्वा स याति शिवमन्दिरम् ।

धर्मार्थकाममोक्षांश्च लभते नात्र संशयः ॥ १०८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

शङ्खशोकापनोदनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।



चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

पार्वतीपरिणयवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

यशिष्टस्यवचःश्रुत्वा सगणोऽपि हिमालयः । विस्मितोभार्ग्ययासाद्वैजहासपार्वतीस्वयम्
मरुन्धती च तां मेतां योधयामास कातराम् । निराहारां रुदन्ती तां जहौ शोकमुदा च सा
मरुन्धती भोजयित्वा वृंभुजे भोगमुत्तमम् । सर्वं प्रहृष्टमनसा मङ्गलञ्च चकार ह ॥ ३॥
ततः संभृतसंभारो यशिष्टस्यान्नया प्रिये । पत्रं प्रस्थापयामास नानास्थानं त्वरान्वितः
ततः प्रस्थापयामास शिखं मङ्गलपत्रिकाम् । नानाप्रकारद्रव्याणि धाद्यानि च चकार ह
तण्डुलानाञ्च शैलान् वै पृथुकानाञ्च सुन्दरि । तैलानाञ्च घृतानाञ्च दध्नां घापीश्चकार ह
शुङ्गानामासवानाञ्च क्षीराणाञ्च तथैव च । अथो ह्येयं वीनानां रवणानां परं मुने ॥

लङ्कुशानां शर्कराणां स्वस्तिकानां तथैव च ।

यवचूर्णादिपिष्टानां घृतपक्वानि तानि च ॥ ८ ॥

नानाप्रकारपद्माणि वह्निशौचानि यानि च । महारत्नप्रवालानि सुवर्णरजतानि च ॥ ९॥

द्रव्याण्येतानि शैलेन्द्रः कृत्वा तु विधिपूर्वकम् । मङ्गलं कर्तुमारम्भे तत्रैव मङ्गले दिने ॥

संस्कारं कारयामासुः पार्वतीं पर्वतस्त्रियः । स्नापयित्वा घस्त्रयुग्मं धारयामासुराशु ताः

कारयित्वा सुवेशाञ्च रत्नभूषणभूषिताम् । दर्पणं धारयामासुर्दूर्वाक्षतसमन्वितम् ॥ १२ ॥

ददुधालक्तकं चारु पादाङ्गुलिषु पादयोः ।

गण्डे पद्मावली रम्यां नेत्रे कज्जलमुज्ज्वलम् ॥ १३ ॥

कयरी कारयामासुर्मालतीमाल्यवेष्टिताम् । पट्सूत्रपिण्डां तां वामघक्रां मनोहराम् ॥

एतस्मिन्नन्तरे राधे समाजग्मुः सुरेश्वराः । नीत्वा त्रिनेत्रं तत्रैव रत्नयानस्थमीश्वरम् ॥

शैलः संभृतसंभारान् सम्भाषयितुमीश्वरान् ।

शैलान् प्रस्थापयामास ब्राह्मणानपि पूजितान् ॥ १६ ॥

प्राङ्गणं कारयामास रम्भास्तमैः समन्वितम् । पट्सूत्रसन्निवद्धरसालपल्लवान्वितैः ॥

कलपल्लवसंयुक्तैः कलसैर्जलसंयुतैः । चन्दनागुरुकस्तूरीसुचारुकुसुमान्वितैः ॥ १८ ॥

मालतीमाल्यसंयुक्तैः संयुक्तं सुमनोहरम् । देवेश्वरान् पुरो दृष्ट्वा प्रणनाम हिमालयः ॥

रत्नसिंहासनं दातुं प्रेरयामास किङ्करीन् ।

नारायणो हि भगवानुवाच पार्यदैः सह ॥ २० ॥

विनतानन्दनात्तूर्णमवरह्य चतुर्भुजः । चतुर्भुजैः पार्यदैश्च रत्नभूषणभूषितैः ॥ २१ ॥

रत्नमुष्टिनिपद्मैश्च सेषितः श्वेतचामरैः । ऋषिध्रेष्टैः सुरध्रेष्टैः स्तूपमानश्च संसदि ॥

ईषद्धास्यप्रसन्तास्यो भक्तानुग्रहकातरः । उवाच च तदभ्यासे प्रह्लादेवगणैः सह ॥ २३ ॥

ऋषयो मुनयश्चैव समूगुर्मङ्गलैः स्थले । एतस्मिन्नन्तरे शम्भुरपरह्य रथावहो ॥ २४ ॥

रत्नासने समुत्तिष्ठन् ददर्श पर्वतालयम् । समाजग्मुः शिवं द्रष्टुं शैलेन्दुनगरस्त्रियः ॥

बृद्धावाला युवत्यश्च घस्याभरणभूषिताः । काञ्चित्कज्जलहस्ताश्च वरुहस्ताश्च काञ्चन

काञ्चित् सिन्दूरदस्ताश्च काञ्चित् कटुकिकाकराः ।

वैशार्धभूषिताः काञ्चित् काञ्चिन्नैवार्यभूषिताः ॥ २७ ॥

काञ्चिन्निर्भूषिताः काञ्चित् सर्वाभरणभूषिताः ।

सर्वा भागत्य सन्तस्थुः सस्मिताः पर्वतालये ॥ २८ ॥

ऋषिकन्या देवकन्या नागकन्या मनोहराः । गन्धर्वशैलकन्याश्च राजकन्याः समागताः

सर्वा भप्सरसो दिव्या रम्भाद्याः समुपस्थिताः । मेनकन्यागणैः सार्धं ददर्श शङ्करं पश्य

चारुचम्पकवर्णाभमेकवक्त्रं त्रिलोचनम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं रत्नाभरणभूषितम् ॥ ३१ ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीचारुकुङ्कुमभूषितम् । मालतीमाल्यसंयुक्तं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ३२ ॥

बहिर्शौचेनातुलेन चातिसूक्ष्मेण चारुणा ।

अमूल्यवस्त्रयुग्मेन विचित्रेणातिभूषितम् ॥ ३३ ॥

रत्नदर्पणहस्तञ्च फल्ललोऽञ्जललोचनम् । सर्वथा प्रभयाच्छन्नमतीवसुमनोहरम् ॥ ३४ ॥

अतीवतरुणं रम्यैर्भूषिताङ्गैश्च भूषितम् । विभ्रन्तं रूपमतुलं परं नारायणाह्वया ॥ ३५ ॥

योगस्वरूपं योगेश योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम् ।

स्वेच्छामयं गुणातीतं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ ३६ ॥

गुणमेदातूपमेदं धत्तेऽनन्तमरूपकम् । तारणं तं भवस्थानां सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥

सर्वाधारं सर्ववीजं सर्वेशं सर्वजीवनम् । साक्षिरूपं निरीदञ्च परमानन्दमक्षरम् ॥ ३८ ॥

आद्यन्तमध्यरहितं सर्वाद्यं सर्वरूपकम् ।

दृष्ट्वा जामातरं मेना जहौ शोकं मुदान्विता ॥ ३९ ॥

प्रशशंसुर्युधत्यश्च धन्या धन्या सतीति ताः । दुर्गा भाग्यवतीत्येवमूचुः काश्चन कन्यकाः

कामेनकाश्चित्कामिन्यो मौनीभूताश्चकाश्चन । न दृष्टो वर इत्येषमस्माभिर्ज्ञानगोचरे

काश्चिन्नमेपरहिता मूर्च्छामापुश्च काश्चन ।

निनिन्दुः स्वपतिं काश्चित् स्वेच्छाञ्चकुश्च काश्चन ॥ ४२ ॥

काश्चिद्भावेन दुरुदुः पुलकाञ्चितधिग्रहाः ।

कामेन काश्चित् कामिन्यो मौनीभूताश्च स्तम्भिताः ॥ ४३ ॥

जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः । दृष्ट्वा शङ्कररूपञ्च प्रहृष्टाः सर्वदेवताः ॥ ४४ ॥

नानाप्रकारवाद्यानि चारूणि मधुराणि च । वादका वादयामासुर्नानाशिल्पेन तत्र वै ॥

तस्मिन्नन्तरे दुर्गां शैलान्तःपुरनारिकाः । बहिश्चकुश्च सद्रत्नासनस्थां रत्नवेदिकाम्

कस्तूरीविन्दुभिः सान्द्रसिन्दूरविन्दुभूषिताम् ।

चारुचन्दनचन्द्रामां नम्रमालस्थलोज्ज्वलाम् ।

रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षःस्थलविभूषिताम् ॥ ४७ ॥

त्रिनेत्रदत्तनेत्रान्तामन्यवारितलोचनाम् । अतीपद्मास्ययुक्तास्यां सकटाक्षं मनोहराम् ॥
रत्नकेयूरघलयरत्नफड्ढणमण्डिताम् । रत्नपाशकसंसक्तां कण्ठमञ्जीररञ्जिताम् ॥ ४६ ॥

अमूल्यातुल्यचित्रालयपल्लयुग्मसुशोभिताम् ।

सद्वत्नकुण्डलाम्याञ्च चारुण्डस्यलोज्ज्वलाम् ॥ ५० ॥

मणिसारप्रभामुष्टदन्तराजिचिराजिताम् । रत्नदर्पणहस्ताञ्च कीडापद्मं विघूर्णतीम् ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेनाङ्गचर्चिताम् । मुदिता ददृशुः सर्वे जगदाद्यां जगत्प्रसूम् ॥ ५२ ॥

त्रिनेत्रो नेत्रकोणेन तां ददर्श मुदान्वितः । सर्वां सत्याकृतिं दृष्ट्वा विजह्रीविरहज्वरम्
शिवः सर्वं विसस्मार दुर्गासंन्यस्तमानसः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो हर्षाश्रुयुक्कलोचनः ॥

पतस्मिन्नन्तरे शैलः प्रहृष्टः सपुरोहितः ।

तं धरं धरयामास घल्लचन्दनभूपणैः ॥ ५५ ॥

भक्त्या पाद्यादिभिर्माल्यैर्दिव्यगन्धमनोहरैः । ततः शीघ्रं वेदमन्त्रैः सम्प्रदानञ्चकार ताम्
यौतुकानि ददौ तस्मै रत्नानि विविधानि च । धारुरत्नविकाराणि पात्राणि सुन्दराणि च

गवां लक्षं गजेन्द्राणां सहस्राणि च राधिके । रत्नकम्पलयुक्तानि साङ्कुशानि मुदान्वितः
त्रिशूलश्च हयानाञ्च सज्जितानामकातरः । दासीनामनुकानां लक्षं सप्रक्षभूपितम् ॥ ५६ ॥

शतं द्विजघट्टनाञ्च पार्वतीभ्रातृकल्पकम् । रथानाञ्च शतं रथं रत्नेन्द्रसारनिर्मितम् ॥ ६०
पार्वती घस्तुसहितां स्वतीत्युच्चार्य शङ्करः । जग्राहानन्दमनसा यन्नाच्छैलसमर्पिताम्

हिमालयः सुतां दत्त्वा परिहारञ्चकार तम् ।

माध्यन्दिनोक्तस्तोत्रेण तुष्टाव सम्पुटाञ्जलिः ॥ ६२ ॥

हिमालय उवाच ।

प्रसीद दक्षयज्ञं नरकार्णवितारक । सर्वात्मरूप सर्वेश परमानन्दचिग्रह ॥ ६३ ॥
गुणानां च गुणातीतं गुणयुक्तं गणेश्वर । गुणवीजं महाभाग प्रसीद गुणिनां धर ॥ ६४ ॥

योगाधार योगरूप योगज्ञ योगकारण । योगाशं योगिनां वीजं प्रसीद योगिनां गुरो ॥
प्रलय प्रलयाद्यैक मय प्रलयकारण । प्रलयान्ते सृष्टिर्बीजं प्रसीद परिपालक ॥ ६६ ॥
संहारकाले घोरे च सृष्टिसंहारकारण । दुर्निवार्यं दुराराध्य चाशुतोष प्रसीद मे ॥

कालस्वरूप कालेश काले च फलदायक । कालबीजैक कालज्ञ प्रसीद कालपालक ॥
 शिवस्वरूप शिवद शिवयीज शिवाश्रय । शिवभूत शिवप्राण प्रसीद परमाश्रय ॥६६॥
 इत्येवं स्तवनं कृत्वा विराम हिमालयः । प्रशशंसुः सुराः सर्वे मुनयश्च गिरीश्वरम् ॥
 हिमालयकृतं स्तोत्रं संयतो यः पठेन्नरः । प्रवक्ष्याति शिवस्तस्मै पाञ्चितं राधिके ध्रुवम्
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
 पार्वतीसम्प्रदाने चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

पार्वतीपरिणये नानादेवस्त्रीणामागमनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

अथ घेदधिधानेन संस्थाप्य वहिमीश्वरः । यज्ञं चकार तत्रैव घामे संस्थाप्य पार्वतीम् ॥
 निवृत्ते विधियदु यज्ञे विप्राय दक्षिणां ददौ । शिवः शतसुघर्णानि बृन्दायनविनोदिनि ॥
 अथ प्रदोषमानीय शैलेन्द्रनगरस्थितः । निर्वर्त्य मङ्गलं कर्म गृहं संप्राप्य दम्पती ॥ ३ ॥
 कृत्वा जपध्वनिं प्रीत्या शुभनिर्मलनादिकम् ।

सस्मिताः सकटाक्षाश्च पुलकाञ्चितविग्रहाः ॥ ४ ॥

घासगोहं संप्रपश्य ददृशुः कामिनीगणाः । शङ्करं रूपवेशाढ्यं रदाभूषणभूषितम् ॥५॥
 चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाञ्जितविग्रहम् । ईषद्वास्यप्रसन्नास्यं सकटाक्षं मनोहरम् ॥६॥
 अपूर्वमृक्षमवेशाढ्यं सिन्दूरविन्दुभूषितम् । नारुचम्पकवर्णामं सर्वावययसुन्दरम् ॥७॥
 नवीनयौयनस्यञ्च मुनोन्मत्तचित्तमोहनम् । सरस्वतीञ्च लक्ष्मीञ्च सावित्रीं जाह्नवीं रतिम्
 अदितिञ्च शचीञ्चैव लोपामुद्रामदन्धतीम् ।

भद्रवतीं तुलसीं स्यादां रोहिणीञ्च घमुन्धराम् ॥ ८ ॥

शतक्रपाञ्च संग्राञ्च सतीक्ष्णीणाञ्च योद्धरा । देवकन्या नागकन्या मुनिकन्या मनोहराः ॥

या याः स्थितास्तत्र तासां संख्यां कर्तुञ्च कः क्षमः ।

तामी रत्नासने दत्ते तत्रोवास शिवो मुदा ।

तमृचुः कमशो देव्यो मधुरोक्तिं सुधामिव ॥ ११ ॥

सरस्वत्युवाच ।

प्राप्ता सती महादेवाधुना प्राणाधिका मुदा ।

दृष्ट्वा प्रियास्यं चन्द्रार्धं सन्तर्पं त्यज कामुक ॥ १२ ॥

कालं गमय कालेश सदा संश्लेषपूर्वकम् ।

विश्लेषस्ते न भविता सर्वकालं ममाशिषा ॥ १३ ॥

लक्ष्मीरुवाच ।

लज्जां विहाय देवेश सती कृत्वा स्वयक्षसि ।

तिष्ठ सम्प्रति का लज्जा प्राणा यान्ति यया विना ॥ १४ ॥

सावित्र्युवाच ।

भोजयित्वा सती शम्भो शीघ्रं भोजय मा रिद ।

तदाचम्य सकपूरं ताम्बूलं देहि भक्तितः ॥ १५ ॥

जाह्नव्युवाच ।

स्वर्णफङ्कृतिकां धूत्वा केशान्मार्जय योपितः ।

कामिन्याः स्वामिसौभाग्यं सुखं नातः परं भवेत् ॥ १६ ॥

रत्निरुवाच ।

गृहीत्वा पार्वती देव सुभगामतिदुर्लभाम् ।

कथं मम प्राणनाथो निःस्वार्थं भस्मसात्कृतः ॥ १७ ॥

जीवयसि विभो कामं कामव्यापारमात्मनि । कुरु दूरञ्च सन्तापे मम विश्लेषहेतुका
दम्पतीचिरहर्देशं सर्वं ज्ञात्वा दयानिधे । तथापि मम फान्तश्च कोपेन भस्मसात्कृत

इत्युक्त्वा कामभस्माद्य ददौ सां ग्रंथिबन्धितम् ।

रुरोद पुरतः शम्भोर्नाथ नाथेत्युदीर्य च ॥ २० ॥

हरिस्तद्रोदनं श्रुत्वा करुणामयसागरः । ब्रह्मा धर्मादिदेवाश्च ययुर्वासगृहं शिवम् ॥२१॥
 दृष्ट्वा नारायणं धर्मे ब्रह्माणश्च सुरानपि । जयेन पीठादुत्थाय स्वाहां कुर्वित्युवाच ह
 शंकरस्य घनः श्रुत्वा तमुवाच हरिः स्वयम् ।

कामं जीवय हे रुद्रेत्युक्त्वा शीघ्रं जगाम सः ॥ २३ ॥

ऊर्ध्वदेव्यो बहुतरं वाक्यं विनयपूर्वकम् । क्रुधादृष्ट्वा शूलभृतो भस्मतो निर्गतः स्मरः
 दृष्ट्वा कामं रतिस्तश्च प्रणनाम महेश्वरम् । तद्रूपश्च तदाकारं सस्मितं सधनुःशरम् ॥
 प्रणम्य शङ्कुरं कामः स्तुतिं कृत्वा यथागमम् । बहिर्गत्वा हरिं देवान् प्रणम्य समुवाच ह
 कामं सम्भाष्य देवाश्च युयुजुश्च तमाश्रियम् । काले रक्षा विनाशश्च निषेधः केतव्यते
 अथ शैलः सुरान् सर्वाभारायणपुरोगमान् । भोजयामास भक्ष्या च शाययामास यत्नतः
 अथ शम्भुर्वासगृहे धामे संस्थाप्य पार्वतीम् ।

मिश्राजं भोजयामास तया सह मुदान्वितः ॥ २६ ॥

भुक्तवन्तं शिवं तत्र देवमातादितिः स्वयम् । उवाच सस्मितं राधे सप्रीत्या सरसं वचः
 अवित्युवाच ।

भोजनान्ते शचि शम्भोःशौचाथं जलमर्पय । देहि शीघ्रं मम प्रीत्या दम्पत्योःप्रीतिपूर्वकम्
 शच्युवाच ।

कृत्वा विलापं यद्वेतोः शवं कृत्वा स्ववक्षसि ।

यो बभ्राम भवं मोहात् कालेन प्राप तां सतीम् ॥ ३२ ॥

अरुन्धत्युवाच ।

मया दत्ता सती तुभ्यं मेना दातुमनीप्सिता । विविधं बोधयित्वेमां रतिश्च कर्तुमर्हसि
 अहल्योवाच ।

धृद्धावस्थां परित्यज्य ह्यतीव तरुणोऽधुना । तेन मेना तु मेने त्वां सुतामर्पितुमीश्वर
 तुलस्युवाच ।

सती त्वया परित्यक्ता कामो दग्धः पुरा हृतः ।

कथं तदा वशिष्ठश्च प्रभो प्रस्थापितोऽधुना ॥ ३५ ॥

स्वाहोवाच

स्त्रिरो भव महादेव स्त्रीणां वचसि साम्प्रतम् । चिदाहेल्यवहारोऽस्तिपुरस्त्रीणांप्रगल्भता
रोहिण्युवाच ।

कामं पूरय पार्यत्याः कामशास्त्रविशारद । कुरूपारं स्वयंकामी कामिनां कामसागरम्
वसुन्धरोवाच ।

भोगद्वयं विना भोगी न हि तुष्टः शुभानुरः । येन तुष्टिर्भवेच्छम्भो तत्कर्तुमुचितंस्त्रिया
संज्ञोवाच ।

जानासि भायं सर्वज्ञ कामार्तानाञ्च योपिताम् ।

न च स्वस्यामिनं शम्भो सती जानाति सङ्गतम् ॥ ३६ ॥

शतरूपोवाच ।

तूष्णं प्रस्थापय प्रीत्या पार्यत्या सह शङ्करम् । रत्नप्रदीपं ताम्बूलं तल्यं निर्माय निर्जने ॥

श्रीरुष्ण उवाच ।

स्त्रीणां तद्वचनं श्रुत्या ता उवाच शिवःस्वयम् ।

निर्विकारी च भगवान् योगीन्द्राणां गुरोगुरुः ॥ ४१ ॥

शङ्कर उवाच ।

देव्यो मा वदतोक्तिञ्च ह्येषम्भूतां ममान्तिके । जगतां मातरःसाध्यः पुत्रे चपलताकथम्
शङ्करस्य वचःश्रुत्या लज्जिताः सुरयोपिताः । वभूयुःसम्प्रमात्तूष्णीं चित्रपुत्तलिका यथा ॥

भुक्त्या मिष्टानि भगवानाचम्य च मुदान्वितः । सकर्णूञ्च ताम्बूलं धुभुजे भाष्यं वा सह
रत्नासिंहासने शम्भुर्मेनादत्ते मनोहरे । सन्निधाय मुदा युक्तो ददर्श वासमन्दिरम् ॥ ४५ ॥

रत्नप्रदीपशतकेर्ज्वलद्विज्वलितं श्रिया । रत्नपात्रघटाकीर्णं मुक्तामाणिक्यभूषितम् ॥ ४६ ॥
रत्नदर्पणशोभाढ्यं मण्डितं श्वेतचामरेः । चन्दनागुदसंयुक्तं पुष्पशय्यासमन्वितम् ॥

नानाचित्रविचित्राढ्यं निर्मितं विश्वकर्मणा । रत्नसारेण यचितं रचितं ह्योष्कीर्यरेः ॥
कुत्रचित् सुरनिर्माणयैकुण्ठसुमनोहरम् । घृन्दावनं कुत्र घनं कुत्रचित्रासमण्डलम् ॥ ४९ ॥

वैलासञ्च कुत्रघन कुत्रचिदिन्द्रमन्दिरम् । दृष्ट्वाऽऽश्चर्यं महादेवः परितुष्टो बभूव ॥ ५० ॥

अथ प्रभातकालश्च चभूव प्राणवल्लभे । नानाप्रकारवाद्यञ्च वादयाञ्चकिरे जनाः ॥ ५१ ॥

सर्वे सुराः समुत्तस्थः सज्जीभूताः ससम्प्रभाः ।

स्ववाहनान् समारुह्य कैलाशं गन्तुमुद्यताः ॥ ५२ ॥

वासगेहं समागत्य धर्मो नारायणाङ्गया । उवाच शङ्करं योगीयोगीशं समयोचितम् ॥

धर्म उवाच ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते भवतु प्रमथाधिपः ।

पार्वत्या सह माहेन्द्रे यात्रां कुरु हरिं स्मरन् ॥ ५३ ॥

दृष्ट्वा धर्मवचः श्रुत्वा पार्वत्या सह शङ्करः । यात्रां चकार माहेन्द्रे वृन्दावनविनोदिनि

यात्रां कुर्वति देवेशे पार्वत्या सह शङ्करे । उच्चैरुदित्वा सा मेना तमुवाच कृपानिधिम्

मेनोवाच ।

कृपानिधे कृपां कृत्वा मद्भत्सां पालयिष्यसि । सहस्रदोषं भगवानाशुतोषः क्षमिष्यति

त्वत्पदाम्बुजभक्त्या मद्भत्सा जन्मजन्मनि । स्वप्ने ज्ञाने स्मृतिर्नास्ति महादेव प्रभुं विना

त्वद्वक्तिभ्रुतिमात्रेण हर्षाश्रुपुलकान्विता । त्वन्निन्दया भवेन्मौनं मृत्युञ्जय मृता इव ॥

इत्युत्तया मेनका शीघ्रं तत्रागत्य हिमालयः । उच्चैरुद च तदा वत्सां कृत्वा स्वधक्षसि

क यासि पतसेत्युच्चार्य शून्यं कृत्वा हिमालयम् ।

स्मारं स्मारं तद्गुणोद्यं विदार्य मन्मनः स्फुटम् ॥ ६१ ॥

इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रः समर्प्य च शिवां शिवे । सशैलः सहपुत्रश्च रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥

नारायणश्च भगवानध्यात्मविद्यया स्वयम् । सर्वान् प्रबोधयामास कृपया स कृपानिधिः

ननाम पार्वती भक्त्या मातरं पितरं गुहम् । मायया च महामाया रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥ ६४

पार्वतीरोदनेनैव रुदुः सर्वयोपितः । मुनयश्च सुराः सर्वे सखीकाः सगणाध्रुवम् ॥ ६५

शीघ्रं ययुस्ते कैलासं देवा मानसशायिनः । मुहूर्तादेन मुदिताः संप्रापुः शङ्करालयम् ॥

दृष्ट्वा गता देवपत्न्यो मुनिपत्न्यश्च सत्त्वयम् । आगुर्दीपमानीय मुदा मङ्गलकर्मणि ॥

चायुपत्नी कुयेत्य्य कामिनी शुककामिनी । तारा सुसुरोः पत्नी पत्नी दुर्वाससस्तथा ॥

अत्रिभाष्यांजनसूया च चन्द्रपत्न्यस्तथैव च । देवकन्या नागकन्या मुनिकन्याः सहस्रशः

असंख्यकामिनीसङ्घः संख्यां कर्तुंश्च कः क्षमः ।

ताश्च प्रवेशयामासुर्दम्पती वासमन्दिरम् ॥ ७० ॥

रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासुरीश्वरम् । सतीं तां दर्शयामास शिवः पूर्वार्धं मुदा ॥

सति स्मरस्यतो गेहाद्यद्गता तातमन्दिरम् ॥ ७१ ॥

अधुना शैलकन्या त्वं तत्र दक्षसुता पुरा । जातिस्मरां स्मरयामि नित्यं स्मरसि चेद्वद

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा सस्मितोवाच सा सती ।

सर्वं स्मरामि प्राणेश मूर्त्तिभूतो भवेति तम् ॥ ७२ ॥

शिवः संभृतसंभारो नानावस्तु मनोहरम् । भोजयामास देवांश्च नारायणपुरोगमान् ॥

भुक्त्वा देवाः प्रजग्मुस्ते नानारत्नविभूषिताः । सर्वाकाःसगणाः सर्वे प्रणम्यचन्द्रशेखरम्

नारायणञ्च ब्रह्माणं ननामशङ्करः स्वयम् । तौ च तश्च समाश्लिष्याशिषं कृत्वाप्रजग्मतुः

अथ शैलश्च मेना च मैनाकमाजुहाव ह ।

शीघ्रमानय भद्रं ते पार्वती शङ्करं सुत ॥ ७३ ॥

तयोःस वचनं श्रुत्वा शीघ्रंगत्वाशिवालयम् । आजगामसमानीय पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

पार्वत्या गमनंश्रुत्वापालाश्च घालिकास्तथा । वृद्धायुधत्यो या याश्चशैलाश्चदुर्दुर्मुदा ॥

मेना सुताभ्यां यध्वा च सह दुद्राव सस्मिता ।

हिमालयश्च मुदितो दुद्रावानुवज्जन् सुताम् ॥ ८० ॥

अथरत्न रथाद्देवी मातरं पितरं गुरुम् । प्रणनाम प्रमुदिता निमग्नानादऽऽसागरै ॥ ८१ ॥

पार्वतीश्च समाश्लिष्य मेनका हर्षविह्वला । हिमालयश्च मुदितो गताःप्राणा इयागताः ॥

सुतां निधाय गेहे स्वे रत्नसिंहासनं ददौ । शूलभृते गणेशश्च मधुपर्कादिकं मुदा ॥

तस्यौ श्वशुरगेहे च सगणश्चन्द्रशेखरः । नित्यं षोडशोपचारैः पूजितः सह भार्यया ॥

इत्येवं कथितं राधे शङ्करोद्ब्रह्मङ्गलम् । शोकञ्च हर्षजनकं किं भूयःश्रोतुमिच्छसि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणेनारायणनारदसंवादे धीकृष्णजन्मखण्डे

शङ्करविवाहो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।

पट्चत्वारिंशोऽध्यायः राधिकाश्रीकृष्णसंवादवर्णनम् ।

राधिकोवाच

सुचिरञ्च मृतं कामंशङ्करेण च जीवितम् । रतिः पुनःप्रियं प्राप्यकिंचकारमुदान्विता ॥
स्त्रीणां स्वस्वामिचिच्छेदो मरणादतिदुष्करः । पुन संमेलनं भर्तुः सुखं परमदुर्लभम् ॥
शिवः सती तां संप्राप्य सङ्गे मङ्गलकर्मणि । चिरं प्रनष्टविरहः किं चकार मुदान्वितः ॥
कलत्रविरहः पुंसां सर्वशोकात्सुदुष्करः । पुनःसम्मेलनं तस्याः प्राणदानाधिकं सुखम्
रतिः पुंसो विरहिणी शिवः स्त्रीविरही चिरम् । द्वयोर्द्वयोश्च संप्राप्तौ किमभवत् द्वयोः सुखम्
तदेव श्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं मम । कृपया विदुषां श्रेष्ठ सन्यासं कथय प्रभो ॥
मेलनं शक्तिशिवयो रतिमग्नययोस्ततः । शोकापहं श्रुतवतां सर्वमङ्गलकारणम् ॥ ७ ॥

नारायण उवाच ।

इत्युत्तराधिकादेवीसस्मिता विररामह । कृष्णस्तद्वचनं श्रुत्वा सस्मितस्तामुवाच ह ॥

कृष्ण उवाच

मृतं कामं पुनःप्राप्य कामार्ता कामकामिनी ।
स्वालयं तं समानीय हरोद्वाहगृहादहो ॥ ६ ॥
भर्तुः सुखेन विविधं स्वात्मनः स्वालिभिर्मुदा ।
कारयामास यत्नेन सा रती रमणोत्सुका ॥ १० ॥

ज्ञात्वा कामस्तु तद्वाचं कामशास्त्रविधायकः । रत्नयानं समाख्या जगाम स्वालयाद्वनम् ॥
शैले शैलेऽतिरम्ये च नद्यां नद्यां नदे नदे । द्वीपे द्वीपे सिन्धुतटे पुष्पोद्याने मनोहरे ॥ १२ ॥
काञ्चने भूमिनिकरे वटमूलेऽतिनिर्जने । नदीपुलिनभूम्याञ्च पुष्पिते पुष्पकानने ॥ १३ ॥
भ्रमरध्वनि संयुक्ते पुंस्को किल स्तुतः । सुगन्धिवायुनाकोर्णा दधती जलशीकरम् ॥
चित्तेषु चेतनानाञ्च हरणं योपितामहो । कलामानप्रकारेण शृङ्गारञ्च चकार सा ॥ १५ ॥

पूर्णमब्दशतं दिव्यं स रेमे वामया सह । दिवानिशं न बुबुधे संसक्तः सततं मुदा ॥
तस्थतुस्तौ च तत्रैव संसक्तौ सन्ततं मुदा । सुरती च न विरती रतिशास्त्रविशारदौ
पतिविच्छेदसन्तापं विजहौ सा रतिर्मुदा । प्राप्य रत्नमण्डितं कः क्षणं त्यक्तुमुत्सहेत् ॥
इत्येवं कथितं सर्वं रतिसन्तापकारणम् । शृङ्गारं शक्तिशिवयोस्तुलं शृणु राधिके ॥
शृण्वतां कर्णपीयूषं परमाश्चर्यमीप्सितम् । सर्पसन्तापहरणं सुखदं पुण्यदं शुभम् ॥
घसन् श्वशुरोहे स पार्वत्या सह शङ्करः । तदनुतां सामदाय कीडार्थं प्रययी घनम् ॥
रत्नस्यन्वनमावह्य रत्नसारपरिच्छिदम् । रत्नसारेण खचितं रचितं विश्वकर्मणा ॥२२॥
शतशृङ्गे सुवसने मलये गन्धमादने । नन्दने पुष्पभद्रे च पारिभद्रे च भद्रके ॥ २३ ॥
पुलिन्दे च कलिन्दे च पुण्ड्रे पिण्डारकेऽन्धके ।

घने घनेऽतिरम्ये च सागराणां तटे तटे ॥ २४ ॥

निकटेऽस्तगिरिः पार्श्वघटमूले मनोहरे । चकार कठणां यत्र परित्यज्य सती शिवम् ॥
नानास्थानेषु रहसि पशुपक्षिविचर्जिते । यथा मनोरथं गामी ॥ रेमे वामया सह ॥२६॥
यत्र यत्र शवं नीत्वा वज्राम धरणीतलम् । तन् सर्वं दर्शयामास सती शम्भुर्मुदान्वितः
कृत्वा विहारं सुखिं न पूर्णं मानसं तयोः । महाशृङ्गारमारेमे सहस्राब्दं जगत्पिता ॥
मायातीतोऽतिमप्येशो मायासक्तः स्वमायया । न कालं बुबुधेयोगी सुप्तेन कालकारकः
शक्तिशक्तिमतोस्तत्र न बभूव परिश्रमः । जहतोः सर्वसन्तापमन्योन्यपिरहोद्वपम् ॥३०॥
सुखसंसकमनसोः पुलकाञ्चितगात्रयोः । कामयागमूर्च्छितयोः पुष्पशय्याशयानयोः ॥
नग्नयोः सुपसम्मोगाद्रतिशास्त्रविधिद्वयोः । नपदन्तप्रहारैश्च क्षतपि क्षतदेदयोः ॥ ३२॥

चन्दनागुरुकस्तूरीसिन्दूरचिन्दुलिप्तयोः ।

नियद्वकेशकवरीश्लययोश्चिच्छन्माल्ययोः ॥ ३३ ॥

पसनानां नूपुराणां कङ्कणानाञ्च सुन्दरि ।

पल्लवानां कुण्डलानां शम्भैः कीडा प्रकुर्यतोः ॥ ३४ ॥

पुष्पतलं दलितपौर्याप्नोत्कर्षञ्च विन्नतोः । तेजसा समयोःशदयत् कीडया कौतुकेनच
भारेण विश्वभारयोर्भाराकान्ता वसुन्धरा । सा विदीर्णा चकम्पे च सशीलवनसागरा

तयोर्भरभराकान्तधरायाश्च भरेण च । भाराकान्तौ हि दोषश्च तद्भरातोऽपि कच्छपः ॥
 कच्छपस्य भरेणैव सर्वाधाराः समीरणाः । महाचिह्नयुक्ताश्च सर्वप्राणाश्च स्तम्भिताः
 स्तम्भितेषु समीरेषु त्रिलोका भयविह्वलाः । ब्रह्मादयः सुराः सर्वे वैकुण्ठं शरणं ययुः
 सर्वं निवेदयामासुर्नारायणपदाम्बुजे । नारायणश्च भगवानुवाच कमलोद्भवम् ॥ ४० ॥

श्रीनारायण उवाच ।

शृङ्गारभङ्गसमयो भविता नाधुना विधे । कालप्रयुक्तं कार्यञ्च सिद्धं तत्समयोचितम्
 पूर्णं वर्षसहस्रेण स्वेच्छया विरमिष्यति । शम्भोःसम्भोगमिष्टञ्च को भेदं कर्तुमीश्वर
 स्त्रीपुंसो रतिविच्छेदमुपायेन करोति यः । तस्य स्त्रीपुंसयोर्मदो भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥
 शत्यन्ते कालसूत्रे च वर्षलक्षं स पातकी । भ्रष्टान्नो भ्रष्टकीर्तिरलक्ष्मीको भवेद्दिह ॥
 तस्मा युक्तं शक्रमिमं चकार चिरतं रती । महामुनीन्द्रो दुर्वासास्तत्स्त्रीभेदो बभूव ह ॥
 पुनरन्यां स संप्राप्य निषेव्य शूलपाणिनम् । दिव्यवर्षसहस्रञ्च विजहौ विरहज्वरम् ॥
 रोहिणीसहितं चन्द्रं चकार चिरतं रती । महर्षिर्गौतमस्तस्य स्त्रीविच्छेदो बभूव ह ॥
 पुनः शिवं समाराध्य प्रापाहल्याञ्च पुष्करे । दिव्यवर्षसहस्रञ्च विजहौ विरहज्वरम् ॥ ४८ ॥
 मुनिः स्वभार्यासंसक्तै दिवसे निर्जने वने । ब्रह्माण्डकसुतं नीत्वा चकार चिरतं रुपा ॥
 बभूव पुत्रविच्छेदस्तस्य कल्पान्तरे पुनः । शिवं निषेव्य संप्राप्य पुत्रं तत्याज चिह्नवम्
 हरिश्चन्द्रो हालिकश्च वृषल्या सह संयुतम् । वारयामास निक्षेष्टं निर्जने तत्फलं शृणु
 भ्रष्टः श्रीराज्यवित्तेभ्यस्तं चकारायलीलया । विश्वामित्रो महर्षिश्च ताडयामास तं पुरा
 ततः शिवं समाराध्य दातारं सर्वसम्पदाम् । सद्यो जगामवैकुण्ठं सगणो मम मन्दिरम्
 अजामिलं द्विजश्रेष्ठं वृषल्या सह संयुतम् । न भिया वारयामासुः सुरास्तञ्चाति केचन
 निष्पन्ने कर्मभोगे च स मद्भक्तो मुमोच ह । मन्नामस्मृतिमात्रेण चाजगाम ममालयम्
 सर्वं निषेकसाध्यञ्च निषेको बलवान् विधे । निषेकफलदाताहं निषेकः केन वार्यते ॥
 दिव्यं वर्षसहस्रञ्च शम्भोः सम्भोगकर्मकृत् । निषेकफलदानुस्तु निषेकफलसञ्चयम् ॥

पूर्णं वर्षसहस्रे च गत्वा तत्र महेश्वरः ।

येन दीप्यं पतद्भूमौ तत्करिष्यति निश्चितम् ॥ ५८ ॥

तत्र धीर्यं च भविता स्कन्दको भक्ततारकः ।

सदा भद्रस्वरूपोऽहं भयं किं वो मयि स्थिते ॥ ५६ ॥

अधुनात्वं गृहंगच्छ भगवन् स्वर्गणैः सह । करोतु शम्भुः सम्भोगं पार्वत्या सहनिर्जने
इत्युक्त्वा कमलाकान्तःशोघं स्वान्तःपुरंययौ । स्वालयं प्रययुर्देवाः शिषः स्वस्थो रत्नोरतः
नारायण उवाच ।

इत्युक्त्वा राधिकां कृष्णः सकटाक्षश्च सस्मिताम् ।

जगाम चन्दनवनं निर्जने च तथा सह ॥ ६२ ॥

अतीवनिर्जनं रम्यं वायुना सुरभीकृतम् । पुष्पोद्यानैः समाकीर्णं तत्र क्रीडां चकार ह ॥
पुष्पतल्पसमाकीर्णं परपुष्टभृतध्रुते । भ्रमरध्वनिसंयुक्ते कामिनीनां मनोहरे ॥ ६४ ॥

कृष्णसम्भोगमात्रेण सुखसंमूर्च्छिता च सा ।

अतीवमूर्च्छितः कृष्णो राधाङ्गस्पर्शमात्रतः ॥ ६५ ॥

तस्थतुस्तत्र संयुक्तो राधारासेश्वरो मुने । अतीवरतिनिश्चेष्टो किं भूयः श्रोतुमिच्छसि
इत्येवं मङ्गलं कर्म यः शृणोति समाहितः । कदाचिद्वन्धुषिच्छेदो न भवेत्तस्य नारद ॥

महाशोकार्णवे मग्गो भेदे पुत्रकलत्रयोः ।

मदुभृत्यानत्तत्र यन्धूनां मासं श्रुत्वा लभेद्भुवम् ॥ ६८ ॥

सूत उवाच ।

इत्युक्त्वा धर्मपुत्रश्च चिरराम महामुनिः । पुनः संप्रप्रुमारमे देवर्षिः कौतुफान्वितः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे मङ्गल-

घर्णनं नाम पट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

अथ क्रीडान्तरे राधा किं पप्रच्छ हरिं विभुम् ।

कां कथा कथयामास कथ्यतां करुणानिधे ॥ १ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

उत्थाय सुखसम्भोगाद्राधा कृत्वा पुरो हरिः । उवास मलयद्रोणी घटमूले मनोहरे ॥
राधां तां परिपप्रच्छ सस्मितं सुमनोहरम् । दर्पभङ्गं वज्रभृतो निगूढं धृतिसुन्दरम् ॥

श्रीराधिकोवाच ।

श्रुतं यशः शूलभृतो दर्पभङ्गश्च दैवतः । पार्वत्या दर्पभङ्गश्च विवाहश्च तयोरहो ॥ ४ ॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि दर्पभङ्गं हरेर्हरे ।

शेषाणाञ्च क्रमेणैव घटं व्यस्य जगद्गुरो ! ॥ ५ ॥

श्रीरुष्ण उवाच ।

दर्पभङ्गं सुरपतेस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । कर्णवीयूपमतुलं सुन्दरं शृणु सुन्दरि ॥ ६ ॥
पुरा शतमुखो दर्पात् कृत्वा शतमुखं मुदा । बभूव सर्वदेवानामध्यक्षः सम्पदा युतः ॥ ७ ॥
दिने दिने तदैश्वर्यं वर्द्धते तपसः फलात् । दीक्षान्त कारयामास सिद्धमन्त्रं बृहस्पतिः
स जजापम हामन्त्रं पुष्करे शतवत्सरम् । बभूव मन्त्रसिद्धश्च परिपूर्णमनोरथः ॥ ८ ॥

ब्रह्मस्वरूपां प्रकृतिं सम्पन्मूढो न मन्यसे ।

सा तं शशाप स्वगुरोः शापं लभेऽतिकोपतः ॥ १० ॥

एकदा प्रकृतेः शापाद्वत्तुद्धिः स्वसंसदि । गुरुं दृष्ट्वा समुत्थाय न ननाम मुदान्वितः
बृहस्पतिस्ततः कोपात्त्रोवाच गृहमाययौ । न तस्यौ तारकाम्यासे तपसे काननं ययौ ॥
उवाच मनसा दीनो या तु सम्पद्दरेरिति । अथ शक्नो मतिं प्राप्य क्व गतोऽतो मदीश्वरः

इत्युक्ता वेगतः पीठाञ्जगाम तारकान्तिकम् ।

प्रणम्य मातरं भक्त्या नतस्कन्धः पुटाञ्जलिः ॥ १४ ॥

सर्वं निवेदनं कृत्वा हरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः । पुत्रस्य रोदनं दृष्ट्वा हरोद तारका भृशम् ॥

घटस गच्छ गुहं नैव गुहं द्रक्ष्यसि साम्प्रतम् ।

दुर्दिनान्ते गुहं प्राप्य पुनर्लक्ष्मीमवाप्स्यसि ॥ १६ ॥

अधुना कर्मणां भोगं भुङ्क्ष्य मूढ दुराशय ।

दुर्दिने स्वगुरो दोषः सुदिने परितोषणम् ॥ १७ ॥

सुदिनं दुर्दिनं शक्य कारणं सुखदुःखयोः । इत्युक्त्वा तारकादेवी विरराम पतिव्रता ॥

जगाम शक्रः क्षान्तार्थस्वर्णदी सुमनोहराम् । ददर्श तत्र रुचिरां मार्जन्तीञ्च नितम्बिनीम् ॥

सस्मितां सकटाक्षां तामहल्यां गौतमप्रियाम् ।

दृष्ट्वा च विपुलश्रोणीं स्तनयुग्मं मनोहरम् ॥ २० ॥

सतस्याः शक्रः सम्पश्यन् मुमोहकाममोहितः । पुनः सचेतनांप्राप्यविहायज्ञानमीश्वरि ॥

मूर्ति विधाय तद्गर्तुस्तत्समीपं जगाम ह ॥ २१ ॥

गत्वा तु क्षिप्रवस्त्रां तां समारुप्य स्मरतुरः । चकारविविधतत्र शृङ्गारं सुमनोहरम्

मूर्च्छां संप्राप कामेन तन्द्राञ्च मुनिकामिनी ।

निश्चेष्टा सुप्तसम्मोगान्निश्चेष्टस्त्रिदशाधिपः ॥ २३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तस्या समागत्य मुनीश्वरः । ददर्श गेहे मिथुनं मीथुने च रतिप्रिये ॥ २४ ॥

दृष्ट्वा चुकोप स मुनिर्ज्वलन्निव हुताशनः । विमो न चातिरोपेण यमञ्च सुरतिक्षणम् ॥

शक्रः स चेतनां प्राप्य दृष्ट्वा च मुनिपुङ्गवम् ।

फालस्वरूपं त्रासेन दधार चरणाम्युजम् ॥ २६ ॥

कोपरक्तास्यनयनो देवं पादान्तं भिया । उवाच नीतिवचनं जगाम शरणागतम् ॥

गौतम उवाच

धिक् त्वामिन्द्र सुरलोष्ठ कश्यपात्मज पण्डित ।

प्रपौत्र जगतां स्रष्टुर्मुदिस्ते कथमीदृशी ॥ २८ ॥

मातामहः स्वयं दक्षोऽदितिर्माता पतिव्रता । कर्मसाध्यः स्वभावश्च कुलधर्मं प्रधायते ॥
 येनं पित्राय शान्ती त्वं योनिलुब्धोऽसि कर्मणा । योर्नानाश्च सहस्रश्च तवगात्रे भयत्पिह
 पूर्णपर्यञ्च सततं योनिगन्धं त्यमाप्नुहि । ततः सूर्ये समाराध्य योनिश्चक्षुर्नपिष्यति ॥

मम प्राणैश्चरी बुष्टा येन मूढ त्वया कृता ।

मच्छापेन गुरोः कोपाद् ब्रह्मार्भण्य साग्रतम् ॥ ३२ ॥

गुरोरपेक्षया मूढ प्राणा नापहृतास्तथ । तंजस्विनोऽतिपण्थोर्मं यन्धुर्भेदमिया गुर ॥
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठेयेन्द्र गरुड परसस्पमन्दिरम् । शुभाशुभश्चयतिकञ्चित् सर्वं कर्मोद्वयंभवेत्
 महामुर्नान्द्रघवनाद्रत्वा शक्रश्च पुष्करम् । चकाराद्यधनं मत्तया नैष्टृत्यश्च चकार ॥
 पादानतामद्व्यां तामुपाच मुनिपुङ्गवः । धनं गत्वा चिरं तिष्ठ विधाय मूर्तिमश्मनः ॥
 अकामाश्चकर्म शक्रः सर्वं जानाम्यहं प्रिये । तथा च परभोग्या मे न च भोग्या व्रजाधमे
 परस्पर्यं यदुदरे कामतोऽकामतोऽपि पा । भद्रस्य याति देयेन तदुपायं निशामय ॥ ३८ ॥
 अकामतो न बुष्टा सा प्रायश्चित्तेन शुध्यति । कामभोगेन त्याज्या सा कर्मभोगेन शुध्यति
 पितृपाके देवपाके पूजायां नाधिकारिणी । पृथिव्यसहस्राणि कालसूत्रं प्रयाति सा ॥
 पृथिव्यसहस्राणि क्षयं कृत्वा स्वकर्मणः । स्वामिनो घचनात् सा तु प्रणम्यस्यामिन्नभिया
 नाथ नाथेति कुर्वन्ती रुदन्ती वनमाप सा ।

पृथिव्यसहस्राणि भुक्त्वा भोगं मुनिप्रिया ॥ ४२ ॥

श्रीरामचरणस्पर्शात्सद्यः शुद्धा यभूव ह । ब्रैलोक्यमोहनं रूपं विधाय मुनिकामिनी ॥
 जगाम गीतमाभ्यासं मुनिः सम्प्राप्य सुन्दरीम् । अथ शक्रस्य वृत्तान्तं परमं शृणु सुन्दरि
 पापघ्नं पुण्यवीजं तत् संव्यस्य कथयामि ते ।

एकदा च गुरोः कोपात् प्ररुतेरेव हेलनात् ॥ ४५ ॥

ब्रह्महत्या वद्भृतो यभूव इतचेतसः । शक्रस्त्यक्तगुरुद्वेषत्रस्यो दैत्यनिपीडितः ॥ ४६ ॥
 जगाम शरणं भोतो ब्रह्माणं जगतां गुरुम् । तद्वाक्या विश्वरूपञ्चकार च पुरोहितम् ॥

यभूव तत्र विश्वस्तो देवाद्बुद्धिहतो हरिः ।

दैत्यदोहित्रस्य भावं विज्ञाय च विचक्षणः ॥ ४८ ॥

प्रविच्छेद शिरस्तस्य, तीक्ष्णवाणेनलीलया । विश्वरूपपिता त्वष्टा श्रुत्वा सद्यश्चुकोपह
इन्द्रशत्रो विवर्द्धस्वेत्युत्तवा यज्ञञ्चकार ह । यज्ञकुण्डात् समुत्तस्थो वृत्रो नाममहासुरः
चकार निग्रहं कोपाद्देवानामवललीलया । शक्रो महामुनेरस्थनां वज्रं कृत्वा सुदारुणम् ॥
जघान वृत्रं देवानां कण्टकं दैत्यमर्बनः । ब्रह्महत्या शुनासीरं वुद्राय हतचेतनम् ॥५२॥
रक्तवस्त्रपरीधाना वृत्रह्रीवैशधारिणी । सप्ततालप्रमाणा सा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका ॥
ईषाप्रमाणवशना महाभीतञ्चकार तम् । धावन्तं परिधावन्ती बलिष्ठा हतचेतनम् ॥५४॥

खड्गहस्ता दयाहीना येनेन परिधावति ।

इन्द्रो दृष्ट्वा च तां घोरां स्मारं स्मारं गुरोः पदम् ॥ ५५ ॥

धिवेश मानससरो मृणालसूक्ष्मसूत्रतः ।

तत्र गन्तुं न शक्ता सा ब्रह्मणः शापकारणात् ॥ ५६ ॥

सा तस्यौ पटशाखायां सरसस्तटसन्निधौ । अथात्र नहुषो भूपस्त्रिलोकेशो बभूव ह
स ययाचे शचीं देवान् बलिष्ठो दुर्बलानपि । शची श्रुत्वा महाभीता तारकां शरणंययौ
तारा निर्भर्त्स्य स्वपतिं भृत्यपत्नीं ररक्ष च । शचीमाश्रयास्य स्वगुरुर्जंगाम तत्सरो मुदा
आजुह्वाय शुनासीरं कातरं हतचेतनम् ॥ ५६ ॥

वृहस्पतिरुवाच ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ हे पत्स भयं किं ते मयि स्थिते । त्वदीश्वरं स्वरेणैव निशामय भयंत्यज
स्वरं वृहस्पतेर्ज्ञात्वा सर्वसिद्धीश्वरो हरिः । सूक्ष्मरूपं परित्यज्य स्वरूपञ्च दधार सः
उत्थायसद्यःसम्भ्रान्तोगुरुं तं सूर्य्यवर्चसम् । दृष्ट्वाननामसम्प्रीत्या सम्प्रीतं त्यक्तकौपकम्
पादाम्बुजे निपतितं रुदन्तं भयचिह्नलम् । निधाय वक्षसि प्रेम्णा करोद् प्रेमविह्वलः ॥

रुदन्तं पाकृपतिं नुष्टं नुष्टाय त्रिदशेश्वरः ।

पुटाञ्जलिः पुलकितो भक्तिमन्नात्मकगन्धरः ॥ ६४ ॥

इन्द्र उवाच ।

क्षमस्य भगवन् दीपं कृपां कुरु कृपानिधे । (पुत्र) भृत्यापराधं (च) न गृह्णाति सतीश्वरः
स्वभार्यासु स्वशिष्येषु स्वभृत्येषु सुतेषु च ।

दुर्वलः सखलो वापि को दण्डं कर्तुमक्षमः ॥ ६६ ॥

त्रिषु कोटिषु देवेषु देवकोऽहमपण्डितः । त्वत्प्रसादात् सुरश्रेष्ठ कृपया वर्द्धितस्त्वया
संहर्तुमीशस्त्वं सर्वमहं को वापिकीद्वत् । स्वयंविधातुः पौत्रश्च पुनः स्रष्टुं स्वयंक्षमः
[ति तस्य स्तवं श्रुत्वा परितुष्टो गुरुः स्वयम् । उवाच वचनं प्रीत्या प्रसन्नवदनेक्षणः
गुरुवाच ।

स्थिरो भव महाभाग निश्चलां कमलां लभ । सम्प्राप्य परमैश्वर्यं पूर्वस्माच्च चतुर्गुणम्
गच्छामरावती घत्स राज्यं कुरु पुरन्दर ।

इतश्चतुर्मुत्प्रसादाद्गत्वा पश्य शची सतीम् ॥ ७१ ॥

इत्येवमुक्त्वा स गुरुः सशिष्यो गन्तुमुद्यतः । ददर्श पुरतो घोरं ब्रह्महत्यां सुदुःसहाम्
दृष्ट्वा शक्तो महाभीतस्तं गुरुं शरणं ययौ । बृहस्पतिर्महाभीतः सस्मार मधुसूदनम् ॥
एतस्मिन्नन्तरै तत्र घाग् वभूवाशरीरिणी । स्वल्पाक्षरा च बहुधा तां शुभाच्च बृहस्पतिः
संसारविजयं नाम सर्वाशुभविनाशनम् ।

राधिके वचनं श्रुत्वा शिष्यं रक्षाधुनेति च ॥ ७५ ॥

तदा तत् कवचं दत्त्वा शिष्याय शिष्यवत्सलः ।

चकार भस्मसात्ताञ्च हुङ्कारेणैव लीलया ॥ ७६ ॥

तदा शिष्यं गृहीत्वा च गत्वा ताममरावतीम् । ददर्श छिन्नभस्माञ्च शत्रुणा पचनाद्गुरोः
भर्तुरागमनं श्रुत्वा शची संहृष्टमानसा । प्रणम्य स्वगुरुं भक्त्या स्वकान्तं प्रणनाम सा
श्रुत्वा गमनमिन्द्रस्य समाजग्मुः सुराः प्रिये । ऋषयो मुनयश्चैव हर्षगद्गदमानसाः ॥
योजयामास सत्कारं निर्मातुममरावतीम् । पूर्वमब्दशतं शिल्पी निर्ममे त्वमरावतीम्
नानारत्नविचित्राढ्यां मणिरत्नेन्द्रनिर्मिताम् ।

मनोहरां निरुपमां न हि तुष्टो यया हरिः ॥ ८१ ॥

विश्वकर्मा गृहं गन्तुं न शशाक विनाश्या । परमोद्विग्नचित्तश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥
विज्ञाय तदभिप्रायं तमुवाच विधिः स्वयम् । तव कर्मक्षयादेव तावच्छ्रयो भवितेति च
-चा तदचनं कारुः शीघ्रं प्रापामरावतीम् । ब्रह्मा जगाम पैकुण्डं प्रणम्योवाच मातरम्

हर्षिर्ह्याणमाश्वास्यं प्रस्थाप्य स्वगृहञ्च तम् । विप्ररूपं समास्थाय चाजगामामरावतीम्

दण्डी छत्री शुक्लधासा विप्रत्तिलकमुज्ज्वलम्

भतिष्वर्चः शुक्लदन्तः सस्मितः सुमनोहरः ॥ ८६ ॥

वयसातिशिशुर्वृद्धया ज्ञानवृद्धया विचक्षणः ।

स्वयं पिधातुर्धाता च दाता च सर्वसम्पदाम् ॥ ८७ ॥

इन्द्रद्वारे समुत्तिष्ठन् द्वारपालमुवाच ह । ब्रूदीदं ब्राह्मणो द्वारे त्वां शीघ्रं द्रष्टुमागतः ॥

इत्येवं वचनं श्रुत्वा द्वाधिष्ठानं चकार तम् । स च शीघ्रं समागम्य ददर्श ब्राह्मणार्मकम्

बालकानांबालिकानां समूहैःपरिवेष्टितम् । हसद्भिश्च महोत्साहात्सस्मितंतेजसान्वितम्

प्रणनाम हरिर्भक्त्या तं हरिं शिशुरूपिणम् । आशिषं युयुजे प्रीत्या तं हरिर्भक्तवत्सलः ॥

मधुपर्कादिकं दत्त्वा शक्रः पूजां चकार तम् । पप्रच्छागमनं कस्माद्वदेति विप्रबालकम्

इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच द्विजार्मकः । मेघगम्भीरया वाचा बृहस्पतिगुरोर्गुरुः ॥

ब्राह्मण उवाच ।

समागतोऽहं त्वां द्रष्टुं प्रष्टुं वचनमीप्सितम् । चित्रं नगरनिर्माणं समाकर्ण्यद्भुतं हरे

कतिवर्षञ्च निर्माणे भवान् संकल्पितो यथा ।

कतिचित्तां विश्वकर्मा निर्माणं वा करिष्यति ॥ ९५ ॥

एवम्भूतञ्च निर्माणं न केन्द्रेण निर्मितम् । नैवविधं सुनिर्माणे विश्वकर्मा परः क्षमः ॥

बालकस्य पचः श्रुत्वा जहास स सुरेश्वरः । सम्पन्नवातिमत्तश्च पुनः पप्रच्छ बालकम्

कतीन्द्राणां समूहश्च त्वया द्रष्टुः श्रुतोऽयथा ।

विश्वकर्मा कतिविधस्तं मे ब्रूहि शिशोऽधुना ॥ ९८ ॥

शक्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रहस्य विप्रबालकः । तमुवाच श्रुतिमुखं पीयूषसदृशं वचः ॥ ९९ ॥

ब्राह्मण उवाच ।

जानामि कथयं तात तव तातं प्रजापतिम् । मुनिं मरीचिनामानं तत्रालञ्च तपोनिधिम् ।

नाभिपद्मोद्भवं विष्णोः स्तुत्या तं विधिमीश्वरम् ।

रक्षिताय तं विष्णुं परं सत्यगुणान्वितम् ॥ १०१ ॥

एकार्णवञ्च प्रलयं सत्त्वशून्यं भयानकम् । सृष्टिं कतिविधां शक् कल्पं कतिविधं ध्रुवम्

ब्रह्माण्डञ्च कतिविधं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।

ब्रह्माण्डेषु कतिविधानिन्द्रान् को गन्तुमीश्वरः ॥ १०३ ॥

यदि संख्याऽस्ति रेणूनां धरायाञ्च सुराधिप ।

तथापि संख्या शकाणां नास्त्येवेति विदुर्बुधाः ॥ १०४ ॥

शक्रध्यायुध्वाधिकारो युगानामेकसप्तति । अष्टाविंशतिशकाणां पतनेऽहर्निशं विधेः ॥

विधेरष्टोत्तरशतमायुरेय प्रमाणतः । रसेन्द्राणाञ्च का संख्या नास्ति संख्या विधेरपि ॥

ब्रह्माण्डसंख्या यत्र क ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । महाविष्णोर्लोमकूपोद्भवे तोये सुनिर्मले ॥

ब्रह्माण्डेऽस्ति यथा नौका भयतोये च कृत्रिमा ।

एवं लोमतः प्रमाणेन ब्रह्माण्डाः सन्त्यसंख्यकाः ॥ १०८ ॥

ब्रह्माण्डे च कतिविधाः सुराः सन्त्येव त्वत्समाः । पतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श पुरुषोत्तमः

पिपीलिकासमूहञ्च व्यायतं धनुषां शतम् । कमशस्तान् संनिरीक्ष्य जहासोद्यैर्द्विजार्भकः

नौकाव किञ्चिन्मौनी च गम्भीरः सागरो यथा ॥ ११० ॥

दृष्ट्वा हास्यं विप्रवदोर्गाथां श्रुत्वातिचिस्मितः । पप्रच्छ च पुनर्विप्रं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः

इन्द्र उवाच ।

कथं हससि विप्रेन्द्र मां शीघ्रं कारणं वद ।

त्वं वा को माययाच्छन्नः शिशुरूपी गुणार्णवः ॥ ११२ ॥

इन्द्रस्य धवनं श्रुत्वा तमुवाच द्विजार्भकः । आध्यात्मिकं नीतिसारं ज्ञानवीजं परं वरम्

ब्राह्मण उवाच ।

ऋष्टः पिपीलिकासङ्घो हेतुरस्य निगूढकः । मा मां पृच्छ शोकवीजं तवान्यज्ञानकारणम्

ज्ञांसारिकाणां संसारवृक्षमूलनिठ्ठनम् । अज्ञानतमसि छन्नं ज्ञानदीपमनुत्तमम् ॥ ११५ ॥

निगूढं सर्ववेदेषु सिद्धानामपि दुर्लभम् । योगिनां प्राणतुल्यञ्च मूढाहङ्कारभजनम् ॥

इत्युत्तया तत्र सन्तस्यौ सस्मितो द्विजपुङ्गवः ।

पुनः पप्रच्छ शक्रस्तं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥ ११७ ॥

शक उवाच ।

ब्रूहि विप्रवटो शीघ्रं ज्ञानदीपं पुरातनम् । न जानामि शिशुःकस्त्वंज्ञानराशिःस्वमूर्तिमान्
इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः । ज्ञानं भाषितुमारंभे योगीन्द्राणां सुदुर्लभम् ॥

ब्राह्मण उवाच ।

सृष्टःपिपीलिकासदृ एकेकं क्रमशो मया । सर्वे स्वकर्मणा शक शक्तीभूताः सुरालये ॥

अधुना कर्मणा सर्वे क्रमशो भूतजन्मनाम् ।

अतीतकाले संप्राप्ता भूतजातिं पिपीलिकाम् ॥१२१॥

कर्मणाजीविनो यान्ति वैकुण्ठञ्च निरामयम् । कर्मणा ब्रह्मलोकञ्च शिवलोकञ्च कर्मणा

स्वर्गं स्वर्गसमास्थानं पातालञ्च स्वकर्मणा । कर्मणा नरकंधोरं स्वात्मदुःखैककारणम्

कर्मणा शूकरीगर्भं कर्मणा क्षुद्रजीवनम् । कर्मणा पशुपत्नीनां कर्मणा पक्षियोपिताम् ॥

कर्मणा कीटयोनिञ्च वृक्षत्वञ्च स्वकर्मणा । स्वकर्मणा सुखीदुःखी सेव्यः सेवकएव च

कर्मणाब्राह्मणत्वञ्चदैर्घ्यापि स्वकर्मणा । स्वकर्मणा च प्रेतत्वं ब्रह्मत्वञ्च स्वकर्मणा ॥

कर्मणाढ्याधियुक्तश्च कर्मणैयातिसुन्दरः । कर्मणा स्वाङ्गहीनश्च स्वाङ्गवृद्धश्च कर्मणा ॥

विधाता कर्मसूत्रेण फलदाता च जीविनाम् ।

कर्म स्वभावसाध्यञ्च स्वभावोऽभ्यासजीवकः ॥ १२८ ॥

इत्येवं कथितं सर्वमाध्यात्मिकपरं वचः । सुखदं पुण्यदं सारं नरकार्णधतारकम् ॥

संसारः स्वप्रवत्सर्वं देवेन्द्र सचराचरम् । मृत्युश्च मस्तकस्थायी सर्वेषां कालयोगतः

जलवुद्बुदवत्सर्वं जीविनाञ्च शुभाशुभम् । शक शश्वद् भ्रमत्येव नाविष्टस्तत्र पण्डितः

इत्येवमुक्त्वाचिप्रश्नं तत्रतस्थौ च सस्मितः । विस्मितस्त्रिदशाध्यक्षो नात्मानंबहुमन्यते

एतस्मिन्नन्तरे शीघ्रमाजगाम मुनोश्चरः । अतिवृद्धो महायोगी ज्ञानेन वयसा महान् ॥

कृष्णाजिनी जटाधारी विभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् ।

वक्षःस्थले रोमचक्रं विभर्त्ति मस्तके कटम् ॥ १३४ ॥

स्थितंसर्वं मध्यदेशेकिञ्चिदुत्पादितं स्फुटम् । समागत्यद्वयोर्मध्येतस्थौस्थाणुवदेप सः

महेन्द्रो ब्राह्मणं द्रष्टुं प्रणनाम मद्रान्वितः । मधपर्कादिकं दत्त्वापजयामास भक्तिः ॥

पप्रच्छ कुशलं विप्रश्चकार विनयं पुनः । तुष्टावातिथिभावेन मुदा सादरपूर्वकम् ॥
विप्रार्मकस्तेन सार्द्धं सम्पापाञ्च चकार सः । स्ववाञ्छितं परंप्राहसर्वं विनयपूर्वकम् ॥

बालक उवाच ।

कुतस्त्वमागतो विप्र किन्नाम तव धा वद । को वात्रागमने हेतुर्निवासः केन हेतुना ॥
कटं कथं मस्तके ते लोमचक्रञ्च वक्षसि । अत्युन्नतं मध्यदेशे किञ्चिदुत्पादितं मुने ॥

मां चेत् कृपाऽस्ति ते विप्र सर्वं संव्यस्य कथ्यताम् ।

अत्यद्भुतमिदं सर्वं श्रोतुं कीदृहलं मम ॥ १४१ ॥

स शिशोर्वचनं ध्रुत्वा तमुवाच ब्रह्ममुनिः । सर्वं त्यक्वीयवृत्तान्तं शक्रस्य पुरतो मुदा ।
मुनिरुवाच ।

अल्पायुषा मया विप्र कुत्रापि न कृता गृहाः । न विवाहश्चोपजीव्यं भिक्षोपजीविनाऽधुना
लोमशेति च मन्नाम हेतुर्विप्रस्य दर्शनम् । धर्पणातपशान्त्यर्थं मस्तकस्थं कटं मम ॥
वक्षःस्थलस्थितं रोमचक्रं तत्कारणं शृणु । सांसारिकाणां भयदं विवेकजननं परम् ।
आयुःसंख्याप्रमाणं मे लोमचक्रञ्च वक्षसि । शक्यैकपतनं विप्र लोमैकोत्पादनं मम ॥

उत्पादितानि लोमानि तेन मध्ये स्थितानि च ।

ब्रह्मणो द्विपरार्धे च मम मृत्युर्निरूपितः ॥ १४२ ॥

असंख्यविधयो ब्रह्मन् मरिष्यन्ति मृता अपि । कलत्रेण च पुत्रेण गृहेण किं प्रयोजनम्
ब्रह्मणः पतने चञ्चुर्निमेषश्च हरेर्भवेत् । तत्पादपद्ममत्तुलं चिन्तयामि निरन्तरम् ॥ १४३ ॥
दुर्लभं श्रीहरेर्दास्यं भक्तिमुक्तेर्गरीयसी । स्वप्नयत्सर्वमैश्वर्यं तद्भक्तिव्यवधायकम् ॥ १४४ ॥
इदं मदगुरुणा दत्तं शम्भुना ज्ञानमुत्तमम् । विना भक्तिं न गृह्णामि सालोक्यादिवचतुष्टयम् ॥

इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्जगाम शिवसन्निधिम् ।

शिशुरुपी हरिस्तत्रैवान्तर्धानं चकार ह ॥ १४५ ॥

इन्द्रस्तु स्वप्नवद् दृष्ट्वा बभूव तत्र विस्मितः । तृष्णामात्रञ्च सम्पत्तौ नास्त्येव परमेश्वरे
विश्वकर्माणमानीय प्रियमुक्त्वा शतकतुः ।

दत्त्वा रत्नानि सम्पूज्य तं प्रस्थापितवान् गृहम् ॥ १४६ ॥

सर्वं विन्यस्य पुत्रे च शरणं गन्तुमुद्यतः । शचीं राज्यश्रियं त्यक्त्वा विवेकी क्षयकामुकः
दृष्ट्वा चिवेकिनं फान्तं हृदयेन विदूयता । शची जगाम शोकार्ता सन्त्रस्ता शरणं गुरोः
सर्वं निवेदनं कृत्वा समानीय बृहस्पतिम् । बोधयामास शत्रुं तं नीतिसारेण कामिनी
गुरोः शास्त्रविशेषञ्च दम्पतीरससंयुतम् । विधाय च स्वयं प्रीत्या पाठयामास तं मुदा
मुनिः शास्त्रविशेषञ्च बोधयामास धाक्पतिः ।

स चकार तदा राज्यं वृन्दावनचिनोदिनि ॥ १५६ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं शकदर्पणिमोहनम् । साक्षाद् दृष्टो दर्पभङ्गो तन्दयज्ञे सुरेश्वरि ॥
इति श्रीब्रह्मयैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
श्रीकृष्णराधासंवादे नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

खेदर्पभङ्गवर्णनम्

राधिकोवाच ।

कथितंभवता मह्यं दर्पभङ्गः श्रुतो हरेः । दर्पभङ्गं खेद्यापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥
श्रीकृष्ण उवाच ।

एकदैवोदयं कृत्वा रविरस्तं जगाम ह । माली सुमाली दैत्येन्द्रो दीप्तिं कर्तुं समुद्यतो
महासम्पन्नोन्मत्तो शङ्कुरस्य घरेण च । तयोश्च प्रमया रात्रिर्न भवेदिति सुन्दरि ॥३॥
रष्टः सूर्यः स्वशूलेन तो जघानाचलीलया । पतितौ सूर्यशूलेन मूर्च्छितौ धरणीतले ॥
भक्तापायञ्च पिशाच शङ्करो भक्तवत्सलः । आगत्य जीवयामास सहाज्ञानेन तो विमुग्धौ
तौ च नत्वा शिवं भक्त्या जग्मतुर्निजमन्दिरम् ।

दुदाघ च महादेवः सूर्यं हन्तुं खया ज्वलन् ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा संहारकर्तारं जिघांसन्तं हरं रविः । मिया पलायमानश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥७॥

सर्वं विन्यस्य पुत्रे च शरणं गन्तुमुद्यतः । शचीं राज्यधियं त्यक्त्वा विवेकी क्षयकामुकः
 दृष्ट्वा विवेकिभं कान्तं हृदयेन विदूयता । शचीं जगाम शोकार्ता सन्नस्ता शरणं गुरोः
 सर्वं निवेदनं कृत्वा समानीय बृहस्पतिम् । योधयामास शक्रं तं नीतिसारेण कामिनी
 गुरोः शास्त्रविशेषञ्च दम्पतीरससंयुतम् । विधाय च स्वयं प्रीत्या पाठयामास तं मुदा
 मुनिः शास्त्रविशेषञ्च योधयामास वाक्पतिः ।

स चकार तदा राज्यं धुन्दावनयिनोदिनि ॥ १५६ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं शक्रदर्पविमोचनम् । साक्षाद् दृष्टो दर्पभङ्गो नन्दयन्ने सुरेश्वरि ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
 श्रीकृष्णराधासंवादो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

रवेर्दर्पभङ्गवर्णनम्

राधिकोवाच ।

कथितंभवता मह्यं दर्पभङ्गः श्रुतो हरेः । दर्पभङ्गं रवेश्चापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

एकदैवोदयं कृत्वा रविरस्तं जगाम ह । माली सुमाली दैत्येन्द्रौ कीर्तिं कर्तुं समुद्यतौ
 महासम्पन्नदोन्मत्तौ शङ्करस्य परेण च । तयोश्च प्रभया रात्रिर्न भवेदिति सुन्दरि ॥३॥
 रुष्टः सूर्यः स्वशूलेन तौ जघानाचलीलया । पतितौ सूर्यशूलेन मूर्च्छितौ धरणीतले ॥
 भक्तापायञ्च विहाय शङ्करो भक्तवत्सलः । आगत्य जीवयामास सहाजानेन तौ विभुः ॥

तौ च नत्या शिवं भक्त्या जग्मतुर्निजमन्दिरम् ।

बुधाय च महादेवः सूर्यं हन्तुं रुपा ज्वलन् ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा संहारकर्तारं जिघांसन्तं हरं रविः । भिया पलायमानश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥७॥

दुद्राघ च महादेवो ब्रह्मणो निलयं रूपा । शूलमत्यर्थमुद्यम्य कालकालो विधेर्विधिः ॥
दृष्ट्वा ब्रह्मा हरं रुष्टं तुष्टाव परमेश्वरम् । चतुर्वक्त्रेण वेदोक्तस्तोत्रेण जगतां पतिः ॥६॥

ब्रह्मोवाच ।

प्रसीद दक्षयज्ञस्य सूर्यं मच्छरणागतम् । त्वयैव सृष्टः सृष्टेश्च समारम्भे जगद्गुरो ॥
आशुतोष महाभाग प्रसीद भक्तवत्सल । कृपया च कृपासिन्धो रक्ष रक्ष विद्यानिशम् ॥
ब्रह्मस्वरूप भगवन् सृष्टिस्थित्यन्तकारण । स्वयं रचिञ्च निर्माय स्वयं संहर्तुमिच्छसि
स्वयं ब्रह्मा स्वयं शेषो धर्मः सूर्यो हुताशनः ।

चन्द्रइन्द्रादयो देवास्त्यक्तो भीताः परात्पर ॥ १३ ॥

ऋषयो मुनयश्चैव त्वां निषेव्य तपोधनाः । तपसां फलदाता त्वं तपस्त्वं तपसांफलम्
इत्येवमुत्तवा ब्रह्मा तं सूर्यमानीय भक्तिः । प्रीत्या समर्पयामास शङ्करे दीनवत्सले ॥
शम्भुस्तमाशिर्यं कृत्वा विधिं नत्वा जगद्विधिः । प्रसन्नवदनः श्रोमानालयं प्रययी मुदा
इति धातृकृत स्तोत्रं सङ्कष्टे यः पठेन्नरः ।

भयात् प्रमुच्यते भीतो यद्वो मुच्येत बन्धनात् ॥ १७ ॥

राजद्वारे श्मशाने च मग्नपोते महर्षये । स्तोत्रस्मरणमात्रेण मुच्यते नात्र संशयः ॥१८॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
श्रीकृष्णराधासंवादे नामाष्टवत्वारिंशोऽध्यायः ।

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

बह्निर्दुर्गभङ्गवर्णनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

सूर्यः प्रजम्ब्य ब्रह्माणं मुदायुक्तस्तदाश्रया । चकारपिनयं प्रीत्या तेजस्यो त्रिगुणात्मकः
अथ पद्मेऽस्याभयानं सापधानं निशामय । गोपनीयं पुराणेषु कर्णपीयूषमुत्तमम् ॥ २ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः] * वह्निर्दर्पभङ्गवर्णनम् *

८४५

त्रैलोक्यं भस्मसात् कर्तुमेकदाग्निः समुद्यतः । शततालप्रमाणां तां शिखां कृत्वा भयानकीम्
ध्रुमितः कुपितश्चैव भृगोः शापस्य कारणात् ।

स्यञ्च तेजस्विनं मत्वा तुच्छं मत्वाऽन्यमात्मनः ॥ ३ ॥

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुराजगामाचलीलया । वह्नेस्तां दाहिकीं शक्तिं तां जहार पुरस्थितः ॥
मायया शिशुकपी च तमुवाच जनार्दनः । सस्मितो विनयं कृत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥
शिशुवाच ।

कथं कृष्टोऽसि भगवन् भवान् मां कारणं वद ।

त्रैलोक्यं भस्मसात् कर्तुमुद्यतोऽसि निरर्थकम् ॥ ७ ॥

त्वमेव भृगुणा शतो भृगोश्च दमनं कुरु । एकापराधात् त्रैलोक्यं भस्मीकर्तुं न चाहसि
विश्वञ्च ब्रह्मणा सृष्टं तस्य पाता स्वयं हरिः । संहर्ता भगवान् रुद्र एवमेव क्रमो भवेत्
तत्कथं भस्मसात् कर्तुमीश्वरे शङ्करे स्थिते । रक्षितारं हरिं जित्वा संहारं कुरु सत्वरम्
इत्युक्त्वा ब्राह्मणवटुः शरपत्रं पुरःस्थितम् । अतिशुष्कं करे धृत्वा दग्धं कर्तुं वदो मुदा
दृष्ट्वा शुष्केन्धने वह्निर्ललिहानो भयानकः । स घग्ने शिखया विप्रं मेघेन शशिनं यथा
॥ च दग्धं शुष्कपत्रं लोमैकञ्च शिशोस्तथा ।

दृष्ट्वा घ्राडायुतो वह्निर्निस्तब्धो हि शिशोः पुरः ॥ १३ ॥

कृत्वा वह्नेर्दर्पभङ्गमन्तर्धानं चकार सः । वह्निः स्वमूर्तिं संकृत्य स्वस्थानं भीतवद्ययौ ॥
उक्तो वह्नेर्दर्पभङ्गः परं वै श्रोतुमिच्छसि । नित्यनूतनमाख्यानं देवानां दर्पमोचनम् ॥
श्रीराधिकोवाच ।

शेषाणां दर्पभङ्गञ्च क्रमेण कथय प्रभो ! । कथापीयूषधारां ते श्रुत्वा तृप्येत को भुवि ॥
श्रीनारायण उवाच ।

राधिकावचनं श्रुत्वा सस्मितो भगवान् प्रभुः ।

कथां कथितुमारभे श्रुत्वा रम्यां पुरातनीम् ॥ १७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीरुष्णजन्मखण्डे अग्नि-
दर्पमोचनं नाम एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः दुर्वाससो दर्पभंगवर्णनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

दुर्वाससो दर्पभङ्गं कथयामि शृणु प्रिये ।

महामुनेर्योगिनश्च रुद्रांशस्थात्तिजेजसः ॥ १ ॥

एकदा चाश्वरीपथ कृत्वा च द्वादशीघृतम् ।

पारणं कर्तुमारमे भोजयित्वा द्विजान् बहून् ॥ २ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र चाजगाम मुनिः स्वयम् । भुधार्तश्च तृपार्तश्च विष्णुघृतपरायणः ॥

मां भोजय महाभागेत्येवं स नृपमुक्तवान् । राजा भक्षया ददौ तस्मै परमान्नसुधोपमम्

सकेशं पायसं दृष्ट्वा राजानं शप्तमुद्यतः । जटां निकृत्य शिरसः स्थापयामास भूतले ॥

जटामध्यात् समुद्रभूतो ज्वलदग्निशिखोपमः । सप्ततालप्रमाणश्च पुरुषः प्रलयान्तकः ॥

नृपश्रेष्ठं स राजानं कोपेन हन्तुमुद्यतः । भयेन कम्पिताः सर्वे शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥

सस्मार च महाभोतो राजा मम पदाम्बुजम् । सर्वविघ्नस्योपशमः स्मृतिमात्राद्बभूव ह

एतस्मिन्नन्तरे चक्रं दुर्निवार्यं सुदर्शनम् । तेजसा मम तुल्यञ्च कोटिसूर्यप्रभोपमम् ॥

आचिर्यभूव सहसा सभामध्ये च घूर्णितम् । निकृत्य कृत्यापुरुषं दुद्राव मुनिपुङ्गवः ॥

सशैलसागरां पृथ्नीं काञ्चनी भूमिमुत्तमाम् ।

भ्रामयित्वा मही सर्वां पुनर्दुद्राव तं मुनिम् ॥ ११ ॥

धावन्तं मुक्तकेशं तं भीतं कातरमातुरम् ।

तेजसाऽऽच्छाद्य सूर्यं तं दीप्तिं कुर्वन्तमुत्तमाम् ॥ १२ ॥

कैलासं सप्तवर्गञ्च ब्रह्मलोकमनामयम् । विप्रेन्द्रो भ्रमणं कृत्वा वैकुण्ठं शरणं ययौ ॥

पादपद्मे पतन्तश्च ददर्श विप्रपुङ्गवम् । कृपया च कृपासिन्धुर्ददौ विप्राय निर्भयम् ॥ १४ ॥

नारायणचरेणैव बभूव विज्वरो द्विजः । पुनर्ययौ हरिं स्तुत्वा नृपगेहं तदाज्ञया ॥ १५ ॥

राजा मुनीन्द्रं सम्प्राप्य भोजयामास पायसम् ।

स्वयञ्च पारणं चक्रे सखीकः सहवान्धवः ॥ १६ ॥

राजानमाशिष्यं कृत्वा भुत्त्वा विप्रो गृहं ययौ ।

मया नियोजितं चक्रं भक्तानां रक्षणाय च ॥ १७ ॥

नश्यन्ति सर्वे प्रलये न मे भक्तः प्रणश्यति । सर्वे देवा मम प्राणाः भक्ताप्राणाधिका मम
एवञ्च लक्ष्मीर्महामाया सावित्री वा सरस्वती । ब्रह्मा शम्भुरनन्तश्च धर्मश्चब्राह्मणास्तथा
गोपाङ्गनाश्च गोपाश्च सर्वे प्रियतमा मम । तेभ्यः प्रियाःपरा भक्ताः प्रियो भक्तान्नकश्चन
दृष्ट्वा सुदर्शनं चक्रं भक्तानां रक्षणाय च । तथापि न प्रतीतिर्मे स्वयं द्रष्टुं प्रयामि तान्
दुर्वाससो दर्पभङ्गः श्रुतो मत्तः सुरेश्वरि । आह्वापय महाभागे किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि
राधिकोवाच ।

धन्वन्तरेर्दर्पभङ्गं कथयस्व जगद्गुरो ! पुराणे गोपनीयञ्च श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ २३ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

राधिकावचनं श्रुत्वा जहास मधुसूदनः । कथां कथितुमारंभे श्रुतिरम्यां पुरातनीम् ॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

दुर्वाससो दर्पभङ्गो नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

धन्वन्तरेर्दर्पभंगवर्णनम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

नारायणांशो भगवान् स्वयं धन्वन्तरिर्महान् । पुरा समुद्रमथने समुत्तस्थौ महोदधेः ॥
सर्ववेदेषु तिष्णातो मन्त्रतन्त्रविशारदः । शिष्यो हि वैनतेयस्य शङ्करस्योपशिष्यकः ॥
शिष्याणाञ्च सहस्रेणागतः कैलासमीश्वरि । ददर्श तक्षकं मार्गे लेलिहानं भयानकम् ॥

लक्ष्मनागैः परिवृतं शैलतुल्यं विपोल्वणम् । भोक्तुं कोपात् समायान्तमेवं दृष्ट्वा जहास च
दम्भी धन्वन्तरैः शिष्यो धृत्वा तक्षकमुल्वणम् ।

मन्त्रेण जृम्भितं कृत्वा निर्घिपं तं चकार ॥ ५ ॥

अमूल्यं मणिरत्नञ्च जहार मस्तके स्थितम् । करेण भ्रामयित्वा च प्रेरयामास दूरतः ॥
निश्चेष्टस्तक्षकस्तस्थौ तत्रमार्गे यथामृतः । गणा निवेदयामासुर्गत्वा वासुकिस्तन्निधिम्
वासुकिस्तत्समाकर्ण्य प्रज्वलन्तिकोपतः ।

सर्पान् प्रस्थापयामासासंख्यांश्चैव विपोल्वणान् ॥ ८ ॥

सर्पसेनाग्रणीनाञ्च मुख्यान् पञ्च विशारदान् । द्रोणकालीयकर्कोटपुण्डरीकधनञ्जयान्
सर्वे नागाः समाजगम्युर्ध्वं धन्वन्तरिः स्वयम् ।

भयमापुः शिष्यगणा दृष्ट्वा नागानसंख्यकान् ॥ १० ॥

नागनिःश्वासवातेन सर्वे शिष्या मृता इव । निश्चेष्टा ज्ञानरहिताः शेस्ते धरणीतले ॥
धन्वन्तरिश्च भगवान् पीयूषधर्षणेन च । जीवयामास शिष्यांश्च मन्त्रेण च गुरुं स्मरन्
चेतनां कारयित्वा च शिष्याणाञ्च जगद्गुरुः । चकारजृम्भितं मन्त्रैः सर्पसङ्घं विपोल्वणम्
सर्वे यभूवृनिश्चेष्टा जृम्भितास्ते मृता इव । कौऽपि नालं ततो देवि वार्तां दातुंगणेषु च
वासुकिर्व्युधे सर्वं सर्वज्ञः सर्वसङ्कटम् । आजुहाष जगद्गौरीं भगिनीं ज्ञानरूपिणीम् ॥

वासुकिश्वाच ।

मनसे त्वं समागच्छ नागान् रक्षातिसङ्कटात् ।

जगत्त्रये महाभागे पूजा तव भविष्यति ॥ १६ ॥

वासुकेर्वचनं श्रुत्वा प्रहस्योवाच कन्यका । वाक्यं पीयूषतुल्यञ्च विनयाघनतस्थिता ॥
मनसोवाच ।

नागेन्द्र शृणु मद्वाक्यं यास्यामिसमरंप्रति । भद्राभद्रं देवसाध्यं करिष्यामि यथोचितम्
तं शत्रुं संहरिष्यामि लीलया समरस्थले । अहं यं निहनिष्यामि तं को रक्षितुमीश्वरः
यदि ब्रह्मादयो देवाः समायान्ति रणस्थले । तथापि तव शत्रुञ्च प्रजेष्यामि न संशयः
गुरुर्मै भगवान् शेषः सिद्धमन्त्रञ्च दत्तवान् । नारायणस्य जगतामीशस्य परमाद्भुतम् ॥

विभर्मि कवचं कण्ठे परं त्रैलोक्यमङ्गलम् । संसारं भस्मसात् कृत्वा पुनः स्रष्टुमहं क्षमा
शिष्याहं मन्त्रशास्त्रेषु शम्भोर्भगवतः पुरा । महाज्ञानं दत्तवान् स महाश्च रूपया विभुः
शम्भोश्च शिष्यो गरुडो गणयामि न तं ध्रुवम् ।

धन्वन्तरिस्तच्छिष्याणामेकः किं गणयामि तम् ॥ २४ ॥

इत्युत्तवा सा जगामैका त्यक्त्वा नागगणान् रुपा ।

प्रणम्य धीहरिं शम्भुं शेषश्च कृष्टमानसा ॥ २५ ॥

यत्र धन्वन्तरिर्देवः प्रसन्नवदनेक्षणः । तत्राजगाम सा देवी कोपरक्तेक्षणा रुपा ॥ २६ ॥

दृष्टिमात्रेण सर्वांश्च जीवयामास सुन्दरी । विषदृष्ट्या शत्रुशिष्यान्निश्चेष्टांश्च सकारह

धन्वन्तरिस्तु भगवान् मन्त्रशास्त्रविशाखः । मन्त्रेण यत्नं कृतवान्नोत्थापयितुमीश्वरः

दृष्ट्या धन्वन्तरिं देवी प्रहस्योवाच सत्वरम् ।

यद्वक्तिमर्थयुक्ताश्च साहङ्कारां सुरैररि ॥ २६ ॥

मनसोवाच ।

मन्त्रार्थं मन्त्रशिल्पश्चमन्त्रभेदं महोपधम् । वदजानासि किं सिद्धशिष्योऽसि गरुडस्य च

अहश्च चेततेयश्च शिष्यो शम्भोश्च विश्रुतो । सुकल्पकालं सुचिरमहं धन्वन्तरे शृणु ॥

इत्युत्तवा सरसः पद्मं समानीय जगत्प्रसूः । मन्त्रसम्बलितं कृत्वा प्रेरयामास कोपतः

दृष्ट्वागतं पद्मपुष्पं ज्वलदग्निशिखोपमम् । धन्वन्तरिश्च निःश्वासीर्भस्मसात्तस्यकार ह

तश्च धन्वन्तरिर्दृष्ट्वा समन्वरेणुमुष्टिता । चकार निष्फलं भस्म तां प्रहस्यावलील्य

देवी जग्राह शक्तिञ्च ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् ।

मन्त्रसंबलितां कृत्वा प्रेरयामास तं रिपुम् ॥ २७ ॥

दृष्ट्वा जाज्वल्यमानां तां शक्तिं धन्वन्तरिः स्वयम् ।

विष्णुदत्तेन शूलेन स तु चिच्छेद लीलया ॥ २८ ॥

ताश्च शक्तिं वृथा दृष्ट्वा प्रज्ज्वालेभ्यस्तै रुपा । जग्राह नागपाशश्च घोरमव्यर्थमुत्पन्नम्

नागलक्षसमायुक्तं सिद्धमन्त्रेण मन्त्रितम् । प्रेरयामास कोपेन कालान्तकसमप्रभम् ॥

धन्वन्तरिर्नागपाशं दृष्ट्वा च संस्मितो मुदा । सस्मार गरुडं तूर्णमाजगाम पगोभर

सर्पास्त्रमागतं दृष्ट्वा गरुडो हरिवाहनः ।

विधाय चञ्चुना शोभं वुभुजे क्षुधितश्चिरम् ॥ ४० ॥

नागास्त्रं निष्फलं दृष्ट्वा कोपरक्क्षेपणा भृशम् । जग्राह भस्ममुष्टिञ्च शिवदत्तां पुरा प्रिये
भस्ममुष्टिं मन्त्रपूता दृष्ट्वा च प्रेरितां यथा । पक्षवातेन चिक्षेप शिष्यं पश्चान्निधाय च ॥
निरस्तां भस्ममुष्टिञ्च दृष्ट्वा देवी युकोप ह । जग्राह शूलमव्ययं हन्तुं धन्वन्तरि स्वयम्
शिवदत्तञ्च शूलञ्च शतसूर्यसमप्रभम् । अव्ययंशूलं लोकेषु प्रलयाग्निसमप्रभम् ॥
अथ ब्रह्मा तथा शम्भुराजगाम रणाजिरम् । धन्वन्तरेश्च रक्षार्थं सम्मानार्थं खगस्य च
दृष्ट्वा शम्भुं जगद्गौरी विधिञ्च जगता पतिम् । भक्त्या ननाम तावेव निःशङ्काशूलधारिणी
धन्वन्तरिश्च गरुडः प्रणनाम सुरेश्वरी । तुष्टाय परया भक्त्या तौ च चक्रतुराशिपम् ॥
उवाच ब्रह्मा मधुरं हितं धन्वन्तरि मुदा । पूजार्थं मनसायाश्च लोकानां हितकाम्यया
ब्रह्मोवाच ।

धन्वन्तरे महाभाग सर्वशास्त्रविशारद । रणं ते मनसासाध्वं न हि साम्यञ्च मे मतम् ॥
शिवदत्तेन शूलेन दुर्निवार्येण सर्वतः । त्रैलोक्यं भस्मसात्कर्तुं क्षमैयं त्रिदशेश्वरी ॥
ध्यानं कीदृशमशास्त्रोक्तं कृत्वा भक्त्या समाहितः ।
दत्त्वा षोडशोपचारं देव्याश्च कुरु पूजनम् ॥ ५१ ॥

धास्तिकौक्तेन स्तोत्रेण स्तवनं कर्तुमर्हसि । परितुष्टा च मनसा परं तुभ्यं प्रदास्यति
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा चकारानुमति शिष्यः । वैनतेयश्च सम्प्रीत्या बोधयामासयत्नतः ॥
एवाश्च घटनं श्रुत्वा स्नात्वा शुचिरलंकृतः । विधिं पुरोहितं कृत्वा पूजां कर्तुं समुद्यतः
धन्वन्तरिरुवाच ।

इहागच्छ जगद्गौरि गृहाण मम पूजनम् । पूज्या त्वं त्रिषु लोकेषु पुरा कश्यपकन्यके ॥
त्वया जितं जगत् सर्वं देवि विष्णुस्वरूपया । तेन तेऽस्त्रप्रयोगश्च न कृतो रणभूमिषु
इत्युचवा संयता भूत्वा भक्तिमन्नात्मकन्धरा । गृह्येत्वा शुक्लसुमं ध्यानं कर्तुं समुद्यतः
चारुवम्पकवर्णाभा सर्वाङ्गसुमनोहराम् । ईषदास्यप्रसन्नास्यां शोभितां सूक्ष्मवाससा ॥
सुचारुकवरीशोभा रत्नाभरणभूषिताम् । सर्वाभयप्रदां देवी भक्तानुग्रहकातराम् ॥ ५६ ॥

सर्वविद्याप्रदां शान्तां सर्वविद्याविशाखदाम् । नागेन्द्रवाहिनी देवो भजे नागेश्वरी पराम्
 ध्यात्वा च कुसुमं दत्त्वा नागाद्रव्यसमन्वितम् । दत्त्वाथोदृशोपचारं पूजयामास तां प्रिये
 स्तोत्रं चकार यत्नाच्च पुलकाञ्चितचिग्रहः । पुटाञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥
 धन्वन्तरिह्वाच ।

नमः सिद्धिस्थरूपायै सिद्धिदायै नमो नमः । नमः कश्यपकन्यायै वरदायै नमो नमः ॥
 नमः शङ्करकन्यायै शङ्करायै नमो नमः । नमस्ते नागवाहिन्यै नागेश्वर्य्यै नमो नमः ॥
 नमः भास्तीकजननि जनन्यै जगतां मम । नमो जगत्कारणायै जगत्कारस्त्रियै नमः
 नमो नागभगिन्यै च योगिन्यै च नमो नमः । नमश्चिरं तपस्विन्यै सुखदायै नमो नमः ॥
 नमस्तपस्यारूपायै फलदायै नमो नमः । सुशीलायै च साध्व्यै च शान्तायै च नमो नमः
 इत्येवमुक्त्वा भक्त्या च प्रणनाम प्रयत्नतः । तुष्टा देवी धरं दत्त्वा सत्वरं सालयं ययौ
 ब्रह्मरुद्रवैततेयाः समाजमुर्निजालयम् । धन्वन्तरिश्च भगवान् जगाम निजमन्दिरम् ॥
 जमुर्नागाः प्रहृष्टाश्च फणाराजिचिराजिताः । इत्येवं कथितः सर्वः स्तवराजो मथा तव
 विधिना मातरं भक्तिमास्तिकश्च चकार ह । तदा तुष्टा जगद्गौरी पुत्रं तं मुनिपुङ्गवम् ॥
 इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् । वंशजानां नागभयं नास्ति तस्य न संशयः
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
 धन्वन्तरिर्द्वर्षभङ्ग-मनसाविजयो नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

राधावञ्चनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

सर्वेषां दर्पभङ्गश्च कथितश्च श्रुतस्तथ्या । श्रुद्राणां महताञ्चैव कृत एव न संशयः ॥१॥
 अधुना चोत्समुत्तिष्ठ गच्छ धृन्दावनवनम् । गोपिका विरहार्ताश्च शीघ्रं पश्यामिसुन्दरि

श्रीनारायण उवाच ।

इत्येवं वचनं श्रुत्वा मानिनी रसिकेश्वरी । उवाच कृष्णं नय मां न शक्ता गन्तुमीश्वर
राधिकावचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदनः । मामाच्छेत्त्येवमुक्त्वा सोऽन्तर्धानं चकार ॥ १८ ॥

सा मनोयायिनी राधा कृत्वा च रोदनं क्षणम् ।

इतस्ततस्तमन्वेप्य वृन्दारण्यं जगाम सा ॥ ५ ॥

विवेश चन्दनवनं रुदन्ती शोककातरा । ददर्श गोपिकास्तत्र शोकार्ताः । भयविह्वलाः ॥
ताम्रास्या घूर्णनयना भ्रमन्ती सर्वकाननम् । नाथनाथेति कुर्वन्ती निराहारा कथान्विताः
ता दृष्ट्वा राधिका सा च प्रेमविच्छेदकातरा । कथयामास वृत्तान्तं मलयभ्रमणादिकम्
तामि.सार्धञ्च सा राधा हरोद विरहातुरा । हानाथ नाथेत्युच्चार्य विलप्य च मुहुर्महुः
विनिन्द्य कृष्णं कोपेन तर्जयामास च क्षणम् ।

क्षणं शरीरमुत्सृष्टुं कोपात् सर्वाः समुद्यताः ॥ १० ॥

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णस्तत्र चन्दनकानने । स्वात्मानं दर्शयामास राधिकां गोपिकागणम्
राधा गोपाङ्गनामिश्च दृष्ट्वा प्राणेश्वरं मुदा । सस्मिता च प्रदुदाव पुलकाञ्चितविग्रहा ॥
तूर्णं कृष्णं समाश्लिष्य जहार मुरली रूपा । मालाञ्च पीतवसनं भग्नं कृत्वा च मानिनी
पुनः संधारयामास घस्त्रं मालां मनोहराम् । विनोदमुरली तुष्टा वृन्दावनविनोदिनी ॥
चन्दनागुक्कस्तूरीकुङ्कुमाकञ्च कातरम् । मुहुर्महुर्मुखं धीक्ष्य चुचुभ्य परमादरम् ॥ १५ ॥
क्षणं तं तर्जयामास क्षणं स्तोत्रं चकार ह । सकर्पूश्च ताम्बूलं क्षणं तस्मै ददौ मुदा ॥
अथ गोपाङ्गनाः सर्वा रूढुः प्रेमविह्वलाः । सर्वं निवेदयामासुः स्वदुःखं चिरहोद्वयम् ।
देहत्यागञ्च ज्ञानञ्च स्वाहारस्य विसर्जनम् । घने घनेऽहर्निशाञ्च शश्वदुभ्रमणमेव च ॥

क्षणं तं भर्त्सयामासुः स्तोत्रं चक्रुः क्षणं मुदा ।

क्षणं ददुर्मूपणञ्च क्षणं तस्मै च चन्दनम् ॥ १६ ॥

काञ्चिद्व्युः प्राणचौरं पश्य रक्षेति सन्ततम् । एवं पुनर्न कर्तव्यमनेनेति च काञ्चन ॥ २० ॥
काञ्चिद्व्युरिमं मध्ये यूयं कुरुत सत्वरम् । निवध्य प्रेमपाशेन हृदये चेति काञ्चन ॥ २१ ॥
काञ्चिद्व्युरयं नास्ति प्रतीतिर्न कदाचन । यत्नाच्चेतनचोरञ्च पश्य पश्येति काञ्चन ॥ २२ ॥

काश्चिदुचुर्निष्ठुरोऽयं नरघातीति कोपतः । न पुनर्वदतेमञ्च काश्चनेति च नारद ॥२३॥

निर्जनानि च रम्याणि यानि यानि घनानि च ।

भ्रमेयुर्गोपिकास्तानि कृष्णेन सह कौतुकात् ॥ २४ ॥

एवं तं गोपिकाः सर्वा मध्येकृत्या सवीश्वरम् । ययुर्वनान्तरे यत्र सुरम्यं रासमण्डलम्

रासं गत्वा स्वर्णपीठे तस्यो स रसिकेश्वरः ।

निशि भाति यथाकाशे चन्द्रस्तारागणैः सह ॥ २६ ॥

नानामूर्तीर्विधायात्र सह तामिर्जनार्दनः ।

चक्रार च पुनः क्रीडां कामुकीनां मनोहराम् ॥ २७ ॥

स्वयं राधाकरे धृत्या पूर्वोक्तं रतिमन्दिरम् । विश्वकर्मविनिर्माणमाकरोह स्मरातुरः ॥

चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाकं सुवासितम् । तत्र चम्पकतल्पेषु सुष्याप च तया सह ॥

नानाप्रकारशृङ्गारं कामशास्त्रविशारदः । चकारकामी क्रीडाञ्च कामिन्या सह कौतुकी

यभूव सुरतिस्तत्र सुचिरञ्च तयोर्मने । रतिनिष्ठा तयो रम्या विरतिर्नास्ति तत्क्षणम् ॥

एवं तौ तत्पुस्तत्र राधाकृष्णौ रसोत्सुकौ ।

तस्थुस्ता गोपिकाभिश्च सुरती कृष्णमूर्तयः ॥ ३२ ॥

नारद उवाच ।

आदौ राधा समुच्चार्य पश्चात् कृष्णं चितुर्वंधा ।

निमित्तमस्य मां भक्तं षट् भक्तजनप्रिय ॥ ३३ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

निमित्तमस्य त्रिविधं कथयामि निशामय । जगन्माता च प्रकृतिः पुरुषश्च जगत्पिता ।

गरीयसी त्रिजगतां माता शतगुणैः पितुः ॥ ३४ ॥

राधाकृष्णेति गौरीशेत्येवं शब्दध्रुवौ ध्रुतः । कृष्णराघेशगौरीति लोके न च कदाध्रुतः

प्रसीद रोहिणीचन्द्र गृहाणार्घ्यमिमं मम । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं संज्ञया सह भास्कर

प्रसीद कमलाकान्त गृहाण मम पूजनम् । इति दृष्टं सामयेदे कौशुमे मुनिसत्तम ॥३७॥

राशब्दोच्चारणादेव स्फीतो भवतिमाधवः । घाशब्दोच्चारणात् पश्चाद्वाचत्येव ससम्भ्रमः

आदौ पुरुषमुच्चार्य पश्चात्प्रकृतिमुचरेत् । स भवेन्मातृधात्री च वेदातिक्रमणे मुने ॥३६॥

त्रेलोक्ये भारतं धन्यं कर्मक्षेत्रञ्च पुण्यदम् ।

ततो बृम्हावनं पुण्यं राधापादाब्जरेणुना ॥ ४० ॥

पष्टिर्षसहस्राणि तपस्तप्तञ्च वेधसा । राधिकाचरणाम्भोजपादरेणूपलब्धये ॥ ४१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे राधा-

माधवयो रासवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्णरासक्रीडावर्णनम् ।

नारद उवाच ।

समतीते पूर्णमासे किञ्चकार जगत्पतिः । रहस्यं किं बभूवाथ तद्गवान् वक्तुमर्हति ॥१॥

श्रीनारायण उवाच ।

रासं निवृत्त्य रासे च रासेश्वर्या समन्वितः । स्वयं रासेश्वरस्तस्माद्यमुनापुलिनंययौ

तत्र स्नात्वा जलं पीत्वा निर्मलं निर्मले जले ।

सार्धं गोपाङ्गनाभिश्च जलक्रीडाञ्चकार सः ॥ ३ ॥

ततो जगाम भगवान् भाण्डारं राधया सह । गोपाङ्गनाश्च स्वगृहान् प्रययुर्विरहातुराः ॥

क्रीडाञ्चकार रहसि भाण्डारे मालतीवने । मालतीपुष्पशय्यायां रम्यायां रमणोत्सुकः ।

कृत्वा क्रीडाञ्च तत्रैव घासन्तीकाननं ययौ । रमे तत्रैव रासेशो वसन्ते सुमनोहरे ॥६॥

तत्रैव रमणं कृत्वा ययौ चन्दनकाननम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो गृहीत्वा चन्दनोक्षितम्

रम्ये चन्दनतले च स्निग्धे चन्दनपल्लवे । पूर्णचन्द्रे समुदिते विजहार तथा सह ॥ ८ ॥

कृत्वा विहारं तत्रैव ययौ चम्पककाननम् । रम्ये चम्पकतले च चकार रतिमोश्चरीम्

रतिं निवृत्त्य तत्रैव ययौ पद्मवनं प्रभुः । पद्मपत्रसमाकीर्णं तलेऽतिसुमनोहरे ॥ १० ॥

सार्धं तत्र पद्ममुल्या शीतेन पद्मवायुना । चकार सुखसम्भोगं ययौ निद्रां तथा सह ॥

विहाय निद्रां निद्रेशो ददर्श निद्रितां प्रियाम् ।

शयानां पद्मतले च सुखसम्भोगमात्रतः ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा मुखञ्च घर्मात् शरच्चन्द्रचिनिन्दितम् । अतिसंलुप्तसिन्दूरं लुप्तं कज्जलमुत्थणम् ॥ १३ ॥

संलुप्ताधररागञ्च संलुप्तगण्डपत्रकम् । धिलस्तकदरीभारं नेत्रोत्पलविमुद्रितम् ॥ १४ ॥

रत्नकुण्डलयुग्मेनामूल्येन परिशोभितम् । राजितं मौक्तिकेनैव गजराजोद्भवेन च ॥ १५ ॥

प्रेमणा स्वसूक्ष्मपत्रेण वह्निशुद्धेन माधयः । मार्जयामास भक्त्या चतुर्द्वयं भक्त्यतः सलः

केशसंमार्जनं कृत्वा निर्माय कदरीं हरिः । माधवीमालतीमालाजालेन परिशोभिताम् ॥

रत्नपट्टसूत्रयद्वां वामचक्रां मनोहराम् । अतीचवर्तुलाकारां कुन्दपुष्पसुशोभिताम् ॥ १८ ॥

ददौ सिन्दूरतिलकमधश्चन्दनमुज्ज्वलम् । कस्तूरीचिन्दुना सार्धं परितः परिशोभिताम्

चकार पञ्चकं गण्डयुग्मे चित्रविचित्रितम् । प्रवदौ कज्जलं भक्त्या नेत्रोत्पलसमुज्ज्वलम्

चकाराधररागञ्च राधायाश्चानुरागतः । कर्णभूषणयुग्मञ्च चकारातीचनिर्मलम् ॥ २१ ॥

अमूल्यरत्नहारञ्च स्तनभारयुगोऽज्ज्वलम् । ददौ कण्ठे च वैकुण्ठो मणिराजिविराजितम्

वह्निशुद्धांशुकं दिव्यममूल्यं विश्वरत्नतः । वासयामास वसनं कस्तूरीकुङ्कुमाक्तकम् ॥

प्रददौ पादयुगले रत्नमञ्जीररञ्जितम् । चकारालक्तकं भक्त्या पादाङ्गलिनखेषु च ॥ २४ ॥

चकार सेषां सेव्यायाः सेव्यस्त्रिजगतां सताम् ।

अहो सेवकसंभक्त्या श्वेतेन चामरेण च ॥ २५ ॥

सर्वभाषविदां श्रेष्ठो बोधज्ञः कामशास्त्रवित् ।

कामिनीं बोधयामास वासयामास वक्षसि ॥ २६ ॥

प्रेमणा ॥ प्रददौ तस्यै सद्वत्तदर्पणं शुभम् । सुवेशदर्शनार्थञ्च मुखचन्द्रञ्च मार्जितम् ॥ २७ ॥

नानापुणैर्विरचितामृगानां चन्दनोक्षिताम् ।

गण्डे सौभाग्ययुक्तायाः सौभागेन ददौ हरिः ॥ २८ ॥

कस्तूरीकुङ्कुमाक्तञ्च सुगन्धिचन्दनं ततः । ददौ प्रियायाः सर्वाङ्गे प्रियः प्रेमभरेण च ॥

पारिजातस्य कुसुमं दत्तं वक्षसि ब्रह्मणा । प्रददौ तत्कवर्याञ्च ललितायाञ्च नारद ॥ ३० ॥

कमलं निर्मलं दिव्यं सहस्रदलमुज्ज्वलम् । शिवेन दत्तं रहसि ददौ तद्दक्षिणे करे ॥३१॥
 अतिसारं मणीन्द्राणां मणिरत्नञ्च कौस्तुभम् । दत्तं रहसि धर्मेण तस्यै सुप्रीतये ददौ
 आसयं रत्नपात्रस्थं दद्यदत्तञ्च निर्जने । पानार्थं प्रददौ तस्यै कामोन्मादकरं परम् ॥३३॥
 मालतीमाधवीकुन्तमन्दारचम्पकादिकम् । पुष्पं सद्रत्नपात्रस्थं तस्यै सुप्रीतये ददौ ॥
 सुदुर्लभञ्च ताम्बूलं कर्पूरादिसुसंस्कृतम् । भक्षणं कारयामास समयन्नश्च तां प्रियाम् ॥३५॥
 सुदुर्लभञ्च विश्वेषु वाक्पतेः परिनिर्मितम् । अनुत्तमममूल्यञ्च वरुणेन रहस्थले ॥३६॥

अतिसूक्ष्ममनुपमं दत्तं भक्त्या विराजितम् ।

वासयामास वसनं दृष्ट्वा नम्राञ्च कौतुकात् ॥ ३७ ॥

देवराजेन दत्तञ्च गजराजेन्द्रमौक्तिकम् । नासिकाभूषणञ्चाह तस्यै सुप्रीतये ददौ ॥३८॥
 एतस्मिन्नन्तरं तत्र सुशीलाद्याश्चगोपिकाः । पट्टिःसत्सहस्रवर्ग्यश्च राधायाःसुप्रतिष्ठिताः

पट्टिशतकोटिगोपीभिः सार्द्धं संहृष्टमानसाः ।

आययुः पादचिह्नेन प्रियस्य बहवः प्रियाम् ॥ ४० ॥

काञ्चिच्चन्दनहस्ताश्च काञ्चिच्चामरबाहिकाः ।

काञ्चित् कस्तूरीहस्ताश्च मालाहस्ताश्च काञ्चन ॥ ४१ ॥

काञ्चित् सिन्दूरहस्ताश्च काञ्चित् कङ्कुतिकाकराः ।

काञ्चिदलक्तककरा वल्लहस्ताश्च काञ्चन ॥४२॥

ताञ्चिद्वर्णहस्ताश्च पुष्पपात्रधराधराः । काञ्चित् कीडापद्महस्ता मालाहस्ताश्चकाञ्चन
 ताञ्चिदासवहस्ताश्च काञ्चिदुभूषणबाहिकाः । करतालकराःकाञ्चिन्मृदङ्गबाहिकाःपराः
 चरयन्त्रकराः काञ्चिद्वीणाहस्ताश्चकाञ्चन । पट्टत्रिशद्भागरागिण्योनोपीकारूपधारिकाः

गोलोकादागता याश्च भारतं राधया सह ॥ ४५ ॥

काञ्चिल्लगुश्च ननृतुस्तत्रागत्य च काञ्चन ।

काञ्चिच्चक्रुस्तथा सेवां राधायाः श्वेतचामरैः ॥ ४६ ॥

ताञ्चिच्चक्रुश्च देव्याश्च पादसंवाहनं मुदा । काञ्चिद्ददौ च ताम्बूलं भक्षणार्थं महामुने ॥
 चं कौतुकयुक्तञ्च पुण्ये वृन्दावने घने । प्रतस्थौ गोपिकासार्द्धं राधावक्षःस्थलस्थितः

क्षणं पपौ च माध्वीकं प्रियया सह माधवः ।

क्षणञ्चलाद ताम्बूलं क्षणं निद्रां ययौ मुदा ॥ ४६ ॥

क्षणं चकार भृङ्गारं रत्ननिर्मितमन्दिरे । क्षणं जलविहारञ्च चकार यमुनाजले ॥ ५० ॥

इत्येवं कथिता यत्स रासक्रीडा हरैरहो । स्वेच्छामयस्यात्मनश्च परिपूर्णतमस्य च ॥

निर्गुणस्य स्वतन्त्रस्य परस्य प्रकृतेः प्रभोः । ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरस्य परस्य च

कृष्णजन्मरहस्यञ्च बालक्रीडनमीप्सितम् । उक्तं किशोरचरितं किम्भूय श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

श्रीकृष्णरासक्रीडावर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्णस्य मथुरागमनम् ।

नारद उवाच ।

अतः परं किं रहस्यं यभूव मुनिसत्तम । कथं जगाम भगवान् मथुरां नन्दमन्दिरात् ॥

नन्दो दधार प्राणांश्च विच्छेदेन हरैः कथम् ।

गोपाङ्गना यशोदा च कृष्णीकस्तनमानसाः ॥ २ ॥

चक्षुर्निमेषविच्छेदाद् वा राधा न हि जीवति ।

कथं दधार सा देवी प्राणान् प्राणेश्वरं विना ॥ ३ ॥

ये ये तत्सङ्गिनो गोपाः शयनाशनमोगतः । कथं विसस्मरुस्ते च तादृशं बान्धवं व्रजे

श्रीकृष्णोमथुरां गत्वा किं किं कर्म चकारसः । स्वर्गारोहणपर्यन्तं तद्भवान्बलुमर्हति

श्रीनारायण उवाच ।

कंसश्चकार यज्ञश्च समाहूतो धनुर्मखम् । जगाम तत्र भगवान् तेन राज्ञा निमन्त्रितः ॥

राजाप्रस्थापयामास चाकूरं भगवत्प्रियम् । अकूरःप्रेरितो राज्ञा गत्वा च नन्दमन्दिरम्

श्रीकृष्णञ्च गृहीत्वा च सगणं मथुरां गतः । कृष्णः श्रीमथुरां गत्वा जघान नृपतिं मुने
जघान रजकञ्चैव चाणूरं मुष्टिकं गजम् । चकार पित्रोरुद्धारं बान्धवानाञ्च बान्धवः ॥
कुञ्जया सह शृङ्गारं कृत्वा च कौतुकेन च ।

ताञ्च प्रस्थापयामास गोलोकं गोपिकापतिः ॥ १० ॥

चकार कृपया विष्णुमालाकारस्य मोक्षणम् । कृपयाचोदधद्वारा योधयामासगोपिकाः
तदोपनीतो भगवानवन्तीनगरं ययौ । चकार विद्याप्रहणं मुनेः सान्दीपिनेर्गुरोः ॥ १२ ॥
ततो जित्वा जरासन्धं निहत्य यघनेश्वरम् । उपसेनञ्च नृपतिञ्चकार विधिपूर्वकम् ॥
गत्वा समुद्रनिकटं निर्माय द्वारकां पुगीम् । जहाररुक्मिणीं देवीं जित्वा नृपतिसङ्गम्
कालिन्दीं लक्ष्मणां शौव्यां सत्यां जाम्बवतीं सतीम् ।

मित्रविन्दां नागजितीं समुद्राहञ्चकार सः ॥ १५ ॥

निहत्य नरकं भूपं रणेन दारुणेन च । पत्नीपोदशसाहस्र्यं विहारञ्च चकार सः ॥ १६ ॥
जहार पारिजातञ्च जित्वा शकञ्च लीलया । विच्छेदबाणहस्तांश्च जित्वा च चन्द्रशेखरम्
पौत्रस्यमोक्षणं कृत्वा पुनरागत्यद्वारकाम् । आत्मानं दर्शयामास लोकांश्चप्रतिमन्दिम्
योगैः च वसुदेवस्य तीर्थयात्राप्रसङ्गतः । प्राणाधिष्ठातृदेवीञ्च ददर्श तत्र राधिकाम् ॥
पूर्णं च शतवर्षं च सुदाम्नः शापमोक्षणे । पुनर्ययौ तथा सार्द्धं पुण्यं वृन्दावनं वनम् ॥
पुनश्चतुर्दशान्दञ्च तथा सार्द्धं जगत्पतिः । चकार रासं रासे च पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥
पूर्णमेकादशाब्दञ्च निर्वृत्य नन्दमन्दिरे । मथुरायां द्वारकायां पूर्णमब्दशतं विभुः ॥ २२ ॥
चकार भारहरणं पृथिव्यां पृथुविक्रमः । पञ्चविंशतिवर्षञ्च शतवर्षाधिकं मुने ।

तिष्ठन् जगाम गोलोकं पृथिव्याञ्च पुरातनः ॥ २३ ॥

यशोदायै च नन्दाय वृषभानाय धीमते ।

राधामात्रे कलापत्यै ददौ सामीप्यमोक्षणम् ॥ २४ ॥

कृष्णेन सार्द्धं गोपीभी राधिका च कुतूहलात् । वक्त्रधर्मसेतुञ्च वेदोक्तञ्च युगे युगे
इत्येवं कथितं सर्वं समासेन महामुने । श्रीकृष्णचरितं रम्यं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ २६ ॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नश्यमेव च । भज तं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम् ॥ २७ ॥

स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् । परमव्ययमव्यक्तं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥ २८॥

सत्यं नित्यं स्वतन्त्रञ्च सर्वेशं प्रकृतेः परम् । निर्गुणञ्च निरीहञ्च निराकारं निरञ्जनम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

श्रीकृष्णराधिकासंवादो नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीकृष्णप्रभाववर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

स एवमगमान् कृष्णः सर्वात्मा पुरुषः परः । दुराराध्योऽतिसाध्यश्च सर्वाराध्यः सुखप्रदः
निजभक्तातिसाध्यश्च भक्तस्याराध्य एव च ।

शश्वदु दृश्यः स्वभक्तस्याभक्तस्यादृश्य एव च ॥ २ ॥

दुर्ज्ञेयं तस्य चरितं कार्यं हृदयमेव च । बद्धस्तन्मायया सर्वं मोहिताश्च दुरन्तया ॥ ३ ॥

यद्वयाद्वाति वातोऽयं कूर्मो धत्ते निराश्रयः । कूर्मोऽनन्तं विधत्ते च यद्वयेन निरन्तरम्

विमर्ति शेषो विश्वञ्च यद्वयेन च नारदं । सहस्रशीर्षा पुरुषः शिरसश्चैकदेशतः ॥ ५ ॥

सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपा वसुन्धरा । शैलकाननसंयुक्ता पातालाः सप्त एव च ॥ ६ ॥

सप्त स्वर्गाश्च विविधा ब्रह्मलोकसमन्विताः ।

एवं विश्वं त्रिभुवनं कृत्रिमं परिकीर्तितम् ॥ ७ ॥

यद्वयेन विधात्रा च प्रतिसृष्टौ च निर्मितम् ।

एवं विश्वान्यसंख्यानि लोमकूपैर्महान् विराट् ॥ ८ ॥

यद्वयेन विधत्ते च यदंशो ध्यायते हियम् । विष्णुः पाति च संसारं यद्वयेन कृपानिधिः

कालाग्निरुद्धो यद्वीतः कालः संहरते प्रजाः । मृत्युञ्जयो महादेवो यद्वयाद्वयायते च यम्

पद्गुणैरनुरागैश्च विरागी विरतः सदा । यद्वयेन दहत्यग्निः सूर्यस्तपति यद्वयात् ॥

यद्वयाद्वर्पतीन्द्रश्च मृत्युश्चरति जन्तुषु । यद्वयेन यमः शास्ता पापिनां धर्म एव च ॥ १२ ॥
 धत्ते च धरणी लोकान् यद्वयेन चराचरान् । सूयते प्रकृतिः सृष्टौ यद्वयान्महदादिकम् ॥
 दुर्ज्ञेयं तद्भिप्रायं को वा जानाति पुत्रक । यत्प्रभावं न जानन्ति ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः
 कथं जानामि तद्येष्टामहं वत्स सुमन्दघो । कथं जगाम मथुरां त्यक्त्वा वृन्दावनं घनम् ॥

कथं तत्याज गोपीश्च राधां प्राणाधिकां प्रियाम् ।

यशोवां बान्धवादीश्च नन्दं वा नन्दनन्दनः ॥ १६ ॥

वर्षहा वर्षदः सौऽपि सर्वेषां सर्वदः सदा । यमञ्ज राधावर्पश्च सुदाम्नः शापकारणात् ॥
 धन्येषां भावनाहेतोर्ब्रह्मप्राप्तिस्तथा भवेत् । एवं किञ्चिद्वितर्कश्च कुरुते कमलोद्भवम् ॥
 चकार दर्पभङ्गश्च महाविष्णुः पुराविभुः । ब्रह्मणश्च तथा विष्णोः शेषस्य च शिवस्य च
 धर्मस्य च यमस्यापि साम्यस्य चन्दसूर्ययोः । गरुडस्य च वह्नेश्च गुरोर्दुर्वाससस्तथा
 दीयारिकस्य भक्त्या जयस्य विजयस्य च । सुराणामसुराणाञ्च भवतः कामशक्रयोः
 लक्ष्मणस्यार्जुनस्यापि बाणस्य च भृगोस्तथा । सुमेरोश्च समुद्राणां धायोश्च वरुणस्य च
 सरस्वत्याश्च दुर्गायाः पद्मायाश्च भुवस्तथा । सावित्र्याश्चैव गङ्गाया मनसायास्तथैव च
 प्राणाधिष्ठातृदैव्याश्च प्रियायाः प्राणतोऽपि च ।

प्राणाधिकाया राधाया धन्येषामपि का कथा ॥ २४ ॥

हृत्वा दर्पश्च सर्वेषां प्रसादश्च चकार सः । कर्ता हतां पालयिता स्रष्टा स्रष्टुश्च सर्वतः
 यं स्तोतुमीशो नालश्च पञ्चवक्त्रेण शङ्करः । स्तोतुं नालं चतुर्वक्त्रो विधाता जगतामपि
 स्तोतुं नालमनन्तश्च सहस्रवदनेहो । स्वयं विष्णुर्विश्वव्यापी नालं स्तोतुं जनार्दनः
 महाचिराद् न शक्नोऽपि यं स्तोतुं परमेश्वरम् । कम्पिता यस्य पुस्तः प्रकृतिः परमात्मनः
 सरस्वती जड्भीता यं स्तोतुं परमेश्वरम् । महिमानं न जानन्ति चेद्वा यस्य च नारद ॥

इत्येवं कथितो ब्रह्मन् प्रभावः परमात्मनः ।

निर्गुणस्य च कृष्णस्य किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ३० ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

श्रीकृष्णप्रभाववर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः महाविष्णोरहंकार भङ्गवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

किमपूर्वं श्रुतं ब्रह्मन् रहस्यं परमाद्भुतम् । अनन्तचरितं धन्यमनन्तस्याच्युतस्य च ॥
कथंकृष्णो महाविष्णोर्द्वर्षभङ्गं चकार सः । अन्येषां वा कथमहो तद्वचान् वक्तुमर्हति ॥
स्वतः श्रीकृष्णचरितमतीवमधुरं श्रुतौ । अतीवमधुरं रम्यं काव्यं कविमुखात्ततः ॥

श्रीनारायण उवाच ।

महाविष्णोरहङ्कारो बभूव सहसेति च । सर्वं महोमकूपेषु विश्वान्येवाहमीश्वरः ॥ ४ ॥
संहारभैरवोभूत्वा तं जग्रास सलीलया । स्थिते मूर्धावशेषे च प्रसादतंचकार सः ॥
सर्वात्मानं ध्यायमानंस्तुतंभीतंकृपानिधिः । तच्छरीरं सुसम्पन्नं पुनरेव चकार सः ॥

ब्रह्मणः सहसा ब्रह्मन्निति दर्पो बभूव ह ।

अहं त्रिजगतां धाता कर्ताहमीश्वरः स्वयम् ॥ ७ ॥

मत्परः पूजितो नास्ति मत्परः पूजितेन्द्रियः । इत्येवं मनसा कृत्वा बहुदर्पो बभूव ह ॥

तं ब्रह्मणां समूहश्च दर्शयामास तत्क्षणम् ।

गोलोके स्थसमीपे च वसन्तं पुरतो विभोः ।

पञ्चवक्त्रं चतुर्वक्त्रं षड्वक्त्रञ्च ततोऽधिकम् ॥ ६ ॥

शतवक्त्रञ्च प्रत्येकं ब्रह्माण्डौघञ्च लीलया । त्यक्तुकामं स्वदेहञ्च व्रीडया नतकन्धरम् ॥

पुनःप्रसादं कृपया तंचकारकृपानिधिः । कालेन मोहिनीद्वारा तमपूज्यं चकार सः ॥

स्पर्शन्यां दर्शयित्वा तं सकामञ्च चकार ह । पुनस्तद्वर्षभङ्गञ्च शिवद्वारा चकार सः ॥

तत्याज लज्जया देहं पुनर्देहं दधार सः । पुनश्चकार तंपूज्यं ब्रह्माणं ब्रह्मणः प्रभुः ॥

ज्ञानं ददौ महाज्ञानी ज्ञानानन्दः सनातनः ।

विष्णोर्वभूव गर्वश्च जगत्पाताहमीश्वरः ॥ १५ ॥

तमात्मविस्मृतं कृष्णश्चकार रामजन्मनि । अहं विश्वं विमर्शति शेषदर्पो बभूव ह ॥
 तद्वर्षं गरुडद्वारा चूर्णीभूतं चकार सः । एकदा पूजितो नागैर्गरुडः कृष्णवाहनः ॥ १६ ॥
 न पूजितश्च शेषेण स्पृक्ष्य पुरा मुने । गरुडेन जितं क्रोधात्तमनन्तं मनस्विनम् ॥
 चकार मोक्षणं तस्य श्रीकृष्णश्च कृपानिधिः । स्वयं शिवः स्वदर्पाच्च विघाहनं चकार सः

तं हृत्वा मायया मोहं कारयामास स्त्रीयुतम् ।

पुनर्जहार पत्नीञ्च दक्षकन्यां महासतीम् ॥ १६ ॥

वरं शुशोच तदेहं क्रोडे हृत्वा च शङ्करः ।

नातास्थानञ्च वन्नाम खन्य शोकान्मुहुर्महुः ॥ २० ॥

जन्मान्तरे पुनः प्राप्य तां सती पार्यतो मुदा । चिसस्मार च स्वज्ञानं दक्षशतपुनः शिवः
 पुनश्चाङ्गिरसद्वारा स्मारयामास सत्पथम् । एकदा सत्यः शम्भुः प्रेरितस्त्रिपुरे पुरा ॥
 हत्वा दैत्यं शिवद्वारा त्रिपुरारिं चकार तम् । सर्वं धरञ्च सर्वस्मै दातुं शम्भुः कृपानिधिः ॥
 स्वयं कल्पतर्कभूत्या प्रतिज्ञाञ्च चकार सः । वृकासुरोऽनुष्ठानञ्च हृत्वा वने धरं विभुम्
 दास्यामि हस्तं तन्मूर्ध्नि भस्मसाद्भवतु क्षणात् ।

जगाद् जगतां नाथ ईप्सितं ते भविष्यति ॥ २५ ॥

इतिलब्ध्वा धरं रुद्रात् गरुडस्तं शङ्करं विभुम् । हस्तं दातुञ्च तन्मूर्ध्नि प्राधावत्सत्त्वरं पुरा
 अतीवभीतः शम्भुश्च जगाम शरणं हरिम् । भगवाञ्च शिवस्वार्थं दैत्यं भस्मीचकार सः
 शिवं युद्धञ्च कुर्वन्तं याणं युद्धे पुरा विभुः । लोलया जृम्भणास्त्रेण जङ्गीभूतं चकार सः
 समागतं दक्षपत्ने शम्भुं दग्धेन लीलया । पारयामास भगवान् हस्तं दत्त्वा च तद्गले ॥
 केदारकन्यकाद्वारा शतो धर्मोऽतिदैवतः । यमूचातिरुशो भीतः कुहामेव यथा शशी ॥
 तदा तस्य च शापान्ते सत्ये पूर्णं बभूव ह । त्रिपाद्वयभूव त्रेतायां द्वापरे च द्विपादिति
 एकपाच्च कलौ सोऽपि कलेरन्ते पुनः क्षयः ।

पोडशांशोऽतिक्लृष्टश्च सस्मार चरणं विभोः ॥ ३२ ॥

तदा सत्ययुगारम्भे परिपूर्णोऽभवत् पुनः । पुनर्युगानुरोधेन क्रमेण च पुनः क्षयः ॥ ३३ ॥
 यमो माण्डव्यशापेन शूद्रयोनिमवाप ह । तदा पुनः शताब्दान्ते पुनः शुद्धो बभूव ह ॥

पदपञ्चाशत्तमोऽध्यायः] * देवदानवादीनां दर्पभङ्गवर्णनम् *

८६३

साम्यो विमातृशापेन गलतकुष्ठो यभूव सः । चन्द्रो दर्पमदेनेव जहार च गुरोः प्रियाम्
यभूव दर्पभङ्गोऽस्य यक्षमग्रस्तो यभूव सः । सूर्यो दर्पात्तेजसश्च हन्तुं शङ्करकिङ्करम् ॥
सुमालीत्यभिधं दैत्यं जगामाशु गिरिं प्रति । अहर्निशं दीप्तिकरं कुर्वन्तं चिपयं रवेः ॥३७॥
सूर्येण भीतो दैत्यश्च शङ्करं शरणं ययौ । सूर्यं दृष्ट्वा शङ्करश्च जग्राह शूलमेव च ।

भीतो दुद्राव सूर्यञ्च दृष्ट्वा तं शूलिनं मुने ॥ ३८ ॥

जघान काश्यां शूलेन शूलो काशीश्वरो रविः । मूर्च्छां संप्राप्य शूलेन दर्पभङ्गो यभूव ह
सान्द्रान्धकारः सहसा जग्राह पृथिवीतलम् ।

भाशुतोपो महादेवो जीवयामास तत्क्षणम् ॥ ४० ॥

तुष्टाव शङ्करं सूर्यो लजितोऽपि भयेन च । कृत्वा तमाशिर्यं तुष्टो ययौ गेहं कृपानिधिः
विभुर्गच्छततो दपं यमञ्च लीलया पुरा । निःश्वासैः प्रेरितस्वापि शिवस्य ध्रुवभस्य च
भागच्छतश्च वैकुण्ठं पृष्ठे कृत्वा शिर्यं पुरा । व्रष्टुं समागतं भक्त्या देवं नारायणं परम्
वह्निर्दर्वी भृगोः शापात् सर्वभक्षो यभूव ह । गुरोः स्वभार्याहरणादर्पभूर्णो यभूव ह ॥
दुर्वाससो दर्पभङ्गो यभूव ह्यम्बरीपतः । सुदर्शनेन चक्रेण विष्णोर्दुर्षिपदेण च ॥ ४५ ॥
जयस्य विजयस्यापि दर्पभङ्गं चकार सः । वैकुण्ठात् पतितस्यापि ब्रह्मशापच्छलेन च ॥
नृसिंहेन हतः सोऽपि हिरण्यकशिपुर्वधा । शूकरेण हिरण्याक्षो लीलया च रसातले ॥
रावणः कुम्भकर्णश्च निहर्ता रामवाणतः । जन्मान्तरे च लङ्कायां ब्रह्मणा प्रार्थितस्य च
शिशुपालो हि निहतः कृष्णबाणेन लीलया । दन्तवक्रश्च सहसा परिपूर्णोऽत्र जन्मनि ॥
सुराणां दर्पभङ्गञ्च दैत्यद्वारा चकार ह । असुराणां सुरद्वारा विरोधेन परस्परम् ॥५०॥
विधिद्वारा दर्पभङ्गं भवतश्च चकारसः । भवानासीन्नारदश्च पुरा पुनः प्रजापतेः ॥५१॥

गन्धर्वश्च पितुः शापात् शूद्रोपुत्रतस्तः क्रमात् ।

ततः पुनर्नारदश्च प्रसादादधुना विभोः ॥ ५२ ॥

नम साध्यं चिद्वयमिति कामदर्पो यभूव ह । तं प्रमत्तं हरद्वारा भस्मसाध्यं चकार सः ॥
पुनः कृत्वा प्रसादन्तं जीवयामास लीलया । एकान्तिकञ्च तद्वक्तं स च नास्त्रं करोति ह
चकार दर्पभङ्गञ्च दर्पिणो लक्ष्मणस्य च । रणे शङ्करशूलेन रावणप्रेरितेन च ॥ ५५ ॥

पुनस्तं जीवयामास रामस्य स्तवनेन च । स्वयं विस्मृतविष्णोश्च ब्रह्मणशापेन नारद
 चकार दर्पभङ्गञ्च कार्तवीर्यार्जुनस्य च । जामदग्न्यस्य शस्त्रेणामोघेन पर्शुना पुरा ।
 विप्रपुत्रस्य मरणे हरणे कृष्णयोषिताम् । कर्णेन सार्द्धं समरे पार्थद्वयं यमञ्ज सः ॥५८॥
 बाणस्य योषाहरणे चिच्छेद च भुजान् विभुः । भृगोश्च दक्षयज्ञे च दर्पभङ्गं चकार स
 पर्शुरामस्य रामस्य विधाहे पथि गच्छतः । यमञ्ज द्वयं समरे रामद्वारा पुरा विभुः ॥५९॥
 सुमेरोः शृङ्गभङ्गञ्च घायुद्वाराच कार सः । समुद्राणां दर्पभङ्गं चकारागस्त्यभक्षणा
 धकाले खट्विहरणे तत्पुत्रमरणे पुरा । कोपयुक्तस्य चायोश्च दर्पभङ्गं चकार सः ॥६०॥
 उषाहरणयात्रायां द्वारकागमने हरेः । बाणस्य च गद्यां हेतोर्वरुणञ्च शशाप सः ॥६१॥
 फलहे गङ्गाया सार्द्धं बाण्या नारायणाग्रतः । सरस्वतीञ्च तत्याज तस्या द्वयं यमञ्ज ।

दर्पयुक्ताञ्च दुर्गाञ्च त्यज्या शम्भुर्हिमालये ।

कामञ्च भस्मसात् कृत्वा तपसे च ययी विभुः ॥ ६५ ॥

लज्जामघाप सा देवी तस्या द्वयं यमञ्ज सः ।

सा ययी तपसे विष्णोः प्राप्तिहेतोः शिष्यस्य च ॥ ६६ ॥

भारते सुचिरं तप्त्वा देवी विष्णोर्वरेण च । चकार स्वामिनं शम्भुं भगवन्तं सनातनम्
 महासौभाग्ययुक्ता सा यभूव शङ्करप्रिया । विश्वेषु सर्वदेवीषु पूज्या घन्या स्तुता सुरैः
 दर्पयुक्ता महालक्ष्मीर्वभूव सा महामुने । पराभूता पुरा देवी जयेन विजयेन च ॥ ६६ ॥

प्रविशन्ती विभोर्द्वारं दत्त्वा भक्त्या घाञ्छितम् ।

निवारिता सा द्वाराद्य तेन दीघारिकेण वै ॥ ७० ॥

यदात्मनस्तिरस्कारं साभिमाना महासती । स्मृत्वा हरेः पादपद्मं देहं त्यक्तुं समुद्यता ॥
 तदा ब्रह्मा महेशश्च विष्णुर्धर्मश्च भास्करः । चन्द्रश्च कामदेवश्च वैश्वानरो धनेश्वरः ॥
 ऋषयो मुनयश्चैव मनवो विघ्ननाशकाः । महेन्द्रो वरुणश्चैव जगत्प्राणो हुताशनः ॥
 समाययू रदन्तस्ते पद्मायाः पुरतः पुरः । तुष्टुबुध महालक्ष्मीं मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥

देवा ऊचुः ।

क्षमस्व भगवत्यम्ब क्षमाशीले परात्परे । शुद्धसत्त्वस्वरूपे च कोपादिपरिवर्जिते ॥७५॥

उपमे सर्वसाध्वीनां देवानां देवपूजिते । त्वया विना जगत्सर्वं मृततुल्यञ्च निष्फलम्
सर्वसम्पत्स्वरूपा त्वं सर्वेयां सर्वरूपिणी । रासेश्वर्यधिदेवी त्वं त्वत्कलाः सर्वयोपितः

कैलासे पार्वती त्वञ्च क्षीरोदे सिन्धुकन्यका ।

स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीस्त्यं मर्त्यलक्ष्मीञ्च भूतले ॥ ७८ ॥

वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्देवदेवी सरस्वती ।

गङ्गा च तुलसी त्वञ्च सावित्री ब्रह्मलोकतः ॥ ७९ ॥

कृष्णप्राणाधिदेवी त्वं गोलोके राधिका स्वयम् ।

रासे रासेश्वरी त्वञ्च वृन्दा वृन्दावने वने ॥ ८० ॥

कृष्णप्रिया त्वं भाण्डीरे चन्द्रा चाम्दनकातने । विरजा चम्पकवने शतभृङ्गे च सुन्दरी ॥

पद्मावती पद्मवने मालती मालतोवने । कुन्ददन्ती कुन्दवने सुशीला केतकीवने ॥ ८२ ॥

कदम्बमाला त्वं देवी कदम्बकाननेऽपि च । राजलक्ष्मी राजमेहे गृहलक्ष्मीर्गृहे गृहे ॥

इत्युक्त्वा देवताः सर्वे मुनयो मनवस्तथा । रुद्रुर्नम्रप्रवदनाः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥

इति लक्ष्मास्तव्यं पुण्यं सर्वदेवैः कृतं शुभम् ।

यः पठेत् प्रातस्तथाय स वै सर्वं लभेद् ध्रुवम् ॥ ८५ ॥

भक्तार्थो लभते भार्या पिनीताञ्च सुतां सतीम् ।

सुशीलां सुन्दरीं रम्यामिति सुप्रियवादिनीम् ॥ ८६ ॥

पुत्रपौत्रवती शुद्धा कुलजां कोमलां वराम् । अपुत्रो लभते पुत्रं वैष्णवं चिरजीवितम्

परमैश्वर्ययुक्तञ्च विद्याघन्तं यशस्विनम् । भद्रराज्यो लभेद्राज्यं भद्रश्रीर्लभते धियम् ॥

हृत्तन्धुर्लभेद् धनं धनघ्नो धनं लभेत् ।

कीर्तिहीनो लभेत् कीर्तिं प्रतिष्ठाञ्च लभेद् ध्रुवम् ॥ ८९ ॥

सर्वमङ्गलदं स्तोत्रं शोकसन्तापनाशनम् । हर्षानन्दकरं शश्वद्धर्ममोक्षसुहृत्प्रदम् ॥ ९० ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

भगवद्गुणवर्णने लक्ष्मीस्तोत्रकथनं नाम पद्मश्चाशत्तमोऽध्यायः ।

ज्वाशत्तमोऽध्यायः

पत्युर्महत्त्ववर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

देवानां स्तवनं श्रुत्वा त्यक्त्वा च रोदनं सती ।
उवाच सुप्रसन्ना तान् तेषां स्तोत्रेण नारद ॥ १ ॥

महालक्ष्मीरवाच ।

त्यजामि देहं न क्रोधाच्च वैराग्येण साम्प्रतम् ।

इदं हृदि समालोच्य देवास्तच्छ्रूयतामिति ॥ २ ॥

यस्मिन् सदीशे महति सर्वसाम्ये च निर्गुणे । सर्वात्मनि सदानन्दे समता तृणशीलयोः

भूभङ्गलीलया लक्ष्मीलक्षं स्रज्जुमलञ्च यः ।

भृत्ये स्त्रिया यत्समता किं कार्यं तस्य सेवया ॥ ४ ॥

तत्पत्नीनां प्रधानाऽहं निरस्ता द्वारिणाऽधुना । उद्धृत्य भृत्यभृत्येन परिपूर्णं नेप्सिता

त्यक्ष्यामि जीवनमहमसौभाग्या च स्वामिनि । घट्टी च कामनां कृत्वा यथाभद्रं भवेत्पुरा

या स्त्री भर्तुरसौभाग्या ससौभाग्या च सर्वतः ।

शयने भोजने तस्या न सुखं जीवनं वृथा ॥ ७ ॥

पस्या नास्ति प्रियप्रेम तस्या जन्म निरर्थकम् । तत् किं पुत्रे धने रूपे सम्पत्तौ यौवनेऽथवा

यद्भक्तिर्नास्ति कान्ते च सर्वप्रियतमे परे । साऽगुचिर्धर्महीना च सर्वकर्मविवर्जिता ॥ ११ ॥

पतिर्वन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं गुरुरेव च । सर्वस्माच्च परः स्वामी न गुरुः स्वामिनः परः ॥

पिता माता सुतो भ्राता क्लृष्टा दातुमिदं धनम् ।

सर्वस्वदाता स्वामी च मूढाना योपितां सुराः ॥ ११ ॥

काचिदेव हि जानाति महासाध्वी च स्वामिनम् ।

अतिसद्वंशजाता च सुशीला कुलपालिका ॥ १२ ॥

असद्वंशप्रसूता या दुःशीला धर्मवर्जिता । मुखदुष्टा योनिदुष्टा पतिं निन्दति कोपतः ॥
या स्त्री सर्वपरं द्वेष्टि पतिं विष्णुसमं गुहम् । कुम्भीपाके पचति सा यावदिन्द्राश्चतुर्दश
व्रतं खानशनं दानं सत्यं पुण्यं तपश्चिरम् । पतिमकिविहीनाया भस्मीभूतं निरर्थकम् ॥

अतः किञ्चिन्न वक्ष्यामि निष्ठरं पतिमीश्वरम् ।

भृत्यापराधेर्देवस्य प्राणास्त्यक्ष्यामि निश्चितम् ॥ १६ ॥

पतिदोषे महासाध्वी पतिञ्चानिष्टुरं वदेत् । यदि सोढुमशक्ता च प्राणास्त्यजतिधर्मतः
पतिसेवा व्रतं स्त्रीणां पतिसेवा परं तपः । पतिसेवा परो धर्मः पतिसेवा सुरार्चनम् ॥
पतिसेवा परं सत्यं दानतीर्थानुकीर्तनम् । सर्वदेवमयः स्वामी सर्वदेवमयः शुचिः ॥
सर्वपुण्यस्वरूपश्च पतिरूपी जनार्दनः । या सती भर्तुर्वच्छिष्टं भुङ्के पादोदकं सदा ॥

तस्या दर्शमुपस्पर्शं नित्यं वाञ्छन्ति देवताः ।

ततः सर्वाणि तीर्थानि पुनन्ति पापिनो ह्यघातः ॥ २१ ॥

इत्युत्तमा च महासाध्वी करोद च मुहुर्मुहुः । उवाच ब्रह्मा भीतश्च भक्तिनम्रात्मकन्धरः
ब्रह्मोवाच ।

भविष्यति न भद्रश्च जयस्य विजयस्य च ।

त्वया न शक्नोती मूढो प्रियापराधभीतया ॥ २३ ॥

सापराधञ्च धर्मिष्ठः क्षमया नाशयेद् यद्वि ।

सर्वनाशो भयेत्तस्य निश्चितं मा चिरं सति ॥ २४ ॥

यदि शत्रुं न शकश्च न दण्डं कर्तुमीश्वरः । सापराधे च पुरुषे धर्मो दण्डं करोति च ॥

सर्वे क्षमस्य दे मातार्गच्छ गच्छ प्रियान्तिकम् ।

माश्च त्यक्त्वा मिनो भक्तं निधोज्य सृष्टिकर्मणि ॥ २६ ॥

इत्युत्तमा तां पुरस्कृत्वा साद्वं देवैर्मनोनान्दकैः । शशिं जगन्मयैकुण्ठं वैकुण्ठं स्तोतुमर्श्वरः
तत्र गत्वा जगन्नाथं तुष्टाय कमलासनः । चतुर्वक्त्रैश्चतुर्वक्त्रश्चतुर्वेदविदां गुहम् ॥ २८ ॥

ब्रह्मणः स्तवनं धृत्या दृष्ट्वा लक्ष्मीं पुष्टसाम् ।

यदन्ती नम्रयदनामुवाच कमलापतिः ॥ २९ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सर्वं जानामि सर्वज्ञः सर्वात्मा सर्वपालकः । सर्वशास्ता च सर्वादिकारणं कमलोद्भव
भक्ते कलत्रे दग्धो च सर्वत्र समता मम । विशेषतोऽतिमद्वक्तः कलत्रात्पर एव च ॥
मद्वक्तो तव पुत्रो च द्वारपालो दुरन्तको । क्षम मामपराधञ्च तयोश्च भक्तिपूर्वयोः ॥

मद्वक्तिपूर्णां बलवान् देत्येभ्यो न विमेति च ।

रक्षितो मम चक्रेण भक्तिमाध्वीकदुर्मदः ॥ ३३ ॥

इत्युक्त्वा जगतां नाथो लक्ष्मीं कृत्वा स्ववक्षसि ।

समानीय द्वारपालं तमुवाचेदमेव च ॥ ३४ ॥

मा भैर्वत्स सुखं तिष्ठ भयं किं ते मयि स्थिते ।

मद्वक्तानाञ्च कः शास्ता गच्छ वत्सत्वनः पवम् ॥ ३५ ॥

इत्युक्त्वा भगवांस्तत्र विरराम महामुने । ययुर्देवाश्च स्वस्थानं प्रणम्य जगदीश्वरम् ॥

नारायणवचः श्रुत्या द्वारपाल उवाच तम् । पुलकाश्रितसर्पाङ्गो भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥

जय उवाच ।

।हं विमेमि देवांश्च लक्ष्मीं मुनिगणांस्तथा । त्वदीयचरणाम्भोजध्यानैकतानमानसः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

“ वैराग्यमोचनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पृथिवीदर्पभङ्गवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

यभूय दर्पः पृथ्व्याश्च सर्वाधाराऽहमेव च । पृथ्व्या च तदर्पं जघान चैव तत्प्रभुः ॥ १ ॥

यभूय दर्पः सावित्र्या वेदमाताऽहमेव च । काले चकार तस्याश्च सपुत्राया अदर्शनम् ॥ २ ॥

यभूव दर्पो गङ्गाया अहं निर्वाणदेति च । जह्नुद्वारा च तद्वपं जहारं जगतां पतिः ॥३॥
जहार मनसादर्पे दुर्गाद्वारा पुरा मुने । विरजोपगतं कृष्णं भर्त्सयामास कोपतः ॥४॥
प्रविशन्तं रासगृहं गोपीभिर्विनिवारितम् । दीवारिकाभिर्वेत्रैश्च ताडितं तञ्च दर्पतः ॥५॥

सुदाम्ना निजभक्तेन राधा शप्ता यभूव ह ।

द्वेयेन सहसा ध्वस्ता गोलोकादागता धराम् ॥ ६ ॥

वृषभानुस्त्रियां जाता कलाघत्याञ्च नारद । कृष्णस्तदनुरोधेन कंसभीतिच्छलेन च ॥
समागतो नन्दगेहं तेनाहं नन्दनन्दनः । सुदाम्नः शापविच्छेदपालनार्थं जगत्पतिः ॥८॥
पुनर्जगाम मथुरामित्याह कमलोद्भवः । अस्याः परममिषार्थं को वा जानाति नारद ॥
कथं जातः समायातो मथुरायाश्च गोकुलम् । इत्येवं कथितं सर्वमपरं ध्रूयतामिति ॥

यथा जगाम मथुरां नन्दात् स नन्दनन्दनः ।

शोकं नन्दो यशोदा च यथा सम्प्राप दैवतः ॥ ११ ॥

यथा गोपाश्च गोप्यश्च नावो वृन्दावने वने ।

घने घने वा घन्यास्ते घन्या जानन्ति किञ्चन ॥ १२ ॥

घनं सयं घन्यपदमपि त्यक्तवा घने घने । श्मशाने वाश्मशाने वा यन्नाम भामिनो मुने ॥
घामं त्यक्तवा च यन्नाम चेतनान्नेतनाक्षणम् । क्षणेनवर्जिता सा च प्रार्थयन्ती प्रतीक्षणम्
क्षणंक्षणं सा श्वसन्ती चेतनं कुर्वतीक्षणम् । क्षणं विशन्ती तल्पे च क्षणमुत्थायतिष्ठति
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

पृथिवीदर्पभङ्गवर्णननामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

एकोनपष्टितमोऽध्यायः

विस्तरेण इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

इत्येवं कथितं सर्वं सर्वेषां दर्पभञ्जनम् । इन्द्रस्य दर्पभङ्गञ्च विस्तरेण निशामय ॥ १ ॥

इन्द्रो दर्पात् सभायाञ्च रत्नसिंहासनाद्वरात् ।

नोत्तस्थौ स्वगुरुं दृष्ट्वा ब्रह्मिष्ठञ्च बृहस्पतिम् ॥ २ ॥

गुरुर्जगामातिरुष्टः स्वापमाने समत्सरः । तथापि कृपया धर्मो स्नेहाच्च न शशाप तम् ॥

विना शापेन तद्वर्षभूर्णोभूतो बभूव ह ।

अन्यश्चेन्न शपेद्धर्मात् प्रेम्णा वा चाति किल्बिषम् ॥ ४ ॥

तथापि तञ्च फलति धर्मस्तं हन्ति नारद । यो यं हिंसं सापराधं शपेत्कोपेन धार्मिकः ॥

विनाशः सापराधस्य धर्मो नष्टश्च धर्मिणः । तेनाधर्मेण शकस्य ब्रह्महत्या बभूव ह ॥

भीतस्त्यक्त्वा स्वराज्यञ्च प्रययौ स सरोवरम् । सरसः पद्मसूत्रे च निवासञ्चकार सः

गन्तुं न शक्ता हत्या च पुण्यं चिण्णुसरोचम् । श्रेष्ठं भारतवर्षे च तपस्थानंतपस्विनाम्

तदेव पुष्करं तीर्थं प्रवदन्ति पुराविदः । राज्यभ्रष्टं हरिं दृष्ट्वा हरिभक्तो नराधिपः ॥ ६ ॥

बलाजहार तद्राज्यं नहुषो नाम धार्मिकः । दृष्ट्वा शचीं वरारोहामनपत्याञ्च सुन्दरीम् ॥

स्वर्गगङ्गाञ्च गच्छन्तीं हृदयेन विदूयता । नवयौवनसम्पन्नां रत्नालङ्कारभूषिताम् ॥ ११ ॥

सुकोमलां तां सुवर्तीं वदन्तीञ्च महासतीम् ।

मूर्च्छां सम्प्राप राजेन्द्रः कामेन यौवनेन च ॥ १२ ॥

उवाच तत्पुरःस्थित्वा सुविनीतश्च दासवत् ।

नहुष उवाच ।

धातुर्गतिर्विचित्राऽहो न बोध्या च सतामपि ॥ १३ ॥

ईदृशी स्त्री भगाङ्गस्य लुब्धस्य परयोपिति । ईदृशी सुन्दरी यस्य परमाख्यासु तन्मनः

अस्या अग्रे च का रम्भा कोर्वशी का तिलोत्तमा ।

का वा मेना घृताची वा रत्नमाला कलावती ॥ १५ ॥

फालिकासुन्दरीभद्रावती चम्पावतीतथा । यताश्चाप्सरसश्चास्या कलानार्हन्तिपोद्गशीम्

इमां विहाय मूढोऽन्यां कथं गच्छति मन्दधीः ।

अस्माकं योपितो याश्च चेटीतुल्याश्च निश्चितम् ॥ १७ ॥

मां भजस्य वरारोहे सुप्रीता भव किङ्कम् । यथा राधा च गोलोके कृष्णवक्षसिराजते

वैकुण्ठोरसि वैकुण्ठे यथा लक्ष्मीः सरस्वती । ब्रह्मलोके च ब्रह्माणी यथैव ब्रह्मवक्षसि
यथा मूर्तिर्महासाध्वी धर्मवक्षःस्थलस्थिता । पातालतललक्ष्मीर्वा यथैवान्तवक्षसि ॥
यथा पुष्टिर्गणेशे च देवसेना च कार्तिके । वरुणे वरुणानी च यथा स्वाहा हुताशने ॥

यथा रतिः कामदेवे यथा संज्ञा दिनेश्वरे ।

वायोः पत्नी यथा वायौ यथा चन्द्र च रोहिणी ॥ २२ ॥

यथादितिर्देवमाता तच्च श्वश्रूश्च कश्यपे । यथा हिमालये मेना पितृकन्या च मानसी ॥
लोपामुद्रा यथागस्त्ये यथा तारा बृहस्पती । कर्दमे देवहूती च वशिष्ठेऽरुन्धती यथा
मनौ च शतरूपेव दमयन्ती नने यथा । तथा मय त्वं सौभाग्या मम वक्षसि सुन्दरि
लीलायाच सहस्रेन्द्रान् छैतुंशकोऽहमीश्वरः । नारीवाञ्छति जारञ्च स्वामिनौचलवत्तम्
सुमेरुगिरिकूटे च दुर्गमेऽतिरहःस्थले ।

अथवामलये रम्ये रम्ये चन्दनवायुना ॥ २७ ॥

विश्वम्भके सुरसने किंवा नन्दनकानने । निकटे शतशृङ्गस्य पुष्पमद्रानदीतटे ॥ २८ ॥
गोदावरीतीरनीरे समीपे शीतवायुना । चम्पावतीनदीतीरे रम्ये चम्पककानने ॥ २९ ॥
श्मशानेऽतिश्मशाने च रम्येऽतिनिर्जने घने । शैले शैलेऽतिरहसि कन्दरे कन्दरे घने ॥
द्वीपे द्वीपे दुर्गदुर्गे नद्यां नद्यां नदे नदे । समुद्रपुलिने रम्ये सर्वजन्तुचिपजिते ॥ ३१ ॥
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो निर्जने सुखः । पुष्पचन्दनशय्यायां पुष्पचन्दनचर्चिते ॥
मा गृहीत्वा कुरु रतिं पुष्पचन्दनचर्चितम् । ब्रह्मणश्च धरेर्देवी जरामृत्युचिपजितम् ॥
मा कुरुष्व पतिं भद्रे नित्यं सुखिरयौवनम् । सुवेशं सुन्दरं धीरं कामशास्त्रपिशारदम्
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं चन्द्रवंशसमुद्भवम् । आगतामुर्वशीं मह्यं त्यक्तवन्तञ्च याचतीम् ।

न मे स्पृहा परस्त्रीषु त्वां दृष्ट्वा लोलुपं मनः ।

त्यक्ता मया स्वमाख्यांश्च रत्नभूषणभूषिताः ॥ ३६ ॥

अथवा रक्षिताः सर्वा दासीः कृत्वा वरानने ।

रत्नेन्द्रसारं माला ते दास्यामि वरुणस्य च ॥ ३७ ॥

निर्जित्य परुषं युद्धे ब्रह्मास्त्रेणातितेजसा । वह्निशुद्धं वस्त्रयुगं जित्वा वह्निं सुदुर्बलम् ॥

दास्याम्यद्यैव ते देवि वियोज्यं मां नियोजय । मणीन्द्रसारनिर्माणमकराकारकुण्डले ॥
 दास्यामि देवानिर्जित्य देवमानुष्य सुन्दरि । करभूषणयुग्मञ्चात्यमूल्यरत्ननिर्मितम् ॥
 दास्याम्यद्यैव रोहिण्याश्चन्द्रं जित्वातिदुर्लभम् । यक्षमग्रस्तमतिकृत्यं ममैव पूर्वपूरुषम्
 विना युद्धेन भीतो मा कृपया वा प्रदास्यति । अत्परत्नविनिर्माणं कणन्मञ्जीरयुग्मकम्
 दास्याम्यद्यैव पार्वत्या मिक्षा कृत्वा महेश्वरम् ।

आशुतोषं स्तुतिवशं भक्तेशञ्च कृपामयम् ॥ ४३ ॥

सर्वसम्पत्तिदातारं परं कल्पतरुं शुभे । अमूल्यरत्ननिर्माणकेयूरयुगलं प्रिये ॥ ४४ ॥
 दास्यामि तेऽद्य गङ्गाया युद्ध कृत्वा सुदुर्लभम् ।

वहुलायुगलं चारु सूर्यपत्न्या मनोहरम् ॥ ४५ ॥

सद्गजसारनिर्माण दास्याम्यद्य सुशोभने । अमूल्यरत्ननिर्माणं वर्पणञ्चातिनिर्मलम् ॥ ४६ ॥
 दास्यामि ते कामपत्न्याः कामं जित्वा च लीलया ।

क्रीडाकमलमग्नानं कमलायाश्च सुन्दरि ॥ ४७ ॥

मिक्षां कृत्वा च दास्यामि स्तुत्या च कमलापतिम् ।

अङ्गुलीयकरत्नानि विश्वेषु दुर्लभानि च ॥ ४८ ॥

सावित्र्याश्च प्रदास्यामि कृत्वा च ब्रह्मणस्तथा ।

स्वयं गीत प्रगायन्ती मूर्च्छनाधृतिसंयुताम् ॥ ४९ ॥

वाणीवीणा प्रदास्यामि कृत्वा नारायणव्रतम् । रत्नापाशकसङ्कुञ्च विश्वकर्मविनिर्मितम्
 कुबेरपत्न्या दास्यामि वादाङ्गुलिविभूषणम् । इत्येवमुक्त्वा नहुषः पपात तत्पदाम्बुजे ॥

उवाच तं शची अस्ता राजमार्गगतं नृपम् ॥ ५१ ॥

उत्थाप्य तं करं धृत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका । स्मारंस्मारं पदाम्भोजं महासाध्वी हरेर्गरो
 शन्युवाच ।

मृणु पत्स महाराज हे तात भयभञ्जन । भयत्राता च राजा च सर्वेषो पालकः पिता ॥

मृएथ्रीश्च महेन्द्रोऽद्य त्वञ्च स्वर्गे नृपोऽधुना ।

यो राजा स पिता पाता प्रजानामेव निश्चितम् ॥ ५३ ॥

गुरुपत्नी राजपत्नी देवपत्नी तथा घट्टः । पित्रोःस्वसा शिष्यपत्नी भृत्यपत्नी च मातुली
पितृपत्नी भ्रातृपत्नी श्वश्रूश्च भगिनी सुता । गर्भधात्रीष्टदेवी च पुंसः षोडश मातरः ॥

त्वं नरो देवभार्याऽहं माता ते वेदसम्मता ।

गच्छ वत्सादिति रन्तुं यदि चेच्छसि मातरम् ॥ ५७ ॥

सर्वेषां निष्कृतिश्चास्ति न घट्स ! मातृगामिनाम् ।

कुम्भीपाके ते पचन्ति यावद्देव्यर्षा वयः ॥ ५८ ॥

ततोभयन्ति क्रमयःशेषा योनिषु फल्पकान् । ततश्च कुष्टिनो म्लेच्छा भयन्ति सप्तजन्मसु
नास्त्येष निष्कृतिस्तेषामित्याह कमलोद्भवः । एवं विश्वशूद्राणां ब्राह्मणीगमने नृप
येषु निष्कृतिर्नास्ति चेत्याङ्गिरसभाषितम् ।

स्वर्गसम्पत्तिभोगश्च सुखं संसारिणां ध्रुवम् ॥ ६१ ॥

मुमुक्षूणाञ्च मोक्षश्च तपश्चैव तपस्विनाम् । ब्राह्मणानाञ्च ब्राह्मण्यं मुनीनां मौनमेव च
वेदाभ्यासो वैदिकानां कवीनां काव्यवर्णनम् ।

विष्णुदास्यं वैष्णवानां विष्णुभक्तिरसं परम् ॥ ६३ ॥

विष्णुभक्तिं विना नैव मुक्तिं याच्छन्ति वैष्णवाः ।

मलादयेषु च हृदेषु दुर्गन्धिनिलयेषु च ॥ ६४ ॥

साधूनां किं सुखं साधो स्त्रीणां योनिषु मां घट ।

कुलप्रदीपे राजेन्द्र राज्ञां मण्डलवर्तिनाम् ॥ ६५ ॥

लब्धश्च भारते जन्म पुण्येन बहुजगन्नाम् । पद्मानां चन्द्रवंश्यानां नृपाणां क्षीतिहेतवे ॥

स्वमाचिरासीस्तेजस्वी ग्रीष्ममध्याह्नभास्करः । सर्वेषामाश्रमाणाञ्च स्वधर्मश्च यशः परम्

स्वधर्महीना नरके पतन्ति मूढचेतसः । ब्राह्मणस्य स्वधर्मश्च त्रिसन्ध्यमर्चनं हरेः ॥ ६८ ॥

तत्पादोदकनैवेद्यभक्षणञ्च सुधाधिकम् । अन्नं विष्टा जलं मूत्रमनिवेद्यं हरेर्नृप ॥ ६९ ॥

भवन्ति शूकराः सर्वे ब्राह्मणा यदि भुञ्जते । आजीर्णं भुञ्जते विप्रा एकादश्यां न भुञ्जते

कृष्णजन्मदिने चैव शिवरात्रौ मुनिश्चितम् । तथा रामनवम्याञ्च यक्षतः पुण्ययासरे ॥

ब्राह्मणानां स्वधर्मश्च कथितो ब्रह्मणा नृप । व्रतं पतिव्रतानाञ्च पतिसेवा परं तपः ॥ ७२ ॥

यथा पुत्रः परपतिरेव धर्मश्च योषिताम् । पालयन्ति यथाभूषाः प्रजाः पुत्रानिवौरसान्
 प्रजाःस्त्रियञ्च पश्यन्ति राजानो मातरंयथा । यत्नं कुर्वन्ति विष्णोश्च सेवनं देवविप्रयोः
 निवारणञ्च दुष्टानां शिष्टानां प्रतिपालनम् । इति धर्मः क्षत्रियाणां कथितो ब्रह्मणा पुरा
 धाणिज्यञ्चैव वैश्यानां स्वधर्मो धर्मसञ्चयः । शूद्राणां विप्रसेवा च परो धर्मो विधीयते
 सर्वन्यासो हरौ भूष धर्मः सन्यासिनां ध्रुवम् ।

रत्नैकपासा दण्डी च विभर्ति मृत्कमण्डलुम् ॥ ७७ ॥

सर्वत्र समदर्शी च स्मरेन्नारायणं सदा । करोति भ्रमणं नित्यं गेहे गेहे न तिष्ठति ॥ ७८ ॥
 विद्या मन्त्रञ्च कस्मैचिन्न ददाति च लोभतः । करोति नाश्रमं मिथुः करोति नान्यवासनाम्
 करोति नान्यसङ्गञ्च निर्मोहः सङ्गचर्जितः ।

न स्यादु भुङ्क्ते लोभाच्च स्त्रीमुखं न हि पश्यति ॥ ८० ॥

न घाञ्छितं भक्ष्यवस्तु याचते गृहिणं व्रती । इति सन्यासिनां धर्ममित्याह कमलोद्भवः
 इति ते कथितं पुत्र गच्छ घत्स यथासुखम् ॥ ८२ ॥

इत्युक्त्या च महेन्द्राणी विरराम च घर्त्मनि । उवाच नहुषो राजा शर्चा वक्रप्रकन्धरः
 नहुष उवाच ।

त्वया यत् कथितं देवि सर्वं तत्तु विपर्ययम् । यथार्थधर्मं वेदोक्तं नियोध कथयामि ते
 कर्मणां फलभोगश्च सर्वेषां सुरसुन्दरि । नैव स्वर्गे न पाताले नान्यद्वीपे श्रुतो ध्रुतम् ॥

कृत्वा शुभाशुभं कर्म पुण्यक्षेत्रे च भारते ।

अन्यत्र तत्फल भुङ्क्ते कर्मो कर्मनिबन्धनात् ॥ ८६ ॥

हिमालयादासमुद्रं पुण्यक्षेत्रञ्च भारतम् । श्रेष्ठं सर्वस्थलानाञ्च मुनीनाञ्च तपःस्थलम् ॥

तत्रलब्ध्वा जन्म जीवी वञ्चितो विष्णुमायया । शश्वत्करोति विषयं विहाय सेवनंहरेः

कृत्वा तत्र महत् पुण्यं स्वर्गं गच्छति पुण्यवान् ।

गृहीत्वा स्वर्गकन्याश्च चिरं स्वर्गे प्रमोदते ॥ ८६ ॥

स्वर्गमागच्छति नरो विहाय मानवी तनुम् ॥ ९० ॥

स्वशरीरेणागतोऽहं मत्पुण्यं पश्य सुन्दरि । अनेकजन्मपुण्येन चागतो स्वर्गमीप्सितम् ।

शन्युवाच ।

अचेतनस्यमूढस्य कार्प्याकार्प्यमजानतः । श्रोण्याभ्यद्य कतिविधां कथां कामातुरस्यच
मधुमत्तः सुरामत्तः काममत्तो विचेतनः । मृत्युं न गणयेत्कामी कायेन हृतमानसः ॥

त्यज मामद्य हे मत्त मातृतुल्यां रजस्वलाम् ।

ऋतोः प्रथमो दिवसो ह्यद्य हे नृप मे ध्रुवम् ॥ ११२ ॥

प्रथमे दिवसे स्त्री च चाण्डाली सा रजस्वला ।

द्वितीये दिवसे श्लेच्छा तृतीये रजर्का तथा ॥ ११३ ॥

शुद्धा भर्तृधनुर्येऽहि न शुद्धा दैवपैश्यायोः । असत्शूद्रा समा सा च तद्दिने च परं प्रति
प्रथमे दिवसे फान्तां यो हि गच्छेद्रजस्वलाम् । ब्रह्मदत्ताचतुर्थ्यां लभते नात्र संशयः
स पुमाश्च हि कर्माह्नीं दैवे नैश्वे च कर्मणि । अधमः स च सर्वेषां निन्दितश्चायशस्करः
द्वितीये दिवसे नारीं यो व्रजेच्च रजस्वलाम् । कामतः परिपूर्णश्च गोहत्यां लभते ध्रुवम्
आजीवनं नाधिकारी पितृविप्रसुराचने ।

अमनुष्योऽयशस्यः स्यादित्याङ्गिरसभाषितम् ॥ ११८ ॥

नृतीयेदिवसे जायां यो हि गच्छेद्रजस्वलाम् । स मूढो भ्रूणहत्याश्च लभते नात्र संशयः
पूर्ववत्पतितः सोऽपि न चाहःसर्धकर्मसु । असत्शूद्रा चतुर्थेऽहि न गच्छेत्तांविचक्षणः
यदि मां मातरं मूढ गृहिण्यसि वरेण च । ऋतावतीते दिवसे गमनञ्च करिष्यसि ॥

शक्याद्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मस्य ननुपस्तथा ।

उवाच मधुरं शान्तः शक्रकान्ताश्च मुजताम् ॥ १२२ ॥

देवपत्नी सदा शुद्धा तन्मन्यूनं मानवं प्रति । शयने भोजने देवो नाशुद्धा मानवं प्रति ॥
रजस्वलायाः सम्भोगं कर्मक्षेत्रे च भारते । त्वयोक्तञ्च भवेत् पापं नात्र दुर्गे च सुन्दरि
कर्मक्षेत्रेऽपि तत्कर्म यद्देवोक्तं शुभाशुभे । न भवेद्वैष्णवानाञ्च ज्वलतां प्रपतञ्जसा ॥

यथा प्रसूते पर्वी ॥ शुष्काणि च तृणानि च ।

अपन्ति भस्माभूतानि तथा पापानि वैष्णवे ॥ १२६ ॥

पहिम्प्येन्द्राहमेभ्यस्तेजावान् वैष्णवः सदा । रक्षितो विष्णुचक्रेण स्वतन्त्रोमत्तकुम्भ

न चिवारो न भोगश्च वैष्णवानां स्वकर्मणाम् ।

लिखितं साम्नि फौधुम्या कुरु प्रश्नं बृहस्पतिम् ॥ १२८ ॥

अस्मांश्च सर्वे जानन्ति चन्द्रवंश्यांश्च वैष्णवान् । देवमन्यं न सेवन्ते चन्द्रवंश्याहरिविना
सद्वंशप्रभवो यो हि ब्राह्मणक्षत्रियोऽथवा । विष्णुमन्त्रं न गृह्णाति चञ्चितो विष्णुमायया
फो वा मन्त्रश्च के देवा न हि शास्ता यमो मम ।

सर्वान् शास्तुं समर्थोऽहं ब्रह्मा विष्णुं शिवं विना ॥ १३१ ॥

शय्याकुरु गृहं गत्वा शीघ्रं यास्यामि ते गृहम् । ऋतुपापमयि भवेत्तव किं गच्छशोभने
इत्युक्त्वा नहुषो राजा प्रफुल्लयदनेक्षणः । रत्नयानं समारुह्य ययौ नन्दनफाननम् ॥ १३३ ॥

न ययौ सा शच। गेहं प्रजगाम गुरोर्गृहम् ।

गत्वा कुशासनस्थश्च ददर्श च बृहस्पतिम् ॥ १३४ ॥

तारासेवितपादाब्जं उवलन्तं ब्रह्मतेजसा । जपमालाकरं शशयज्ञपन्तं कृष्णमीप्सितम् ।

परमं परमानन्दं परमात्मानमीश्वरम् ॥ १३५ ॥

निर्गुणश्च निरीहश्च स्वतन्त्रं प्रकृतेः परम् । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥
तमानन्दाधुनेत्रश्च ननाम शिरसा भुवि । रुदन्ती साधुनेत्रा सा मज्जन्ती भक्तिसागरे ॥
शोफार्णविं निमज्जन्ती हृदयेन विदूयता । तुष्टाय भीता स्वगुहं ब्रह्मिष्ठश्च कृपानिधिम् ॥

शच्युपाव ।

रक्ष रक्ष महाभाग मा भीता शरणागताम् । त्वमीश्वर स्वदासीञ्च निमग्ना शोफसागरे
भनीश्वरश्चैश्वरो वा बलवान् वा सुदुर्लभ ।

स्वशिष्यभार्या पुत्राञ्च शासितुञ्च सदा क्षमः ॥ १४० ॥

दूरीभूतः स्वरज्याश्च स्वशिष्यश्च कृतस्त्वया । शान्तिर्भूव दोषस्य चाधुना निग्रहकुरु
अनाथा सर्वशून्या मा शून्या ताममराचतीम् ।

सम्पत्शून्यमाश्रमं मे पश्य रक्ष कृपानिधि ॥ १४२ ॥

दस्युप्रस्ताश्च मा रक्ष देव किदूषम नर । दत्त्वा चरणरेणून् तं शुभाशीर्षचनं कुरु ॥ १४३ ॥
सर्वपाञ्च गुरूणाञ्च जन्मदाता परो गुरुः । पितुः शतगुणा माता पून्या पत्न्या गरीरसी

विद्यादाता मन्त्रदाता ज्ञानदो हरिमक्तिदः ।

पूज्यो वन्द्यश्च सेव्यश्च मातुः शतगुणो गुरुः ॥ १४५ ॥

मन्त्राद्युद्गीरणैव गुरुस्तियुज्यते बुधैः । अन्यो वन्द्यो गुरुयमन्यश्चारोपितो गुरुः ॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मोलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

अदोक्षितस्य मूर्खस्य निष्कृतिर्नास्ति निश्चितम् ।

सर्वकर्मस्यमर्हस्य नरके तत्पशोः स्थितिः ॥ १४८ ॥

जन्मदाताप्रदाता च माताम्ये गुरुवस्तथा । पारं कर्तुं न शक्तास्ते घोरसंसारसागरे ॥

विद्यामन्त्रज्ञानदाता निपुणः पारकर्मणि । स शक्तः शिष्यमुद्धर्तुमीश्वरश्चेश्वरात् परः ॥

गुरुर्विष्णुर्गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुर्धर्मो गुरुः शेषः सर्वात्मा निर्गुणो गुरुः ॥

सर्वतीर्थाश्रमश्चैव सर्वदेवाश्रयो गुरुः । सर्वदेवस्वरूपश्च गुरुरूपी हरिः स्वयम् ॥ १५१ ॥

अभीष्टदेवे रुष्टे च गुरुः शक्तो हि रक्षितुम् । गुरोरुष्टेऽभीष्टदेवो न हि शक्तश्च रक्षितुम्

सर्वे प्रह्लादश्च यं रुष्टा रुष्टाश्च द्वेषप्राक्षणाः । तमेव रुष्टो भवति गुरुदेव हि दैवतः ॥ १५४ ॥

न गुरोश्च प्रियश्चात्मा न गुरोश्च प्रियः सुतः ।

धनं प्रियञ्च न गुरोर्न च भार्ग्या प्रिया तथा ॥ १५५ ॥

न गुरोश्च प्रियो धर्मो न गुरोश्च प्रियं तपः । न गुरोश्च प्रियं सत्यं न पुण्यञ्चगुरोःपरम्

गुरोः परो न शास्ता च न हि बन्धुर्गुरो परः ।

देवो राजा च शास्ता च शिष्याणाञ्च सदा गुरुः ॥ १५७ ॥

यापद्मशक्तोदात्तमन्नं तावत्शास्तातद्वन्दः । गुरुःशास्ता च शिष्याणां प्रतिजन्मनि जन्मनि

मन्त्रो विद्यागुरुर्देवः पूर्वलब्धो यथा पतिः । प्रतिजन्मनिबन्धेन सर्वेषामुपरि स्थितः ॥

पिता गुरुश्च वन्द्यश्च यत्र जन्मनि जन्मदः । गुरुषोऽन्ये तथा माता गुरुश्च प्रतिजन्मनि

विप्राणां त्वं वरिष्ठश्च गरिष्ठश्चतपस्विनाम् । ब्रह्मिष्ठोऽथ ब्रह्मचिद्ब्रह्मन् धर्मिष्ठः सर्वधर्मिणाम्

तुष्टो भव मुनिष्ठेष्ठ मात्र शत्रुश्च साम्प्रतम् ।

त्वयि तुष्टे सदा तुष्टा भवन्ति प्रहृष्टदेवताः ॥ १६२ ॥

इत्युक्त्वा सा शची ब्रह्मन् पुनरुन्ध्वे रुष्टा द द । दृष्ट्वा तद्गौदनं तारा रुष्टोदोद्येमुंमुमुंहुः ॥

पपात चरणे तारा करोद च पुनः पुनः । अपराधं क्षमेत्युक्त्वा गुरुस्तुष्टोऽप्युवाच ताम् ॥
गुरुस्वाच ।

उत्तिष्ठ तारे ! शय्याश्च सर्वं भद्रं भविष्यति । सद्यः प्राप्स्यति भर्तारं महेन्द्रश्च मदाशिषा
इत्युक्त्या स गुरुस्तत्र विरराम अ नारद । पपात चरणे तारां पुनरेव करोद अ ॥ १६६ ॥
'गृहीत्वा च शशीं तारा संस्थाप्य च स्वक्षसि । बोधयामास विविधमध्यात्मकनुत्तमम्
शचीकृतं गुरुस्तोत्रं पूजाकाले च यः पठेत् । गुरुश्चाभीष्टदेवस्य सन्तुष्टः प्रतिजन्मनि ॥
प्रहृदेवद्विजास्तश्च परितुष्टाश्च सन्ततम् । राजानो बान्धवाश्चैव सन्तुष्टाः सर्वतः सदा ॥
गुरुभक्तिं विष्णुभक्तिं चाञ्छितं लभते ध्रुवम् ।

सदा हर्षो भवेत्तस्य न च शोकः कदाचन ॥ १७० ॥

पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी लभते प्रियाम् । सुस्वरूपां गुणवतीं सतीं पुत्रवतीं ध्रुवम्
रोगार्तो मुच्यते रोगाद् यश्चो मुच्येत बन्धनात् ।

अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः ॥ १७२ ॥

कदाचिद् यन्धुविच्छेदो न भवेत्तस्य निश्चितम् । नित्यं तद्वर्द्धते धर्मो विपुलं निर्मलं यशः
लभते परमैश्वर्यं पुत्रपौत्रधनान्वितम् । इह सर्वसुखं भुक्त्वा प्राप्यते श्रीहरेः पदम् ॥

न भवेत्तत्पुनर्जन्म हरिदास्यं लभेद् ध्रुवम् ।

विष्णुभक्तिरसाब्धौ च निमग्नश्च भवेद् ध्रुवम् ॥ १७५ ॥

शश्वत्पचन्ति शान्ताश्च विष्णुभक्तिरसामृतम् । जन्ममृत्युजराव्याधिशोकसन्तापनाशनम्
इति श्रीप्रलयैवर्त्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे महेन्द्रदर्पभङ्ग-

प्रकरणे शचीशोकापनोदने शचीकृतगुरुस्तोत्रकथनं नामैकोनपष्टितमोऽध्यायः ।

षष्ठितमोऽध्यायः

शचीम्प्रति बृहस्पतेः प्रबोधवाक्यम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

शचीस्तोत्रं समाकर्ण्य परितुष्टो बृहस्पतिः । उवाच मधुरं शान्तःकान्तामिन्द्रस्य नारद
बृहस्पतिरुवाच ।

त्यज पत्से भयं सर्वं भयं किं ते मयि स्थिते ।

यथा कचस्य पत्नी मे तथा त्वमसि शोभने ॥ २ ॥

यथा पुत्रस्तथा शिष्यो न भेदः पुत्रशिष्ययोः । तर्पणे पिण्डदाने च पालने परितोषणे ॥
यथाग्निदाता पुत्रश्च तथा शिष्यश्च निश्चितम् । इतीदं कण्वशाखायामुवाच कमलोद्भवः
पिता माता गुरुर्भार्याशिशुश्चानाथवान्धवाः । एते पुंसां नित्योप्याह्वयाह कमलोद्भवः
यश्चैतांश्च न पुष्पाति भस्मान्तं तस्य सूतकम् ।

दैवे पित्र्येन कर्माहं सोऽर्पात्प्याह महेश्वरः ॥ ६ ॥

कुरते नरबुद्धिश्च मातरं पितरं गुरुम् । अयशस्तस्य सर्वत्र विघ्न एव पदे पदे ॥ ७ ॥

सम्पन्नतो यः करोति स्वगुरोश्च पराभवम् ।

अचिरात्सर्वनाशश्च भवेत्तस्य सुनिश्चितम् ॥ ८ ॥

मां च दृष्ट्वा सभामध्ये नोत्तस्थौ पाकशासनः ।

तत्फलं भुज्यते साक्षात्सद्यः पश्य च साम्प्रतम् ॥ ९ ॥

अहं करोमि मोक्षश्च तव रक्षा सुनिश्चितम् । शासितुं रक्षितुं शक्तः स एव गुरुकथ्यते ॥
न नश्यति सतीत्यश्च हृच्छुद्धायाश्च योषितः । यन्मानसे विकल्पश्च तस्य धर्मश्च नश्यति
भविष्यति प्रभावस्ते दुर्गायाश्च समः सति । लक्ष्मीसमा प्रतिष्ठा च यशस्तद्यशसासमम्
सौभाग्यं राधिकातुल्यं तत्समं प्रेम मर्त्तरी ।
तत्तुल्यं गौरवं मान्यं ग्रीतिः प्राधान्यमीश्वरे ॥ १३ ॥

रोहिण्याश्चसमापेक्षा पूज्याश्चभारतीसमा । शुद्धा निरुपमाशश्वत् सावित्रीसदृशीसदा
एतस्मिन्नन्तरे तत्र आगतो नहुपाचरः । उवाच घचनं भीतो धाक्पतेर्गोचरे ततः ॥

दूत उवाच ।

उत्तिष्ठ देवि शीघ्रं त्वं गच्छस्व नहुपं प्रति । क्रीडां कर्तुञ्च रहसि रम्ये नन्दनकानने ॥
दूतस्य घचनं श्रुत्वा तमुवाच बृहस्पतिः । कम्पिताचयवः कोपात् रक्तपङ्कजलोचनः ॥

गुरुवाच ।

नहुपं यद् गत्वा त्वं शर्वा चेद्भोक्तुमिच्छसि । अपूर्वं यानमाख्या निशायामागमिष्यसि
सप्तर्षीणाञ्च स्कन्धे च दत्त्वा स्वशिविकां शुभाम् ।

तामाख्या सुवेशश्च गमनं कर्तुमर्हसि ॥ १६ ॥

धाक्पतेर्घचनं श्रुत्वा गत्योवाच नृपं तदा । दूतस्य घचनं श्रुत्वा प्रहस्योवाच किङ्कर्म
गच्छ गच्छ त्वरन् गच्छ सप्तर्षिन् शीघ्रमानय ।

उपायञ्च करिष्यामि तैः सार्द्धं साम्प्रतं चर ॥ २१ ॥

नृपस्य घचनं श्रुत्वा गत्वा दूतस्तदन्तिकम् । उवाच सर्वास्तत्रैव यथोक्तं नहुपेण च ॥
दूतस्य घचनं श्रुत्वा ययुः सप्तर्षयो मुदा ।

राजा दृष्ट्वा च तान् सर्वान् गनामोवाच सादरम् ॥ २३ ॥

नहुप उवाच ।

यूयञ्च ब्रह्मणः पुत्रा उचलन्तो ब्रह्मतेजसा । ब्रह्मणः सदृशाः सर्वे सततं भक्तवत्सलाः ॥
नारायणपराः शश्वच्छुद्धसत्यस्वरूपिणः । मोहमात्सर्यहीनाश्च दर्पादृष्टारपजिताः ॥
नारायणसमाः सर्वे तेजसा यशसा सदा । गुणेन रूपया प्रेम्णा वरदानेन निश्चितम् ॥
इत्युक्त्वा प्रणतो राजा नुष्टाय च करोद च । दृष्ट्वा ते कातरं भूपमूचुः परहितैषिणः ॥

ऋषय ऊचुः ।

परं वृणीष्व हे पत्स यत्ते मनसि पाञ्चितम् । सर्वे दानुं पर्यंशका नासाभ्यं नश्चकिञ्चन
इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा चिरायुर्वा तनः परम् । सप्तर्षीपेश्वरत्वञ्चाप्यतोय सुचिरं सुखम्
अद्यापि सर्वसिद्धित्वं सर्वैश्वर्यं सुदुर्लभम् । मुक्तिं वा हस्तिकिं पातपसा वा सुदुर्लभा

किमीप्सितं हि दे वत्स ब्रूहि नः साम्प्रतं मुदा । सर्वं तुभ्यं प्रदायैव यास्यामस्तपसे मुदा ।

युगलक्षसमं यच्च क्षणं कृष्णार्चनं विना ।

तद्दिनं बुद्धिनं यत्तद् ध्यानसेवनवर्जितम् ॥ ३२ ॥

विना तत्सेवनं यो हि विषयान्यञ्च वाञ्छति ।

विषमसि प्रणाशाय विहायामृतमीप्सितम् ॥ ३३ ॥

ब्रह्माशिवश्च धर्मश्च विष्णुश्चापिमहान्विराट् । गणेशश्चदिनेशश्च शेषश्चसनकादयः
एते यश्चरणाभ्योजं ध्यायन्तोऽहर्निशं मुदा । जन्ममृत्युजराव्याधिहरं तन्निरता वयम् ॥

तेषां च पवनं श्रुत्वा तानुवाच नृपेश्वरः ।

स लज्जितो नम्रपद्मो मायामोहितमानसः ॥ ३६ ॥

ननुप उवाच ।

सर्वं दातुं समर्थाश्च यूयञ्च भक्तवत्सलाः । अधुना देहि मे तूष्णं शचीदानमभीप्सितम्
सप्तर्षिवाहनं फान्तं शचीच्छति महासत्तां । एतदेव मम परं निष्पन्नं कुरुताविरम् ॥ ३८ ॥

ननुपस्य घञः श्रुत्वा मुनयश्च परस्परम् ।

भत्युद्यैर्जहसुः सर्वे कौतुकेन च नारद ॥ ३९ ॥

राजानं मोहितं मत्वा वेष्टितं विष्णुमायया । चक्रुः प्रतिज्ञां घोदुञ्च रूपया वीनवत्सलाः
चक्रुः स्कन्धे सञ्छिदिकां मुक्तामाणिक्यभूषिताम् ।

राजा ययौ सुवेशश्च रत्नभूषणभूषितः ॥ ४१ ॥

दृष्ट्वाचातिचिलम्यञ्च भर्त्सयामास तान्मूषः । क्रुधाशशाप दुर्घासाश्चाप्रगामी च चर्मनि
महानजगरो भूत्वा पत ये मूढमानस । दर्शनाद्धर्मपुत्रस्य तव मोक्षो भविष्यति ॥ ४३ ॥
रत्नयानेन यैकुण्ठं गत्वा यैकुण्ठसेवनम् । करिष्यसि महाराज न कर्म निष्फलं भवेत्
इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे ग्रहस्य मुनिसत्तमाः ।

राजा पपात तच्छापात् सर्वां भूत्वा महामुने ॥ ४५ ॥

शची जगाम तच्छ्रुत्वा मुक्तं नत्याऽमरावतीम् । ययौ गृहस्थातिः शीर्षपत्रैः परमन्तुपु
गत्वा सरोधराभ्यासमाप्नुहाय सुरेश्वरम् । अतिप्रसन्नपदनः रूपया च रुपानिधिः ॥

वृहस्पतिस्त्वाच ।

अयि घत्स त्वमागच्छ भयं किं ते मयि स्थिते ।

त्यज भीतिमिहागच्छ गुरुस्तेऽहं वृहस्पतिः ॥ ४८ ॥

स्थगुरोश्च स्वरं श्रुत्वा महेन्द्रो हृष्टमानसः । रूपं विहाय सूक्ष्मञ्च स्वरूपेण समापयो
पपात दण्डवन्मूर्ध्ना भक्त्या चरणयोर्गुरोः । तं रुदन्तं महाभीतं मुदीरसि चकार सः ॥

कारयित्वा सोमयागं प्रायश्चित्तार्थमेव च ।

रत्नसिंहासने रम्ये धासयामास तं गुरुम् ॥ ५१ ॥

प्रद्वौ परमैश्वर्यं पूर्वस्माच्च चतुर्गुणम् । आगत्य सर्वदेवाश्च चक्रुः सेवां मुदान्विताः
शशी संप्राप भर्तारं महेन्द्रं त्रिदशेश्वरम् । मन्दिरे पुष्पतरुणे च मुमुदे सा मुदान्विता ॥

इत्येवं कथितं घत्स महेन्द्रदर्पभञ्जनम् ।

शचीसतीत्वरक्षा च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५४ ॥

नारद उवाच ।

सोमयागविधानञ्च ब्रूहि मां मुनिसत्तम । कथं तं कारयामास गुरुश्च किं फल परम्

नारायण उवाच ।

ब्रह्महत्याप्रशमनं सोमयागफलं मुने । धर्मं सोमलतापानं यजमानः करोति च ॥ ५६ ॥

वर्षमेकं फलं भुंक्ते वर्षमेकं जलं मुदा । त्रैवार्षिकं व्रतमिदं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ५७ ॥

यत्र त्रैवार्षिकं धान्यं निहितं भूतवृद्धये । अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥

महाराजश्च देवो वा यागं कर्तुमलं मुने । न सर्वसाध्यो यशोऽयं बह्वजो बहुदक्षिणः

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

शक्रदर्पभङ्गप्रकरणे शक्रमोक्षकथनं नाम पष्ठितमोऽध्यायः ।

एकपाष्टतमोऽध्यायः ।

इन्द्रदर्पभङ्गवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

इति ते कथितं किञ्चिदिन्द्रस्य दर्पभञ्जनम् । अपरं श्रूयतां ब्रह्मन् सावधानं निगूढकम्
समुद्रमथनं कृत्वा पीत्वामृतरसंपुरा । निर्जित्य दैत्यसङ्घाश्च बहुदर्पो बभूव ह ॥ २ ॥
तदा कृष्णो बलिद्वारा शक्रदर्पं बभञ्ज ह । अष्टाश्रियो बभूवुस्ते देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ ३ ॥
तदा बृहस्पतेः स्तोत्राददितेश्च व्रतेन ते । जातश्च स्वांशकलयाप्यदित्यां धामनो विभुः

याञ्चां कृत्वा बलिं राज्यं कृपया च कृपानिधिः ।

तस्मै ददौ महेन्द्राय देवेभ्यश्चापि सम्पदम् ॥ ५ ॥

बभूव शक्रदर्पश्च पुनः कल्पान्तरे पुरा । विभुर्दुर्वाससाद्वारा जहार तच्छ्रियं मुने ॥ ६ ॥
पुनर्ददौ च कृपया कृपालुर्मकवत्सलः । पुनः श्रीदुर्मदः सोऽपि जहार गौतमप्रियाम् ॥
तदा गौतमशापेन भगाङ्गश्च बभूव सः । सम्प्राप यातनामिन्द्रः स्वाङ्गवेदनया पुरा ॥
उच्चैस्त जहदुर्दृष्ट्वा ऋषयो मनवस्तथा । देवाश्च लज्जिताः सर्वे मृततुल्यो बृहस्पतिः
तदा सहस्रवर्षञ्च तपस्तप्त्वा रवेः पुरा । रवेर्वरेण शक्रः स सहस्राक्षो बभूव ॥ १० ॥
कलङ्कुरूपमिन्द्रस्य तद्यन्त्रिर्निकरं परम् । यथा चन्द्रे कलङ्कश्च तारकाहरणादभूत् ॥ ११ ॥

नारद उवाच ।

ब्रह्मन् केन प्रकारेण जहार गौतमप्रियाम् । महासतीमहत्याञ्च पूज्या भुवनपावनीम् ॥
शुद्धाशया महामागां निर्मला कमलाकलाम् । एतद्वेदितुमिच्छामि घटं घेदविदा घर ॥

श्रीनारायण उवाच ।

पुष्करे तीर्थयात्रायां सूर्यपर्वणि नारद । तत्रागतमहल्याञ्च ददर्श पाकशासनः ॥ १४ ॥

सस्मितां सुदर्ता शान्ता पीनश्रोणिपयोधराम् ।

मूर्च्छामवाप चेन्द्रश्च दृष्टिमात्रेण तत्क्षणम् ॥ १५ ॥

अथापरदिने ताञ्च दृष्ट्वा मन्दाकिनीतटे ।

एकाकिनी सस्मिताञ्च ह्यन्ती नद्यां सलज्जिताम् ॥ १६ ॥

एवा श्रोणी स्तनयुगमतोवविपुलं हरिः । मूर्च्छामवाप कामार्तो जहार चेतनां पुनः ॥

क्षणेन चेतनां प्राप्य गत्वा कामी तदस्तिकम् ।

उवाच शृङ्गया वाचा विनयेन पतिव्रताम् ॥ १८ ॥

महेन्द्र उवाच ।

अहो गुणमहो रूपमहो किं चा नयं वयः । अहो किंवा मुखश्रीस्ते शरच्चन्द्रचिनिन्दिता
अहो कटाक्षं कुटिलं पुंसां चित्तविकर्षणम् । किमहो लोचनं पद्मप्रभामोचनमीप्सितम्
गमनं रमणीयञ्च गजसञ्चनभञ्जनम् । अहो वाक्पुङ्खु मधुरं पीयूषादपि दुर्लभम् ॥ २१ ॥

किमहो विपुलश्रोणी कामाधारा मनोहरा । कामदा कामुकायैव मुनिमानसमोहिनी ॥
अतोऽथ कठिना पीता रम्भास्तम्भचिङ्गिता । अहो नितम्बयुगलं वर्तुलं चन्द्रविम्बवत्
श्रीयुक्तं श्रीफलयुगतुल्यं ते स्तनयुग्मकम् । अत्युन्नतं सुकठिनं त्रैलोक्यचित्तमोहनम् ॥

अहो किंवा तपस्तेपे गौतमश्च तपोधनः । संप्राप यत्फलेनैव सुदर्ती सुन्दरी वराम् ॥

निषेध्य प्रकृतिं दुर्गां विष्णुमाया सनातनीम् ।

लक्ष्मीञ्च लक्ष्मीसदृशी तपसा प्राप पद्मिनीम् ॥ २६ ॥

सुकुमला सुचन्दनां ललना नल्लिखननाम् । शुद्धाञ्च सुदर्ती श्यामां न्यग्रोधदलमध्यमाम्
त्यत्पालनञ्च जानामि कामशास्त्रविचक्षणः ।

कामी वा कामुकश्चन्द्रः कित्वां जानाति गौतमः ॥ २८ ॥

मां प्रशंसन्ति नित्यं ते कामशास्त्रविचक्षणाः ।

उर्वश्याद्याध्याप्सरसो मां प्रशंसन्ति सन्ततम् ॥ २९ ॥

दासीं कृत्वाचदास्यामि शचीतुभ्यंघरानने । त्रैलोक्यलक्ष्मीं विपुलांगृहाण त्यजगौतमम्
अनभिज्ञं कामशास्त्रे दुर्बलञ्च तपस्विनम् । अव्यवहृत्यं निष्कामं नारायणपरायणम् ।

अचिदधो विधाता च योजयामास योऽक्षमम् ।

ईदृशी कामुकी रम्यां ददाति च तपस्विने ॥ ३२ ॥

इत्युक्त्वा कामुकः शक्रः पपात चरणेमुदा । तमुवाच महासाध्वी वेदोक्तञ्च यथोचितम्
अहल्योवाच ।

अभाग्याद्ब्रह्मणश्चापि प्ररीचिञ्चतपस्विनः । अभाग्यात्कश्यपस्यापि त्वंपुत्रःपापमानसः
किं तज्जपेत तपसा मौनेन च धतेन च । सुरार्चनेन तीर्थेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥
स्त्रीरूपं निर्मितं सृष्टीमोहाय कामिनां मनः । अन्यथा न भवेत् सृष्टिःक्षप्रा तेनपुराज्ञया
सर्वमायाकरण्डञ्च धर्ममार्गार्गलं नृणाम् । व्यवधानञ्च तपसां दोषाणामाश्रमं परम्
कर्मबन्धनियन्धानां निगडं कठिनं स्मृतम् । प्रदीपरूपं कीटानां मीनानां बडिशं यथा ॥
धिपकुम्भं दुग्धमुखमारम्भे मधुरोपमम् । परिणामे दुःखबीजं सोपानं नरकस्य च ॥
ऋषयः सनकाद्याश्च मोद्वाहञ्चकुरीप्सितम् । परस्त्रीषु मनोयेषां तेषां सर्वञ्च निष्कलम्
परस्त्रीसेवनं शक्र इहैवात्ययशस्करम् । परञ्च नरकं घोरं ददाति कामुकाय च ॥ ४१ ॥

इत्युक्त्वा च महासाध्वी विहाय तञ्च कामुकम् ।

प्रययौ स्थगृहं तूर्णं गृहिणी गौतमस्य च ॥ ४२ ॥

तत्सर्थं कथयामास गौतमाय तपस्थिने । तस्यै प्रहस्य स मुनिर्महेन्द्रञ्च पिनिन्य च ॥
एकदा गौतमः शीघ्रं जगाम शङ्करालयम् । शक्रो गौतमरूपेण तां सम्भोगं चकार सः
सर्थं ज्ञात्वा च सर्वज्ञो स्ययं मन्दिरमाययौ । निर्गच्छन्तं महेन्द्रञ्च ददर्श मुनिपुङ्गवः ॥
नग्नमहल्यां रहसि पीनश्रीणिपयोधराम् । मुनिःशशाप शक्रञ्च भगाङ्गञ्च भवेति च
कोपाच्छशाप पत्नीञ्च द्यन्तीं भयविह्वलाम् । त्वञ्च पापाणरूपा च महारण्ये भवेति च
ययौ च स्थगृहं शक्रो लज्जैकतानमानसः । उवाच मधुरं भीता स्यामिनं शोककर्षितम्

अहल्योवाच ।

माञ्च दासीञ्च निर्दोषां कथं त्यजसि धार्मिक । त्वञ्चयेदविदां श्रेष्ठो पिचारं कुरुधर्मतः
गौतम उवाच ।

त्यां जानामिमनःशुद्धांसुमताञ्चपत्तिप्रताम् । त्यक्ष्यामि च तथापितांपरपीप्यञ्चविभ्रताम्
परमोग्या च या कान्ता साऽशुद्धा सर्वकर्मसु ।

तां यो गच्छेन्महामूढो नरकं तस्य कल्पकम् ॥ ४१ ॥

अन्नं विष्टा जलं मूत्रं परमोग्याश्च निश्चितम् उपस्पृशेन्न तस्याश्च हन्तिपुण्यं पुराकृतम्

अनिच्छया च शृङ्गारे स्त्री जारेण न दुष्यति ।

दुष्टा स्त्री निश्चितं साध्वी स्वेच्छाशृङ्गार कर्मणि ॥ ५३ ॥

त्वं शक्रं स्वामिनं मत्वा सुखं भुक्त्वा रतिं गृहे । पश्चाद्भयभूय ते ज्ञानं मां दृष्ट्वा च निशामय

गच्छ गच्छ महारण्यं भव पापाणरूपिणी । रामपादाङ्गुलिस्पर्शात् सद्यः पूता भविष्यसि

मां संप्राप्स्यसि तत् पुण्यात् पुनरेवागमिष्यसि ।

गच्छ कान्ते महारण्यमित्युक्त्वा तपसे ययौ ॥ ५६ ॥

इत्येवं कथितं सर्वं महेन्द्रदर्पभञ्जनम् । पुनः संप्राप लक्ष्मीञ्च विभोश्च कृपया मुने ॥ ५७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीरुष्णजन्मखण्डे

इन्द्रवर्षभङ्गवर्णनं नामैकपष्टितमोऽध्यायः ।

:

द्विपष्टितमोऽध्यायः

संक्षेपेण श्रीरामचरित्रम् अहल्यामोक्षणञ्च ।

नारद उवाच ।

ब्रह्मन् केन प्रकारेण रामो दाशरथिः स्वयम् । चकार मोक्षणं कुत्र युगे गीतमयोपितः

रामावतारं सुखदं समासेन मनोहरम् । कथयस्व महाभाग श्रोतुं कौतूहलं मम ॥

श्रीनारायण उवाच ।

ब्रह्मणा प्रार्थितो विष्णुर्जातो दशरथात् स्वयम् । कौशल्यायाञ्च भगवान् त्रेतायाञ्च मुदान्वितः

कैकेय्यां भरतश्चेव रामतुल्यो गुणेन च । लक्ष्मणश्चापि शत्रुघ्नः सुमित्रायां गुणार्णवः

विश्वामित्रप्रेषितश्च धीरामश्च सलक्ष्मणः । प्रययौ मिथिलां रम्यां सीताग्रहणहेतवे ॥ ५

दृष्ट्वा पापाणरूपाञ्च रामो धर्मेनि कामिनीम् ।

विश्वामित्रञ्च पप्रच्छ कारणं जगदीश्वरः ॥ ६ ॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महातपाः । उवाच तत्र धर्मिष्ठो रक्षस्यं सर्वमेव च ॥
कारणं तन्मुखाच्छ्रुत्वा रामो भुवनपावनः । पस्पर्श पादाङ्गुलिना सा बभूव च पद्मिनी
सा राममाशिष्यं कृत्वा प्रययौ भर्तृमन्दिरम् ।

शुभाशिष्यं ददौ तस्मै भाव्यां सम्प्राप्य गौतमः ॥ ६ ॥

तमश्च मिथिलां गत्वा धनुर्भङ्गं शिष्यस्य च । चकार पाणिग्रहणं सीतायाश्चैव नारद ॥
कृत्वा विवाहं राजेन्द्रो भृगुदपं निहत्य च । अयोध्यां प्रययौ रम्यां क्रीडाकौतुकमङ्गलैः
राजा पुत्रं नृपं कर्तुमियेष स तु सादरम् । सततीर्थोदकं तूर्णमानीय मुनिपुङ्गवान् ॥ १२ ॥
कृताधिवासं श्रीरामं सर्वमद्गलसंयुतम् । दृष्ट्वा भरतमाता च कैकेयी शोकविह्वला ॥ १३ ॥
वरयामास राजानं पूर्वमङ्गीकृतं वरम् । रामस्य वनवासश्च राजत्वं भरतस्य च ॥ १४ ॥
परं दातुं महाराजो नेयेय प्रेममोहितः । धर्मसत्यभवेनैवोवाच रामो नृपं सुधीः ॥ १५ ॥

श्रीराम उवाच ।

तद्भागशतदानेन यत् पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकञ्च लभते वापीदानेन निश्चितम् ॥
दशवापीप्रदानेन यत् पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकञ्च लभते पुण्यं कन्याप्रदानतः ॥ १७ ॥
दशकन्याप्रदानेन यत् पुण्यं लभते नरः । ततोऽधिकञ्च लभते यज्ञैकेन नराधिप ॥ १८ ॥
दशयज्ञेन यत् पुण्यं लभते पुण्यकृद्जनः । ततोऽधिकञ्च लभते पुत्रास्यदर्शनेन च ॥ १९ ॥
दर्शने शतपुत्राणां यत् पुण्यं लभतेनरः । तत् पुण्यं लभते नूनं पुण्यवान् सत्यपालनात् ॥

न हि सत्यात् परो धर्मा नानृतात् पातकं परम् ।

न हि गङ्गासमं तीर्थं न देवः केशवात् परः ॥ २१ ॥

नास्ति धर्मात् परो वन्धुर्नास्ति धर्मात् परं धनम् ।

धर्मात् प्रियः परः को वा स्वधर्मं रक्ष यत्नतः ॥ २२ ॥

स्वधर्मे रक्षिते तात शश्वत् सर्वत्र मङ्गलम् । यशस्यं सुप्रतिष्ठा च प्रतापः पूजनं परम् ॥
चतुर्दशाब्दं धर्मेण त्यक्त्वा गृहसुखं भ्रमन् । वनवासं करिष्यामि सत्यस्य पालनाय ते

कृत्वा सत्यञ्च शपथमिच्छायानिच्छयाथवा ।

न कुर्यात्पालनं यो हि भस्मान्तं तस्य सूतकम् ॥ २५ ॥

कुम्भीपाके स पचति यावच्चन्द्रदिवाकरो । ततो मूको भवेत् कुप्री मानवः सप्तजन्मसु
इत्येवमुक्त्वा श्रीरामो विधाय वल्कलं जटाम् । प्रययौ च महारण्ये सीतया लक्ष्मणेन च
पुत्रशोकान्महाराजस्तत्याज स्वतनुं मुने । पालनाय पितुः सत्यं रामो यन्नाम कानने ॥

कालान्तरे महारण्ये भगिनी रावणस्य च ।

भ्रमन्ती कानने घोरे भन्ना साह्रं सुकौतुकात् ॥ २६ ॥

ददर्श रामं कुलटा कामार्ता राक्षसी तदा । पुलकाश्रितसर्वाङ्गी मूर्च्छामाप स्मरेण च
श्रीरामनिकटं गत्वा सस्मितोवाच कामुकी । शश्वद्यौवनसंयुक्तातिप्रौढा कामदुर्मदा ॥
शूर्पणखोवाच ।

हे राम हे घनश्याम रूपधाम गुणान्वित । भायानुरक्तां धनितां मां गृहाण सुनिर्जने ॥

ध्रुत्वा शूर्पणखायाफनं धमे संस्मृत्य धार्मिकः ।

उवाच मधुरं पाप्यं शापभीतश्च नारद ॥ ३३ ॥

श्रीराम उवाच ।

अस्य मतः सभार्योऽहमभार्यं गच्छ मेऽनुजम् । भजेत् प्रियजनं दुःखमितरञ्च सुपालयम्

रामस्य पचनं ध्रुत्वा प्रययौ लक्ष्मणं मुदा ।

ददर्श लक्ष्मणं शान्तं कान्तश्च लक्षणान्वितम् ॥ ३५ ॥

मां भजस्य महाभागेत्युवाच च पुनः पुनः । लक्ष्मणस्तद्वचः ध्रुत्वा तामुवाच कुनूहलात्
लक्ष्मण उवाच ।

विधाय रामं सर्वेशं हे मूढे दासमिच्छसि । सीतादासी च मत्पत्नी सीतादासीऽहमेव च
भव सीतासपत्नीत्वं गच्छ रामं मदीश्वरम् । तवपुत्रो भविष्यामि सीतायाश्च यथासति
लक्ष्मणस्य वचः ध्रुत्वा कामेन हृतमानसा । उवाच लक्ष्मणं मूढा शुष्कफण्डोष्ठतालुका
शूर्पणखोवाच ।

यदि त्यजसि मां मूढकामात् स्वयमुपस्थिताम् । युवयोश्च विपत्तिश्च भविष्यति नमंशयः
प्राप्ता च मोहिनी त्यक्त्वा विश्वेऽपूज्यो यभूष सः ।

रम्भाशापेन वक्षश्च छागमुण्डो यभूष सः ॥ ४१ ॥

स्वर्वेद्यश्चोर्वशीशापाद् यज्ञभागविधर्जितः । रूपदीनः कुयेरश्च मेनाशापेन लक्ष्मण ॥४२॥

कामो घृताचीशापेन बभूव ब्रह्मसात् शिवात् ।

बलिर्मदालसाशापाद् भ्रष्टराज्यो बभूव ह ॥ ४३ ॥

शापेन मिथकेयाश्च हृतभार्यो बृहस्पतिः । मम शापात्तथा रामो हृतभार्यो भविष्यति
कामातुरां यौवनस्थां भार्यां स्वयमुपस्थिताम् । न त्यजेद्वर्मभीतश्च श्रुतं साध्यं दिनेपुरा

इह त्यक्त्वा विपद्ब्रह्मस्तः परमं नरकं व्रजेत् ॥ ४५ ॥

श्रुत्वा शूर्पणखावाक्यमर्द्धचन्द्रेण लक्ष्मणः । चिच्छेद नासिकां तस्याः क्षुरधारेण लीलया
तस्या भ्राता च युयुधे बलवान् खट्वूपणः ।

ससैन्यो लक्ष्मणास्त्रेण स जगाम यमालयम् ॥ ४७ ॥

चतुर्दशसहस्रञ्च राक्षसान् खट्वूपणम् । मृतान् दृष्ट्वा शूर्पणखा भर्त्सयामास रावणम्
सर्वं निवेदनं कृत्वा जगाम पुष्करं तदा । ब्रह्मणश्च धरं प्राप कृत्वा च पुष्करं तपः ॥
उवाच तादृशीं दृष्ट्वा निराहारां तपस्थिनीम् । सर्वेष्टस्तन्मनो मत्वा कृपासिन्धुश्चतारद
ब्रह्मोवाच ।

अप्राप्य रामं दुष्प्रापं करोषि पुष्करं तपः । जितेन्द्रियाणां प्रधरं लक्ष्मणं धर्मलक्षणम्
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरं प्रकृतेः परम् । जन्मान्तरे च भर्तारं प्राप्स्यसि त्वं धरानने
इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा च जगाम स्थालयं मुदा ।

देहं तत्याज सा बह्वी सा च कुब्जा बभूव ह ॥ ५३ ॥

अथ शूर्पणखावाक्यात्कोपात्कम्पितविग्रहः । जहार मायया सीतां मायावी राक्षसेश्वरः
सीतां न दृष्ट्वा रामश्चामूर्च्छां प्रापचिरं मुने । बेतनां कारयामास भ्राता चाध्यात्मिकेन च
ततो बभ्राम गहनं शैलञ्च कन्दरं नदम् । अहर्निशं स शोकातो मुनीनामाश्रमं मुने ॥५६॥
चिरमन्वेपणं कृत्वा न दृष्ट्वा जानकीं विभुः । चकार मित्रतां रामः सुग्रीवेण स्वयंप्रभुः
निहत्य बालिनं बाणैर्ददौ राज्यञ्च लीलया । सुग्रीवाय च मित्राय स्वीकारपालनाय चै
दूतान् प्रस्थापयामास सर्वत्र वानरेश्वरः । तस्यौ सुग्रीवमवने शोरामश्च सलक्ष्मणः
हनुमते धरं दत्त्वा रम्यं रत्नाङ्गुलीयकम् । सीतायै शुभसन्देशं प्राणधारणकारणम् ॥६०॥

द्वपष्टितमोऽध्यायः] * हनुमन्तं दृष्ट्वा सीतायाः कथोपकथनम् *

८६१

तञ्चप्रस्थापयामास दक्षिणां दिशमुत्तमाम् । सुग्रीत्यालिङ्गनं दत्त्वापादरेणून्सुदुर्लभान् ॥
हनूमान् प्रययौ लङ्कां सीतान्वेषणहेतवे । रामादधीतसन्देशो ययौ रुद्रकलोद्भवः ॥६२॥
अशोककानने सीतां ददर्श शोककर्षिताम् । निराहारामतिरुशां कुह्नां चन्द्रकलामिव ॥
सततं रामरामेति जपन्तीं भक्तिपूर्वकम् । विभ्रतीञ्च जटामारं तप्तकाञ्चनसज्जिभाम् ॥६३॥
ध्यायमानां पदाब्जञ्च श्रीरामस्य दिवानिशम् । शुद्धशय्यां सुशीलाञ्च सुवताञ्च पतिव्रताम्
महालक्ष्मीलक्ष्मयुक्तां प्रज्वलन्तीं स्यतेजसा ।

पुण्यदां सर्वतीर्थानां द्रष्टुं शुचनपावनीम् ॥६६॥

प्रणम्य मातरं दृष्ट्वा रुदन्तीं वायुनन्दनः । रत्नाङ्गुलीयं रामस्य ददौ तस्यै मुदान्वितः
रुरोद धर्मो तां द्रष्टुं धृत्वा तच्चरणाम्बुजम् । उवाच रामसन्देशं सीताजीवितरक्षणम् ॥
हनूमानुवाच ।

पारसमुद्रे श्रीरामः सन्नद्धश्च सलक्ष्मणः । बभूव राममन्त्रश्च सुग्रीवो बलवान् कपिः ॥
रामश्च बालिनं हत्वा राज्यं निष्कण्टकं ददौ ।

सुग्रीवाय च मित्राय तदुभार्यां बालिना हताम् ॥७०॥

सुग्रीवश्च तद्योद्धारं स्वीचकार च धर्मतः । वानराश्च ययुः सर्वे तवान्वेषणकारणात् ॥
प्राप्य मङ्गलवार्ताञ्च मत्तो राजीवलोचनः । गर्भारं सागरं यद्द्रष्टुं सोऽखिरेणागमिष्यति
निहत्य राघवं पापं सपुत्रञ्च सवान्धधम् । करिष्यत्यखिरेणैव हे मातस्तवमोक्षणम् ॥

अथ रत्नमयी लङ्कां निःशङ्कस्त्वत्प्रसादतः ।

भस्मीभूतां करिष्यामि मातः पश्य च सस्मितम् ॥ ७४ ॥

मर्कटीदिग्भनुत्पयाञ्च लङ्कां पश्यामि सुवते । मूत्रतुल्यं समुद्रञ्च शरावमिव भूतलम् ॥
पिपीलिषासङ्गमिव ससैन्यं राघवं तथा । संहर्तुञ्च समर्थोऽहं मुहूर्त्तार्धेन लीलया ॥
रामप्रतिक्षारक्षार्थं न हनिष्यामि साम्प्रतम् । स्वस्था भवमहाभागे त्यज्य भार्तिमदीश्वरि
वानरस्य वचः श्रुत्वा रुरोदोद्यौर्मुहुर्मुहुः । उवाच वचनं भीता सीता रामपतिव्रता ॥ ७८ ॥

सीतोपाच ।

अये जायति मे रामो मच्छोकार्णवदारुणात् । अपिमैकुयाली नाथः कौशल्यानन्दनः प्रभुः

कीदृशाश्च कृशाङ्गश्च जानकाजीवनोऽधुना । किमाहारश्चकिमुक्तेमम प्राणाधिकःप्रियः ॥
अपिपारेसमुद्रस्यसत्यं सीतापतिःस्वयम् । अपिसत्यं ससन्नद्वो नशोकेन हतः प्रभुः ॥

अपि स्मरति मां पापां स्वामिनो दुःप्ररूपिणीम् ।

मर्धे कलि दु खं वा संप्राप स मदीश्वरः ॥ ८२ ॥

हारो नारोपितः कण्ठे पुरा ज्ययद्वितो रत्नौ । अधुनैवावयोर्मध्ये समुद्रः शतयोजनः ॥
अपिद्वक्ष्यामि तंरामं करुणासागरं प्रभुम् । कान्तं शान्तं नितान्तञ्च धर्मिष्ठं धर्मकर्मणि
अपिसेवां करिष्यामि पादपद्मे पुनःप्रभोः । पतिसेवाधिहीना या मूढा सा जीवनं वृथा ॥
अपिमे धर्मपुत्रश्च सत्यं जीयति लक्ष्मणः । मञ्जोकसागरे मग्नोभानर्दपो मयाविना ॥
वीराणां प्रवरो धर्मो देवकल्पश्च देवदः । अपि सत्यं स सन्नद्वो मत्प्रभोरनुजःसदा ॥

अपि द्रक्ष्यामि सत्यं तं लक्ष्मणं धर्मलक्ष्मणम् ।

प्राणानामधिकं प्रेम्णा धन्यं पुण्यस्वरूपिणीम् ॥ ८८ ॥

इत्येवं वचनं श्रुत्वा दत्त्वा प्रत्युत्तरं शुभम् । मस्मीभूताञ्च लङ्काञ्च चकारलीलया मुने ॥
पुनःप्रबोधं तस्यै च दत्त्वावायुसुतः कपिः । प्रययौलीलया बेगाद्यत्र राजीवलोचनः ॥
सर्वतत्कथयामासवृत्तान्तं मानुरेवच । सीतामद्गलवृत्तान्तं श्रुत्वा रामो रुदोद च ॥
रुरोदोच्चैर्लक्ष्मणश्च सुग्रीवश्चापि नारद । धानरा रुद्रः सर्वे महाबलपराक्रमाः ॥ ९२ ॥
निबध्य सेतुलङ्काञ्च प्रययौ रघुनन्दनः । सन्मन्यः सानुजः शीघ्रं सन्नद्धश्चापि नारद ॥
निहत्यरावणं रामो रणं कृत्वा सयान्धवम् । चकार मोक्षणं ब्रह्मन् सीतायाश्च शुभेक्षणे
कृत्वापुष्पकयानेन सीतां सत्यपरायणाम् । अयोध्यां प्रययौ शीघ्रं कीडाकौतुकमङ्गलैः
कीडांचकार भगवान् सीतां कृत्वा चयक्षसि । विजहौचिरहज्वालांसीतारामश्चतत्क्षणम्
सप्तद्वीपेश्वरो रामो बभूव पृथिवीतले । बभूव निखिला पृथ्वी आधिपत्याधिबिजर्जिता
बभूवत् रामपुत्रो धार्मिकी च कुशीलयो । तयोः पुत्रैश्च पौत्रैश्च सूर्य्यवंशोद्भवा नृपाः ॥
इति ते कथितं वत्स श्रीरामचरितं शुभम् । सुखदं मोक्षदं सारं पारपोतं भवार्णवे ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीरुष्णजन्मखण्डे

श्रीरामचरितं नाम द्विपष्ठितमोऽध्यायः ।

त्रिपष्टितमोऽध्यायः

कंसयज्ञकथनम् ।

नारद उवाच ।

अथकंसो पिचिन्त्यैयं दृष्ट्वा दुःस्यप्रमेयच । समुद्विग्नो महाभीतो निराहारो निरसुकः
पुत्रं मित्रं यन्धुगणं यान्धपञ्च पुरोहितम् । समानाय सभामध्यं तानुपाच सुदुःखितः ॥

कंस उवाच

मया दृष्टो निरीधे यो दुःस्यप्रोदिभयप्रदः । निबोधत युधा.सर्पे यान्धवाश्च पुरोहिताः ॥
विभ्रतो रक्तपुष्पाणां मालां सारकं चन्दनम् । रक्ताम्बरं पङ्कतीक्ष्णं चरञ्च भयदुरम्
प्रहृष्टपाद्मादृष्टासञ्च लोलजिह्वा भयदुरी । भर्तापुत्रा दृष्णाङ्गी नगरे ममनूत्यति ॥ ५ ॥

मुक्तं श्रीं छिन्ननासा दृष्णा दृष्णामपरापि या ।

विधवा सा महागुह्रा मामालिङ्गितुमिच्छति ॥ ६ ॥

मलिनं चैलगण्डञ्च विभ्रतो रुक्षमूर्खजान् । दधतो नृणस्तिलकं कपाले मम पक्षसि ॥
दृष्णपणानि पश्यानि छिन्नभिन्नानि सग्नयक । पतन्ति दृष्ट्वा शम्भुशब्दसतालपन्थानि च
कुन्तलो पिरताफारो ग्लेच्छो हि रुक्षमूर्खजः ।

ददाति मया नृपायां छिन्नभिन्नरुपर्कान् ॥ ७ ॥

क्रीडाकमलहस्ता सा सिन्दूरचिन्दुशोमिता ।

कृत्वाभिशापं मां रष्टा याति मन्मन्दिरात् सती ॥ १६ ॥

पाशहस्तांश्च पुरुषान् मुक्तकेशान् मयङ्कुरान् । अतिरुक्षांश्च पश्यामि विशतो नगरं मम ॥
नग्ननारी मुक्तकेशी नृत्यन्तीश्च गृहे गृहे । अतीवविरुताकारां पश्यामि सस्मितां सदा ॥
छिन्ननासा च विधवा महाशूद्री विगम्धरी । सा तैलाभ्यङ्गितं माञ्च करोत्यतिभयङ्करी
निर्घाणाङ्गारयुक्ताश्च भस्मपूर्णां दिगम्बराः ।

अतिप्रभातसमये चित्राः पश्यामि सस्मिताः ॥ २० ॥

पश्यामि च विवाहश्च नृत्यगीतमनोहरम् । रक्तचस्त्रपरीधानान् पुरुषान् रक्तमूर्द्धजान् ॥
रक्तं धमन्तं पुरुषं नृत्यन्तं नग्नमुत्पणम् । ध्यायन्तश्च शयानश्च पश्यामि सस्मितं सदा ॥
राष्ट्रुग्रस्तश्च गगने मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः । एककाले च पश्यामि सर्वघासञ्च बान्धवाः
उल्कापातं धूमकेतुं भूकम्पं राष्ट्रविप्लवम् । ऋक्भावातं महोत्पातं पश्यामि च पुरोहित
वायुना घूर्णमानांश्च छिन्नस्कन्धान् महीरुहान् ।
पतितान् पर्येतांश्चैव पश्यामि वृथिधीतले ॥ २५ ॥
पुरुषं छिन्नशिरसं नृत्यन्तं नग्नमुच्छितम् ।
मुण्डमालाकरं घोरं पश्यामि च गृहे गृहे ॥ २६ ॥

दग्धं सर्वाश्रमं भस्मपूर्णमङ्गारसङ्कुलम् । दाहाकारञ्च कुर्वन्तं सर्वं पश्यामि सर्वतः ॥
इत्येवमुक्त्वा राजा स विरराम सभातले । श्रुत्वा स्वप्नं बान्धवाश्च नतचक्रान्निशश्चसुः
जह्वा चेतनां सद्यः सत्यकश्च पुरोहितः । मत्प्रा विनाशं कंसस्य यजमानस्य नारद ॥
करोद् नारीवर्गश्च पिता माता च शोकतः । मेने विनाशकालञ्च सद्यः स्वयमुपस्थितम्
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

कंसदुःस्वप्नकथनं नाम त्रिपष्ठितमोऽध्यायः ।

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

कंससत्यकयोः परस्परं परामर्शः ।

श्रीनारायण उवाच ।

सर्वं कृत्वा परामर्शं सत्यकश्च पुरोहितः । बुद्धिमान् शुक्लशिष्यश्च तमुवाच हितं मुने ॥

सत्यक उवाच ।

भयं त्यज महाभाग भयं किं ते मयि स्थिते । कुरु यागं महेशस्य सर्वारिष्टविनाशनम्
यागो धनुर्मखो नाम बह्वान्नो बहुदक्षिणः । दुःस्वप्नानां नाशकरः शत्रुभीतिघ्नाशकः
आध्यात्मिकमाधिदैवमाधिभौतिकमुत्कटम् ।

एषां त्रिविधोत्पातानां खण्डनो भूतिवर्धनः ॥ ४ ॥

यागे समाप्ते शम्भुश्च जरामृत्युहरं वरम् । ददाति साक्षाद्वचति दाता च सर्वसम्पदाम् ॥
चकारेमञ्च यागञ्च पुरा यागो महाबलः । नन्दी परशुरामश्च भल्लश्च बलिनां वरः ॥ ६ ॥

पुरा ददौ धनुरिवं शिवो नन्दीश्वराय च ।

यागेन भूत्वा सिद्धः स ददौ वाणाय धार्मिकः ॥ ७ ॥

कृत्वा यागं महासिद्धो ददौ रामाय पुष्करे । तुभ्यं ददौ परशुरामः रूपया च रूपानिधिः
सहस्रहस्तपरिमितं दैर्घ्येऽतिकठिनं नृप । वृक्षहस्तप्रशस्तञ्च शङ्करेच्छाधिनिर्मितम् ॥ ६ ॥
पशुपतेः पाशुपतं युक्तयानेन दुर्वहम् । सर्वे भक्तुं न शक्ताश्च देवं नारायणं विना ॥
यागे च धनुषः पूजा शङ्करस्य तु शङ्करे । कुरु शीघ्रं शुभार्हञ्च सर्वान् कुरु निमन्त्रणम्
अस्मिन् यागे धनुर्मङ्गो भवेद्यदि नराधिप । विनाशो यजमानस्य भविष्यति न संशयः

भग्ने धनुषि यागश्च भग्नो भवति निश्चितम् ।

फलं ददाति को वात्र चानिष्पन्ने च फर्मणि ॥ १३ ॥

ब्रह्मा च धनुषो मूले मध्ये नारायणः स्वयम् ।

अग्रे चोग्रप्रतापश्च महादेवो महामते ॥ १४ ॥

धनुर्हि त्रिविकारश्च सद्रत्नसचितं धरम् । ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाप्रच्छन्नकारणम् ॥
 अशक्तश्च नमयितुमनन्तश्च महाबलः । सूर्यश्च कार्तिकेयश्च का कथान्यस्य भूमिप ॥
 त्रिपुरारिः पुराणेन जघान त्रिपुरं मुदा । निर्भयं कुरु स्वच्छन्दं मङ्गलाहं महोत्सवे ॥
 सत्यकस्य घनः श्रुत्वा चन्द्रवंशविधर्धनः । उवाच कंसः सर्वार्थं सततश्च हितैषिणम् ॥
 कंस उवाच ।'

। सुदेवगृहे यज्ञे मद्रधी कुलनाशनः । स्वच्छन्दं नन्दगेहे च धर्धते नन्दनन्दनः ॥ १९ ॥

मद्वन्धुवर्गान् शूरांश्च मन्त्रिणः सुविशारदान् ।

भगिनी पूतनां पूतां जघान बालकौ बली ॥ २० ॥

। गोवर्धनं धारैककरेण बलवर्धनः । महेन्द्रस्य च शूरस्य चकार च पराभवम् ॥ २१ ॥

ब्रह्माणं दर्शयामास ब्रह्मरूपं चराचरम् । निबहं बालवत्सानां चकार कृत्रिमं मुदा ॥ २२ ॥

तमेव बलिनं हन्तुं मन्त्रणं कुरु सत्यक । मम शत्रुर्विना तेन नास्तीह धरणीतले ॥ २३ ॥

न हि स्वर्गे न पाताले त्रिषु लोकेषु निश्चितम् ।

सन्ति सन्तश्च राजानः सर्वत्र मम बान्धवाः ॥ २४ ॥

महातपस्वी ब्रह्मा च तपस्वी शङ्करः स्वयम् ।

विष्णुः सर्वत्र सर्वात्मा समदर्शी सनातनः ॥ २५ ॥

नन्दपुत्रं निहत्याहं त्रिषु लोकेषु पूजितः । सार्वभौमो भविष्यामि सप्तद्वीपेश्वरो महान्

स्वर्गे निहत्य शकश्च दुर्बलं दैत्यनिर्जितम् ।

भविष्यामि महेन्द्रश्चतत्र निर्जित्य भास्करम् ॥ २६ ॥

यक्ष्मप्रस्तश्च चन्द्रश्च ममैव पूर्वपूरयम् । वायुं कुबेरं वरुणं यमं जेष्यामि निश्चितम् ॥

गच्छ नन्दवज्रं शीघ्रं नन्दश्च नन्दनन्दनम् । तदुन्नातश्च बलिनं बलमानय साम्प्रतम् ॥

कंसस्य घनं श्रुत्वा तमुवाच स सत्यकः । हितं सत्यं नीतिसारं परं सामयिकं तथा

सत्यक उवाच ।

अक्रूरमुद्धवं वापि वसुदेवमथापि वा । प्रस्थापय महाभाग नन्दवज्रमभीप्सितम् ॥ २७ ॥

सत्यकस्य घनः श्रुत्वा वसन्तं तत्र संसदि । स्वर्णसिंहासनस्थश्च वसुदेवमुवाच सः ॥

राजेन्द्र उवाच ।

तत्त्वज्ञो नीतिशास्त्राणां त्वमुपायविशारदः । व्रज नन्दप्रजं बन्धो वसुदेवसुतालयम् ॥
वृषभानुञ्च नन्दञ्च बलञ्च नन्दनन्दनम् । शीघ्रमानय यज्ञेऽत्र सर्वं गोकुलवासिनम् ॥३४॥

गृहीत्वा पत्रिकां दूता गच्छन्तु च चतुर्दिशम् ।

नृपान् मुनिगणान् सर्वान् कर्तुं विज्ञापनं मुदा ॥ ३५ ॥

नृपस्य वचनं श्रुत्वा शुष्कण्ठोष्ठतालुकः । उवाच वचनं ब्रह्मन् हृदयेन विदूयता ॥३६॥

वसुदेव उवाच ।

न युक्तमत्र राजेन्द्र गमनं मम साम्प्रतम् । विज्ञापितुं नन्दप्रजं वसुदेवस्य नन्दनम् ॥
यद्यायातो नन्दपुत्रो यागे ते च महोत्सवे । अवश्यं तद्विरोधश्च भविष्यति त्वया सह
तमहञ्च समानीय कारयिष्यामि संयुगम् ।

इति मे न हि भद्रञ्च विघ्नस्तस्य त्वापि च ॥ ३६ ॥

पित्रानीतो मृतः कृष्णः इति सर्वो धदिष्यति । वसुदेवः सुतद्वारा जघान नृपमेव च ॥
द्वयोरेकतरस्यापि सद्यो मृत्युर्भविष्यति ।

पतिष्यन्ति च शूराश्च नास्ति युद्धं निरामयम् ॥ ४१ ॥

वसुदेववचः श्रुत्वा रक्षपङ्कजलोचनः । खड्गं गृहीत्वा तं हन्तुं प्रययौ नृपतोश्चरः ॥४२॥
द्वा द्वेति कृत्वा पुत्रञ्च वारयामास तत्क्षणम् । उग्रसेनो महाराजमतीघवलघान् मुने ॥
स्यर्पाठाद्वसुदेवश्च कोपाविष्टो गृहं ययौ । अक्रूरं प्रेरयामास गन्तुं नन्दप्रजं नृपः ॥४४॥
दूतान् प्रस्थापयामास शीघ्रं प्रतिदिशं तथा । आययुर्मूनयः सर्वे नृपाश्च सपरिच्छदाः ॥

दिक्पालाश्च सुराः सर्वे ब्राह्मणाश्च तपस्विनः ।

सनफश्च सनन्दश्च घोदुः पञ्चशिखस्तथा ॥ ४६ ॥

सनत्कुमारो भगवान् प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा । कपिलध्यासुरिः पेलः सुमन्तुश्च सनातनः
पुलहश्च पुलस्त्यश्च भृगुश्च कनुरङ्गिराः । मरीचिः कश्यपश्चैव दक्षोऽत्रिश्च न्ययनस्तथा ॥

भरद्वाजश्च व्यासश्च गौतमश्च पराशरः ।

प्रचेताश्च पशिष्टश्च संघर्तश्च दृहस्पतिः ॥ ४६ ॥

कात्यायनो याज्ञवल्क्योऽप्युतथ्यः सौमरिस्तथा ।

पर्यतो देवलश्चैवं जैगीपव्यश्च जैमिनिः ॥ ५० ॥

विश्वामित्रश्च सुतपाः पिप्पलःशाकटायनः ।

जाबालिर्जाड्गुलिश्चैष पिशलिश्च शिलालिकः ॥ ५१ ॥

आस्तिफश्चजरत्कारुस्तथा कल्याणमित्रकः । दुर्वासावामदेवश्च ऋष्यशृङ्गोविभाण्डकः

परिषथःकणादश्च कौशिकःपाणिनिस्तथा । कौत्सोऽघमर्षणश्चैव वाल्मीकिर्लोमहर्षणः

मार्कण्डेयो मृकण्डुश्च परारामश्च साङ्कृतिः ।

अगस्त्यश्च तथावाञ्छ तथाऽन्ये मुनयो मुने ॥ ५४ ॥

सशिष्याश्च सपुत्राश्च ब्राह्मणाश्च तपस्विनः ।

जरासन्धो दन्तपत्नो दाम्मिको द्राघिडाधिपः ॥ ५५ ॥

शिशुपालो भीष्मकश्च भगदत्तश्च मुद्रलः । धृतराष्ट्रो धूमकेतो धूमकेतुश्च शम्बरः ॥

शल्यः सत्राजितः शङ्खनृपाश्चान्ये महाबलाः ।

भीष्मो द्रोणः रुपाचार्यो ह्यभ्युत्थामा महाबलः ॥ ५७ ॥

नृशिरपाश्चशाल्यश्च कैकेयःकौशलस्तथा । सर्वान्सम्भाषयामास महाराजोयथोचितम्

सत्यको यशश्चिपसं चकार च शुभक्षणम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्तं महापुराणे नारायणनारुसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

पञ्चमस्कन्धे नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

पञ्चपष्टितमोऽध्यायः

अक्रूरहर्षोत्कर्षकृधनम् ।

धोनातपण उपाय ।

।म्य पन्त ध्रुवा सोऽकरो धर्मिणा परः ।उपाय चोत्तरं शान्तं शान्तं प्रवृत्तमानसः

अक्रूर उवाच ।

सुप्रभाताद्य रजनी बभूव मे शुभं दिनम् । तुष्टाश्च गुरवो विप्रा देवा मामिति निश्चितम्
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं मम स्वयमुपस्थितम् । बभूव मे समुत्पन्नं यद्यत्कर्म शुभाशुभम्
विच्छेदेऽप्यधनिगडं मम यद्वस्य कर्मणा । कारागाराच्च संसारात्मुक्तो यामि हरेःपदम्
सुहृदर्थो कृतोऽहञ्च कंसेन विदुषा रुपा । घरेण तुल्यो देवस्य क्रोधो मम बभूव ह ॥

‘व्रजराजं समाहर्त्त’ व्रजं यास्यामि साम्प्रतम् ।

द्रक्ष्यामि परमं पूज्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनम् ॥ ६ ॥

नवीनजलदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम् । पीतवस्त्रसमायुक्तकटिदेशचिराजितम् ॥ ७ ॥

धूलिधूसरिताङ्गञ्च किंवा चन्दनचर्चितम् । अथवा नवनीताकमङ्गं द्रक्ष्यामि सस्मितम्

किंवा विनोदमुखली घादयन्तं मनोहरम् । किंवा गवां समूहञ्च चारयन्तमितस्ततः ॥

किंवा वसन्तं गच्छन्तं शयानं वा सुनिश्चितम् ।

निदेशं कीदृशञ्चायं सुदृष्ट्वा च शुभे क्षणे ॥ १० ॥

यत्पादपद्मं ध्यायन्ते ब्रह्मविष्णुशिवादयः । न हि जानाति यस्यान्तमनन्तोऽनन्तविग्रहः

यत्प्रभावं न जानन्ति देवाः सन्तश्च सन्ततम् ।

यस्य स्तोत्रे जङ्गीभूता भीता देवी सरस्वती ॥ १२ ॥

दासी नियुक्ता यदास्ये महालक्ष्मीश्च लक्षिता ।

गङ्गा यस्य पदाम्भोजाग्निःस्रुता सत्त्वरूपिणी ॥ १३ ॥

जन्ममृत्युजराव्याधिहरा त्रिभुवनात्परा । दर्शनस्पर्शनाभ्याञ्जनृणां पातकनाशिनी ॥ १४ ॥

ध्यायते यत्पदाम्भोजं दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । त्रैलोक्यजननी देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥

लोम्तां कुपेपु विभ्रानि महाविष्णोश्च यस्य च ।

असंख्यानानि त्रिविधानि स्थूलात् स्थूलतरस्य च ॥ १६ ॥

स च यत्पौङ्गवांशश्च यस्य सर्वेश्वरस्य च । तद्द्रष्टुं यामि हे बन्धोमायामानुषरूपिणम्

सर्वं सर्पान्तरात्मानं सर्वत्रं प्रकृतेः परम् । ब्रह्मज्योतिःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥

निर्गुणञ्च निरीहञ्च निरानन्दं निराश्रयम् । परमं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम् ॥ १८ ॥

स्वेच्छामयं सर्वपरं सर्वबीजं सनातनम् ।

वदन्ति योगिनः शश्वत् ध्यायन्तेऽहर्निशं शिशुम् ॥ २० ॥

मन्वन्तरसहस्रञ्च निराहारः कृशोदरः । पक्षे पादतपस्तेपे पुरा पात्रे तु यत्कृते ॥ २१ ॥
पुनः कुर्वन् तपस्याञ्च तदा द्रक्ष्यसि मामिति । सकृच्छब्दञ्च शुधाच्च न ददर्श तथापि तम्
तावत्कालं पुनस्तप्याच्च वरं प्राप ददर्श तम् । ईदृशं परमेशञ्च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्वह ॥ २३ ॥
पुराशम्भुस्तपस्तेपे याचद्वै ब्रह्मणो वयः । उयोतिर्मण्डलमध्ये च गोलोके तं ददर्श सः
सर्वतत्त्वं सर्वसिद्धं मम तत्त्वं परं वरम् ।

सम्प्राप तत्पदाम्भोजे भक्तिञ्च निर्मलां पराम् ॥ २५ ॥

आकारात्मसमं तञ्च यो भक्तो भक्तवत्सलः । ईदृशं परमेशञ्च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्वह ॥ २६ ॥
तद्वत्तत्पदात्तं निराहारः कृशोदरः । यस्यानन्तस्तपस्तेपे भवत्या च परमात्मनः ॥
तदा चात्मसमं ज्ञानं ददौ तस्मै य ईश्वरः । ईदृशं परमेशञ्च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्वह ॥ २८ ॥
तद्वत्तत्पदात्तं धर्मस्तेपे च यस्तपः । तदा बभूव साक्षी स धर्माणां सर्वकर्मणाम्
शास्ता च फलदाता च यत्प्रसादान्नृणामिह । सर्वेशमीदृशमहो द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्वह ॥
अष्टाविंशतिरिन्द्राणां पतने यद्विवानिशम् । एवं क्रमेण मासाब्दैः शताब्दं ब्रह्मणो वयः
अहो यस्य निमेषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत् । ईदृशं परमात्मानं द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्वह ॥ ३२ ॥
नास्ति भूरजसां संख्या यथैव ब्रह्मणा तथा । तथैवयन्थो विश्वानां तदाधारो महाधिराद्
विश्वे विश्वे च प्रत्येकं ब्रह्मविष्णुशिवादयः । मुनयो मनवःसिद्धा मानवाद्याश्चराचराः
यत्पोदशांशः स धिराद् सृष्टो नष्टश्च लीलया । ईदृशं सर्वशास्तरं द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्वह
इत्येवमुत्वाकूरश्च पुलकाञ्चितविग्रहः । मूर्च्छां प्राप साधुनेत्रो दध्यौ तच्चरणाभ्युजम् ॥
बभूव भक्तिपूर्णश्च स्मारंस्मारं पदाम्भुजम् । कृत्वा प्रदक्षिणं घापि कृष्णस्य परमात्मनः
उद्वहश्च तमाश्लिष्य प्रशंसं पुनः पुनः । स च शीघ्रं ययौ नेहमकूरोऽपि स्वमन्दिरे ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे-
यकूरहर्षोत्कर्षकथनं नाम पञ्चपटितमोऽध्यायः ।

षट्षष्टितमोऽध्यायः

श्रीराधाश्लोकापनोदनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ रासेश्वरीयुक्तो रासे रासेश्वरः स्वयम् । स च रेमे तथा सार्द्धमतीव रमणोत्सुकः
सुखसम्भोगमात्रेण ययौ निद्राञ्च राधिका । दृष्ट्वास्वप्नं समुत्थाय दीनोवाच प्रियंदिने
राधिकोवाच ।

अहो स्वामिन्निहागच्छ त्वां करोमि स्वयक्षसि ।

परिणामे विधाता मे न जाने किं करिष्यति ॥ ३ ॥

- इत्युत्त्वा सा महाभागा प्रियंकृत्वा स्वयक्षसि । दुःस्वप्नं कथयामास हृदयेन विदूयता
राधिकोवाच ।

रत्नसिंहासनऽहञ्च रत्नच्छत्रञ्च विभ्रती । तदातपत्रं जग्राह रुष्टो विप्रश्च मै प्रभो ॥ ५ ॥

सागरे कज्जलाकारे महाघोरे च दुस्तरे । गभीरे प्रेरयामास मामेव दुर्यलां स च ॥ ६ ॥

तत्र स्रोतसि शोकार्ता भ्रमामि च मुहुर्मुहुः । महोर्मिणाञ्च वेगेन व्याकुला नम्रसङ्कुलैः

ब्राहि ब्राहीति हे नाथ त्वां घट्टामि पुनः पुनः ।

त्वां न दृष्ट्वा महाभीता करोमि प्रार्थनां सुरम् ॥ ८ ॥

कृष्ण तत्र निमज्जन्ती पश्यामि चन्द्रमण्डलम् । निपतन्तञ्च गगनाच्छतपण्डञ्च भूतले ॥

क्षणान्तरे च पश्यामि गगनात् सूर्यमण्डलम् । बभूव च चतुःखण्डं निपत्य धरणीतले

एककाले च गगने मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः । अतीवकज्जलाकारं सर्वं प्रस्तञ्च राहुणा ॥

क्षणान्तरे च पश्यामि ब्राह्मणो दीप्तिमानिति ।

मत्क्रोडं सुधाकुम्भं यमञ्च च रूपेति च ॥ १२ ॥

क्षणान्तरे च पश्यामि महारुष्टं ब्राह्मणम् । गृहीत्वा च प्रजन्तञ्च चक्षुरोः पुरुषं मम ॥

क्रीडाकमलवण्डञ्च हस्ताद्वस्त्रं मम प्रभो । सहसा खण्डखण्डञ्च बभूव सह हेतुना ॥

हस्ताद्वस्तश्च सहसा सद्रत्नसारदर्पणः । निर्मलः कञ्जलाकारः खण्डखण्डो घभूय ह ॥
 हारो मे रत्नसारिणीं छिन्नो भूत्वा च वक्षसः । अतीवमलिनं पत्रं पपात धरणीतले ॥

सौधपुत्तलिकाः सर्वा नृत्यन्ति च हसन्ति च ।

आस्फोटयन्ति गायन्ति रुदन्ति च क्षणं क्षणम् ॥ १७ ॥

कृष्णघणं बृहद्भक्तं खे भ्रमन्तं मुहुर्मुहुः । निपतन्तश्चोत्पतन्तं पश्यामि च भयङ्करम् ॥ १८ ॥
 प्राणाधिदेवः पुण्यो निःश्रुत्याभ्यन्तरामम । राधे विदायं देहीति ततो यामीत्युवाच ह
 कृष्णघर्णां च प्रतिमा मामास्त्रिप्यति चुम्बति ।

कृष्णवस्त्रपरोधाना चेति पश्यामि साम्प्रतम् ॥ २० ॥

हृदीदं विपरीतञ्च दृष्ट्वा च प्राणघल्लभ । नृत्यन्ति दक्षिणाङ्गानि प्राणा आन्दोलयन्ति मे
 रुदन्ति शोकात्कर्षन्ति समुद्विग्नञ्च मानसम् । किमिदं किमिदं नाथ एव देवविद्रोघर
 इत्युत्त्वा राधिकादेयी शुष्कफण्डोष्ठतालुका ।

पपात तत्पदाम्भोजे भीता सा शोकपिह्वला ॥ २३ ॥

ध्रुत्वा स्वप्नं जगन्नाथो देयी दृत्वा स्वयक्षसि ।

आध्यात्मिकेन योगेन बोधयामास तत्क्षणम् ॥ २४ ॥

तत्याज शोकं सा देयी शानं सम्प्राप्य निर्मलम् ।

शान्तञ्च भगवन्तञ्च दृत्वा फान्तं स्वयक्षसि ॥ २५ ॥

इति श्रीब्रह्मवेवर्त्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

श्रीनारायणोपाख्यानोदनं नाम पद्यद्विंशतमोऽध्यायः ।

सप्तपष्टितमोऽध्यायः

आध्यात्मिकयोगरुचनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

विहय्यादुल्लङ्घ्या कामिनीं काममोहनः । दृत्वापक्षसि तां कृष्णो ययीकोदासरोपय

राजराजेश्वरी राधा कृष्णवक्षसि राजते । सौदामिनीव जलदे नवीने गगने मुने ॥ २ ॥
 रेमे सरमया सार्द्धं रूपया च रूपानिधिः । द्वयोर्द्वयोर्यथा स्वर्णमण्योर्मरिक्तो मणिः
 रत्ननिर्माणपर्यङ्के रत्नेन्द्रसारनिर्मिते । रत्नप्रदीपे ज्वलन्त रत्नभूषणभूषितः ॥ ४ ॥
 रत्नभूषाभूषितया रासरत्नश्च कौतुकात् । रसरत्नाफरे रम्ये निमग्नो रसिकेश्वरः ॥ ५ ॥
 रासे रासेश्वरी राधा रासेश्वरमुवाच सा । सुरती विरती सत्यां विरते न मनोरथे ॥
 राधिकोवाच ।

प्रफुल्लाऽहं त्यया नाथ मृता मृता च त्वां विना ।

यथा महौषधिगणः प्रभाते भाति भास्करे ॥ ७ ॥

नक्तं क्षीपशिखेपाहं त्यया सार्द्धं त्यया विना ।

दिने दिने यथा क्षीणा कृष्णपक्षे विधोःकला ॥ ८ ॥

तव वक्षसि मे दीप्तिःपूर्णचन्द्रप्रभासमा । सद्यो मृता त्यया त्यक्ता कुहां चन्द्रकलायथा
 ज्वलद्ग्निसिखेपाहं घृताहुत्या त्यया सह । त्यया विनाहं निर्याणा शिशिरे पद्मिनी यथा
 चिन्ताघरजराप्रस्ता भक्तस्त्वयि गतेऽप्यहम् । अस्तंगतेर्यौचन्द्रे ध्यान्तप्रस्ताधरायथा
 भ्रष्टो घेशस्त्वां विना मे रूपं यौवनचेतनम् । तारावली पत्रिपृष्ठा सूर्यसूतोदये यथा ॥ १२ ॥
 त्वमेवात्मा च सर्वेषां मम नाथो विशेषतः । तनुर्यथारमना त्यक्ता तथाहञ्च त्वया विना
 पञ्चप्राणात्मकस्थं मे मृताहञ्च त्वयाविना । यथा दृष्टिश्च गोलोके दृष्टिपुत्तलिकांविना
 स्थलं यथा चित्रयुक्तं त्यया सार्द्धमहं तथा ।

असंसृता त्यया हीना तुणाच्छया यथा मही ॥ १५ ॥

त्यया सार्द्धमहं कृष्ण चित्रयुक्तेष्वमृण्मयी । त्वां विना जलधोताहं पिरूपा मृण्मयीवच
 गोपाङ्गनानां शोभा च त्यया रासेश्वरेणच । हारे स्वर्णधिकारे च श्वेतंन मणिना सह
 वजराज त्वया सार्द्धं राजन्ते राजराजयः । यथा चन्द्रेण नभसि ताराराजिर्धिराजते ॥
 त्यया शोभा यशोदाया नन्दस्य नन्दनन्दन । यथा शाखा फलस्कन्धेस्तदराजिर्धिराजते
 त्वया सार्द्धं गोकुलेश शोभा गोकुलवासिनाम् ।

यथा सर्पा लोफराजी राजेन्द्रेण धिराजते ॥ २० ॥

रासस्यापि च रासेश त्वया शोभा मनोहरा । राजते देवराजेन यथा स्वर्गेऽमरावतो ।
 वृन्दावनस्य वृक्षाणां त्वञ्च शोभा पतिर्गतिः । अन्येषाञ्च वनानाञ्च बलवान् केशरीयथा ।
 त्वयाचिनायशोदाय निमग्ना शोकसागरे । अप्राप्यवत्सं सुरभी कोशन्ती व्याकुलायथा
 भान्दोलपन्ति नन्दस्यप्राणा दग्धञ्च मानसम् । त्वयाधिना तप्तपात्रे यथाधान्यसमूहकः
 इत्युत्त्वा परमप्रेम्णा सा पतन्ती हरेः पदे । पुनराध्यात्मिकेनैव बोधयामास तां विभुः
 आध्यात्मिको महायोगो मोहसंच्छेदकारणम् । यथापरशुवृक्षाणां तीक्ष्णधारश्च नारद
 नारद उवाच ।

आध्यात्मिकं महायोगं वद वेदविदां वर । शोकच्छेदञ्च लोकानां ध्रोतुं कौतूहलं मम ।
 श्रीनारायण उवाच ।

आध्यात्मिको महायोगो न ज्ञातो योगिनामपि ।

स च नानाप्रकारश्च सर्वं वेत्ति हरिः स्वयम् ॥ २८ ॥

किञ्चिदाध्यात्मिकञ्चैव गोलोके राधिकेश्वरः । सुप्रीतः कथयामास त्रिपुरारिमहामुने
 सहस्रेभ्यनिपातान्तं तपः कुर्वन्तमीश्वरम् । श्रेष्ठं ज्येष्ठं वैष्णवानां वरिष्ठञ्च तपस्विनाम्
 पुष्करं दुष्करं तप्त्वा पाप्मे पापञ्च पञ्चजः । दृष्ट्वा तं सादरं कृत्वा उवाच किञ्चिदैव तम्
 शतेन्द्रपातपर्यन्तं कठोरेण कुरोदरम् । निश्चेष्टमस्त्रिसारञ्च कृपया च कृपानिधिः ॥ ३२
 सिंहक्षेत्रे पुरा धर्मं मत्तातं धर्मिणां वरम् । चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं तपस्तप्त्वा कुरोदरम् ॥
 पपाठाध्यात्मिकं किञ्चित् कृपया च कृपानिधिः ।

किञ्चिच्छतेन्द्रावच्छिन्नमातपन्तमुवाच सः ॥ ३४ ॥

किञ्चित् सनत्कुमारञ्च तपन्तं सुचिरं परम् । सुतपन्तमनन्तञ्च किञ्चिद्योवाच नारद ॥
 चिरं तपन्तं कपिलं हिमशैले तपस्विनम् । पुष्करे भास्करे किञ्चित्तपन्तं दुष्करं तपः ॥
 उवाच किञ्चित् प्रह्लादं किञ्चिद् दुर्वाससं शृगम् । पञ्चनिगूढं भक्तञ्चकृपया भक्तवत्सलः
 श्रीडासरोचरे रम्ये यदुपाय कृपानिधिः । शोकात्तां राधिकां तच्च कथयामि निशामय
 चिरसां रसिकां दृष्ट्वा पासयित्वा च वक्षसि ।

उवाचाध्यात्मिकं किञ्चिद् योगिनीं योगिनां गुरुः ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

जातिस्मरे स्मरात्मानं कथं विस्मरसि प्रिये । सर्वं गोलोकवृत्तान्तं सुदाम्नः शापमेव च
शापात् किञ्चिद्दिनं दीने त्वद्विच्छेदो मया सह ।

भविष्यति महाभागे मेलनं पुनरावयोः ॥ ४१ ॥

पुनरैवगमिष्यामि गोलोकं तं निजालयम् । गत्वा गोपाङ्गनाभिश्च गोपैर्गोलोकवासिभिः
अधुनाध्यात्मिकं किञ्चित् त्वां वदामि निशमय । शोकघ्नं हर्षदं सारं सुखदं मानसस्य च
अहं सर्वान्तरात्मा च निर्लिप्तं सर्वकर्मसु । विद्यमानश्च सर्वेषु सर्वत्रादृष्ट एव च ॥ ४४ ॥
वायुश्चरति सर्वत्र यथैव सर्ववस्तुषु । न च लिप्तस्तथैवाहं साक्षी च सर्वकर्मणाम् ॥
जीवो मत्प्रतिविम्बश्च सर्वः सर्वत्र जीविषु । भोक्ता शुभाशुभानाञ्च कर्ता च कर्मणां सदा
यथा जलघटेऽप्येव मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः । भग्नेषु तेषु संश्लिष्टस्तयोरेव तथा मयि ॥ ४७ ॥
जीवश्चिद्वस्तु काले मृतेषु जीविषु प्रिये । आवाञ्च विद्यमानो च सततं सर्वजन्तुषु ।
आधारश्चाहमाधेयं कार्यञ्च कारणं विना । अये सर्वाणि द्रव्याणि नश्यराणि च सुन्दरि
भाविर्भावाधिकाः कुत्र कुत्रचिन्नूनमेव च । ममांशाः केऽपि देवाश्च केचिद्देवाः कलास्तथा
केचित्कलाः कलांशांशास्तद्शांशाश्च केचन । मदंशाः प्रकृति सूक्ष्मा सा च मूर्त्या च पञ्चधा
सरस्वती च फमला दुर्गा त्वञ्चापि वेदसूः । सर्वदेवाः प्राकृतिका याचन्तो मूर्तिधारिणः
अहमात्मा नित्यदेही भक्तध्यानानुरोधतः । ये ये प्राकृतिका राधे ते नष्टाः प्राकृते लये ॥
अहमेवात्ममेवाग्रे पश्चादप्यहमेव च । यथाहञ्च तथा त्वञ्च यथा धावत्यदुग्धयोः ॥ ५४ ॥

भेदः कदापि न भवेन्निश्चितञ्च तथावयोः ।

अहं महान्विराट् सृष्टौ विश्वानि यस्य लोमसु ॥ ५५ ॥

अंशस्त्वं तत्र महती स्वांशेन तस्य कामिनो । अहं क्षुद्रविराट् सृष्टौ विश्वं यन्नाभिपन्नतः
अयं घिष्णोर्लोमकूपे घासो मे चांशतः सति ।

तस्य स्त्री त्वञ्च बृहती स्वांशेन सुभगा तथा ॥ ५७ ॥

तस्य विश्वे च प्रत्येकं ग्रहाधिष्णुशिवाद्यः । ग्रहाधिष्णुशिवा अंशाश्चान्द्राश्चापि चमत्कलाः
चमत्कलांशांशकलयाः सर्वे देवि चराचराः । ये कुण्डे त्वं महालक्ष्मीरहं तत्र चतुर्भुजः ॥

स च विभ्वादुवद्विश्वाद्धं यथा गोलोक एव च ।

सरस्वती त्वं सत्ये च सावित्री ब्रह्मणः प्रिया ॥ ६० ॥

शिवलोके शिवा त्वञ्च मूलप्रकृतिरीश्वरी । विनाश्य दुर्गं दुर्गाञ्च सर्वदुर्गतिनाशिनी ॥

सा एव दक्षकन्या च सा एव शैलकन्यका । कैलासे पार्वती तेन सौभाग्या शिवपक्षसि

स्वांशेन त्वं सिन्धुकन्या क्षीरोदेषिष्णुवक्षसि । अहंस्वांशेन सृष्टौ च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः

त्वञ्च लक्ष्मीः शिवा धात्री सावित्री च पृथक् पृथक् ।

गोलोके च स्वयं राधा रासे रासेश्वरी सदा ॥ ६४ ॥

वृन्दा वृन्दाघने रम्ये विरजा विरजातटे । सा त्वं सुदामशपेन भारतं पुण्यमागता ॥

पूतं कर्तुं भारतञ्च वृन्दारण्यञ्च सुन्दरि । त्वत्कलां स्वांशकलया विश्वेषु सर्वयोपितः

या योपित्ता च भवती यः पुमान् सोऽहमेव च ।

अहं च कलया यद्विस्त्वं स्याद्वा दाहिका प्रिया ॥ ६७ ॥

त्वया सह समर्थोऽहं नालं दग्धुञ्च त्वांविना । अहं दीप्तिमतां सूर्यः कलया त्वंप्रभाकरी

संज्ञा त्वञ्च त्वया भामि त्वां विनाऽहं न दीप्तिमान् ।

अहञ्च कलया चन्द्रस्त्वञ्च शोभा च रोहिणी ॥ ६९ ॥

मनोहरस्त्वयासार्द्धं त्वां विना न च सुन्दरः । अहमिन्द्रश्च कलया सर्वलक्ष्मीश्च त्वंशवी

त्वया सार्द्धं वैश्वराजो हतश्रीश्च त्वया विना । अहं धर्मश्च कलया त्वञ्च मूर्तिश्च धर्मिणी

नाहं शक्तो धर्मकृत्ये त्वाञ्च धर्मक्रियां विना । अहं यज्ञश्च कलया त्वं स्वाहंशेन वक्षिणा

त्वया सार्द्धञ्च फलदोऽप्यसमर्थस्त्वया विना ।

कलया पितृलोकोऽहं स्वांशेन त्वं स्वधा सती ॥ ७३ ॥

त्वया लं कव्यदाने च सदा नालं त्वयाविना । अहंपुमांस्त्वं प्रकृतिर्न स्रष्टाहं त्वयाविना

त्वञ्च सम्पत्स्वरूपाहमोश्वरश्च त्वया सह ।

लक्ष्मीयुक्तस्त्वया लक्ष्म्या निःश्रीकश्च त्वया विना ॥ ७५ ॥

यथा नालं कुलालश्च घटं कर्तुं मृदा विना । अहं शेषश्च कलया स्वांशेन त्वं वसुन्धरा

त्वां शस्यरत्नाधाराञ्च विभर्मिमूर्ध्नि सुन्दरि । त्वञ्च कान्तिश्च शान्तिश्च भूतिर्मूर्तिमती सती

तुष्टिः पुष्टिः क्षमा लज्जा क्षुधा तृष्णा परा दया ।

निद्रा शुद्धा च तन्द्रा च मूर्च्छा च सन्नतिः क्रिया ॥ ७८ ॥

मूर्तिरूपा भक्तिरूपा देहिनां देहरूपिणी । ममाधारा सदा त्वञ्च तवात्माहं परस्परम् ॥

यथा त्वञ्च तथाहञ्च समौ प्रकृतिपूरुषौ । न हि सृष्टिर्भवेद्देवि द्वयोरेकतरं विना ॥ ८० ॥

इत्युक्त्या परमात्मा च राधां प्राणाधिकां प्रियाम् ।

कृत्या वक्षसि सुप्रीतो बोधयामास नारद ॥ ८१ ॥

स च क्रीडानियुक्तश्च वभूव रत्नमन्दिरे । तया च राधया सार्द्धं कामुक्या सह कामुकः

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

आध्यात्मिकयोगकथनं नाम सप्तपष्टितमोऽध्यायः ।

अष्टपष्टितमोऽध्यायः

राधाकृष्णसंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

कृत्याक्रीडांसमुत्थाय पुष्पतल्यात् पुरातनः । निद्रिताप्राणसदृशी बोधयामासतत्क्षणम्

यत्त्राञ्चलेन संस्कृत्य कृत्या तन्निर्मलं मुक्कम् । उवाच मधुरं शान्तं शान्ताश्च मधुसूदनः

श्रीकृष्ण उवाच ।

अयि तिष्ठ क्षणं रासे रासेश्वरि शुचिस्मिते । व्रज वृन्दावनं वापि व्रजं व्रज व्रजेश्वरि

रासाधिष्ठातृदेयि त्वं रासं रासे कुद क्षणम् ।

ग्रामे ग्रामे यथा सन्ति सर्वत्र ग्रामदेयताः ॥ ४ ॥

प्रियालिनिवहेः सार्द्धं क्षणं चन्दनकाननम् । क्षणं वा चम्पकवनं गच्छ वा तिष्ठ सुन्दरि

क्षणं गृहञ्च यास्यामि चिशिष्टं कार्प्यमस्ति मे ।

विरामं देहि मे प्रीत्या क्षण मां प्राणपटुमे ॥ ६ ॥

प्राणाधिष्ठातृदेवी त्वं प्राणाश्च त्वयि सन्ति मे ।

प्राणी चिदाय प्राणांश्च कुत्र स्थातुं क्षमः प्रिये ॥ ७

त्वयि मे मानसंशयस्यं मे संसारवासना । त्यक्तोममप्रिया नास्ति त्यमेवशङ्कयात्प्रिया

प्राणा मे शङ्करः सत्यं त्वञ्च प्राणाधिका सति ।

इत्युत्था तां समाश्लिष्य भगवान् गन्तुमुद्यतः ॥ ६ ॥

भ्रूरागमनं ज्ञात्वा सर्वज्ञः सर्वसाधनः । आत्मा पाता च सर्वेषां सर्वोपकारकारकः

दृष्ट्वा तमेव गच्छन्तमुत्सुकं भिन्नमानसम् । उवाच राधिका देवी हृदयेनचिद्व्यता ॥ ११ ॥

राधिकोवाच ।

हे नाथ रमणध्रष्ट श्रेष्ठश्च प्रेयसां मम । हे कृष्ण-हे रमानाथ व्रजेश मा व्रज व्रजम् ॥

अधुना त्वां प्राणनाथ पश्यामि भिन्नमानसम् ।

गते त्वयि मम प्रेम गतं सौभाग्यमेव च ॥ १३ ॥

कयासि मां विनिक्षिप्य गम्भीरेशोकसागरे । विरह्वाकुलां दीनां त्वय्येषशरणागताम्

न यास्यामि पुनर्गोहं यास्यामि काननान्तरम् ।

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति गायं गायं दिवानिशम् ॥ १५ ॥

न यास्याम्यथवार्ष्यास्यामिकामसागरे । तत्रत्यत्कामनांकृत्वात्यक्ष्यामिचकलेपरम्

यथाऽऽकाशो यथात्मा च यथा चन्द्रो यथा रविः ।

तथा त्वं यासि मत्पार्श्वे निबद्धो वसनाञ्जले ॥ १७ ॥

अधुनायासि नैराश्रयंकृत्वा मे दीनघत्सल । न युक्तं हि परित्यक्तुं दीनां मां शरणागताम्

यत्पादपद्मं ध्यायन्ते ब्रह्मविष्णुशिवादयः । त्वां मायया गोपवेशं कथं जानामि मत्सरी

कृतं यद्देव दुर्नोतमपराधसद्वक्षकम् । यदुक्तं पतिभावेन चाभिमानेन तत् क्षम ॥ २० ॥

चूर्णीभूतश्च मद्गर्भो दूरीभूतो मनोरथः । विज्ञातमात्मसौभाग्यं किमन्यत् कथयामि वै

ज्ञात्वा गर्गमुखाच्छ्रुत्वा मोहिता तव मायया ।

त्वाञ्च धत्तुं न शक्नोमि प्रेम्णा वा भक्तिपाशतः ॥ २२ ॥

यासिचेन्मां परित्यज्य सकलङ्गो भविष्यसि । त्वत्पुत्रपौत्रा नश्यन्ति ब्रह्मकोपानलेन च

क्षणं युगशतं मन्ये त्वां विना प्राणवल्लभम् ।

कथं शताब्दं त्वां त्यक्त्वा विमर्षि जीघनं प्रभो ॥ २४ ॥

इत्युक्त्वा राधिका कोपात्पपात धरणीतले । मूर्च्छां संप्राप सहसा जहार चेतनां मुने
कृष्णस्तां मूर्च्छितां दृष्ट्वा कृपया च कृपानिधिः ।

चेतनां कारयित्वा च वासयामास वक्षसि ॥ २६ ॥

बोधयामासविधिं योगैःशोकविखण्डनैः । तथापिशोकं त्यक्तुञ्च न शशाकशुचिस्मता
सामान्यवस्तुचिह्नो नृणां शोकायकेवलम् । देहात्मनोश्च विच्छेदः क सुखायप्रकल्पते
न ययौ तत्र दिवसे व्रजराजो व्रजं प्रति । क्रीडासरोधराभ्यासं प्रययौ राधया सह ॥
तत्र गत्वा पुनः क्रीडां चकार च तथा सह । विजहौ विरहज्वालां रासे रासेश्वरी मुदा
राधा सा स्वामिना सार्द्धं पुष्पचन्दनचर्चिता । पुष्पचन्दनतल्पे च तस्थौ रहसि नारद
इति श्रीप्रल्लवैवर्से महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

राधाशोकविमोचनं नामाष्टपष्ठितमोऽध्यायः ।

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ।

रासक्रीडावर्णनम् ।

नारद उवाच ।

अतः परं किं रहस्यं राधाकेशवयोर्वद । निगूढतत्त्वमस्पष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥
श्रीनारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । गोपनीयञ्च वेदेषु पुराणेषु पुराचिदाम् ॥ २ ॥
पुनः सकामो भगवान् कृष्णःस्वेच्छामयोविभुः । रमे सत्प्रयासार्द्धं विदग्धश्च विदग्धया
चतुःपष्टिकलासक्ता यथा कान्ताफलापती । कामशास्त्रेषु निपुणा विदग्धारतिरेश्वरी
शृङ्गारलीलानिपुणाशश्वत्कामा च कामुकी । सुन्दरोमुन्दरीप्येव शश्वत्सुस्थिर्योचना

पितृणां मानसी कन्या धन्या मान्या च मानिनी ।

शम्भोः शिष्या ज्ञानयुता शतकल्पान्त जोविनी ॥ ६ ॥

चेदवेदाङ्गनिपुणा योगनीतिविशारदा । नानारूपधरा साध्वी प्रसिद्धा सिद्ध योगिनी ॥
तत्कन्याराधिकादेवी मातृतुल्याचकामुकी । चकारानाभावंसासुशीलास्यामिनं प्रति
चतुःषष्टिकलामानं शृङ्गारञ्च चकार सः । तथा विशिष्टया साकं रासे रासरसोत्सुकः
तां नखाप्रक्षतश्रोणीं नखक्षतपयोधराम् । लुप्तचन्दनसिन्दूरं कवरीशिथिलां सतीम् ॥
सुखसम्भोगमग्नाञ्जननाञ्जशोकमूर्च्छिताम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गीं निद्रा देवीं समाययौ
दृष्ट्वातानिद्रितां कृष्णः कृपयाच कृपानिधिः । करोद् मायया मायीमायेशो लोकशिक्षया
कृत्यावक्षसि राधाञ्च चुचुम्ब च पुनः पुनः । ज्ञाताञ्च नेत्रसलिलैः प्राणाधिष्ठातृदेवताम्
प्राणाधिकां प्रियतमां धारयामास घाससी । वह्निशुद्धेऽतिसूक्ष्मे वामूख्ये विश्वसुदुर्लभे
कवरीं रचयामास ददौ कुङ्कुमचन्दनम् । तद्गन्धे च गले हारममूल्यं रत्ननिर्मितम् ॥
सिन्दूरञ्च ददौ तस्याः सीमन्ताधःस्थलेऽमले । दाडिमकुसुमाकारं युक्तञ्चन्दनविन्दुभिः
चकार पद्मकं गण्डे नानाविप्रविचित्रकम् । ददौ तत्पादपद्मे च रत्नमञ्जीररञ्जितम् ॥
पादाङ्गुलिनखाग्रे च सुन्दरालककंददौ ॥ १८ ॥

नानासुवेशोज्ज्वलितां तां निद्राकुलितांविभुः । पुनश्चकार मोहेनगाढालिङ्गनमीप्सितम्
पुनश्च युभयनं कृत्या निवेश्य च स्ववक्षसि । सुप्राप जगतांस्यामी कामी विरहकातरः
पतस्मिन्नन्तरे काले ब्रह्मा लोकपितामहः । शिवशेषादिभिर्देवैर्मनान्त्रैः सार्द्धमाययौ
आगत्यनत्वा शिरसा तुष्टावसम्पुंटाञ्जलि । सामवेदोक्तस्तोत्रेण परिपूर्णतमं विभुम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

जय जय जगदीश चन्दितवरण निर्गुण निराकार स्वेच्छामय भक्तानुग्रह नित्यविग्रह
गोपपेश मायया मायेश सुवेश सुशील शान्तसर्गकान्त दान्त नितान्तज्ञानानन्द परात्-
परतर प्रकृतः पर सर्वान्तरात्मरूप निलिप्त साक्षिस्वरूप व्यकाव्यक निरञ्जन
भारावतारण कल्याणाय शोकसन्तापप्रसन जरामृत्युभयादिहरण शरणपञ्जर
भक्तानुग्रहकातर भक्तवत्सल भक्तसञ्चितधन ओं नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥

सर्वाधिष्ठातृदेवायेत्युक्त्वा वै प्रीणनाय च ।

पुनः पुनरुवाचेदं मूर्च्छितश्च यभूव ह ॥ २४ ॥

इति ब्रह्मरुतं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः ।

तत्सर्वाभीष्टसिद्धिश्च भवत्येव न संशयः ॥ २५ ॥

अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत् प्रियाम् ।

निर्धनो लभते सत्त्वं परिपूर्णतमं धनम् ॥ २६ ॥

इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते दास्यं लभेद्धरैः । अचलां भक्तिमाप्नोति मुक्तेरपि सुदुर्लभाम्
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मरुतस्तोत्रम् ।

स्तुत्या च जगतां धाता प्रणम्य च पुनः पुनः । शनैःशनैः समुत्थाय भक्त्या पुनरुवाच ह
ब्रह्मोवाच ।

उत्तिष्ठ देवदेवेश परमानन्दकारण । नन्दनन्दन सानन्द नित्यानन्द नमोऽस्तु ते ॥ २६ ॥

व्रज नन्दालयं नाथ त्यज घृन्दावनं वनम् । स्मर सुदामशापञ्च शतवर्षनियन्धनम् ॥ ३० ॥

भक्तशापानुरोधेन शतवर्षं प्रियां त्यज । पुनरेताञ्च सम्प्राप्य गोलोकञ्च गमिष्यसि ॥

गत्वा पितृगृहं देव पश्याकूरं समागतम् । पितृव्यमतिथिं मान्यं धन्यं वैष्णवमीश्वरम् ॥

तेन सार्द्धं मधुपुरी भगवन् गच्छ साम्प्रतम् । कुरु शम्भोर्धनुर्भङ्गं भग्नं धैरिगणं हरे ॥

हन कंसं दुरात्मानं तातं बोधय मातरम् ।

निर्माणं द्वारकायाश्च भारवतरणं भुवः ॥ ३४ ॥

दह वाराणसी शम्भोः शक्रस्य सदनं विभो ।

शिवस्य जृम्भणं युद्धे वाणस्य भुजरुन्तनम् ॥ ३५ ॥

रुक्मिणीहरणं नाथ शतनं नरकस्य च । षोडशानां सहस्रञ्च स्त्रीणां पाणिग्रहं कुरु ॥

त्यज प्रियां प्राणसमां व्रजेश्वर व्रजं व्रज । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं तै यावद्राधा न जाग्रति ॥

इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा च सेन्द्रीर्देवगणैः सह । जगाम ब्रह्मलोकञ्च शेषश्च शङ्करस्तथा ॥

पुष्पचन्दनवृष्टिश्च रुष्णस्योपरि देवताः ।

चक्रुः प्रीत्या च भक्त्या च घाम्यभूवाशरीरिणी ॥ ३६ ॥

वध-कंसं वधाहंश्च स्वपित्रोर्मोक्षणं कुरु ।

क्षपं कुरु भुवो भारं नास्देत्येवमेव च ॥ ४० ॥

इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा भगवान् भूतभावनः ।

राधां भगवतो ल्यत्वा समुत्तस्थौ शनैः शनैः ॥ ४१ ॥

ययौ हरिः कियद्दूरं निरीक्ष्य च पुनः पुनः । क्षणं तस्थौ चन्दनानां घने घाससमीपतः

विहाय राधा निद्रां सा समुत्तस्थौ स्वतल्पतः ।

न निरीक्ष्य हरिं शान्तं कान्तञ्च प्राणवल्लभम् ॥ ४३ ॥

हा नाथ रमणश्चेष्ट प्राणेश प्राणवल्लभ । प्राणचोर प्रियतम क गतोऽसीत्युवाच ह ॥ ४४

क्षणमन्वेपणं कुत्वा वभ्राम मालतीचनम् । उवास क्षणमुत्तस्थौ क्षणं सुष्याप भूतले

रुरोद क्षणमत्युद्यैर्विललाप मुहुर्मुहुः । भागच्छागच्छ हे माथेत्येवमुक्त्वा पुनः पुनः ॥

मूर्च्छां सम्प्राप सन्तापात् सन्तप्ता विरहानलैः ।

भूतले च तृणाच्छन्ने पपात च यथा मृता ॥ ४७ ॥

आययुस्तत्र गोप्यश्च ब्रह्मन् शतसहस्रशः । काञ्चिद्यामरहस्ताश्च गृहीत्वा चन्दनद्रवम् ॥

तासां मध्ये प्रियालीलाः कृत्वारार्धां स्ववक्षसि । मृतामिवप्रियां दृष्ट्वा रुरोद प्रेमविह्वला

सजलं पङ्कजदलं पङ्कोपरि निधाय च । स्थापयामास तां राधां निध्वेष्टाञ्च मृतामिव ॥

गोपीमिः सेवितां तत्र रुचिरेऽप्येतचामरैः । चन्दनद्रवयुक्ताञ्च लिङ्गवत्प्रान्वितां सतीम्

ददर्श कृष्णस्तत्रैव तामेव प्राणवल्लभम् ।

निवारितश्च गोपीमिर्वलिष्ठामिश्च नायद ॥ ५२ ॥

... प्रघानीतः सापराधो वृण्डवो राजमयादिभिः ।

चकार राधां क्रोडे च समागत्य रूपानिधिः ॥ ५३ ॥

चेतनां कारयामास बोधयामास बोधनैः । सम्प्राप्य चेतनां देवी ददर्श प्राणवल्लभम्

वभूव सुस्थिरा देवी तत्याज विरहज्वरम् ।

चकार कान्तं सा कान्ता गात्रालिङ्गनमीप्सितम् ॥ ५५ ॥

नानाप्रकारशृङ्गारं चकार मधुसूदनः । उवास रत्नतल्पे च राधां कृत्वा स्ववक्षसि ॥

राधासखी रत्नमाला विदग्धा सर्वपूजिता । उवाच कृष्णं मधुरं नीतिसारमनुत्तमम् ॥
रत्नमालोवाच ।

शृणु कृष्ण प्रवक्ष्यामि परिणामसुखाद्यहम् ।

द्वितं तथ्यं नीतिसारं दम्पत्योः प्रीतिकारणम् ॥ ५८ ॥

सम्मतं कामशास्त्रेषु नीतो वेदपुराणयोः । लौकिकव्यवहारेषु प्रशस्यं सुयशस्करम् ॥

नारीणाञ्च यथा माता प्रियो भ्राता च बन्धुषु ।

ततः प्रियश्च पुत्रश्च पुत्रादेव प्रियः पतिः ॥ ६० ॥

शतपुत्रात् प्रियः स्वामी साध्वीनां साधुसम्मतः ।

रसिकानां विदग्धानां न हि भर्तुः परः प्रियः ॥ ६१ ॥

यदि भर्ता विदग्धश्च विदग्धानां सुखाद्यहः । अन्यथा विपतुल्यश्च विपमथेतल्लःपल्लु
संसारं चानृते घत्स दम्पत्योः प्रीतिरेव च । परस्परञ्च समता प्रेमसौभाग्यमीप्सितम्
दम्पत्योः समता नास्ति यत्र यत्र हि मन्दिरं । अलक्ष्मीस्तत्र तत्रैव विफलं जीवनंतयोः

सुस्वामिनां विभेदश्च परं दुःखञ्च योषिताम् ।

शोकसन्तापयोजञ्च जीवितं मरणाधिकम् ॥ ६५ ॥

स्वप्ने जागरणे चापि पतिः प्राणाश्च योषिताम् ।

पतिरेव गुरुः स्त्रीणामिहलोके परत्र च ॥ ६६ ॥

अस्मात्स्वयि गते नाथे मूर्च्छां संप्राप राधिका ।

पपात सहसा भूर्मा तृणाच्छन्ने च भूतले ॥ ६७ ॥

मया दत्तं मुखेऽस्याश्च शीतलं जलमुत्तमम् । तदा श्वाप्तो कभूवास्याश्चेतनं पाल्पमेवच
क्षणं पदति हे नाथ हे कृष्णेति क्षणं सखा ।

क्षणं रोदिति सन्तप्ता मूर्च्छां प्राप्नोति तत्क्षणम् ॥ ६८ ॥

राधिकायाः शरीर्य्य सन्तप्तं विरहानलैः । दग्धलोहयष्टिसममसृश्यमनलोपमम् ॥ ७० ॥

स्वप्ने जागणे रात्रौ दिवासु च गृहे घने । जले स्थले चान्तरिक्षेऽप्युदये चन्द्रसूर्ययोः
नास्तिभेदश्च राधाया मृतनुत्वा जड़ारुतिः । शदयत्पश्यतिस्थानस्थासर्वेपिष्णुमयजगत्

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः] * श्रीकृष्णस्यगमनम् *

स्निग्धपङ्के पङ्कजानां सज्जलानि दलानि च । निपत्य त्वत्कृते तल्पे सुष्याप विरहातुरा
सेविता सा प्रियालीमिः सन्ततं श्वेतचामरैः । चन्दनद्रवसंक्षिप्ता स्निग्धपत्रसमन्विता
राधाङ्गस्पर्शमात्रेण पङ्कःसंप्राप शुष्कताम् । स्निग्धानि पद्मपत्राणि बभूवुर्भस्मसात्क्षणम्
चन्दनं शुष्कतां प्राप घर्णश्चम्पकसन्निभः । बभूव कज्जलाकारः केशस्य घर्णतो हरे ॥
सिन्दूरचिन्दुरुचिरः श्यामतांप्रापत्तक्षणम् । वेपो विलासोलीला च क्रीडात्यक्ताबभूव ॥
रत्नमाला तु तां दृष्ट्वा गत्वा कृष्णान्तिकं तदा । उवाच मधुरं वाक्यं राधाहितकरं परम्
रत्नमालोवाच ।

हे कृष्ण कमलाकान्त त्वद्वियोगेन मत्सखी ।

प्राणांस्त्यक्ष्यति शीघ्रं सा यदि नायांस्यसि ध्रुवम् ॥ ७६ ॥

विचार्य्य मनसा कृष्ण यत्तत्समुचितं कुद । न भवेत् कामिनीदृत्या येन नीतिविशारद
रत्नमालावचः श्रुत्वा प्रहस्योवाच माधवः । दितं सत्यं नीतिसारं परिणामसुखावहम्
श्रीभगवानुवाच ।

ईशो यद्यपि शक्तोऽहं निषेधं खण्डितुं प्रिये । तथापि न क्षमो रत्ने नियतेन करोम्यहम्
प्रह्लाण्डेषु च सर्वेषु मर्यादा स्थापिता मया । तथा कर्म प्रकुर्वन्ति मुनयश्च सुरा नराः ॥
सुदामशापाद्विच्छेदः शतवर्षमनीप्सितः । भविष्यत्येव दम्पत्योरावयोरेव सुन्दरि ॥
भेदो जागरणेऽस्याश्च मया सह सुमध्यमे । संश्लेषः सन्ततं स्वप्ने मत्तरेण भविष्यति
आध्यात्मिकी मया दत्ता शोकच्छेदो भविष्यति ।

राधां बोधय भद्रं ते यास्यामि नन्दमन्दिरम् ॥ ८६ ॥

इत्युक्त्वा जगतां नाथो ययौ नन्दालयं प्रति । राधिकां बोधयामुरालिसंधाश्च नारद ॥
गत्वा गृहञ्च पितरं ननाम मातरं तथा । चकार माता क्रोडे च नचनीतश्च नूतनम् ॥ ८८ ॥
मातृदत्तश्च ताम्बूलं चखाद शीतलं जलम् । उवाच तत्र जगतां नाथो मातृसमापतः ॥
सर्वगोपसमूहेश्च सेवितः श्वेतचामरैः । माल्यचन्दनताम्रमूलं ते च तस्मै ददुर्मुदा ॥ ९० ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
श्रीकृष्णागमनं नामोऽष्टमोऽध्यायः ।

सप्ततितमोऽध्यायः

अक्रूरस्य कृष्णसमीपे गमनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

यथाऽक्रूरः स्पर्शरुणं गत्वा कंसेन प्रेषितः । चकार शयनं तल्पे भुक्त्वा मिष्टान्नमुत्तमम् ॥
सकपूरञ्च ताम्बूलं चपाद घासितं जलम् । जगाम निद्रां सुखतः सुखसम्भोगमात्रतः ॥
ततो ददर्श सुख्यन्तं पुराणश्रुतिसम्मितम् । निशावशेषसमये वाद्यादिपरिवर्जिते ॥ ३ ॥
अरोगी बद्धकेशश्च घस्त्रयुग्मसमन्वितः । सुतल्पशायी सुस्निग्धश्चिन्ताशोकविराजतः
किशोरवयसं श्यामं द्विभुजं मुरलीधरम् । पीतवस्त्रपरीधानं वनमालाविभूषितम् ॥ ५ ॥
चन्दनोक्षितसर्पाङ्गं मालतीमालयशोभितम् । भूषितं भूषणार्हञ्च सद्रत्नमणिभूषणैः ॥ ६ ॥
मयूरपिच्छचूडञ्च सस्मितं पद्मलोचनम् । पद्मभूतं द्विजशिशुं ददर्श प्रथमं मुने ॥ ७ ॥
ततो ददर्श रुचिरां पतिपुत्रवतीं सतीम् । पीतवस्त्रपरीधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥ ८ ॥
ज्वलत्प्रदीपहस्ताञ्च शुकुधान्यकरां वराम् । शरच्चन्द्रनिभास्याञ्च सस्मितां वरदां शुभाम्
ततो ददर्श विप्रञ्च प्रकुर्वन्तं शुभाशिपम् । श्वेतपद्मं राजहंसं तुरगञ्च सरोवरम् ॥ १० ॥
ददर्श चित्रितं चारु फलितं पुष्पितं शुभम् । आप्रनिम्पनारिकेलगुर्वार्कफदलीतरुम् ॥ ११ ॥
दंशन्तं श्वेतसर्पञ्च स्यात्मानं पर्वतस्थितम् । वृक्षस्थञ्च गजस्थञ्च तरिस्थं तुरगस्थितम्
वीणां वादितन्त्रञ्च भुक्तन्त्रञ्च पायसम् । दधिशोरयुताग्रञ्च पद्मपत्रस्थमीप्सितम् ॥
कृमिविद्वसहिताङ्गञ्च रुदन्तं मोहितं तदा । शुकुधान्यपुष्पकरं क्षणं चन्दनचर्चितम् ॥ १४ ॥
प्रासादस्थं समुद्रस्थमात्मानञ्च सलोहितम् । डिग्गमित्रक्षताङ्गञ्च मेदपूयसमन्वितम् ॥
ततो ददर्श रजतं मणि शुभ्रञ्च काञ्चनम् । मुक्तामणिक्वत्नञ्च पूर्णकुम्भजलं शुभम् ॥
सुरभीञ्च सरत्ताञ्च वृषभेन्द्रं मयूरकम् । शुकञ्च सारसं हंसं चित्तं यत्नमेव च ॥ १७ ॥
ताम्बूलं पुष्पमाल्यं ज्वलद्गन्धिं सुरार्चनम् । पार्वतीप्रतिमां कृष्णप्रतिमां शिवलिङ्गकम् ॥
विप्रबालाञ्च बालाञ्च सुपकरुलिनां कृपिम् । देवस्थलीञ्च राजेन्द्र सिद्धं व्याघ्रं गुरुंसुरम्

दृष्ट्वा स्वप्नं समुत्तस्थौ चकाराह्निकमीप्सितम् । उद्धवं कथयामास सर्वं वृत्तान्तमेव च

उद्धवाह्नां समादाय कृत्वा गुरुसुरार्चनम् ।

यात्रां चकार श्रीकृष्णं ध्यात्वा मनसि नारद ॥ २१ ॥

ददर्श घर्त्मन्येवञ्च मङ्गलाहं शुभप्रदम् । पान्छाफलप्रदं रम्यं पुरो मङ्गलसूचकम् ॥ २२ ॥

वामे शवं शिवां पूर्णकुम्भं नकुलवासकम् ।

पतिपुत्रवर्ती साध्वो दिव्याभरणभूषिताम् ॥ २३ ॥

शुक्लपुष्पञ्च माल्यञ्च धान्यञ्च खञ्जनं शुभम् । दक्षिणे ज्वलदग्निञ्च विप्रञ्च वृषभं गजम्

वत्सप्रयुक्तां धेनुञ्च श्वेताश्वं राजहंसकम् ।

वेश्याञ्च पुष्पमालाञ्च पताकां दधि पायसम् ॥ २५ ॥

मणिं सुवर्णं रजतं मुक्तामाणिक्यमीप्सितम् । सद्योमांसं चन्दनञ्च माध्वीकं घृतमुत्तमम्

कृष्णसारं फलं लाजसिद्धाहं दर्पणं तथा । विचित्रितं विमानञ्च सुदीप्तां प्रतिमां तथा

शुक्लोत्पलं पद्मवनं शङ्खचित्रं चकोरकम् । मार्जारं पर्वतं मेघं मयूरं शुक्लसारसम् ॥ २८ ॥

शङ्खकोकिलवाद्यानां ध्वनिं शुभ्राव मङ्गलम् ।

विचित्रं कृष्णसङ्कीर्तं हरिशब्दं जयध्वनिम् ॥ २९ ॥

पद्मभूतं शुभं दृष्ट्वा श्रुत्वा प्रहृष्टमानसः । प्रविवेश हरिं स्मृत्वा पुण्यं वृन्दावनं वनम् ॥

वदार्शं पुरतो रम्यं रासमण्डलमीप्सितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीपुष्पचन्दनघायुना ॥ ३१ ॥

पासितं मङ्गलघटै रम्भास्तम्भैर्विराजितम् । धाम्नपल्लवसङ्क्षेपैः पट्टसूत्रविचित्रितैः ॥ ३२ ॥

शोभितैः परितः शश्वत् पद्मरागविनिर्मितम् ।

शोभितं शोभनार्हञ्च त्रिकोटिरत्नमन्दिरैः ॥ ३३ ॥

रम्यैः कुञ्जकुटीरैश्च राजितं शतकोटिभिः । रासं वृन्दावनं दृष्ट्वा कियद्दूरं ययौ च सः

ददर्श पुरतो रम्यं नन्दब्रजमनुत्तमम् । परं वैकुण्ठसङ्काशं वैकुण्ठनिलयं शुभम् ॥ ३५ ॥

रत्नसोपानसंयुक्तं रत्नस्तम्भैर्विराजितम् ।

नानाचित्रविचित्राढ्यं सद्गन्धवलयान्वितम् ॥ ३६ ॥

खचितं मणिसारणं रचितं विश्वकर्मणा । द्वारिद्वयेन मार्गेण राजद्वारं विवेश सः ॥

पताकाररत्नजालाढ्यं मुक्तामाणिक्यभूषितम् । रत्नदर्पणशोभाढ्यं रत्नचित्रविचित्रितम् ।

रत्नवीथीचिरचितं मङ्गलं मङ्गलैर्घटैः ॥ ३८ ॥

अक्रूरागमनं श्रुत्वा साहादो नन्द पृथक् ।

सहितो रामकृष्णाम्ब्यां जगामानु व्रजाय वै ॥ ३९ ॥

वृकभान्वादिभिर्युक्तः कृत्वा वेश्यापुरःसराम् । पूर्णकुम्भं गजेन्द्रश्च कृत्वाऽग्रे शुकुधान्यकम्

कृष्णां गां मधुपर्कञ्च पाद्यं रत्नासनादिकम् ।

गृहीत्वा सादरः शान्तः सस्मितो चिन्ततस्तथा ॥ ४१ ॥

भानन्दयुक्तो नन्दश्च सगणः सह्यालकः । दृष्ट्वाऽक्रूरं महाभागं तूर्णमालिङ्गनं ददौ ॥ ४२ ॥

प्रणोमुः शिरसा सर्वे गोपा जगद्वराशिपम् । परस्परञ्च संयोगो बभूव गुणयान् मुने ॥

क्रोडे चकाराक्रूरश्च कृष्णं रामं क्रमेण च । चुचुभ्य गण्डयुगले पुलकाञ्जितविग्रहः ॥

साश्रुनेत्रोऽतिसाहादः कृतार्थः सिद्धवाञ्छितः ।

ददर्श कृष्णं द्विभुजं क्षणं श्यामलसुन्दरम् ॥ ४५ ॥

पीतवस्त्रपरीधानं मालतीमाल्यभूषितम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं परं यंशीधरं धरम् ॥ ४६ ॥

स्तुतं ब्रह्मेशोपायैर्मुनीन्द्रैः सनकादिभिः । वीक्षितं गोपकन्याभिः परिपूर्णतमं विभुम्

क्षणं ददर्श क्रोडस्थं सस्मितञ्च चतुर्भुजम् ।

लक्ष्मीसरस्यतीयुक्तं घनमालाविभूषितम् ॥ ४८ ॥

सुनन्दनन्दकुमुदैः पार्यदैः परिसेवितम् । सेवितं सिद्धसङ्गैश्च भक्तिनग्नैः परात्परम् ॥

क्षणं ददर्श देवं तं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् । शुद्धस्फटिकसद्भाशं नागराजविराजितम् ॥

दिगम्बरं परं ब्रह्म भस्माङ्गञ्च जटायुतम् ।

जपमालाकरं ध्याननिष्ठं श्रेष्ठञ्च योगिनाम् ॥ ५१ ॥

क्षणं चतुर्भुजं ध्याननिष्ठं श्रेष्ठं मनीषिणाम् । क्षणं धर्मस्वरूपञ्च शेषरूपं क्षणं क्षणम्

क्षणं भास्कररूपञ्च ज्योतीरूपं सनातनम् ।

क्षणं परमशोभाढ्यं कोटिकन्दर्पं निन्दितम् ॥ ५३ ॥

कामिनीकमनीयञ्च कामुकं कामसंयुतम् । एषभूतं शिशुं दृष्ट्वा स्थापयामास पक्षसि

रत्नसिंहासने रम्ये नन्ददत्ते च नारद । कृत्वा प्रदक्षिणं भक्त्या पुलकाञ्चितविग्रहः ।
प्रणम्य शिरसा भूमौ तुष्टाव पुरुषोत्तमम् ॥ ५५ ॥

अक्रूर उवाच ।

नमः कारणरूपाय परमात्मस्वरूपिणे । सर्वेषामपि विश्वानामीश्वराय नमो नमः ॥
पराय प्रकृतेरीश परात्परतराय च । निर्गुणाय निरीहाय नीरूपाय स्वरूपिणे ॥ ५७ ॥
सर्वदेवस्वरूपाय सर्वदेवेश्वराय च । सर्वदेवाधिदेवाय विश्वादिभूतरूपिणे ॥ ५८ ॥
असंख्येषु च विश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।

स्वरूपायाद्विधीजाय तदीशविश्वरूपिणे ॥ ५९ ॥

नमो गोपाङ्गनेशाय गणेशेश्वररूपिणे । नमः सुरगणेशाय राधेशाय नमो नमः ॥ ६० ॥
राधात्मणरूपाय राधारूपधराय च । राधाराध्याय राधायाः प्राणाधिकतराय च ॥
राधासाध्याय राधाधिदेवप्रियतमाय च । राधाप्राणाधिदेवाय विश्वरूपाय नमः ॥
वेदस्तुतात्मवेदज्ञरूपिणे वेदिने नमः । वेदाधिष्ठातृदेवाय वेदधीजाय ते नमः ॥ ६३ ॥
यस्य लोमसु विश्वानि चासंख्यानि च नित्यशः ।

महद्विष्णोरीश्वराय विश्वेशाय नमो नमः ॥ ६४ ॥

स्वयं प्रकृतिरूपाय प्राहृताय नमो नमः । प्रकृतीश्वररूपाय प्रधानपुरुषाय च ॥ ६५ ॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा मूर्च्छामाप सभातले । पपात सहसा भूमौ पुनरीशं ददर्श सः ॥
यद्विस्थं हृदयस्थञ्च परमात्मानमीश्वरम् । परितः श्यामरूपञ्च विश्वस्थं विश्वमेव च
अक्रूरं मूर्च्छितं दृष्ट्वा नन्दः सादरपूर्वकम् । रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास नारदः ॥ ६८ ॥
पप्रच्छ सर्ववृत्तान्तं किञ्चिद्दृष्टमिति त्वया । मिष्टान्नं भोजयामास कुशलञ्च पुनः पुनः
अक्रूरः कथयामास कंसवृत्तान्तमीप्सितम् । स्वपित्रोर्मोक्षणार्थञ्च गमनं रामकृष्णयोः
इत्यक्रूरकृतं स्तोत्रं यः पठेत् सुसमाहितः । अपुत्रो लभते पुत्रमभार्यो लभते प्रियाम् ॥
अधनो धनमाप्नोति निर्भूमिर्धनं मह्यम् । हतप्रजः प्रजां लेभे प्रतिष्ठाञ्च प्रतिष्ठितः ॥

यशः प्राप्नोति विपुलमयशस्वी च लीलया ॥ ७२ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे अक्रूरस्तोत्रम् ।

अथ सुध्वाप समये परं संहृष्टमानसः । रम्ये चम्पकतल्पे च कृष्णं कृत्वा स्वयक्षसि ॥
 प्रातरुत्थाय सहसा कृत्याहिकमनुत्तमम् । स्वरथे स्थापयामास रामं कृष्णं जगत्पतिम्
 गव्यं पञ्चप्रकारञ्च नानाद्रव्यं सुदुर्लभम् । वृषभानुञ्च तन्दञ्च सुनन्दं चन्द्रभानकम्
 नानाप्रकारं वाद्यञ्च मृदङ्गमुरजादिकम् । पटहं पणवञ्चैव ढङ्गां दुन्दुभिमानकम् ॥७६॥
 सज्जासंनहनीकांस्यपट्टमर्दमण्डयीम् । वाद्ययामास सानन्दं नन्दगोपो ब्रजेश्वरः ॥७७॥

श्रुत्वा वाद्यञ्च गोप्यश्च गमनं रामकृष्णयोः ।

दृष्ट्वा कृष्णं रथस्थं तमाययुः कोपपीडिताः ॥ ७८ ॥

कृष्णेन चारिताः सर्वाः प्रेरिता राधया द्विज । धमञ्जुतेश्वररथं पादाघातेन ह्रीलया ॥
 तत्र सर्वेषु गोपेषु हाहाकारं कृतेषु च । प्रययुर्धलशत्यश्च कृष्णं कृत्वा स्वयक्षसि ॥८०॥
 काचित्कूरं तमकूरं भर्त्सयामास कोपतः । काश्चिद्वदूध्याच्च वस्त्रेणचाक्रूरं प्रययुस्ततः
 काचित्त ताडयामास कङ्कणेन करेण च । तद्वस्त्रं हारयामास कृत्वा विचसनं मुने ॥
 क्षतविक्षतसर्वाङ्गं दृष्ट्वाक्रूरञ्च माधवः । जगाम राधानिकटं बोधयामास तां पुनः ॥
 आध्यात्मिकेन योगेन विनयेन च सादरम् । अक्रूरं बोधयामास बोधयामास तां विभुः
 आकाशात्पतितं दिव्यं मन्त्रप्रस्थापितं रथम् । विबिन्नवस्त्रसंयुक्तं ददर्श पुरतो हरिः ॥

खचितं मणिराजेन रचितं विश्वकर्मणा ।

तं दृष्ट्वा भातृभवनमाजगाम जगत्पतिः ॥ ८६ ॥

भुक्त्वा पीत्वा सुखं सुप्त्वा गमने सहवास्यवः । तस्यै मुनोन्द्रदेवेन्द्रब्रह्मेशोपपन्दिताः ॥
 सुपुपुर्गोपिकाः सर्वाः परं संहृष्टमानसाः । पुष्पतल्पे च रम्ये च राधया सह नारद ॥
 सर्वे चानन्दयुक्ताश्च जना गोकुलवासिनः । केचिद्रोपाश्च ननूतुः केचित् सङ्गीततत्पराः
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मप्रण्डे

गोपीविषयो नाम सप्ततितमोऽध्यायः ।

एकसप्ततितमोऽध्यायः

यात्रामङ्गलवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अधिकायाञ्च सुप्तायां सुप्तासु गोपिकासु च । पुष्पचन्दनतल्पे च घायुना सुरभीकृते
तीयप्रहरेऽतीते निशायाञ्च शुभक्षणे । शुभचन्द्रर्क्षयोगे चामृतयोगसमन्विते ॥ २ ॥
तैम्यस्वामियुते लग्ने सौम्यग्रहविलोकिते । पापग्रहसमासकदुष्टदोषादिवर्जिते ॥ ३ ॥

यशोदां बोधयामास कारयामास मङ्गलम् ।

बन्धूनाश्वासयामास समुत्थाय हरिः स्वयम् ॥ ४ ॥

बाधं निषेधयामास राधिकाभयभीतघत् ।

स्वतन्त्रो विश्वकर्ता च पाता भर्ता स्वतन्त्रवत् ॥ ५ ॥

रक्षालय पादयुगलं धृत्वा धौतेच वाससी । उवास संस्कृते स्थाने विलिते चन्दनादिना
रुलपल्लवसंयुक्तं संस्कृतं चन्दनादिभिः । वामे कृत्वा पूर्णकुम्भं वह्निं चिप्रं स्वदक्षिणे ॥
पतिपुत्रघर्तीं क्षीपं दर्पणं पुरतस्तथा । दूर्वाकाण्डञ्च सुस्निग्धं पुष्पं धान्यं सितंशुभम्
गुरुदत्तं गृहीत्वा च प्रददौ मस्तकोपरि । घृतं ददर्श माध्वीकं रजतं काञ्चनं दधि ॥ ६ ॥
चन्दनं लेपनं कृत्वा पुष्पमालां गले ददौ । गुरुवर्गं ब्राह्मणञ्च धन्दयामास भक्तिः ॥ १० ॥
शङ्खध्वनिं वेदपाठं सङ्गीतं मङ्गलाष्टकम् । विप्राशीर्षचनं रम्यं शुभ्राघ परमादरम् ॥ ११ ॥
ध्यात्वा मङ्गलरूपञ्च सर्वत्र मङ्गलप्रदम् । चिक्षेप दक्षिणं पादं सुन्दरं स्वात्मचिप्रहम् ॥
विधृत्य नासिकां धामप्रमाणं मध्यमयाचिभुः । विसृज्यघायुं सम्पूर्णं नासादक्षिणरत्नघतः
ततो ययौ नन्दनन्दो नन्दस्य प्राङ्गणं वरम् । सानन्दः परमानन्दो नित्यानन्दः सनातनः

नित्योऽनित्यो नित्यबीजस्वरूपो नित्यविहः ।

नित्याङ्गभूतो नित्येशो नित्यरुत्यचिशारदः ॥ १५ ॥

नित्यनूतनरूपञ्च नित्यनूतनयौघनः । नित्यनूतनवेशञ्च धयसा नित्यनूतनः ॥ १६ ॥

नित्यनूतनसम्भापो यत्प्रेम नित्यनूतनम् । नित्यनूतनसम्प्राप्तिः सौभाग्यं नित्यनूतनम् ।
सुधारसपरं मिष्टं यद्वाक्यं नित्यनूतनम् । नित्यनूतनभक्तञ्च यत्पदं नित्यनूतनम् ।

स्थायं स्थायं प्राङ्गणेऽस्मिन् मायेशो मायया युतः ।

अतीवस्ये सुस्निग्धो बभूव गमनोन्मुखः ॥ १६ ॥

रम्भास्तम्भसमूहैश्च रसालफल्गवान्वितैः । पटुसूत्रनिबद्धैश्च सुन्दरैश्च सुसंस्कृते ॥ २० ॥

पद्मरागेण खचिते रचिते विश्वकर्मणा । कस्तूरीकुङ्कुमाकैश्च चन्दनैश्च सुसंस्कृते ॥ २१ ॥

तत्र तस्थौ स्वयं कृष्णः सहाकूरः सधान्धवः ।

यशोदया समाश्लिष्टो धामपार्श्वेन मायया ॥ २२ ॥

नन्देनानन्दयुक्तेनाश्लिष्टो दक्षिणपार्श्वतः ।

सम्भाषितो बान्धवैश्च पित्रा मात्रा च बुभुक्षितः ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतायां महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मपण्डे याया-
मङ्गलं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ।

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीकृष्णस्य मथुरागमनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ कृष्णो गुहं नत्वा निर्गम्य शिविरान्मुने ।

आरुह्य स्वर्गयानञ्च शुभां मधुपुरीं ययौ ॥ १ ॥

चिवेश मथुरां रम्यांसहाकूरगणैसमम् । निर्जित्य शक्रनगरीं शोभायुक्तां मनोहराम् ॥

रत्नध्रेष्टेन रचितां रचितां विश्वकर्मणा । अमूल्यरत्नकलशैः राजितैश्च विराजिताम् ॥

राजमार्गशतैरिष्टैर्विष्टां रुचिरैर्वरेः । चन्द्राकारैश्चन्द्रसारैर्मणिभिः परिसंस्कृतेः ॥

विचित्रैर्मणिसारैश्च पीपीशतविनिर्मितैः । शोभितैर्वणिजैः श्रेष्ठैः पुण्ययस्तुसमन्वितैः ॥

सरोवरसहस्रैश्च परितः परिशोमिताम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशैः पद्मरागविराजितैः ॥ ६ ॥
 रत्नलङ्कारभूषाढ्यैः शोमितां पद्मिनोगणैः । स्थिरयौवनसंयुक्तैर्निमेषपरहितैः परैः ॥ ७ ॥
 साक्षतैर्ध्वजधनैः कृष्णदर्शनलालसैः । भ्रूमङ्गुलीलालोलैश्च शश्वच्चञ्चललोचनैः ॥ ८ ॥

शश्वत्कामसमायुक्तैः पीनश्रोणिपयोधरैः ।

कौमलाङ्गैर्मध्यकूपै रतिसारविशारदैः ॥ ९ ॥

रत्ननिर्माणयानानां कोटिभिः परिशोमिताम् ।

भूपणैर्भूषिताभिश्च चित्रिताभिश्च चित्रकैः ॥ १० ॥

नानाप्रकारश्रीयुक्तां पुष्पोद्यानत्रिकोटिभिः ।

नानापुष्पैः पुष्पिताभिर्गुंकाभिर्मधुसूदनैः ॥ ११ ॥

माधुर्यमधुसंयुक्तैर्मधुलुब्धैर्मृदान्वितैः । माध्वीकमधुमत्तैश्च युक्तैर्मधुकरीचयैः ॥ १२ ॥

नानाप्रकारदुर्गैश्च दुर्गम्यांघ्रिणिनां गणैः । रक्षितां रक्षकैःशश्वद्रक्षाशास्त्रचिशारदैः ॥

त्रिकोट्याट्टालिकाभिश्च संयुक्तां सुमनोहराम् । रचिताभिश्चसद्गजैर्विचित्रैर्विश्वकर्मणा

पद्मभूताञ्च मधुरां दृष्ट्वा कमललोचनः । वदति पथि कुञ्जां तां वृद्धामतिजरातुराम् ॥

यान्तीं दण्डसहायेन चातिनम्रां नमद्वलीम् ।

रक्षितां विदुताकारां चित्रती चन्दनद्रवम् ॥ १६ ॥

फस्तूरीरुद्रुमाकञ्च सृष्टमात्रेण नारद । सुगन्धिभकरन्देन गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ॥

सा दृष्ट्वासस्मिता वृद्धा श्रीकान्तं शान्तमीश्वरम् ।

श्रीयुक्तं श्रीनिवासं तं श्रीवीजं श्रीनिकेतनम् ॥ १८ ॥

प्रणम्य सहसामूर्ध्ना भक्तिनम्रा पुत्राञ्जलिः । प्रददौ चन्दनं तस्य गात्रे श्यामलसुन्दरे ॥

गात्रेषु तद्गणानाञ्च स्वर्णपात्रफरा घरा । कृत्वा प्रदक्षिणं कृष्णं प्रणनाम पुनःपुनः ॥

श्रीकृष्णदृष्टिमात्रेण श्रीगुक्ता सा बभूव ह । सहसा शोसमा रम्या रूपेण यौवनेन च ॥

पद्मिमुद्रा सुपसना रत्नभूषणभूषिता । यथा द्वादशवर्षीया कन्या धन्या मनोहरा ॥२२

पिम्योष्ठी सस्मिता श्यामा तप्तकाञ्चनसन्निभा ।

सुश्रोणी मुदतीविल्वफलतुल्यपयोधरा ॥ २३ ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणहारसारविराजिता । गजेन्द्रराजगमना रत्नमञ्जीररञ्जिता ॥ २४ ॥
विभ्रती कवरीभारं मालतीमाल्यवेष्टिताम् । रक्षितं वामभागेन हविर् घर्तुलाकृतिम् ॥ २५ ॥
सिन्दूरचिन्दुं दधती दाडिम्यकुसुमाकृतिम् । कस्तूरीचिन्दुमुपरि सार्द्धं चन्दनचिन्दुभिः
रत्नदर्पणहस्ता च प्रसस्ता रतिकर्मसु । श्रीकृष्णं वरयामास लोललोचनकोणतः ॥
श्रीवासस्तां समाश्वास्य ययौ स्थानान्तरं परम् ।

कृतार्थरूपा सा प्रीत्या ययौ पद्मा यथालयम् ॥ २८ ॥

साददर्शं स्वभवनं यथापद्यालयालयम् । रत्नशय्याविरक्षितं सद्रत्नसारनिर्मितम् ॥ २६ ॥
रत्नप्रदीपराजीभीराजतामिश्रं राजितम् । रत्नदर्पणराजैश्च राजितं परितस्ततः ॥ ३० ॥
सिन्दूरचस्त्रताम्बूलं श्वेतचामरमाल्यकम् । विभ्रतीमिश्रं दासीभिर्वेष्टितं दाससंघकैः ॥
तत्र गत्या च भुक्त्वा च मिष्टान्नं परममुदा । तुष्याप रत्नपर्यङ्के सा दासीमिश्रं सेचिता
सकपूर्वञ्च ताम्बूलं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् । चन्दनं स्थापयामास स्वतल्पे हरये सती ॥
मालतीमाल्ययुगलं कर्पूरादिसुवासितम् ।

शोतलं सलिलं स्यादु मिष्टान्नं स्वसमीपतः ॥ ३४ ॥

कर्मणा मनसा पाचा चिन्तयन्ती हरेः पदम् । हरेरागमनञ्चापि मुष्यन्मनोहरम् ॥
जगत्कृष्णमयं शश्वत्पश्यन्ती कामुकी मुने ।

कोटिकन्दर्पलीलाभं कामासक्तञ्च कामुकम् ॥ ३६ ॥

ततो ददर्श श्रीकृष्णो मालाकारं मनोहरम् । मालासमूहं विभ्रन्तं गच्छतं राजमन्दिरम्
सोऽपि दृष्ट्वा च श्रीकान्तं प्रणम्य शिरसाभुवि । ददौ माल्यसमूहञ्च कृष्णाय परमात्मने
कृष्णस्तस्मै वरं दत्त्वा स्वदास्यमतिदुर्लभम् । माल्यं गृहीत्वा प्रययौ राजमार्गं वरं वरः
ततो ददर्श रजकं विभ्रन्तं वस्त्रपुञ्जकम् । अहङ्कृतं बलिष्ठञ्च सततं यौवनोद्धतम् ॥ ४० ॥
घस्त्रं यथाचे तं कृष्णो विनयेन महामुने । स तस्मै न ददौ घस्त्रं तमुवाच च निष्ठुरम्
रजक उवाच ।

गोरक्षकाणां त्वयोग्यं घस्त्रमेतत् सुदुर्लभम् । राजयोग्यञ्च हे मूढ हे गोपजनबल्लभ ॥
गृहीत्वा गोपकन्याश्च कन्यालोलुपलम्पट । यद्विहारः कृतस्तत्र वृन्दारण्येऽप्यराजके ॥

न चात्र तादृशं कर्म राज्ञः कंसस्य वर्त्मनि ।

विद्यमानोऽत्र राजेन्द्रः शास्ता दुष्टस्य तत्क्षणम् ॥ ४४ ॥

रजकस्य घबः श्रुत्वा जहास मधुसूदनः । जहास यलदेवश्च साकूरो गोपवर्गकः ॥ ४५ ॥

तं निहत्य चपेटेन जग्राह वस्त्रपुञ्जकम् । वस्त्रं संधारयामास श्रीकृष्णः सगणस्तथा ॥

रत्नयानेन गोलोकं पार्यदैर्बहिर्गतेन च । ययौ रजकराजश्च धृत्वा दिव्यकलेष्वरम् ॥ ४७ ॥

शश्वद्यौघनयुक्तश्च जरामृत्युहरं धरम् । पीतचरित्रसमायुक्तं सस्मितं श्यामसुन्दरम् ॥

यभूय सोऽपि गोलोके पार्यदैषु च पार्यदैः । कृष्णस्यागमनं तत्र सस्मार सततं वशी ॥ ४९ ॥

अस्तं गतो दिनकरोऽप्यक्रूरः स्वगृहं ययौ ।

कृष्णस्यानुमतिं प्राप्य कृष्णोऽपि कस्यचिद् गृहम् ॥ ५० ॥

वैष्णवस्य कुविन्दस्य तस्मिन् न्यस्तधनस्य च । सानन्दो नन्दसहितो यलदेवादिभिर्युतः

स भक्तः पूजयामास प्रणम्य श्रीनिकेतनम् । तस्मै ददौ स्वदास्यञ्च ब्रह्मादिदेवदुर्लभम्

पर्यङ्गे सुषुप्तुः सर्वे भुक्त्या मिष्टान्नमुत्तमम् ।

निद्राञ्च लेभे सा कुञ्जा निद्रेशोऽपि ययौ मुदा ॥ ५३ ॥

गत्वा ददर्श कुञ्जां तां रत्नतले च निद्रिताम् । दासीगणैः परिवृतां सुन्दरीं कमलामिव

बोधयामास तां कृष्णो ॥ दासीश्चापि निद्रिताः ।

तामुवाच जगन्नाथो जगन्नाथप्रियां सतीम् ॥ ५५ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

स्वज निद्रां महामागे शृङ्गारं देहि सुन्दरि । पुरा शूर्पणखा त्वञ्च भगिनी रावणस्य च ॥

तपःप्रभाषान्मां कान्तं भज श्रीकृष्णजन्मनि ।

रामजन्मनि मदेतोस्त्वया कान्ते तप-रुतम् ॥ ५७ ॥

अधुना मुग्धसम्भोगं कृत्वा गच्छ ममालयम् । सुदुर्लभञ्चगोलोकं जरामृत्युहरं परम्

इत्युक्त्वा श्रीनिवासश्च कृत्वा तामेव पक्षसि ।

नग्रां चकार शृङ्गारं चुम्बनञ्चापि कामुकाम् ॥ ५९ ॥

सा सस्मिता च श्रीकृष्णं नयसङ्गमलज्जिता । चुचुम्ब गण्डे क्रोद्धेतां चकारकमलां यथा

सुरतेर्विरतिर्नास्ति दम्पती रतिपण्डितौ । नानाप्रकारसुरतं बभूव तत्र नारद ॥ ६१ ॥
स्तनश्रोणियुगं तस्या विश्वतश्च चकार ह । भगवान् नखरैस्तीक्ष्णैर्दशनैरधरं धरम् ॥ ६२ ॥
निशाचसानसमये पीड्याधानं चकार सः । सुखसम्भोगभोगेन मूर्च्छामाप च सुन्दरं
तत्राजगाम तां तन्द्रा कृष्णवक्षःस्थलस्थिताम् ।

बुबुधे न दिवारात्रं स्वर्गं मर्त्यं जलं स्थलम् ॥ ६४ ॥

सुप्रभाता च रजनी बभूव रजनोपतिः । पत्युर्व्यतिक्रमेणैव लज्जयैव मलीमसः ॥ ६५ ॥
अथाजगाम गोलोकात् रथो रत्नविनिर्मितः । जगाम तेन तं लोकं धृत्वा दिव्यकलेधरम्
षड्विंशद्वांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् । प्रतप्तकाञ्चनाभासं नित्यं जग्मादिवर्जितम् ॥ ६६ ॥
सा बभूव च तत्रैव गोपी चन्द्रमुखो मुने । गोप्यः कतिविधास्तस्या बभूवुः परिचारिका
भगवानपि तत्रैव क्षणं स्थित्वा स्वमन्दिरम् । जगाम यत्र नन्दश्च सानन्दो नन्दनन्दनः
अथ कंसो निशायाश्च निद्रायां भयविह्वलः । ददर्श दुःखदुःस्वप्नमात्मनो मृत्युसूचकम् ॥
ददर्श सूर्यं भूमिस्थं चतुःखडं नभश्च्युतम् । दशषण्डं चन्द्रविभ्यं भूमिस्थं आचच्युतमुने
पुरुषान् विकृताकारान् रज्जुहस्तान् दिग्म्बरान् ।

विधवां शूद्रपत्नीश्च नग्नाश्च छिन्ननासिकाम् ॥ ७२ ॥

हसन्तीं चूर्णतिलकां श्वेतकृष्णोच्चमूर्द्धजाम् । खड्गखर्परहस्ताश्च लोलजिह्वाश्च विघ्नतीम्
मुण्डमालासमायुक्तां गर्दभं महिषं वृषम् । शूकरं भल्लुकं काकं गृध्रं कङ्कश्च घानरम् ॥
धिरजं कुक्षुरं नरकं गृगालं भस्मपुत्रकम् । अस्थिराशि तालफलं केशं फार्पासमुल्बणम्
निर्वाणाङ्गारमुल्काश्च शवं मर्त्यं चित्ताश्रितम् ।

कुलालतैलकाराणां चक्रं चक्रं कपर्दकम् ॥ ७६ ॥

श्मशानं दग्धकाष्ठञ्च शुष्ककाष्ठं कुशं वृणम् । गच्छन्तश्च कबन्धश्च नदन्तं मृतमस्तकम्
दग्धस्थानं भस्मयुतं तट्टागं जलवर्जितम् । दग्धमत्स्यश्च लोहश्च निर्वाणदग्धकाननम् ॥
गलत्कुपुञ्जं वृषलं नग्नश्च मुक्तमूर्द्धजम् । अतीवरुष्टं विप्रश्च शपन्तं गुरुमीदृशम् ।
अतीवरुष्टं मिथुञ्च योगिनं वैष्णवं नरम् ॥ ७९ ॥

एवं दृष्ट्वा समुत्थाय कथयामास मातरम् । पितरं भ्रातरं पत्नीं रुदन्तीं प्रेमविह्वलाम् ॥

मञ्चकान् कारयामास स्थापयामास हस्तिनम्

महं सैन्यञ्च योद्धारं कारयामास मङ्गलम् ॥ ८१ ॥

सभाञ्च कारयामास पुण्यं स्वस्त्ययनं शिवम् । यत्नेन योजयामास योगेयुकंपुरोहितम्

उवाच मञ्चके रणे धृत्वा खड्गं विलक्षणम् । रणे नियोजयामास योद्धारं युद्धकोविदम्

वासयामास राजेन्द्रान् ब्राह्मणांश्च मुनींश्च पान् ।

ब्राह्मणांश्च सुहृद्गान् धर्मिष्ठान् रणकोविदान् ॥ ८४ ॥

अथाजगाम गोविन्दो रामेण सह नारद । महेशस्य धनुर्मध्यं वमज्ज तत्र लीलया ॥ ८५ ॥

शब्देन नस्य मथूरा, वधिरा च यभूव ह ॥ ८६ ॥

विषादं प्राप कंसश्च मुदञ्च देवकीसुतः । उपस्थितः सभामध्ये गजमहं निहत्य च ॥

योगी ददर्श तं देवं परमात्मानमीश्वरम् । यथा हृत्पद्ममध्यस्थं तादृशं धहिरैव च ॥ ८८

राजेन्द्ररूपं राजानः शस्तारं दण्डधारिणम् ।

पिता माता दुग्धमुखं स्तनान्वयं बालकं यया ॥ ८९ ॥

कामिन्यः कोदिकन्दर्पलीलावाप्यधारिणम् । कंसश्च कालपुरुषं बैरिणं तत्सयान्धवाः

महा सृष्ट्युपदञ्चैव प्राणतुल्यञ्च यादवाः ॥ ९० ॥

नमस्कृत्य मुनीन् विप्रान् पितरं मातरं गुरुम् । जगाम मञ्चकाम्पासं हस्ते कृत्वा सुदर्शनम्

दृष्ट्वा भक्तं भक्त्यन्तुः कृपया च कृपानिधिः ।

आकृष्य मञ्चकात् कंसं जघान लीलया मुने ॥ ९२ ॥

राजा ददर्श विश्वञ्च सर्वं कृष्णमयं परम् । पुरतो रत्नयानञ्च हीराहारविभूषितम् ॥ ९३ ॥

ययौ क्षिप्नुपदं स्फोतो दिव्यरूपं विधाय च । तेजो विवेश परमं कृष्णपादाम्बुजे मुने

निवृत्त्य तस्य सत्कारं ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ । ददौ राज्यं राजञ्छत्रमुग्रसेनाय श्रीमते

स यभूव नृपेन्द्रश्च चन्द्रवंशसमुद्भवः । विललाप कंसमाता पत्नीवर्गश्च तत्पिता ॥ ९६ ॥

वान्धवा मातृवर्गश्च मगिनो भ्रातृकामिनी । दर्शनं देहि राजेन्द्र समुत्तिष्ठ नृपासने ॥ ९७ ॥

राज्यं रक्ष धनं रक्ष वान्धवं बलमेव च ।

क यासि वान्धवान् ह्रित्वा त्वमेताथान् महाबल ॥ ९८ ॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तमसंख्यं विश्वमेव च । सर्वं चराचराधारं यः सृजत्येव लीलया ॥
ब्रह्मेशशेषधर्माश्च दिनेशश्च गणेश्वरः । मुनीन्द्रवर्गो देवेन्द्रो ध्यायते यमहर्निशम् ।

वेदाः स्तुचन्ति यं कृष्णं स्तौति भीता सरस्वती ।

स्तौति यं प्रकृतिर्हृष्टा प्राकृतं प्रकृतेः परम् ॥ १०१ ॥

स्वेच्छामयं निरोहश्च निर्गुणश्च निरञ्जनम् । परात्परतरं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ॥ १०२ ॥

नित्यं ज्योतिःस्वरूपश्च भक्तानुग्रहविग्रहम् । नित्यानन्दश्च नित्यश्च नित्यमक्षरविग्रहम्
सोऽवतीर्णो हि भगवान् भारावतरणाय च । गोपालबालवेशश्च मायेशो मायया प्रभुः

स यं हन्ति च सर्वेशो रक्षिता तस्य कः पुमान् ।

स यं रक्षति सर्वात्मा तस्य हन्ता न कोऽपि च ॥ १०५ ॥

इत्येषमुत्था सर्वश्च विरराम महामुने । ब्राह्मणान् भोजयामास तेभ्यः सर्वं धनं ददौ ॥
भगवानपि सर्वात्मा जगाम पितुरन्तिकम् । छिन्धा च लोहनिगडं तयोर्मोक्षञ्चकारसः
ननाम दण्डवद्भूमौ मातरं पितरं तथा । तुष्टाव भक्त्या देवेशो भक्तिप्रदात्मकन्धरः ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पितरं मातरं विद्यामन्त्रदं गुरमेव च । यो न पुष्पाति पुरुषो यावज्जीवञ्च सोऽशुचिः
सर्वेषामपि पूज्यानां पिता वन्द्यो महान् गुरुः । पितुःशतगुणैर्माता गर्भधारणपोषणात्
माता च पृथिवीरूपा सर्वेभ्यश्च हितैषिणी । नास्ति मातुः परो वन्द्युः सर्वेषां जगतीतले
विद्यामन्त्रप्रदः सत्यं मातुः परतरो गुरुः । न हि तस्मात्परः कोऽपि वन्द्यः पूज्यश्च वेदतः

इत्येषमुत्था श्रीकृष्णो बलभद्रो ननाम च ।

माता चकार तौ कोऽपि पिता च सादरं मुने ॥ ११३ ॥

मिष्टान्नं परमं तौ च भोजयामास सादरम् । नन्दञ्च भोजयामास गोपालान् परमादरम्
मङ्गलं कारयामास भोजयामास ब्राह्मणान् । वसुर्वसुसमूहञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

कंसवधवसुदेवदेवकीमोक्षणं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

नन्दाय ज्ञानकथनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथकृष्णञ्च सानन्दं नन्दं तं पितरंयलः । बोधयामासशोकातं दिव्यैराध्यात्मिकादिभिः
इष्टैरुदन्तं निश्चेष्टं पुत्रविच्छेदकातरम् । गत्वा तस्मै मुनिश्रेष्ठमित्युवाच जगत्पतिः ॥

श्रीभगवानुवाच ।

निबोध नन्द सानन्दं त्यज शोकं मुदं लभ । ज्ञानं गृहाण महत्तं यद्वत्तं ब्रह्मणे पुरा ॥३॥
पद्महस्तञ्च शेषाय गणेशायेश्वराय च । दिनेशाय मुनीशाय योगेशाय च पुष्करे ॥४॥

कः कस्य पुत्रः कस्तातः का माता कस्यचित् कुतः ।

आयान्ति यान्ति संसारं परं स्वकृतकर्मणा ॥ ५ ॥

कर्मानुसाराज्जन्तुश्च जायते स्थानभेदतः ।

कर्मणा कोऽपि जन्तुश्च योगीन्द्राणां नृपस्त्रियाम् ॥ ६ ॥

द्विजपत्न्यांक्षत्रियायां वैश्यायांशूद्रयोनिषु । तिर्पग्योनिषुकश्चिच्च कश्चित्पशवादियोनिषु
ममैव मायया सर्वे सानन्दा विषयेषु च । देहत्यागे विषण्णाश्च विच्छेदे बान्धवस्य च

प्रजाभूमिधनादीनां विच्छेदो मरणाधिकः ।

नित्यं भवति मूढश्च न च विद्वान् शुचा युतः ॥ ६ ॥

मद्भक्तो भक्तियुक्तश्च मद्याजी विजितेन्द्रियः । मन्मन्त्रोपासकश्चैव भक्तसेवानिरत शुचिः
मद्भयाद्वाति घातोऽयं रविर्भाति च नित्यशः । भाति चन्द्रो महेन्द्रश्च कालमेदे च वर्पति
वह्निर्दहति मृत्युश्च चरत्येव हि जन्तुषु । विभर्ति वृक्षः कालेन पुष्पाणि च फलानि च
निराधारश्च वायुश्च वाय्वाधारश्च कच्छपः । शेषश्च कच्छपाधारः शेषाधाराश्च पर्वताः

तदाधाराश्च पातालाः सप्त एव हि पङ्क्तिः ।

निश्चलञ्च जलं तस्माज्जलस्था च वसुन्धरा ॥ १४ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः] * नन्दाय ज्ञानकथनम् *

६२६.

सप्तस्वर्गं धराधारं ज्योतिश्चक्रं ब्रह्माश्रयम् । निराधारश्च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डेभ्यः परोपरः
तत्परश्चापि गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनात् ।

ऊर्ध्वं निराश्रयश्चापि रत्नसारविनिर्मितः ॥ १६ ॥

सप्तद्वारः सप्तसारः परिखासप्तसंयुतः । लक्षप्राकारयुक्तश्च नद्या विरजया युतः ॥ १७ ॥

वेष्टितो रत्नशैलेन शतशृङ्गेणचारुणा । योजनायुतमानश्च यस्पर्कं शृङ्गमुज्ज्वलम् ॥
शतकोटियोजनश्च शैल उच्छ्रित एव च ।

दैव्यं तस्य शतगुणं प्रस्थञ्च लक्षयोजनम् ॥ १८ ॥

योजनायुतविस्तीर्णस्तत्रैव रासमण्डलः । अमूल्यरत्ननिर्माणो चतुर्लङ्घनप्रविश्ववत् ॥

पारिजातचनेनैव पुष्पितेन च वेष्टितः । कल्पवृक्षसदृशेण पुष्पोद्यानशतेन च ॥ २१ ॥

नानाविधैः पुष्पवृक्षैः पुष्पितेन च चारुणा ।

त्रिकोटिरत्नभवनो गोपीलक्षैश्च रक्षितः ॥ २२ ॥

रत्नप्रदीपयुक्तश्च रत्नतल्पसमन्वितः । नानाभोगसमायुक्तो मधुवापीशतैर्वृतः ॥ २३ ॥

पीयूषवापीयुक्तश्च कामभोगमसन्वितः । गोलोकगृहसंख्यानवर्णने वा विशारदः ॥ २४ ॥

न कोऽपि वेद विद्वान् वा वेदविद्वान् यज्ञेश्वरः ।

अमूल्यरत्ननिर्माणभवनानां त्रिकोटिभिः ॥ २५ ॥

शोभितसुन्दरं रम्यं राधाशिविरमुत्तमम् । अमूल्यरत्नस्तम्भानां राजिभिश्चविराजितम्

नानाचित्रविचित्रैश्च चित्रितं श्वेतचामरैः ॥ २७ ॥

माणिक्यमुक्तसंस्पर्कं हीराहारसमन्वितम् । रत्नप्रदीपसंस्पर्कं रत्नसोपानसुन्दरम् ॥ २८ ॥

अमूल्यरत्नपात्रैश्च तल्पराजिविराजितम् । अमूल्यरत्नविचित्रैश्च त्रिमिश्रचित्रविचित्रितैः

तिसृभिः परिखामिष्व त्रिमिहारेष्व दुर्गभिः । युक्तं षोडशकक्षाभिः प्रतिद्वारेषुवान्तरम्

गोपीषोडशलक्षैश्च सत्रियुक्तैरितस्ततः । बह्विशुद्धांशुकाधानैः रत्नभूषणभूषितैः ॥ ३१ ॥

तप्तकाञ्चनवर्णभिः शतचन्द्रसमन्वितैः । राधिकाकिट्टरैर्वर्गैर्युक्तमभ्यन्तरं परम् ॥ ३२ ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणप्राङ्गणं सुमनोहरम् । अमूल्यरत्नस्तम्भानां समूहेष्वसुशोभितम् ॥ ३३ ॥

रत्नमङ्गलकुम्भैश्च फलपल्लवसंयुतैः । संयुतं रत्नवेदीभिर्युक्तायुक्ताभिराग्नितम् ॥ ३४ ॥

अमूल्यरत्नमुकुरैः शोभितं सुन्दरैरहो । अमूल्यरत्ननिर्माणं भवनानां घरं गृहम् ॥ ३५ ॥

रत्नसिंहासनस्था ॥ गोपीलक्ष्मैश्च सेविता ।

कोटिपूर्णन्दुशोभाढ्या श्वेतचम्पकसन्निभा ॥ ३६ ॥

अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणैश्च विभूषिता । अमूल्यरत्नवसना विभ्रती रत्नदर्पणम् ॥ ३७ ॥

रत्नपद्मञ्च रुचिरं सज्यदक्षिणहस्ततः । दाडिम्बकुसुमाकारं सिन्दूरंसुमनोहरम् ॥ ३८ ॥

सुशोभितं मृगमदैरिष्टैश्चन्दनचिन्दुभिः । वधूतीकवरीभारं भालतीमादपमण्डितम् ॥

रचितं घामभागेन मुनीन्द्राणां मनोहरम् ।

एवम्भूतं तत्र राधा गोपीभिः परिसेविता ॥ ४० ॥

श्वेतचामरहस्ताभिस्तुल्यामिश्रं सर्वतः । अमूल्यरत्ननिर्माणैर्भूषितामिश्रं भूषणैः ॥

मत्प्राणाधिष्ठातृदेवी देवीनां प्रवरा वरा । सुदान्तः सा च शापेन वृषभानसुताऽधुना ॥

शताब्दिको हि विच्छेदो भविष्यति मया सह ।

तेन भारावतरणं करिष्यामि भुयःपिता ॥ ४३ ॥

तदा यास्यामि गोलोकं तथा सार्द्धं सुनिश्चितम् ।

तवया यशोदया चापि गोपेर्गोपीभिरेव च ॥ ४४ ॥

वृषभानेनतत्पत्न्या कलावत्या च बान्धवैः । एवं च नन्दं सानन्दं यशोदां कथयिष्यति

त्यज शोकं महाभाग व्रजैः सार्द्धं व्रजं व्रज । अहमात्मा च साक्षी च निर्लितः सर्वजीविषु

जीवो मत्प्रतिविम्बश्च इत्येवं सर्वसम्मतम् ।

प्रकृतिर्मद्विकारा च साप्यहं प्रकृतिः स्वयम् ॥ ४७ ॥

यथा दुग्धे च घावह्यं न तयोर्मद एव च । यथा जले तथाशैत्यं यथा चह्नौ च दाहिका

यथाऽऽकाशे तथा शब्दो भूमी गन्धो यथा नृप । यथाशोभा च चन्द्रे च यथादिनकरे प्रभा

यथा जीवस्तथात्मानं तथैव राक्षसा सह ।

त्यज त्वं गोपिकाबुद्धिं राधायां मयि पुत्रताम् ॥ ५० ॥

अहं सर्वस्य प्रभवः सा च प्रकृतिरीश्वरो । श्रूयतां नन्द सानन्दं मद्विभूतिसुखावहाम् ॥

पुरा या कथिता तातब्रह्मणेऽन्यकजन्मने । कृष्णोऽहं देवतानाञ्च गोलोके द्विभुजः स्वयम्

चतुर्भुजाऽहं वैकुण्ठेशिवलोके शिवः स्वयम् । ब्रह्मलोकेव ब्रह्माऽहं सूर्यस्तेजस्विनामहम्
पवित्राणामहं घट्टिर्जलमेव द्रवेषु च । इन्द्रियाणां मनश्चास्मि समीरः शीघ्रगामिनाम् ॥

यमोऽहं दण्डकर्तृणां कालः कल्पतामहम् ।

अक्षराणामकारोऽस्मि साम्नाञ्च साम एव च ॥५५॥

इन्द्रश्चतुर्दशेन्द्रेषु कुर्येरो धनितामहम् । ईशानोऽहं दिगीशानां व्यापकानां नभस्तथा ॥
सर्वान्तरात्मा जीवेषु ब्राह्मणश्चाश्रमेषु च । धनानाञ्च रत्नमहममूर्त्यं सर्वदुर्लभम् ॥

तैजसानां सुवर्णोऽहं मणीनां कौस्तुभः स्वयम् ।

शालग्रामस्तथार्च्यानां पत्राणां तुलसीति च ॥ ५८ ॥

पुष्पाणां पारिजातोऽहं तीर्थानां पुष्करः स्वयम् ।

वैष्णवानां कुमारोऽहं योगीन्द्राणां गणेश्वरः ५९ ॥

सेनापतीनां स्कन्दोऽहं लक्ष्मणोऽहं धनुष्मताम् ।

राजेन्द्राणाञ्च रामोऽहं नक्षत्राणामहं शशी ॥ ६० ॥

मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनामस्मि माधवः । वार्य्यादित्यवारोऽहं तिथिष्वेकादशीति-
सहिष्णूनाञ्च पृथिवी माताहं वान्धवेषु च । अमृतं भक्ष्यवस्तूनां गन्धेष्व्याज्यमहं तथ
फलपट्टक्षश्च वृक्षाणां सुरभी कामधेनुषु । गङ्गाऽहं सरितां मध्ये कृतपापविनाशिनी ।

वाणीति पण्डितानाञ्च मन्त्राणां प्रणवस्तथा ।

विद्यासु वीजरूपोऽहं शस्यानां धान्यमेव च ॥ ६४ ॥

अश्वत्थः फलितामेव गुरूणां मन्त्रदः स्वयम् । कश्यपश्च प्रजेशानां गरुडः पक्षिणां तथा
अनन्तोऽहञ्च नागानां नराणाञ्च नराधिकः । ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं देवर्षीणाञ्च नारदः ॥६६॥

राजर्षीणाञ्च जनको महर्षीणां शुकस्तथा ।

गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ ६७ ॥

वृहस्पतिर्बुद्धिमतां कवीनां शुरु एव च । ब्रह्मणाञ्च शनिरहं विश्वकर्मा च शिल्पिनाम् ॥
मृगाणाञ्च मृगेन्द्रोऽहं वृषाणां शिववाहनम् । ऐरावतो गजेन्द्राणां गायत्री छन्दसामहम्
वेदाश्च सर्वशास्त्राणां धरुणो यादसामहम् । उर्वश्यप्तरसामेव समुद्राणां जलार्णवः ॥

सुमेरुः पर्वतानाञ्च रत्नचतसु हिमालयः । दुर्गा च प्रकृतीनाञ्च देवीनां कमलालया ॥
शतरूपा च नारीणां मत्प्रियाणाञ्च राधिका ।

सार्ध्वानामपि सावित्री वेदमाता च निश्चितम् ॥ ७२ ॥

प्रह्लादश्चापि वैत्यानां बलिष्ठानां बलिः स्वयम् । नारायणर्षिर्भगवान् ज्ञानिनामध्यप्य च
हनूमान् घानराणाञ्च पाण्डवानां धनञ्जयः । मनसा नागकन्यानां वसुता द्रोण एव च
द्रोणो जलधराणाञ्च वर्षाणां भारतं तथा । कामिनां कामदेवोऽहं रम्भा च कामुकीपुत्र
गोलोकश्चास्मि लोकानामुत्तमः सर्वतः परः । मातृकासु शान्तिरहं रतिश्च सुन्दरीषु च
धर्मोऽहं साक्षिणां मध्ये सन्ध्या च वासरेषु च ।

देवेष्वहञ्च माहेन्द्रो राक्षसेषु विभीषणः ॥ ७३ ॥

कालाग्रिहृदो रुद्राणां संहारो भैरवेषु च । शंखेषु पाञ्चजन्योऽहं अङ्गेष्वपि च मस्तकः
परं पुराणसूत्रेषु चाहं भागवतं धरम् ।

भारतं चेतिहासेषु पञ्चरात्रेषु कापिलम् ॥ ७४ ॥

स्वायम्भुवो मनूनाञ्च मुनीनां व्यासदेवकः । स्वधाऽहं पितृपत्नीषु स्वाहा घृष्टप्रियासु च
यज्ञानां राजसूयोऽहं यज्ञपत्नीषु दक्षिणा । शस्त्रास्त्रज्ञेषु रामोऽहं जमदग्निस्तुतो महान्
पौराणिकेषु सूतोऽहं नीतिवत्स्वङ्गिरा मुनिः । विष्णुव्रतं व्रतानाञ्च यत्नानां देवमेव च ।
औपधीनामहं दूर्या तृणानां कुशमेष च । धर्मकर्मसु सत्यञ्च स्नेहपात्रेषु पुत्रकः ॥ ८३ ॥
अहं व्याधिश्च शत्रूणाञ्ज्वरो व्याधिष्वहं तथा । मङ्गकिष्वपि महास्यं वरैषु च वरः स्मृतः
आश्रमाणां गृहस्थोऽहं सग्न्यासां च विवेकिनाम् ।

सुदर्शनञ्च शस्त्राणं कुशलञ्च शुभाशिवाम् ॥ ८५ ॥

पेश्वर्याणां महाज्ञानं वैराग्यञ्च सुखेष्वहम् । मिष्टवाक्यं प्रीतिदेषु दानेषु चात्मदानकम्
सञ्ज्ञेषु धर्मकर्म कर्मणाञ्च मदर्चनम् । कठोरेषु तपश्चाहं फलेषुः मोक्ष एव च ॥ ८७ ॥
अष्टसिद्धिषु प्राकाम्यमहं काशी पुरीषु च । नगरेषु तथा काञ्चीसदेशो यत्र वैष्णवः
सर्वाधारेषु स्थूलेषु अहमेव महान्विराट् । परमाणुरहं विश्वे महासूक्ष्मेषु नित्यशः ॥ ८८ ॥
वैद्यानामश्विनीपुत्रो चोपधीषु रसायनः । धन्वन्तरिर्मन्त्रविदां विषादः क्षयकारिणाम्

चतु सप्ततितमोऽध्यायः] * भगवन्नन्दसंवादवर्णनम् *

६३३

रागाणां मेघमल्लारः कामोदस्तत्प्रियासु च ।

मत्पार्यदेषु श्रोदामा मद्वन्धुष्वहमुद्धवः ॥ ६१ ॥

पशुजन्तुषु गौश्चाहं चन्दनं काननेषु । तीर्थभूतश्च पूतेषु निःशङ्केषु च वैष्णवः ॥ ६२ ॥
न वैष्णवात् परः प्राणी मन्मन्त्रोपासकश्च यः । वृक्षेष्वङ्कुररूपोऽहमाकारः सर्ववस्तुषु
अहं च सर्वभूतेषु मयि सर्वे च सन्ततम् । यथा वृक्षे फलान्येव फलेषु चाङ्कुरस्तरोः ॥
सर्वकारणरूपोऽहं न च मत्कारण परम् । सर्वेशोऽहं न मेऽपीशो ह्यहं कारणकारणम्
सर्वेषां सर्वधीजानां प्रचदन्ति मनीषिणः । मन्मायामोहितजना मां न जानन्ति पापिनः ॥

पापप्रस्तेन दुर्युद्ध्या विधिना वञ्चितेन च ।

स्यात्माहं सर्वजन्तूनां स्यात्माहं नाद्रुतः स्वयम् ॥ ६७

यत्राहं शक्यस्तत्र क्षुत्पिपासादयस्तथा । गते मयि तथा यान्ति नरदेहे यथानुगाः ॥
हे व्रजेश नन्द तात ज्ञानं ज्ञात्वा व्रजं व्रज । कथयस्व च तां राधां यशोदां ज्ञानमेव च
ज्ञात्वा ज्ञानं व्रजेशश्च जगाम स्वानुगैः सह । गत्वा च कथयामास ते द्वे च योपिताघदे
ते च सर्वेजद्भुः शोकं महाजनैर्न नारद । कृष्णो यद्यपि निर्लिप्तो मायेशो मायया रतः
यशोदया प्रेरितश्च पुनरागत्य माधवम् । तुष्टाव परमानन्दं नन्दश्च नन्दनन्दनम् ॥ १०२ ॥

सामवेदोक्तस्तोत्रेण कृतेन प्रह्वणा पुरा ।

पुत्रस्य पुरतः स्थित्वा हरोव च पुनः पुनः ॥ १०३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
नन्दादिशोकप्रमोचनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

भगवन्नन्दसंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

श्रीकृष्णः परमानन्दः परिपूर्णतमः प्रभुः । परमात्मा च परमो भक्तानुग्रहकातरः ॥ १ ॥

भुवो भाराघतरणे निर्गुणः प्रकृतेः परः । परात्परस्तु भगवान् ब्रह्मेशशेषवन्दितः ॥२॥
तुष्टो नन्दस्तवं श्रुत्वा तमुवाच जगत्पतिः । आगच्छन्तं गोकुलाच्च विरहज्वरकातम्
श्रीभगवानुवाच ।

गच्छ नन्द ध्वजं नन्द त्यज शोकं भ्रमं भुवि । शृणु सत्यं परं ज्ञानं शोकप्रन्थिमिकृन्तनम्
वायुश्च भूमिराकाशो जलं तेजश्च पञ्चकम् । उक्तं श्रुतिगणैरेतैः पञ्चभूतैश्च नित्यशः
सर्वेषां देहिनां तात वैदृश्चपाञ्चभौतिकः । मिथ्याभ्रमः कृत्रिमश्च स्वप्नप्रमायवान्वितः
देहं गृह्णन्ति सर्वेषां पञ्चभूतानि नित्यशः । मायासङ्केतरूपं तदभिज्ञानं भ्रमात्मकम् ॥

को वा कस्य सुतन्तात का स्त्री कस्य पतिस्तु वा ।

कर्मणा भ्रमणं शय्यत् सर्वेषां भुवि जन्मनि ॥ ८ ॥

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते । सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणा च प्रपद्यते ॥

केषां वा जन्म स्वर्गेषु केषां वा ब्रह्मणो गृहे ।

केषां विप्रेषु क्षत्रेषु केषां वा वैश्यशूद्रयोः ॥ १० ॥

भतिनीचेषु केषां वा केषां कृमिषु विद्मस्तु च । पशुपक्षिषु केषां वा केषां वा क्षुद्रजन्तुषु
पुनः पुनर्भ्रमन्त्यैव सर्वे तात स्वकर्मणा । करोति कर्म निर्मूलं मद्भक्तो मत्प्रियः सदा
कृतं श्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्युगम् । पञ्चविंशत्सहस्राणां युगान्ते निधनं मनोः ॥
मनोःसमंमहेन्द्रस्य परमायुर्विनिर्मितम् । चतुर्विंशेन्द्रविच्छिन्नो ब्रह्मणो दिनमुच्यते ॥

एवं परिमिता रात्रिः कालविद्विर्धिनिर्मिता ।

एवं परिमिता मासा वर्षञ्च परिनिश्चितम् ॥ १५ ॥

ब्रह्मणश्च वर्षशतं परमायुर्विनिर्मितम् । निमेषमात्रं फालोऽयं ब्रह्मणो निधने मम ॥१६॥

ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं विश्वे चिनिश्चितम् ।

सत्योऽहं परमात्मा च भक्तानुग्रहविग्रहः ॥ १७ ॥

मन्मन्त्रोपासकः सत्यो देह त्यक्त्वा धरास्तु च ।

यास्यत्येष हि गोलोकं छित्त्वा कर्म पुरातनम् ॥ १८ ॥

असंख्यब्रह्मणां पाते न भवेत्तस्य पातनम् ।

गृह्णाति नित्यं स्वं देहं जन्ममृत्युजरापहम् ॥ १६ ॥

न नन्द मम भक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् । नित्यं सुदर्शनं तांश्च परिरक्षति सर्वतः ॥

मत्तो हि बलवान् भक्तश्चिन्तितोऽहं न चिन्तितः ।

अहं स्वामी च तस्यैव न मे स्वामी पिता प्रसूः ॥ २१ ॥

पुत्रबुद्धिं परित्यज्य भज मां ब्रह्मरूपिणम् । छिन्त्या च कर्मनिगडं गोलोकं तद्ब्रजस्वयम्
कथयस्व यशोवाञ्छ गोपी गोपगणं ब्रज । तैश्च सर्वैर्जनैः शोकं त्यज स्वमन्दिरं ब्रज
इत्येवमुक्त्वा भगवान् विरराम च संसदि । पप्रच्छ पुनरेवं तं नन्दश्चानन्दसंलुतः ॥

नन्द उवाच ।

यद्य सांसारिकं ज्ञानं येन यास्यामित्यल्पम् । मूढोऽहं परमानन्द श्रुतीनां जनकोभवान्
नन्दस्य ध्वनं श्रुत्या सर्वतो भगवान् स्वयम् । आह्विकं कथयामास श्रुतिभिर्नश्रुतं हियत्
इति श्रोब्रह्मदेवसं महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
भगवन्नन्दसंवादे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

आह्विकवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि ज्ञानञ्च परमाद्भुतम् । सुगोपनीयं वेदेषु पुराणेषु च दुर्लभम् ॥ १ ॥
न विश्वासो हि नारीषु सन्ततं कुलटासु च । मोक्षमार्गाङ्गलास्वेव भ्रमयामासुभूमिषु ॥
हरिभक्तोरसाध्वीनां विरूढासु युतासु च । बीजरूपासु नाशानां प्रमदासु ब्रजेश्वर ॥ ३ ॥
नित्यञ्च प्रातःकृत्याथ रात्रिवासो विहाय च । अभीष्टदेवं हृत्पद्मे ब्रह्मे रक्षे गुह्यं परम् ॥
विचिन्त्य मनसा प्रातःकृत्यं कृत्वा सुनिश्चितम् ।
ज्ञानं करोति सुप्राज्ञो निर्मलेषु जलेषु च ॥ ५ ॥

न सङ्कल्पञ्च कुरुते भक्तः कर्मनिरुन्तनः । स्नात्वा हरिं स्मरेत् सन्ध्यां कृत्वा याति गृहं प्रति
प्रक्षाल्य पादौ प्रविशेन्निधाय धौतवाससी । पूजयेत् परमात्मानं मामेव मुक्तिकारणम्
शालग्रामे मणौ यन्त्रे प्रतिमायां जलेऽपि च । तथा च विघ्ने गधि च गुरुपदे वा विशेषतः
घटेऽष्टदलपत्रे च पात्रे चन्दननिर्मिते । आपाहनञ्च सर्वत्र शालग्रामे जले न च ॥ ६ ॥

मन्त्रानुरूपध्यानेन ध्यात्वा मां पूजयेद् व्रती ।

पौडशोपचारद्वयाणि दद्यान्मूलेन भक्तिः ॥ १० ॥

श्रीदामानं सुदामानं वसुदामानमेव च । वीरमानुं शूरमानुं गोपान् पञ्च प्रपूजयेत् ॥ ११ ॥
सुनन्दनन्दकुमुदं पार्षदं मे सुदर्शनम् । लक्ष्मीं सरस्वतीं दुर्गां राधां गङ्गां वसुन्धराम्
गुरुञ्च तुलसी शम्भुं कार्तिकेयं विनायकम् ।

नवग्रहांश्च दिक्पालान् परितः पूजयेत् सुधीः ॥ १३ ॥

देवपक्षञ्च संपूज्य सर्वादौ विघ्नविघ्नतः । गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्
श्रुतौ विनिर्मितान् देवान् मोक्षदान् कर्मकृन्तनान् ।

गणेशं विघ्ननाशाय सूर्यं व्याधिविनाशने ॥ १५ ॥

वह्निप्राप्तिनिमित्तेन शान्ती शुद्धौ भवेद्बुधम् । विष्णुं मोक्षनिमित्तेन ज्ञानदानाय शङ्करम्
बुद्धिमुक्तिनिमित्तेन पार्वतीं पूजयेत् सुधीः । पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा स्यस्तोत्रं कथयं पठेत्
गुरुं प्रणम्य संपूज्य तत्पश्चात् प्रणमेत् सुरम् । कृत्वा ह्रिकञ्च संपूज्य यथासुखमुदीरितम्
समाचरेत् स्वकर्मतत् वेदोक्तं स्यात्तमशुद्धये ।

विघ्नां न पश्येत् प्राज्ञश्च व्याधिबीजस्वरूपिणीम् ॥ १६ ॥

मूत्रञ्च व्याधिवीजञ्च परं नरककारणम् । लिङ्गयोर्नि पापदुःखव्याधिदारिद्र्यदायिनीम्
उरोमुखं स्तनं स्त्रीणां कटाक्षं हास्यमेव च । विनाशबीजं रूपञ्च विपदां कारणं सदा
दिवाभोगञ्च स्वस्त्रीणां स्वलोपं परिर्वर्जयेत् । रोगाणां कारणञ्चैव चक्षुषोः फर्णयोस्तथा
एकतारञ्च गगनं न पश्येत्तुलजां भयात् । दैवान् दृष्ट्वा हरिं स्मृत्वा स्वस्रधा नारदं जपेत् ॥

अस्तकाले रविं चन्द्रं न पश्येद् व्याधिकारणम् ।

खड्गं समुदितं चन्द्रं न पश्येद् व्याधिकारणम् ॥ २४ ॥

जलस्थञ्च रविं चन्द्रं दृष्ट्वा शोकं लभेन्नरः । बन्धुविच्छेदहेतुञ्च न पश्येत् परमैधुनम् ॥

एकत्र शयनस्थानं भोजनञ्च गतिं तथा ।

न कुट्यात् पापिना सार्द्धं सर्वं नाशस्य लक्षणम् ॥ २६ ॥

बालापादुगात्रसंस्पर्शाच्छयनाश्रयभोजनात् । सञ्चरन्तिधुर्य पापास्तैलविन्दुरिवाम्भस
हिंन्नजन्तुसमीपञ्च न गच्छेदुदुःखकारणम् । खलेनसार्द्धमिलनं न कुट्याच्छोककारणः
ब्राह्मणानां गवाञ्चैव वैष्णवानां विशेषतः ।

न कुट्यादिसनं हानिं सर्वनाशस्य कारणम् ॥ २६ ॥

दैवदैवलविप्राणां वैष्णवाणां तथैव च । वित्तं धनञ्च न हरेत् सर्वनाशस्य कारणम् ।

स्वदत्तं परदत्तं वा ब्रह्मचित्तं हरेत्तु यः । षट्पिर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ २७ ॥

गृध्रकोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः । श्वापदः शतजन्मानि गण्डकः सप्तजन्मनि ॥

घोटकः सप्तजन्मानि कुम्भीरः पञ्चजन्मसु । पुंश्चलीनां योनिकीटं शतजन्मसु निश्चितम्

ब्रह्मकीटञ्च तेषाञ्च शतजन्मसु नारद ।

गोधिका सप्तजन्मानि गर्दभः सप्तजन्मसु ॥ २८ ॥

सप्तजन्मसु मार्जारो नकुलस्त्रिषु जन्मसु । उद्यैश्रवा जन्मशतं परञ्चापि तथैव च ॥

क्रूरसर्पश्च शार्दूलो महिषः सप्तजन्मसु । भेकश्च शतजन्मानि छागलः सप्तजन्मसु ॥

भल्लूकः शतजन्मानि शृगालो लक्षजन्मसु । ततो जलौका भवति ब्रह्मस्पहरणाद्भुवम्

कुम्भीपाके च पच्यन्ते पापिनो ब्रह्मणः शतम् ।

दक्षिणां विप्रमुद्दिश्य तत्कालञ्चेन्न दीयते ॥ २९ ॥

एकरात्रे व्यतीते तु तद्दानं द्विगुणं भवेत् । मासे शतगुणं प्रोक्तं द्विमासे तु सहस्रकम् ॥

संवत्सरे व्यतीते तु स दाता नरकं व्रजेत् । दात्रा न दीयते मूर्खो गृहीता च न पाचते

उभो तौ नरकं यातो दात्रा व्याधियुक्तो भवेत् ॥ ३० ॥

विप्राणां हिंसनं कृत्वा वंशहानिं लभेद् ध्रुवम् ।

धनं लक्ष्मीं पत्न्यज्य मिथुनश्च भवेद् व्रजन् ॥ ३१ ॥

देवञ्च ब्राह्मणं दृष्ट्वा न नमोद्यो लभेच्छुचम् । न कुट्याद् गुल्मकिं योलभते रौरवंशुचम्

या स्त्री मूढा दुराचारा स्वपतिं हरिरूपिणम् ।

न पश्येत्तर्जनं कृत्वा कुम्भीपाके व्रजेद् ध्रुवम् ॥ ४३ ॥

वाक्कर्तृनाद्वेत् काको हिंसनात् शूकरो भवेत् । सर्पो भवति कोपेन दर्पेण गर्वभो भवेत्

कुक्कुरी च कुवाक्येनाप्यन्यश्च विपदर्शनात् ॥ ४५ ॥

पतिव्रता च वैकुण्ठं पत्या सह व्रजेद् ध्रुवम् ।

शिवं दुर्गां गणपतिं सूर्यं विप्रञ्च वैष्णवम् ॥ ४६ ॥

विष्णुं निन्दति यो मूढो स महारौरवं व्रजेत् ।

पितरं मातरं पुत्रं सतीं भार्यां गुरुं तथा ॥ ४७ ॥

अनाथां भगिनीं कन्यां विनिन्द्य नरकं व्रजेत् ।

विप्रभक्तिविहीनाश्च क्षत्रविट्शूद्रयोनिजाः ॥ ४८ ॥

हरिभक्तिविहीनाश्च पच्यन्ते नरके ध्रुवम् । पतिभक्तिविहीनाश्च युयत्यश्च नराधमाः ॥

शालग्रामजलं विष्णुप्रसादं ये च भुञ्जते । क्षीयं पुनस्ति ते विप्राः शतं पुंसां वसुन्धराम्

पितृद्वेषान् समभ्यर्च्य खादन् मांसं द्विजः शुचिः । यो भक्षति वृथामांसं स महारौरवं व्रजेत्

मत्स्यांश्च कामतो दग्ध्वा चोपवासं वसेद् द्विजः ।

प्रायश्चित्तं ततः कुर्याद् व्रतं चान्द्रायणञ्चरेत् ॥ ५२ ॥

सोऽशुचिः सततं नन्द हन्ति पुण्यं पुराकृतम् । कामतो ब्राह्मणो मत्स्यं भुङ्क्ते योज्ञानदुर्बलः

विष्णोरुच्छिष्टमोजी यो मत्स्यं मांसेन खादति ।

पदे पदेऽवमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥ ५४ ॥

एकादशी ये कुर्वन्ति कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । शतजन्मकृतात् पापान् मुच्यतेनात्र संशयः

यद् वाल्ये यच्च कौमार्ये चार्द्धके यच्च यौवने । मस्मीभूतानि कुर्वन्ति पातकानि कृतानि च

एकादशोदिने भुङ्क्ते कृष्णजन्माष्टमीव्रते । त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्तेन संशयः ॥

आतुरे नियमो न स्यादतिवृद्धे च बालके । भक्तस्य द्विगुणं दत्त्वा ब्राह्मणाय शुचिर्भवेत्

यो भुङ्क्ते शिवरात्रौ च श्रीरामनवमीदिने । उपवासे समर्थश्च स महारौरवं व्रजेत् ॥

कुहूपूर्णन्दुसंक्रान्त्यां चतुर्दश्यष्टमीषु च । नरक्याण्डालयोनिः स्यात् स्त्रीतैलमांससेवनात्

मत्स्यं मांसं मसूरञ्च कांश्यपात्रे च भोजनम् । आर्द्रकं रक्तशाकञ्च रवी च पत्विर्जयेत् ।

अन्यथा नरकं याति कुम्भीपाकं न संशयः ॥ ६१ ॥

रजस्वलान्नं वेश्यान्नं मन्दिरान्नं ब्रजेश्वर ।

यो भुङ्क्ते ब्राह्मणो देवात् पितृभोजी स भवेद् ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

यद्वहा कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् । स भवेदशुचिर्नित्यं मस्मान्तं तस्य सूतकम्

नारी वेश्या प्रविज्ञेया क्षतुष्पुरुषगामिनी । पाके च पितृदेवानामधिकारो न तद्वयेत् ।

यद् ग्रामयाजितामन्नं शूद्राश्चाद्धान्नभोजनम् । भुक्त्वा च नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ

शूद्राणां श्राद्धदिपसे तदन्नं भुङ्क्ते द्विजाः । कुम्भीपाके च पच्यन्ते यावद्ब्रह्मणः शतम्

यः शूद्रेणाम्यनुज्ञातो भुङ्क्ते श्राद्धदिनेऽन्यतः । सुरार्पाति स विज्ञेयः सर्वधर्मवह्निष्कृतः ॥

असिजीवी मपीजीवी देवलो वृषवाहकः । शूद्राणां शवदाही च यो हि शूद्रापतिर्द्विजः ।

स शूद्रवद् बहिष्कार्यस्तदन्नं विदुस्तमं सताम् ।

नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ।

स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ ६६ ॥

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु । यद्वहा कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥

राममन्त्रविहीनश्च ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ॥ ७० ॥

नदीगर्भे च गर्ते च वृक्षमूले जलग्निके ।

देवान्तिके शस्यभूमौ पुरीषं नोत्सृजेद् बुधः ॥ ७१ ॥

घल्मीकसूपफोत्पातां मृदमन्तर्जलां तथा । शौचावशिष्टां गेहाद्य न दयाल्लेपसम्भवाम्

अन्तःप्राणिपिपिल्याञ्च हलोत्पातां व्रजेश्वर ।

आलवालोस्थि(त्थि)ताञ्चैव शस्यक्षेत्रोत्थितां तथा ॥ ७३ ॥

वृक्षमूलोत्थितां चन्द नदीगर्भोत्थितां तथा । परित्यजेन्मृदस्त्वेषां सकलाः शौचसाधने

कुप्माण्डघातिका या स्त्री दीपनिर्वाणकः पुमान् ।

सप्तजन्म भवेद्भोगी दरिद्रो जन्मजन्मनि ॥ ७५ ॥

प्रदीपं शिवलिङ्गञ्च शालग्रामं मणिं तथा । प्रतिमां यप्रसूयञ्च सुचरं शङ्खमेव च ॥ ७६ ॥

हीरकश्च तथा मुक्तां गोमूत्रं गोमयं घृतम् । शालग्रामशिलातोयं भूमौ त्यक्तवा व्रजेदधः ॥
 वरिद्रः रूपणः कुष्ठो वंशहीनोऽप्यभार्यकः । भूमिहीनः प्रजाहीनो बन्धुहीनश्च कुत्सितः
 अन्यः पङ्गुर्वा खरश्च खञ्जश्चैवाङ्गहीनकः । भवेन् क्रमेण पापी स होतान् भूमौ त्यजेत्तु यः
 दिवसे सन्ध्ययोर्निद्रां स्त्रीसम्भोगं करोति यः ।

सप्तजन्म भवेद्भोगी वरिद्रः सप्तजन्मसु ॥ ८० ॥

उदिते जगतीनाथे यः कुर्याद्वन्तधावनम् । स पापिष्ठः कथं ब्रूने पूजयामि जनार्दनम् ॥
 मृद्वस्मगोशकृत्पिण्डैस्तथा घालुकयापि वा । कृत्वा लिङ्गं स कृतपूज्य वसेत् कल्पशतं दिवि
 सदस्रपूजनात् सोऽपि लभते चाञ्छितं फलम् ।

लक्षश्च पूजयेद्यस्तु शिवत्वं लभते ध्रुवम् ॥ ८१ ॥

जीवन्मुक्तो भवेद्विप्रो लिङ्गमभ्यर्चयेत्तु यः । शिवपूजाविहीनश्च ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ॥
 नत्पूजितं प्रियतमं शिवं निन्दन्ति ये नराः । पच्यन्ते निरये तावद्यावद्वै ब्रह्मणः शतम् ॥

पूजिते शिवलिङ्गे च यदि स्यात् केशवालुका ।

स महान्धो घालुकया केशेन यवनो भवेत् ॥ ८६ ॥

धुन्द्रे वरिद्रः रूपणो व्याधिः स्यात् कुत्सिते तथा ।

सर्वेभ्यो मानहानिः स्याज्जायते नीचयोनिषु ॥ ८७ ॥

सर्वेषु प्रियमात्रेषु ब्राह्मणश्च मनः प्रियः ।

ब्राह्मणाच्च प्रिया लक्ष्मीः सततं वक्षसि स्थिता ॥ ८८ ॥

ततोऽधिका प्रिया राधा प्रिया भक्तास्ततोऽधिकाः ।

ततोऽधिकः शङ्करो मे नास्ति मे शङ्करात् प्रियः ॥ ८९ ॥

महादेव महादेव महादेवेति चादिनः । पश्चाद्यामि च संतुष्टो नामध्रुवणलोभतः ॥ ९० ॥

मनो मे भक्तमूले च प्राणा राधात्मिका ध्रुवम् ।

आत्मा मे शङ्करस्थानां शिवः प्राणाधिकश्च यः ॥ ९१ ॥

भावा नारायणी शक्तिः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।

करोमि च यया सृष्टिं यया ब्रह्मादिदेवताः ॥ ९२ ॥

यया जयति विश्वञ्च यया सृष्टिः प्रजायते । यया बिना जगन्नाम्ति मया दत्ताशिवाय सा
 दया निद्रा च क्षुत्तृप्तिस्तृष्णा श्रद्धा क्षमा धृतिः ।
 तुष्टिः पुष्टिस्तथा शान्तिर्लज्जाधिदेवता हि सा ॥ ६४ ॥
 वैकुण्ठे सा महालक्ष्मीर्गोलोके राधिका सती ।
 मर्त्ये लक्ष्मीश्च क्षीरोदे दक्षकन्या सती च सा ॥ ६५ ॥
 सा दुर्गा मेनका कन्या दैन्यदुर्गतिनाशिनी ।
 स्वर्गलक्ष्मीश्च दुर्गा सा शक्रादीनां गृहे गृहे ॥ ६६ ॥
 सा घाणी सा च सावित्री विद्याधिष्ठातृदेवता ।
 धनौ सा दाहिका शक्तिः प्रभाशक्तिश्च भास्करं ॥ ६७ ॥
 शोभाशक्तिः पूर्णचन्द्रे जले शक्तिश्च शीतता । शस्यप्रसूता शक्तिश्चधारणाचधरासु सा
 ब्राह्मण्यशक्तिर्विप्रेषु देवशक्तिः सुरेषु सा । तपस्विनां तपस्या सा गृहिणां गृहदेवता ॥
 मुक्तिशक्तिश्च मुक्तानामाशा सांसारिकस्य सा ।
 मङ्गलानां भक्तिशक्तिर्मयि भक्तिप्रदा सदा ॥ १०० ॥
 नृपाणां राज्यलक्ष्मीश्च धणिजां लभ्यरूपिणी । पारे संसारसिन्धूनां त्रयी तत्त्वापतारिणी
 सत्सु सद्गुद्विरूपा सा मेधाशक्तिस्वरूपिणी ।
 व्याख्याशक्तिः श्रुतौ शास्त्रे दातृशक्तिश्च दातृषु ॥ १०२ ॥
 क्षत्रादीनां विप्रभक्तिः पतिभक्तिः सतीषु च । एवंप्रकारं यया शक्तिर्मया दत्ता शिवाय सा
 पवं ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।
 प्रश्नं करोषि यद्यन्मां तत्सर्वं कथयामि ते ॥ १०४ ॥
 इति श्रीमद्भगवद्गीते मद्भागपुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मपण्डे भग-
 वन्नन्दसंवादे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ।

पट्सप्ततितमोऽध्यायः

शुभाशुभदर्शनफलम् ।

श्रीनन्द उवाच ।

येषाञ्च दर्शने पुण्यं पापञ्च यस्य दर्शने । तत्सर्वं यद् सर्वेश श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सुग्राह्यणानां तीर्थानां चैष्णवानाञ्च दर्शने । देवताप्रतिमादर्शो तीर्थस्नायी भवेन्नरः ॥ २ ॥
सूर्यस्य दर्शने भक्त्या सर्तीनां दर्शने तथा । सन्यासिनां यतीनाञ्च तथैव ब्रह्मचारिणाम्
भक्त्या गवाञ्चवह्नीनां गुरुणाञ्च विशेषतः । गजेन्द्राणाञ्च सिंहानां श्वेताश्वानां तथैव च
शुकानाञ्च पिकानाञ्च खञ्जनाञ्च तथैव च । हंसानाञ्च मयूराणां चापाणां शङ्खपक्षिणाम्
वत्सप्रयुक्तधेनूनामश्वत्थानां तथैव च । पतिपुत्रघतीनाञ्च नराणां तीर्थयायिणाम् ॥ ६ ॥
प्रदीपानां सुवर्णानां मणीनाञ्च विशेषतः । मुक्तानां हीरकाणाञ्च माणिक्यानां महाशय
तुलसीशुक्लपुष्पाणां दर्शनं पापनाशनम् । फलानि शुक्लधान्यानि घृतं दधि मधूनि च ॥
पूर्णकुम्भञ्च लाजाञ्च राजेन्द्र दर्पणं जलम् । मालाञ्च शुक्लपुष्पाणां दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥
गोरोचनञ्च कर्पूरं रजतञ्च सरोधरम् । पुष्पोद्यानं पुष्पितञ्च दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥ १० ॥
शुक्लपक्षस्य चन्द्रञ्च पीयूषं चन्दनं तथा । कस्तूरी कुङ्कुमं दृष्ट्वा नन्द पुण्यं लभेन्नरः ॥
पताकामक्षयघटतर्कं देवोत्थितं शुभम् । देवालयं देवस्नानं दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥ १२ ॥
देवाधितं देवघटं सुगन्धिपवनं तथा । शङ्खञ्च दुन्दुभिं दृष्ट्वा सद्यः पुण्यं लभेन्नरः ॥
शुक्तिप्रवालं रजतं स्फाटिकं कुशमूलकम् । गङ्गामृदं कुशं ताम्रं दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥
पुराणपुस्तकं शुद्धं सर्वाजं विष्णुयन्त्रकम् । स्निग्धदूर्वाक्षतं रत्नं दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः
तपस्विनां सिद्धमन्त्रं समुद्रं कृष्णसारकम् । यज्ञं महोत्सवं दृष्ट्वा च पुण्यं लभते नरः ॥
गोमूत्रं गोमयं दुग्धं गोधूलिं गोष्ठगोष्पदम् ।
पक्षशस्यान्वितं क्षेत्रं दृष्ट्वा पुण्यं लभेद् ध्रुवम् ॥ १७ ॥

रुचिरां पद्मिनीं श्यामां न्यग्रोधपरिमण्डलाम् । सुवेशकां सुवसनां दिव्यभूषणभूषिताम्
वेश्यां क्षेमकरां गन्धं सद्वाक्षततण्डुलम् । सिद्धान्तं परमान्तञ्च दृष्ट्वा पुण्यं लभेन्नरः ॥

कार्तिकीपूर्णमायाञ्च राधिकाप्रतिमां शुभाम् ।

संपूज्य दृष्ट्वा नत्वा च करोति जन्मखण्डनम् ॥ २० ॥

हिङ्गुलायां तथाष्टम्यामिवे मासि सिते शुभे ।

श्रीदुर्गाप्रतिमां दृष्ट्वा करोति जन्मखण्डनम् ॥ २१ ॥

शिवरात्रौ च काश्याञ्च विश्वनाथस्य दर्शनम् ।

कृत्योग्वासं पूजाञ्च करोति जन्मखण्डनम् ॥ २२ ॥

जन्माष्टमीदिने भक्तो दृष्ट्वा मां विन्दुमाधवम् ।

प्रणम्य पूजां कृत्वाच करोति जन्मखण्डनम् ॥ २३ ॥

पौषेमासि शुक्ररात्रौ यत्रयत्र स्थलेनरः । पद्मायाः प्रतिमां दृष्ट्वा करोति जन्मखण्डनम्

सतजन्म भवेत्तस्य पुत्रः पौत्रो धनेश्वरः ॥ २४ ॥

उपोष्यैकादशीं स्नात्वा प्रभाते द्वादशीदिने ।

दृष्ट्वा काश्यामन्नपूर्णां करोति जन्मखण्डनम् ॥ २५ ॥

चैत्रेमासि चतुर्दश्यां कामरूपेण पुण्यदे । दृष्ट्वानत्वा मद्रकालीं करोति जन्मखण्डनम्

क्षयोध्यायाञ्च रामं मां श्रारामनवमीदिने । संपूज्य नत्वादृष्ट्वाच करोति जन्मखण्डनम्

दत्त्वा विष्णुपदेविण्ढं विष्णुंयश्च प्रपूजयेत् । पितृणांस्वात्मनश्चैव करोति जन्मखण्डनम्

प्रयोगे सुण्डनं कृत्वा दानञ्च कुरुते यदि । उपोष्य नैमिशरण्ये करोति जन्मखण्डनम् ॥

उपोष्य पुष्करे स्नात्वा किं वा चदरिकाश्रमे ।

संपूज्य दृष्ट्वा मामेकं करोति जन्मखण्डनम् ॥ ३० ॥

सिद्धिदत्त्वाच चदरीं भुङ्क्ते चदरिकाश्रमे । दृष्ट्वा मत्प्रतिमां नन्दकरोति जन्मखण्डनम्

दोलयामानं गोविन्दं पुण्ये वृन्दावने च माम् ।

दृष्ट्वा संपूज्य नत्वा च करोति जन्मखण्डनम् ॥ ३२ ॥

भाद्रे दृष्ट्वाच मञ्जस्यं मामेवमपुसूदनम् । संपूज्य नत्वा भक्तञ्च करोति जन्मखण्डनम्

रथस्थञ्च जगन्नाथं यो द्रक्ष्यतिकलीनरः । संपूज्य नत्वा भक्त्या च करोति जन्मखण्डनम्
उत्तरायणसंक्रान्त्यां प्रयागे स्नानमाचरेत् । संपूज्य नत्वा मामेव करोति जन्मखण्डनम्

कार्तिकी पूर्णिमायाञ्च दृष्ट्वा मत्प्रतिमां शुभाम् ।

उपोष्य कृत्वा पूजाञ्च करोति जन्मखण्डनम् ॥ ३६ ॥

चन्द्रभागासमीपे च मान्याञ्च मां नमेत् सुधीः ।

राधया सह मा दृष्ट्वा करोति जन्मखण्डनम् ॥ ३७ ॥

रामेश्वरं सेतुबन्धे आपादो पूर्णिमादिने । उपोष्य दृष्ट्वा संपूज्य करोति जन्मखण्डनम्
स्वर्गविद्याधरी रात्रौ नृत्यती च मुहुर्मुहुः । प्रणामं कर्तुमीशं तं समायाति विभीषणः ॥

गायन्ति किन्नरा रात्रौ गन्धर्वाश्च मनोहरम् । प्रणामं कर्तुमीशं तं समायाति च माधवः
दृष्ट्वा साक्षाद्वसन्तञ्च सर्वेशं चन्द्रशेखरम् । जीवन्मुक्तो भवेदन्ते प्रयाति हरिमन्दिरम्

दीननाथं दिनकरं फोणर्कं चोत्तरायणे । उपोष्य दृष्ट्वा संपूज्य करोति जन्मनक्षयम्
कृपिकोष्ठे सुषसने कलविद्धे युगन्धरे । विस्पन्दके राजकोष्ठे नन्दके पुष्पभद्रके ॥ ४३ ॥

पार्वतीप्रतिमां दृष्ट्वा कार्तिकेयं गणेश्वरम् । नन्दिनं शङ्करं दृष्ट्वा करोति जन्मनःफलम्
उपोष्य प्रतिसम्पूज्य दृष्ट्वा स्तुत्वा च तौ नतः ।

पारणञ्च दधि प्राश्य करोति जन्मनः फलम् ॥ ४५ ॥

त्रिकूटे मणिभद्रे च पश्चिमोदधिसन्निधौ ।

समुपोष्य दधि प्राश्य मां दृष्ट्वा मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

प्रतिमास्तु मदीयास्तु पार्वतीप्रतिमास्तु च । जीवं सन्वस्य सम्पूज्य करोति जन्मनःक्षयम्
शिवदुर्गालयं दत्त्वा मदीयञ्च विशेषतः । शिवसंस्थापनं कृत्वा करोति जन्मनः क्षयम्

पुष्पोद्यानञ्च शङ्कुञ्च सेतुं खातं सरोवरम् । विप्रसंस्थापनं कृत्वा करोति जन्मनः फलम्
न च वेदाः पुराणानि ब्रह्मसंस्थापनं फलम् ।

जानन्ति सन्तो मुनयः सुराधिपदयः पितः ॥ ५० ॥

गण्यन्ते पाशवो भूमौ गण्यन्ते वृष्टिचिन्धवः । न गण्यन्ते विद्यावापि विप्रसंस्थापने फलम्
कृत्योपजीव्यं विप्रस्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । अचलां श्रियमाप्नोति परे मुक्तिवतुष्टयम्

महास्यभक्तिं स लभेद्वैकुण्ठे मोदते चिरम् । न हि पातो भवेत्तस्य यथा मे परमात्मन
कुमारीमष्टर्षीयां सुविप्राय ददाति यः । सम्पूज्य सर्वाभरणां दुर्गादानफलं लभेत् ॥
सर्वं स्वर्ग्यं समालोक्य ब्रह्मलोकेषु पूजितः । लभते मम दास्यञ्च वैकुण्ठे मोदते चिरम्
विवाहदर्शने कोटिस्पर्णदानफलं लभेत् । अन्ते स्वर्गे प्रयात्येवमिहैव निश्चलां श्रियम् ॥
यः सुविप्रमनार्थञ्च दद्विद्वञ्च सुपण्डितम् । दृष्ट्वा कुर्यात्तद्विवाहं स मोक्षं लभते ध्रुवम्
यच्छत्रपादुकादानं शालग्रामस्य योषितः ।

करोति भक्त्या पुण्याहे पृथ्वीदानफलं लभेत् ॥ ५८ ॥

गजदाने च तल्लोममानघर्षं श्रुतो श्रुतम् । चतुर्गुणं गजेन्द्रे च मोदते मम मन्दिरे ॥ ५९ ॥
गजाक्षं श्वेततुरगो तद्वर्द्धश्चेतरे पितः । गजतुल्यं कृष्णगवां दाने च तत्फलं लभेत् ॥
तत्तुल्यं धेनुदाने च अर्द्धं सामान्यगोस्तथा । लभेद्वत्सप्रसूतानां दाने दाने फलं भुवः ॥
भूमिदाने रेणुमानघर्षं स्थानञ्च मत्पदे ।

ज्ञानदाने महत् पुण्यं वैकुण्ठे मोदते चिरम् ॥ ६२ ॥

श्रियं लभेत् स्पर्णदाने राजत्वं रजतेन च । अन्नदाने फलं नाहं कथं जानामि वै श्रुतम्
लभते सर्वदानस्य फलं ब्राह्मणभोजने । अन्नदानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥

नात्र पात्रपरीक्षा साऽन कालनियमः क्वचित् ।

अन्नदाने शुभं पुण्यं दातुः पात्रं त्वपातकी ॥ ६५ ॥

अन्नदानञ्च धन्यं स्याद्भूमौ वैकुण्ठहेतुकम् । पत्नं ददाति विप्राय दक्षिणाय कुटुम्बिने ॥
घस्रसूत्रमानघर्षं वैकुण्ठे मोदते चिरम् । सुरग्ये चन्द्रलोके च वाहणे च तथैव च ॥
कृत्वा लोहप्रदीपञ्च स्पर्णधर्तिसमन्वितम् । दत्त्वा घृतप्रदीपञ्च हरये परमात्मने ॥ ६८ ॥

अन्धकारञ्च न गृहं यमदूतं यमं तथा ।

न हि पश्यति दाता च प्रयाति मम मन्दिरम् ॥ ६९ ॥

ब्राह्मणाय च दत्त्यैव न याति यमयातनाम् । दिव्यवर्षसहस्रञ्च मोदते शक्रमन्दिरे ॥ ७० ॥
आसनं लभते स्वर्गे वस्तुमानानुरूपतः । उत्तमे लक्षघर्षञ्च तद्वर्द्धं चेतरे व्रज ॥ ७१ ॥
ताम्बूलेन लभेद्भोगं स्वर्गे घर्षशतं द्विज ॥ ७२ ॥

माल्यदाने प्रियं स्वर्गं वस्तुपावानुरूपतः । फलदानफलं स्वर्गं लभते-नात्र-संशयः ॥
 'नामान्यशय्यादानेन स्वर्गं वर्षशतं व्रजेत् । चतुर्गुणं प्ररूढानां गुणलक्षं विलक्षणे ॥
 गन्नाथाय सुविप्राय यदि मेहं प्रदीयते । अत्रैव मानवर्षञ्च शकलोके महीयते ॥ ७५ ॥
 द्वा द्युभक्षितं विप्रमद्यं तस्मै प्रदीयते । भवलां प्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रविचर्द्दिनीम् ॥ ७६ ॥
 राजनाथ व्रजं गत्वा व्रजभूमौ व्रजाधुना । व्रज भोजय विप्रांश्च व्रज सर्वं व्रजे व्रजे ॥

गोकुले गोकुले घटस घस घटसनिराकुले ।

व्याकुलानां गोकुलानां सङ्कुले च व्रजे व्रजे ॥ ७८ ॥

इत्तं कथितं नन्द सानन्दं पुण्यवर्द्धनम् । सुस्वप्नदर्शनं पुण्यं यदि नीचं न वक्ति च ॥

काश्यपं दुर्गमं नीचं शत्रुमहानिनं स्त्रियम् ।

त्यक्त्वा रात्रिञ्च दिवसे वक्ति विप्रं सुयःण्डितम् ॥ ८० ॥

देवालये च देवं धाप्यध्वत्थतुलसीवटम् । उवचा तद्विगुणं पुण्यमप्रकाश्यं चतुर्गुणम्

सुस्वप्नदर्शने प्राप्नो गङ्गास्नानफलं लभेत् । अर्थं वित्तञ्च भार्याञ्च भूमिं पुत्रं लभेद्य सः

मोक्षञ्च परमैश्वर्यं लभते सर्ववाञ्छितम् ।

इत्येवं कथितं तात किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ८३ ॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

शुभाशुभदर्शनफलं नाम पट्सप्ततितमोऽध्यायः ।

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

सुस्वप्नदर्शनफलम्

नन्द उवाच ।

केन स्वप्नेन किं पुण्यं केन मोक्षो भवेत् सुखम् ।

कोऽपि कोऽपि च सुस्वप्नस्तत्सर्वं कथय प्रभो ॥ १

श्रीभगवानुवाच ।

चेदेषु सामवेदश्च प्रशस्तः सर्वकर्मसु । तथैव काण्वशाखायां पुण्यकाण्डे मनोहरे ॥२॥

स व्यक्तो यश्च दुःस्वप्नः शश्वत् पुण्यफलप्रदः । तत्सर्वं निखिलं तात कथयामि निशामय
स्वप्नाध्यायं प्रयक्षयामि बहुपुण्यफलप्रदम् । स्वप्नाध्यायं नरः श्रुत्वा गङ्गाज्ज्ञानफलं लभेत्
स्वप्नस्तु प्रथमे यामे संवत्सरफलप्रदः । द्वितीये चाष्टभिर्मासैस्त्रिभिर्मासैस्तृतीयके ॥
चतुर्थे चार्द्धमासेन स्वप्नः स्वात्मफलप्रदः । दशाहे फलदः स्वप्नोऽप्यरुणोदयदर्शने ॥

प्रातःस्वप्नश्च फलदस्तत्क्षणं यदि बोधितः ।

दिने मनसि यद् दृष्टं तत्सर्वञ्च लभेद् ध्रुवम् ॥ ७ ॥

चिन्ताव्याधिसमायुक्तोनरः स्वप्नञ्च पश्यति । तत्सर्वं निष्फलं तात प्रयात्येव न संशयः
जडो मूत्रपुरीषेण पीडितश्च भयाकुलः । विगम्बरो मुक्तकेशो न लभेत् स्वप्नजं फलम्
दृष्ट्वा स्वप्नञ्च निद्रालुर्यदि निद्रां प्रयाति च ।

चिन्तुषो वक्ति चेद्रात्रौ न लभेत् स्वप्नजं फलम् ॥ १० ॥

उत्तवा काश्यपगोत्रञ्च विपत्तिं लभते ध्रुवम् । दुर्गते दुर्गतिं याति नीचे व्याधिं प्रयाति च
रात्रौ भयञ्च लभते मूर्खे च फलहं लभेत् । कामिन्यां धनहानिः स्याद्रात्रौ चौरभयं भवेत्
निद्रायां लभते शोकं पण्डिते वाञ्छितं फलम् ।

न प्रकाश्यश्च स स्वप्नः पण्डितैः काश्यपे व्रज ॥ १३ ॥

गवाञ्च कुञ्जराणाञ्च हयानाञ्च व्रजेश्वर । प्रासावानाञ्च शैलानां वृक्षाणाञ्च तथैव च ॥

भारोदणञ्च धनदं भोजनं रोदनं तथा ।

प्रतिगृह्य तथा धीणां शस्याढ्यां भूमिमालमेत् ॥ १५ ॥

शस्त्रास्त्रेण यदा चिद्धो व्रणेन रुमिणा तथा । विष्टयारुधिरेणैव स युक्तोऽप्यर्थवान् भवेत्
स्वप्नेऽप्यगम्यगमनो भार्यालभं करोति यः । मूत्रसिक्तः पिबेच्छुक्रं नरकञ्च विशत्यपि
नगरं प्रविशेद्रक्तं समुद्रं वा सुधां पिबेत् । शुभवार्तामवाप्नोति विपुलञ्चार्यमालमेत् ॥
गजं नृपं सुवर्णञ्च वृषभं धेनुमेव च । दीपमन्त्रं फलं पुण्यं कन्यां छत्रं रथं ध्वजम् ॥

कुटुम्बं लभते दृष्ट्वा कीर्तिञ्च विपुलां धियम् ॥ १६ ॥

पूर्णकुम्भं द्विजं वह्निं पुष्पताम्बूलमन्दिरम् । शुक्लधान्यं नष्टं वैश्यां दृष्ट्वा धियमवाप्नुयात्
गोक्षीरञ्च घृतं दृष्ट्वा चार्थं पुण्यधनं लभेत् ॥ २१ ॥

पायसं पद्मपत्रे च वृद्धिदुग्धं घृतं मधु । मिष्टान्नं स्वस्तिकं भुक्त्वा ध्रुवं राजा भविष्यति
पक्षिणां मानुषाणाञ्च भुङ्क्ते मांसं नरोयवि । बह्वर्थशुभवार्ताञ्च लभते चाञ्छितफलम्
छत्रं वा पादुकां वापि लब्ध्वा धान्यञ्च गच्छति ।

असिञ्च निर्मलं तीक्ष्णं तत्तथैव भविष्यति ॥ २४ ॥

हेलया सन्तरेद्यो हि स प्रधानो भविष्यति । दृष्ट्वा च फलितं वृक्षं धनमानोतिनिश्चितम्
सर्पेणभक्षितो यो हि अर्थलाभश्चतद्ववेत् । स्वप्नेसूर्य्यविधुं दृष्ट्वा मुच्यतेव्याधिवधनात्
घड्यां कुकुटी दृष्ट्वा कौञ्ची भार्यां लभेत् ध्रुवम् ।

स्वप्ने यो निगडैर्बद्धः प्रतिष्ठां पुत्रमालभेत् ॥ २७ ॥

दध्मन्नं पायसं भुङ्क्ते पद्मपत्रे नदीतटे । विशोर्णपद्मपत्रे च सोऽपि राजा भविष्यति ॥
जलौकसं वृक्षिकञ्च सर्पञ्च यदि पश्यति । धनं पुत्रञ्च विजयं प्रतिष्ठां वा लभेदिति ॥
शृङ्गिभिर्दंष्ट्रिभिः कोलैर्वानरैः पीडितो यदि । निश्चितञ्च भवेद्राजा धनञ्च विपुलं लभेत्
मत्स्यं मांसं मौक्तिकञ्च शङ्खं चन्दनहीरकम् ।

यस्तु पश्यति स्वप्नान्ते विपुलं धनमालभेत् ॥ ३१ ॥

सुराञ्च रुधिरंस्वर्णं दृष्ट्वा विष्ठां धनंलभेत् । प्रतिमां शिबलिङ्गञ्च लभेद् दृष्ट्वा जयधनम्
फलितं पुष्पितं विश्वमात्रं दृष्ट्वा लभेद्धनम् । दृष्ट्वा च ज्वलदग्निञ्च धनं बुद्धिं धियंलभेत्
भामलकं धात्रीफलमुत्पलञ्च धनागमम् ॥ ३३ ॥

देवताञ्च द्विजा गावः पितरो लिङ्गिनस्तथा । यद्दाति मिथः स्वप्ने तत्तथैव भविष्यति
शुक्लाम्बरधरा नार्यः शुक्लमाल्यानुलेपनाः ।

समाश्लिष्यन्ति यं स्वप्ने तस्य श्रीः स्वप्रतः सुखम् ॥ ३५ ॥

पीताम्बरधरां नारी पीतमाल्यानुलेपनाम् । अवगूहति यः स्वप्ने कल्याणं तस्य जायते
सर्वाणि शुक्लानि प्रशंसितानि भस्मास्थिकार्पासविधर्जितानि ।

सर्वाणि रुष्णान्यतिनिन्दितानि गोहस्तिवाजिद्विजदेववर्ज्यम् ॥ ३७ ॥

दिव्या स्त्री सस्मिता विप्रा रत्नभूषणभूषिता । यस्य मन्दिरमायाति स प्रियंलभतेध्रुवम्

स्वप्ने च ब्राह्मणो देवो ब्राह्मणी देवकन्यका ।

ब्राह्मणो ब्राह्मणी वापी सन्तुष्टा सस्मिता सती ।

फलं ददाति यस्मै च तस्य पुत्रो भविष्यति ॥ ३६ ॥

यं स्वप्ने ब्राह्मणा नन्द कुर्वन्ति च शुभाशिमम् ।

यद्वदन्ति भवेत्तस्य तस्यैश्वर्यं भवेद् ध्रुवम् ॥ ४० ॥

परितुष्टो द्विजध्रेष्ठश्चायाति यस्य मन्दिरम् । नारायणःशिवो ब्रह्मा प्रविशेत्तु तदाश्रयम्
सम्पत्तिस्तस्य भवति यशश्च विपुलं शुभम् । पदे पदे सुखं तस्य स मानं गौरवं लभेत्
अकस्मादपि स्वप्ने तु लभते सुरभिं यदि । भूमिलाभो भवेत्तस्य भार्या चापि पतिव्रता
करेण कृत्वा हस्ती यं मस्तके स्थापयेद्यदि । राज्यलाभो भवेत्तस्य निश्चितं च धूर्तोमतम्

स्वप्ने तु ब्राह्मणस्तुष्टः समाश्लिष्यति यं व्रज ।

तीर्थस्नायी भवेत्सोऽपि निश्चितञ्च श्रियान्वितः ॥ ४५ ॥

स्वप्ने ददाति पुष्पञ्च यस्मै पुण्यवतेऽद्विजः ।

जययुक्तो भवेत् सोऽपि यशस्वी च धनी सुखी ॥ ४६ ॥

स्वप्ने दृष्ट्वा च तीर्थानि सौधरत्नगृहाणि च । जययुक्तश्च धनवान् तीर्थस्नायी भवेन्नरः
स्वप्ने तु पूर्णकलशं कश्चित्कस्मै ददाति च । पुत्रलाभो भवेत्तस्य सम्पत्तिं वा समालभेत्
हस्ते कृत्वा तु कुड्यमादकं धारसुन्दरी । यस्य मन्दिरमायाति स लक्ष्मी लभते ध्रुवम्
दिव्यास्त्री यद्गृहं गत्वा पुरीषं विसृजेद् व्रज । अर्थलाभो भवेत्तस्य दारिद्र्यप्रयाति च
यस्यगेहं समायाति ब्राह्मणो भार्ययासह । पार्वत्यासह शम्भुर्वा लक्ष्मीनारायणोऽथवा
ब्राह्मणो ब्राह्मणी वापि स्वप्ने यस्मै ददाति च ।

धान्यं पुण्याञ्जलिं वापि तस्य धीः सर्वतोमुखी ॥ ५२ ॥

मुक्ताहारं पुष्पमाल्यं चन्दनञ्च लभेद् व्रज । स्वप्ने ददाति विप्रश्च तस्य धीः सर्वतोमुखी
गोरोचनं पताकां वा हस्तिमिश्रदण्डकम् ।

सिद्धाभञ्च लभेत् स्वप्ने तस्य धीः सर्वतोमुखी ॥ ५३ ॥

ब्राह्मणो ब्राह्मणीचापि ददाति यस्यमस्तके । छत्रं वा शुक्लधान्यं वा स च राजा भविष्यति
स्वप्ने स्थस्थः पुरुषः शुक्लमाल्यानुलेपनः । तत्रस्थो दधि भुङ्क्ते च पायसं वा नृपो भवेत्
स्वप्ने ददाति विप्रश्च ब्राह्मणी वा सुधां दधि ।

प्रशस्तपात्रं यस्मै वा सोऽपि राजा भवेद् ध्रुवम् ॥ ५७ ॥

कुमारी चाष्टवर्षीया रत्नभूषणभूषिता । यस्य तुष्टा भवेत् स्वप्ने स भवेत्कविपण्डितः ॥
ददाति पुस्तकं स्वप्ने यस्मै पुण्यवते च सा ।

स भवेद्विश्वविख्यातः कवीन्द्रः पण्डितेश्वरः ॥ ५८ ॥

यं पाठयति स्वप्ने वा मातेव च सुतं यथा । सरस्यतीसुतः सोऽपि तत्परो नास्ति पण्डितः
ब्राह्मणः पाठयेद्यश्च पितेव यज्ञपूर्वकम् । ददाति पुस्तकं प्रीत्या स च तत्सदृशो भवेत् ॥
प्राप्नोति पुस्तकं स्वप्ने पथिवा यत्र यत्र वा । स पण्डितो यशस्वी च विख्यातश्च महीतले

स्वप्ने यस्मै महामन्त्रं विप्रा विप्रो ददाति चेत् ।

स भवेत् पुरुषः प्राज्ञो धनवान् गुणवान् सुधीः ॥ ६३ ॥

स्वप्ने ददाति मन्त्रं वा प्रतिमां वा शिलामयीम् ।

यस्मै ददाति विप्रश्च मन्त्रसिद्धिश्च तद्वयेत् ॥ ६४ ॥

विप्रो विप्रसमूहश्च दृष्ट्वा नत्वाऽऽशिषं लभेत् ।

राजेन्द्रः स भवेद्वापि किंचा च कविपण्डितः ॥ ६५ ॥

शुक्लधान्ययुतां भूमियस्मै विप्रः समुत्सृजेत् । स्वप्नेऽपि परितुष्टश्च स भवेत् पृथिवीपतिः
स्वप्ने विप्रो रथे कृत्वा नानास्वर्गं प्रदर्शयेत् । विरजीवी भवेदायुर्धनवृद्धिर्भवेद् ध्रुवम्
विप्राय विप्रः सन्तुष्टो यस्मै कन्यां ददाति च । स्वप्ने च स भवेन्नित्यं धनाढ्यो भूपतिः स्वयम्
स्वप्ने सरोवरं दृष्ट्वा समुद्रं वा नदीं नदम् । शुक्लार्द्धं शुक्लशैलश्च दृष्ट्वा श्रियमवाप्नुयात्
यः पश्यति मृतं स्वप्ने स भवेच्चिरजीवी च ।

अरोगो रोगिणं दुःखी सुखिनश्च सुखी भवेत् ॥ ७० ॥

दिव्या स्त्री यं प्रवदति मम स्वामी भवानिति ।

स्वप्ने दृष्ट्वा च जागर्ति स च राजा भवेद् दृढम् ॥ ७१ ॥

स्वप्ने वा कालिकां दृष्ट्वा लब्ध्वा स्फटिकमालिकाम् ।

इन्द्रचापं शक्रचक्रं स प्रतिष्ठां लभेद् ध्रुवम् ॥ ७२ ॥

स्वप्ने घदति यं विप्रो मम दासो भवेति च ।

हरिदास्यं च मद्भक्तिं स लब्ध्वा वैष्णवो भवेत् ॥ ७३ ॥

स्वप्ने विप्रो हरि शम्भुर्ग्राहणी कमलाशिवा । शुक्लास्त्रो वेदमातावा जाह्नवीवासरस्वती
गोपालिकावेपथरा बालिका राधिका मम । बालश्च बालगोपालः स्वप्नविद्विःप्रकाशित
पपते कथितो नन्द सुस्वप्नः पुण्यहेतुकः । श्रोतुमिच्छसि किंवा त्वं किं भूयः कथयामि ते
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
सुस्वप्नदर्शनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

आध्यात्मिकज्ञानवर्णनम्

नन्द उवाच ।

श्रीकृष्ण जगतां नाथ सुखप्रश्न श्रुतो मया । वेदसारो नीतिसारो लौकिको वैदिकस्तथा
अधुना श्रोतुमिच्छामि पापं तेषाञ्च दर्शने । यस्मिन् कर्मणि वा घत्सतन्मां कथितुमर्हसि
वचनं वेदशास्त्रोक्तं तथा वेदानुयायिनः । श्रोतुमिच्छन्तिसन्तप्तालोकास्त्यन्मुखतस्तथा
वेदानां जनकस्त्वञ्च वैदिकानां सतामपि । ब्रह्मादीनां सुराणाञ्च मुनीनां जगतामपि ॥

श्रुतं यत् त्वन्मुखाग्मोजात् प्रमाणं चचनामृतम् ।

तेन देहोऽग्निपिक्तो मे घत्स विच्छेददाहन् ॥ ५ ॥

स्वप्ने यच्चरणान्मोजं सर्वकामफलप्रदम् । ब्रह्मादयो न पश्यन्ति तदद्य दृष्टिगोचरम् ॥
अतः परं त्वत्पदाब्जं क पश्यामि च पातकी । विष्णून्धारी देहो मे निवद्धस्य कर्मणा
ईदृशञ्च दिनं घत्स कदा मम भविष्यति । त्वया ब्रह्मादिनाथेन संवादो मम पापिनः ॥ ८

रूपां कुरु रूपानाथ मम दोषं क्षमस्व च । घत्सवुर्द्याव दुर्नीतं यत् कृतञ्च महेश्वर ॥
 मय्येशदोषमुनयो ध्यायन्ते यत्पदान्मुञ्जम् । सरस्वती धृतिर्यस्य स्तवने जडतां व्रजेत्
 इत्येवमुक्त्वा नन्दश्च निरानन्दः शुचाकुलः । भूर्च्छामाप रुदित्वा च पुत्रपिन्देद्विह्वलः
 सन्प्रस्तोभगयान् कृष्णो घोषयामास यत्नतः ।

परमाध्यात्मिकं प्रानं ददौ तस्मै उगत्पतिः ॥ १२ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

हे नन्द जनकश्रेष्ठ सर्वश्रेष्ठ त्रैलोक्य । चेन्नं कुरु कल्याणप्रानञ्च परमं शृणु ॥ १३ ॥

परमाध्यात्मिकं प्रानं प्राप्तिनाञ्च सुदुर्लभम् ।

वेदशास्त्रे गोपनीयं तुभ्यमेव ददाम्यहम् ॥ १४ ॥

नियोध धूयतां नन्द सानन्दः सुमहादितः । जन्ममृत्युजराव्याधि यदभ्यासान्न जायते
 निरोगो भव महाराज व्रजनाथ व्रजं व्रज ।

प्रानं लब्ध्वा सदानन्दः शोकमोहविषजितः ॥ १६ ॥

जलप्लुतुदपत्सर्वं संसारं सवराचम् । प्रभाते भ्यप्यपन्मिष्या मोहकारणमेव च ॥ १७ ॥
 मिष्याहृषिमनिर्माणहेतुश्च पाञ्चभौतिकः । मायया सत्यबुद्धया च प्रतीतिं जायते नरः
 कामक्रोधलोभमोर्द्वेषादिः सत्यकर्मसु । मायया मोहितः शययत् पान्थानिश्च दुर्यतः ॥

निद्राजान्द्रादुत्तिगवासाक्षमाध्याद्यादिभिः ।

लज्जा शान्तिर्गतिः पुष्टिस्तुष्टिध्यानश्च पेशितः ॥ २० ॥

मनोबुद्धिभेदजाभिः प्राणप्रानात्मभिः सह । संयतः सत्यंशेभ्य यथा गृह्यथ पायसैः ॥
 भद्रमायमा य सर्वेशः सर्वज्ञानात्मकः स्मृतः । मनो यज्ञा च प्रवृत्तिर्यद्विरूपा समालीनी
 प्राणा पिण्डधेतवा वा पञ्चा तु चाभिदेयता ।

मयि स्थितं स्थिताः सर्वे गतास्तेऽपि गते मयि ॥ २३ ॥

ध्यायानिश्च पिना देहः सद्यः परतिनिधितः । पाञ्चभूतो धिर्मनश्च पञ्चभूतपुष्टिपानम्
 नाम सर्वेतरूपञ्च निष्कलं मोहकारणम् ।

शोकमात्राजिनीं तप्य प्राप्तिनां मांभिः किञ्चन ॥ २५ ॥

निद्रादयः शक्तयश्च ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः । लोभादयो ह्यधर्मांशास्तथाहङ्कारपञ्चमः ॥
ते ब्रह्मचिप्णुवृद्धांशागुणाः सत्त्वादयस्त्रयः । ज्ञानात्मकः शिवो ज्योतिरहमात्मा च निर्गुणः

यदा विशामि प्रकृतौ तदाहं सगुणः स्मृतः ।

सगुणा विपया विष्णुब्रह्मवृद्धादयस्तथा ॥ २८ ॥

धर्मोऽमर्शो विपयी शेषः सूर्यः कलानिधिः । एवं सर्वं मत्कलांशा मुनिमन्यादयः सुराः
सर्वदेहे प्रविष्टोऽहं न लितः सर्वकर्मसु । जीवन्मुक्तश्च भद्रको जन्ममृत्युजराहरः ॥ ३० ॥

सर्वसिद्धश्वरः श्रीमान् कीर्तिमान् पण्डितः कविः ।

चतुस्त्रिंशद्विधः सिद्धः सर्वकर्मोपहारकः ॥ ३१ ॥

तमुपैमित्स्वयं सिद्धं भक्तस्त्वन्यन्नवाञ्छति । द्वारिंशतिविधं सिद्धं सिद्धसाधनकारणम्
मन्मुखाच्छ्रूयतां नन्द सिद्धमन्त्रं गृहाण च ।

अणिमा लघिमा व्याप्तिः प्राकान्त्यं महिमा तथा ॥ ३३ ॥

इशित्यञ्च वशित्यञ्च तथा कामाद्यसायिता । दूरध्वजमेवेति परकायप्रवेशनम् ॥ ३४ ॥
मनोयायि त्यमेवेति सर्वध्वजमभीप्सितम् । वह्निस्तम्भं जलस्तम्भं चिरजीवित्यमेव च

कायव्यूहञ्च वाक्सिद्धिं मृतानयनभीप्सितम् । सृष्टोनां करणञ्चैव प्राणाकर्षणमेव च
ओं सर्वेश्वरेश्वराय सर्वविघ्नविनाशिने मधुसूदनाय स्वाहेति ।

अयं मन्त्रो महागूढः सर्वेषां कल्पपादपः ।

सामवेदे च कथितः सिद्धानां सर्वसिद्धिदः ॥ ३७ ॥

अनेन योगिनः सिद्धा मुनीन्द्राश्च सुरास्तथा । शतलक्षजपमेव मन्त्रसिद्धिर्भवेत्सताम् ॥
यदि नारायणक्षेत्रे हविष्यान्नरतो जपेत् ।

गत्वा कुरु जपं तात काशिकां मणिफणिंकाम् ॥ ३६

शृणु नारायणक्षेत्रं जलाधस्तच्चतुष्टयम् । अथ नारायणः स्वामी नान्यः स्वामीकदाचन
प्राज्ञश्चाथ मृते लोके सिद्धिर्भवति तस्य वै । यतं विनापि मन्त्रेण जीवन्मुक्तो न संशयः
यजं कुरु पवित्रञ्च यजनाथ यजं यज । पापं यद्दर्शने तात कथयामि निशामय ॥ ४२ ॥
दुःस्यज्जं पापवीजञ्च केवलं विघ्नकारणम् । गोघ्नञ्च ब्राह्मणघ्नं वा वृत्तज्जं कुटिलं तथा

देवश्च पितृमातृभ्यं पापं विश्वासघातिनम् ।

मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारं यज्ञातिथ्यविवक्षकम् ॥ ४४ ॥

ग्रामयाजिनमेवेति देवचिप्रस्वहारिणम् । अश्वत्थघातिनं दुष्टं शिवविष्णुविनिन्दकम् ॥

अवीक्षितमनाचारं सन्ध्याहीनं द्विजं तथा । देवलं वृषबाहञ्च शूद्राणां सूपकारकम् ॥ ४६ ॥

शषदाहिनञ्च शूद्राणां शूद्रभ्रातृभोजिनम् ।

अवीरां छिन्ननासाञ्च देवब्राह्मणनिन्दकाम् ॥ ४७ ॥

पतिभक्तिविहीनाञ्च विष्णुभक्तिविहीनकाम् ।

शूद्राणां विधवाञ्चैव चाण्डाली व्यभिचारिणीम् ॥ ४८ ॥

शश्वत्कोपयुतं दुष्टमृणप्रस्तञ्च जारजम् । चौरं मिथ्यावादिनञ्च शरणागतयायिनम् ॥

मांसापहारिणञ्चैव ब्राह्मणं वृषलीपतिम् । ब्राह्मणीगामिनं शूद्रं द्विजं चाद्वर्धुपिकं तथा

अगम्यागामिनं दुष्टं चतुर्वर्णनराधमम् ॥ ५० ॥

माता सपत्नीमाता च श्वश्रूश्च भगिनी तथा । गुरुपत्नी पुत्रपत्नी सोदरस्य प्रिया सती

मातृस्वसा पितृस्वसा भागिनेयप्रिया तथा ।

मातुलानी नवौढा च पितृव्यह्वी रजस्वला ॥ ५२ ॥

पितृमातृप्रसूचैव चागम्याष्टादश स्मृताः । कीर्तिताः सामवेदे च परिपाल्याः सतांशज

पता दृष्टा च स्पृष्टा च ब्रह्महत्यालभेनरः ।

तस्माद्देवेन ता दृष्ट्वा सूर्यं दृष्ट्वा हर्षिस्मरेत् ॥ ५४ ॥

कामतो यदि पश्यन्ति विनिन्द्यास्ते भवन्ति वै ।

तस्मात्सन्तो ॥ पश्यन्ति शापभीता व्रजेश्वर ॥ ५५ ॥

राहुग्रस्तं रविं सोमं न पश्यन्ति विपश्चितः । जन्माष्टसप्ततिः कालाद्दशमस्थे दिवाकरे ॥

जन्मक्षीनियनं चापि चतुर्युगपिकलानिधौ । नष्टचन्द्रो न दृश्यश्च भाद्रे मासि सितासिते

चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रः परित्यक्तो मनीषिभिः ॥ ५७ ॥

चन्द्रस्तारापहरणं कलङ्कमतिदुष्करम् ।

तस्मै ददाति हे नन्द कामतो यदि पश्यति ॥ ५८ ॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः]

सूर्यग्रहणाख्यानम् *

६५५

अकामतो नरो दृष्ट्वा मन्त्रपूतं जलं पिबेत् । तदा शुद्धो भवेत्सद्यो निष्कलङ्को महीतले
सिंहः प्रसेनमघधीत् सिंहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मारोदीस्तव ह्येषः स्यमन्तकः
इति मन्त्रेण पूतञ्च जलं साधु पिबेद् ध्रुवम् । इति तै कथितं सर्वमपरं कथयामि ते ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्तेमहापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

अध्यात्मिकज्ञानवर्णनं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

सूर्यग्रहणाख्यानम्

श्रीनन्द उवाच ।

राहुग्रस्तः कथं सूर्यश्चन्द्रो घापिजगत्प्रभो । नष्टश्चन्द्रः कथं भाद्रे चतुर्ध्याश्चासितेसिते
वेदानां जनकस्त्यञ्च कं पृच्छामि त्वयाविना । वेदेपुराणे गोप्यं यन्न जानन्ति विपश्चितः
इति तद्वचनं श्रुत्वा चेदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अकथ्यं वचनं चेदं निगिञ्चं वेदिभैरवि । क्षमस्व नन्द भद्रं ते प्रश्नमन्यं कुरुष्व माम् ॥
विश्यस्तं वचनं तात ॥ प्रकाश्यं मनीषिभिः ।
विभ्नः प्रकाशे भवति सतां छिद्रम्य देवतः ॥ ४ ॥

नन्द उवाच ।

कथयस्व जगन्नाथ न भक्ते वञ्चनं कुरु । अदृश्यो चापि देवेशो राहुग्रस्तो च पुण्यदो
श्रीभगवानुवाच ।

शृणु नन्द प्रवक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम् । यां श्रुत्वा निष्कलङ्कश्च तोर्धध्यायी भवेन्नरः
सर्वपातकिनं दृष्ट्वा यत्पापं लभते नरः । आख्यानध्वणेनैव भस्मीभूतं भविष्यति ॥ ७ ॥
एफदा जमदग्निश्च महाकांतूदलान्वितः । रेणुकासहितस्तुष्टो जगाम नर्मदातटम् ॥ ८ ॥

निर्जने नर्मदातीरे विजहार तथा सह । नवोदया च सुन्दर्या नवयीवनयुक्तया ॥ १० ॥
 सुवेशया सुस्मितया रत्नभूषणयुक्तया । नतया स्तनभारेण श्रोणीभारेण मन्दया ॥ ११ ॥
 सुन्दरीणामतुलया श्वेतवस्त्रपक्वर्णया । सुपूर्णचन्द्राननया कटाक्षयुतया तथा ॥ १२ ॥
 भतीवसूक्ष्माम्बरया कामवाणार्त्तया व्रज । पुलकाञ्चिसर्वाङ्गसम्भोगेनातिमूर्च्छया ॥ १३ ॥
 पुंसकोफिलयुते रम्ये शब्दिते सुमधुव्रते । सुगन्धिवायुसंयुक्ते पुष्पतल्पान्विते शुभे ॥
 चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं वस्त्रमाल्यधरं मुनिम् ।

महारासरसाढ्यं तमुवाच भास्करः स्वयम् ॥ १४ ॥

वेदकर्तुः प्रपौत्रस्त्वं ब्रह्मणश्च जगत्पतेः । चतुर्वेदविधेयेषु सुनिष्णातः सदा शुचिः ॥
 वेदाङ्गकर्ता धर्मज्ञः श्रेष्ठो वेदविदां घरः । महातपस्वी तेजस्वी ब्रह्मचारी च सुव्रती ॥
 युष्मद्विधोक्तं शास्त्रञ्च पठित्वान्यश्च पण्डितः ।
 वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ १७ ॥

धर्मं त्यजति धर्मज्ञो ह्यधर्मेण रतः कथम् । दिवामेधुनदोषञ्च वक्ति वेदो विशेषतः ।
 अहञ्च धर्मिणां साक्षी तेन त्वां कथयामि च ॥ १८ ॥

सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा तत्याज मैथुनं द्विजः । दृष्ट्वा पुरो विपरुषं सूर्यं तेजस्विनं सुरम्
 उवाच सूर्यं रक्तास्यः कोपलज्जासमन्वितः । रेणुका लज्जितातत्र विधाय बाससी सती
 जमदग्निरुवाच ।

को भवान् पण्डितममन्यो न त्वदन्योऽस्ति पण्डितः ।

अहं भृगोर्मगवतः शिष्यस्त्वं कश्यपस्य च ॥ २१ ॥

चतुर्वेदांश्च जानामि धर्माधर्मनिरूपणे । वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ २२ ॥
 अज्ञानी पुरुषः शश्वज्जड़ितश्च स्वकर्मणा । तेजीयसां च दोषाय गह्वरे सर्वभुजो यथा
 अन्ये भवांश्च धर्मश्च साक्षी सर्वे च कर्मणाम् । फलदाता च शास्त्रज्ञो यतस्तत्त्वज्ञतयः सदा
 न वैष्णवानां शास्त्रारो यूयमस्माकमेव च । न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ॥
 हरेः सुदर्शनञ्चकं शश्वद्रक्षति वैष्णवान् ।

नारायणश्च भगवान् स्वयं ब्रह्मा च शङ्करः ॥ २६ ॥

शास्ता यमश्च नास्माकं त्वं वै नापि दिवाकर ।
 राजपुत्रो यथा स्थाने वयं स्वच्छन्दगामिनः ॥ २७ ॥
 शक्तोऽहं भस्मसात् कर्तुं यमं सर्वसुरांस्तथा ।
 महेन्द्रप्रभृतीन् सूर्य्य क्षणेनैवाचलीलया ॥ २८ ॥

कस्त्वं धर्मप्रचका मे याहि स्वस्थानमेव च । मम शास्ता च भगवान् श्रीकृष्णः प्रकृतैः परः
 अथ मे निर्जने स्थाने रसभङ्गस्तवया कृतः । मम शापात्पापद्वयो राहुग्रस्तो भविष्यसि ।

द्रष्टुं त्वां ये घना, सर्वे दूरीभूता भवन्ति ते ।
 त्वामाच्छन्नं करिष्यन्ति धायुना प्रेरितास्तथा ॥ ३१ ॥
 स्वतेजस्ता भवान् गर्वाद्धतेजा भविष्यसि ।
 मेघाच्छन्न, स्यत्पतेजा राहुग्रस्तो भवान् भव ॥ ३२ ॥
 ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा भगवान् भास्करः स्वयम् ।
 ततः पुटाञ्जलिर्भूत्वा तुष्टाय मुनिपुङ्गवम् ॥ ३३ ॥

भास्कर उवाच ।

अवध्याः सर्वधर्मज्ञ धन्या मान्याः पुरस्कृताः ।
 नारायणश्च भगवान् शम्भुर्वेहा स्वयं प्रभुः ॥ ३४ ॥

गणेशश्चापि शेषश्च धर्मश्चापि सनातनः । स्तुवन्ति ब्राह्मणं सर्वे विप्ररूपिजनार्दनम् ॥
 विप्रदत्तश्च यो ब्रह्मन् वयमस्मन्मुखा द्विजः । हुताशनश्च द्विमुखाः सुराः सर्वे द्विजो वरम्
 क्षमस्व वैष्णवः शुद्धः स्वधर्मञ्च समाचर ।

वैष्णवानां कुतः कोपो हृदि येषां जनार्दनः ॥ ३७ ॥
 अस्माभिः पूजिता विप्रा युष्माभिः पूजिताः सुराः ।
 परस्परं स्नेहपात्रं चेदमाचरणं द्विज ॥ ३८ ॥

अहमेव त्वया शक्तो मया शक्तो भवान् भव । अन्यथा मां वदन्त्येवं सूर्यं निस्तेजसं जनाः
 पराभूतः क्षत्रियेण भविष्यसि द्विजेश्वर । मरणं क्षत्रियास्त्रेण भवतश्च भविष्यति ॥
 सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा चुकोप ब्राह्मणः पुनः । तं शशापातिरत्कास्यः शम्भुना निर्जितो भवान्

उभयोः कलहं ज्ञात्वा कश्यपेन सह व्रज । आजगाम स्वयं ब्रह्मा विधाता जगतामपि ॥
आगत्य ब्रह्मा सन्त्रस्तं योधयामास भास्करम् । मुनिश्रेष्ठश्च धर्मज्ञं धर्मज्ञानां गुरोर्गुरुः ॥
ब्रह्मोवाच ।

क्षमस्व भास्कर त्वञ्च साक्षान्नारायणो भवान् ।

युष्माकं परिपाल्यश्चाप्यवध्यो ब्राह्मणः सदा ॥ ४४ ॥

अहं करोमि भवतो विप्रशापान्तमुत्त्वणम् । अत्राहमागतस्त्रस्तो भृगुणा प्रेरितस्ततः ॥
स्फुटोऽहं प्रेरितश्चापि कश्यपेन मरोचिना । शान्तो भव सुश्रेष्ठ साक्षी त्वं सर्वकर्मणाम्
कुत्रचिद्विषसे ब्रह्मन् त्वां तत्र कुत्रचित् क्षणम् ।

भविष्यसि घनाच्छन्नः सद्योमुक्तो भविष्यसि ॥ ४७ ॥

न्यूनातिरिक्ते वर्षे च राहुग्रस्तो भविष्यसि ।

तत्रादृश्यश्च केवाञ्चित् पुण्यदृश्यो हि कस्यचित् ॥ ४८ ॥

अस्यथा सर्वकालेन पुण्यदृश्यो भवान् भुवि ।

त्वां दृष्ट्वा च नमस्कृत्य सर्वे निष्पापिनोजनाः ॥ ४९ ॥

जन्मसत्ताष्टरिप्फाकं चतुर्थे दशमे तथा । जन्मर्क्षे निधनं नृणामदृश्यस्त्वं भविष्यसि ॥
अस्तकाले घनाच्छन्नमभ्याहस्ये जलेऽपि वा । भर्द्धोदिते च फाले च पापदृश्यो भविष्यसि
भार्यादुःखनिमित्तेन भार्यया हेतुभूतया । श्वशुरेण श्यालकेन हततेजा भविष्यसि ॥
अस्यथा तव तेजश्च संज्ञा सदितुमक्षमा । मालिसुमालियुद्धे च शम्भुना त्वं पराजितः ॥
इत्येवमुक्त्या सूर्यश्च योधयामास ब्राह्मणम् । नम्रं शापपराभूतं लज्जितं कोपितं व्रज ॥

हे विप्र स्वगृहं गच्छ गच्छ घत्स यथासुखम् ।

त्वत्तेजसा क्षणेनैव भस्मीभूतं भवेज्जगत् ॥ ५५ ॥

सूर्यस्त्यक्परिपाल्यश्च भवान् सूर्यस्य नित्यशः ।

परस्परं च पूज्यश्च सम्बन्धः पोष्यपोषकः ॥ ५६ ॥

हयंशेन क्षत्रियेण फार्तर्षीयार्जुनेन च । भविष्यसि न सन्देहः पराभूतो द्विजो मृतः ॥
पुराते प्राक्तनं सर्वं कदाचिन्न हि राण्डितम् । नारायणश्च स्वांशेन तव पुत्रो भविष्यति

त्रिःसप्त कृत्वा जगतीं निःक्षत्राञ्च करिष्यति ।
 मृत्युस्ते यशसो वीजं भविष्यति महीतले ॥ ५६ ॥
 इत्येवमुक्त्वा ब्रह्मा च ययौ गेहं प्रजेश्वर ।
 प्रययौ जमनिश्च भास्करश्च स्वमन्दिरम् ॥ ६० ॥
 इत्येवं कथितं तात स्वाख्यानं पुण्यकारणम् ।
 राहुग्रस्तो भास्करश्चाप्यदृश्यो येन हेतुना ॥ ६१ ॥

चतुर्ध्यामुदितश्चन्द्रो भाद्रे मासि सितासिते । अदृश्यो नष्टरूपश्च श्रूयतां येन हेतुना ॥
 राहुग्रस्तो कलङ्की वा पुरा शतो मया पितः । सर्वं त्वां कथयिष्यामि कथामेतां पुरातनीम्
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
 भगवद्भद्रसंवादे सूर्यग्रहणाख्यानवर्णनं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ।

अशीतितमोऽध्यायः

चन्द्रग्रहणाख्यानवर्णनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

पुरा तारा गुरोः पत्नी तवयौघनसंयुता । रत्नभूषणभूषाढ्या वरसूक्ष्माभ्वरा सती ॥ १ ॥
 सुधौणी सस्मिता रम्या सुन्दरी सुमनोहरा । अतीवकषीररम्या मालतीमाल्यभूषिता ॥
 सिन्दूरचिन्दुना साकं चारुचन्दनचिन्दुभिः । कस्तूरीचिन्दुनाधश्च भालमध्यस्थलोज्ज्वला
 रत्नेन्द्रसारनिर्माणकणमञ्जोररञ्जिता ।
 सुधकलोचना श्यामा सुचारुकज्जलोज्ज्वला ॥ ४ ॥
 सुचारसारमुक्ताभदन्तपङ्क्तिमनोहरा । रत्नकुण्डलयुग्मेन चारुगण्डस्थलोज्ज्वला ॥ ५ ॥
 कामिनीप्यनुला बाला गजेन्द्रमन्दगामिनी ।
 सुकोमला चन्द्रमुखी कामाधारा च कामुकी ॥ ६ ॥

त्वर्गमन्वाकिनीतीरे स्नाता स्निग्धाम्बराचरा । ध्यायन्तीगुरुपादं सा स्वगृहं गमनोन्मुखी
दृष्ट्वा तस्याश्च सर्चाङ्गमनङ्गचाणपीडितः । भारे चतुर्थ्यां चन्द्रश्च जहार चेतनां व्रज ॥ १
ज्ञानं क्षणेन सप्राप्य रथस्थो रसिको बलौ । रथमारोहयामास करे धृत्या च तारकाम्

कामोन्मत्तः कामिनीं तां समाश्लिष्य चुचुम्य च ।

शृङ्गारं कर्तुमुद्यन्तं समुपायं गुरुप्रिया ॥ १० ॥

तारोपाय ।

त्यज मां त्यज मां चन्द्र सुरेषु कुलपांसन । गुरुपत्नीं ब्राह्मणीञ्च पतिव्रत्यपराधणाम्
गुरुपत्नीसङ्गमने ब्रह्महत्याशतं भवेत् ॥ ११ ॥

गुरुपत्नीं विप्रपत्नीं यदि सा च पतिव्रता । ब्रह्महत्यासहस्रञ्च तस्याः सङ्गमने लभेत् ॥
पुत्रस्त्वं तव माताऽहं धैर्यं कुरु सुरेश्वर ।

धिक् त्वां श्रुत्वा सुरगुरुर्मस्मीभूतं करिष्यति ॥ १३ ॥

पुत्राधिकश्च शिष्यश्च प्रियो मत्स्वामिनो भवान् ।

स्वधर्मं रक्ष पापिष्ठ मामेवं मातरं त्यज ॥ १४ ॥

दास्यामि स्त्रीबधं तुभ्यं यदि मां संग्रहिष्यसि ॥ १५ ॥

विलङ्घ्य तारावचनं तश्च सम्मोक्तमुद्यतम् । शशापतारा कोपेन निष्कामा सा पतिव्रता
राहुग्रस्तोद्यतग्रस्तः पापदृश्यो भवान्भव । कलङ्कीयक्ष्मणा ग्रस्तोभविष्यसि न संशयः

चन्द्रं शप्त्वा तदा तूर्णं कामदेवं शशाप सा ।

तैजस्विना केनचित् त्वं भस्मीभूतो भविष्यसि ॥ १८ ॥

चन्द्रस्तारां गृहीत्वा च कृत्वापि रमणं व्रज ।

क्रोडे निधाय प्रययौ रदन्ती तां शुचान्विताम् ॥ १९ ॥

निर्जने निर्जने रम्ये शैले शैले मनोहरे । सरोनदगदीनाञ्च तीरे तीरे मनोहरे ॥ २० ॥

मधुव्रतपिकोके च पुष्पोद्याने सुषुप्ति । स्म्यायां पुष्पशय्यायां स रमे रामया सह ॥

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो मधुपानरतः सुरः ।

सुप्तसम्भोगसंसक्तो बुबुधे न दिवानिशम् ॥ २२ ॥

मलये मलयारण्ये मलयानिलसंयुते । स्यन्दने चन्दनवने पश्चिमोदधिसन्निधौ ॥ २३ ॥
 त्रिकूटे घटमूले च तत्र चन्द्रसरोधरे । सुचारुशतपत्राणां पत्रे चन्दनचर्चिते ॥ २४ ॥
 सुचारुचम्पकोद्याने चम्पकानिलपूजिते । क्षीरोदकाञ्चनीभूमी कौञ्चकाञ्चनपर्वते ॥ २५ ॥
 रत्नशैले मणिमये मणिमन्दिरसुन्दरे । मानिक्यमुक्तासारणे ह्रीरहारेण शोभिते ॥ २६ ॥
 सुचारुवस्त्रचित्राढ्ये श्वेतचामरदर्पणे । भूषिते रत्नदीपैश्च देवकीङ्गे प्रियस्थले ॥ २७ ॥
 वारुणीं मदिरां पीत्वा वरुणानीसमन्वितः । वरुणो रमते यत्र तत्र रमे तथा सह ॥ २८ ॥
 पावने पवनोद्याने पारिजातानिलेन च । सुगन्धिमोहिते रत्नमालातीरे च निर्मले ॥ २९ ॥
 ऋक्षशैले कल्पवृक्षवने वह्निप्रियाश्रमे । पर्षो च कामधेनूनां क्षीरं क्षीरोदधेस्तटे ॥ ३० ॥
 वह्निशुद्धांशुकयुगं वह्निस्तस्मै ददौ मुदा । वरुणो रत्नमालाञ्च रत्नचक्रं समीरणः ॥
 तत्र दृष्ट्वाऽसुरगुरुं बलिगोहात् समागतम् । प्रणम्य सर्वमुक्त्या च चन्द्रस्तं शरणं ययौ
 शुकस्तं बोधयामास धवनं नीतियुक्तितः । निरपेक्षो मुनिथेष्ठो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ३३ ॥

शुक उवाच ।

शृणु वत्स प्रपश्यामि गुरवे देहि तारकाम् ।

शम्भोश्च गुरुपुत्राय पौत्राय ब्रह्मणश्च वै ॥ ३४ ॥

पूजिताय सुराणाञ्च देया तस्मै निशापते ।

प्रियाय तत्प्रियां दत्त्वा शीघ्रं त्वं शरणं व्रज ॥ ३५ ॥

गुरुपत्नीं मातृतुल्यां त्यज मद्रचनाद्विधो । कुरु पापक्षयं पापनिवृत्तिस्तु महाफला ॥
 सतीनां गुरुपत्नीनां ब्रह्मणे च धत्तेन च । ब्रह्महत्यासहस्राणां पातकं लभते जनः ॥ ३७ ॥
 कुम्भीपाके च पच्यन्ते यापद्वे ब्रह्मणः शतम् । साम्यं नारायणस्थाने तृणपर्वतयोः सुर
 फस्त्यं पत्स हरे स्थाने कर्मभोगोऽस्ति ब्रह्मणः ।

नारायणाश्रिताः सर्वे जीविनस्त्रिपिधा भवे ॥ ३६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीब्रह्मजन्मघण्टे
 भगवन्मन्दसंवादे ताराहरणे चाशीतितमोऽध्यायः ।

एका२॥ततमाऽध्यायः

ताराऽऽनयनार्थं शुक्रसमीपे देवानां गमनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे शुक्रः सुरध्रेणीं ददर्श सः । अकाशमार्गादायान्तीं रणशस्त्रास्त्रधारिणीम्
पताकानां त्रिकोटिश्च शतकोटिर्महारथम् ।

शतकोटिर्गजेन्द्राणां रथानां तच्चतुर्गुणम् ॥ २ ॥

अश्वानां तच्छतगुणं समूहश्च सुदारुणम् । पदातीनां समूहश्च तुरगेभ्यश्च पङ्क्तुगुणम् ॥
दुन्दुभीघाघभाण्डानां पञ्चलक्षं तथैव च ।

पटहानां त्रिलक्षश्च डिण्डिमानां त्रिलक्षकम् ॥ ३ ॥

पैरावते महेन्द्रश्च श्वेताश्वे धर्ममेव च । कुबेरं वरुणं बर्हि रथस्थं पवनं तथा ॥ ५ ॥
महिषस्थं यमश्चैव स्यन्दनस्थं दिवाकरम् । ईशानश्च गजेन्द्रस्थमनन्तं नागबाहनम् ॥

आदित्यांश्च वसून् यद्वान् सिद्धगन्धर्वकिन्नरान् ।

जीवन्मुक्तमुनीनाञ्च समूहं सूर्यवर्चसम् ॥ ७ ॥

तान् दृष्ट्वा निर्भयः शुक्रः समाभ्वास्य निशाकरम् ।

सुराणां द्विगुणं सैन्यमानुहाघ व्रजेश्वर ॥ ८ ॥

रत्नमालानदीतीरे हुताशनप्रियाश्रमे । तत्र तस्थौ दैत्यसैन्यं पुण्यक्षोरोदधेस्तटे ॥ ९ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शुक्रः समीपे सरसस्तटे । पुण्याश्रमेऽक्षयवटे सुरसैन्यात् समागतम् ॥

ददर्श वृषभस्थञ्च शङ्करं सर्वशङ्कुम् । त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं चरम् ॥ ११ ॥

तेजःस्वरूपं परमं भक्तानुग्रविग्रहम् । सर्वसम्पत्प्रदातारं सर्वज्ञं सर्वकारणम् ॥ १२ ॥

सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वरूपं सनातनम् । शरणागतदिनार्त्तपरित्राणपरायणम् ॥ १३ ॥

सस्मितं परमात्मानं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ।

सन्त्रस्तः सहस्रोत्थाय प्रणनाम पदाम्बुजे ॥ १४ ॥

ददौ शुभाशिपं तस्मै सुप्रसन्नः परात्परः । रत्नसिंहासने तञ्च वासयामास सादरम् ।
अथ तत्रान्तरे विप्र पुरतस्तं ददर्श सः । शान्तं स्वयं विधातारं रत्नस्यन्दनसुन्दरम् ।
बहिःशुद्धांशुकाधानं रत्नमालाविभूषितम् । प्रसन्नं सुस्मितं शुद्धं जगतामोश्वरं परम् ॥

कर्मणां फलदातारं तपोरूपं तपस्विनाम् ।

वैशानां जनकं वेदप्रसूकान्तं मनोहरम् ॥ १८ ॥

पुटाञ्जलिस्तदा व्रस्तः प्रणनाम सुरेश्वरम् ।

रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास भक्तिः ॥ १९ ॥

पूजां चकार भक्त्या च तयोश्चरणपङ्कजे । नोचितं कुशलप्रश्नं तयोः कल्याणमेव च ॥

विधाता जगतां शुक्रमाचार्यं पुरतः स्थितम् ।

सुनीतिं कथयामास यत्नतः शम्भुसम्मतः ॥ २१ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु शुक्र प्रवक्ष्यामि दुर्नीतिं शशिनः सुत । लज्जाकरं त्रिजगतां कर्म वेदबहिष्कृतम् ॥

ज्ञात्वा गृहोन्मुखी तारां गुरुपत्नी पतिव्रताम् ।

गृहीतवा शरणापन्नस्त्ययि पापश्च साम्प्रतम् ॥ २३ ॥

प्रस्तुतं देवसैन्यञ्च पश्य धृष्ट रणोद्यतम् ।

अहं शम्भुस्त्यत्समीपं तदर्थञ्च समागतौ ॥ २४ ॥

शम्भुवाच ।

चन्द्रमानस हे विप्र यदात्मशिवमिच्छसि । संहरिष्ये शिरस्तस्य त्रिशूलेन च पापिनः ॥

अन्यथा संहरिष्यामि सर्वदैत्यान् क्षणेन च ।

मयि रुष्टे रक्षिता फो दैत्यानाञ्च भवेदु द्विज ॥ २६ ॥

सद्यः पाशुपतेनैव घाट्वास्त्रेण च साम्प्रतम् । सुराणां रिपुवर्गञ्च हरिष्यामि च लीलया

दुर्वाससो मदंशस्य गुरुस्तस्याङ्गिरा मुनिः । परस्पराद्य सभ्यन्धाद् गुरुपुत्रो गुरुर्मम ॥

युद्धस्पतिश्च तेजस्वी तं भस्मीकर्तुमीदृशः । न चकार कृपालुश्चेत् प्रियशिष्येण हेतुना

उतथपदां दृष्ट्वा स पुरा रमे स्वकामतः । तत्पतेः शापतोऽस्यैव परप्रस्ता प्रियासत्तु

पत्नीं मद्गुरुपुत्रस्य देहि तारां मनोहराम् । मद्देरिणञ्च चन्द्रञ्च भ्रातृभार्यापहारिणम् ॥
 शरणागतदीनार्तं न हि रक्षेद्यदीश्वरः । पच्यते निरये तावदावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३२ ॥
 अत्र नास्ति विचारो मे पापिष्ठे शरणागते । पापी यं शरणं याति स पापीच न संशयः
 देहितं विप्रशार्दूल पापिनं मातृगामिनम् । बहिष्कृत्य स्वाश्रमाच्च तारासाध्वीसमन्वितम्
 शुक् उवाच ।

सुराणामसुराणाञ्च सर्वेषां जगतामपि । त्वमेवशास्ता भगवात् क्रोधाशास्ति सुरेऽसुरे
 कृत्वा सुराणां साहाय्यं कथं दैत्यान् हनिष्यसि ।
 संहर्तुः सर्वजगतां दैत्योद्ये किञ्च पौरुषम् ॥ ३६ ॥
 त्वं ज्योतिः परमं ब्रह्म सगुणो निर्गुणः स्वयम् ।
 गुणभेदान्मूर्तिभेदो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ ३७ ॥

बलिद्वारे गदापाणिः स्वयमेव भवान् प्रभो । स्वयं प्रदत्ता शुकाय तस्मै धोरपि लीलया
 क्षमस्व भगवन् शम्भो हर क्रोधञ्च संहर । किं पौरुषञ्च भवतो ब्राह्मणस्यापि हिंसया
 अहं जीयन् शरीरेण न दास्यामि निशाकरम् । शरणागतदीनार्तं लज्जितं पापसंयुतम् ॥
 अहञ्च त्यक्तपाप्मनो जे शरणं यामि शङ्कर । यथोचितं कुरु विभो जगत्सर्वं तथैव च ॥
 शुक्रस्य वचनं धत्वा प्रसन्नो भगवान् शिवः । इत्युक्त्वा च निशानाथं समानय शुभंभवेत्
 एतस्मिन्नन्तरैर्ब्रह्मा बोधयित्वा कर्षिं विभुः । समानीय निशानाथं तारकासहितं वज्र
 शम्भोश्च चरणाम्भोजे चकार च समर्पणम् । शम्भुस्तं प्रीतियुक्तश्च वासयामास वक्षसि
 दत्त्वा तस्मै पादरेणुं निष्पापश्च चकार सः । दत्त्वा तन्मस्तके हस्तं कृपालुरभयं ददौ ॥
 क्षीरोदे स्नापयित्वा च प्रायश्चित्तेन शङ्करः । चकारचन्द्रं निष्पापं ब्रह्मणा सहितः शुचिम्
 योगेन चन्द्रं योगान्द्रो द्विखण्डं त चकार सः । ररक्षार्थं ललाटे च सोऽप्यहं ब्रह्मणः पुरः
 एवमेव महोदेवो बभूव चन्द्रशेखरः । मृगाङ्गो लज्जितस्तत्र कलङ्की देवसंसदि ॥ ४८ ॥
 लज्जया च स्वयोगेन देहत्यागं चकार सः । तच्छरीरञ्च क्षीरोदे ब्रह्मणा च समर्पितम्
 रुरोदात्रिश्च कृपया शुचा क्षीरोदधेस्तटे ॥ ४९ ॥

अब्रेक्षश्चुर्जलं तस्य पपात च जलं प्रज । तस्मादुपभूव चन्द्रश्च निष्पापो देवसंसदि ॥ ५० ॥

ब्रह्मा च भगवान् शम्भुरभियेकं चकार तम् । उवाच तं महादेवो निर्भयं देवसंसदि ॥
महादेव उवाच ।

स्वस्थानं गच्छ पुत्र त्वं कुरुष्व विषयं मुदा ।

पश्चात्तस्याश्च शापेन यक्षमग्रस्तो भविष्यसि ॥ ५२ ॥

व्यर्थं पतिव्रताशापं कर्तुमीशश्च को भुवि । मदाशिषा यक्षमणश्च प्रतीकारो भविष्यति
यस्माद्वाद्रचतुर्ध्यान्तु गुरुपत्नीक्षतिःकृता । तस्मात्तस्मिन् दिने घटस पापदृश्यो युगे युगे
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ५५ ॥
दैहत्पागेन हे घटस कर्मभोगो न नश्यति । प्रायश्चित्तान्न सन्वेहो ह्यस्तमेव भविष्यति
तारापहरणाद्वत्स फलद्वन्द्वमण्डले । मृगारुतिविलग्नश्च भविष्यति युगे युगे ॥ ५७ ॥
शृणु धाम्निमिहागच्छ तारके च पतिष्यते । सत्यं ब्रूहि कस्य गर्भं त्यक्त्वा शुद्धा भव प्रिये
अकामतो वलात् साध्वी न स्त्री जारेण दुष्यति ।

कामतो नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरो ॥ ५६ ॥

उवाच तारा ब्रह्माणं गर्भं चन्द्रस्य सस्मितम् । जहसुर्देवताः सर्वाः शम्भुश्च मुनिसङ्घकाः
ऋदौ ताराञ्च गुरवे लज्जिताय व्रजेऽग्नयः । बृहस्पतिर्ययौ गेहं गृहीत्वा च पतिव्रताम् ॥
तया प्रसूतं पुत्रञ्च सुन्दरं कनकप्रभम् । गृहीत्वा प्रययौ चन्द्रो नमस्कृत्य विधिं शिवम्
ययुर्वेधाश्च मुनयः शम्भुश्च कमलोद्भवः । प्रययौ स्वगृहं शुको दैत्ययुक्तो मुदान्वितः ॥
पतत्ते कथितं नन्द ह्याकषानं पुण्यदं शुभम् ।

पतच्छ्रुत्या तु निष्पापो निष्कलङ्की नरो भवेत् ॥ ६४ ॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वसम्पत्करं परम् । शोकापनोदनं हर्षकरं सर्वत्र मङ्गलम् ॥ ६५ ॥
त्यज शोकं सदा नन्द गृहं व्रज व्रजेश्वर । ब्रूहि सर्वं यशोदाञ्च मत्प्रसूं गोपिकागणम्
बोधयिष्यसि सर्वौ तां स्त्रीजातिं शोकसंयुताम् । मदीयज्ञानदत्तेन हर्षयुक्तः सदा भव ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

ताराहरणं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ।

द्वैतशीतितमोऽध्यायः

दुःस्वप्नवर्णनम् ।

नन्द उवाच ।

ध्रुतं सधं महाभाग दुःस्वप्नं कथय प्रभो ।

उवाच तं वै भगवान् ध्रूयतामिति तद्वचः ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

स्वप्ने हसति यो हर्षाद्विषाहं यदि पश्यति । नर्तनं गीतमिष्टञ्च विपत्तिस्तस्य निश्चितम् ॥
दन्ता यस्य विपीज्यन्ते विचरन्तश्च पश्यति । धनहानिर्भवेत्तस्य र्षाङ्गा चापि शरीरजा
अभ्यङ्गितस्तु तैलेन यो गच्छेद्दक्षिणां दिशम् । रारोद्रमहिषाकटो मृत्युस्तस्य न संशयः
स्वप्ने कर्णे जपापुष्पमशोकं करवीरकम् । विपत्तिस्तस्य तैलञ्च लघणं यदि पश्यति ॥

नग्रां कृष्णां छिन्ननासां शूद्रस्य विधवां तथा ।

कपर्दकं तालफलं दृष्ट्वा शोकमवाप्नुयात् ॥ ६ ॥

स्वप्ने कष्टं ब्राह्मणञ्च ब्राह्मणीं कोपसंयुताम् ।

विपत्तिञ्च भवेत्तस्य लक्ष्मीर्याति गृहाद् भुञ्जम् ॥ ७ ॥

धनपुष्पं रक्तपुष्पं पलाशञ्च सुपुष्पितम् । कार्पासं शुङ्खयत्नञ्च दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात्

गायन्तीञ्च हसन्तीञ्च कृष्णाभ्यरधरां ह्रियम् ।

दृष्ट्वा कृष्णाञ्च विधवां नरो मृत्युमवाप्नुयात् ॥ ८ ॥

देवता यत्र नृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च । आस्फोटयन्ति धावन्ति तस्य देहो मरिष्यति

धानं मूत्रं पुरीषञ्च वैद्यं रौप्यं सुवर्णकम् । प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने जीवितं दशमासिकम् ॥

कृष्णाभ्यरधरां नारीं कृष्णमाल्यानुलेपनाम् । उपगूहति यः स्वप्ने तस्य मृत्युर्भविष्यति

मृतवत्सिञ्च मुण्डञ्च मृगस्य च नरस्य च ।

यः प्राप्नोत्यक्षिमालाञ्च विपत्तिस्तस्य निश्चितम् ॥ १३ ॥

रथं खरोप्रसंयुक्तमेकाकी योऽधिरोहयेत् । तत्रस्योऽपि च जागर्ति मृत्युरेव न संशयः
अभ्यङ्गितस्तु हविषा क्षीरेण मधुनापि च । तत्रेणापि गुडेनैव पीडा तस्य विनिश्चितम्
रक्ताम्बरधरां नारीं रक्तमाल्यानुलेपनाम् ।

उपगृह्णति यः स्वप्ने तस्य व्याधिर्विनिश्चितम् ॥ १६ ॥

पतिताञ्जलकेशांश्च निर्वाणाङ्गारमेव च । मस्मपूर्णाञ्चितां दृष्ट्वा लभते मृत्युमेव च ॥
श्मशानं शुष्ककाष्ठञ्च तृणानि लौहमेव च ।

शमीञ्च किञ्चित्कृष्णाश्च दृष्ट्वा दुःखं लभेद् ध्रुवम् ॥ १८ ॥

पादुकां फलकं रक्तं पुष्पमाल्यं भयानकम् । मापं मसूरं मुद्गं वा दृष्ट्वासद्योव्रणं लभेत्
फटकं सरठं फाकं भल्लूकं चानरं गवम् । पूयं गात्रमलं स्वप्ने केवलं व्याधिकाशम्
भग्नभाण्डं क्षतं शूद्रं गलत्कुष्ठञ्च रोगिणम् । रक्ताम्बरञ्च जटिलं शूकरं महिषं खरम् ॥
अन्धकारं महाघोरमृतं जीवं भयङ्करम् ।

दृष्ट्वा स्वप्ने योनिलिङ्गं विपत्तिं लभते ध्रुवम् ॥ २२ ॥

कुवेशरूपं म्लेच्छञ्च यमदूतं भयङ्करम् । पाशहस्तं पाशशस्त्रं दृष्ट्वा मृत्युं लभेन्नरः ॥
ब्राह्मणो ब्राह्मणी बाला बालको वा सुतः सुता ।

विलापं कुरुते कोपाद् दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात् ॥ २४ ॥

कृष्णं पुष्पञ्च तन्माल्यं सैन्यं शस्त्रास्त्रधारिणम् ।

म्लेच्छाञ्च विकृताकारां दृष्ट्वा मृत्युं लभेद् ध्रुवम् ॥ २५ ॥

बाद्यञ्च नर्तनं गीतं गायनं रक्तवाससम् । मृदङ्गं वाद्यमानं तं दृष्ट्वा दुःखं लभेद् ध्रुवम् ॥
त्यक्तप्राणं मृतं दृष्ट्वा मृत्युञ्च लभते ध्रुवम् ।

मत्स्यादि धारयेद्यो हि तद्भ्रातुर्मरणं ध्रुवम् ॥ २७ ॥

छिन्नं चापि कन्यधं वा विकृतं मुक्तकेशिनम् । क्षिप्रं नृत्यञ्च कुर्वन्तं दृष्ट्वा मृत्युं लभेन्नरः
मृतो चापि मृता चापि कृष्णम्लेच्छा भयानका ।

उपगृह्णति यं स्वप्ने तस्य मृत्युर्विनिश्चितम् ॥ २८ ॥

येषां दन्ताश्च भक्षाश्च केशाश्चापि पतन्ति हि । धनहानिर्भवेत्तस्य पीडा वा तच्छरोरजा ॥

उपद्रवन्ति यं स्वप्ने शृङ्गिणोऽङ्गिणोऽपि वा । बालका मानवाश्चैव तस्य राजकुलाद्वयम्
छिन्नवृक्षं पतन्तश्च शिलावृष्टिं तुषं क्षुरम् । रक्ताङ्गारं भस्मवृष्टिं दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात् ॥
ग्रहं पतन्तं शैलं वा धूमकेतुं भयानकम् । भग्नस्कन्धं नरं वापि दृष्ट्वा दुःखमवाप्नुयात्
रथगेहशैलवृक्षगोहस्तितुरगाम्बरात् । भूमौ पतति यः स्वप्ने विपत्तिस्तस्य निश्चितम् ॥
उच्चैः पतन्ति गर्तेषु भस्माङ्गारयुतेषु च । क्षारकुण्डेषु चूर्णेषु मृत्युस्तेषां न संशयः ॥

बलाद् गृह्णाति दुष्टश्च छत्रञ्च यस्य मस्तकात् ।

पितृर्नाशो भवेत्तस्य गुरोर्वापि नृपस्य वा ॥ ३६ ॥

सुरभी यस्य गेहाच्च याति व्रस्ता सघट्सिका । प्रयाति पापिनस्तस्य लक्ष्मीरपि ससुन्धरा
पाशेन कृत्वायद्वञ्च्यं गृहीत्वाप्रयान्ति च । यमदूताश्च ये म्लेच्छास्तस्य मृत्युर्विनिश्चितम्
गणको ब्राह्मणो वापि ब्राह्मणी वा गुरुस्तथा ।

परिरुष्टः शपति यं विपत्तिस्तस्य निश्चितम् ॥ ३७ ॥

विरोधिनश्च काकाश्च कुक्कुटा भल्लुकास्तथा ।

पतन्त्यागत्य यद्गान्धे तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ ४० ॥

महिषाभल्लुकाउष्ट्राशूकरा गर्दभास्तथा । रुष्टा धावन्ति यं स्वप्ने सरोगी निश्चितं भवेत्
रक्तचन्दनकाष्ठानि घृताङ्गानि जुहोति यः । गायत्र्या च सहस्रेण तेन शान्तिर्विधीयते ॥

सहस्रधा जपेयो हि भक्त्यैर्न मधुसूदनम् ।

निष्पापो हि भवेत्सोऽपि दुःस्वप्नः सुखवान् भवेत् ॥ ४३ ॥

धन्युतं केशवं विष्णुं हरिं सत्यं जनार्दनम् ।

हंसं नारायणञ्चैव होतृन्नामाष्टकं शुभम् ॥ ४४ ॥

शुचिं पूर्वमुखः प्राज्ञो दशरुत्वश्च यो जपेत् ।

निष्पापोऽपि भवेत्सोऽपि दुःस्वप्नः शुभवान् भवेत् ॥ ४५ ॥

विष्णुं नारायणं कृष्णं माधवं मधुसूदनम् । हरिं नरहरिं रामं गोविन्दं दधिचामनम् ॥

भक्त्या चेमानि नामानि दश भद्राणि यो जपेत् ।

शतश्रवो भक्तियुक्तो जप्त्वा नीरोगतां व्रजेत् ॥ ४७ ॥

लक्षधा हि जपेद्यो हि यन्धनान्मुच्यतेध्रुवम् । जप्त्वा च दशलक्षञ्च महाबन्ध्या प्रसूयते
द्विप्याशी यतः शुद्धो दरिद्रो धनवान् भवेत् ॥ ४८ ॥

शतलक्षञ्च जप्त्वा च जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । शुद्धो नारायणक्षेत्रे सर्वसिद्धिं लभेन्नरः ॥

ओं नमः शिवं दुर्गां गणपतिं कार्तिकेयं दिनेश्वरम् ।

धर्मं गङ्गाञ्च तुलसीं राधां लक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥ ५० ॥

नामान्येतानि भद्राणि जले स्नात्वा च यो जपेत् ।

पाण्डितञ्च लभेत्सोपि दुःस्वप्नः शुभवान् भवेत् ॥ ५१ ॥

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं पूर्वं दुर्गतिनाशिन्यै महामायायै स्वाहा ।

कल्पवृक्षो हि लोकानां मन्त्रः सप्तदशाक्षरः ।

शुचिञ्च दशधा जप्त्वा दुःस्वप्नः सुखवान् भवेत् ॥ ५२ ॥

शतलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् । सिद्धमन्त्रस्तु लभते सर्वसिद्धिञ्च पाण्डिताम्

ओं नमो मृत्युञ्जयायेति स्वाहान्तं लक्षधाजपेत् । दृष्ट्वाश्च मरणं स्वप्ने शतायुश्चलभेन्नरः

पूर्वोत्तरमुखो भूत्वा स्वप्नं प्राप्ते प्रकाशयेत् ॥ ५४ ॥

काश्यपे दुर्गते नीचे देवप्राङ्गणनिन्दके । मूर्ध्ने चैवानभिष्टे च न च स्वप्नं प्रकाशयेत् ॥

अश्वत्ये गणके चिन्ने पितृदेवासनेषु च । आर्ये च वैष्णवे मित्रे विद्यास्वप्नं प्रकाशयेत् ॥

इति ते पुण्यमाख्यानं कथितं पापनाशनम् ।

धन्यं यशस्यमायुष्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ५७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

श्रीमगवन्नन्दसंवादे दुःस्वप्नवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।

त्र्यशीततमाऽध्यायः

विप्रादीनां धर्मकथनम् ।

नन्द उवाच ।

वेदानां कारणं त्वञ्च ब्रह्मादीनाञ्च पुत्रक । सर्वं कथय भद्रं ते कं पृच्छामि त्वया विना

विप्राणां यो हि धर्मश्च क्षत्रविद्वृद्धकर्मणाम् ।

सन्यासिनाञ्च यो धर्मो यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ २ ॥

विप्राणां विधवास्त्रीणां वैष्णवानां सतामपि । पतिव्रतानां स्त्रीणाञ्च तत्सर्वं वक्तुमर्हसि

गृहिणां गृहिणीनाञ्च शिष्याणाञ्च विशेषतः ।

पुत्राणाञ्चापि कन्यानां पितरं मातरं प्रति ॥ ४ ॥

स्त्रीजातिश्च कतिविधा भक्तः कतिविधः प्रभो ।

ब्रह्माण्डञ्च कतिविधं यद् नञ्च किमात्मकम् ।

किं नित्यं कृत्रिमं किञ्च ब्रूहि सर्वं क्रमेण च ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सन्य्यापूतः सदा विप्रः कुरुते मम सेवनम् । नित्यं भुङ्क्ते मत्प्रसादमनिवेद्य कदाचन ॥

अन्नपिष्टा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् । विष्णुप्रसादभोजी च जीवन्मुक्तश्च ब्राह्मणः

नित्यं तपस्यानिरतः शुचिः शान्तश्च शास्त्रवित् ।

मत्ततीर्याश्रितो धर्मो नानाध्यापनसंयुतः ॥ ८ ॥

विष्णुमन्त्रं गृहीत्वा च कृत्वा च गुरुसेवनम् ।

गृहीत्वा तदनुज्ञाञ्च पञ्चाद्वधति संगृही ॥ ९ ॥

दक्षिणां नित्यपूजानां गुरवे च निवेदयेत् । गुरुणां पोषणं नित्यं कर्तव्यं नात्र संशयः

सर्वेषामपि पन्थानां पिता चैव महान् गुरुः । पितुः शतगुणेर्माता मातुः शतगुणेः सुरः

मन्यद्दत्तन्वदध्वेय सुराणाञ्च चतुर्गुणः । नारायणश्च भगवान् गुरुः प्रत्यक्ष ईश्वरः ॥

उद्देशो दीयते तस्मै सुरायेति श्रुतौ श्रुतम् ।

प्रत्यक्षमोक्षा स्वगुरुः स्वयं देही जनार्दनः ॥ १३ ॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुरेव स्वयं शिवः । गुरो च सर्वदेवाश्च तिष्ठन्ति सततं मुदा ॥ १४ ॥

गुरौ तुष्टे हरिस्तुष्टो यस्मिस्तुष्टे च देवताः । गुरुः पुत्रसमं स्नेहं शिष्येषु न करिष्यति

लभते ब्रह्महत्याञ्च भुंक्ते कृत्वा च नाशिवम् ॥ १४ ॥

स्वधर्मनिरतोविप्रो ब्राह्मणश्च सदा शुचिः । विष्णुसेवी सदा विप्रस्तदन्योऽप्यशुचिः सदा

ब्राह्मणो वृषघाहश्च शूद्राणां सूषकारकः । ब्राह्मणो देवलश्चैव सन्ध्याहीनश्च दुर्वलः ॥

ब्राह्मणश्च दिवाशापी शूद्राश्चाह्नभोजकः ।

शूद्राणां शयदाही च ते च शूद्रसमा द्विजाः ॥ १८ ॥

शालग्राममहामन्त्रं कृत्वा पूजां विधानतः । भुंक्ते नैवेद्यशेषश्च तत्पादोदकमेव च ॥ १९ ॥

हरेः पादोदकं पीत्वा तीर्थस्नानी भवेन्नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति

स ज्ञातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं समाचरेत् ॥

गङ्गाजलाद्दशगुणं शालग्रामजलं व्रज ।

नित्यं भुंक्ते च यो विप्रो जीवन्मुक्तः सुरैः समः ॥ २२ ॥

विप्राणां नित्यकृत्यञ्च विष्णोर्नैवेद्यभोजनम् । यत्नेन पूजनं तस्य तत्पादोदकसेवनम् ॥

नित्यं त्रिसन्ध्यं कुरुते भक्त्या च मम पूजनम् ।

एकादश्यां न भुंक्ते च मम वै जन्मवासरे ॥ २४ ॥

शिवरात्रौ च हे तात श्रीरामनवमीदिने ।

न च भुंक्ते वती यो हि जीवन्मुक्तो हि स द्विजः ॥ २५ ॥

पृथिव्यां यानि तीर्थानि तस्य पादे नतानि च ।

विप्रपादोदकं पीत्वा तीर्थस्नानी भवेन्नरः ॥ २६ ॥

विप्रपादोदकं पिबन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी । तावत् पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरो जलम् ॥

विष्णुप्रसादभोजी च पवित्रं कुरुते महीम् ।

तीर्थानि च नराश्चैव जीवन्मुक्तो हि स द्विजः ॥ २८ ॥

सर्वतीर्थेषु स स्नातो व्रतानाञ्च फलं लभेत् । पदे पदेऽश्वमेघस्य लभते निश्चितं फलम्
 वह्नियायुसमः पृतस्तेजसा भास्करोपमः । यमदूतं यमं चैव स च स्वप्ने न पश्यन्ति ॥
 वैकुण्ठे मोदते सोऽपि पार्षदो हरिणा सह । न भवेत्तस्य पातो हि विप्रस्य हरिसेविनः

विष्णुमन्त्रोपासकश्च स एव वैष्णवो द्विजः ।

ब्राह्मणो वैष्णवः प्राज्ञो न हि तस्मात्परः पुमान् ॥ ३२ ॥

वेदोक्तो वा पुराणोक्तस्तन्त्रोक्तो वा मनुः शुचिः ।

विचारतो गृहीत्वा तं शैवः शाक्तश्च वैष्णवः ॥ ३३ ॥

शुखयत्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे विशत्ययम् । तं वैष्णवं महापूतं प्रयदन्ति मनीषिणः
 मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । भित्त्वा ब्रह्माण्डमखिलं यास्यत्येष हरेः पदम्

• पूर्वान् सप्त परान् सप्त सप्त मातामहादिकान् ।

• सोदरानुदरेद्वक्तृस्तत्प्रसू तत्प्रसू तथा ॥ ३६ ॥

जपेन्नारायणं क्षेत्रे पुरश्चरणपूर्वकम् । पुरुषाणां सहस्रञ्च लीलयात्मानमुदरेत् ॥ ३७ ॥

मन्त्रग्रहणमात्रेण फलमेतद् व्रजेश्वर । पुरश्चरणसम्पर्कात् पुरुषाणां शतं शतम् ॥ ३८ ॥

ऐकान्तिको वैष्णवश्च पुंसां लक्षं समुदरेत् ।

क्रिया विष्णुपदे यस्य सङ्कल्पाश्च वहिष्कृताः ॥ ३९ ॥

द्विजाः सुरा मम प्राणा भक्तः प्राणात् परः प्रियः ।

विश्वेषु प्रियपात्रेषु न मे भक्तात् परः प्रियः ॥ ४० ॥

तैजोयांसं गुह्यं दृष्ट्वा सर्वत्र रक्षितुं क्षमम् । करोति मन्त्रग्रहणं तस्माद् भूयाद्विचक्षणः
 पयोहीनाज्जानहीनाद्विद्याहीनात्तथैव च । जातिहीनाद् गुरोर्मन्त्रं गृह्णीयान्न कदाचन ॥

शास्त्रार्थञ्चाक्षतं मन्त्रं न गृह्णीयात् कदाचन ।

मूर्धादाधमहीनाद्य पितुः सन्न्यासिनस्तथा ॥ ४३ ॥

रोगिणो वंशहीनाश्च भार्याहीनात्तथैव च । मन्त्रक्षितात्तथा मन्त्रं न गृह्णीयात् कदाचन

विष्णुमन्त्रं ॥ गृह्णीयाद्विष्णुभक्तिविहीनतः ।

न च शैवान्न शाकाश्च गृह्णीयाद्वैष्णवान् द्विजात् ॥ ४५ ॥

वयोहीनास्तथाल्पायुर्ज्ञानहीनावर्षण्डतः ।

विद्याहीनाद्भवेन्मूढो जातिहीनात् क्षयो भवेत् ॥ ४६ ॥

मूर्खान् मूर्खो भवेत् सद्यो दुःखी स्वाश्रमहीनतः ।

यशोहानिः पितृश्चैव मृत्युः सन्न्यासिनस्तथा ॥ ४७ ॥

रोगिणोऽप्याधियुक्तश्च निर्वंशोऽथ शहीनतः । भार्याहीनोऽपि स्त्रीहीनान्मन्त्रक्षितास्तु तत्समः

विष्णुभक्तिविहीनाश्च भक्तिहीनो भवेन्नरः । शैवाच्छाक्ताद् गृहात्था च हरौ भक्तिर्न वर्द्धते

ब्राह्मणो वैष्णवः शुद्धः पक्वान्नं-दातुमीश्वरः । पक्वान्नं हरये दातुमक्षमश्चेतरो जनः ॥

ओंकारोच्चारणाद्धोमाच्छालग्रामशिलार्चनात् ।

मह्यं पक्वान्नदानाच्च विप्रादन्यो ब्रजेद्धः ॥ ५१ ॥

उदासीनाद् दुराचारान्न गृहीयान्मनुं सुधाः ।

दैवाद्यदि च गृहीयाद्धनहीनो भवेद् ध्रुवम् ॥ ५२ ॥

ब्राह्मणानां सदा भक्ष्यं हविष्यञ्च निरामिषम् ।

आमिषस्य परित्यागात् सूर्यपत्तेजसा भवेत् ॥ ५३ ॥

नित्यं नूतनभाण्डेन कर्तव्यं पाक एव च । अथवा पक्षपय्यन्तं ततस्त्याज्यं मनीषिभिः

स्थानं सुसंस्कृतं कृत्वा पार्कं निर्वृत्य पूजकः । स्थाने परिष्कृते विप्रो दत्त्वा महाञ्च भक्तिः

तदा निवेद्य भुङ्क्ते च दत्त्वा विप्राय सादरम् ।

अनिवेद्य च भुक्त्या च सुरापीति भवेद् द्विजः ॥ ५६ ॥

चन्द्रसूर्योपरागे वै वाशौचे मृतजातयोः । स्पृष्टेनाशुचिना सद्यः पाकभाण्डं परित्यजेत्

भ्रष्टद्रव्यं तथात्रञ्च भृत्वा धीते च वाससी । पादप्रक्षालनं कृत्वा भुङ्क्ते स्थाने परिष्कृते

द्विर्भोजनं न कर्तव्यं स्थिते सूर्ये द्विजातिभिः ।

निष्कलं तद्ववेत् कर्म भुक्त्या च नरकं ब्रजेत् ॥ ५६ ॥

यात्रां शुद्धं नदीतीरं पुनर्भोजनमैशुते । वर्जयेत् श्राद्धदिवसे हविष्याशौ च-संयमी ॥ ६० ॥

द्विजाय विष्णुभक्ताय पात्रं दद्याद् बुधाय च । वृषलीपतये चैव न दद्याच्छूद्रयाजिने ॥

सन्ध्याहीनाय दुष्टाय वृषवाहाय यत्नतः । शुक्रचिक्रयिणे चैव देवलाय कदाचन ॥ ६२ ॥

प्रदत्तं पात्रमेतेभ्यो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् । पात्रं भुक्त्वा वह्निवसे मैथुनान्नरकं व्रजेत् ॥

सर्वेभ्यः पातकी तात कन्याविक्रयकारकः ।

मूल्यं गृहीत्वा यो दद्यात्स महारौरवं व्रजेत् ॥ ६४ ॥

कन्यालोमप्रमाणान्तं चर्पञ्च पितृभिः सह । कुम्भीपाके पच्यते च पुत्रश्चापि पुरोहितः
तस्मात्कन्यां सुपुत्राय प्रदद्याच्च विचक्षणः । शूद्रवद् ब्राह्मणेभ्यश्च नैव तद्वंशजाय च ॥
विप्रवैष्णवयोर्धर्मः कथितश्च व्रजेश्वर । यदुक्तञ्च पुराणैश्च चतुर्भिः श्रुतिभिस्तथा ॥

द्विजार्चनं क्षत्रियाणां तथा नारायणार्चनम् ।

राज्यानां पालनञ्चैव रणे निर्भयता तथा ॥ ६८ ॥

नित्यं दानं ब्राह्मणेभ्यः शरणागतक्षणम् । पुत्रतुल्यं प्रजानाञ्च दुःखिनां परिपालनम् ॥
शस्त्रास्त्राणाञ्च नैपुण्यं रणे सौन्दर्यमेव च । तपश्च धर्मकृत्यञ्च यत्नतः कुरुते सदा ॥
पण्डितं नीतिशास्त्रज्ञं नित्यञ्च परिपालयेत् ।

नियोजयेत्सभामध्ये नित्यं सद्भिश्च संयुते ॥ ७१ ॥

हस्त्यश्वरथपादात् सेनाङ्गञ्च चतुष्टयम् । पालयेद्यत्नतो नित्यं यशस्वी च प्रतापवान् ॥
रणे निमग्नितश्चैव दानेन विमुखो भवेत् ।

रणे वा यस्त्यजेत् प्राणान् तस्य स्वर्गो यशस्करः ॥ ७३ ॥

चैश्यानामपि वाणिज्यमीश्वरः कृपिपालने । विप्रदेवार्चनं दानं तपस्या धृतसेवनम् ॥
विप्राणामर्चनं नित्यं शूद्रधर्मो विधीयते । तत्कृपी तद्ग्नग्राही शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत् ॥
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः । श्वापदः शतजन्मानि शूद्रो विप्रधनापहः ॥

यः शूद्रो ब्राह्मणीगामी मातृगामी च पातकी ।

कुम्भीपाके पच्यते स यावद्ब्रह्मणः शतम् ॥ ७७ ॥

कुम्भीपाके तप्ततैले भुक्तः सर्पैरहर्निशम् । शब्दञ्च विरुताकारं कुरुते यमताडनात् ॥
ततश्चाण्डालयोनिः स्यात् सप्तजन्मसु पातकी ।

सप्तजन्मसु सर्पश्च जलोकाः सप्तजन्मसु ॥ ७९ ॥

जन्मकोटिसहस्रञ्च विष्टायां जायते रुमिः । पुंश्चलीनां योनिरुमिः स भवेत् सप्तजन्मसु

गवां व्रणकुमिः स्याच्च पातकी सप्तजन्मसु । योनीं योनीं भ्रमत्येव न पुनर्जायते नरः
सन्न्यासिनाञ्च यो धर्मो मन्मुखाच्च निशामय । दण्डग्रहणमात्रेण नरोनारायणो भवेत्
पूर्वकर्माणि दग्ध्वा च परकर्मनिकृन्तनम् । कुरुते चिन्तयेन्माञ्च ह्यायाति मम मन्दिरम्
सन्न्यासिनः पदः स्पर्शात् सद्यःपूता वसुन्धरा ।

सद्यः पुनन्ति तीर्थानि वैष्णवस्य यथा व्रज ॥ ८४ ॥

सन्न्यासिनश्च स्पर्शेन निष्पापो जायते नरः ।

सन्न्यासिनं भोजयित्वा चाश्वमेधफलं लभेत् ॥ ८५ ॥

नत्वा च कामतो दृष्ट्वा राजसूयफलं लभेत् ।

फलं सन्न्यासिनां तुल्यं यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ ८६ ॥

सन्न्यासीयाति सायाहे क्षुभितोगृहिणांगृहम् । सन्नं वा कन्नं वा तद्वत्तनैव धर्जयेत्
न याचते च मिष्टान्नं न कुप्यात्कोपमेव च । न धनग्रहणं कुप्यादैकधासा निरीहितः ॥
शीतग्रीष्मे समानश्च लोभमोहविचर्जितः । तत्र स्थित्वैकरात्रञ्च प्रातरन्यत्स्थलं व्रजेत् ॥

यानस्यारोहणं कृत्वा गृहीत्वा गृहिणो धनम् ।

गृहं कृत्वा गृही रम्यात् स्वधर्मात् पतितो भवेत् ॥ ९० ॥

कृत्वा च कृपिषाणिज्यं कुवृत्तिं कुरुते च यः ।

स सन्न्यासी हृताचारः स्वधर्मात्पतितो भवेत् ॥ ९१ ॥

अशुभञ्च शुभं चापि स्वकर्म कुरुते यदि । बहिष्कृतः स्वधर्मो चाप्युपहास्यश्च वै भवेत्
ब्राह्मणी-पतिहीना या भवेन्निष्कामिनी सदा ।

एकमुक्ता दिनान्ते सा हविष्यान्नरता सदा ॥ ९३ ॥

न धत्ते दिव्ययज्ञञ्च गन्धद्रव्यं सुतैलकम् । स्रजञ्च चन्दनञ्चैव शङ्खसिन्दूरभूषणम् ॥ ९४ ॥
त्यक्त्वा मलिनवस्त्रा स्यान्नित्यं नारायणं स्मरेत् । नारायणस्य सेधाञ्च कुरुते नित्यमेव च
तन्नामोच्चारणं शश्वत् कुरुतेऽनन्यभक्तिः । पुत्रतुल्यञ्च पुरुषं सदा पश्यति धर्मतः ॥
मिष्टान्नं न च भुंक्ते सा न कुप्याद्विभवं व्रज । एकादश्यां न भोक्तव्यं कृष्णजन्माष्टमीदिने
श्रीरामस्य नवम्यान्तु शिवरात्रौ पवित्रया । अघोरायाञ्च प्रेतायां चन्द्रसूर्यांपरागयोः ॥

भ्रष्टं द्रव्यं परित्यज्य भुज्यते परमेव च । ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्
सन्न्यासिनाञ्च गोमांससुरातुल्यं श्रुतौ श्रुतम् । रक्तशाकं मसूरञ्च जम्बीरं पर्णमेव च ॥

अलाघु वर्तुलाकारं घर्जनीयं च तैरपि ।

पर्यङ्कुशायिनी नारी विधवा पातयेत् पतिम् ॥ १०१ ॥

यातस्यारोहणं कृत्वा विधवा नरकं व्रजेत् ।

न कुर्व्यात् केशसंस्कारं गात्रसंस्कारमेव च ॥ १०२ ॥

केशवेणाजदारूप तत्क्षौरं तीर्थकं विना । तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत न हि पश्यति दर्पणम् ॥

मुखञ्च परपुंसाञ्च यात्रां नृत्यं महोत्सवम् । नर्तनं गायनं चैव सुवेशं पुरुषं शुभम् ॥

गृणुयाच्च सतां धर्मं सामवेदनिरूपितम् । परमार्थं परञ्चैव निबोध कथयामि ते ॥

अध्यापनमध्ययनं शिष्याणां परिपालनम् । गुरुणां सेवनं नित्यं द्विजदेवार्चनं तथा ॥

सिद्धान्तशास्त्रनैपुण्यं भाषनं स्वात्मतोषणम् ।

व्याख्यानं परिशुद्धञ्च ग्रन्थाभ्यस्तञ्च सन्ततम् ॥ १०३ ॥

व्यवस्थापरिशुद्ध्यर्थं विचारो वेदसम्मतः । शास्त्रार्थाचरणञ्चैव कर्तव्यं स्वयमेव च ॥

देवाह्निकेषु नैपुण्यं वेदाचरणमीक्षितम् । वेदोक्तभक्षणञ्चैव पवित्राचरणं सदा ॥ १०४ ॥

पतिव्रतानां यं धर्मं तस्मिन्बोधं व्रजेध्वर । नित्यस्तु भर्तव्यात्सुखात्तत्पादोदकमीप्सितम्

भक्तिभावेन सततं भोक्तव्यं तदनुज्ञया । व्रतं तपस्यां देवार्चां परित्यज्य प्रयत्नतः ॥

कुर्वाच्चरणसेवाञ्च स्तवनं परितोषणम् । तदाक्षरहितं कर्म न कुर्व्याद्वैरत सती ॥ १०५ ॥

नारायणात् परं कान्तं ध्यायते सततं सती । परपुंसां मुखञ्चैव सुवेशं पुरुषं परम् ॥

यात्रां महोत्सवं नृत्यं नर्तकं गायनं व्रज । परकीडाञ्च सततं न हि पश्यति सुव्रता ॥

यद्गृह्यं स्वामिनां नित्यं तदेवमपि योषिताम् ।

न हि त्यजेत्तु तत्सङ्गं क्षणमेव च सुव्रता ॥ १०६ ॥

उत्तरं नोत्तरं दद्यात् स्वामिनश्च-पतिव्रता । न कोपं कुरुते शुद्धा ताडिता चापि कोपतः

क्षुधितं भोजयेत् कान्तं दद्यात् पानञ्च भोजनम् ।

न बोधयेत्तं निद्रालुं प्रेरयेन्नैव कर्मसु ॥ १०७ ॥

पुत्राणाञ्च शतगुणं स्नेहं कुर्यात्पतिं सती । पतिर्वन्धुर्गतिर्मर्त्ता दैवतं कुलयोपितः ॥
 शुभं दृष्ट्वा सुधातुल्यं कान्तं पश्यति सुन्दरी । सस्मितं वदनं कृत्वा भक्तिभावेन यत्नतः
 पुरुषाणां सहस्रञ्च सती स्त्री च समुद्धरेत् । पतिः पतिव्रतानाञ्च मुच्यते सर्वपातकात्
 नास्ति तेषां कर्मभोगः सतीनां व्रततेजसा । तथा सार्द्धञ्च निष्कर्मो मोदते हरिमन्दिरे
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि । तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनाञ्च स्तरीषु च
 तपस्विनां तपः सर्वं व्रतिनां यत् फलं व्रज । दाने फलं यद्वातृणां तत्सर्वं तासु सन्ततम्
 स्वयं नारायणः शम्भुर्ब्रिधाता जगतामपि ।

सुराः सर्वे च मुनयो भीतास्ताम्यश्च सन्ततम् ॥ १२४ ॥

सतीनां पावरजसा सद्यःपूता वसुन्धरा । पतिव्रतां नमस्कृत्य मुच्यते पातकान्तरः ॥
 त्रैलोक्यं भस्मसात् कर्तुं क्षणेनैव पतिव्रता । स्वतेजसा समर्था सा महापुण्यघटीसदा
 सतीनाञ्च पतिः साधुः पुत्रो निःशङ्क एव च । नहि तस्य भयं किञ्चिद्देवेभ्यश्च यमादपि
 शतजन्म पुण्यघतां गेहे जाता पतिव्रता । पतिव्रताप्रसूः पूता जीवन्मुक्तः पिता तथा ॥
 सती स्त्री प्रातस्तथाय त्यक्त्वा च रात्रिषाससम् ।

भर्तारञ्च नमस्कृत्य करोति स्तवनं मुदा ॥ १२६ ॥

गृहकार्प्यं ततः कृत्वा स्नात्वा धीते च वाससी ।

गृहीत्वा शुक्लपुष्पञ्च भक्तिः पूजयेत्पतिम् ॥ १२७ ॥

स्नापयित्वा च पूतेन जलेन निर्मलेन च । तस्मैदत्त्वा धौतवस्त्रं तत्पादौ क्षालयेन्मुदा
 भासने वासयित्वा च दत्त्वा भाले च चन्दनम् ।

सर्पाङ्गलेपनं कृत्वा दत्त्वा माल्यं गलेऽपि च ॥ १२८ ॥

सामयेदोक्तमन्त्रेण भोगद्रव्यैःसुधोपमैः । संपूज्य भक्तिः कान्तं स्तुत्या च प्रणमेन्मुदा
 ओं नमः कान्ताय शान्ताय सर्वदेवाभ्रयाय स्वाहा ।

इत्यनेनैव मन्त्रेण दत्त्वाऽपुष्पञ्च चन्दनम् ॥ १२९ ॥

पाद्याभ्यं धूपदीपौ चःषस्त्रनैवेद्यमुत्तमम् । जलं सुपासितं शुद्धं ताम्बूलञ्चसुपासितम्
 दत्त्वास्तोत्रंपठेद्यत् कृतं वै पाठ्यमेव च । ओं नमःकान्ताय भर्ते च शिस्थन्त्रस्वरूपिणे

नमः शान्ताय दान्ताय सर्वदेवाश्रयाय च । नमो ब्रह्मस्वरूपाय सतीप्राणपराय च ॥
नमस्याय च पूज्याय हृदाधाराय ते नमः । पञ्चप्राणाधिदेवाय चक्षुषस्तारकाय च ॥

— ज्ञानाधाराय पत्नीना परमानन्दरूपिणे ॥ १३८ ॥

• पतिर्ब्रह्मा पतिर्विष्णुः पतिरेव महेश्वरः ।

पतिश्च निर्गुणाधारो ब्रह्मरूपो नमोऽस्तु ते ॥ १३९ ॥

क्षमस्व भगवन् दोषं ज्ञानाज्ञानकृतञ्च यत् । पत्नीयन्तोदयास्तिथ्यो दासीदोषं क्षमस्व मे
इदं स्तोत्रं महापुण्यं सृष्ट्यादौ पद्मयाकृतम् । सरस्वत्या च धरया गङ्गाया च पुरा ब्रज
सावित्र्या च कृतं पूर्वं ब्रह्मणे चापि नित्यशः ।

पार्वत्या च कृतं भक्त्या कैलासे शङ्कराय च ॥ १४२ ॥

मुनोनाञ्च सुराणाञ्च पत्नीभिश्च कृतं पुरा । पतिव्रतानां सर्वासं स्तोत्रमेतच्छुभाचहम्
इदं स्तोत्रं महापुण्यं या शृणोति पतिव्रता ।

नरोऽन्यो वापि नारी वा लभते 'सर्ववाञ्छितम् ॥ १४४ ॥

धनुरो लभते पुत्रं निर्धनो लभते धनम् ।

रोगी च मुच्यते रोगाद् बन्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ १४५ ॥

पतिव्रता च स्तुत्या च तीर्थस्नानफलं लभेत् । फलञ्च सर्वं तपसां व्रतानाञ्च ब्रजेश्वर
इदं स्तुत्या नमस्कृत्य भुङ्क्ते सा तद्गुणया । उक्तः पतिव्रताधर्मो गृहिणा धूयतां ब्रज
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे श्रीकृष्णजन्मखण्डे पतिव्रताधर्मवर्णनं नाम
अष्टादशोऽध्यायः ।

चतुरश्रोतितमोऽध्यायः

गृहिणां धर्मवर्णनम् ।

श्रीभगवानुवाच ।

द्विजदेवार्चनञ्चैव करोति सततं गृही । स्वधर्माचरणञ्चैव चानुवर्ण्यञ्च नित्यशः ॥ १ ॥

कुर्वन्ति गृहिणामाशां सर्वे देवादयस्तथा । विधायतिथिपूजाञ्च गृहस्य च सदा शुचिः
पितरः कर्मकाले च तिथिकाले च देवताः । सर्वे गृहस्यमायान्ति निपानमिह धेनवः
समायाति प्रयत्नेन सायाह्ने क्षुधितोऽतिथिः ।

पूजां कृत्वा शिषं लब्ध्वा प्रयाति गृहिणो गृहात् ॥ ४ ॥

अकृत्वाऽतिथिपूजाञ्च गृही भवति पातकी । त्रैलोक्यजनितं पापं लभते नात्र संशयः ॥
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते । पितरस्तस्य देवाश्च बह्व्यश्च तथैव च ॥ ६ ॥

निराशाः प्रतिगच्छन्ति गृहिणोऽतिथयो गृहात् ।

स्त्रीधनैर्गोघ्नैः कृतघ्नैश्च ब्राह्मणैर्गुरुतल्पनैः ॥ ७ ॥

तुल्यदोषो भवत्येव येनातिथिरन्वितः । स्वात्मनः पातकं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति
तस्मात् कृत्वा सर्वसेवां देवादोश्च शुभाशयः ।

पोष्पाणां भरणं कृत्वा पश्चाद् मुंके स धर्मचित् ॥ ८ ॥

यस्य माता गृहे नास्ति भाव्या च पुंश्चली तथा ।

अरण्यं तेन गन्तव्यमरण्याद् दुःखं गृहम् ॥ १० ॥

पतिं ह्रेषि सदा दुष्टा विपतुल्यश्च पश्यति । ददाति तस्मै नाहारं भर्त्सनं कुरुते सदा ॥
पूजितं मुनितुल्यश्च सा च पापीयसी परम् । सन्ततं तृणवन्मत्वा न्यङ्गारं कुरुते सदा
दुर्वाक्प्रवह्निना दग्धो मृततुल्यश्च जीवति । यावज्जीवनपट्यन्तं सम्प्राप्य दुष्टवंशजाम् ॥

गृहिणीनां सदाचारं धूयतां तच्छ्रुती श्रुतम् ।

गृहिणी पतिभक्ता च देवब्राह्मणपूजिता ॥ १४ ॥

सा शुद्धा प्रातस्तथाय नमस्कृत्य पतिं सुरम् । ब्राह्मणे मद्गलं दद्याद्गोमयेन जलेन च ॥
गृहकृत्यश्च कृत्वा च स्नात्वागत्य गृहं सती । सुरं विप्रं पतिं नत्वा पूजयेद् गृहदेवताम्
गृहकृत्यं सुनिवृत्य भोजयित्वा पतिं सती । अतिथिं पूजयित्वा च स्वयं मुंके सुखं सती
पुत्रैश्च पूजितः स्नातो शिष्यैश्च पूजितो गुरुः । आज्ञया कुरुते कर्म पुत्रः शिष्यश्च भृत्यवत्
न प्रेरयद् गुरुं तात पुत्रः शिष्यश्च कर्मसु । पित्रे च गुरवे नित्यं सर्वस्वञ्च समर्पयेत् ॥
न कुर्प्यन्नखुद्विश्च गुरो पितरि सन्ततम् । कृत्वा च नखुद्विश्च ब्रह्मदत्तां लभेद् धुषम्

मातरं पूजयेद्वक्त्या पितुश्चात्यधिकां तथा । मातुः परं गुरुञ्चैव पूजयेद्वक्तियोगतः ॥

पिता माता गुरुमाध्यां शिष्यः पुत्रः सदाक्षमः ।

अनाथा भगिनी कन्या नित्यं पोष्या गुरुप्रिया ॥ २२ ॥

एषञ्चकथितं तात सर्वेषां धर्ममुत्तमम् । स्त्रीजातिर्वास्तवी शुद्रा ताश्च सर्वाःपतिव्रताः

सर्वा जातिरेकविधा चादौ सृष्टा च ब्रह्मणा ।

ताः सर्वाः प्रकृतेरंशाः पवित्राः पण्डिताधिकाः ॥ २३ ॥

केदारफल्गुश्रापेन स हि धर्मः क्षयं गतः ।

तदा कोपेन धात्रा च कृत्वा स्त्री च विनिर्मिता ॥ २५ ॥

कृत्वा स्त्री त्रिविधाजातिर्ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ।

उत्तमा प्रथमा सा च मध्यमा चाधमा व्रज ॥ २६ ॥

उत्तमा पतिव्रता सा किञ्चिद्धर्मसमन्विता । प्राणान्तेऽपि न कुरुते तं जारमयशस्करो

पूजयेत् सा यथा कान्तं तथा देवद्विजातिधीन् ।

व्रतानि चोपयासांश्च कुरुते सर्वपूजनम् ॥ २८ ॥

गुरुणा रक्षिता यज्ञाञ्ज्याश्च न भजेद्व्यात् ।

सा कृत्रिमा मध्यमा च यथा किञ्चित् पति भजेत् ॥ २९ ॥

स्थानं नास्ति क्षणं नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः ।

तेन हे नन्द तासाञ्च सतीत्यमुपजायते ॥ ३० ॥

अधमा परमा दुष्टाऽत्यन्तासद्वंशजा तथा । अधर्मशीला दुःशीला कुमुन्दा फलहान्विता ॥

पति भर्त्सयते नित्यं जायते संपने सदा । दुःखं ददाति कान्ताय विपत्तुल्यञ्च पश्यति ॥

जायतेमुपायेन हान्ति कान्तं मनोहरम् । धर्मिष्ठञ्च परिष्ठञ्च गरिष्ठञ्च महीतले ॥ ३३ ॥

कामदेपसमं चापि जारं पश्यति कामतः । शुभदृष्ट्या कटाक्षेण शश्वत्पार्थिवसी मुदा ॥

सुपेशं पुरुषं दृष्ट्वा सुधानं रतिद्वारकम् ।

योनिः क्षिपति नारीणां कामिनीनां निरन्तरम् ॥ ३५ ॥

ददाति नयं नाहारं विषोद्वि पतिः सन्तनम् । अधर्मक्षिप्तयेच्छब्दजायते परमं मुदा ॥

गुरुभिर्मर्त्सिता सा च रक्षिता च शतेन च ।
 तथापि जारं कुस्ते नापि साध्या नृपैरपि ॥ ३७ ॥
 नास्ति तस्याः प्रियं किञ्चित् सर्वं कार्प्यवशेन च ।
 गावस्तुणमिघारण्ये प्रार्थयन्ति नवं नवम् ॥ ३८ ॥
 विद्युद्वाभा जले रेखा तस्याः प्रीतिस्तथैव च । अधर्मयुक्ता सततं कपटं वक्ति निश्चितम्
 व्रते तपसि धर्मे च न मनो गृहकर्मणि । न गुरौ न च देवेषु जारे स्निग्धञ्च वञ्चलम् ॥
 स्त्रीजातित्रिविधानाञ्च कथा च कथिता मया ।
 भक्तानां त्रिविधानाञ्च लक्षणं श्रूयतामिति ॥ ४१ ॥
 तुणशप्यारतो भक्तो मन्नामगुणकीर्तिषु । मनो निवेशयेत् भक्त्या संसारसुगकारणम् ॥
 ध्यायते मत्पदाब्जञ्च पूजयेद्वकिभागतः । अहेतुकी तस्य देवाः सङ्कल्परहितस्य च ॥
 सर्वसिद्धिं न धाञ्छन्ति तेऽणिमादिकमीप्सिताम् ।
 ब्रह्मत्वममरत्वं वा सुरत्वं सुखकारणम् ॥ ४४ ॥
 दास्यं पिना न हीच्छन्ति सालोक्यादिचतुष्टयम् ।
 नैव निर्घाणमुक्तिञ्च सुधापानमभीप्सितम् ॥ ४५ ॥
 धाञ्छन्तिनिश्चलां भक्तिं मदीयामनुलामपि । स्त्रीपुंविभेदोनास्त्येव सर्वजीवेषु मिश्रता
 तेषां सिद्धेश्वराणाञ्च प्रघराणां ब्रजेश्वर ।
 क्षुत्पिपासादिकं निद्रां लोभमोहादिकं रिपुम् ॥ ४७ ॥
 त्यक्त्वा दिपानिशं माञ्च ध्यायन्ते च दिगम्बराः ।
 स मद्भक्ततमो नन्द श्रूयतां मध्यमादिकम् ॥ ४८ ॥
 नासक्तः कर्मसु-गृही पूर्वप्राकनतः शुचिः । करोति सततं कर्म पूर्वकर्मनिवृत्तनम् ॥
 न करोत्यपरं यत्नात् सङ्कल्परहितः स च ।
 सर्वं कृष्णस्य यत्किञ्चिन्नाहं कर्ता च कर्मणः ॥ ५० ॥
 कर्मणा मनसा पाचा सततं चिन्तयेदिति । न्यूनभक्तश्च तन्न्यूनः स च प्राकृतिकः धृतो
 यमं वा यमदूतं वा स्यन्नेन च न पश्यति । पुरुषाणां सहस्रञ्च पूर्वमक्तः समुदरेत् ॥

पुंसां शतं मध्यमश्च तच्चतुर्थञ्च प्राकृतः । भक्तश्च त्रिविधस्तात कथितश्च तवाज्ञया ॥
ब्रह्माण्डरचनाख्यानं ध्रूयता सावधानतः । ब्रह्माण्डरचनार्थञ्च भक्ता जानन्ति यत्नतः ॥

सुनयश्च सुराः सन्तः किञ्चिज्जानन्ति दुःखतः ।

जानामि विश्वं सर्वार्थं ब्रह्मानन्तो महेश्वरः ॥ ५५ ॥

धर्मः समत्कुमारश्च नरनारायणावृषी । कपिलश्च गणेशश्च दुर्गा लक्ष्मीः सरस्वती ॥

वेदाश्च वेदमाता च सर्वज्ञा राधिका स्वयम् ।

एते जानन्ति विश्वार्थं नान्यो जानाति कश्चन ॥ ५७ ॥

वैषम्यार्थञ्च सुधियः सर्वे विज्ञातुमक्षमाः ।

नित्याकाशो यथात्मा च तथा नित्या दिशो दश ॥ ५८ ॥

यथा नित्या च प्रकृतिस्तथैव विश्वगोलकः । गोलोकश्चयथा नित्यस्तथा वैकुण्ठपर्वचं
एकदा मयि गोलोके रासे नित्यं प्रकुर्वति ।

आविर्भूता च घामाङ्गाद्वाला योऽश्वार्पिकी ॥ ६० ॥

श्वेतचम्पकवर्णाभा शरच्चन्द्रसमप्रभा । अतीवसुन्दरी रामा रमणीतां परावरा ॥ ६१ ॥

ईषद्भास्यप्रसन्नास्या कोमलाङ्गी मनोहरा । वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नाभरणभूषिता ॥

यथा जलदपङ्क्तिश्च यलाकामिर्धिभूषिता ।

सिन्दूरविन्दुना चारुचन्द्रवन्दनविन्दुभिः ॥ ६३ ॥

कस्तूरीविन्दुभिः सार्धं सीमन्ताधःस्थलोज्ज्वला ।

अमूल्यरत्ननिर्माणसुस्निग्धकिरणोज्ज्वला ॥ ६४ ॥

रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलसमुज्ज्वला । कुङ्कुमालक्तकस्तूरीचारुचन्दनपत्रकैः ॥ ६५ ॥

विचित्रैश्च सुचित्रैश्च सुकपोलस्थलोज्ज्वला ।

खगेन्द्रचञ्चुधिजितनासा मौक्तिकशोमिता ॥ ६६ ॥

गजेन्द्रगण्डनिर्मुक्तमुक्ताभूषणभूषिता । शुक्त्याचिमुक्तमुक्तामदन्तपङ्क्तिमनोहरा ॥ ६७ ॥

वल्लिता कलितातीव पक्वविम्बाधरा घरा ।

शम्भत्पूर्णन्दुनिन्दास्या पद्मनिन्दितलोचना ॥ ६८ ॥

चतुष्पत्तितमोऽध्यायः] * कृष्णस्य धाममांगाद् भगवत्या उत्पत्तिः * ६८३

कृष्णसारनिभोद्विन्नसुचारकज्जलोज्ज्वला । अमूल्यरत्ननिर्माणकेयूरकङ्कणोज्ज्वला ।

मणीन्द्रराजिराजीभिः शङ्खयुग्मकरोज्ज्वला ।

रत्नाङ्गुलीयकैरेभिरमृताङ्गुलिभूषिता ॥ ७० ॥

रत्नेन्द्रराजराजेन कणन्मञ्जीररञ्जिता । रत्नपाशकराजीभिः पादाङ्गुलिविराजिता ॥ ७१ ॥

सुन्दरालकरागेण चरणाधःस्रलोज्ज्वला । गजेन्द्रगामिनी रामा कामिनीधामलोचना ॥

मां ददर्श कटाक्षेण रमणी रमणोत्सुका । रासे संभूय रामा सा धधार पुरतो मम ॥

तेन राधा समाख्याता पुराविद्धिः प्रपूजिता ।

प्रहृष्टा प्रकृतिश्चास्यास्तेन प्रकृतिरीश्वरी ॥ ७४ ॥

शक्ता स्यात् सर्वकार्येषु तेन शक्तिः प्रकीर्तिता ।

सर्वाधारा सर्वरूपा मङ्गलार्हा च सर्वतः ॥ ७५ ॥

सर्वमङ्गलदक्षा सा तेन स्यात् सर्वमङ्गला । वैकुण्ठे सा महालक्ष्मीमूर्तिभेदे सरस्वती ॥

प्रसूय वेदान् विविता वेदमाता च सा सदा ।

सापित्रो सा च गायत्री धात्री त्रिजगतामपि ॥ ७७ ॥

पुरा संहृत्य तूर्गञ्च सा तूर्गा च प्रकीर्तिता । तेजसः सर्वदेवानामाधिभूता पुरा सती ॥

तेनाद्या प्रकृतिर्व्या सर्वासुरचिमर्दिनी । सर्वानन्दा च सानन्दा दुःखदादिदयनाशिनी ॥

शत्रूणां भयदाता च भक्तानां भयहारिणी । दक्षकन्या सती सा च शैलजातेति पार्वती ॥

सर्वाधारस्वरूपा सा कलया सा यमुन्धरा । कलया तुलसी गङ्गा कलया सर्वयोषितः ॥

सृष्टिं करोमि च यया वात शक्त्या पुनः पुनः ।

द्रष्टा तां रासमध्यस्थां मम क्रीडां तथा सद ॥ ८२ ॥

यभूव सुचिरं तात यापद्वै ब्रह्मणः शतम् । अत्यद्भुतं कीतुकञ्च महाशृङ्गारमीप्सितम् ।

तयोर्द्वयोर्धर्मराशिः सुस्नात रासमण्डले । तस्मान्मनोहरं जज्ञे नाम्नाकारसरोवरम् ॥

पपात धर्मधाराधोद्येनेन विश्वगोलके । यभूव जलपूर्णञ्च ब्रह्माण्डानाञ्च गोलकम् ॥

जलपूर्णं पुरा सर्वं सृष्टिशून्यं व्रजेश्वर ।

शृङ्गारान्ते च तस्याञ्च धीर्याधानं मया कृतम् ॥ ८६ ॥

दधार गर्भे सा राधा याचद्वै ब्रह्मणः शतम् ।

सुखाय सा तदन्ते च डिम्बञ्च परमाद्भुतम् ॥ ८७ ॥

चुकोप, देधी तं दृष्ट्वा रुोद विपसाद् सा ।

पादेन प्रेरयामास तमघो विश्वगोलके ॥ ८८ ॥

स पपात जले तात सर्वाधारो महान् विराट् ।

दृष्ट्वाऽपत्यं जलस्थञ्च मया शप्ता च सा पुरा ॥ ८९ ॥

अनपत्या च सा राधा मच्छापेन पुरा बिभो । तेन प्रभूता कमतो दुर्गा लक्ष्मीः सरस्वती
चतस्र परिपूर्णास्ता प्रसूताश्च सुनिश्चितम् । देव्योऽन्याश्चापिकामिन्योताः प्रसूता ब्रजेश्वर
लया प्रमवं यासां कलांशांशेन वा वत्र । जज्ञे महान् विराडूयेन डिम्बेन कलयाध्वयः
मृताद्गुप्टपीयूषं मया दत्तं पपौ च सः । जले स्थावररूपञ्च शेते च निजकर्मणः ॥ ९३ ॥

उपाधानं जलं तस्य तस्य योग बलेन च ।

तस्य लोम्राञ्च कृपानि जलपूर्णानि सन्ततम् ॥ ९४ ॥

तपेकं क्रमतस्तेषु शेते क्षुद्रचिराद् पुनः । सहस्रपत्रं कमलं जज्ञे क्षुद्रस्य नाभितः ॥

अ जज्ञे परो ब्रह्मा तेनार्य कमलोद्भवः । तत्राचिर्भूय स विधिश्चिन्ताप्रस्तो बभूव सः ॥

कस्माद्देहः क माता मे पिता वा क च बान्धवः ।

दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च यन्नाम कमलान्तरे ॥ ९७ ॥

ततो दिव्यं पञ्चलक्षं सस्मार तपसा च माम् ।

तदा मया दत्तमन्त्रं जजाप कमलान्तरे ॥ ९८ ॥

दिव्यसप्तवर्षलक्षं नियतं संयतः शुचिः । तदा मत्तो परं लब्ध्वा स्रष्टा सृष्टिं चकार सः

मायया प्रतिग्रहाण्डे ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः ।

दिक्पाला द्वादशादित्या स्त्राश्चेकादशापि च ॥ १०० ॥

अथग्रहाष्टौ घसप्तो देवाः कोटिर्ययं तथा । ब्राह्मणक्षत्रविद्वैश्या यक्षगन्धर्वकिन्नराः ॥

रूपादयो राक्षसाध्याप्येयंसर्वं चराचरम् । विश्वे विश्वे विनिर्माणस्वर्गाः सप्त क्रमेण च

अतसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपसुन्यप । काञ्चनीभूमिसंयुक्ता समोयुक्तं स्थलं तथा ॥

पातालाश्च तथा सप्त ब्रह्माण्डमेभिरेव च । विश्वे विश्वे चन्द्रसूर्यो पुण्यक्षेत्रं च भारतम्
सौर्यान्येतानि सर्वत्र गङ्गादीनि व्रजेश्वर । यावन्ति लोमकुपाणि महाविष्णोः क्रमेण च

विश्वान्येष हि तावन्ति ह्यसंख्यातानि च भुवम् ।

विश्वेषामुर्ध्वभागे च वैकुण्ठश्च निराश्रयः ॥ १०६ ॥

मदिच्छया चिनिर्माणो वेदाः कथितुमक्षमाः ।

कुयोगिनामदृष्टश्चाभक्तानाञ्च चिनिश्चितम् ॥ १०७ ॥

तस्मादुपरि गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनः । वायुना धार्यमाणश्च विचित्रः परमाश्रयः
अतीचरम्यनिर्माणो नित्यरूपो मदिच्छया । शतशृङ्गेण शैलेन पुण्यवृन्दाघनेन च ॥ १०८ ॥

सुरासमण्डलेनापि नद्या विरजया युतः । कोटियोजनविस्तीर्णा प्रस्थेन विरजा व्रज ॥
दैव्यं तस्य शतगुणं परितः परमा शुभा । अमूल्यरत्ननिकरैर्ह्रीरमाणिक्ययोस्तथा ॥ १११ ॥

मणीनां कौस्तुभादीनामसंख्यानां मनोहरा । अमूल्यरत्ननिर्माणं तत्रापि प्रतिमन्दिरम् ॥
मनोहरञ्च प्राकारमदृष्टं विश्वकर्मणा । गोपीभिर्गोपनिकरैर्वेष्टितं कामधेनुभिः ॥ ११३ ॥

कल्पवृक्षैः पारिजातैरसंख्यैश्च सरोवरैः । पुष्पोद्यानैः फोटिभिश्च संवृतं रासमण्डलम्
वेष्टितं वेष्टितैर्गोपैर्मन्दिरैः शतकोटिभिः । रत्नप्रदीपयुक्तैश्च पुष्पतल्पसमन्वितैः ॥ ११५ ॥

सुगन्धिचन्दनामोदैः कस्तूरीकुङ्कुमान्वितैः । क्रीडोपयुक्तैर्मोगैश्च ताम्बूलैर्वासितैर्जलैः ॥
धूपैः सुरभिरस्यैश्च माल्यैश्च रत्नदर्पणैः । रत्नकरैश्चितं शश्वद्राधादासीत्रिकोटिभिः ॥

अमूल्यरत्नाभरणैर्वह्निशुद्धांशुकैरपि ।

लक्ष्मस्तगजेन्द्राणां वेष्टितश्च यलैः क्रमात् ॥ ११८ ॥

नवयौवनसम्पन्ने रूपैर्निरुपमैरपि । रम्यञ्च घर्तुलाकारं चन्द्रचिम्बं यथा व्रज ॥ ११९ ॥
अमूल्यरत्नरचितं दशयोजनविस्तृतम् । कस्तूरीकुङ्कुमै रम्यैः सुगन्धिचन्दनार्चितम् ॥

आवृतं मङ्गलघटैः फलपल्लवसंगुतैः । दधिलाजैश्च पर्णैश्च स्निग्धदूर्वाट्कुरैः फलैः ॥
श्रीरामकदलोस्तम्भैरसंख्यैश्च मनोहरैः । पटसूत्रनिबद्धैश्च स्निग्धैश्चन्दनपल्लवैः ॥ १२२ ॥

चन्दनासक्तमाल्यैश्च भूषणैश्च विभूषितम् । अमूल्यरत्नरचितं शतशृङ्गमनोहरम् ॥ १२३ ॥
कोटियोजनमुर्ध्वञ्च दैव्यं दशगुणोत्तरम् । शैलप्रस्थपरिमितं पञ्चाशत्कोटियोजनम्

अतीवकमनीयञ्च वेदानिर्धननीयकम् । प्राकारमिव तस्यापि गोलोकस्य मनोहरम् ॥
परितो वेष्टितं रम्यं हीरद्वारसमन्वितम् । तत्र वृन्दावनं रम्यं युक्तं चन्दनपादपैः ॥१२६॥

कल्पवृक्षश्च रम्यश्च मन्दारैः कामधेनुभिः ।

शोभितं शोभनाढ्यैश्च पुण्योद्यानैर्मनोहरैः ॥ १२७ ॥

क्रीडासरोधरै रम्यैः सुरम्यै रतिमन्दिरैः । अतीवरम्यं रहसि रासयोग्यस्थलान्वितम् ॥
रक्षितं रक्षकै रम्यैरसंख्यैर्गोपिकागणैः । परितो वर्तुलाकारं त्रिलक्षयोजनं धरम् ॥१२८॥
पद्मपद्मनिसंयुक्तं पुंस्कोकिलरतान्वितम् । तत्राक्षयो वटो रम्यो रहस्ये बहुविस्तृतः ॥
सहस्रयोजनोद्वर्ध्वञ्च परितश्च चतुर्गुणः । गोपीनां कल्पवृक्षश्च सर्ववाञ्छाफलप्रदः ॥
क्रीडान्वितैरावृतश्च राधादासीत्रिलक्षकैः । विरजातीरनीराणां वायुना शीतलेन च ॥
पुष्पाभितेन मन्देन पवित्रश्च सुगन्धिना । दासीगणैरसंख्यैश्च वृन्दावनविनोदिनी ॥
तत्र क्रीडति राधा सा मम प्राणाधिदेवता । सेयं श्रीदामशापेन वृषभानुसुताऽधुना ॥
ब्रह्मादिदेवैः सिद्धेन्द्रेर्मुनीन्द्रैः पूजिता ब्रज । सिद्धेर्गुणैर्वल्लेखुद्ध्या ज्ञानयोगैश्च विद्यया ॥

तात सर्वप्रकारेण पन्था मत्सङ्गशी प्रिया ॥ १३५ ॥

इत्येवं कथितं नन्द ब्रह्माण्डानाञ्च वर्णनम् ।

यथोचितं परिमितं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १३६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

भगवन्नन्दसंवादे ब्रह्माण्डवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ।

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

चतुर्णां वर्णानां भक्ष्याभक्ष्यवर्णनम् ।

नन्द उवाच ।

।र्णानाञ्च चतुर्णाञ्च भक्ष्याभक्ष्यञ्च साम्प्रतम् । विपाकं कर्मणाञ्चैव सर्वेषां प्राणिनामपि

कथयस्व महाभाग कारणानाञ्च कारणम् ।

त्यक्तोऽन्यं कं चं पृच्छामि नितान्तं सन्तमीश्वरम् ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

भक्ष्याभक्ष्यं चतुर्णाञ्च घर्णानाञ्च यथोचितम् ।

वेदोक्तं श्रूयतां तात साधधानं निशामय ॥ ३ ॥

भयःपात्रे पयःपानं गव्यं सिद्धान्नमेव च । अष्टादिकं मधु गुडं नारिकेलोदकं तथा ॥४॥

फलं मूलञ्च यत्किञ्चिदभक्ष्यं मनुज्ययीत् । दधान्तं तप्तसौर्षीरमभक्ष्यं ब्रह्मनिर्मितम् ॥

नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु । गव्यञ्च ताम्रपात्रस्थं सर्वं मद्यं घृतं घिना ॥

ताम्रपात्रे पयःपानमुच्छिष्टं घृतभोजनम् । दुग्धं सलवणञ्चैव सद्यो गोमांसभक्षणम् ॥

अभक्ष्यं मधुमिश्रञ्च घृतं तैलं गुडं तथा । आर्द्रकं गुडसंयुक्तमभक्ष्यं धृतिसम्मतम् ॥ ८ ॥

पीतशेषजलञ्चैव माघे च मूलकं तथा । उपोदिताञ्च शयने सदा प्राग्ः परित्यजेत् ॥६॥

द्विभोजनञ्च दिपसे सन्ध्ययोर्भोजनं तथा ।

भक्ष्यञ्च रात्रिशेषे च ध्रुवं प्राग्ः परित्यजेत् ॥ १० ॥

पानीयं पायसं चूर्णं घृतं लवणमेव च ।

स्यस्तिकं गुडकञ्चैव क्षीरं तक्रं तथा मधु ॥ ११ ॥

हस्तादस्तगृहीतञ्च सद्यो गोमांसमेव च ।

फणं रौप्यपात्रसमभक्ष्यं धृतिसम्मतम् ॥ १२ ॥

परिपेणकारी चेद्भोक्तारं स्पृशते यदि । अभक्ष्यञ्च तदग्रञ्च सर्वेषामेव सम्मतम् ॥

नकुलानां गण्डकानां महिषाणाञ्च पक्षिणाम् ।

सर्पाणां शूकराणाञ्च गर्दभानां विशेषतः ॥ १४ ॥

मार्जारानां शृगालानां कुक्कुटानां धत्तेभ्यः ।

व्याघ्राणामपि सिंहानां त्याज्यं मांसं नृणां सदा ॥ १५ ॥

जलोफसाञ्च नकाणां गोधिकानां तथैव च ।

मण्डुफानां फर्फरीनां चुम्बुफानाञ्च निश्चितम् ॥ १६ ॥

गवाञ्च चमरीणाञ्च न कलौ मांसमक्षणम् । हस्तिनां घोटकानाञ्च नृणामेव च रक्षसाम्
 दंशश्च मशकश्चैव मक्षिका च पिपीलिका । अन्येषाञ्च निषिद्धानां लोके वेदे ब्रजेश्वर
 पानराणां भल्लुकानां शरभाणां तथैव च । निषिद्धं मृगनाभीनां गर्दभानाञ्च मांसकम्
 अभक्ष्यं महिषीणाञ्च दुग्धं दधि घृतं तथा । स्वस्तिकञ्च तथा तत्र विप्राणां नवनीतकम्
 मांसमुच्चैःश्रवसकं तस्य दुग्धादिकं तथा । वर्णानाञ्च चतुर्णाञ्चाप्यभक्ष्यञ्च श्रुतौ श्रुतम्
 अभक्ष्यमार्द्रकञ्चैव सर्वेषाञ्च रवेर्दिने । पर्युषितं जलं चान्नं विप्राणां दुग्धमेव च ॥२२॥
 वर्णानाञ्च चतुर्णाञ्चाप्यवीरान्नस्य भक्षणम् ।

तदन्नञ्च सुरातुल्यं गोमांसाधिकमेव च ॥ २३ ॥

अवीरान्नञ्च यो भुंक्ते ब्राह्मणो ह्यनदुर्बलः । पितृदेवार्चनं तस्य निष्फलं मनुरग्रवीत् ॥
 ब्राह्मणानां वैष्णवानामभक्ष्यं मत्स्यमेव च । इतरूपामभक्ष्यञ्च पञ्चपर्वसु निश्चितम् ॥
 पितृदेवाद्यशेषे च भक्ष्यं मांसं न दूषितम् । पञ्चपर्वसु त्याज्यञ्च सर्वेषां मनुरग्रवीत् ॥
 असंस्कृतञ्च लवणं तैलञ्चाभक्ष्यमेव च । भक्ष्यं पवित्रं सर्वेषां व्यञ्जनं वह्निसंस्कृतम् ॥
 एकहस्ते धृतं तोयमभक्ष्यं सर्वसम्मतम् । आविलं रुमियुक्तञ्चापरिशुद्धञ्च निर्मलम् ॥
 अभक्ष्यं ब्राह्मणानाञ्च वैष्णवानां विशेषतः । अनिवेद्यं हरेरेव यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥
 पिपीलिकामिश्रितञ्च मधु गव्यं गुडं तथा ।

यत्किञ्चिद्वस्तु वा तात न भक्ष्यञ्च श्रुतौ श्रुतम् ॥ २० ॥

पक्षिभक्ष्यं कीटभक्ष्यं शुद्धं पक्वफलं तथा । काकभक्ष्यमभक्ष्यञ्च सर्वेषां द्रव्यमेव च ॥
 घृतपक्वं तैलपक्वं मिष्टान्नं शूद्रसंस्कृतम् । अभक्ष्यं ब्राह्मणानाञ्च शूद्रभक्ष्यञ्च पीठकम्
 सर्वेषामशुचीनाञ्च जलमन्नं परित्यजेत् । अशौचान्तात्परदिने शुद्धमेव न संशयः ॥
 विपाकं कर्मणामेव दुष्करं धृतिसम्मतम् । भक्ष्याभक्ष्यञ्च कथितं यथाज्ञानं ब्रजेश्वर ॥
 क्रमाद्यतुर्पुं वेदेषु चोक्तं मतचतुष्टयम् । सर्वेषां सारभूतञ्च कथयामि पितः शृणु ॥२५॥
 नामुक्तं क्षीयते कर्म फल्यकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥
 तीर्थानाञ्च सुराणाञ्च साहाय्येन नृणामपि । किञ्चिद्वधति साहाय्यं कायव्यूहेन सर्वतः
 प्रायश्चित्तानि चीर्णानि निश्चितं मत्पराट्मुखम् ।

न निष्पुनन्ति हे तात सुराकुम्भमिवापगाः ॥ ३८ ॥

प्रायश्चित्तेन पुण्येन न हि शुध्यन्ति मानवाः । सर्वात्म्येण वैश्येन्द्र दानेन योगतोपि वा
शुभाशुभञ्च यत् कर्म विना भोगान्न च क्षयः ।

भोगेन शुद्धिमाप्नोति ततो मुक्तिर्भवेन्नृणाम् ॥ ४० ॥

न नष्टं दुष्कृतं कर्म सुकृतेन च कर्मणा । न नष्टं सुकृतं कर्म कृतेन दुष्कृतेन च ॥ ४१ ॥

यज्ञेन तपसा वापि व्रतेनानशनेन च । तीर्थस्नानेन दानेन जपेन नियमेन च ॥ ४२ ॥

भुवः प्रवक्षिणेनैव पुराणश्रवणेन च । उपदेशेन पुण्येन पूजया गुरुदेवयोः ॥ ४३ ॥

स्वधर्मा चरणेनैवातिथीनां पूजनेन च । ब्रह्मणां पूजनेनैव भोजनेन विशेषतः ॥ ४४ ॥

यद्दत्तमपि विप्राय तत् प्राप्तं पूर्णरूपतः । बीजरूपञ्च तद्दानं क्षेत्ररूपञ्च ब्राह्मणः ॥ ४५ ॥

एकेन कर्मणा तात स्वर्गं प्राप्नोति मानवः ।

कर्मणा न हि मोक्षश्च तदेव मम सेवया ॥ ४६ ॥

स्वर्गञ्च सुकृतेनैव नरकं दुष्कृतेन च । व्याधिर्जन्म च योनीं च कुत्सिते न ततः शुचिः

गोघ्नो यो ब्राह्मणानाञ्च कामतश्चोपपातकी ।

दन्दशूकत्वमाप्नोति गोलोमसमवर्षकम् ॥ ४८ ॥

सर्पेण भक्षितस्तेन उवाचया गरलस्य च । तृपितो व्यथितश्चैव निराहारः कृशोदरः ॥

ततः कुण्डात् समुत्थाय गोर्मघेलोमवर्षकम् ।

ततः कुप्री च चाण्डालो वर्षलक्षं ततो नरः ॥ ५० ॥

तदा भवेद् ब्राह्मणश्च कुष्ठयुक्तो हि कर्मणा ।

भोजयित्वा विप्रलक्षं निर्व्याधिश्च भवेच्छुचिः ॥ ५१ ॥

अकामतस्तदर्थश्च क्षत्रियस्यापि कामतः । अकामतस्तदर्थश्च तदर्थश्च विशस्तथा ॥ ५२ ॥

तदर्थं शूद्रगोम्रश्च भुंक्ते पापं न संशयः । प्रायश्चित्तेन शुद्धश्च भुंक्ते शेषश्च कर्मणः ॥ ५३ ॥

अनुकल्पे चतुर्थश्च पापं भुंक्ते न संशयः । चतुर्गुणञ्च गोघ्नानां ब्राह्मणानाञ्च पातकम् ॥

भुंक्ते पापञ्च ब्रह्मघ्नो ब्राह्मणश्चेतरोऽपि वा ।

क्रमेणानेन बोध्यञ्च कामतोऽकामतोऽपि वा ॥ ५५ ॥

प्रायश्चित्तं जन्मकर्मव्याधिरेव न संशयः ।

गोचनो भवति गौश्चापि यावद्वर्षञ्च निश्चितम् ॥ ५६ ॥

चतुर्गुणञ्च तेषाञ्च ब्रह्मन्तो विद्वद्भिर्मवेत् । ततोभयति म्लेच्छश्च तावद्वर्षचतुर्गुणम् ॥
ततश्चान्धो भवेद्विप्रः पूर्वेषाञ्च चतुर्गुणम् । ब्राह्मणानां चतुर्लक्षं भोजयित्वा शुविर्मवेत्
चक्षुष्मांश्च यशस्वी च भवेत्सोऽप्यतिपातकात् ।

ह्रीन्मश्चतुर्णां वर्णानां वेदे सोऽप्यतिपातको ॥ ५६ ॥

कालसूत्रञ्च प्राप्नोति ह्रीलोमसमवर्षकम् । भक्षितः कृमिणा तत्र निराहारो व्यथायुतः
ततो भवति लोके च तावद्वर्षञ्च पातकी ।

ततः पापी भवेत्सोऽपि यक्ष्मग्रस्तश्च कर्मणा ॥ ६१ ॥

वर्षाणां शतकञ्चैव विप्रलक्षञ्च भोजयेत् । ततः शुद्धो ब्राह्मणश्च विद्वांस्तपसि संयतः
किञ्चिद्दुक्ते पापशेषं स्वर्णदानाच्छुचिर्मवेत् ।

गर्भेभ्यश्च महापापी संप्राप्नोति शुनीमुखम् ॥ ६३ ॥

वर्षाणां शतकञ्चैव घोटकश्च भवेद् ध्रुवम् । वर्षाणां शतकञ्चैव सूक्ष्मशस्त्रेण पीडितः
ततः पापी भवेद्वैश्यो ब्रह्मयुक्तो हि कर्मणा ।

पञ्चाशद्वर्षपर्यन्तं स्वर्णदानाद्वैच्छुचिः ॥ ६५ ॥

ततः स्वकुलजातोऽपि निर्व्याधिर्ब्राह्मणः शुचिः ।

ब्राह्मणः क्षत्रियश्च क्षत्रियो वा विना रणात् ॥ ६६ ॥

ततश्च लज्जं प्राप्नोति वर्षाणाञ्च सहस्रकम् । कथितं तसलोद्देन चार्तनादं करोति च ॥ ६७ ॥
ततो भवेन्मत्तगजो वर्षाणां शतकं तथा । ततो रक्तचिकारी च शूद्रो वर्षशतं तथा ॥

गजदानेन मुक्तश्च व्याधितश्च ततो द्विजः ।

वैश्यश्च पापी वैश्यश्च शूद्रश्चो वैश्य एव च ॥ ६८ ॥

वैश्यश्च पापी शूद्रश्च समपापं लभेद् ध्रुवम् । कृमिकुण्डञ्च प्राप्नोति वर्षाणां शतकं तथा
कृमिभिर्मक्षितो दुःखी किरातश्च भवेत्ततः । वर्षाणां शतकञ्चैव कृमिव्याधिसमन्वितः ॥
ततो मन्दाग्नियुक्तश्च ब्राह्मणो वैश्यवान् व्रज । पञ्चाशद्वर्षपर्यन्तं दुर्बलश्च कुशोदरः ॥

मुक्तिर्भवति युक्तेन तीर्थे चाश्वप्रदानतः । शूद्रभ्यो ब्राह्मणञ्चैव कामतोऽकामतोऽपि वा
सावित्रीलक्षजाप्येन तदर्धेन शुचिर्मवेत् । चतुर्वर्णः कुक्कुटभ्यो ह्यविशतश्च शम्भुना ॥
वर्षाणां शतकञ्चैव प्राप्नोति रौरवं नरः । ततो भुङ्क्ते कुक्कुटश्च वर्षाणामपि षोडश ॥
ततः शुद्धो भवेद्विप्रो भक्षितः कुक्कुटेन च । गङ्गास्नानेन दानेन स्वर्णस्यापि भवेच्छुचिः
मार्जारघ्नश्चतुर्वर्णो गङ्गास्नानाद्भवेच्छुचिः । विप्राय लवणं दत्त्वा पदपलञ्च प्रमुच्यते
हत्वा सर्पाश्चतुर्वर्णो मम पादेन चिह्नितः । ब्रह्महत्याचतुर्थश्च पातकञ्च लभेद् ध्रुवम् ॥

असिपत्रञ्च नरकं वर्षाणां शतकं तथा ।

प्राप्नोति यातनां युक्तो विच्छिन्नस्तीक्ष्णधारया ॥ ७६ ॥

ततो भवति सर्पश्च दुन्दुभो वर्षपञ्चकम् । नरेण तारितो दुःखी मृत्योर्भवति पीडितः
ततो भवेन्नरः पापी ज्वरयुक्तो हि दुर्बलः । वर्षाणां पञ्चकेनैव मृतो भवति कर्मणा ॥

ततो भवति हस्ती च घोटको वा वज्रेश्वर ।

यावद्विशतिवर्षञ्च ततः शूद्रो भवेद् ध्रुवम् ॥ ८२ ॥

अहङ्कृतीव्याधियुक्तो रीप्यदानेन मुच्यते । ब्राह्मणानाञ्च शतकं भोजयित्वाशुचिर्मवेत्
क्षुद्रजन्तुवधेनैव क्षुद्रजन्तुर्भवेन्नरः । वर्षाणां शतकञ्चैव क्षुद्रव्याधिं तरेत्ततः ॥ ८४ ॥

रूपा कार्यासता शश्वदहिंसेषु च जन्तुषु ।

हिंसायां न हि दोषञ्च हिंसाणञ्च व्रजेश्वर ॥ ८५ ॥

अश्वत्थान्श्चतुर्वर्णां ब्रह्महत्याचतुर्थकम् । पापञ्च लभते तत आसिपत्रं व्रजेद् ध्रुवम् ॥

स तीक्ष्णेनापि शस्त्रेण विच्छिन्नश्च दिवानिशम् ।

वर्षाणां शतकञ्चैव भुङ्क्ते पद्मयातनाम् ॥ ८७ ॥

ततो भवति वृक्षश्च शालमल्लिवर्षलक्षकम् । ततो भवति शूद्रश्च छिन्नाङ्गो व्याधिसंयुतः
यावज्जीवनपर्यन्तं ततो विप्रो भवेद् ध्रुवम् । व्रणव्याधिसमायुक्तो मुच्यते स्वर्णदानतः

मिथ्यासाक्ष्यप्रदाता च कृतघ्नोऽतिवृत्तघ्नकः ।

विश्वासघाती मित्रघ्नो विप्राणां घनहारकः ॥ ९० ॥

शूद्रभ्रातृन्ममोजी च शूद्राणां शवदाहकः । शूद्राणां सूपकञ्चैव वृषवाहकपातकी ॥ ९१ ॥

धावको देवलश्चापि चैतेऽतिपापिनस्तथा ।

कुम्भीपाकं प्रयान्त्येव वर्षाणाञ्च सहस्रकम् ॥ ६२ ॥

तत्रैव तप्ततेलेन सन्तप्तश्च दिवानिशम् । भक्षितो व्याधितश्चैव सर्पाकारेण जन्तुना ॥

गृध्रः कीटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः ।

श्यापदः शतजन्मानि शूद्रो रोगी भवेत्ततः ॥ ६४ ॥

मन्दाग्निज्वरसंयुक्तः पञ्चाशद्वर्षकं तथा । सुवर्णानां शतपलं दद्यात् शुद्धो भवेद् ध्रुवम्
चतुर्वर्णां वस्त्रहारी गव्यहारी च मानवः । रौप्यमुक्तापहारी च शूद्रद्रव्यापहारकः ॥

वर्षाणाञ्च सहस्रञ्च एकजातिर्मवेद् ध्रुवम् ।

मूत्रकुण्डञ्च वै भुक्त्वा वर्षाणां शतकं तथा ॥ ६७ ॥

ततो भवेच्छूद्रजातिर्वर्षाणां शतकं व्रज । कुष्ठव्याधिसमायुक्तो गलितश्चैव पातकी ॥

ततो भवेद् ब्राह्मणश्च कुष्ठवशेषसंयुतः । स्वर्णपद्मपलदानेन व्याधितो मुच्यते शुक्तिः ॥

कीक्षापहारकश्चैव फलापहारकस्तथा । यक्षः पृथिव्यां सम्भूतो लीलाद्रव्यापहारकः ॥

वर्षाणां शतकञ्चैव चापक्षी भवेद् ध्रुवम् । ततो भवेत् कृष्णवर्णः शूद्रश्च भारते भुवि

ततो भवेद् ब्राह्मणश्चाप्यधिकाङ्गोऽपि जन्मभिः ।

पुनर्जन्म द्विजो भूत्वा मुच्यते विप्रभोजनात् ॥ १०२ ॥

पक्षद्रव्यापहारी च पशुयोनिर्मवेद् ध्रुवम् ।

यस्याण्डकोशो गन्धाकः कस्तूरी यस्य नाम च ॥ १०३ ॥

सप्तजन्म मृगो भूत्वा ततो भवति गन्धकः । जन्मेकञ्च ततः शूद्रो गलत्कुष्ठीव्रजन्मनि

ततो रोगावशेषेण संयुतो ब्राह्मणः कृशः । स्वर्णपद्मपलदानेन मुच्यते नात्र संशयः ॥

धान्यापहारी दुःखी च कृपणः सप्तजन्मसु ।

चिष्टाकुण्ड वर्षशतं सम्प्राप्य मुच्यते मिया ॥ १०६ ॥

स्वर्णापहारी कुष्ठो च मानवः पतितो भवेत् ।

स्वर्णदानप्रतिग्राही चित्कुण्डञ्च प्रयाति च ॥ १०७ ॥

ततो वर्षशतं भुक्त्वा पुरीषञ्च दिवानिशम् । ततो व्याधो भवेच्छूद्रो रक्तदोषेण संयुतः

तज्जन्म पातकं भुक्त्वा ब्राह्मणश्च पुनर्भवेत् । व्याधिशेषोपयुक्तश्च मुच्यते स्वर्णदानतः ।

अगम्यानाञ्च गामी च पूर्वोक्तं रौरवं व्रजेत् ।

कुम्भोपाकं महाघोरं वर्षाणाञ्चाप्यसंख्यकम् ॥ ११० ॥

ततो भवेत् पुंश्चलीनां योनीनाञ्च कृमिस्तथा ।

वर्षाणाञ्च सहस्रञ्च विट्कृमिर्घर्षलक्षकम् ॥ १११ ॥

पशुयोनिर्भवेत्तस्मात्तस्माच्च शुद्रजन्तवः ।

ततो भवेन्मलेच्छजातिस्ततः शुद्रोऽधमस्तदा ॥ ११२ ॥

ततो भवति विप्रश्च व्याधियुक्तो नृपुंसकः । पुनश्च ब्राह्मणो भूत्वा तीर्थपट्यटनेन च ।

क्रमेण शुद्रो भवति वंशहीनश्च पातकात् । भोजयित्वा विप्रलक्षं पुत्रश्च लभते शुचिः ॥

मानवः क्रोधयुक्तश्च गर्दभः सप्तजन्मसु । मानवः कलहायिष्ठः सप्तजन्मसु पायसः ॥

शालग्रामप्रतिमाही कालसूत्रं व्रजेद् ध्रुवम् ।

वर्षाणां शतकञ्चैव सञ्जराटी भवेत्ततः ॥ ११६ ॥

लोहचोरश्च निर्वंशो मपीचोरश्च कौबिलः ।

शुफोऽप्यञ्जनचोरश्च मिष्टचोरः कृमिर्भवेत् ॥ ११७ ॥

विप्रद्वेषी गुरुद्वेषी शिरसाञ्च कृमिर्भवेत् । पुंश्चली कामिनी तात भुक्त्या च रौरवं व्रजेत् ।

ततो वृथाकृमिश्चैव वर्षाणां शतकं तथा ।

ततोऽपि विधवा चैव बन्ध्या च सप्तजन्मसु ॥ ११८ ॥

अस्पृश्या जातिहीना च छिन्ननासा भवेत् कमात् ।

रक्तद्रव्यापहारी च रक्तदोषान्वितो भवेत् ॥ १२० ॥

आचारहीनो यवनः खञ्जो भवति हिंसकः । अदीक्षितो चङ्गरश्च दुष्टदर्शो च काणकः ॥

अहङ्कारी कर्णहीनो घघिरो वेदनिन्दकः । वाक्यहर्ता च मूकश्च हिंसकः केशहीनकः ॥

मिथ्यावादी श्मश्रुहीनो दुर्बाक्यो दन्तहीनकः ।

जिह्वाहीनः सत्यहारी दुष्टोऽप्यङ्गुलिहीनकः ॥ १२३ ॥

ग्रन्थापहारी मूर्खश्च व्याधियुक्तो भवेद् ध्रुवम् ।

अश्वग्राही च तचोरो लालामूत्रं व्रजेदिति ॥ १२४ ॥

वर्षाणाञ्च शतं स्थित्वा घोटकश्च भवेद् ध्रुवम् ।

गजचोरो गजग्राही बिट्कुण्डे च सहस्रकम् ॥ १२५ ॥

यत्त्वा वर्षं भवेद्भस्ती तत्पश्चाद् वृषलोभवेत् । अयज्ञे छागहन्ता च छागचोरप्रतिग्रही
यकुण्डे वर्षशतं स्थित्वा चाण्डालतां व्रजेत् । छागश्च वर्षपर्यन्तं तदा भवति मानवः

शत्रुशस्त्रेण छिन्नश्च तदा मुक्तो भवेद् द्विजः ।

वृत्तापहारी घामदानं कृत्वाऽपहरते पुनः ॥ १२८ ॥

स भयन्लेच्छयोनौ च भुक्त्वा च नरकं व्रजेत् ।

एकाकी मिष्टमन्नाति कालसूत्रं व्रजेद् ध्रुवम् ॥ १२९ ॥

तत्र वर्षशतं स्थित्वा प्रेतो वर्षसहस्रकम् ।

तदा भवति जन्मैकं मक्षिका च पिपोलिका ॥ १३० ॥

जन्मैकं क्षमरश्चैव जन्मैकं मधुमक्षिका । जन्मैकं वरलश्चैव जन्मैकं दंश एव च ॥

जन्मैकं मशकश्चैव जन्मैकं पूतिकः स्मृतः ।

जन्मैकं तल्पकीटश्च तदा शूद्रो भवेद् ध्रुवम् ॥ १३२ ॥

भसत्रुषुब्जिर्व्याधियुक्तो तदा मुक्तो भवेद् द्विजः ।

तैलचोरस्तैलकारां मूर्ध्नि कीटस्त्रिजन्मकम् ॥ १३३ ॥

तदा भवेत् स्वर्णकारो जन्मैकं दुष्टमानसः । विश्वैकलिपिकर्ता च भक्ष्यदातुर्धनं हरेत्

तमःकुण्डे वर्षशतं स्थित्वा स्वर्णघणिग् भवेत् ।

जन्मैकश्च दुराचारो जन्मैकं करणो भवेत् ॥ १३५ ॥

कायस्थेनोदरस्थेन मातुर्मांसं न खादितम् ।

तत्र नास्ति रुपा तस्य दन्ताभावेन केवलम् ॥ १३६ ॥

स्वर्णकारः स्वर्णघणिक् कायस्थश्च व्रजेश्वर । नरेषु मध्ये ते धूर्ताः रुपाहीना महोत्तले

हृदयं ध्रुवधारामं तेषां नास्ति च सादरम् ।

शतेषु सज्जनः कोऽपि कायस्थो नेतरौ च तौ ॥ १३८ ॥

सुबुद्धिः शिवयुक्तश्च शास्त्रज्ञो धर्ममानसः । न विश्वसेत्तेषु तात स्वात्मकल्याणहेतवे

सीमापहारी दुष्टश्च भूमिचोरश्च हिंसकः ।

भूमिदानापहारी च कालसूत्रं व्रजेद् ध्रुवम् ॥ १४० ॥

पष्टिचर्पसहस्राणि क्षुत्पिपासादितः स्थितः ।

ततोऽपि तानि नामानि विघ्नायां जायते कृमिः ॥ १४१ ॥

ततो भवेदसच्छूद्रो जन्मैकश्च ततः शुचिः । तस्माज्जानेः सावधानं भवेत्प्राज्ञश्च यत्नतः

रक्तवस्त्रापहारी च जन्मैकं रक्तकोटकः । ततः शूद्रश्च जन्मैकं ततो विप्रो भवेच्छुचिः

त्रिसन्ध्यहीनो विप्रश्च प्रातःशायी च यो नरः ।

सन्ध्याशायी विवाशायी यत्नसूत्रापहारकः ॥ १४४ ॥

अशुद्धसन्ध्याकारी च वेदवेदाङ्गनिन्दकः । तद्विरुद्धः स्वर्गमार्गस्त्रिजन्म पतितो द्विजः ॥

यः शूद्रो ब्राह्मणीगामी कुम्भीपाके व्रजेद् ध्रुवम् ।

वर्षाणाञ्च त्रिलक्षं पच्यते तत्र पोद्धितः ॥ १४६ ॥

दिवानिशं प्रदग्धश्च तप्ततैले च दारुणे । ततो भवेद्योनिकीटो पुंश्चलीनाञ्च पातकी ॥

पष्टिचर्पसहस्राणि बाह्वारं तस्य तन्मलम् ।

ततो भवति चाण्डालो जन्मलक्षं क्रमेण च ॥ १४८ ॥

ततः शूद्रो गलत्कुष्ठो जन्मैकश्च ततः शुचिः ।

सोऽपि विप्रो व्याधिशेषस्त्रीर्षवर्षट्णाच्छुचिः ॥ १४९ ॥

असच्छूद्रश्च भवति सोऽस्थाने सुरुपूजिते । दत्त्वा देवाय नैवेद्यमपवित्रञ्च मानवः ॥

सकेशं पार्थिवं लिङ्गं संपूज्य यवनो भवेत् । दुर्बलेन भवेदन्धः कुत्तिसतेन च कुत्तिसतः

बद्धहीनो दग्धिश्च व्याधियुक्तश्च मानवः ।

अथद्रया च निर्माणे निर्माणसदृशं फलम् ॥ १५२ ॥

मृद्वस्मगोशरुत्पिण्डैस्तथा बालुकयापि वा ।

कृत्वा लिङ्गं सत्पूज्य घसेत् कल्पायुषं दिवि ॥ १५३ ॥

ततोभवति विप्रश्च महाप्राज्ञश्च भूमिमान् । राजा भवेद्भारते च लिङ्गानां शतपूजनात्

। सहस्रपूजनात्सोऽपि लभते निश्चितं फलम् ।

स्थित्वा च सुचिरं स्वर्गं राजेन्द्रो भारते भवेत् ॥ १५५ ॥

त्युते च तद्दीशश्च लक्षे च पृथिवीश्वरः । पूजने चातिभक्त्या चाप्यतिरिक्तं फलं लभेत्
तिर्यस्तानेन दानेन विप्राणां भोजनेन च । नारायणार्चया चैव विप्रजातिश्च कर्मणा ॥

अतिरिक्तेन तपसा पण्डितो ब्राह्मणो भवेत् ।

पण्डितो ब्राह्मणश्चैव वैष्णवश्च जितेन्द्रियः ॥ १५८ ॥

ऋणेकजन्मपुण्येन जायते भारते भुवि । तस्यांघ्रिस्पर्शेनैव सद्य पूता घसुन्धरा ॥ १५९ ॥

तीर्थाः कुर्वन्ति तीर्थानि जीवामुक्ताश्च वैष्णवाः ।

स्वपुंसाञ्च सहस्रञ्च पुनन्तीति श्रुतौ श्रुतम् ॥ १६० ॥

पापेन वैचजन्मैव दुश्चिकित्सोऽपि ब्राह्मणः ।

दुश्चिकित्सस्तथा वैद्यो व्यालप्राही त्रिजन्मसु ॥ १६१ ॥

अतिक्रूरो दुराचारो ब्रैष्टा च सुरचिप्रयोः । स भवेत् कुटिलव्यालो धर्षणाञ्चसहस्रकम्
पुंश्चलीलम्पटानाञ्च दूती या कामिनी व्रज ।

फालसूत्रे धर्षणत स्थित्वा च गोधिका भवेत् ॥ १६३ ॥

जन्मैकगोधिका भूत्वा हरिणश्च त्रिजन्मसु । जन्मैकं महिषश्चैव जन्मैकं भल्लुको भवेत्

जन्मैकं गण्डकश्चैव शृगालश्च त्रिजन्मसु । परकीयतडागञ्च सूतशस्यं वृषाति च ॥

स भवेन्नक्रजातिश्च कच्छपश्च त्रिजन्मसु ।

वृषामासञ्च यो भुङ्क्ते मत्स्यलुब्धश्च ब्राह्मणः ॥ १६६ ॥

भुङ्क्ते मासमवत्तश्च स मीनश्च मृगो भवेत् ।

वर्षाणाञ्च सहस्रञ्च तात भुक्त्वा च किल्बिषम् ॥ १६७ ॥

कर्मभोगाच्छुचिर्भूत्वा स पुनर्ब्राह्मणो भवेत् । एकादशीचिह्नानश्च ब्राह्मणः पतिसीभवेत्

भक्ष्यस्य द्विगुणं दत्त्वा तेन पापेन मुच्यते । ममजन्मदिने चैव यो भुङ्क्ते मानवोऽधमः

त्रैलोक्यजनित पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः ।

भुक्त्वा च नरकं सर्वं पश्चाद्याण्डालता व्रजेत् ॥ १७० ॥

एवञ्चशिवरात्रौ च श्रीरामनवमीदिने । उपवासासमर्थश्च हविष्यान्नं समाचरेत् ।

ततो शक्तौ दुर्बलश्च भोजयेद् ब्राह्मणानपि ।

कृत्वा महोत्सवं पुण्यं मदीयं पातकाच्छुचिः ॥ १७२ ॥

तस्माद्यज्ञेन कर्तव्यं नामसङ्कीर्तनं मम । गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः ॥

श्वापदः शतजन्मानि भवेच्च निशि भोजनात् ।

अदीक्षितो द्विजश्चैव शङ्खचिह्नः शुको भवेत् ॥ १७४ ॥

अनुद्धाही द्विजश्चैव राजहंसो भवेद् ध्रुवम् । चित्रचस्त्रापहारी च मयूरश्च त्रिजन्मसु

तैजपात्रापहारी च भवेत्कारण्डवश्चिरम् । सुराणां प्रतिमाचोरोऽप्यन्धश्च सप्तजन्मसु

दरिद्रो व्याधियुक्तश्च यधिरश्चापि कुञ्जकः । स्त्रीतैलमधुमांसञ्च ख्यौ वा पञ्चपर्यसु ॥

सेवते यो महामूढो वज्रदंष्ट्रं प्रजेद् ध्रुवम् ।

पातकी दुःखितस्तत्र वर्षाणाञ्च सहस्रकम् ॥ १७८ ॥

ततो भवति ग्लेच्छश्च चाण्डालः सप्तजन्मसु ।

व्याधियुक्तस्ततः शूद्रो ब्राह्मणश्च ततः शुचिः ॥ १७९ ॥

तस्माद्यज्ञान्न भोक्तव्यं भान्ते धर्मभीरव्या । ब्राह्मणञ्च सुरं दृष्ट्वा न नमैवो नराधमः ॥

यावज्जीवनपर्यन्तमशुचिर्यमनो भवेत् । मभ्युत्थानं न कुरुते दृष्ट्वा चागतब्राह्मणम् ॥

स भवेद् ब्रह्मघाती च सप्तजन्मसु निक्षिप्तम् । शिवद्वेषी कुक्रुदश्च देवलः सप्तजन्मसु ॥

पितृदेवार्चनं हन्ति वेदोक्तं धानदुर्बलः । स याति नरकं पापी वर्षाणाञ्च सहस्रकम् ॥

ततश्च रौरवं भुतवा तीर्थकाकस्त्रिजन्मसु । त्रिजन्मसु भृगालश्च तीर्थं भुङ्क्ते शयं प्रज

त्रिजन्मसु भवेत् सोऽपि तीर्थेषु शवरक्षकः ।

शवानां कर्मादत्ते कर्मणा कृतपातकी ॥ १८५ ॥

नित्यं सुरार्चनं कृत्वा दाम्भिको धानदुर्बलः । गुरुञ्च नान्येद्भक्ष्यं तस्मै ज्ञानं ददाति य

स भवेद्देवलो दुःखी देवशपेन पातकी । नित्यं सुरार्चनं कृत्वा दाम्भिको धानदुर्बल

पूजाफलं न लभते देवद्रोही स दारुणः । दीपनिर्वाणकर्ता च ज्योतः सप्तजन्मसु ।

अतीवमत्स्यलुब्धश्चाप्यनैवेद्यञ्च पादति ॥ १८८ ॥

स भवेन्मत्स्यरङ्गश्च मार्जारः सप्तजन्मसु ।

गोणीहर्ता कपोतश्च मालाहर्ता विहङ्गमः ॥ १८६ ॥

चटको धान्यचोरश्च मांसचोरश्च कुञ्जरः । कचिप्रहर्ता विदुषां मण्डूकः सप्तजन्मसु ॥

असत्कचिर्गामचिप्रो नकुलः सप्तजन्मसु । कुष्ठो भवेद्य जन्मैकं रुकलासस्त्रिजन्मु ॥

जन्मैकं धरलश्चैव ततो वृक्षपिपीलिका । ततः शूद्रश्च वैश्यश्च क्षत्रियो ब्राह्मणस्तथा ॥

कन्याचिक्रयकारी च चतुर्वर्णो हि मानवः ।

सद्यः प्रयाति तामिस्रं यावच्चन्द्रदिशाकरी ॥ १८३ ॥

ततो भवति व्याधश्च मांसचिक्रयकारकः । ततो व्याधिर्मवेत्पश्चाद्यो यथा पूर्वजन्मनि

मन्नामचिक्रयी चिप्रो न हि मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ।

मृत्युलोके च मन्नाम स्मृतिमात्रं न विद्यते ॥ १८५ ॥

पश्चाद्भवेत्सो गोयोनौ जन्मैकं ज्ञानतुर्यलः ।

ततश्छागस्ततो मेपो महिषः सप्तजन्मसु ॥ १८६ ॥

महाचक्री च कुटिलो धर्महीनश्च मानवः । जन्मैकं तैलकारश्च कुम्भकारस्तथैव च ॥

मिथ्याकलङ्कचका च दैवब्राह्मणनिन्दकः । स भवेत् स्वर्णकारश्च रजकः सप्तजन्मसु

ब्राह्मणक्षत्रविदशूद्राः कुतिसताः शौचवर्जिताः ।

जन्म तेषां म्लेच्छयोनौ धर्माणामयुतं तथा ॥ १८६ ॥

कामतो योपिता श्रोणीस्तनास्यं यश्च पश्यति ।

स भवेद् दृष्टिहीनश्च परत्रापि नपुंसकः ॥ २०० ॥

चिप्रोऽमिचारकर्ता च हिंसको ज्ञानतुर्यलः । यात्येवमन्धतामिस्रं धर्माणामयुतं तथा

तदा भवति दैवज्ञोऽप्यग्रदानी च दुर्मतिः । ततः शूद्रो भवेद्विप्रो भोगेन कर्मणस्तथा ॥

शास्त्रज्ञाता च दैवज्ञो मिथ्या वदति लोमव ।

स भवेच्च ध्रुवं ज्येष्ठो धानः सप्तजन्मसु ॥ २०३ ॥

अनेकजन्म तपसा भारते ब्राह्मणो भवेत् ।

सुदुश्चरतिधर्मिष्ठो धर्महीनश्च पातकी ॥ २०४ ॥

स्वधर्मनिरतो विप्रः परमाञ्च हुताशनात् । पवित्रश्चातितेजस्वी तस्माद्वीतः सुरः स द
नदीषु च यथा गङ्गा तीर्थेषु पुष्करं यथा । पुरीषु च यथा काशी यथा ज्ञानिषु शङ्करः ।

शास्त्रेषु च यथा वेदा यथाश्चत्थश्च पादपे ।

मम पूजा तपस्यासु व्रतेष्वनशनं तथा ॥ २०७ ॥

तथा जातिषु सर्वासु ब्राह्मणः श्रेष्ठ एव च ।

विप्रपादेषु तीर्थानि पुण्यानि च व्रतानि च ॥ २०८ ॥

विप्रपादरजः शुद्धं पापव्याधिचिमर्दनम् । शुभाशीर्वचनं तेषां सर्वकल्याणकारणम् ॥
एतत्ते कथितं तात विपाकः कर्मणामहो । यथाश्रुतं यथाज्ञानं तदशेषं निशामय ॥ २०९ ॥

श्रुत्वा धर्मविपाकञ्च वाचकाय सुवर्णकम् ।

दद्यात्तस्मै च रौप्यञ्च वस्त्रं ताम्बूलमेव च ॥ २११ ॥

सुवर्णशतकं दद्यात् सद्यो देही च गोकुलम् ।

रौप्यं वस्त्रञ्च ताम्बूलं मत्प्रोत्था ब्राह्मणाय च ॥ २१२ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारख्यसंवादे श्रीकृष्णजन्मपण्डे
भगवन्नन्दसंवादे कर्मविपाकवर्णनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।

पङ्कशीतितमोऽध्यायः

केदारकन्याविवरणम् ।

नन्द उवाच ।

केदारकन्याग्रस्तपात् कथितं कर्मकर्तव्यम् ।

वृत्त्या स्त्रीणां प्रसङ्गेन तद् व्यासेन वद प्रभो ॥ १ ॥

केदारकन्या सा का वा फो वा केदारभूपतिः ।

कस्य वंशे च तज्जन्म तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

श्रीमगवानुवाच ।

पुरादौ ब्रह्मणः पुत्रो मनुः स्वायम्भुवस्तथा ।

तस्य स्त्री शतरूपा च धन्या मान्या च योषिताम् ॥ ३ ॥

प्रियप्रतोत्तानपादौ तयोः पुत्रौ यभूवतुः । उत्तानपादपुत्रश्च ध्रुव एव महायशः ॥४॥
तत्पुत्रो नन्दसावर्णिः केदारश्च तदात्मजः । सप्तद्वीपपतिः श्रीमान् केदारो वैष्णवः स्वयम्
तस्य रक्षानिमित्तेन तत्सभायां सुदर्शनम् । गणां लक्षं नवं शुद्धं स्वर्णशृङ्गञ्च भूषितम् ॥

वह्निशुद्धानि वस्त्राणि दत्तानि वरुणेन च ।

सुवर्णानां तथा लक्षं सर्वशस्यां वसुन्धराम् ॥ ७ ॥

मणिरत्नञ्च मुक्ताञ्च हीरकं परमं तथा । माणिक्यमश्वरत्नानां लक्षं लक्षञ्च हस्तिनाम् ॥
रौप्यं प्रवालं मिष्टान्नं शतधान्याचलं वरम् । नित्यं नित्यं ब्राह्मणेभ्यो ददौ च रत्नभूषणम्
शतलक्षं ब्राह्मणानां भोजयामास नित्यशः । जलभोजनपात्राणि सुवर्णानां ददौ नृपः ॥
सुवर्णानां यज्ञसूत्रमङ्गुलीयकमुत्तमम् । आसनं स्वर्णरत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥११॥
ब्राह्मणानाञ्च लक्षञ्च सूषकारं नृपस्य च । ब्राह्मणानां विलक्षञ्च परिवेषणकारकम् ॥

घृतकुल्या मधुकुल्या दधिकुल्या मनोहराः ।

गुडकुल्या दुग्धकुल्या नित्यं प्रार्थनमीप्सितम् ॥ १३ ॥

प्रातरारभ्य सन्ध्यान्तं विप्राणां भोजनं तथा ।

दुःखिनां मिश्रुकाणाञ्च धनदानं यथोचितम् ॥ १४ ॥

फलमूलाशनो राजा वैष्णवश्च जितेन्द्रियः । सर्वं मदर्पणं कृत्वा जपेन्माञ्च दिवानिशम्
एकदा सूषकारश्च तमुवाच नृपेश्वरम् । विप्राणां भोजनायैव दशलक्षमुपस्थितम् ॥१६॥
मुञ्जते ब्राह्मणाश्चाद्य रूक्षमन्नं घद प्रभो । कुर्वन्तु भक्षणं ते वै विप्राः सूपादिना नृप ॥
चतुर्योजनपर्यन्तमधिकारं नृपस्य च । यो राजा तच्छतगुणः स एव मण्डलेश्वरः ॥

तत्तद्दशगुणो राजा राजेन्द्रः परिकीर्तितः ।

राजेन्द्राणां पञ्चलक्षं नित्यं केदारसंसदि ॥ १९ ॥

अमूल्यरत्नमाणिक्यं मुक्ताहारं मणीश्वरम् । गजरत्नमश्वरत्नं केदाराय करं ददौ ॥२०॥

कमला कलया जाता यज्ञकुण्डसमुद्भवा । वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥२१॥

कामुकी कामिनीश्रेष्ठा कन्या कमललोचना ।

कन्याऽस्मि ते महाराजेत्युवाच नृपतिञ्च सा ॥ २२ ॥

राजा सम्पूज्यतां भक्त्या तस्यौ पत्नीं समर्प्य च ।

सा पित्राय प्रसूं तातं कृत्वा च विनयं मुदा ॥ २३ ॥

ययौ पुण्यवनं रम्यं तपसे यमुनान्तिकम् । तत्तपस्यावनं यस्मात् तस्माद्बृन्दावनं स्मृतम्

तपसा वरयामास मां वरञ्च वरं वरम् । ब्रह्मा ददौ वरं तस्यै पश्चात् कृष्णं लभिष्यसि

सा चैकदा नदीतीरे वसन्ते सस्मिता सती । शयाना पुष्पशय्यायां रत्नाभरणाभूषिता ॥

ब्रह्मा परीक्षितुं ताञ्च साध्वोश्च सुमनोहराम् । ददर्श कन्या रहसि युवानं पुरुषं परम् ॥

बन्धनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् । सस्मितं कामुकं रम्यं रमणीनाञ्च वाञ्छितम् ॥

यथा षोडशवर्षीयं कुमारं फनकप्रभम् । कोटिकन्दर्पलीलामं पीताम्बरधरं वरम् ॥

शरत्पार्वणवन्त्रास्यं शरत्पद्मसुलोचनम् । दृष्ट्वा तञ्च समुत्थाय वासयामास सन्निधौ

पूजयामास भक्त्या च फलं मूलं ददौ मुदा ।

सुवासितं जलं दत्त्वा प्रणनाम मुदाग्निता ॥ ३१ ॥

पूजां गृहीत्वा मुदितः सादरं तामुवाच ह ।

विप्ररूपी च भगवान् प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ।

कामुकीनाञ्च काम्यञ्च सतीनां दुष्करं व्रज ॥ ३२ ॥

धर्म उवाच ।

भवती कस्य कन्या वा किं ते नाम मनोहरे ।

किं करोषि रहस्येव तन्मे कथितुमर्हसि ॥ ३३ ॥

कस्य हेतोस्तपस्या ते किं वा वाञ्छसि सुन्दरि ।

वरं वृणीष्व भद्रं ते यत्ते मनसि वाञ्छितम् ॥ ३४ ॥

वृन्दोवाच ।

विप्र केदारकन्याऽहं वृन्दा वृन्दावने स्थिता । तपःकरोमि रहसि चिन्तयामि हर्षितम्

यदि दातुं समर्थोऽसि देहिमे वाञ्छितं धरम् । असमर्थोऽसि चेद्वच्छ किं ते प्रश्नेनब्राह्मण
धर्म उवाच ।

निरीहमघितकर्म्यञ्च परमात्मानमीश्वरम् । निर्गुणञ्च निराकारं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥ ३७

का क्षमातं पतिं कर्तुं विना लक्ष्मीं सरस्वतीम् ।

चतुर्भुजस्य द्वे भार्य्ये हरैर्वैकुण्ठशायिनः ॥ ३८ ॥

गोलोके द्विभुजस्यापि श्रीवंशीचदनस्य च । किशोरगोपवेशस्य परिपूर्णतमस्य च ॥

तस्य भार्य्या स्वयं राधा महालक्ष्मीः परात्परा ।

ब्रह्मस्वरूपा परमा परमात्मानमीश्वरम् ॥ ४० ॥

भजते सततं शान्तं सुरम्यं श्यामसुन्दरम् ।

कोटिकन्दर्पसौन्दर्य्यनिन्दितं सुकलेषरम् ॥ ४१ ॥

भूमूष्यरत्नाभरणं सत्यञ्च नित्यविग्रहम् । पीताम्बरधरं रम्यं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥

श्रीकृष्णश्च द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः । चतुर्भुजश्चवैकुण्ठे गोलोकेद्विभुजः स्वयम्

थस्मिमेपोभवेद्वन्द्वे ब्रह्मणः पतनेन च । पञ्चविंशत्सहस्रेण युगेनेन्द्रस्य पातनम् ॥ ४४ ॥

चतुर्वंशेन्द्रावच्छिन्नकालेन ब्रह्मणो दिनम् । तावतीति निशा तस्य विधातुर्जगतामपि

एवं त्रिंशद्दिने मासं द्विपटके मासि वर्षकम् ।

एवंशतायुस्तस्यैव नियोध योधतत्परम् ॥ ४६ ॥

यावज्जीवनपर्य्यन्तं सेवन्ते सनकादयः । कल्पानां कोटिकोटिञ्च तन्न साध्यश्चयोधिभुः

सहस्रपञ्चशः शेषश्च सेवते च जपेत्सदा । दिवानिशञ्च यंभक्त्या कल्पकोटिशतं शतम्

तन्नसाध्यो हितकरो दुःखराध्यः परात्परः । ब्रह्माब्रह्मस्वरूपं तं भजेज्जन्मनि जन्मनि

पक्वैश्चतुर्भिः सततं स्तोति नित्यं सनातनम् । वेदेऽनिर्वचनीयश्च वेदानां जनकोविधिः

विधाता फलदाता च दाता च सर्वसम्पदाम् ।

तन्न साध्यो हि भगवान् कालकालान्तकान्तकः ॥ ५१ ॥

संहारकर्त्ता जगतां फलया स्वरूपतः । सस्तौतिपञ्चवक्त्रेणकोऽन्योऽन्यस्यापिकाकथा

तत्परश्चप्रियो नास्ति वृन्दे भगवतःशृणु । सर्वशक्तिस्वरूपा सा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥

ब्रह्मस्वरूपा परमा मूलप्रकृतिरीश्वरी । नारायणी विष्णुमाया वैष्णवी सा संनातनी ।

यन्मायया जगद् भ्रान्तमनित्ये भ्रमते सदा ।

सा स्तौति भक्त्या यं देवं वृन्देऽप्यङ्गे दिवानिशम् ॥ ५५ ॥

स्तौति भक्त्या स्वशक्त्या च गजचक्रः पङ्कजनः ।

ध्यायतेऽयं गणेशश्च सर्वादी यस्य पूजनम् ॥ ५६ ॥

भगवान् सर्वदेवेशो ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः । सिद्धेन्द्रेषु च देवेन्द्रे योगीन्द्रे ज्ञानिनां गुरो

नगणेशात् परो विद्वान् गणेशश्च सुराधिपः । सरस्वतीं च यं स्तोतुमशक्ता परमेश्वरी

दिवानिशं पादपद्मं भक्त्या पद्मं न सेवते । यत्कटाक्षाज्जगत्सर्वं परिपूर्णतमं शिवम् ॥

यद्वयाद्वाति धातोऽयं सूर्यस्तपति यद्वयात् । वर्पतीन्द्रो दहत्यग्निमृत्युधरति जन्तुषु

पृथ्वी सेवया यस्य सर्वाधारावसुन्धरा । समुद्रानिश्चलाः शैला यस्य भीताश्च सुन्दरि ॥

तीर्थसारा च सा गङ्गा पवित्रा मुक्तिदायिनी । जगतां पावनी देवी यस्य पादाब्जसेवया

पवित्रा तुलसी देवी स्मरणाद्यस्य सेवनात् ।

नचब्रह्माश्च दिक्पाला भीता यस्य प्रतापवतः ॥ ६३ ॥

ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः । अन्ये ये ये सुरेशाश्च दीपाद्या मुनयस्तथा

केचित्कलास्यरूपाश्चाप्यंशरूपाश्च केतनः । केचित्कलांशाः कृष्णस्य केचिच्च परमात्मनः

पतिमिच्छसि कल्याणि प्रकृतेः परमीश्वरम् ।

गोलोके राधिकासार्थ्यो नान्येषाञ्च कदाचन ॥ ६६ ॥

मां भजस्व महामागे नृपाणामीश्वरं पतिम् । यत्पुण्यं च देवेभ्यो दैत्येभ्यश्च परानने ॥

सुखानि यानि कल्याणि त्रिषु लोकेषु सन्ति वै ।

भुञ्क्ष्व तान्येव सर्वाणि मत्प्रसादान्न संशयः ॥ ६८ ॥

सप्तसागरपादे च काञ्चनी रुचिरा परे । देवानां क्रीडनार्थाय विधात्रा निर्मिता पुरी ॥

तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह । महेन्द्रस्यप्रियचनं पुष्पोद्यानसमन्वितम् ॥ ७० ॥

गच्छ स्वर्णमयीं लट्वां नानारत्नविभूषिताम् ।

तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥ ७१ ॥

वेस्पन्दकं सुवसनं नन्दकं पुष्पभद्रकम् । तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥७२॥
 सुमेरुगह्वरं चापि क्षीरोदं चा मनोहरम् । तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥७३॥
 सत्यलोकं ब्रह्मलोकं रम्यं सद्य रहस्थलम् । तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥
 मलयं निलयं रम्यं महेन्द्रसारनिर्मितम् । सुगन्धियुक्तं सततं शुद्धश्चन्दनवायुना ॥ ७५ ॥

मालती यूथिका रम्या केतकी माधवी तथा

चारुचम्पकपुष्पाणां गन्धेन सुमनोहरम् ।

तत्रैव गच्छ भद्रं ते रम रामे मया सह ॥ ७६ ॥

पिकानां भ्रमराणाञ्च मधुरध्वनिसंयुतम् । तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥
 इन्द्रस्य वरुणाक्षैव चायोरिव यमस्य च । धनेश्वरस्य बह्वैश्च धर्मस्य शशिनस्तथा ॥

सुरम्यं लोकमेतेषां मध्ये देपि ययेच्छसि ।

तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥ ७६ ॥

रत्नद्वीपं मणिद्वीपं रम्यं चन्द्रसरोयरम् । तत्रैव गच्छ भद्रन्ते रम रामे मया सह ॥ ८०

इत्येवमुक्त्वा सम्भोक्तुं गच्छन्तं तं छलेन च ।

न वास्तवपरीक्षार्थं सतीत्यं बोधितुं व्रज ॥ ८१ ॥

उवाच सा नृपसुता कोपवक्त्रास्यलोचना ।

हितं सत्यं योगयुक्तं धर्मार्थञ्चय शक्करम् ॥ ८२ ॥

श्रीवृन्दोवाच ।

धैर्यं कुरु महाभाग श्रेष्ठो जातिषु ब्राह्मणः । ब्राह्मणानां तपोमूलं सत्यं वेदमतं धृतिः ॥

परस्त्रीसहसम्मोगः स्वभावश्चाप्यधर्मिणाम् ।

अधर्मणैव हे विप्र दुष्टो भद्राणि पश्यति ।

ततः सपत्ने जयति समूलस्थो विनश्यति ॥ ८४ ॥

पतिप्रतानां गमने यत्नात्कारेण निश्चितम् । मातृगामी भवेत्सद्यो ब्रह्महत्याशतंभवेत्

कुम्भोपाके पच्यते च यावच्चन्द्रदियाकरी । प्रदग्धस्तैलतप्तेषु न मृतः सूक्ष्मदेहतः ॥ ८६ ॥

ताडितो यमदूतेश्च लोहदण्डे न मूर्धनि । क्षणं सुखं विरं दुःखं सर्वनाशस्य कारणम् ॥

अगमयागमनं दुःखं धर्मिष्ठो नैष पाडच्छति । क्षमय गच्छ भद्रः ते ब्राह्मण ज्ञानदुर्लभः ॥

यथा दीपशिखां दृष्ट्वा कीटः पतति निश्चितम् ।

मिष्टं दृष्ट्वा वडिशिख्रे लुब्धमीनो मृगो यथा ॥ ६० ॥

यथा विपाक्तं भक्ष्यञ्च भुङ्क्ते भोक्ता बुभुक्षितः ।

गृह्णाति दुष्टो दुष्टञ्च विषकुम्भं पयोमुखम् ॥ ६१ ॥

तथा दृष्ट्वा परस्त्रीणां मुखपद्मं मनोहरम् । विनाशवीजं मोहेन भ्रान्तो भवति लम्पटः ॥

मुखञ्च सचिरं स्त्रीणां श्रोणीयुग्मं स्तनं तथा । कामाधारं नाशवीजमधर्मस्थलमेव च ॥

भगं नरककुण्डञ्च लालामूत्रसमन्वितम् । दुर्गन्धियुक्तं पापञ्च यमदण्डस्य कारणम् ॥

यथा लिङ्गं विशत्येव पापयोर्नो च योषिताम् ।

तथा पुमान् विशत्येव रोरवे च युगे युगे ॥ ६५ ॥

रहस्यञ्चापदं दृष्ट्वा मां त्वं धर्षितुमिच्छसि । अत्रैव सर्वदेवाश्च लोकपालाश्च ब्राह्मण ॥

जाड्यव्यमानो धर्मश्च साक्षां शास्ता च कर्मणाम् ।

यमश्च दण्डकर्ता च स्थापितो हरिणा स्वयम् ॥ ६७ ॥

स्वयंकृष्णश्च धर्मात्मा ज्ञानरूपोमहेश्वरः । दुर्गाबुद्धिर्मनो ब्रह्मा चेन्द्रियाणि सुरास्तथा

सर्वप्राणिषु तिष्ठन्ति साक्षिणः कर्मणां द्विज ।

क गुप्तं क रहस्यं वा ब्राह्मण ज्ञानदुर्लभ ॥ ६६ ॥

क्षमस्व गच्छ भद्रन्ते अयध्याश्च द्विजातयः । शक्ताऽहंभस्मसात् कर्तुं गच्छ परतस्यथा सुखम्

तपस्यास्तु मम गतमष्टोत्तरशतं युगम् । नास्ति गोत्रं मत्पितुश्च । माता न पिता मम

सर्वान्तरात्मा भगवान् कृष्णो रक्षति मां द्विज ।

कृष्णेन स्थापितो धर्मो माञ्च रक्षति नित्यशः ॥ १०२ ॥

आदित्यश्च तथा चन्द्रः पवनश्च हुताशनः । ब्रह्मा शम्भुर्मगधर्ता दुर्गा रक्षति मां सदा

येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरिर्कृतः । मयूराश्च त्रिता येन स मे रक्षां करिष्यति

अनाथवालवृद्धानां रक्षकाः सर्वदेवताः ।

नारीबुद्ध्या न मां धर्मस्त्यक्त्या गच्छेद्भिः सर्वदा ॥ १०५ ॥

मां मातरं परित्यज्य गच्छ घत्स यथासुखम् ।

इत्येवमुक्त्वा देवी सा तस्थौ तत्र धरा यथा ॥ १०६ ॥

गच्छन्तञ्जसम्भोक्तुं मा यातं बोधनेनच । शशापेतिच सा कोपाद् ब्रह्मयन्धोक्षयोभव
यो भव दुराचार हे पापिष्ठ क्षयो भव । पुनः शतं स्वयं सूर्यो यात्यामास यज्ञतः ॥
तस्मिन्नन्तरे तात तत्रैव जगदीश्वराः । भाजग्मुरतिसन्त्रस्ता ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।

धर्मं दृष्ट्वा कलारूपं यदुस्त्रिदशेश्वराः ॥ १०६ ॥

कृत्वा क्रोडेऽतीवहृशं कुह्ना भीतं यथा विधुम् ।

निश्चेष्टं मलिनं दग्धं सतीकोपाग्निना व्रज ॥ ११० ॥

श्रीभगवानुवाच ।

तस्य पुन्द्रे मद्भक्ते जन्ममृत्युजराहरे । धर्मं जीयय मद्भक्तं रक्ष धर्मं पतिव्रते ॥ १११ ॥

ब्रह्मोवाच ।

ध्यानतपूर्णं जगत् सर्वं विना धर्मं यभूय ह ।

कम्पितौ चन्द्रसूर्यौ च शेषश्चापि वसुन्धरा ॥ ११२ ॥

महादेव उवाच ।

तपश्च जगत्सर्वं विना धर्मेण सुन्दरि । धर्मं जीयय भद्रन्ते स्वस्ति तेऽस्तु वरानने ॥

सूर्य उवाच ।

इदं पूर्णाप्य भद्रन्ते यत्ते मनसि पाञ्चितम् । धर्मं जीयय भद्रन्ते रक्ष सृष्टिं पतिव्रते

भनन्त उवाच ।

यमे करोषि तपसा कथं धर्मं विहंसि च । धर्मं जीयय भद्रन्ते सर्वधर्मो भवेत्तव ॥ ११५ ॥

चन्द्र उवाच ।

विशङ्कवधरो धर्मस्त्वां परीक्षितुमागतः । ब्रह्मणा मेस्तिदधैव निर्दोषश्च विद्वितितः ॥

महेन्द्र उवाच ।

तपसोपाजितो धर्मो धर्मेण च कलं दृणाम् ।

कथं कलं तपसां यदि धर्मः क्षयं गतः ॥ ११७ ॥

वरुण उवाच ।

धर्मं जीवय धर्मिष्ठे धर्मं रक्ष सनातनम् । निष्फलं कर्मिणां कर्म बिना धर्मेण धार्मिके
पवन उवाच ।

जगत् पूर्तं कुरु शुभे धर्मं जीवय साम्प्रतम् । धर्मो प्रनष्टे तपसां तवापूर्वं विनङ्क्ष्यति ॥
वह्निस्त्वाच ।

स्वधर्मोपार्जनं कर्तुमागतासि च भारतम् । विहंसि धर्ममज्ञात्वा पुनर्जीवय सुन्दरि ॥
यम उवाच ।

चेदोक्तकर्मकर्तृणामहं विश्वे वरानने । धर्मानुसारात् फलदो धर्मं जीवय सत्वरम् ॥
देवानां घवनं श्रुत्वा समुत्थाय पतिव्रता । नमस्कृत्य सुरेशांश्च तानुपाच तपस्विनी ॥
वृन्दोवाच ।

अहं देव न जानामि धर्मं ब्राह्मणरूपिणम् । कृतः क्षयो मया कोपात्मां परोक्षितुमागतः
जीवयामि ध्रुवं धर्मं गुप्ताकञ्च प्रसादतः । इत्येवमुक्त्वा सा वृन्दा चेत्युवाच व्रजेश्वर
तपः सत्यं यदि मम सत्यञ्च विष्णुपूजनम् । तेन पुण्येन सद्योऽत्र द्विजो भवतु विज्वरः
यदि मे च भवेत्सत्यं व्रतं सत्यं तपः शुचिः । तेन पुण्येन सत्येन द्विजो भवतु विज्वरः
यदि नारायण.सत्यः सर्वात्मानित्यविग्रहः । ज्ञानात्मक.शिवः सत्यो द्विजो भवतु विज्वरः
ब्रह्म सत्यञ्च ते देवाः प्रकृतिः परमा यदि । यज्ञः सत्यस्तपः सत्यं द्विजो भवतु विज्वरः
इत्येवमुक्त्वा सा वृन्दा धर्मं क्रोडे चकार च । तं दृष्ट्वा च कलारूपं रुरोद रूपया सती ॥
एतस्मिन्नन्तरं मूर्त्तिधर्मभाय्यां शुचाकुला । निपत्य विष्णुपादे च शिरसा चेत्युवाच सा
मूर्त्तिरुवाच ।

हे नाथ करुणासिन्धो दीनवन्धो कृपां कुरु । तूष्णं जीवय कान्तं मे जगन्नाथ कृपामय
पतिहीना च या नारी पापिनी सा भवार्णवे । यथास्थं चक्षुर्विरतं प्राणहीना यथातनूः
मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ।

मितं वन्धुर्मितं माता सर्वदाता पतिः प्रभुः ॥ १३३ ॥

इत्येवमुक्त्वा सा देवी तत्र तस्यो रुरोद च । उवाच वृन्दांभगवान् सर्वात्मा प्रकृतः परः

श्रीभगवानुवाच ।

त्वयायुस्तपसा लब्धं यावदायुश्च ब्रह्मणः । तदेव देहि धर्माय गोलोकं गच्छ सुन्दरि
तथानया च तपसा पश्चान्माञ्छ लभिष्यसि । पश्चाद्गोलोकमागत्य धाराहे न वरानने

वृषभानुसुता त्वञ्च राधाञ्छाया भविष्यसि ।

मत्फलंशश्च रापाणस्त्वां विवाहे ग्रहिष्यति ।

मां लभिष्यसि रासे च गोपीभी राधया सह ॥ १३७ ॥

राधा श्रीदामशापेन वृषभानुसुता यदा । सा चैव वास्तवीराधा त्वञ्छायास्वरूपिणी
विवाहकाले रापाणस्त्वाञ्छायां ग्रहिष्यति ।

त्वां दत्त्वा वास्तवी राधा सान्त्वयन्ती भविष्यति ॥ १३८ ॥

राधेवेति विमूढाश्च विज्ञास्यन्ति च गोकुले ।

स्वप्ने राधापदाम्भोजं न हि पश्यन्ति बल्लवाः ॥ १४० ॥

स्वयंराधा मम क्रीडे छायाःरापाणकामिनी । विष्णोश्चवचनं श्रुत्वाद्दवापायुश्चसुन्दरि
उत्तस्थौ पूर्णधर्मश्च तत्तत्काञ्चनसन्निभः । पूर्वस्मात्सुन्दरः श्रीमान् मणनाम परात्परम्
वृन्दोवाच ।

देवाः शृणुत मद्वाक्यं दुर्लभ्यं सावधानतः ।

॥ हि मिथ्या भवेद्वाक्यं मदीयञ्च निशामय ॥ १४३ ॥

क्षयो भवेतिवाञ्छ मयोक्तं कोपभीतया । धारत्रयं पुनर्वक्तुं धारयामास भास्करः ॥
सत्ये च परिपूर्णोऽयं यथा पूर्वं यथाऽधुना । त्रिपादश्चापि त्रेतायां द्विपादो द्वापरैतथा
एकपादश्च धर्माऽयं कलेश्च प्रथमे हरे । शेषः कलापोऽंशः पुनः सत्ये यथा पुरा ॥

विनिर्गतं मम मुक्तात् क्षयस्तेन ततः क्रमात् ।

पुनरुक्ते च मनसि धारयामास भास्करः ॥ १४७ ॥

तेनैव हेतुनायञ्च कलिशेषे कलामयः । तथा शप्तः स्थितो दुर्गे कलिशेषे तथा ध्रुवम्
एतस्मिन्नन्तरे नन्द दद्मदुर्देवतारथम् । गोलोकादागतं वेगादतीवसुन्दरं शुभम् ॥ १४८ ॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं हीरहारपरिष्कृतम् । मणिमाणिक्यमुक्ताभिर्वस्त्रैश्च श्वेतचामरैः ॥

सत्ताशीतितमोऽध्यायः] * सनत्कुमारादिभिः सह कृष्णस्य समागमः * १००

विभूषितं भूषणैश्च रुचिरे रत्नदर्पणैः । नत्वा हरिं हरं वृन्दा ब्रह्माणं सर्वदेवताः ॥ १५१

समारहा रथं दृष्ट्वा गोलोकञ्च जगाम सा ।

देवा जग्मुश्च स्वस्थानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १५२ ॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
भगवन्नन्दसंवादे केदारकन्याखिवरणं नाम पञ्चशीतितमोऽध्यायः ।

सत्ताशीतितमोऽध्यायः

सनत्कुमारादिभिः सह कृष्णस्य समागमः ।

नन्द उवाच ।

त्वां ज्ञातुं न हि शक्ताश्च वेदा वेदप्रभुं स्वयम् । सुरा ब्रह्मेशोपाद्या मुनिसिद्धादयस्तथा
को भवानिति विज्ञातुं परं कीदृहलं मम । तत्सर्वं स्वात्मयाथार्थ्यं निर्जने कथय प्रभो
श्रीनारायण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र कृष्णं ब्रह्मं मुनीश्वराः । आजग्मुः सहसा घटस्रज्वलन्तो ब्रह्मतैजसा
पुलहश्च पुलस्त्यश्च क्रतुश्च भृगुराङ्गिराः । प्रचेताश्च वशिष्ठश्च दुर्वासाः कण्व एव च ॥
कात्यायनः पाणिनिश्च कणादौ गौतमस्तथा । सनकश्चसनन्दश्च तृतीयश्चसनातनः

कपिलश्चासुरिश्चैव वायुः (योदुः) पञ्चशिखस्तथा ।

विश्वामित्रो घाल्मीकिश्च कश्यपश्च पराशरः ॥ ६ ॥

पिभाण्डको मरीचिश्च शुक्रोऽनिश्च बृहस्पतिः ।

गार्ग्यश्चापि तथा घात्स्यो व्यासश्च जैमिनिस्तथा ॥ ७

मितवाक् ऋष्यशृङ्गश्च याज्ञवल्क्यः शुक्रस्तथा । सौमरिः शुद्रजटिलो भरद्वाजः सुभद्रकः
मार्कण्डेयो लोमशश्च आसुक्श्च पितृङ्गुणः । अष्टाचक्रः शतानन्दो पामदेयश्च भागुरिः
संवर्त्तश्चाप्युतप्यश्च नरोऽहश्चापि नारदः । जावालिः परशुरामश्चाप्यमस्त्यः पैल एव च

युधामन्युर्गौरमुखोऽप्युपमन्युः श्रुतश्रवाः । मैत्रेयश्च्यवनश्चैव धररुच्यर्पिरेव च ॥ ११ ॥

तान् दृष्ट्वा सहस्रोत्थाय नमस्कृत्य गुडाञ्जलिः ।

सिंहासनेषु रम्येषु घासयामास सादरम् ॥ १२ ॥

पूजयामास विधियत् कुशलप्रश्नपूर्वकम् । परस्परञ्च सम्भाष्य मध्ये कृष्ण उवाच सः
एतस्मिन्नन्तरेकृष्णस्तेजोराशिं ददर्श सः । ददृशुस्ते च मुनयोऽप्याकाशे च समुज्ज्वलम्
तेजसोऽभ्यन्तरे घत्सु कुमारं कनकप्रभम् । यथैवं पञ्चवर्षीयं नग्नं बालकमीप्सितम् ॥

आयिर्वैभूव सहसा सभामध्ये च नाख । उत्तिष्ठमानं सहसा तं दृष्ट्वा मुनिपुंगवाः ॥ १६ ॥
प्रणेमुर्मुनयः सर्वे शौरिश्च प्रणनाम तम् । सस्मितं क्षिण्णनेत्रञ्च कृत्वा युक्तिञ्च सादरम्
स सर्पानाशिर्यं कृत्वा समुयास च संसदि । उवाच तांश्च शौरिश्च भगवन्तं सनातनम्

सनत्कुमार उवाच ।

भद्रं धो मुनयः शश्वत्तपसां फलमीप्सितम् ।

कृष्णस्य कुशलप्रश्नं शिववीजस्य निष्फलम् ॥ १६ ॥

सांप्रतं कुशलं यश्च दर्शनं परमात्मनः । भक्तानुरोधाद्देहस्य परस्य प्रकृतेरपि ॥ २० ॥
निर्गुणस्य निरीदस्य सर्ववीजस्य तेजसः । भारगवतरणायैव चाधिर्भूतस्य साम्प्रतम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शरीरधारिणश्चापि कुशलप्रश्नमीप्सितम् । तत्कथं कुशलप्रश्नं मयि विप्र ॥ विद्यते ॥

सनत्कुमार उवाच ।

शरीरे प्राटुर्न नाथ सन्ततञ्च शुभाषदम् । नित्यदेहे क्षेमवीजे शिष्यप्रश्नमनर्थकम् ॥ २३ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

यो यो विग्रहकारी च स च प्राकृतिकः स्मृतः ।

देहो न विद्यते विप्र तां नित्यां प्रकृतिं विना ॥ २४ ॥

सनत्कुमार उवाच ।

रक्तपिन्दुद्वापा देहास्ते च प्राकृतिकाः स्मृताः । कथं प्रकृतिनाथस्य पीजस्य प्राटुर्न वपुः
सर्वपीजस्य सर्वादिर्नृपाश्च भगवान् स्ययम् । सर्वेषामपताराणां प्रधानं पीजमव्ययम्

कृत्वा वदन्ति वेदाश्च नित्यं नित्यं सनातनम् ।

उयोतिःस्वरूपं परमं परमात्मानमीश्वरम् ॥ २७ ॥

मायया सगुणञ्चैव मायेशं निर्गुणं परम् । प्रवदन्ति च वेदाङ्गास्तथा वेदविदः प्रभो ।
श्रीकृष्ण उवाच ।

साम्प्रतं वासुदेवोऽहं रक्तवीर्याश्रितं विभुः । कथं न प्राकृतो विप्र शिवप्रश्नमभीप्सितम्
सनत्कुमार उवाच ।

वासुः सर्वनिवासश्च विश्वानि यस्य लोमसु । तस्य देवः परं ब्रह्म वासुदेव इतीरित
वासुदेवेति तन्नाम वेदेषु च चतुर्थं च । पुराणेष्वितिहासेषु यात्रादिषु च दृश्यते ॥ ३१ ॥

रक्तवीर्याश्रितो देवः क ते वेदे निरूपितः । साक्षिणो मुनयश्चैव धर्मः सर्वत्र पथ च ।
साक्षिणो मम वेदाश्च रविचन्द्रौ च साम्प्रतम् ॥ ३२ ॥

भृगुरुवाच ।

सत्यं वदसि विप्रेन्द्र त्वमेव वैष्णवाग्रणीः । स्वागतं कुशलं शश्वर्त्तिक निमित्तमिहागतः
सनत्कुमार उवाच ।

श्रूयता मुनयः सर्वे श्रूयतां कृष्ण साम्प्रतम् । अहो येन निमित्तेन चातिशीघ्रमिहागतः
श्रीकृष्ण उवाच ।

भगवन् सर्वधर्मज्ञ किम्निमित्तमिहागतः । सर्वं जानासि सर्वज्ञ त्वमेव विदुषां वर ॥
सनत्कुमार उवाच ।

धन्योऽसि भगवन् शश्वत्मान्योऽसि जगतामपि ।

सर्वेश्वरेश्वरोऽसि त्वं त्वत्परो नास्ति विश्वतः ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

यशानाञ्च वतानाञ्च तपस्यानां द्विजेश्वर । सततं फलदाताऽहं दक्षिणाभिः सहेति च
इति श्रुत्वा कुमारश्च जवेन प्रययौ च ते । मत्वाऽऽश्चर्यञ्च हवनं चारयामासतेऽपितम्
ऋषय ऊचुः ।

हे सिद्धेन्द्र महाभाग-कुमार करुणामय । का शङ्कितकथा प्रोक्ता भगवत्कृष्णसन्निधौ

न पुत्र दृष्टमाश्चर्यं श्रुतं किमपि कुत्रचित् । अतीव कृत्वा विस्तीर्णमस्माकं वक्तुमर्हसि
तस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा पार्वत्या सह शङ्करः । अनन्तश्चापि धर्मश्च श्रीसूर्यश्च निशाकरः ॥

आदित्या वसवो रुद्रा दिक्पालाद्याश्च देवताः ।

श्रीकृष्णं सहस्रोत्थाय सम्भाव्य च पृथक् पृथक् ॥ ४२ ॥

ध्रुवर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तिः । प्रणेमुर्हपयः सर्वे शेषं शम्भुं विधिं शिवाम्
रस्पर्शं सम्भाषा चभूष द्विजदेवयोः । समुवासासने मध्येऽकुमारः कनकप्रभः ॥

कथां कथितुमारेभे संसदि द्विजदेवयोः ॥ ४४ ॥

५१२

सनत्कुमार उवाच ।

एषा शतञ्च गोलोके न दृष्टो राधिकापतिः । ततो गतञ्च वैकुण्ठे तत्र नास्ति चतुर्भुजः
तो गतश्च क्षीरोदस्तत्र नास्ति हरिः स्वयम् । परिश्रान्तो विपण्णश्च स्नानक्षीरोदधेस्तटे
विस्तीर्णं बालुकामध्ये कच्छपः शतयोजनः ।

भीतश्च कम्पितस्तत्र द्रुष्टो दुःखी च शुष्कितः ॥ ४७ ॥

नेः सारितो राघवेण मीनेन च महात्मना । धन्योऽसीति मयोक्तश्च नाहं धन्य उवाच सः
क्षीरोदः सागरो धन्यो जन्तवो यत्र महिषाः । मत्तो महत्तराश्चापि ह्यसंख्याश्च महामुने
मवान् धन्योऽसि क्षीरोद तेनोक्तो नाहमेव च । धन्या घसुन्धरादेवो यत्रैव सप्तसागराः

धन्याऽसि घसुधेत्युक्त्वा नाहमेवेत्युवाच सा ।

धन्योऽनन्तो ममाधारः कृष्णांशो नागराङ्घ्रिभुः ॥ ५१ ॥

सहस्रमूर्त्तां मध्येऽहं मूर्त्तिं शूर्पे च सर्वपः । धन्योऽसि शोपेत्युक्तोऽयं धन्यो नाहमुवाच वै
धन्यः कूर्मो ममाधारो गच्छ तत्रैव वै मुने ! ।

धन्योऽसि कुर्मेत्युक्तोऽयं नाहं धन्योऽस्मि वै मुने ! ॥ ५३ ॥

पायुनाधार्यमाणोऽहं मत्तो धन्यतमश्च सः । धन्योऽसीत्युक्तः पवनो धन्यो नाहमुवाच सः
धन्यश्च भगवान् ब्रह्मा विधाता जगतामपि ॥ ५४ ॥

धन्योऽसि तत्र घाता च धन्यो नाहमुवाच सः ।

धन्यो महेश्वरो देवो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥ ५५ ॥

सत्ताशीतितमोऽध्यायः]

* दक्षिणाकालनियमवर्णनम् *

१०१३

सर्वाराध्यः सर्वपूज्यो धर्मरूपः सनातनः । कालकालश्च संहर्ता स्वयं मृत्युञ्जयः प्रभुः
धन्योऽसि तत्र शम्भुश्च धन्यो नाहमुवाच सः ॥ ५६ ॥

सर्वादौ पूजनं यस्य ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः ।

धन्यो गणेश्वरो देवो देवानां प्रवरः परः ॥ ५७ ॥

सिद्धेन्द्रेषु मुनेन्द्रेषु देवेन्द्रेषु श्रुतौ श्रुतम् । योगीन्द्रेषु च प्राज्ञेषु न गणेशात् परः पुमान्
निम्नगास्तु यथा गङ्गा तीर्थेषु पुष्करं यथा । वेदप्रणिहितो धर्मोऽहं धर्मस्तद्विपर्ययः ॥

वेदो नारायणः साक्षादयं पूज्या व्यवस्थया ।

तस्मान्छास्त्राणि सर्वाणि पुराणानि च सन्ति वै ॥ ६० ॥

तस्मान्निरूपितो धर्मो चेतिहासश्च संहिताः ।

तस्माद् धन्याश्च ते वेदा वदन्त्यत्र मनीषिणः ॥ ६१ ॥

यूपं धन्याश्च मान्याश्चेत्युक्ता वेदा मया ततः । ऊजुस्तेन धन्यं धन्या यज्ञसङ्घश्चाप्रतम्
धन्यं व्यवस्थाकर्तारो यज्ञीधः फलदः स्वयम् ।

तस्माद्धन्य स एवापि गच्छ गच्छ महामुने ॥ ६३ ॥

धन्योऽसि यज्ञसङ्घोऽसौत्युक्तस्तत्र मया विभो ।

ऊजुस्ते न धन्यं धन्या धन्यं कर्म शुभं मुने ॥ ६४ ॥

शुभकर्मासि धन्यं त्वं नाहं धन्यमुवाच तत् । कर्मणां फलदातारो कर्महेतुश्च साम्प्रतम्
धातुर्विधाता भगवान् सर्वादिः सर्वकारकः ।

श्रीकृष्णः परमात्मा च धन्यो मान्यश्च निश्चितम् ॥ ६६ ॥

धर्मालयं ततो गत्वा न दृष्ट्वा जगदीश्वरम् । मथुरामगतं द्रष्टुं परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥
यज्ञानां तपसां चैव यतानां शुभकर्मणाम् । ईश्वरं फलदातारं परमात्मानमेव च ॥ ६८ ॥

कारणं कारणानाञ्च ग्रन्थादीनां पुरःसरम् ।

धन्योऽसीति मयोक्तश्च दक्षिणाभिः सहेति च ॥ ६९ ॥

इत्युक्तेन भगवता कथितं सर्वकारणम् । दक्षिणाभिश्च फलदो हतयज्ञो ह्यदक्षिणः ॥
दक्षिणा विप्रमुद्दिश्य तत्काले तु न दीयते । एकरात्रे व्यतीते तु तद्दानं द्विगुणं भवेत्

ब्रह्मस्वरूपां परमां सर्वमोहनिवृत्तनीम् ॥ २ ॥

मुक्तिप्रदां महाभागां विष्णुमायां सनातनीम् । त्रिपुरस्य वधे घोरे महायुद्धे भयाकुले ।
येन स्तोत्रेण शम्भुश्च तथा दैत्यं जघान सः ॥ ३ ॥

स्तोत्रराजं प्रदास्यामि सर्वमोहनिवृत्तनीम् । सर्ववाञ्छाप्रदं नन्द श्रूयतामत्र संसदि ।
श्रीनन्द उवाच ।

सर्वविघ्नविनाशाय दुःखप्रशमनाय च । बिभूतये च यशसे नृणां वाञ्छितसिद्धये ॥ ५ ॥
स्तोत्रमेकं महादेव्या जगन्मातुर्जगत्प्रभो । परं दुर्गतिनाशिन्या गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥
देहि मह्यं विनीताय भक्त्या भक्तवत्सल । वेदानां जनकस्त्वञ्च निर्गणश्च परात्परः ॥

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु वक्ष्यामि वैश्वेन्द्र स्तोत्रं यत्परमाद्भुतम् । सर्वविघ्नविनाशार्थं मोहपाशनिवृत्तनम
रणत्रमतेन विभुना शङ्करेण पुराकृतम् । नारायणोपदेशेन प्रेरितेन च ब्रह्मणा ॥ ६ ॥
शत्रुप्रस्तं शिवं दृष्ट्वा स ब्रह्माणमुवाच ह । उवाच शङ्करं ब्रह्मा रथस्थं पतितं रणे ॥
शूरसङ्कटशान्त्यर्थं दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् । मूलप्रकृतिमाद्यां ता स्तोहि ब्रह्मस्वरूपिणीम्
हरिणाप्रेरितोऽहं च त्वा वक्ष्यामि सुरेश्वर । विना शक्तिसहायेन को वा कं जेतुमोश्वरः
ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा दुर्गां सस्मार शङ्करः । पुटाञ्जलिपरोभूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः
स्नातः पादौ च प्रक्षाल्य धृत्या धीते च वाससी ।

भाचान्तः कुशहस्तश्च शुचिर्विष्णुं च संस्मरन् ॥ १४ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

रक्ष रक्ष महादेवि दुर्गे दुर्गतिनाशिनि । मां भक्तमनुरक्तञ्च शत्रुप्रस्ते कृपामयि ॥ १५ ॥
विष्णुमाये महाभागे नारायणि सनातनि । ब्रह्मस्वरूपे परमे नित्यानन्दस्वरूपिणि ॥ १६ ॥
त्वञ्च ब्रह्मादिदेवानामम्रिके जगदम्रिके । त्वं साकारे च गुणतो निराकारे च निर्गुणान्
मायया पुरुषस्त्वञ्च मायया प्रकृतिः स्वयम् । तयोः परं ब्रह्म परं त्वं विमर्षि सनातनि
वेदानां जननी त्वञ्च साधित्री च परात्परा ।
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः सर्वसम्पत्स्वरूपिणी ॥ १६ ॥

मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदे कामिनी शेषशायिनः ।

स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीस्त्वं राजलक्ष्मीश्च भूतले ॥ २० ॥

नागादिलक्ष्मीः पाताले गृहेषु गृहदेवता । सर्वशस्यस्वरूपा त्वं सर्वैश्वर्यविधायिनी ॥
 रागाधिष्ठातृदेवी त्वं ब्रह्मणश्च सरस्वती । प्राणानामधिदेवी त्वं कृष्णस्य परमात्मनः ॥
 गोलोके च स्वयं राधा श्रीकृष्णस्यैव वक्षसि । गोलोकाधिष्ठातृदेवी वृन्दावनवने वने
 श्रीरासमण्डले रम्या वृन्दावनविनोदिनी । शतशृङ्गाधिदेवी त्वं नाम्ना चित्रावलीति च
 वक्षकन्या कुत्र कल्पे कुत्र कल्पे च शैलजा । देवमातादितिस्त्वञ्च सर्वाधारा वसुन्धरा
 त्वमेव गङ्गा तुलसी त्वञ्च स्वाहा स्वधा सती ।

त्वदंशांशाशकलया सर्वदेवादियोपितः ॥ २६ ॥

स्त्रीरूपञ्चातिपुरुष देवि त्वञ्च नपुंसकम् । वृक्षाणां वृक्षरूपा त्वं सृष्टा बाङ्गुरूपिणी ॥
 बह्वी च दाहिका शक्तिर्जले शैत्यस्वरूपिणी । सूर्यतेजःस्वरूपा च प्रभारूपा च सन्ततम्
 गन्धरूपा च भूमौ च आकाशे शब्दरूपिणी ।

शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मसङ्के च निश्चितम् ॥ २६ ॥

सृष्टी सृष्टिस्वरूपा च पालने परिपालिका । महामारी च संहारे जले च जलरूपिणी ॥
 क्षुत्वं दया त्वं निद्रा त्वं तृष्णा त्वं बुद्धिरूपिणी ।

तुष्टिस्त्वञ्चापि पुष्टिस्त्वं श्रद्धा त्वञ्च क्षमा स्वयम् ॥ ३१ ॥

शान्तिस्त्वञ्च स्वयं भ्रान्तिः कान्तिस्त्वं कीर्त्तिरेव च ।

लज्जा त्वञ्च तथा माया भुक्तिमुक्तिस्वरूपिणी ॥ ३२ ॥

सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं सर्वसम्पत्प्रदायिनी ।

वेदेऽनिर्घवनीया त्वं त्वां न जानाति कश्चन ॥ ३३ ॥

सहस्रधन्वस्त्वां स्तोतुं न च शकः सुरेश्वरि ।

वेदा न शकाः को विद्वान् न च शका सरस्वती ॥ ३४ ॥

स्वयं विधाता शक्तो न न च विष्णुः सनातनः ।

किं स्तौमि पञ्चधन्वरेण रणत्रस्तो महेश्वरि ॥ ३५ ॥

रूपा कुरु महामाये मम शत्रुक्षयं कुरु । इत्युक्त्वा च सकलं स्थस्थे पतिते रणे ॥३६॥
 आपिर्भूय सा दुर्गा सूर्यकोटिसमप्रभा । नारायणेन रूपया प्रेरिता परमात्मना ॥३७॥
 शिवस्य पुरतः शीघ्रं शिवाय च जयाय च । इत्युवाच महादेवो मायाशक्त्याऽसुरजति
 श्रीदुर्गोवाच ।

घरं कृणीष्य भद्रं ते यत्ते मनसि चाञ्जितम् । भवान् घरं सुराणां जय तु भवद्दाम्यहम्
 श्रीमहादेव उवाच ।

क्षयो भवतु दैत्यस्य इति मे परमेश्वरि । देहोति चाञ्जितं दुर्गे परमाये सनातनि ॥
 भगवत्युवाच ।

हरिस्मर महाभाग जयदैत्य जगद्गुरो । स्वयं विधाता भगवान् स्वमेव उपातिराधर
 एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्गुरुयो बभूव ह । द्वारं कल्पया मूर्त्तां शूराणां रथं विभु ॥
 ऊर्ध्वं चक्रमधोऽग्रं प्रवृत्तिं चकार स । शस्त्रं ददौ मन्त्रपूतमुद्धारं ततो रथम् ॥
 शिव शस्त्रं गृह्णत्या च ध्यात्वा विष्णुं महेश्वरीम् ।

जघान त्रिपुरं शीघ्रं स पपात महीतले ॥ ४४ ॥

तुष्टुं शत्रून् देवाभ्यर्धुं पुण्यवर्णनम् । दुर्गां तस्मै ददौ शूरा विनात विष्णुस्य च ॥
 प्रभा शुभाशिवश्चैव मुनयश्चापि हविता । ननूतुर्वपता सयां जगुर्गन्धर्वविभरा ॥
 एतस्मिन्नन्तरे तात स्मरराजप्रनुत्तमम् । पिबन् पिबन्वरं शीघ्रं शत्रुमहारकारणम् ॥
 परमैश्वर्यजनकं तुष्टुं परमं शुभम् । निषांजमोक्षश्चैव हस्तिनिग्रहं भूषम् ॥४५॥
 गोलोचपासद्वयं सर्वसिद्धिप्रदं परम् । स्तोत्रराजप्रणयनात् प्रसन्ना पारंगता सदा ॥
 लोभमोहकामरोधकर्म्मूलनिवृत्तनम् । एतदुत्तिकरश्चैव जन्ममृत्युपिनाशम् ॥ ४६ ॥
 धनपुत्रप्रियाभूमिसर्पसंग्रहप्रदं नृणाम् । शोचदुःखहरश्चैव सर्वसिद्धिप्रदं परम् ॥ ४७ ॥
 स्तोत्रराजप्रणयनात् महापत्न्या प्रभूयते । कथनान्मुच्यते दुर्गा नयान्मुच्यते निधिभम्
 रोगाग्निमुच्यते रोगा दग्धिभ्य धना नरे ॥

रापाग्निभ्ये न गृणो मयः पीतो महापथे ॥ ४३ ॥

दसुप्रभो त्रिप्रभो दिव्यज्जुसमर्षितः । स्तोत्रजानेन वेदेन्द्रे कल्याणं नरो मेदः

तेजसानां यथा रत्नमाश्रमाणां द्विजो यथा । नदीनाञ्च यथा गङ्गा मन्त्राणां प्रवरो यथा
 तुलसी सर्वपत्राणां धराणाञ्च वसुन्धरा पुष्पाणां पारिजातञ्च काष्ठानां चन्दनं यथा
 विष्णुपूजा च तपसां व्रतेष्वेकादशी यथा । ज्ञानिनाञ्च यथा शम्भुः सिद्धानाञ्च गणेश्वरः
 देवानाञ्च यथा विष्णुर्वेदा शास्त्रेषु तन्त्रतः । देवीनाञ्च यथा दुर्गा शान्तानां कमला यथा
 सरस्वती च विदुषां राधिका सुन्दरीषु च । तथा स्तोत्रेष्विदं स्तोत्रं नातः परतरं प्रज
 पुरा दत्तं ब्रह्मणे च पुष्करे सूर्यपर्वणि । दैत्यप्रस्ताय भीताय सर्वदुर्गहरं परम् ॥ ६० ॥
 शिवाय शत्रुप्रस्ताय ददौ ब्रह्मा महाह्वया । शिवञ्च सनकादिभ्यः पुरा दुर्वाससे ददौ ॥
 सनत्कुमारो भगवान् कृपया गौतमाय च । पुलहाय पुलस्त्याय ददौ चाङ्गिरसे मुदा ॥
 तथा चन्द्राय सूर्याय सूर्य्यश्वापि यमाय च । यमश्च चित्रगुप्ताय कृपया च पुरा ददौ
 नित्यं पठिष्यसि स्तोत्रं गोलोकगमनाय वै ।

साक्षात्पश्यसि भो तात तामेव पार्वतीमिह ॥ ६४ ॥

यस्मै कस्मै न दातव्यं पापिने गोपनं कुरु । नारायणस्य भक्ताय शान्ताय विदुषे तथा
 सर्वज्ञाय च विप्राय प्रदातव्यं प्रयत्नतः । विप्राय वृषबाहाय वृषलीपतये तथा ॥ ६६ ॥
 शूद्राणां सूपकाराय शूद्रध्राद्धाभोजिने । कन्याविक्रयिणे चैव ब्राह्मणाय विशेषतः ॥
 सर्वसिद्धिञ्च लभते सिद्धस्तोत्रो भवेद्यदि । दशायुतजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः ॥
 अग्निस्तम्भं जलस्तम्भं मृत्स्तम्भं मनसस्तथा । अश्वमेधसहस्राच्च पृथिव्याश्च प्रदक्षिणात्
 स्नानाच्च सर्वतीर्थानां स्तोत्रमेतच्च पुण्यदम् ॥ ६६ ॥

दत्तं तुभ्यं मया तात मम प्राणसमं व्रज । स्तवनं कुरु पार्वत्याश्चेदानीं मम संसदि ॥
 श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा नन्दस्तुष्टाय पार्वतीम् ।

स्तोत्रेणानेन विप्रेन्द्र सर्वसम्पत्प्रदायिनीम् ॥ ७१ ॥

घरं तस्मै ददौ दुर्गा गोलोकवासमीप्सितम् । दुर्लभं परमं ज्ञानं वेदे यत्र श्रुतं मुने ॥
 राजेन्द्रत्वं गोकुले च कृष्णभक्तिं सुदुर्लभाम् । तद्वास्यञ्चाप परतो महत्त्वं सिद्धमेव च
 घरं दत्त्वा ययौ दुर्गा संभाष्य शम्भुना सह ।

जगमुर्दधाश्च मुनयः स्तुत्वा च नन्दनन्दनेम् ॥ ७४ ॥

नवाशीतितमोऽध्यायः] * नन्दं प्रति श्रीकृष्णवाक्यम् *

१०१

उवाच नन्दं श्रीकृष्णो ब्रज नन्दं व्रजान्वितः । प्रहृष्टस्त्यक्तमोदश्च बोधेन दुर्लभेन च ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मपण्डे
भगवन्नन्दसंवादे दुर्गाया वरप्रदानं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ।

नवाशीतितमोऽध्यायः

नन्दम्रति श्रीकृष्णवाक्यम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

गच्छ गच्छ गृहं गच्छ व्रजराज व्रजं व्रज । सघंतत्त्वं त्यया प्राप्तं द्रष्टुं मुनयः सुराः

धृतं मे धन्यमाख्यानं नानाख्यानं सुदुर्लभम् ।

दुर्गायाः स्तोत्रराजश्च जन्मपापनिवृत्तनम् ॥ २ ॥

स्थितं तत्ते निगदितं ह्येण च सुरेन च । यत् कृतं बालभावेन चापराधश्च तत्क्षम ॥ ३ ॥

यत् सुखं न कृतं तात पित्रोश्च नृपमन्दिरे । कृतं सुखं तत्परश्च स्वर्गादपि सुदुर्लभम् ॥

मदीयं प्रियवाक्यश्च प्रहृत्यं धितयं भयम् । परिहासं यद्भुतरं यशोदां गोपिकागणम् ॥ ५ ॥

बालकानां समूहश्च राधाश्चापि विशेषतः । एकत्र च स्थितं तेषु वन्धुवर्गेषु कर्मणा ॥ ६ ॥

इहेवापि सुखं भुक्त्वा गच्छ गोलोकमुत्तमम् ।

सादं यशोदया तात रोहिण्या गोपिकागणैः ॥ ७ ॥

गोपानां बालकैः सादं नृपमानेन गोपकैः

राधामात्रा कलावत्या राधया सह यास्यसि ॥ ८ ॥

स्थानां शतलक्षश्च गोलोकादागतं पितः । भूमूल्यरत्ननिर्माणं ह्योदहारपरिप्लवम् ॥ ९ ॥

मणिमणिमयमुकानां मालाजालविभूषितम् ।

परिशुद्धांगुली रम्यैराच्छिन्नं पीतवर्णकैः ॥ १० ॥

शर्पदप्रवरै रम्यैर्वेष्टितं श्वेतचामरैः । सद्रत्नदर्पणैरम्यैर्गोपिकामिश्र गोपकैः ॥ १० ॥

वेष्टितञ्च तदास्त्र्यक्तौतुकाद्यास्यसि ध्रुवम् ॥ ११ ॥

त्यसया च पार्थिवं देहं दिव्यदेहं विधाय च ।

अयोनिसम्भवा राधा राधामाता कलाचती ॥ १२ ॥

यास्यत्येष हि तैनैव नित्यदेहेन निश्चितम् ।

पितृणां मानसी कन्या धन्या मान्या कलाचती ॥ १३ ॥

धन्या च सीतामाता च दुर्गामाता च मेनका ।

अयोनिसम्भवा दुर्गा तारा सीता च सुन्दरी ॥ १४ ॥

अयोनिसम्भवास्ताश्च धन्या मेना कलाचती । इत्येवं कथितं सात गोपनीयं सुदुर्लभम्

वरौऽयं दत्तस्तुभ्यञ्च मया च दुर्गया तथा ॥ १५ ॥

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच ब्रजेश्वरः । पुनरेव जगन्तार्यं तद्वक्तो भक्तवत्सलम्
नन्द उवाच ।

युगानाञ्च चतुर्णाञ्च यं यं धर्मं सनातनम् । क्रमेण कृष्ण विस्तीर्णं कृत्वा मां कथय प्रभो
कलिशये भवेद्यद्गुणदोषं कलेस्तथा । का गतिर्वा पृथिव्याश्च धर्मस्य प्राणिनां तथा
नन्दस्य वचनं श्रुत्वा हृष्टः कमललोचनः । कथां कथितुमारम्भे विचित्रां मधुरान्विताम्

इति श्रीमहावैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

भगवन्मन्दसंवादे नवाशीतितमोऽध्यायः ।

नवतितमोऽध्यायः

चतुर्गुणानां धर्मादिकथनम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु नन्व प्रवक्ष्यामि सानन्दमानसं यथा । कथां रम्यां सुमधुरां पुराणेषु परिष्कृताम्

नवतितमोऽध्यायः] ।

* चतुर्युगानां धर्मादिकथनम् *

१०२१

परिपूर्णतमो धर्मो धार्मिकाश्च कृते युगे । परिपूर्णतमं सत्यं परिपूर्णतमा दया ॥ २ ॥
धर्तृवप्रज्वलद्रूपा वेदाश्चत्वार एव च । वेदाङ्गाश्चापि विविधाश्चेतिहासश्च संहिताः ॥

पुराणानि सुरम्याणि पञ्चरात्राणि पञ्च च ।

रुचिराणि सुभद्राणि धर्मशास्त्राणि यानि च ॥ ४ ॥

विप्रा वेदविदः सर्वे पुण्यवन्तस्तपस्विनः । नारायणं ते ध्यायन्ते तन्मनस्का जपन्ति च
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याश्चतुर्वर्णाश्च वैष्णवाः । शूद्रा ब्राह्मणभृत्याश्च सत्यधर्मपरायणाः
राजानो धार्मिकाश्चैव प्रजापालनतत्पराः । गृहन्त्येव प्रजानाञ्च योदृशांशकलां नृपाः
करशून्याश्च विप्राश्च पूज्याः स्वच्छन्दगामिनः ।

सन्ततं सर्वशस्याह्वया रक्षाधारा यत्सुन्धरा ॥ ८ ॥

गुरुभक्ताश्च शिष्याश्च पितृभक्ताः सुतास्तथा । योषितः पतिभक्ताश्च पतिव्रतपरायणाः
ऋतौ सम्भोगिनः सर्वे न स्त्रीलुब्धा न लम्पटाः ।

न भयं दस्युर्चीर्याणां न तत्र पारदारिकाः ॥ १० ॥

तरय. पूर्णफलिनः पूर्णक्षीराश्च धेनवः । यलयन्तो जनाः सर्वे दीर्घाः सौन्दर्यसंयुताः ॥
लक्षवर्षायुषः केचित् पुण्यवन्तो ह्यरोगिनः ।

यथा विप्रा विष्णुभक्तास्त्रिवर्णा विष्णुसेविनः ॥ १२ ॥

जलपूर्णा नदा नद्यः सन्ततं कन्दरास्तथा । तीर्थपूर्णाश्चतुर्वर्णास्तपःपूता द्विजातयः ॥
मनःपूताश्च निगिला खलहीनं जगत्त्रयम् । सत्कीर्तिपरिपूर्णञ्च यशस्यं मङ्गलान्वितम्
पितरः सर्वकालेषु तिथिकालेषु देवताः । सर्वकालेष्वतिथयः पूजिताश्च गृहे गृहे ॥ १५ ॥
त्रिवर्णा विप्रभक्ताश्च विप्रभोजनतत्पराः । ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रमनूपरमकण्टकम् ॥ १६ ॥
नारायणोत्कीर्तनेन हर्षयुक्तास्तदुत्सवे । न देवानां द्विजानाञ्च विदुषां तत्र निन्दकाः
नात्मप्रशंसकाः केचित्सर्वे परगुणोत्सुकाः । न शत्रयो जनानाञ्च सर्वे सर्वहितैषिणः ॥

पुरषा योषितश्चापि न हि मूर्खाश्च पण्डिताः ।

न दुःखिनो जनाः सर्वे सर्वेषां रक्षामन्दिरम् ॥ १९ ॥

मणिमार्णयपरत्नोद्यरत्नस्वर्णसमन्वितम् । न भिक्षुका न रोगार्ताः शोकहीनाश्च हर्षिता

न हि भूषणहीनाश्च नरा नार्यश्च केचन । न पापिनो न धूर्ताश्च न ध्रुवार्ता न कुत्सिताः
जराहीनाः प्राणिनश्च शश्वद्यौवनसंस्थिताः । आधिभ्याधिचिहीनाश्च निर्विकाराश्च देहिनः
यदुक्तो वै सत्ययुगे धर्मः सत्यं दयादिकम् । पादहीनश्च त्रेतायां सत्याह्नं द्वापरेऽपि च
धर्मकपाश्च प्रथमे कलेश्चापि कृशो यलः । दुष्टानां दस्युर्चीर्याणामङ्कुरः प्रभवेद् व्रज ॥

अधर्मनिरताः केचिद्वीताः सङ्गोपिनस्तथा ।

भीता गुप्ताश्च पुंश्चक्षयो भीताश्च पारदारिकाः ॥ २५ ॥

धर्निष्ठानां भयं शश्वद्धर्मिष्ठाश्च कम्पिताः । स्वल्पधर्मरता भूपाः स्वल्पवेदरता द्विजाः ॥
व्रतधर्मरताः केचित्सर्वे स्वच्छन्दगामिनः ।

यावत्तिष्ठन्ति तीर्थानि यावत्तिष्ठन्ति साधवः ॥ २७ ॥

यावत्तिष्ठन्ति ग्रामाणां देवाः शास्त्राणि पूजनम् ।

तावत्किञ्चित्तपः सत्यं स्वर्गधर्मांश एव च ॥ २८ ॥

कलेर्दोषनिधेस्तात गुण एको महानपि ।

मानसश्च भवेत् पुण्यं सुकृतं न हि दुष्कृतम् ॥ २९ ॥

तीर्थादिके गते तात नष्टो धर्मांश एव च । कलारूपश्च धर्मश्च यथा कुह्नां निशाकरः ॥

नन्द उवाच ।

तीर्थान्येतानि सर्वाणि तिष्ठन्त्येव कियद्दिनम् ।

साधवो ग्राम्येष्वाश्च शास्त्राण्येतानि वत्सक ! ॥ ३१ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

कलौ दशसहस्राणि हरिस्तिष्ठति मेदिनीम् ।

देवानां प्रतिमा पूज्या शास्त्राणि च पुराणकम् ॥ ३२ ॥

तदर्धमपि तीर्थानि गङ्गादीनि सुनिश्चितम् । तदर्धं ग्रामदेवाश्च वेदाश्च चिदुपामपि ॥ ३३ ॥

अधर्मपरिपूर्णश्च तदन्ते च कलौ पितः । एकवर्णा भविष्यन्ति घर्णाश्चत्वार एव च ॥

न मन्त्रपूतोद्गाहश्च न हि सत्यं न च क्षमा । ख्यांस्त्रीकाररतो नित्यं ग्राम्यधर्मप्रधानतः

न यज्ञसूत्रं तिलकं ब्राह्मणानाञ्च नित्यशः । सन्ध्याशास्त्रचिहीनाश्च विप्रवशा श्रुता अपि

नवाशीतितमोऽध्यायः] * कलिधर्मादिकथनम् *

१०२३

सर्वैः सार्धञ्च सर्वेषां भक्षणं नियमच्युतम् । अमक्ष्यभक्षा लोकाश्च चतुर्वर्णाश्च लम्पटा
नारीषु न सती काचित् पुंश्चली च गृहे गृहे ।

करोतिः तर्जनं कान्तं भृत्यतुल्यञ्च कम्पितम् ॥ ३८ ॥

जारायदस्वा मिष्टान्तं ताम्बूलञ्चस्त्रचन्दनम् । न ददात्येव चाहारं स्वामिने दुःखिनेपित
पुत्रेण भर्त्सितस्तातः शिष्येण भर्त्सितो गुरुः ।

प्रजामिस्ताडितो भूपो भूपेन ताडिताः प्रजाः ॥ ४० ॥

वस्युचोरेश्च दुष्टैश्च शिष्टाश्च परिपीडिताः । शस्यहीना च वसुधा क्षीरहीनाश्च धेनवः ।
स्वहपक्षीरे घृतं नास्ति नयनीतञ्च नित्यशः ।

सत्यहीना जनाः सर्वे नित्यं मिथ्या वदन्ति च ॥ ४२ ॥

शोचसन्ध्याशास्त्रहीना ब्राह्मणा वृषपाहकाः । सूपकाराश्च शूद्राणां शूद्राणां शवदाहका
शूद्रास्त्रीनिरताः शश्वच्छूद्रा विप्रयधूराः । खादन्ति यस्य विप्रस्य भक्ष्यञ्च परिपाचका

मातुः परां तस्य पत्नीं-शूद्रा गृह्णन्ति लम्पटाः ।

भृत्यश्च हत्वा राजानं स्वयं राजा भविष्यति ॥ ४५ ॥

नारी हत्वा पतिं कामाद्व्रजेज्जायञ्च कौतुकात् ।

पुत्रश्च पितरं हत्वा स्वयं भूपो भविष्यति ॥ ४६ ॥

सर्वे स्वच्छन्दनिरताः शिशनोदरपरायणाः । वङ्गुरा व्याधियुक्ताश्च कुतिसताश्च कुचैलकाः ।
विश्रुण्णमन्त्रलिप्ताश्च मिथ्यामन्त्रप्रचारकाः ।

जातिहीनाश्च गुरवो वयोहीनाश्च निन्दकाः ॥ ४८ ॥

राजानश्चापि म्लेच्छाश्च यचना धर्मनिन्दकाः ।

सत्कीर्तिमपि साधूनां कुर्वन्त्युन्मूलनं मुदा ॥ ४९ ॥

पितृदेवद्विजातीनामतिथोनाञ्च नित्यशः । पूजा नास्ति गुरूणाञ्च पित्रोश्च पूजनंस्त्रियः
स्त्रीवन्धूनां गौरवञ्च स्त्रीणाञ्च सततं पितः ।

चोरः सत्कुलजातिश्च ब्राह्मणो देवहारकः ॥ ५१ ॥

मानं वहन्ति लोभेन युगे धर्मेण कौतुकात् । देवायतनहीनञ्च जगत्सर्वं भयाकुलम् ॥

वसुदेवउवाच ।

नन्द त्वं बलवान्ज्ञानी सद्वन्द्यश्च सखा मम । त्यज्य मोहं गृहं गच्छ वत्सस्तेऽयं यथामम
द्वारभूता गोकुलाश्च मथुरा नास्ति बान्धवः । महोत्सवे सदानन्दे नन्द द्रक्ष्यसि पुत्रकम्
श्रीदेवक्युवाच ।

यथायमावयोः पुत्रस्तथैव भवतो भ्रुवम् । सालसः केन हे नन्द शुचा देवो हि लक्ष्यते
एकादशाब्दं सवलं स्थित्वा ते मन्दिरे सुखम् । कथं स्वल्पदिने नैव शोकप्रस्तो भविष्यसि
तिष्ठ पुत्रेण सार्द्धञ्च मथुरायां कियद्दिनम् । पूर्णचन्द्राननं पश्य जन्म त्वं सफलं कुरु ॥
श्रीभगवानुवाच ।

गच्छोद्धव सुखं भद्रं भविष्यति तव प्रियम् । प्रहर्षं गोकुलं गत्वा यशोदां रोहिणीप्रसूम्
गोपबालसमूहञ्च राधिका गोपिकागणम् ।

प्रबोधयाध्यात्मिकेन मदत्तेन च शुष्कच्छिदा ॥ ११ ॥

नन्दस्तिष्ठतु सानन्दं मन्मानुराज्ञया शुचा । नन्दस्थितिं मद्दिनयं यशोदां कथयिष्यसि
इत्येवमुक्त्वा श्रीकृष्णः पित्रा मात्रा बलेन च ।

अक्रूरेण समं तूर्णं ययावाम्यन्तरं गृहम् ॥ १२ ॥

उद्धवो रजनीं स्थित्वा मथुरायाञ्च नारद । प्रभाते प्रययौ शीघ्रं रम्यं वृन्दावनं वनम् ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्तमहापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

उद्धवप्रेषण नाम चैकनवतितमोऽध्यायः ।

द्विनवतितमोऽध्यायः

गोकुलं गत्वा तत् शोभादिदर्शनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

श्रीकृष्णप्रेरितो हृष्ट प्रणम्य च गणेश्वरम् । स्मरन् नारायणं शम्भुं दुर्गां लक्ष्मीं सरस्वतीम्

गङ्गाञ्च मनसि ध्यात्वा दिगीशं तं महेश्वरम् ।

प्रजगामोद्धवश्चैव दृष्ट्वा मङ्गलसूचकम् ॥ २ ॥

शुभ्राद्यदुन्दुभि घण्टां नादं शङ्खध्वनिं तथा । इरिशब्दञ्च संगीतं शुभ्राद्य मङ्गलध्वनिम्
पतिपुत्रवर्ती साध्वी प्रदीपमाल्यदर्पणम् । परिपूर्णतमं कुम्भं दधिलाजफलानि च ॥ ४ ॥

दूर्वाङ्कुरं शुक्रधान्यं रजतं काञ्चनं मधु । ब्राह्मणानां समूहञ्च कृष्णसारं घृतं घृतम् ॥ ५ ॥
सद्योमांसं गजेन्द्रञ्च नृपेन्द्रं श्वेतघोटकम् । पताकां नकुलं चापं शुक्रपुष्पञ्च चन्दनम् ॥

दृष्ट्वैव पथि कल्याणं प्राप वृन्दावनं वनम् । ददर्श पुरतो वृक्षं भाण्डीरघटमक्षयम् ॥ ६ ॥
स्निग्धपूर्णं रक्तघणं पुण्यदं तीर्थमोप्सितम् ।

सुयेपान् घालकांश्चैव रक्तभूषणभूषितान् ॥ ८ ॥

पदतो बलकृष्णेति रुद्रतश्च-शुचान्वितान् । तानाध्यास्य ययौ दूरं प्रविश्य नगरं मुदा ॥
ददर्श नन्द शिविरं रचितं विश्वकर्मणा । मणिरत्नविनिर्माणं मुक्तामाणिक्यहीरकैः ॥

परिच्छिन्नं मनोरम्यं सद्रजकलशान्वितम् ।

द्वारं चित्रं चित्रित्राढ्यं दृष्ट्वा च प्रविवेश सः ॥ ११ ॥

अयस्य रथात्पूर्णं तस्थौ तत्प्राङ्गणे मुदा । यशोदा रोहिणी शीघ्रं पप्रच्छ कुशलं परम्
आसनञ्च जलं गाञ्च मधुपर्कं ददौ मुदा । क नन्दः क बलः कृष्णः सत्यं तत् कथयौद्धव

उद्धवः कथयामास सर्वं भद्रं क्रमेण च । सार्द्धञ्च बलकृष्णाभ्यां नन्दः सानन्दपूर्वकम्
भाषास्पति विलम्बेन कृष्णोपनयनायधि । युष्माकं कुशलं तत्त्वं विज्ञाय विधिपूर्वकम्

अहं यास्यामि मथुरा यशोदे शृणु साम्प्रतम् ।

श्रुत्वा मङ्गलवार्ताञ्च यशोदा रोहिणी मुदा ॥ १६ ॥

ब्राह्मणाय ददौ रत्नं सुवर्णं चरमोप्सितम् । उद्धवं भोजयामास मिष्टान्नञ्च सुधोपमम्
मणिश्रेष्ठञ्च रत्नञ्च ददौ तस्मै च हीरकम् । पायञ्च घादयामास भद्रं नानाविधं तथा ।

ब्राह्मणान् भोजयामास कार्यामास मङ्गलम् । वेदांश्च पाठयामास परमानन्दपूर्णकम् ।
शङ्करं पूजयामास विप्रद्वारा परं विभुम् । नानोपहारैर्नैवेद्यैः पुष्पभूषप्रदीपकैः ॥ २० ॥
चन्दनेर्वस्त्रताम्रलैर्मधुगन्धगुनादिभिः । भवानां पूजयामास श्रोतृन्द्रारण्यदेयताम् ।

पोद्गशोपचारैर्द्रव्यैश्च बलिभिर्विधिघैर्मुने ।

महिषाणां शतं शुद्धं छागलानां सहस्रकम् ॥ २२ ॥

मेघाणामयुतं शुद्धं युक्तमादाय पञ्चकम् । ब्राह्मणेभ्यः स्वर्णशतं धेनूनाञ्च शतं तथा ॥
प्रददौ दक्षिणां तूर्णं कृष्णकल्याणहेतवे । उद्धवं पूजयामास सादरञ्च पुनः पुनः ॥ २४ ॥

समाशवास्य यशोदाञ्च रोहिणीं गोपबालकान् ।

वृद्धान् गोपालिकाः सर्वाः प्रययू रासमण्डलम् ॥ २५ ॥

वदशं रासं रुचिरं चन्द्रमण्डलघर्तुलम् । श्रीरामकदलीस्तम्भैः शतकैरुपशोमितम् ॥ २६ ॥
युक्तैश्च स्निग्धयसनैश्चन्दनानाञ्च पल्लवैः । पट्टसूत्रनियदैश्च श्रीयुक्तमाल्यजालकैः ॥ २७ ॥
दधिलाजफलैः पट्टैः पुष्पैर्दूर्घाङ्कुरैरपि । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैः परिसंस्कृतम् ॥ २८ ॥

वेष्टितं रक्षितं यत्नाद्गोपिकानां त्रिकोटिभिः ।

त्रिलक्षैः सुन्दरै रम्यैः संसिक्तं रत्तिमग्निदरे ॥ २९ ॥

लक्षगोपैः परिवृतं कृष्णामग्नशङ्कितैः । यमुनां दक्षिणां कृत्वा प्रययौ मालतीधनम् ॥

चन्दनानां चम्पकानां यूथिकानां तथैव च ।

केतकीमाधवीनाञ्च घनं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ३१ ॥

वकुलानां वज्रलानामशोकानाञ्च काननम् ।

मल्लिकानां पलाशानां शिरीषाणां तथैव च ॥ ३२ ॥

धार्मीणां काञ्चनानाञ्च कणिकानां घनं तथा ।

नागेश्वराणां विपिनं लवङ्गानां तथैव च ॥ ३३ ॥

घनञ्च शालतालानां हिन्तालानां घनं तथा । पनसानां रसालानां लाङ्गलीनां मनोहरम्
मन्दारकाननं रम्यं घामं कृत्वा च सत्त्वरम् । दृष्ट्वा कुन्दधनं रम्यं सम्प्राप्य मधुकाननम्
पुष्कोकिलानां शब्देन मधुरेण समन्वितम् । मधुघृतसमूहानां मधुरध्वनिपूरितम् ॥ ३६ ॥

घन्यवृक्षैः परिवृतं माध्वीकाधारमीप्सितम् ।

वातेन घन्यपुष्पाणां परितः सुरभीरुतम् ॥ ३७ ॥

“तद्दृष्ट्वा राजमार्गेण यशोदोक्तं साम्प्रतम् । ययौ शीघ्रं निरुद्विग्नं रहस्यं यद्रीचनम् ॥

धीफलानाञ्च निस्पानां नारिङ्गाणां वनं तथा ।

दृष्ट्वा रक्तिमवर्णञ्च सुपक्वफलमीप्सितम् ॥ ३६ ॥

तदेव धामतः कृत्वा विवेश कदलीवनम् । अतीवनिर्जने रम्ये ददर्श राधिकाश्रमम् ॥ ४० ॥

मणीन्द्राणाञ्च प्राकारं परिखादुर्गवेष्टितम् । अत्यगम्यं रिपूणाञ्च मित्राणां सुगमं सुखम्
गोप्यं सङ्केतमार्गाञ्च रक्षकैः परिरक्षितम् ।

नानाचित्रचित्राढ्यं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ ४२ ॥

मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीरहारोज्ज्वलं परम् । रत्नेन्द्रसाररचितं रत्नस्तम्भैः सुशोभितम् ॥

रत्नसोपानसंसक्तमन्दिरेण मनोहरम् । अमूल्यरत्नरचितं कलशैः परिशोभितम् ॥ ४४ ॥

घट्टिशुद्धांशुकाभिश्च पताकाभिः परिष्कृतम् । सद्रत्नशर्षणोटकृष्टं चर्चितं श्वेतचामरैः ॥

ददर्श सिंहद्वारञ्च युक्तं रत्नकपाटकैः । द्वारोपरि विचित्रञ्च रम्यं धुन्दाधनं धनम् ॥ ४६ ॥

कदम्बकाननं रम्यं तद्वस्त्रहरणादिकम् । विश्वकर्मविरचितं सुरभ्यं रासमण्डलम् ॥ ४७ ॥

नानारत्नकुटीरञ्च गोपगोपीसमन्वितम् । रक्षितं गोपिकालक्षेत्रैर्वनहस्तैर्मनोहरैः ॥ ४८ ॥

स्यञ्छन्दाचरणैः शश्वदभीतैर्वलिभिर्मुदा । तद्द्वारं पुरतो दृष्ट्वा विलङ्घ्य च जगाम सः

द्वितीयद्वारमुलङ्घ्य तस्मादुत्तममीप्सितम् ।

द्वारं चतुर्थं सम्प्राप्य सर्वस्माच्च विलक्षणम् ॥ ५० ॥

तत्पश्चात् पञ्चमं द्वारं ददर्श चित्रमुत्तमम् । द्वारपदकञ्च प्रययौ सर्वतो रुचिरं परम् ॥

रामरावणयोर्युद्धं भित्तिचित्रं मनोहरम् । दशावतारं विष्णोश्च कृषिं रासमण्डलम् ॥

यमुनां जलकेलीञ्च रचितां विश्वकर्मणा । गोपिकानां सहस्रेण पृष्ठद्वारञ्च रक्षितम् ॥

रत्नेन्द्रसारनिर्माणभूषणैर्भूषितेन च । सद्रत्नवण्डहस्तेन हीरकैर्भूषितेन च ॥ ५४ ॥

मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीराहारान्वितेन च ।

माधवी तत्प्रधाना सा पप्रच्छ साम्प्रतं शिवम् ॥ ५५ ॥

ददौ प्रत्युत्तरं सर्वं क्रमेण च स उदयः । गत्वा विप्रापयामास राधाप्रियसतीगणम् ॥

सा माधवी महादृष्टा तत्र संस्थाप्य तं मुदा ॥ ५६ ॥

धृत्या मङ्गलचार्ताञ्च राधाप्रियसतीगणैः । हृत्वा शङ्खध्वनिं घण्टामृदङ्गयणहस्यनम् ॥

कृत्वा निर्मञ्छनं शीघ्रमुद्धवं प्रियमागतम् । हृष्टाप्रवेशयामास राधाभ्यन्तरमुत्तमम् ॥५८॥
 मूल्यरत्ननिर्माणं गत्वा मन्दिरमुत्तमम् । ददर्श पुरतो राधां कुहां चन्द्रकलोपमाम् ॥
 रुपकपद्मनेत्राञ्च शयानां शोकमूर्च्छिताम् । रुदन्ती रक्तवदनां क्लिष्टाञ्च त्यक्तभूषणाम् ॥
 निश्चेष्टाञ्च निराहारां सुवर्णवर्णकुण्डलाम् ।

शुभ्रिताधरकण्ठाञ्च किञ्चिन्निःश्वाससंयुताम् ॥ ६१ ॥

गणनाम च तां दृष्ट्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गो भक्त्या भक्तः स उद्वह-

उद्वह उवाच ।

गन्दे राधापदाम्भोजं ब्रह्मादिसुरधन्वितम् । यत्कीर्तिकीर्तनेनैव पुनाति भुवनत्रयम् ॥६३॥
 नमो गोकुलवासिन्यै राधिकायै नमो नमः । शतशृङ्गनिवासिन्यै चन्द्रवत्यै नमो नमः ॥
 तुलसीवनवासिन्यै वृन्दारण्यै नमो नमः । रासमण्डलवासिन्यै रासेश्वर्यै नमो नमः
 विरजातीरवासिन्यै वृन्दायै च नमो नमः । वृन्दावनविलासिन्यै कृष्णायै च नमो नमः
 नमः कृष्णप्रियायै च शान्तायै च नमो नमः ।

कृष्णवक्षःस्थितायै च तत्प्रियायै च नमो नमः ॥ ६७ ॥

नमो वैकुण्ठवासिन्यै महालक्ष्म्यै नमो नमः । विद्याधिष्ठातृदेव्यै च सरस्वत्यै नमो नमः
 सर्वेश्वर्याधिदेव्यै च कमलायै नमो नमः । पद्मनाभप्रियायै च पद्मायै च नमो नमः ॥
 महाविष्णोश्च मात्रे च पराचायै नमो नमः ।

नमः सिन्धुसुतायै च मर्त्यलक्ष्म्यै नमो नमः ॥ ७० ॥

नारायणप्रियायै च नारायण्यै नमोनमः । नमोऽस्तु विष्णुमायायै वैष्णव्यै च नमोनमः
 महामायास्वरूपायै सम्पदायै नमो नमः । नमः कल्याणरूपिण्यै शुमायै च नमो नमः ॥
 मात्रे चतुर्णां देवानां सावित्र्यै च नमो नमः ।

नमो दुर्गाविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नमः ॥ ७३ ॥

नमः सु सर्वदेवानां पुरा कृतयुगे मुदा । अधिष्ठानकृतायै च प्रकृत्यै च नमो नमः ॥७४॥
 मस्त्रिपुरहारिण्यै त्रिपुरायै नमो नमः । सुन्दरीषु च रम्यायै निर्गुणायै नमो नमः ॥
 मो निद्रास्वरूपायै निर्गुणायै नमो नमः । नमो दक्षसुतायै च नमः सत्यै नमो नमः ॥

नमः शैलसुतायै च पार्वत्यै च नमो नमः । नमो नमस्तपस्विन्यै ह्युमायै च नमो नमः ॥
निराहारस्वरूपायै ह्यपर्णायै नमो नमः । गौरीलोकविलासिन्यै नमो गौर्य्यै नमो नमः

नमः कैलासवासिन्यै माहेश्वर्यै नमो नमः ।

निद्रायै च दयायै च श्रद्धायै च नमो नमः ॥ ७६ ॥

नमो धृत्यै क्षमायै च लज्जायै च नमो नमः ।

तृष्णायै क्षुत्स्वरूपायै स्थितिकर्त्र्यै नमो नमः ॥ ८० ॥

नमः संहाररूपिण्यै महामार्यै नमो नमः । भयायै चाभयायै च मुक्तिदायै नमो नमः ॥

नमः स्वधायै स्वाहायै शान्त्यै कान्त्यै नमो नमः ।

नमस्तुष्ट्यै च पुष्ट्यै च दयायै च नमो नमः ॥ ८२ ॥

नमो निद्रास्वरूपायै श्रद्धायै च नमो नमः । क्षुत्पिपासास्वरूपायै लज्जायै च नमो नमः

नमो धृत्यै क्षमायै च चेतनायै नमो नमः । सर्वशक्तिस्वरूपिण्यै सर्वमात्रे नमो नमः ॥

अग्नौ दाहस्वरूपायै भद्रायै च नमो नमः । शोभायै पूर्णचन्द्रे च शरत्पक्षे नमो नमः ॥

नास्ति भेदो यथा देवि दुग्धधावक्षयोः सदा ।

यथैव गन्धभूम्योश्च यथैव जलशैत्ययोः ॥ ८६ ॥

यथैव शब्दनभसोज्योतिःसूर्यकयोर्यथा । लोके वेदे पुराणे च राधामाधवयोस्तथा ॥

चेतनं कुर्व कल्पानि देहि मामुत्तरं सति । इत्युक्त्वा चोद्धवस्तत्र प्रणनाम पुनः पुनः ॥

इत्युद्धवकृतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्ति पूर्वकम् । इह लोले सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते हरिमन्दिरम्

न भवेद् वन्धुपिच्छेदो रोगः शोकः सुदारुणः ।

प्रोपिता स्त्री लभेत् कान्तं भार्याभेदी लभेत् प्रियाम् ॥ ९० ॥

अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्घनो लभते धनम् । निर्भूमिर्लभते भूमिं प्रजाहीनो लभेत् प्रजाम्

रोगाद्विमुच्यते रोगी यद्धो मुच्येत बन्धनात् । भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्नपदः

अस्पृष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः ॥ ९३ ॥

रति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मपण्डे
राधास्तोत्रे द्विनवतितमोऽध्यायः ।

त्रिनवतितमोऽध्यायः

राघोद्वयसंवादकथनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

उद्धवस्तवनं श्रुत्या चेतनं प्राप्य राधिका । विलोक्य कृष्णाकाञ्च तमुवाच शुचान्विता
श्रीराधिकोवाच ।

किंनाम भवतो घत्स केन वा प्रेरितो भवान् ।

भागतो वा कुत इति ब्रूहि मां केन हेतुना ॥ २ ॥

कृष्णाकृतिस्त्वं सर्वाङ्गैर्मन्ये त्वां कृष्णपार्षदम् । कृष्णस्यकुशलं ब्रूहि च लदेवस्य साम्प्रतम्
नन्दस्तिष्ठति तत्रैव हेतुना केन तद्वद । समायास्यति गोविन्दो रम्यं वृन्दावनं वनम् ॥
पुनर्द्रक्ष्यामि तत्स्यैव पूर्णचन्द्रमुखं शुभम् । पुनः क्रीडां करिष्यामि तेनाहं रासमण्डले
जले च विहरिष्यामि पुनर्वा सखीभिः सह । श्रीनन्दनन्दनाङ्गे च पुनर्दास्यामि चन्दनम्

उद्धव उवाच ।

उद्धवेत्यभिधानं मे क्षत्रियोऽहं धरानने । प्रेषितः शुभवार्तार्थं कृष्णेन परमात्मना ॥ ७ ॥

तवान्तिकं समायातः पार्षदोऽहं हरेरपि । कृष्णस्य बलदेवस्य शिवं नन्दस्य साम्प्रतम्

श्रीराधिकोवाच ।

अस्ति तद् यमुनाकूलं सुगन्धिपवनोऽस्ति सः ।

तस्य केलिकदम्बानां मूलमस्त्येव साम्प्रतम् ॥ ६ ॥

पुण्यं वृन्दावनं रम्यं तद्विद्यमानमीप्सितम् । पुंस्कोकिलानां विस्तृतं तल्यं चन्दनचर्चितम्
चतुर्विधञ्च भोज्यञ्च मधुपानञ्च सुन्दरम् । दुरन्तोदुःखदोऽप्यस्ति पापिष्ठो मन्मथस्तथा
ते च रत्नप्रदीपाश्च ज्वलन्ति रासमण्डले । मणीन्द्रसारनिर्माणमस्त्येव रतिमन्दिरम् ॥

गोपाङ्गनागणोऽस्त्येव पूर्णचन्द्रोऽस्ति शोभितः ।

सुगन्धिपुष्परचितं तल्यं चन्दनचर्चितम् ॥ १३ ॥

ताम्बूलं रतिभोगाहं कर्पूरादिषुसंस्कृतम् । सुगन्धिमालतीमाल्यं श्वेतचामरदर्पणम् ॥

मुक्तामाणिक्यसंसक्तहीरहारमनोहरम् ।

नानोपकाननं रम्यं रम्यक्रीडासरोधरम् ॥ १५ ॥

सुगन्धिपुष्पोद्यानञ्च पद्मश्रेणीमनोहरम् । अस्त्येष सर्वविभवः प्राणनाथः कुतो मम ॥

हा कृष्ण हा रमानाथ कालि मे प्राणवल्लभ ।

क वापराधो दास्याश्च दासीदोषः पदे पदे ॥ १७ ॥

इत्येवमुक्त्वा सा देवी पुनर्मूर्च्छामवाप सा । चेतनं कारयामास पुनरेव स उदयः ॥

तां दृष्ट्वा परमाश्चर्यं मेने क्षत्रियपुङ्गवः ॥ १८ ॥

सखीभिः सप्तभिः शश्वत् सेवितां श्वेतचामरैः ।

गोपीनाञ्च त्रिलक्षैश्च सुप्रियैः प्रियसेविताम् ॥ १९ ॥

दिवानिशं वेष्टिताञ्च गोपीनां शतकोटिमिः । काचित् कञ्जलहस्ता च काचिन्माल्यभरापरा

काचित् सिन्दूरहस्ता च काचिद्गोरोचनाकरा ।

काचिच्चन्दनपात्रञ्च हस्ते कृत्या च तिष्ठति ॥ २१ ॥

काचिर्हर्षणहस्ता च काचित् कुङ्कुमवाहिक्का । कस्तूरीपात्रमिष्टञ्च काचिद्बहति तत्र वै ॥

काचिधम्पकपात्रञ्च करे धृत्वा च तिष्ठति । मधुभिर्मधुरैः पूर्णपात्रं धृत्वा शुचान्विता ॥

काचित् सुगन्धितीलञ्च गृहीत्वा परितिष्ठति । काचिद्बहति ताम्बूलं कर्पूरादितुषासितम्

काचिद्वासितमिष्टञ्च जलं धृत्वा च तिष्ठति । कीडापुत्तलिकां काचिश्चिन्नाद्यां परिरक्षति

काचिद्बहति कन्दुकं काचिच्च रत्नभूषणम् । वह्निगुदांशुकं काचिद्मूल्यं परिरक्षति ॥

काचिद्भक्ष्योपहारञ्च गृहीत्वा परिवर्तते ।

काचिच्च केशवेशार्थं करोति माल्यम्रीप्सितम् ॥ २७ ॥

काचित् कङ्कतिफां धृत्वा दुरस्तः परितिष्ठति ।

काचियावकहस्ता च काचिद्वाथीरसं मुदा ॥ २८ ॥

दूरतोऽपि धृत्येवं भीता च परितिष्ठति ।

काचिद्गोता मिया स्तोति काचिद्गोदिति शोकतः ॥ २९ ॥

जलभोजनपात्रञ्च शुद्धं स्वर्णविनिर्मितम् । मिष्टान्नं परमान्नञ्च ददौ सुखादु मिष्टकम् ॥

भोजनं कारयित्वा च कर्पूरादिसुवासितम् ।

ताम्बूलञ्च ददौ शीघ्रं माल्यं सुस्निग्धचन्दनम् ॥ ६७

शुभाशिपञ्च प्रवदौ चाञ्छितं प्रवरं वरम् । ज्ञानरूपेण यद्वत्तं गोलोके रासमण्डले ॥

पुरुषाणां शतं याचन्निश्चलां कमलां ददौ ।

विद्यां यशस्करी शुद्धां यशः कीर्तिं सुनिर्मलाम् ॥ ६८ ॥

सर्वसिद्धिं हरेर्दास्यं हरिभक्तिञ्च निश्चलाम् । पार्यदप्रवरत्वञ्च पार्यदञ्च हरेरिति ॥ ७० ॥

वरं प्रसादं दत्त्वा च समुत्थाय मुद्रान्वितम् । बह्विशुद्धाशुके धृत्वा चामूल्यं रत्नभूषणम्

ह्रीरहारं रत्नमालां परिधाय मनोहराम् । सिन्दूरं कज्जलं पुष्पमाल्यं सुस्निग्धचन्दनम्

एतत्सिंहासनस्थं तं पूजिता पूजितं मुदा । वेष्टिता हर्षनिरतं गोपीनां शतकोटिभिः ।

ततकाञ्चनवर्णाभा शतवन्द्यसमप्रभा ॥ ७३ ॥

श्रीराधिकोवाच ।

सत्यमायास्यति हरिः सत्यं निष्कपटं वद् । वद् तथ्यं भयं त्यक्त्वा सत्यं ब्रूहि सुसंसदि

वरं कूपशताद्वापी वरं चापीशतात् क्रतुः । वरं क्रतुशतात् पुत्रः सत्यं पुत्रशतादिकल ॥

न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ॥ ७५ ॥

उद्धव उवाच ।

सत्यमायास्यति हरिः सत्यं ब्रह्मसिसुन्दरि । ध्रुवंत्यक्षसि सन्तापं दृष्ट्वा चन्द्रमुखं हरेः

महर्शेनान्महाभागे गतस्ते विरहज्वरः ।

नानाभोगं सुखं भुञ्क्ष्व त्यज चिन्तां दुरत्ययाम् ॥ ७७ ॥

अहं प्रस्थापयिष्यामि गत्वा मधुपुरीं हरिम् । विधाय तत्प्रबोधञ्च कार्यमन्यत्करिष्यति

विद्वान् कुरु मे मातर्याम्यामि हरिसन्निधिम् ।

सर्वं तं कथयिष्यामि तद्वृत्तान्तं यथोचितम् ॥ ७९ ॥

श्रीराधिकोवाच ।

स यदा वत्स मधुरांसुमनोहराम् । शृणुदुःखकथां काञ्चित्पि वत्सस्थिरोभव

मां चिस्मृतो न भवसि चिरहृज्जरफातराम् ।

कथयिष्यामि मत्कान्तं ध्रुवं प्रस्थापयिष्यसि ॥ ८१ ॥

नारीणां मनसो घातां को वा जानाति पण्डितः ।

किञ्चिच्छास्त्रानुसारेण प्रकरोति निरूपणम् ॥ ८२ ॥

वेदा घक्तुं न शक्ताश्च शास्त्राणि किं वदन्ति च ।

कथयिष्यामि त्यां सर्वं पुत्र कृष्णञ्च वक्ष्यसि ॥ ८३ ॥

गेहे घने न भेदो मे पश्चादिषु यथा नृषु । किंवा जलं किमु स्वप्नमज्ञानञ्च विद्वानिदम्
आत्मानञ्च न जानामि त्वोदयं चन्द्रसूर्ययोः । क्षणं प्राप्य हरेर्घातां चेतनं मे वभूव ह
कृष्णाकृतिञ्च पश्यामि शृणोमि मुरलीध्वनिम् ।

कुलं लज्जां भयं त्यक्त्वा चिन्तयामि हरेः पदम् ॥ ८६ ॥

सम्प्राप्य सर्वजगतामीश्वरं प्रकृतेः परम् । न ज्ञानं मायया तस्य ज्ञात्वा गोपयैर्मम ॥

ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजं वेदा ब्रह्मादयः सुराः ।

स भर्त्सितो मया कोपात् हृदि शल्पमिवं मम ॥ ८८ ॥

तत्पदाम्भोजसेवाभिर्गुणप्रस्तावतोऽपि वा । तद्वक्तव्यायत्क्षणोनीतो ध्यानेन पूजयाऽथवा-

तत्रापि मङ्गलं सर्वं हर्षमायुर्व्यवस्थितम् । विघ्नञ्च हृदि सन्तापस्तद्विच्छेदे सदोद्धव ॥

कीडाप्रीतिर्न भविता तादृशीष्टा पुनर्मम । तादृशं प्रेमसौभाग्यं निर्जनेन च सङ्गमः ॥ ९१ ॥

चुन्दावनं न यास्यामि तत्सङ्गे पुनरुद्धव । चन्दनं वा न दास्यामि नन्दनन्दनवक्षसि ॥

मालां तस्मै न दास्यामि न द्रक्ष्यामि मुष्णाम्बुजम् ।

मालतीनां केतकीनां चम्पकानाञ्च काननम् ॥ ९३ ॥

पुनरेव न यास्यामि सुन्दरं रासमण्डलम् । हरिसङ्गे न यास्यामि रम्यं चन्दनकाननम्

पुनरेव न यास्यामि मलयं रत्नमन्दिरम् । माधवीनां घनं रम्यं रहस्यं मधुकाननम् ॥

श्रीखण्डकाननं रम्यं स्वच्छं चन्द्रसरोवरम् । विस्पन्दकं सुरधनं नन्दनं पुष्पभद्रकम् ॥

भद्रकं हरिणा सार्द्धं न यास्यामि पुनः पुनः ।

क सा रम्या विकसिता माधवे माधवीलता ॥ ९७ ॥

क गता माधवी रात्रिः क मधुः कापि माधवः ।-

इत्येवमुक्त्वा सा राधा ध्यात्वा कृष्णपद्ममुज्जम् ।

पुनर्मूर्च्छाञ्च सम्प्राप्य रुदती पुलकान्विता ॥ ६८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
राधोद्धवसंवादे त्रिनवतितमोऽध्यायः ।

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

मूर्च्छितां राधां दृष्ट्वा उद्धवकृत सान्त्वनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

उद्धवो विस्मयं प्राप्य भयञ्च विपुलं मुने । चेतनं कारयामास तामुवाच मृतामिव ॥१॥
तद्वक्तिसममिहाय स्वात्मानं भक्तसंख्यकम् । तुच्छं मेने जगत्सर्वं दृष्ट्वा भाग्यवतीसतीम्

उद्धव उवाच ।

चेतनंकुच कल्याणि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते । त्वमेवप्राक्तनंसर्वं कृष्णं द्रक्ष्यसि साम्प्रतम्
त्वत्तो विश्वं पवित्रञ्च त्वत्पादरजसा मही । सुपवित्रं त्वद्ददनं पुण्यवत्यश्च गोपिकाः
लोकास्त्वामेवगायन्ति गीतेर्मङ्गलसंस्तवैः । त्वत्सुकीर्तिञ्चवेदाश्च सनकाद्याश्चसन्ततम्
कृतपापहरां पुण्यां तीर्थपूजाञ्च निर्मलाम् । हरिभक्तिप्रदां भद्रां सर्वविघ्नविनाशिनीम् ॥
त्वमेवराधा त्वं कृष्णस्त्वं पुमान् प्रकृतिः परा । राधामाधवयोर्मेदो न पुराणे श्रुतौ तथा
राधिकांमूर्च्छितां दृष्ट्वा पश्चात्कृत्वातमुद्धवम् । उवाचमाधवीगोपीराधायाः पुरतःस्थिता

माधव्युवाच ।

किंवाचोरस्य कृष्णस्यरूपं वा वेशमुत्तमम् । किं सुखविमवं किंवा गौरवञ्चाप्यनुत्तमम्
किंवा तद्दीर्घमैश्वर्यं शौर्यं वा दुरतिक्रमम् ।

किंवा सिद्धं प्रसिद्धं वा किंवा तुल्यं गुणोत्तमम् ॥ १० ॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः] * गोपीकृत राधासान्त्वनम् *

इतो वा कुत आयातः पुनरेव कुतो गतः । बालको गोपवेशश्च न हि राजात्मजः पुमान्
त्वं किं स्मरसि कल्याणि गोपालं नन्दनन्दनम् ।

आत्मानं रक्ष यत्नेन कः प्रियः स्वात्मनः परः ॥ १२ ॥

मालत्युवाच ।

धिक् त्वां राधेति निर्लज्जां तवैव जीयनंवृथा । जगतोयुवतीनाञ्च करोषि सुयशःक्षयम्
नारीणां गोपनं कार्यं व्यक्तेऽपि स्वयशःक्षये ।

यत्नेन चक्षुषो ग्राहं सखि सञ्चरणं कुरु ॥ १४ ॥

अन्तरे पतिभाषञ्च सङ्गोप्य भाषनं कुरु । न ये जातिश्च शत्रूणां मित्राणाञ्च सुरेश्वरि
शत्रुः कार्य्यघशेनेव मित्रश्च कर्मणा भवेत् । स्वकार्य्यमुद्धरेत्प्राज्ञः कार्य्यध्वंसेन मूर्खता
कः कस्य घल्लभो राधे कः कस्याप्रिय एव च ।

कार्य्यञ्च समयं ज्ञात्वा सन्तः कुर्वन्ति सन्ततम् ॥ १७ ॥

शत्रुर्धनापहारी च प्राणहर्ता ततः परः । कटुघक्ता दुःखदाता शत्रूणां लक्षणं शृणु ॥ १८
स्वकुलात् त्वां बहिष्कृत्य विसृज्य शोकसागरे । गृहीत्वा चेतनं प्राणान्निष्ठुरो दारुणो गतः
किं किं स्मरसि मूढे हि त्यज शोकं सुदारुणम् ।

आत्मानं रक्ष यत्नेन कः प्रियः स्वात्मनः परः ॥ २० ॥

पद्माचत्युवाच ।

भयता कथितं पूर्णं यमुनाजलसन्निधौ । अरसस्य रतिर्दूरं नारीणां न सुखं प्रिये ॥ २१
चिद्युज्जाला जले रेखा खलानां प्रीतिरेव च । न नीतिर्नातिशास्त्रेषु सुविश्वासः खलेषु च
यदा त्वं यमुनाकूले मुखं घीक्ष्यं हरेरहो । सस्मितं सुकटाक्षश्च पुनः कृत्वास्यगोपनम्
पुन पुनस्त्वं संवीक्ष्य त्वया त्यक्तञ्च चेतनम् । गृहं त्यक्त्वा गुरुभयं सखीनां वचनं शुभम्
सन्ततं ध्यायते कृष्णं नाहारं जीयनं तथा ।

क कृष्णो मधुरायाञ्च कापि त्वं कदलीवने ॥ २५ ॥

त्वं यदि त्यजसि प्राणान्नाचिर्मवति सोऽधुना ।

फाले द्रक्ष्यसि स्वात्मानं यदि रक्षसि सुन्दरि ॥ २६ ॥

चन्द्रमुख्युवाच ।

प्राक्तनेन शुभं सर्वं सुखञ्च विभवश्चिन्म । दुःखं शोकं प्राक्तनेन विपत्सम्पच्च साम्प्रतम् ।
भारते पुण्यभूमौ च सर्वेषामीप्सिते वरे । लभेत् पतिं हरिं कान्तं तपसा प्रकृतेः परम् ।
तथा विप्रदहेद्वात्रं कामधाणेन साम्प्रतम् । मस्याः शत्रुः कथं चन्द्रो मधुर्वा मधुमाधवौ
शङ्करेण प्रवग्धोऽभूत् पुनरेष स मन्मथः । चन्द्रं भक्षतु राहुश्च पुनश्चोद्धमनं तथा ॥ ३० ॥
मधुश्च मित्रशोकेन प्राणांस्त्यक्त्वा ययौ वनम् ।

सुधासिन्धुश्च सेन्दुर्यो विपसिन्धुश्च मां प्रति ॥ ३१ ॥

सुवेशोऽस्या ज्वलद्बहिश्चन्दनं तदुपुताहुतिः । सन्ततं प्रवहेद्वात्रं सुगन्धिश्च समीरणः ॥
त्यक्त्वाहारा मम सखी पश्य श्वसितजीवतीम् । प्रशंसां कुरुकृष्णस्य मुखेन कुरुनन्दन ॥
तन्नामस्मृतिमात्रेण तद्गुणध्वजनेन च । तद्वार्तया च शुभया सहसा चेतनं भवेत् ॥ ३४ ॥
शशिकलोवाच ।

त्वं किं माधवि जानासि कृष्णमात्मानमीश्वरम् ।

यं तं ब्रह्मादयो देवा वेदाश्चत्वार एव च ॥ ३५ ॥

ध्यायन्ति सन्ततं सन्तः पादपद्मं सुरेप्सितम् ।

पद्मा सरस्यती दुर्गा सौऽनन्तोऽपि महेश्वरः ॥ ३६ ॥

य न जानन्ति सिद्धेन्द्रा मुनीन्द्रा मनवस्तथा ।

सर्वात्मनः कुतो रूपं निर्गुणस्य कुतो गुणाः ॥ ३७ ॥

सत्यमुक्तञ्च सत्यस्य यत्तदेव यथोचितम् । घत्ते भारावतरणे पृथिव्याश्च मनोहरम् ॥

सुप्रमाहादकं रम्यं भकानुग्रहविग्रहम् । किमनिर्वचनीयञ्च रूपं जनमनोहरम् ॥ ३८ ॥

फोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम शुभाश्रयम् । यत्पादपद्ममधुरं मधु मन्दाकिनीजलम् ॥

दध्रे शिरसि भक्त्या च सर्वेशः शङ्करः परः ।

शश्वत् करोति वैरागी तीर्थकीर्तिश्च कीर्तनम् ॥ ४१ ॥

क्षणं नृत्यति भक्त्या च पञ्चवक्त्रेण गायति । आहारं भूषणं वस्त्रं परित्यज्य दिगम्बरः

प्रहस्योतिस्वरूपञ्च ध्यात्वा शुभं सुनिर्मलम् । ब्रह्मा च तपसा जन्म नयत्येव हि सेवया

शेषः सनत्कुमारश्च सिद्धसङ्गश्च योगवित् ॥ ४३ ॥

सुशीलोवाच ।

निर्मन्थनाहं न भवेत्तस्य कामशतं शतम् । चन्द्रोऽश्विनीकुमारी वा रूपेषु केन गुण्यते
असंख्येषु च विश्वेषु ब्रह्मापिष्णुशिवादयः । मुनयो मनवःसिद्धाभक्ताः सन्तश्च सन्ततम्
ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजं निर्गुणस्यात्मनश्च वै ।

वेदाः स्तोतुं न शक्ताश्चयमीशञ्च सरस्वती ॥ ४६ ॥

जङ्गीभूता च भीता च स्तवनेन क्षमापयेत् । सहस्रवत्तत्रस्तवने कम्पितश्च निरन्तरम् ॥
वेदानां जनको ब्रह्मा स्तोत्रेण तस्य ह्रीश्चरः । तं सत्यंनित्यमीशञ्चमाधयी परिनिन्दति
अपवित्रासमाभूता गोपीनां जीवनं वृथा । तासु पुण्यवती राधा ध्यायते यं दिवानिशम्
यधामस्मृतिमात्रेण कोटिजन्मार्जितं सखि । कृतं पापभयं शोकः प्रणश्यति न संशयः ॥

रत्नमालोवाच ।

दधार वामहस्तेन शैलं गोवर्धनं हरिः ।

ततः किं तद्यशः शौर्यं जगतां जनकस्य च ॥ ५१ ॥

शैलानाञ्च सहस्रं यो भेत्तुं शकश्च दैत्यराट् ।

लीलामात्रेण तेपाञ्च लक्षं हन्तुं क्षमो हरिः ॥ ५२ ॥

यदंशकलया जातः शूकरो विष्णुरीश्वरः । वसुधां दशनाग्रेण चोदधार च लीलया ॥
शैलानाञ्च सहस्राणि यत्र सन्ति महीतले । दैत्याश्चवाप्यसंख्याश्चघोराः शूरास्तथैव च
तेनैव कर्मणा तस्य न शौर्यं न च पौरुषम् । न यशश्च प्रशंसाचासखि सर्वात्मनात्मना
पारिजातोवाच ।

सप्तद्वीपा च वसुधा सशीलवनसागरा । फाञ्चनीभूमिसहिता सर्वाधारा मनोहरा ॥
सप्तस्वर्गाश्च विचित्रा ब्रह्मलोकापधि प्रिये । विचित्राः सुन्दराश्चैव पातालानाञ्चसप्तच
पतेःपरिमितं विश्वं ब्रह्माण्डं ब्रह्मणा कृतम् । महद्विष्णोर्लोकमुपे तदेवं चाणुषत् स्थितम्
तस्य याचन्ति लोमानि तानि चिद्वानि सन्ति च ।

स एव-पोद्गशांशश्च कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ५६ ॥

तस्यैव किं यशः शौर्यं महिमानमनूपमम् ।
यत्स्मरी गोपकन्या च किंवा जानाति माधवी ॥ ६० ॥

माधव्युवाच ।

मया यदुक्तं न ज्ञात्वा मूढा जल्पन्ति गोपिकाः ।
उद्धव शृणु मे वाक्यं यन्मया कथितं शुभम् ॥ ६१ ॥
स्वेच्छया सगुणो विष्णुः स्वेच्छया निर्गुणो भवेत् ।
भुवो भाराघतरणे गोपवेशः शिशुर्विभुः ॥ ६२ ॥
यदि वेदाः पुराणानि सिद्धाः सन्तश्च सन्ततम् ।
ब्रह्म शशेषभक्ताश्च न जानन्ति यमीश्वरम् ॥ ६३ ॥
ते किं जानामि मूढाहं यत्स्मरी गोपकन्यका ।
तथापि मद्बचः सत्यं धूयतां घत्स तत्क्षणम् ॥ ६४ ॥
किमनिर्वचनीयञ्च रूपं शौर्यं यशो बलम् ।
वीर्यं वेशञ्च सिद्धिं चाप्यन्यो वा यो गुणो हरेः ॥ ६५ ॥

स्वेच्छामयस्य तस्यैव सगुणस्य च साम्प्रतम् । किमनिर्वचनीयञ्च वर्तते तद्विशेषणम्
निर्गुणस्य च विष्णोश्च देहहीनश्च स्वात्मयान् । वर्तते च किमाख्येयं तस्यरूपादिकञ्च किम्
मां निन्दति महामूढा न बुद्ध्या धवनं मम । एषा जानाति किं मूढा ते सत्यं प्रकृतेः परम्
उयोतिः स्वरूपं परमं परमात्मानमीश्वरम् ।

तमनिर्वचनीयञ्च भक्तानुग्रहधिग्रहम् ॥ ६६ ॥

यत्पादपद्मं पद्मं सा त्रैलोक्यजननी परा । सेवते कम्पिता भीता दासी च तत् सततं मिया
विष्णुमाया च प्रकृतिर्मूलरूपा सनातनी । ब्रह्मस्वरूपा परमा भीता दक्षिणपार्श्वतः ॥
सरस्वती जडाभूता भीता च परमेश्वरी । स्तोतुं न शक्ता वेदाः किंस्तु यन्ति परमेश्वरम्
तासां तद्वचनं ध्रुत्वा बोद्धवो भक्तिविह्वलः । पुलकाञ्चितसर्पाङ्गो रुरोश्च च पपात च ॥
मूर्च्छां सम्प्राप्य भक्त्या च ध्यात्वा तं परमेश्वरम् ।

तुच्छं मेने स चात्मानं गोपीं भक्त्याप्युवाच सः ॥ ७४ ॥

उद्धव उवाच ।

धन्यं यशस्यं द्वीपानां जम्बूद्वीपं मनोहरम् । यत्र भारतवर्षश्च पुण्यदं शुभदं तथा
वणिजाञ्च पुण्यकृतं वाणिज्यस्थलमोप्सितम् ।

अत्र कृत्वा सुपुण्यञ्च भुङ्क्तेऽन्यत्र शुभं फलम् ॥ ७६ ॥

धन्यं भारतवर्षञ्च पुण्यदं शुभदं चरम् । गोपीपादाञ्जरजसा पूतं परमनिर्मलम् ॥ ७७
ततोऽपि गोपिका धन्या मान्या योषित्सु भारते ।

नित्यं पश्यन्ति राधायाः पादपद्मं सुपुण्यदम् ॥ ७८ ॥

पट्टिर्वर्षसहस्राणि तपस्तप्तश्च ब्रह्मणा । राधिकापादपद्मस्य रैणूनामुपलब्धये ॥ ७९
गोलोकवासिनी राधा कृष्णप्राणाधिका परा । तत्र श्रीदामशापेन वृषभानसुताधुना
ये ये भक्ताश्चकृष्णस्य देवाब्रह्मादयस्तथा । राधायाश्चापिगोपीनांकलानार्हन्तिपौडशी
कृष्णेभक्तिं विजानाति योगीन्द्रश्चमहेश्वरः । राधागोप्यश्चगोपाश्चगोलोकवासिनश्च
किञ्चित्सनत्कुमाश्च ब्रह्माचेद्विपयीतथा । किञ्चिदेवविजानन्तिसिद्धाभक्ताश्च निश्चित
धन्योऽहंकृतं कृत्योऽहमागतो गोकुलं यतः । गोपिकाभ्यो गुरुभ्यश्चहरिभक्तिं लभेऽचला

मधुरां च न यास्यामि तीर्थकीर्तेश्च कीर्तनम् ।

श्रोष्यामि किङ्करो भूत्वा गोपीनां जन्मजन्मनि ॥ ८५ ॥

न गोपीभ्यः परीमको हरेश्च परमात्मनः ।

यादृशीं लेभिरे गोप्यो भक्तिं नान्ये च तादृशीम् ॥ ८६ ॥

कलावत्युवाच ।

पितृणां मानसीकन्या धन्या मेना कलावती । धनं तिष्ठोभगिन्यश्च भ्रमामः पृथिवीतलं
धन्याजनकपत्नी च सीतामाता पतिव्रता । अयोनिसम्भवा राधा बह्वं चायोनिसम्भवा
राधा श्रीदामशापेन वृषभानसुता भुवि । सनत्कुमारशापेन धनमेव महीतले ॥ ८६ ॥
क्षीरोदसागरं रम्यं श्वेतद्वीपं मनोहरम् । तिष्ठो भगिन्यो भक्त्या च विष्णुं द्रष्टुं गतावयम्

अभ्युत्थानादि न कृतं कोपादस्मान् शशाप ॥

सनत्कुमारो भगवान् योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः ॥ ८१ ॥

सनत्कुमार उवाच ।

मूढास्तिष्ठतभूमौ च पुनः स्वर्गं न यास्यथ । मर्त्यप्राणिप्रिया भूत्वा चाहङ्कारेण हेतुना
 पुनर्वर्ञ्च प्रत्येकं ददौ तुष्टो द्विजेश्वरः । विष्णोर्वंशस्य शैलस्य हिमाधारस्य कामिनी
 ज्येष्ठाभवतु त्वत्कन्या भविष्यत्येष पार्वती । धन्याप्रिया तु भवतु योगिनोजनकस्य च
 तस्य कन्या महालक्ष्मीः सीतादेवी भविष्यति । वृषभानस्य वैश्यस्य योगिनां प्रघरस्य च
 दुर्वाससश्च शिष्यश्च कनिष्ठा च कलावती । भविष्यति प्रिया साध्वी द्वापरान्ते च गोकुले
 कलावती सुता राधा देवो गोलोकवासिनी । श्रीदामगोपशापेन भविष्यति न संशयः
 ईशो ब्रह्मेशोपाणां भारावतारणेन च । आगमिष्यति पृथ्वीञ्च पुण्यक्षेत्रञ्च भारतम् ॥

कलावती वृषभानः फौतुकात् कन्यया सह ।

जीवन्मुक्तश्च गोलोकं गमिष्यति न संशयः ॥ १६ ॥

धन्या च सीतया साद्वैकुण्ठञ्च गमिष्यति । मेनकायोगिनी सिद्धापार्वत्याश्च वरेण च
 कल्पान्ते विष्णुलोके च लक्ष्मीधम्नोदते विरम् ।

विना विपस्या महिमा केषां कुत्र भविष्यति ॥ १०१ ॥

कर्मणा च गते दुःखे प्रभवेदुदुर्लभं सुखम् । पुरापितृणां कन्याश्च स्वर्गं भोगविलासिकाः
 लक्ष्मीसमावरेणापि विप्रस्य विष्णुदर्शनात् । कर्मक्षयञ्चाप्यस्माकं यभूवविष्णुदर्शनात्
 पुण्येन तेन तीव्रेण कुमारस्यापि दर्शनम् । श्रुतं तत्र कुमारास्यात् ज्ञानं परमदुर्लभम् ॥
 ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सिद्धानां जगतामपि । ईश्वरः परमात्मा च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥

निर्गुणश्च निरीहश्च परः स्वेच्छामयो वरः ॥ १०५ ॥

तुलस्युवाच ।

सर्वप्राणिषु देवाश्च तिष्ठन्त्येष पृथक् पृथक् ।

प्राणो विष्णुश्च विपथी मनो ब्रह्मा च चेतना ॥ १०६ ॥

रुतिर्बुद्धिरूपा च सर्वशक्त्याधिदेवता । ज्ञानस्वरूपः शम्भुश्च स्वयं धर्मश्च पुरुषः ॥

निर्गुणः परमात्मा च तद्ब्रह्म प्रकृतेः परम् ।

स एव कृष्णः साक्षी च कर्मणां जीविनामपि ॥ १०८ ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः] * राधोद्धवसंवादेवर्णनम् *

१०४

भोकाच्च सुखदुःखानांजीवस्तत्प्रतिविम्बकः । चक्षुषोश्चन्द्रसूर्यौ च जिह्वायाञ्चसरस्वतं
वसुन्धरात्यचि सदा बाह्वोस्ते लोकपालकाः । आत्मनश्चापि ते सर्वे परिचारकरूपिण
आत्मन्येव प्रियास्ते च सर्वे गच्छन्ति जीवनः । यथा संसदि संसारे नरदेहमिवानुगा
तस्मात्सर्वात्मनाऽऽत्मानं भजन्ति सन्ततं सदा ।

सन्तश्च परया भक्त्या ध्यायन्ते योगिनो मुदा ॥ ११२ ॥

कर्मिणांकर्मणा साक्षी कुतः कर्म च गोपनम् । अन्तर्यामी च कृष्णश्च प्रचारं कुरुतेमुद
कालिकोवाच ।

नरावालाश्च वृद्धाश्च युधानस्त्रिषिधास्तथा । देवादयश्च ये सिद्धाः सर्वेजानन्ति तं परम
साम्प्रतं मूर्च्छितां रात्रां युक्तो बोधयितुं युयुः ।

अत्र युक्तिः प्रधाना च तां प्रबोधय चोद्धव ॥ ११५ ॥

उद्धव उवाच ।

चेतनं कुरु कल्याणि जगन्मातर्नियोध माम् ।

उद्धवं कृष्णभक्तस्य किङ्करस्यापि किङ्करम् ॥ ११६ ॥

प्रसादं कुरु मातर्मां यास्यामि मधुरां पुनः । ॥ स्वतन्त्रः परार्थीनां योपा दासमयीयथ
यथा धृषो पशोभूतो वृषवाहस्य सन्ततम् ॥ ११७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मप्रण्डे
राधोद्धवसंवादे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ।

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

राधोद्धवसंवादेवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

उद्धवस्य पचः धृत्वा चेतनं प्राप्य राधिका । सा गोपाच समुत्थाय रजसिंहासने पं

उवाच मधुरं देवी हृदयेन चिद्व्यता । गोपीभिः सतभिर्मत्तया सेविता श्वेतचामरैः ॥

श्रीराधिकोवाच ।

मधुरांगच्छ घत्स त्वं माञ्च विस्मरसम्पदा । अतोऽप्यधर्मानास्त्येव भवतोभवसागरे
मदीयं वचनं सर्वं गत्वा कथय साम्प्रतम् । श्रीकृष्णं परमानन्दं शीघ्रमानय मत्प्रभुम् ॥

योपिज्जन्मनि योपित्सु सम्प्राप्य तादृशं पतिम् ।

मेदो बभूव कस्या वा मदन्त्या कापि दुःखिनी ॥ ५ ॥

किं ददासि प्रबोधं मे नास्ति मे बोधमोचितम् ।

निष्फलो देहिनां देहो विनात्मानं सदोख्य ॥ ६ ॥

तं प्रीत्या सह सौभाग्यं गौरवं नित्यनूतनम् । अतीवदुर्लभं प्रेमरहस्यं नवसङ्गमम् ॥ ७ ॥

स्मरामि मनसा शश्वन्नान्यो मनसि वर्तते । रात्रौ निद्रां परित्यज्य स्मरणं शोकवर्धनम्

मामुद्धर ध्रुवं घत्स निमग्नां शोकसागरे । जीवाभयप्रदानेन तीर्थे स्नातफलं नृणाम् ॥

प्रबोधितुं ॥ शक्नोमि दुर्निवारञ्च मानसम् । चिन्तये चरणाभ्योर्जं कृष्णस्य परमात्मनः

तद्गुणं महिमानञ्च प्रीतिञ्च प्रेमसागरम् ।

स्मारं स्मारञ्च सौभाग्यं मनो मे न स्थिरं चिरम् ॥ ११ ॥

जगतां युवतीनाञ्च कासां वा दुःखमीदृशम् ।

श्रीकृष्णमेदुःखञ्च का वा जानाति मां विना ॥ १२ ॥

किञ्चिज्जानाति सीता साप्यहञ्च विधिवोधितम् ।

मत्परा दुःखिनी नास्ति कामिनीषु जगत्त्रये ॥ १३ ॥

का वा याति प्रतीतिं मे श्रुत्वा च मानसी व्यथाम् ।

कासां वा मत्समं दुःखं युवतीनां सुतोद्वह ॥ १४ ॥

तादिकसदृशीन्पु न भूता न भविष्यति । दुःखिनीचिरदृष्ट्या मुक्तसौभाग्यवर्जिता

सम्प्राप्य कल्पवृक्षञ्च पतिञ्च जगतां पतिम् ।

पश्चिताऽहं विधात्रा च निर्दयेन च पापिना ॥ १६ ॥

तीपनं सफलं जन्म सुस्निग्धं चक्षुषी मनः । तत्पादपद्मवक्त्रेन्दुरुपवेशप्रदर्शनात् ॥ १७ ॥

यन्नामश्रुतिमात्रेण पञ्चप्राणाः प्रद्वर्षिताः ।

स्मृतिमात्रात् प्रकुल्यन्ते आत्मा सुस्निग्ध एव च ॥ १८ ॥

यश्च पस्पर्शं सुरतो यस्तस्त्रिभुवनेष्वपि । कया वा सम्पदा वत्स विस्मरामि तमीश्वरम्
त्रैलोक्यविजयं रूपं गुणमेव विभर्ति यत् ।

न निर्मितो यो विधिना तेनैव निर्मितो विधिः ॥ २० ॥

तं विधेश्च विधातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।

कल्ववृक्षात्परं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ॥ २१ ॥

सर्वेशं सर्वधीजञ्च परमात्मानमीश्वरम् ।

कया वा सम्पदा तात विस्मरामि च तं पतिम् ॥ २२ ॥

यस्यनिर्मन्थनार्हञ्च न चन्द्रो न च मन्मथः । नैवाश्विनीकुमारश्च गुणसाम्यं न विश्वतः
ध्यायन्ते यत्पदागभोजं ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः ।

कया वा सम्पदा तात विस्मरामि च तं प्रभुम् ॥ २४ ॥

स्वप्ने पश्यन्ति ये रूपमतुलञ्च मनोहरम् । तेऽपि सर्वं परित्यज्य ध्यायन्ते तमहर्निशम्
गुणेन शैलः सलिलं शुष्ककाष्ठं द्रवेदिति । मृतवृक्षो मुकुलितः स्तम्भितश्च समीरणः
सूर्यश्च जलधिश्चैव स्थगितो भक्तिभावतः ।

कया वा सम्पदा पुत्र विस्मरामि च तं प्रियम् ॥ २७ ॥

यद्वयाह्नाति चातोऽयं सूर्यस्तपति यद्वयात् । वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निमृत्युध्वरति जन्तुषु ॥
यद्वयात्फलिता वृक्षाः पुष्पिताः समयेऽपि च । समुद्राः स्वात्मविषये ब्रह्माश्च मुनयः सुराः
कालस्य कालं संवर्तं संहर्ता स्रष्टुरीश्वरः । स्वाधीनश्च स्वतन्त्रश्च स्वयमेवात्मसंज्ञकः

कया वा सम्पदा भक्त विस्मरामि च तं प्रभुम् ।

प्रबोधो नास्ति तद्भेदे येन मां बोधयेद्बुधः ॥ ३१ ॥

माञ्च बोधयितुं शक्ता न सावित्री सरस्वती ।

न वेदा न च वेदाङ्गाः के वा सन्तश्च के सुराः ॥ ३२ ॥

सहस्रवक्त्रोऽनन्तश्च वेदानां जनको विधिः । न शम्भुर्न गणेशश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः

स्थितेर्गतिश्चिन्तनीया मार्गशून्ये कुतोगतिः । कालसाध्यञ्चसर्वञ्च सुखं दुःखं शुभाशुभम्
दुर्निवारः स कालश्च कालसाध्यजगत्सुच । उत्तिष्ठ मथुरां गच्छ सुखं घत्स मनोहरम्
व्रजवासं परित्यज्य भवांश्च गमनोत्सुकः । सुचिरंकृष्णविच्छेदो दुःखाय न सुखाय च
पश्य चन्द्रमुखं तस्य जन्ममृत्युजरापहम् । राधिकाघचनं धृत्या करोद भृशमुद्वयः ।

रुदन्ती राधिकां दृष्ट्वा बन्धुविच्छेदकातराम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीब्रह्मवेधर्च महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
राधोद्वयसंवादे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ।

पणवतितमोऽध्यायः

राधोद्वयसंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

श्रीकृष्णस्मरणं कृत्वा गमनोन्मुखमुद्वयम् । नतं राधापदाम्भोजे शिरसा पुलकाश्रितम्
उवाच माधवो गोपी रुदन्ती प्रेमविह्वला । भक्तं रुदन्तमुखैश्च राधाविच्छेदकातरम् ॥

माधव्युवाच ।

उद्वय शृणु वक्ष्यामि क्षणं तिष्ठ यथोचितम् ।

निगूढं परमं ज्ञानं यत्ते मनसि वाञ्छितम् ॥ ३ ॥

सुदुर्लभं पुराणेषु वेदेषु गोपनीयकम् । प्रश्नं कुरु महाभाग राधिकां त्रिजगत्प्रभम् ॥
इत्युत्तवा सा च गोपीशा समुवाचसुसंसदि । उवाचमाधुरं शान्तामुद्वयश्चापिराधिकाम्

उद्वय उवाच ।

एकाकी भवमायाति यात्येकाकी पुनः पुनः ।

प्राणी कर्मानुरोधेन स्वकर्मफलमुक् पुमान् ॥ ६ ॥

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलयेते । सुखं दुःखं भयं शोकः कर्मणैवाभिपद्यते ॥

जन्तुर्भोगावशेषेण भोगं भुङ्क्ते भवेयु च ।

पुनश्च कर्मणो भोगात्समायाति च याति च ॥ ८ ॥

रक्षादिकञ्च यत् किञ्चित् मह्यं दत्तं त्वया सति ।

मया सार्द्धं न यात्येष तेन मे किं प्रयोजनम् ॥ ९ ॥

भवाब्धितारणे देवी भवती तरणीवरा । कर्णधारः स्वयं कृष्णः सर्वेषां पारकारकः ॥

किञ्चिद्द्वानं देहि मह्यं भवाब्धिपारकारणम् ।

प्राप्य प्रसादं यास्यामि मथुरां कृष्णमूलकम् ॥ ११ ॥

यां यां कालगतिं मातः सुराणाञ्चनृणामपि । पितॄणां ब्रह्मलोकस्य तदूर्ध्वस्य च तां च द

तामेव दुस्तरां घोरां तीर्त्वा यामि हरेः पदम् । पवम्भूतमुपायञ्च देहि मे कमलालये ॥

दूरतोयत्पदाम्भोजं ध्यायन्तेच दिवानिशम् । देवा ब्रह्मेशोपाद्यास्तर्धतद्वक्षःस्थलस्थिता

उद्धवस्य वचः श्रुत्वा जहास कमलालया । वाससा नेत्रनीरञ्च संमार्जितमुवाच सा ॥

माधवीवचनेनैव करोषि प्रश्नमुद्धव । स्त्रीजातिरघला लोके किं वा ज्ञानं ददामि ते ॥

शुद्धां कालगतिं घत्स जानातिभगवान् हरिः । ब्रह्मा महेशः शेषश्च वेदाश्चत्वार एव च

किञ्चिद्वेदानुसारेण सन्तो जानन्ति पुत्रक । श्रूयताकृष्णवक्त्रेण गोलोके रासमण्डले ॥

गोलोके चापि वैकुण्ठे ब्रह्मलोके च साम्प्रतम् । या च दृष्टाकालगतिस्तामेव कथयामि ते

नृणां पितॄणां देवानां ब्रह्मलोकादिकस्य च ।

बहिलोकस्य ब्रह्माण्डात् पातालानाञ्च निश्चितम् ॥ २० ॥

दुरत्ययां कालगतिं येनोपायेन पण्डिताः । निस्तरन्ति युधश्चेष्ट कथयामि निशामय ॥

श्रीराधोवाच

भजन्ति जगतां नाथं कालकालं जगद्गुरुम् । निर्गुणञ्च निरीदञ्च परमात्मानमीश्वरम् ॥

सयःपतति देहोऽयं विनाये न सदात्मना । तं निषेव्य कालगतिं तरत्येव हि केवलम् ॥

आयुर्हरति सर्वेषां प्राणिनां रचिरेव च । श्रीहरेः शुद्धभक्तानां सतांपुण्यघटांघ्रिना ॥

विधेर्मानसिकान् पुत्रान् चतुरः पश्यपुत्रक । सनकादीन् भागवतान् येषां च सुस्थिरं वयः

रुद्राद्यान् वयसादित्यान् ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुन् । बालाननुपनीताश्च पञ्चवर्षशिशून् यथा ॥

अभ्यन्तरेमहास्फीतान्सस्मितांश्चदिग्भ्वान् । श्रीकृष्णध्यानपूतांश्चतीर्थपूतांश्चवेष्णवान्
वेदवेदाङ्गशास्त्राणां चिन्ताहीनान् प्रफुल्लितान् ।

भक्त्या दिवानिशं शश्वत् हरिभावेन तत्परान् ॥ २८ ॥

वाह्यपूजाविहीनांश्च पूतान् मानसिकांस्तथा ।

मृत्युञ्जयान् महाभागान् कालव्यालजितस्तथा ॥ २९ ॥

सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनम् । परं सनत्कुमारश्च ये स्मरन्ति च सर्वशः ॥

तीर्थस्नानफलं लब्ध्वा मुच्यन्ते कृतपातकात् । हरिभक्तिर्भवत्येषां हरिदास्यं लभन्ति च

मृकण्डुबालकं पश्य कर्मणा च द्विजोत्तमम् । दशवर्षायुतं तीव्रञ्चलन्तं ग्रहतेजसा ॥

हरिसेवनतः पश्चात् सप्तकल्पान्तजीवनम् । चौदुं पञ्चशिखं पश्य लोमकञ्चासुरिं तथा ॥

सर्वकर्मविहीनश्च हरिसेवनतत्परम् । शतकल्पायुपञ्चैव ध्यायमानं हरैः पदम् ॥ ३४ ॥

जमदग्नेः सुतं पश्य रामं तं चिरजीविनम् । हनुमन्तं चलिं व्यासमश्वत्थामानमेघ च ॥

विभीषणं रूपं विप्रं जाम्बवन्तश्चभल्लुकम् । हरिभावनया चैते शुद्धाः सुचिरजीविनः ॥

सिद्धेन्द्रेषु गरुडेषु नरेष्वग्रेषु चोद्धव । हरिभावनशुद्धाश्च सर्वे ते चिरजीविनः ॥ ३७ ॥

प्रह्लादं पश्य दैत्येषु हिरण्यकशिपोः सुतम् ।

हरिद्विपो दुरन्तस्य हरिभावनतत्परम् ॥ ३८ ॥

चिरायुषं कालजितं पश्यान्वञ्जाप्यसंहकम् । अनेकजन्मतपसा लब्ध्वा जन्म च भारते

ये हरिं तं न सेवन्ते ते मूढाः कृतपापिनः । वासुदेवं परित्यज्य विषये निरतो जनः ॥

त्यक्तधामृतं महामूढो विषं भुङ्क्ते निजेच्छया ।

कस्य स्त्री कस्य वा पुत्रः कस्य वा वान्धवास्तथा ॥ ४१ ॥

कः कस्य बन्धुर्विपदि श्रीकृष्णेन विना शुचि ।

तस्मात्सन्तः सदा कृष्णं भजन्त्येव दिवानिशम् ॥ ४२ ॥

जन्मृत्युजराव्याधिहरं सर्वहरं परम् । कालस्य तरणोपायं भजनं परमात्मनः ॥ ४३ ॥

आनन्दनन्दनस्यैव परिपूर्णतमस्य च । शृणु कालगतिं घटस मदीयज्ञानगोचराम् ॥ ४४ ॥

नराणाञ्च पितॄणाञ्च सुराणाञ्चापि ब्रह्मणः । नागानां राक्षसादीनां तत्परेषाञ्च पुत्रक ॥

कथयामि निगूढार्थं सावधानं निशामय । सर्वस्माच्च परस्थानः सर्वाधारो महान्विराट्
यस्य लोमसु विश्वानि चासंख्यानि च तानि च ।

सर्वस्माच्च परं सूक्ष्मं परमाणुं निशामय ॥ ४७ ॥

कालारम्भात्मकं सर्वमनूहं परमीप्सितम् । परमः सद्विशेषाणामनेको संयुतः सदा ॥
परमाणुः स विशेषो नृणामैक्यसमो यतः । परमाणुद्वयेनाणुस्रसरेणुस्तु ते त्रयः ॥ ४८ ॥
त्रसरेणुत्रिकेणापि वृष्टिरुक्ता मनोविभिः । वेधस्त्रुष्टिशतेनैव त्रिवेधेन लघुस्तथा ॥ ५० ॥
त्रिलयेन निमेषश्च त्रिनिमेषेण च क्षणः । काष्ठा पञ्चक्षणेनैव लघुश्च दशकाष्ठया ॥ ५१ ॥
लघु पञ्चदशं दण्डस्तत्प्रमाणं निशामय । द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः ॥ ५२ ॥

स्वर्णमापैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम् ।

दण्डद्वये मुहूर्तः स्यात् पण्डितिकात्मिका तिथिः ॥ ५३ ॥

तदष्टभागः प्रहरः प्रमाणञ्च निरूपणम् । चतुर्भिः प्रहरै रात्रिश्चतुर्भिर्दिनमुच्यते ॥ ५४ ॥

तिथिपञ्चदशेनैव पक्षमासं प्रकीर्तितम् । पक्षद्वयेन मासः स्याच्छुक्लकृष्णाभिधेन च ॥

श्रुतुर्मासद्वयेनैव तत्पदकेनैव वासरः ॥ ५६ ॥

यसन्तो ग्रीष्मवर्षाश्च शरद्धेमन्तशीतकः ।

वर्षाः पञ्चविधा ज्ञेयाः कालविद्विर्निरूपिताः ॥ ५७ ॥

संवत्सरः प्रवत्सर इलावत्सर एव च । अनुवत्सरो घटसरोऽयमिति कालविदो विदुः

अब्दो द्विपदकमासैश्च तन्नाम शृणु चोदय ।

यैशाखो ज्यैष्ठ आषाढः श्रावणो भाद्र एव च ॥ ५८ ॥

आश्विनः कार्तिको मार्गः पौषो माघस्तु फाल्गुनः ।

चैत्रस्तु चरमो ज्ञेयो वर्षदेशो निरूपितः ॥ ६० ॥

यसन्तश्चैत्रवैशाखमासयुग्मेन कीर्तितः । ज्यैष्ठाषाढद्वयेनैव ग्रीष्मस्तु परिकीर्तितः ॥ ६१ ॥

वर्षा श्रावणभाद्रे च ह्याश्विने कार्तिके शरत् ।

मार्गे पौषे च हेमन्तः शिशिरो माघफाल्गुने ॥ ६२ ॥

अम्बस्तु चायने द्वे वै चोत्तरे दक्षिणायने । माघादिषट्पिनिर्मितमुत्तरायणमाप्सितम् ।

श्रावणादिमसपङ्कं दक्षिणायनमेव च ॥ ६३ ॥

क्तं वृद्धेः श्रावणाद्याः पौषपर्यन्तमेव च । प्रतिपत्पूर्णाणामं तस्य शुरुपक्षः प्रकीर्तितः ॥ ६४ ॥
 पूर्णिमायाः प्रतिपदश्चामाघास्यन्त एव च । कृष्णपक्षस्तु चित्तेयो वेदविद्विर्निरूपितः ॥

द्वितीया च तृतीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा ।

षष्ठो च सप्तमी चैव षष्ठमी नवमी तथा ॥ ६६ ॥

[शम्येकाशी चापि द्वादशी च त्रयोदशी । चतुर्दशी कुहुर्याषद्दिनन्तु गणनं स्मृतम् ॥

अश्विनी भरणी चापि कृत्तिका रोहिणी तथा ।

मृगशिरा तथा द्वा च नक्षत्रे द्वे पुनर्वसु ॥ ६८ ॥

पुष्याश्लेषे मघा चैव पूर्वा चोत्तरफाल्गुनी ।

हस्तचित्रे तथा स्वाती पिशाखा चानुराधिका ॥ ६९ ॥

ज्येष्ठा मूलं तथा ज्येष्ठा पूर्वाषाढोत्तरा तथा । श्रवणाभिजिते चैव धनिष्ठा च प्रकीर्तिता
 ततः शतभिषा ज्येष्ठा पूर्वाभाद्रपदस्तथा । तथोत्तरा तु विज्ञेया रेवती चरमा स्मृता ॥

अष्टाविंशति नक्षत्रं कलत्रं शशिनस्तथा । क्रमेण तामिः सार्द्धञ्च चन्द्रस्तिष्ठति नित्यशः
 सप्तविंशतिनक्षत्रं कलत्रञ्च श्रुतो श्रुतम् । अभिजिच्छ्रवणच्छाया तेनाष्टाविंशतिः स्मृता

एकदा च मघी चन्द्रो रोहिण्या वामया सह ।

रेमे दिवानिशं नित्यं श्रवणा च चुकोप सा ॥ ७४ ॥

छायाञ्च दत्त्वा चन्द्राय ययी तातान्तिकं भिया ।

ततो पितरमादाय सा चक्रे च विभागकम् ॥ ७५ ॥

यभूव तेन नक्षत्रमभिजिन्नामकं पुरा । एतच्छ्रुत्वा कृष्णमुखाच्छतशृङ्गे च पर्वते "

नक्षत्रं कथितं वत्स, तिथ्या भ्रमति नित्यशः । योगञ्च करणञ्चैव मङ्गवज्रेण निशामय

विष्कम्भ. प्रीतिरायुष्मान् सोभाग्यशोभनस्तथा । अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलस्तथैव

गण्डो वृद्धिर्धुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा । घ्नं सिद्धिर्व्यतीपातो घरीयान् परिघः शिघ्र

सिद्धिः साध्यः शुभः शुको ब्रह्मोन्द्रो वैधुतिस्तथा ।

कीर्तितस्ते योगगणो करणं श्रूयतामिति ॥ ८० ॥

वयश्च बालवश्चैव कौलवस्तैतिलस्तथा । गरश्च वणिजश्चापि विष्टिश्च शकुनिस्तथा ॥
चतुष्पाद्यापिनागश्च किन्तुघ्न इतिकीर्तितम् । नराणाञ्चापिमासेन पितृणाञ्चदिवानिशम्
शुक्ले चापि दिनन्तेषां कृष्णे नक्तं प्रकीर्तितम् ।

घटसरेण नराणाञ्च सुराणाञ्च दिवानिशम् ॥ ८३ ॥

दिनन्तेषामुत्तरे च नक्तञ्च दक्षिणायने । मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः ॥ ८४ ॥
मनोरायुःपरिमितं शक्रस्यायुः प्रकीर्तितम् । पञ्चविंशत् सहस्रञ्च तथा पञ्चशतं परम् ॥
तत्र सूर्यगतिर्नास्ति शक्रपातानुसारतः । दिवानिशञ्च जानन्ति ब्रह्मलोकनिवासिनः ॥
वण्डद्वयं नरपलं शक्रपातेन तत्पलम् । एवं त्रिंशद्दिनेनैव धातुर्मासः प्रकीर्तितः ॥ ८७ ॥
अब्दो द्वादशभिर्मासै र्वं तस्य शतायुषः । ब्रह्माणः पतनेनैव निमेपात् श्रीहरेरपि ॥ ८८ ॥

धातुः पातानुसारेण वैकुण्ठेन दिवानिशम् ।

तत्र सूर्यगतिर्नास्ति चैवं गोलोक्तः स्मृतम् ॥ ८९ ॥

वैकुण्ठवासिनः सर्वे न वै जानन्त्यहर्निशम् ।

चन्द्रस्यापि ब्रह्मणाञ्च गतिर्नास्ति च तत्र वै ॥ ९० ॥

चक्रं नैव भ्रमत्येव राशीनामिच्छया हरेः । दिनञ्च तेजसा दीप्तं कृष्णस्य परमात्मनः ॥
नक्तं तेजोविहीनञ्च हरीं च मन्दिरं गते । एवं कालगतिस्तत्र विष्णुलोकेऽस्ति सन्ततम्
कालस्वरूपो भगवान् परमात्मा निराकृतिः । चन्द्रसूर्यगतिर्नास्ति पातालेषु च सप्तसु
तद्वासिनश्च जानन्ति शङ्कुन्ते न दिवानिशम् ।

दिने च मूर्ध्नि भागानां मणिर्ध्वलति नित्यशः ॥ ९४ ॥

सन्ध्यायां दीप्तमग्निश्च रात्रिश्च तमसावृता । कालन्ताग्रीप्रमाणेन जानन्ति तन्निवासिनः
यथा भुवि तथा तत्र परिमाणं प्रकीर्तितम् । कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥
दिव्यैर्द्वादशसाहस्रैर्वत्सरैश्चापि तन्मितम् । अष्टौ शतान्यप्यधिकं सहस्राणां चतुष्टयम्
दिव्यैर्वर्षैः कृतयुगं कालचिद्विनिर्गुणितम् ।

अष्टाविंशत् सहस्राण्यप्यधिकं परिमाणकम् ॥ ९८ ॥

लक्षणाञ्च सप्तदशनृमाणं परिकीर्तितम् । अधिकं पट्शतान्येव सहस्राणां शतं तथा ॥

उद्धवः सर्वमाकर्ण्य परमं विस्मयं ययौ । ज्ञानं सम्प्राप्य सपूर्णं परिपूर्णं बभूव ह ॥२७॥

स्रवस्त्रञ्च गले बद्ध्वा दण्डवत् प्रणनाम ताम् ।

मूर्ध्नः केशैश्च तत्पादं निबध्य च पुनः पुनः ॥ २८ ॥

गुलकाञ्चितसर्चाङ्गः साधुनेत्रश्च भक्तिः । तद्विच्छेदशुचा प्रेम्णा हरोदोद्धैश्च नारद ॥

हरोद् राधा तत्प्रेम्णा हरोद् बलवीमणः । उद्धवस्य गलं धृत्या स्थापयामास लोभतः

उद्धवं मूर्च्छितं दृष्ट्वा जृम्भितं त्यक्तचेतनम् । शीघ्रमुत्थापयामास राधिकाकृष्णमानसम्

चेतनं कारयामास जलं दत्त्वा मुखाम्बुजे । शुभाशिपञ्च प्रवदौ वत्स जीवेति नारद ॥

उद्धवश्चेतनं प्राप्य तामुवाच सुसंसदि । रुदन्तीनाञ्च गोपीनां पुरतः परमार्थदम् ॥३३॥

उद्धव उवाच ।

धन्यं यशस्यं द्वीपानां जम्बुद्वीपः सुदुर्लभः ।

यत्र भारतवर्षन्तु सर्वेषामोप्सितं धरम् ॥ ३४ ॥

अहो भारतवर्षेषु पुण्यं वृन्दावनं धनम् । राधापादाब्जसंस्पर्शरजःपूतं सुरेप्सितम् ॥

धन्या मान्या च पृथिवी त्रिषु लोकेषु पूजिता ।

राधायास्तीर्थपूतायाः पादाब्जरजसा धरा ॥ ३६ ॥

पट्टिर्वर्षसहस्राणि दिव्यानि पुष्करे पुरा ।

ब्रह्मणा च तपस्तप्तं वेदोक्तं भक्तिपूर्वकम् ॥ ३७ ॥

गोलोके राधिकाकृष्णदर्शनार्थं मनोरमात् ।

गोलोके राधिकाकृष्णो न दृष्टः स्वप्रतस्तदा ॥ ३८ ॥

श्रुता तेनाकाशवाणी सत्यरूपा च लीलया । चराहो भारते वर्षे पुण्ये वृन्दावने वने ॥

रासोत्सवे महारम्ये तत्रैव रासमण्डले । द्रक्ष्यसीति च देवानां मध्ये सुखो न संशयः

श्रुत्या च विरतो ब्रह्मा तपसः स्वगृहं गतः । कृष्णो दृष्टश्च दृष्टश्च परिपूर्णमनोरथः ॥

गोपानां गोपिकानाञ्च सफलं जन्म जीवनम् ।

नित्यं पश्यन्ति ते पादपद्मं ब्रह्मादिवुर्लभम् ॥ ४२ ॥

मानिनीं राधिकां सन्तः सदा सेवन्ति नित्यशः ।

योगीन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा वैष्णवास्तथा ॥ ४३ ॥

सतीं पुण्यां तीर्थपूतां स्वतःशुद्धां सुदुर्लभाम् ।

सुलभं यत्पदाम्भोजं ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम् ॥ ४४ ॥

यत्पादपद्मनखरं कृतं याचकचिह्नितम् । सर्वेश्वरेश्वरेणीव कृष्णेन परमात्मना ॥ ४५ ॥

चकार यस्याः पूजाञ्च स्तोत्रराजं सुदुर्लभम् ।

शतशृङ्गे स्वयं कृष्णो गोलोके रासमण्डले ॥ ४६ ॥

पारिजातप्रसूनानामञ्जलिं गन्धचन्दनम् । ददौ दूर्याक्षतं स्निग्धं यस्याः पादारविन्दयोः

त्रिशत्सहस्रकोटीनां गोपीनामीश्वरी च या ।

तत्पद्मत्रिशत्सखीनाञ्च ईश्वरी राधिकाभिधा ॥ ४८ ॥

ये वा द्विपन्ति निन्दन्ति पापिनश्च हसन्ति च ।

कृष्णप्राणाधिका देवदेवीञ्च राधिकां पराम् ॥ ४९ ॥

ब्रह्महत्याशतं ते च लभन्ते नात्र संशयः । तत्पापेन च पच्यन्ते कुम्भोपाके च रौरवे ॥

तप्ततैले महाघोरे ध्वान्ते कीटे च यन्त्रके । चतुर्दशेन्द्रायच्छिन्नं पितृभिः सप्तभिः सह

ततः परञ्च जायन्ते जन्मैकं लोकजन्मतः । दिव्यं वर्णसहस्रञ्च पिष्टाकीटाश्च पापतः ॥

पुंश्चलीनां योनिर्कीटास्तद्रक्तमलभक्षकाः । मलकीटाश्च तन्मानवर्णञ्च पूयभक्षकाः ॥

वेदै च फाण्वशापायामित्याह कमलोद्भवः ॥ ५३ ॥

इत्युक्तयन्तं तं यान्तमुपाच राधिका पुनः ।

रुदन्तञ्च रुदन्ती सा कृष्णविच्छेदकातरा ॥ ५४ ॥

श्रीराधिकोपाच ।

गच्छ घटस मधुपुरीं सर्वं बोधय माधवम् । यथा पश्यामि गोविन्दं प्रयत्नेन तथा कुह

निष्फलञ्च गतं जन्म गच्छ मिथ्या दुराशया ।

आशा हि परमं दुःखं नेराश्यं परमं सुखम् ॥ ५६ ॥

पश्चाद्विचिन्त्य गोविन्दं जीवन्मुक्ता बभूव सा ॥ ५७ ॥

इत्युत्तया राधिका तत्र दरोद च भृशं पुनः । प्रणम्य तां रुदन्तीं च यशोदानयनं ययौ

अथोद्धवे गते राधा मूर्छां सम्प्राप नारद । तत्याज चेतनं शश्वद् बभूव ध्यानतत्परा ॥
 ङ्कुस्थे पङ्कजदले सजले शयने मुने । गोप्यस्तां स्थापयामासुः साधुनेत्रोत्पला घराः
 तत्स्पर्शमात्राच्छयनं भस्मीभूतं बभूव ह । पुनःस्निग्धस्थले स्निग्धनिचोले चन्दनान्तिके
 पुनस्तां स्थापयामासुर्विरहज्वरकातराम् ।

सहसा शुष्कतां प्राप सुगन्धिचन्दनोदकम् ॥ ६२ ॥

निमेषेण शतयुगं तद् बभूवोद्धवं विना । हाहोद्धवोद्धव हरिं शीघ्रं गत्वा घदेति च ॥ ६३ ॥
 समानय हरिं शीघ्रं यत् प्राणेश्वरमित्यपि । इत्युक्तवचनां दीनां सन्तापहतचेतनाम् ॥

रुदुर्गोपिकाः सर्वा राधां कृत्वा स्वयक्षसि ।

चेतनां कारयामासुर्गोधयामासुरीप्सितम् ॥ ६५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
 राधोद्धवसंवादे सप्तमवतितमोऽध्यायः ।

अष्टमवतितमोऽध्यायः

कृष्णोद्धवसम्वादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथोद्धवो यशोदाञ्च प्रणम्य त्वरया मुदा । खजूरकाननं वामे कृत्वा च यमुनां ययौ ॥
 स्नात्वा भुक्त्वा च तत्रैव जगाम मथुरां पुनः । ददर्श घटमूले च गोविन्दं रहसिस्थितम्
 प्रफुल्लोऽप्युद्धवं दृष्ट्वा संस्मितं तमुवाच सः । रुदन्तं शोकदग्धञ्च साधुनेत्रञ्च कातरम्
 श्रीमगवानुवाच ।

आगच्छोद्धव कल्याणं राधा जीवति जीवति ।

कल्याणयुक्ता गोप्यश्च जीवन्ति विरहज्वरात् ॥ ४ ॥

॥ गोपशिशूनाञ्च घत्सानाञ्च गवामपि । माता मे पुत्रचिरहाद्यशोदा कीदृशी च सा

पद बन्धो यथार्थं तत्त्वां दृष्ट्वा किमुवाच न सा ।

त्वयोक्ता जननी किं वा पुनः सा किमुवाच माम् ॥ ६ ॥

दृष्टं तद्यमुनाकूलं पुण्यं वृन्दावनं वनम् । निर्जनो पवनोघैश्च सुरम्यं रासमण्डलम् ॥ ७

रम्यं कुञ्जकुटीरौघै रम्यं कीडासरोवरम् । पुष्पोद्यानं विकसितं सङ्कुलञ्च मधुमतैः ॥ ८

भाण्डीरै च घटो दृष्टः सुस्निग्धो बालकान्वितः ।

दृष्टो गोष्ठो गवां दृष्टं गोकुलं गोकुलप्रजम् ॥ ९ ॥

यदि जीवति राधा सा दृष्ट्वा तां किमुवाच माम् ।

तत्सर्वं पद द्वे बन्धो चान्दोलयति मे मनः ॥ १० ॥

किमूखुर्गोपिकाः सर्वाः किमूखुर्गोपबालकाः । गोपाश्च वृद्धाः किमूखुर्वयस्याजनकस्य ।

पलद्द्वेयस्य जननी किमूचे रोहिणी सती । किमूखुरपरास्तात बन्धुवत्प्रभवहृत्वाः ॥ ११ ॥

किं भुक्तं किमपूर्वं वा दत्तं मात्रा च राधया ।

कोदृक् पापयं सुमधुरं सभापा कीदृशीति च ॥ १२ ॥

गोपानां गोपिकानाञ्च शिशूनां मातुरेव च ।

राधायाश्चापि कोदृग् वा मयि प्रेमोद्धवादिक् ॥ १३ ॥

माञ्जस्मरति माता मे माञ्जस्मरति रोहिणी । माञ्जस्मरति सा राधा मत्प्रेमविरहाकुला

माञ्ज स्मरन्ति गोप्यश्च गोपाश्च गोपबालकाः ।

भाण्डीरै घटमूले च बालाः क्रीडन्ति मां धिना ॥ १६ ॥

वत्तमन्नं ब्राह्मणीभिर्यत्र भुक्तं सुधोषमम् । प्रमदाबालकैः सार्द्धं यत्तद्दृष्टं परीक्षितम् ॥

इन्द्रयागस्थलं दृष्टं दृष्टं गोवर्धनं वरम् । ब्राह्मणा च हृता गायो यत्र तद् दृष्टमुत्तमम्

श्रीकृष्णस्य घवः श्रुत्वा शोकोक्तं मधुरान्वितम् । उद्धवः समुवाचेदं भगवन्तं सनातनम्

उद्धव उवाच ।

यद्यवुक्तं त्वया नाथ सर्वं दृष्टं यथेप्सितम् । सफलं जीवनं जन्म कृतमत्रैव भारते ॥

दृष्टं भारतसारञ्च पुण्यं वृन्दावनं वनम् । तत्सारं प्रजभूमी च सुरम्यं रासमण्डलम् ॥

तत्सारभूता गोलोकवासिन्यो गोपिका पराः । दृष्टा तत्सारभूता च राधा रासेश्वरीपरा

दलीवनमध्ये च निर्जने सुहृदस्थले । पङ्क्त्ये पङ्क्तजदले सजले चन्दनार्चिते ॥ २३ ॥
यनेऽतिविपण्णा सा रत्नभूषणवर्जिता । अतीवमलिना क्षीणा छादिता शुक्लवाससा
विता सखीभिस्तत्र सततं श्वेतचामरैः । कुशोदरी निराहारा क्षणं श्वसिति च क्षणम्
क्षणं जीयति किं सा वा विरहउवरीडिता ।

किं वा जलं स्थलं किं वा नक्तं किं वा दिनं हरि ॥ २६ ॥

रं पशुं न जानाति किं परं किमु चान्धवम् । बाह्यज्ञानविरहिता ध्यायमाना पदं तव
लोक्ये यशसाभाति तन्मृत्युर्यशसम्ममः । स्त्रीहत्यां नैव वाञ्छन्ति ज्ञानहीनाश्चदस्यवः
च्छशीघ्रं जगन्नाथ कदलीवनमीप्सितम् । बहिर्भूता न जगतां सा राधा त्वत्परायणा
अतीवभक्ता न त्याज्या प्रभुणा रक्षिता सदा ।

न हि राधापरा भक्ता न भूता न भविष्यति ॥ ३० ॥

रन्मथःशङ्करादुभीतो भवांश्च तत्पुरःसरः । भवद्विधं पतिं प्राप्य कामवग्धा च राधिका
स्मात्सर्वपरं कर्म तच्च केनापि धार्यते । मधुर्वहति चन्द्रश्च सततं किरणेन च ॥ ३२ ॥
राश्वत्सुगन्धिवायुश्चाप्यनाथा सर्वपीडिता । तस्मात्स्वनवर्णाभा साधुना कज्जलोपमा ॥
सुपर्णवर्णकेशी च वासोवेशविचर्जिता । श्वयं विधाता त्वद्वक्त्रः सुराणां प्रपरो विभुः
त्वद्वक्त्रः शङ्करो दैवो योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः । सनत्कुमारस्त्वद्वक्त्रो गणेशो ज्ञानिनांवरः
मुनीन्द्राश्च फतिविधास्त्वद्वक्त्रा धरणीतले । त्वद्वक्त्रा यादृशीराधा न भक्तस्तादृशोऽपरः
ध्यायते यादृशी राधा स्य लक्ष्मीर्नतादृशी । हरिरायाति चेत्येवं राधाग्रे स्वीकृतमया
शीघ्रं गच्छ महामाग तदैव सार्थकं कुरु ॥ ३७ ॥

उद्धवस्य पचः श्रुत्वा जहासोवाच माधवः । वेदोक्तं कथयामास सहितं सत्यसुप्रतम्
श्रीमन्वाच ॥

स्त्रीषु धर्मविवाहेषु वृत्त्यर्थं प्राणसङ्कटे । गवामर्थे ब्राह्मणार्थे नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥
नत्स्याकारोवर्हीनेन कुतस्त्वं नरकं कुतः । गोलोकं यातिमद्वक्तो नरकं न हि पश्यति
चदङ्गीकारसाफल्यंकरिष्यामि तथापि च । यास्यामि स्थप्ते तन्मूलं गोपीतांमातुरेव च
इत्याकर्ण्य ययौ मेहमुदघश्च महायशाः । हरिर्जगाम स्थप्ते च गोकुलं चिरहाकुलम् ॥

स्वप्ने राधां समाश्वास्य दत्त्वा ज्ञानं सुदुर्लभम् ।

सन्तोष्य क्रीडया ताञ्च गोपिकाश्च यथोचितम् ॥ ४३ ॥

बोधयित्वा यशोदाञ्च स्तनं पीत्वा च निद्रिताम् ।

गोपान् गोपशिशूंश्चैव बोधयित्वा ययौ पुनः ॥ ४४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते मक्षापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

कृष्णोद्धवसंवादनकथनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ।

नवनवतितमोऽध्यायः

भगवदुपनयनवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे गङ्गे वसुदेवाश्रमं ययौ । दण्डी क्षत्री च जडिलो दीप्तश्च ब्रह्मतैजसा ॥

शुकुयज्ञोपवीती च तपस्वी संयतः सदा । शुकुदन्तः शुकुवासा यदोः कुलपुरोहितः ।

तं वृद्धा सहस्रोत्थाय देवकी प्रणनाम च । वसुदेवश्च भक्त्या च रत्नसिंहासनं ददौ ॥

मधुपर्कं कामधेनुं वह्निशुद्धांशुकं तथा । दत्त्वा गन्धं पुष्पमाल्यं पूजयामास भक्तितः ।

मिष्टान्नं परमान्नञ्च विष्टकं मधुरं मधु । भोजयामास यत्नेन ताम्बूलं वासितं ददौ ॥ ५ ॥

प्रणम्य कृष्णं मनसा सखलञ्च विलोम्य च । उवाच वसुदेवश्च देवकीञ्च पतिव्रताम्

गर्ग उवाच ।

वसुदेव निचोधेदं सचलं पश्य पुत्रकम् । उपनीतोचितं शुद्धं धयसा साम्प्रतं घरम्

वसुदेव उवाच ।

शुभक्षणं कुरु गुरो यदूनां पूज्यदेवते । उपनीतोचितं शुद्धं प्रशस्यञ्च सतामपि ॥ ८ ॥

गर्ग उवाच ।

सर्वेभ्यो यान्धवेभ्योऽपि देह्यामन्त्रणपत्रिकाम् । संभारं कुरु यत्नेन वसुदेव ! वसुपम

एवः शुभमेवास्ति शोपनेतुमिहार्हसि । दिनं सतामपि मतं विशुद्धं चन्द्रतारयोः ॥ १० ॥
 तस्य वचनं श्रुत्वा वसुदेवो वसुणमः । प्रस्थापयामास सर्वान् वन्धून्मङ्गलपत्रिकाम् ॥
 तकुल्यां दुग्धकुल्यां दधिकुल्यां मनोहराम् । मधुकुल्यां गुडकुल्यां प्रबकारसमन्वितः
 शिः नामोपहारानां मणिरत्नं सुवर्णकम् । नानालङ्कारवस्त्रञ्च मुक्तामाणिक्यहीरकम् ॥
 कृष्णो देवगर्गाश्च मुनीन्भ्रान्सिद्धपुङ्गवान् । सस्मारमनसाभक्त्याभक्तांश्चभक्तयत्सलः
 भेदिने च संप्राप्ते ते च सर्वे समाययुः । मुनीन्द्रा बान्धवा देवा राजानो बहुशस्तथा
 रक्ष्या नागकन्या राजकन्याश्च सर्वशः । विद्याधर्यश्च गन्धर्वाश्चाययुर्धाधभाण्डकाः
 ह्यणा भिक्षुका भट्टा यतयो ब्रह्मचारिणः । सन्यासिनश्चावधूता योगिनश्च समाययुः
 गीबान्धवास्त्वबन्धूनां वर्या मातामहस्य च । वन्धूनां बान्धवाः सर्वे स्वाययुःशुभकर्मणि
 त्पो द्रोणश्चकर्णश्चाप्यश्वत्थामाक्रुपो द्विजः । सपुत्रो धृतराष्ट्रश्चसभार्यश्च समाययौ

कुन्ती सपुत्रा विधवा हर्षशोकसमाप्लुता ।

नानादेशोद्भवा योग्या राजानो राजपुत्रकाः ॥ २० ॥

त्रिर्वशिष्ठश्चधनो भरद्वाजो महातपाः । याज्ञवल्क्यश्च भीमश्च वाग्यर्वा गर्गो महातपाः
 त्सः सपुत्रश्च धर्मो जैगीपयः पराशरः । पुलहश्च पुलस्त्यश्चाप्यनस्त्यश्चापि सौमरिः
 नकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवान् वोढुः पञ्चशिखस्तथा ॥

दुर्वासाश्चाङ्गिरा व्यासो व्यासपुत्रः शुक्रस्तथा ।

कुशिकः कौशिको राम ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ॥ २४ ॥

ङ्गी च वामदेयश्च गौतमश्च गुणार्णवः । क्रतुर्यतिश्चारुणिश्च शुक्राचार्यो बृहस्पतिः
 ष्टावको वामनश्च पारिमद्रश्च वाल्मिकिः । पैलो वैशम्पायनश्च प्रचेताः पुरुजित् तथा
 गुर्मरीचिर्मधुजित् कश्यपश्च प्रजापतिः । अदितिर्दधमाता च दितिर्दित्यप्रसूस्तथा ॥
 मन्त्रुश्च सुमानुश्च एकः कात्यायनस्तथा । मार्कण्डेयो लोमशश्च कपिलश्च पराशरः
 णिनिः पारियात्रश्च पारिमद्रश्च पुङ्गवः । संवर्त्तश्चाप्युतथ्यश्च नरोऽहश्चापि नारद ! ॥

पिप्पामित्रः शतानन्दो जाबालिस्तेतिलस्तथा ।

सान्दीपिनिश्च ब्रह्मांशो योगिनां ज्ञानिनां गुरुः ॥ ३० ॥

नवनवतित्तमोऽध्यायः] * भगवदुपनयने गणेशाभिषेकवर्णनम् *

१०६३

उपमन्युर्गोत्रमुखो मैत्रेयश्च श्रुतश्रपाः । फलः फलश्च फलसो भरद्वाजश्च धर्मचित् ॥ ३१ ॥
सशिष्या मुनयः सर्वे वसुदेवाश्रमं ययुः । वसुदेवश्च तान् दृष्ट्वा वचन्दे दण्डचक्रुचि ॥
अथास्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सस्मितो हंसवाहनः । रत्ननिर्माणयानेन पार्वत्या सह शङ्करः ॥

नन्दी स्वयं महाकालो वीरभद्रः सुभद्रकः ।

मणिभद्रः पारिभद्रः कार्तिकेयो गणेश्वरः ॥ ३४ ॥

गजेन्द्रेण महेन्द्रश्च धर्मश्चन्द्रो रविस्तथा । कुबेरो वरुणश्चैव पवनो वह्निरेव च ॥ ३५ ॥

यमः संयमिनीनाथो जयन्तो नलकूपरः । सर्वे ब्रह्माश्च वसवो रुद्राश्च सगणास्तथा ॥

आदित्याश्च तथा शैपो नानादेवाः समाययुः ।

वसुदेवश्च भक्त्या च वचन्दे शिरसा भुवि ॥ ३७ ॥

तुष्टाव परया भक्त्या देवेन्द्राश्च तथा सुरान् । भक्तिमन्नात्ममूर्ध्ना च पुलकाञ्चितविग्रहः

वसुदेव उवाच ।

परं ब्रह्म परं धाम परमेशः परात्परः । स्वयं विधाता मद्गुहे जगतां परिपालकः ॥ ३६ ॥

वेदाना जनकः स्रष्टा सृष्टिहेतुः सनातनः । सुराणाञ्च मुनीन्द्राणां सिद्धेन्द्राणागुरोर्गुरुः

स्वप्ने यत्पादपद्मञ्च क्षणं द्रष्टुं सुकुलंभम् । शिवस्मरणमात्रेण सर्वानिष्टाः पलायिताः

सर्वसङ्कटमुत्तीर्य कल्याण लभते नरः । सर्वाग्नि पूजनं यस्य देवानामग्रणीः परः ॥ ४२ ॥

घटेषु मङ्गलं मन्त्रैर्भक्त्या चावाहनेन च । स्वयं गणेशो भगवान् स साक्षाद्विप्रनायकः

कार्तिकेयश्च भगवान् देवादीनाञ्च पूजितः ।

देवानां प्रवरा पूज्या महालक्ष्मी परात्परा ॥ ४४ ॥

मद्गुहे पार्वती माता जगतामादिरूपिणी । सर्वशक्तिस्वरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ ४५ ॥

परापराणां परमा परब्रह्मस्वरूपिणी । यस्या अर्चां समाराध्य चाञ्छितं लभते नरः ॥

शतकाले च भक्त्या च सा साक्षान्मम मन्दिरे ।

सर्वदेवैश्च सहिता सगणा भक्तवत्सला ॥ ४७ ॥

रूपामयी च रूपया चाभिर्मृता च भारते । धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम ॥

आगतासि यतो दुर्गे परमाद्या च मद्गृहम् ।

एवं सर्वोश्च तुष्टाव क्रमेण च परस्परम् ॥ ४६ ॥

सर्वान् मुनीन्द्रान् विप्रांश्च गले यद्वांशुकं मुदा ।

प्रत्येकं धासयामास रत्नसिंहासने धरे ॥ ५० ॥

पूजयामास विधिवत् क्रमेण च पृथक् पृथक् । प्रत्येकं धरयामास ब्रह्मादींश्च सुरानपि
मुनिपदान् ब्राह्मणांश्च भक्त्या गर्गं पुरोहितम् ।

रत्नैः प्रवालैर्मणिभिर्मुक्तामाणिक्यहारकैः ॥ ५२ ॥

भूपणैर्वसनैश्चैव माल्यैश्च गन्धचन्दनैः । रत्नसिंहासने रम्ये सर्वेषां मध्यदेशतः ॥ ५३ ॥

गणेशं धरयामास पूजार्थं शुभकर्मणि । सप्ततीर्थोदकेनैव सुवर्णकलशेन च ॥ ५४ ॥

पुष्पचन्दनयुक्तेन शीतेन धासितेन च । स्वर्णगङ्गाजलेनैव पुष्करोदकपुण्यतः ॥ ५५ ॥

पञ्चासृतेन शुद्धेन पञ्चगव्येन भक्तितः । हेरम्यं स्नापयामास समुद्रोदेन मन्त्रतः ॥ ५६ ॥

धरयामास माल्येन पारिजातस्य नारद ! । रत्नेन्द्रभूषणेनैव बह्विशुद्धेन धासता ॥ ५७ ॥

गन्धचन्दनपुष्पैश्च रत्नमाल्याङ्गुलीयकम् । तुष्टाव पार्यतीपुत्रं सर्वदेवाधिपं शुभम् ।

विघ्ननिघ्नकरं शान्तं भगवन्तं सनातनम् ॥ ५८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

भगवदुपनयने गणेशाभिषेके नवमवतितमोऽध्यायः ।

शततमोऽध्यायः

भगवदुपनयनवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथादितिर्दितिश्चैव देवकी रोहिणी रतिः । सरस्वती च सावित्री यशोदा च पतिव्रता
लोपामुद्रारुन्धती च अहल्या वारका तथा । ययुस्ताः पार्वती दृष्ट्वा वेगेन मन्दिरादपि
परस्परञ्च संभाष्य समाश्लिष्य पुनः पुनः । प्रणम्य वेशयामासुर्मन्दिरं रत्ननिर्मितम् ॥

रदासिंहासने रम्ये पासयामासुरीक्षयतीम् । परयामास माल्येन पासस्ता रदाभूषणीः ॥
पारिजातस्य पुष्पञ्च शक्रानीतं मनोहरम् । वीक्षीं तत्पादपत्रे च द्वेषकी भक्तिपूर्वकम् ॥

सिन्दूरचिन्दुं सीमन्ते भाले चन्दनचिन्दुफल् ।

फस्तूरीकुङ्कुमादीन् प्रददौ परितस्तपोः ॥ ६ ॥

मिष्टान्नं भोजयामास शीततोयं सुपासितम् ।

ताम्रचूडञ्च परं रम्यं कपूरादिसुपासितम् ॥ ७ ॥

भलगाकञ्च प्रददौ नगेषु पादपत्रयोः । कुङ्कुमस्यापि रागञ्च सिंगेयं श्रेष्ठधाम्निः ॥ ८ ॥

संपूज्य पार्वतीं देवीं मुनिपत्नीः व्रजेन च । पूजयामास विधिवन् पतिपुत्रपत्नीः सतीः

राजकन्या देवकन्या नागकन्या मनोहराः । मुनिकन्या यम्बुकन्याः पूजयामास सुव्रतः

पाद्यं तानादिभ्यं रम्यं पादयामास कौतुकान् ।

मङ्गलं कारयामास भोजयामास प्राद्वृत्तान् ॥ ११ ॥

भैरवीं पूजयामास मधुराधामदेयताम् ।

उपनारीः पोटनभिः पादा मन्दलगण्डिकाम् ॥ १२ ॥

अनन्त उवाच ।

किंवा जानाम्यहं नाथ ! त्वामज्ञोऽनन्तमीश्वरम् ।

अनन्तकोटिब्रह्माण्डकारणं दुःखतारणम् ॥ २१ ॥

महाविष्णोश्चलोन्माञ्च विचरेपुजलेपुञ्च । सन्तिविश्वान्यसंख्यानिचित्राणिऋषिमाणिच
सन्तिसन्तश्च देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः । त्वदंशाःप्रतियम्वेषु तीर्थानि भारतं तथा
ब्रह्माण्डैकस्थितोऽहञ्च सूक्ष्मनागस्वरूपकः । स्थापितश्चत्वया कुर्मं गजेन्द्रे मशको यथा

परमाणु परं सूक्ष्मं विश्वेषु नास्ति कुत्रचित् ।

महाविष्णोः परं स्थूलं समो नास्ति च कुत्रचित् ॥ २५ ॥

महाविष्णोः परस्त्वञ्च तत्परो नास्ति कश्चन ।

स्थूलात् स्थूलतरो देवः सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमो महान् ॥ २६ ॥

आधारश्च महाविष्णो जलरूपो भवान् स्वयम् ।

जलाधारो हि गोलोकस्त्वञ्च स्थावररूपधृक् ॥ २७ ॥

सर्वाधारोमहान् घातुःश्वासनिःश्वासरूपकः । भक्तानुग्रहदेहस्यनित्यस्य भवतोविभोः
षक्त्रैर्यद्भुतरैर्वाथ त्वया दत्तैः पुरैव च । स्तोतुमिच्छामि त्वद्योगं न दत्तं ज्ञानमीश्वरम्
देवा ऊचुः ।

त्वामनन्तं यदि स्तोतुं देवोऽनन्तो नः ईश्वरः ।

न हि स्वयं विधाता च न हि ज्ञानात्मकः शिवः ॥ ३० ॥

सरस्वती जड्जीभूता किं कुर्मः स्तवनं वयम् ॥ ३१ ॥

मुनीन्द्रा ऊचुः ।

इ न शक्ता स्तोतुञ्चेत्वाञ्चैवज्ञानुमीश्वरम् । वयं वेदविदः सन्तः किं कुर्मः स्तवनंतव
इदंस्तोत्रं महापुण्यं देवैश्च मुनिभिःकृतम् । यः पठेत्संगतः शुद्धः पूजाकाले च भक्तिः
इहलोके सुखंभुक्त्वा लब्ध्वा ज्ञानं निरञ्जनम् । रत्नयानंसमारुह्य गोलोकं स च गच्छति
इति श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
भगवदुपनयने शततमोऽध्यायः ।

एकाधिकशततमोऽध्यायः

भगवदुपनयनवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

संस्तूय देवा मुनयो विरेमुश्चैव मानसे । ददृशुः प्राङ्गणे कृष्णं शोभितं पीतवाससा ॥
यथा सौदामिनीयुक्तं नवीनजलदं मुने ! । यकपङ्क्तियुतञ्चैव मालतीमालया तथा ॥
कपाले मण्डलाकारफस्तूरीयुक्तचन्दनम् । सकलङ्गं मृगाङ्गञ्च शोभितं जलदे तथा ॥३॥

द्विभुजं श्यामलं कान्तं राधाकान्तं मनोहरम् ।

ईषद्दास्यप्रसन्नास्यं भकानुग्रहविग्रहम् ॥ ४ ॥

रदाकेयूरपलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् । रुदन्तं पितुस्तसङ्गे यलेन सहितं परम् ॥ ५ ॥
अथ मङ्गलकाले च शुभमलने मनोरमे । संवीक्षिते ग्रहेः सौम्यैर्जाग्रद्व्याधिपे स्थिते ॥६॥
असद्वृग्रहेरदृष्टे च सद्वृग्रहेक्षित एव च । शुभकर्मसमात्मनं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ ७ ॥
चकार वसुदेवध्याप्याश्यामुरविप्रयोः । दत्त्वा सुवर्णशतकं द्वाह्मणाय च सादरम् ॥८॥
देवेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च नमस्कृत्य पुरोहितम् । गणेशञ्च दिनेशञ्च पङ्क्तिञ्च शङ्करं शिवाम्
सम्पूज्य देवपदञ्च साक्षतैर्देवसंसदि ।

उपचारैः षोडशभिः संयतो भक्तिपूर्वकम् ॥ १० ॥

पुत्राधिवासनं चक्रे वेदमन्येण संसदि । सम्पूज्य नानादेवांश्च दिक्पालांश्च नमप्रदान् ॥
दत्त्वा पञ्चोपचारांश्च भक्त्या षोडशमातृकाः । दत्त्वा च वसुधाराञ्च सप्तपारान् पुनरेव
चेदिराजं वसुं नत्वा सम्पूज्य प्रययौ पुनः । वृद्धिधातुं सुनिर्वाप्य यत्किञ्चिदेयिकंतथा
यत्तं दृष्ट्वा तु वेदोक्तं यत्नसूत्रं ददौ मुदा । यत्तदेवाप्रजायेव कृष्णाय परमात्मने ॥१४॥

सायग्रीञ्च ददौ ताम्र्यं मुक्तिः सार्द्धाग्निस्तथा ।

मिश्रां ददौ च प्रथमं पार्षतोपरमादरात् ॥ १५ ॥

भूम्यत्नपात्रस्थं मुकामाणि स्रहीरकम् । हीरसारविनिर्माणं विभ्रा दत्तञ्च हारकम् ॥
गुभाशिपञ्च प्रददौ शुरुपुष्पेन दूर्वया । ततोऽदितिर्दित्तिद्वयेव मुनिपरन्यध देयकी ॥

यशोदा रोहिणी हृष्टाः सावित्री च सरस्वती ।

प्रत्येकं प्रददौ भिक्षां मणिकाञ्चनभूषिताम् ॥ १८ ॥

देवकन्या नागकन्या राजकन्याः पतिव्रताः ।

कामिन्यो यान्धवानाञ्च सस्मिताः स्निग्धलोचनाः ॥ १९ ॥

इन्द्राणी चरुणानी च पवनानी च रोहिणी ।

कुयेरपत्नी स्वाहा च रतिः कामस्य कामिनी ॥ २० ॥

प्रत्येकं प्रददौ भिक्षां रत्नभूषणभूषिताम् । भिक्षां गृहीत्वा भगवान् सख्यलो भक्तिपूर्वकम्

फिञ्चिद्ददौ च गर्गाय फिञ्चित् स्वगुख्ये तथा ।

वैदिकं कर्म निर्वाप्य गर्गाय दक्षिणां ददौ ॥ २२ ॥

देवाश्च भोजयामास ब्राह्मणांश्चापि सादरम् ।

ये ये समाययुर्यज्ञे ते च दत्त्वा शुभाशिरम् ॥ २३ ॥

कृष्णाय यलदेवाय प्रहृष्टाः प्रययुर्गृहम् । नन्दः समाग्र्यो निर्वाप्य शुभकर्म सुतस्य वै

क्रोद्धे कृत्वा यलं कृष्णं बुबुध्व पदं तयोः । उच्चैः खरोद् नन्दश्च यशोदा च पतिव्रता ॥

श्रीकृष्णस्तं समाश्रयास्य बोधयामास यत्नतः ॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

सानन्दं गच्छ हे मातर्यशौदे तात ! सत्त्वम् ।

त्वमेव माता पोष्ठी त्वं पिता च परमार्थतः ॥ २६ ॥

अवन्तिनगरं तात ! यास्यामि सख्यलोऽधुना ।

मुने. सांदीपिनेः स्थानं वेदपाठार्थमीप्सितम् ॥ २७ ॥

तत आगत्य सुचिरं काले भवति दर्शनम् । कालः करोति कलनं स च भेदं करोति च

सर्वं कालकृतं मातर्भेदं संमीलनं नृणाम् । सुप्तं दुःखञ्च हर्षञ्च शोकञ्च मङ्गलालयम् ॥

मया दत्तञ्च तत्त्वञ्च योगिनामपि दुर्लभम् । सर्वं नन्दश्च सानन्दं त्वामेव कथयिष्यति

इत्युक्त्वा जगतां नाथो वसुदेवसमां ययौ । तदाज्ञया क्षणं प्राप्य ययौ सांदीपिनेर्गृहम्

वसुदेवं देवकीञ्च सम्भाष्य चिन्तयेन च । नन्दः समाग्र्यः प्रययौ हृदयेन विदूषता ॥

द्वयधिकशततमोऽध्यायः] * विद्यापठनार्थं सान्दीपिनिगुरुसमीपे गमनम् * १०६६

मुक्तामणिं सुवर्णञ्च माणिक्यहीरकं तथा । वह्निशुद्धांशुकं रत्नं नन्दाय देवकी ददौ ॥
 श्वेताश्वञ्च गजेन्द्रञ्च सुवर्णं रथमुत्तमम् । नन्दाय कृष्णः प्रददौ वसुदेवश्च सादरम् ॥
 तयोरनुग्रजन् विप्रा देवकीप्रमुखाः स्त्रियः । वसुदेवस्तथाकूरोऽप्युद्धवश्च ययौ मुदा ॥
 कालिन्दीनिकटं गत्वा ते सर्वे रुरुदुः शुचा । परस्परञ्च सम्भाष्य ते सर्वे स्वालयं ययुः
 कुन्ती सपुत्रा विधवा वसुदेवाश्रया मुने । नानारत्नमणिं प्राप्य प्रययौ स्वालयं मुदा ॥
 वसुदेवो देवकी च पुत्रकल्याणहेतवे । नानारत्नमणिं वस्त्रं सुवर्णं रजतं तथा ॥ ३८ ॥
 मुक्तामाणिक्यहारञ्च मिष्टान्नञ्च सुधोपमम् । भट्टेभ्यो द्राह्मणेभ्यश्च प्रददौ सावरं मुदा ॥
 महोत्सवं वेदपाठं हरेर्नामैकमङ्गलम् । विप्राणां भोजनञ्चैव कारयामास यत्नतः ॥ ४० ॥

शतीनां पान्धवानाञ्च पुरस्कारं यथोचितम् ।

चकार मणिमाणिक्यमुक्तावस्त्रैर्मनोहरैः ॥ ४१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

भगवदुपनयनं नामैकशततमोऽध्यायः ।

द्वयधिकशततमोऽध्यायः

विद्यापठनार्थं सान्दीपिनिगुरुसमीपे श्रीकृष्णस्य गमनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

कृष्णः सान्दीपिनेर्गेहं गत्वा च सखलो मुदा ।

नमश्चकार स्वगुरुं गुरुपत्नीं पतिव्रताम् ॥ १ ॥

शुभाशिरं गृहीत्वा च दत्त्वा रत्नं मणिं हरिम् ।

गुरवे तस्य भार्यायै तमुवाच यथोचितम् ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

त्पत्तो विद्यां लग्न्यामि पाण्डितां पाण्डितं मम ।

कृत्वा शुभक्षणं विप्र मां पाठय यथोचितम् ॥ ३ ॥

भोमित्युक्त्वा मुनिश्रेष्ठः पूजयामास तं मुदा । मधुपर्कप्राशनेन गवा घस्त्रेण चन्दनैः ॥
मिष्टान्नं भोजयामास ताम्बूलञ्च सुपासितम् । सुप्रियं कथयामास तुष्टाप परमेश्वरम् ॥

सान्दीपिनिष्याच ।

परं ब्रह्म परं धाम परमीश परात्पर । स्वेच्छामयं स्वयं उयोतिर्निर्लिप्तेको निरदुःशः ॥६॥
भक्तैकनाथ भक्तैष्ट भक्तानुग्रहप्रियह । भक्त्याञ्छाकल्पतरो भक्तानां प्राणघल्लभ ॥ ७ ॥
मायया पालरूपोऽसि ब्रह्मेशशेषवन्दितः । मायया भुवि भूपालो भुयो भारक्षयाय च
योगिनो यं विदन्त्येवं ब्रह्मउयोतिः सनातनम् ।

ध्यायन्ते भक्तनिघडा उयोतिरभ्यन्तरे मुदा ॥ ६ ॥

द्विभुजं मुरलीहस्तं सुन्दरं श्यामरूपकम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सस्मितं भक्तघटसलम्
पीताम्बरधरं देवं धनमालाविभूषितम् । लीलापाङ्गवरंगेश निन्दितानङ्गमूर्च्छितम् ॥११॥
अलकमयनं तद्वत्पादपद्मं सुशोभनम् । कौस्तुभोद्भासिताङ्गञ्च दिव्यमूर्ति मनोहरम् ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नञ्च सुवेशं प्रस्तुतं सुरैः । देवदेवं जगन्नाथं त्रैलोक्यमोहनं परम् ॥ १३ ॥
कौटिकन्दर्पलीलाभं कमनीयमनीश्वरम् । भ्रमूर्यरत्ननिर्माणभूषणोद्ये न भूषितम् ॥
वरं वरेण्यं वरदं वरदानाभमीप्सितम् ॥ १४ ॥

चतुर्णामपि वेदानां कारणानाञ्च कारणम् । पाठार्थमत्प्रियस्नानमागतोऽसि च मायया
पाठं ते लोकशिक्षार्थं रमणं गमनं रणम् । स्वात्मारामस्य च विभोः परिपूर्णतमस्य च
गुरुपत्न्युवाच ।

अद्य मे सफलं जन्म सफलं जीवनं मम । पातिव्रत्यञ्च सफलं सफलञ्च तपोवनम् ॥
महक्षहस्तं सफलो दत्तं येनाग्रमीप्सितम् । तदाश्रमं तीर्थपर तीर्थपादपदाङ्कितम् ॥
तत्पादरजसा पूता गृहाः प्राङ्गणमुत्तमम् ॥ १८ ॥

यस्य त्वत्पादपद्मञ्चैवावयोर्जन्मखण्डनम् । तावद् दुःखञ्च शोकञ्च तावद्भोगञ्च रोगकः
तावज्जन्मानि कर्माणि श्रुतिपासादिकानि च ।

यावत्त्वत्पादपद्मस्य भजनं नास्ति दर्शनम् ॥ २० ॥

हे फालकाल भगवन् स्रष्टुः संहर्तुरीश्वर । रुपां कुरु रूपानाथ मायामोहनिरुन्तन ॥२१॥

इत्युक्त्वा साधुनेत्रा सा क्रोद्धे कृत्वा हरिं पुनः ।

स्वस्तनं पाययामास प्रेम्णा च देवकी यथा ॥ २२ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

मातस्त्वं मां कथं स्तौषि बालं दुग्धमुखं सुतम् ।

गच्छ गोलोकमिष्टञ्च स्वामिना सह साम्प्रतम् ॥ २३ ॥

त्यक्त्वा प्राकृतिकं मिथ्या नश्यञ्च फलेवरम् । विधाय निर्मलं देहं जन्ममृत्युजराहरम्

इत्युक्त्वा चतुरो वेदान् पठित्वा मुनिपुङ्गवात् । मासेन परया भक्त्या दत्त्वा पुत्रं मृतं पुरा

रत्नानाञ्च त्रिलक्षञ्च मणीनां पञ्चलक्षकम् । हीरकाणां चतुर्लक्षं मुक्तानां पञ्चलक्षकम्

माणिक्यानां द्विलक्षञ्च वस्त्रं त्रैलोक्यदुर्लभम् ।

हारञ्च दुर्गया दत्तं हस्तरत्नाङ्गुलीयकम् ॥ २७ ॥

दशकोटिं सुवर्णानां गुरवे दक्षिणां ददौ । भूम्यरत्ननिर्माणं नारीसर्वाङ्गभूषणम् ॥

गुहप्रियायै प्रददौ वह्निशुद्धांशुकं वरम् । मुनिर्दत्त्वा च पुत्राय तत्सर्वं प्रियया सह ॥

सद्गुणरथमारुह्य ययौ गोलोकमुत्तमम् । तमद्भुतं हरिं दृष्ट्वा प्रययौ स्वालयं मुदा ॥

एवं ब्रह्मण्यदेवस्य चरित्रं शृणु नारदम् । इदं स्तोत्रं महापुण्यं यः पठेद्वक्तिपूर्वकम् ॥३१॥

श्रीकृष्णे निश्चलां भक्तिं लभते नात्र संशयः । भस्मपृकीर्त्तिः सुयशा मूर्ध्नाभयति पण्डितः

एह लोके सुखं प्राप्य यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् । तत्र नित्यं हरेर्दास्यं लभते नात्र संशयः

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मपण्डे

मुनिपत्नीस्तोत्रं नाम द्वयधिकशततमोऽध्यायः ।

अधिकशततमोऽध्यायः

द्वारकानिर्माणवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

आगत्य मधुपुरी प्रणश्य पितरं विभुः । सखलो घटमूले च सस्मार गरुडं हरिः ॥१॥
आदरं लघणोदञ्च विश्वकर्माणमीप्सितम् । तत्याज गोपवेशञ्च नृपवेशं दधार सः ॥२॥
एतस्मिन्नन्तरे चक्रमाजगाम हरिं स्वयम् । परं सुदर्शनं नाम सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥३॥
तेजसा हरिणा तुभ्यं परं वैरिचिदर्शनम् । अभ्यर्थमस्त्रमस्त्राणां प्रवरं परमं परम् ॥४॥
एतयानं पुरःकृत्वा गरुडो हरिसन्निधिम् । विश्वकर्मासशिष्यश्च जलधिः कम्पितस्तथा
हरिं प्रणेमुस्ते सर्वे मूर्ध्ना च भक्तिपूर्वकम् । सस्मितं सादरं यत्तात्तानुवाच क्रमाद्विभुः
श्रीकृष्ण उवाच ।

हे समुद्र महाभाग स्थलञ्च शतयोजनम् ।

देहि मे नगरार्थञ्च पश्चाद्वास्यामि निश्चितम् ॥ ७ ॥

नगरं कुरु हे कारो त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । रमणीयञ्च सर्वेषां कमनीयञ्च योषिताम् ॥
वाञ्छितञ्चापि भक्तानां वैकुण्ठसदृशं परम् । सर्वेषामपि स्वर्गाणां परम्पारमभीप्सितम्
दिवानिशं स्वगश्रेष्ठ सन्निधौ विश्वकर्मणः ।

स्थितिं कुरु महाभाग यावन्निर्माति द्वारकाम् ॥ १० ॥

दिवानिशञ्च मत्पाश्वे चक्रश्रेष्ठ स्थितिं कुरु ।

ओमित्युक्त्वा तु प्रययुः सर्वे चक्रं धिना मुने ॥ ११ ॥

कंसस्य पितरं भद्रमुग्रसेनं महाबलम् । नृपं चकार नगरे क्षत्रियाणां सतामपि ॥ १२ ॥
विजित्य च जरासन्धं निहत्य यघनं तथा । उपायेन महाभाग निर्माणक्रममीश्वरः ॥

श्रीभगवानुवाच ।

शतयोजनपर्यन्तं नगरं सुमनोहरम् । पद्मरागैर्मरकतैरिन्द्रनीलैरनुत्तमैः ॥ १४ ॥

रुचकैः पारिभद्रेश्च पलङ्केश्च स्यमन्तकैः । गन्धकैर्गालिमैश्चैव चन्द्रकान्तादिभिस्तथा ॥

सूर्यकान्तादिभिश्चैव पुत्रेश्च स्फाटिकाकृतैः ।

हरिर्णिश्च मणिभिः श्यामैर्गौरमुखैश्चपैः ॥ १६ ॥

गोरोचनाभिः पीतैश्च दाडिमीषीजरूपकैः । पद्मवीजनिभैश्चैव नीलैः कमलवर्णकैः ॥

मणिभिः कज्जलाकारेरुज्ज्वलैश्च परिष्कृतैः । श्वेतचम्पकवर्णभैस्तप्तकाञ्चनसन्निभैः ॥

स्वर्णमूल्यशतगुणैरीपद्रुकैः सुशोभनैः । गरिष्ठैश्च वरिष्ठैश्च मणिश्रेष्ठैश्च पूजितैः ॥ १७ ॥

यथाविधानं यद्योगं यत्र यन्मुक्तमीप्सितम् ।

मणीनां हरणञ्चैव यक्षसङ्घा हिमालयात् ॥ २० ॥

दिवानिशं करिष्यन्ति यावन्निर्माणपूर्वकम् । यक्षैश्च सप्तभिर्लक्षैः कुयेरप्रेरितैरपि ॥ २१ ॥

वेताललक्षैः कुम्भाण्डलक्षैः शङ्खुरयोजितैः । दानवैर्ब्रह्मरक्षोभिः शैलकन्यानियोजितैः ॥

कुर्वन् दिव्यञ्च परानीनां सहस्राणाञ्च पोङ्गशः । अम्पपत्नीजनस्यापि चाष्टाधिकशतस्य च

शिविरं परित्वायुक्तमुच्चैः प्राकारवेष्टितम् । युक्तद्वादशशालञ्च सिंहद्वारपरिष्कृतम् ॥ २४ ॥

युक्तञ्चित्रैर्विचित्रैश्च कृत्रिमैश्च कपाटकैः । निषिद्धवृक्षरहितं प्रसिद्धैश्च परिष्कृतम् ॥

सुलक्षणं चन्द्रवेधं प्राङ्गणञ्च तथैव च । यदूनामाश्रमं दिव्यं किङ्कराणां तथैव च ॥ २६ ॥

सर्वप्रसिद्धं निलयमुप्रसेनस्य भूतृतः । आश्रमं सर्वतोभद्रं वसुदेवस्य मत्पितुः ॥ २७ ॥

विश्वकर्मावाच ।

के ते वृक्षाः प्रशस्ताश्च निषिद्धाश्चापि केचन ।

भद्राभद्रप्रदाश्चापि तान् वदस्व जगद्गुरो ॥ २८ ॥

केषामस्मिन्नियुक्तञ्च शिविरञ्च शुभाशुभम् । दिशि कुत्र जलं भद्रमभद्रञ्च वद प्रभो ॥

भद्रप्रदञ्च को वृक्षो दिशि कुत्र प्रवर्तते । किं प्रमाणं गृहाणाञ्च प्राङ्गणानां सुरेश्वर ॥

मङ्गलं कुसुमोद्यानं दिशि कुत्र तरोस्तथा । प्राकाराणां किं प्रमाणं परित्वा ना सुरेश्वर

द्वाराणाञ्च गृहाणाञ्च प्राकाराणां प्रमाणकम् ।

कस्य कस्य तरोः काष्ठं प्रशस्तं शिविरे प्रभो ।

अमङ्गलं वा केवाञ्च सर्वं मां वक्तुमर्हसि ॥ ३२ ॥

।

श्रीभगवानुवाच ।

आश्रमे नारिकेलश्च गृहिणाञ्च धनप्रदः । शिविरस्य यदीशाने पूर्वे पुत्रप्रदस्तथः ॥ ३३ ॥

सर्वत्र मङ्गलार्हश्च तद्वराजो मनोहरः ।

रसालवृक्षः पूर्वस्मिन् नृणां सम्पत्प्रदस्तथा ॥ ३४ ॥

शुभप्रदश्च सर्वत्र सूरकारो निशामय । विल्वश्च पनसश्चैव जम्बीरो घदरी तथा ॥ ३५ ॥

प्रजाप्रदश्च पूर्वस्मिन् दक्षिणे धनदस्तथा । सम्पत्प्रदश्च सर्वत्र यतो हि वर्द्धते गृही ॥

जम्बूवृक्षश्च दाडिम्यः कदल्याम्रातकस्तथा । यन्धुप्रदश्च पूर्वस्मिन् दक्षिणे मित्रदस्तथा

सर्वत्र शुभदश्चैव धनपुत्रशुभप्रदः । हर्षप्रदो सुवाकश्च दक्षिणे पश्चिमे तथा ॥ ३८ ॥

ईशाने सुखदश्चैव सर्वत्रैव निशामय । सर्वत्र चम्पकः शुद्धो भुवि भद्रप्रदस्तथा ॥ ३९ ॥

भलाम्बुध्वापि कूष्माण्डमायाम्बुश्च सर्किशुकः ।

खर्जुरी कर्कटी चापि शिविरे मङ्गलप्रदा ॥ ४० ॥

पास्तूफकारविल्वश्च वार्ताकुश्च शुभप्रदः ॥ ४१ ॥

लताफलञ्च शुभदं सर्वं सर्वत्र निश्चितम् । प्रशस्तं कथितं कारो निपिद्धञ्च निशामय ।

वन्यवृक्षो निपिद्धश्च शिविरे नगरेऽपि च ॥ ४२ ॥

घटो निपिद्धः शिविरे नित्यं चौरभयं यतः । नगरेषु प्रसिद्धश्च दर्शनात् पुण्यदस्तथा ॥

निपिद्धः शाल्मलिश्चैव शिविरे नगरे पुरे ।

दुःखप्रदश्च सततं भूमिपानां सदापि च ॥ ४४ ॥

न निपिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च । विद्यामतिनिपिद्धश्च सततं दुःखदस्तथा ॥

हे कारो तिल्लिङ्गावृक्षो यत्नात्तं परिवर्जयेत् ।

शतेन धनहानिः स्यात् प्रजाहानिर्भवेद् धुधम् ॥ ४६ ॥

शिविरेऽतिनिपिद्धश्च नगरे किञ्चिदेव च । न निपिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च ॥

विद्यामतिनिपिद्धश्च प्राज्ञस्तं परिवर्जयेत् । खर्जूरश्च गहुश्चैव निपिद्धः शिविरे तथा ॥

न निपिद्धः प्रसिद्धश्च ग्रामेषु नगरेषु च । वृक्षश्च चणकादिनां धान्यञ्च मङ्गलप्रदम् ॥

ग्रामेषु नगरे चापि शिविरे च तथैव च । श्ववृक्षश्च शुभदः सन्ततं शुभदस्तथा ॥ ५० ॥

अशोकश्च शिरीषश्च कदम्बश्च शुभप्रदः ।

कच्चित् हरिद्रा शुभदा शुभदश्चार्द्रकस्तथा ॥ ५१ ॥

हरीतकी च शुभदा ग्रामेषु नगरेषु च ।

नवाद्या भद्रदा नित्यं तथा चामलकी ध्रुवम् ॥ ५२ ॥

गजानामस्थिशुभदमश्वानाञ्च तथैव च । कल्याणमुखैःश्रवसां वास्तौ स्थापनकारिणाम्

न शुभप्रदमन्येषामुच्छिन्नकारणं परम् । घानराणां नराणाञ्च गर्दभानां गवामपि ॥ ५४ ॥

कुङ्कुटानां शृगालानां मार्जारानामभद्रकम् । भेटकानां शूकराणां सर्वेषाञ्च शुभप्रदम् ॥

ईशाने चापि पूर्वस्मिन् पश्चिमे च तथोत्तमे । शिविरस्य जलं भद्रमन्यत्राशुभमेव च ॥

दोर्ध्वं प्रस्थे समानञ्च न कुर्व्यान्मन्दिरं बुधः ।

चतुरस्रे गृहे फारो गृहिणां धननाशकम् ॥ ५७ ॥

दीर्घः प्रस्थः परिमितो नैत्राङ्केनापि संहृतम् ।

शून्येन रहितं भद्रं शून्यं शून्यप्रदं नृणाम् ॥ ५८ ॥

प्रस्थे हस्तद्वयात् पूर्वं दीर्घे हस्तत्रयं तथा ।

गृहाणां शुभदं द्वारं प्राकारस्य गृहस्य च ॥ ५९ ॥

न मध्यदेशे कर्त्तव्यं किञ्चिन्न्यूनाधिके शुभम् । चतुरस्रं चन्द्रवैधं शिविरं मङ्गलप्रदम् ॥

अभद्रदं सूर्यवैधं शिविरं मङ्गलप्रदम् । अभद्रदं सूर्यवैधं प्राङ्गणञ्च तथैव च ॥ ६१ ॥

शिविराभ्यन्तरे भद्रा स्थापिता तुलसी नृणाम् ।

धनपुत्रप्रदात्री च पुण्यदा हरिभक्तिदा ॥ ६२ ॥

अभाते तुलसीं दृष्ट्वा स्वर्णदानफलं लभेत् । मालती यूथिका कुन्दमाधवी केतकी तथा

नागेश्वरं महिकाञ्च काञ्चनं चकुलं शुभम् ।

अपराजिता च शुभदा तेषामुद्यानमोप्तिनम् ॥ ६४ ॥

पूर्वं च दक्षिणेचैव शुभदं नात्र संशयः । ऊर्ध्वं षोडशहस्तेभ्यो नैव कुट्याद् गृहं गृहो

ऊर्ध्वं विंशतिहस्तेभ्यः प्राकारं न शुभप्रदम् ।

सूत्रधारं तैलधारं स्वर्णकारञ्च हीरकम् ॥ ६६ ॥

घाटीमूले ग्राममध्ये न कुर्यात् स्थापनं बुधः । ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं सच्छूद्रं गणकं शुभम् ।
भट्टं वैद्यं पुष्ककारं स्थापयेच्छिबिरान्तिके । प्रस्थे च परिखामानं शतहस्तं प्रशस्तकम् ।
परितः शिबिराणाञ्च गम्भीरं दशहस्तकम् । सङ्केतपूर्वकञ्चैव परिखाद्वारमीप्सितम् ॥

शत्रोऽगम्यं मित्रस्य गम्यमेव सुखेन च ।

शात्मलीनां तित्तिङ्गीनां हिन्तालानां तथैव च ॥ ७० ॥

निग्नानां सिन्धुचारानामु(म)भ्यराणामभद्रकम् ।

धत्तूराणां घटानाञ्चाप्येरण्डानामवाञ्छितम् ॥ ७१ ॥

पतेयामतिरिक्तानां शिबिरे काष्ठमीप्सितम् । वृक्षञ्च वज्रहस्तञ्च भूधरो वर्जयेद्बुधः ॥
पुत्रदारधनं हन्यादित्याह कमलोद्भवः । कथितं लोकशिक्षार्थं कुरु काष्ठं घना पुरीम् ॥
शुभक्षणञ्चाप्यधुना गच्छ घटस यथा सुखम् । विश्वकर्मा हरिं नत्वा जगाम पक्षिणा सह ।
समुद्रस्य समीपञ्च घटमूलं मनोहरम् । सुष्वाप तत्र नक्तं च कायश्च पक्षिणा सह ॥

स्वप्ने द्वारवर्ती रम्यां ददर्श गरुडस्तथा ।

यत्किञ्चित् कथितं कारुं कृष्णेन परमात्मना ॥ ७६ ॥

तदेव लक्षणं सर्वं ददर्श नगरे मुने ।

कारु हसन्ति स्वप्ने च सर्वे ते शिल्पकारिणः ॥ ७७ ॥

गरुडं गरुडाश्चान्ये यत्नवन्तश्च पक्षिणः । बुद्धो ददर्श गरुडो विश्वकर्मा च लज्जितः ।
भर्ता च द्वारकां रम्यां शतयोजनविस्तृताम् ।

ब्रह्मादीनाञ्च नगरं विजित्य च विराजिताम् ।

तेजसाच्छादितं सूर्यं रत्नानाञ्च परिष्कृताम् ॥ ७८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

द्वारकानिर्माणारम्भे ज्यधिकशततमोऽध्यायः ।

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

द्वारकादर्शनार्थं देवादीनामागमनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

ऋस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा भवान्या च भवः स्वयम् । अनन्तश्चापि धर्मश्च भास्करश्च हुताशनः
येरो वरुणश्चैव पवनश्च यमस्तथा । महेन्द्रश्चापि चन्द्रश्च रुद्राश्चैकादशैव ते ॥ २ ॥

अन्ये देवाश्च मुनयो वसवः सप्त एव च ।

आदित्याश्चापि दैत्याश्च गन्धर्वाः किन्नरास्तथा ॥ ३ ॥

अयुर्द्वारकां व्रष्टुं श्रीरुष्णञ्च घलं तथा । आगच्छन्तञ्च सहसा घटमूलं मनोहरम् ॥

दृष्ट्वा च देवताः सर्वास्तुष्टुः पुरुषोत्तमम् ॥

आकाशाच्च विमानैश्च सम्प्राप्य घटमूलकम् ॥ ५ ॥

शुद्धारकां रम्यामतीवसुमनोहराम् । मुक्तामाणिक्यहरेण रत्नराजिविराजिताम् ॥ ६ ॥

परितश्चतुरस्त्राञ्च शतयोजनसंमिताम् ।

सप्तभिः परिखाभिश्च गम्भीराभिश्च वेष्टिताम् ॥ ७ ॥

कारेनैवभिर्युक्तां लक्षैः क्रीडासरोधरैः । मनोहरैः सपद्मैश्च सहितैश्च मधुघटैः ॥ ८ ॥

शोमितां सर्वतोभद्रैः पुष्पोद्यानत्रिलक्षकैः । प्रफुल्लपुष्पैः पवनैः सर्वत्र सुरभीकृताम् ॥ ९ ॥

आमोदिताश्च शीतेन मन्दचन्दनवायुना ।

तरुभिर्नारिकेलानां शोमितां शतकोटिभिः ॥ १० ॥

पाकानाञ्च वृक्षैश्च भूषितां तच्चतुर्गुणैः । चतुर्गुणैर्गुवाकानां युक्तामाप्रमहीरुहैः ॥ ११ ॥

शोमितां पनसानाञ्च वृक्षैराप्रसमैर्मुने । सुशोमिताञ्च तालानां द्रुमैराप्रसमैर्मुने ॥ १२ ॥

अश्वत्थैर्वदरीभिश्च चित्त्वैराप्रातर्कैर्वटैः ।

शाल्मलीभिश्च जम्बूभिः कदम्बैश्चापि शोमिताम् ॥ १३ ॥

शैश्च तिन्तिडीभिश्च चम्पकैर्चकुलैस्तथा । नागेश्वरैर्नागरङ्गैर्जम्बीरैर्दाडिमैर्युक्ताम् ॥ १४ ॥

खजूरैरजुनैः पिष्टैरिक्षुभिः काञ्चनैरपि ।

हरीतकीभिर्घात्रीभिस्त्रिदुभिः परितः प्लुताम् ॥ १५ ॥

शालैः प्रियालैर्हिन्तालैः शिशिरैः सप्तपर्णकैः । अन्यैर्नानादुमैरिष्टैरिष्टां युक्तां परिप्लुताम्
असंख्यैर्मन्दिरै रस्यैरत्युच्चैरपि संस्कृताम् । रत्नेन्द्रसारनिर्माणैर्मुक्तामाणिक्यभूषितैः ॥
माणिक्यहरिकैश्चित्रैः सद्रत्नकलशान्वितैः । मणिभिर्निर्मितैरिष्टैः सोपाननिकरैर्वरैः ॥
कपाटैः कठिनैर्दिल्लैरर्गलाकीलकैर्युताम् । हरिणमणीनां स्तम्भानां कदम्बैरपि संयुतैः ॥
नानाखित्रैर्विचित्रैश्च सुचित्रैश्च परिष्कृतैः । दर्पणैः सूक्ष्मघट्टैश्च शोभितैः श्वेतचामरैः
प्राङ्गणैः पद्मरागाद्यैरिन्द्रनीलपरिष्कृताम् । वीथीभीरनपचितै राजमार्गैः समन्विताम्

ग्रीष्मध्याह्नसूर्याभां ज्वलितां रत्नतेजसा ।

गवाक्षलक्षैः संयुक्तां वाजिशालोत्परिष्कृताम् ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा च द्वारकां रम्यां ते देवा विस्मयं ययुः । प्रसन्नवदनो देवो लाङ्गली भगवानजः ॥
सस्मार यदुवंशानां समूहमुप्रसेनकम् । वसुदेवं देवकीञ्च पाण्डवांश्च समातृकान् ॥
नन्दं यशोदां गोपालान् राजेन्द्रमुनिपुङ्गवान् ।

गन्धर्वान् किन्नरांश्चैव सहितो यदुपुङ्गवैः ॥ २५ ॥

नन्दोपशोदा गोपाश्च जनन्या सहपाण्डवाः । गन्धर्वाः किन्नराश्चैव विद्याधर्यश्च नारद
किन्नर्यश्चापि नर्तन्यो गायका वाद्यभाण्डकाः ।

मिक्षुका भाण्डकाश्चैव भट्टाश्च गणकास्तथा ॥ २७ ॥

नानादेशोद्भवा भूषा वैद्याश्चान्येचमानवाः । सन्यासिनश्च यतयोऽचधूताब्रह्मचारिणः ॥
आयुर्मुनयः सर्वे सशिष्याः सिद्धपुङ्गवाः । सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥
सनत्कुमारो भगवान्ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः । शिष्यैस्त्रिकोटिमिः सार्द्धं पञ्चवर्षं दिगम्बरः
शिष्यैस्त्रिलक्षैः सहितो दुर्वासामभगवानजः । लक्षशिष्यैः कश्यपश्च वाल्मीकिश्च त्रिलक्षकैः ॥
लक्षशिष्यैर्गौतमश्च फोटिमिश्च बृहस्पतिः । शुकस्त्रिकोटिमिः सार्द्धं भरद्वाजश्च लक्षकैः ॥

शिष्यैः स्त्रिकोटिमिः सार्द्धं मद्गिरा भगवानजः ।

पशिष्ठः फोटिमिः शिष्यैः प्रचेताः कोटिमिस्तथा ॥ ३३ ॥

त्रिलक्षैश्च पुलस्त्यश्चाप्यगस्त्यःकोटिभिः सह । पुलहोलक्षशिष्यैश्चक्रतुर्लक्षैस्तथैव च
अत्रिस्त्रिकोटिभिः सार्द्धं भृगुश्च पञ्चकोटिभिः ।

त्रिकोटिभिर्मरीचिश्च शतानन्दः सहस्रकैः ॥ ३५ ॥

सार्द्धं त्रिकोटिभिः शिष्यै ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ।

पाणिनिः कोटिभिःशिष्यैर्लक्षैः कात्यायनस्तथा ॥ ३६ ॥

याज्ञवल्क्यः सहस्रैश्च व्यासःशिष्यत्रिकोटिभिः । शिष्यैर्लक्षैश्चसहितोगर्गःकुलपुरोहितः
गालवश्चसहस्रैश्चसहस्रैः सौभरिस्तथा । त्रिकोटिभिर्लोमशश्चमार्कण्डेयस्त्रिकोटिभिः
सान्दीपिनिर्देवलश्च सन्धिल्यैश्च त्रिकोटिभिः ।

बोद्धुः शिष्यैः कोटिभिश्च लक्षैः पञ्चशिखस्तथा ॥ ३६ ॥

अहंनारायणश्चैव नरोममसहोदरः । शिष्यैस्त्रिकोटिभिः सार्द्धंविश्वामित्रश्च कोटिभिः
त्रिकोटिभिर्जम्बूकाकुरास्तीक्ष्णश्च त्रिकोटिभिः ।

त्रिकोटिभिःपशुरामो घटसो लक्षैश्च शिष्यकैः ॥ ४१ ॥

दक्षस्त्रिलक्षैः शिष्यैश्च कपिल पञ्चकोटिभिः । संवर्तश्चत्रिलक्षैश्चाप्युतप्यश्चतथैवच
सहस्रैर्जैमिनिश्चैव पैलो लक्षैस्तथैव च । सुवर्णश्च सहस्रैश्च वैशम्पायन एव च ॥
शिष्यैर्लक्षैः समेतश्च व्यासशिष्यःपुरोगमः । लक्षैःशिष्यैस्तथाशृङ्गीवोपमन्युस्तथैव च
सहस्रैश्च गौरमुखः कवो लक्षैर्गुरोःसुतः । अश्वत्थामातथाद्रोणः कृपाचार्यःसशिष्यकः
भीष्मःकर्णश्च शकुनी राजादुर्योधनस्तथा । नृपस्यध्नातरः सर्वे चान्ये भूपा जगद्गुरुम्
श्रीभगवानुवाच ।

शुभकर्मणि निष्पन्ने याप्यन्ति येसमागताः । शिवब्रह्मादयो देवा मुनयश्च तथापरैः ।
तच्चापि यादवैः सार्द्धं प्रविशद् द्वारकांपुरीम् । मत्पित्रामातृभिः सार्द्धं माहेन्द्रेचक्षणेनृप
अपरेयदधोऽन्त्ये चयास्यन्ति मथुरापुरीम् । ध्रुत्वेति विरसो राजातमुवाच भयाकुलः ।
उग्रसेन उवाच ।

पासुदेव न यास्यामि भूमिं तां पैतृकां पुनः । सर्वतीर्थपरांशुद्धां देवे कर्मणि पैतृके ।
पापकेभूमिदेशेच पितॄणां निर्वपेत्तु यः । मद्भूमिःस्वामिपितृभिःश्राद्धकर्मणि हन्यते ।

पितृणां निष्फलं श्राद्धं देवानामपि पूजनम् ।

किञ्चित्फलप्रदञ्चैव सम्पूर्णं पैतृकेस्थले ॥ ५२ ॥

पुत्रपौत्रकलत्रेभ्यः प्राणेभ्यःप्रेयसीसदा । दुर्लभा पैतृकी भूमिः पितुर्मातुर्गरीयसी ॥
 उत्तरास्यञ्च पवित्रञ्च दैवे कर्मेणि पैतृके । क्रीडाञ्च दत्ते दानञ्च परदत्तमशुद्धकम् ॥ ५४ ॥
 द्रियते पैतृकीभूषां तीर्थतुल्यफलंलभेत् । गङ्गाजलसमं पूतं पितृप्रातोदकं हरे ॥
 तत्रस्नात्वा जलेपूते गङ्गास्नानफलं लभेत् । पितृणां तर्पणं तत्र पवित्रं देवपूजनम् ॥
 पैतृकी जन्मभूमिश्चेत् फलं तद्द्विगुणं लभेत् । पैतृकीभूमितुल्या च दानभूमिः सतामपि
 वासुदेव उवाच ।

भोगास्ते घबनं किंवा निपेकः केन वार्यते ।

पैतृकी तीर्थतुल्या सा किं तीर्थं द्वारकापरम् ॥ ५८ ॥

सर्वतीर्थपराध्रेष्ठा द्वारका यदुपुण्यदा । यस्याः प्रयेशमात्रेण नराणां जन्मखण्डनम् ॥
 दानञ्च द्वारकायाञ्च श्राद्धञ्च देवपूजनम् । चतुर्गुणञ्च तीर्थानां गङ्गादीनाञ्च भूमिप ॥ ६० ॥
 गच्छ ब्रह्मादिभिः साद्धं मुनिभिर्यादवैः सह । राजेन्द्रभवनं तत्र गृहाणां सादरं पुनः ॥
 करोति शश्यन्यकारं महेन्द्रस्यामरावतीम् ।

निवस त्वं सुधर्मायां माहेन्द्रे च क्षणे नृप ॥ ६२ ॥

जम्बूद्वीपस्थिता भूपा राजेन्द्रमण्डलेश्वराः । करं दास्यन्ति तुभ्यञ्च महेन्द्राय सुरा यथा
 भूयाज्जितः कुबेरश्च धनेन धनसम्पदा । तेजसा भास्करश्चापि महेन्द्रः सम्पदा तथा ॥
 देवाजिता रणेनैव पुण्येन मुनयो जिताः । तपस्थिनश्च तपसा व्रतिनश्च व्रतेन च ॥
 उग्रसेनसमो राजा न भूतो न भविष्यति ।

समायां यस्य भगवान् बलदेवो महाबलः ॥ ६६ ॥

विश्वञ्च यस्य शिरसां सहस्राणां नरेश्वर । एकस्मिन्शिरसिन्यस्तं शूर्पं च सर्पपोयथा
 ह्यनन्तसमोदेवो बलेन बलवन्तरः । यद्वगुणांनाञ्चनास्त्यन्तस्तेनानन्तं जगुर्मुधाः ॥
 तस्योऽष्टौ महाभागा रूद्राश्च शङ्करं विना । बलिनोद्वादशादित्यामहेन्द्रश्च सुरैःसमः
 । समर्था भ्रुवजेतुमुग्रसेनं नृपेश्वरम् । कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा प्रसन्नवदनो नृपः ॥ ७० ॥

प्रययौ यादवैः सार्द्धं महेन्द्रभचनात् परम् ।

स्वालये द्वारकामध्ये ज्वलन्तं मणितेजसा ॥ ७१ ॥

सहस्रेर्द्वारपालैश्च शूलिभिर्दण्डहस्तकैः । नियुक्तै रक्षितं द्वारं ददर्श मानवेश्वरः ॥ ७२ ॥

अभ्यन्तरे च शिघिरं द्वारैभ्यः पङ्क्त्य एव च ।

मन्दिराणाञ्च शतकै रत्नानां परिभूषणम् ॥ ७३ ॥

कोटिं मत्तगजेन्द्राणां ददर्श गजमन्दिरे ।

चतुर्युगं गजौघञ्च गजानां पङ्क्त्युणं तथा ॥ ७४ ॥

महाबलाञ्च तुरगान् सूर्याभ्यञ्च हसन्ति च । गजेन्द्रौघञ्च सर्वेषां घाहनानामपीश्वरम् ॥

हस्तयैराघतं शश्वन्महेन्द्रस्य च नारद । अत्युच्चैश्चैश्रवसां ददर्श कोटिर्माप्सितम् ॥

खराणां दशकोटिञ्च पादातं पङ्क्त्युणं तथा । निर्माणं रत्नसारणां रथानां पञ्चलक्षकम् ॥

पञ्चलक्षं सारथीनां तत्राश्वं पङ्क्त्युणं तथा । भृशवार्तं तत्समञ्च सुधर्माञ्च सतामपि ॥

ददर्शाभ्यन्तरे रम्ये देवाञ्च मुनिसंयुताम् । घट्टिशुद्रांशुकै रम्यैर्भूषितां रक्तकम्यलैः ॥ ७६ ॥

रत्नसिंहासने रम्यैर्भूषितां रक्तपिङ्गलैः । भ्रूवत्यस्तननिर्माणवीथीनां तेजसोऽज्ज्वलाम् ॥

वेष्टिताञ्च महाभीतैः किङ्करैः शतकोटिभिः ।

प्रविवेश सभां रम्यां ध्रुत्वा शङ्खध्वनिं शुभाम् ॥ ८१ ॥

पाद्यञ्च दुग्धमीनाञ्च मुनीनां वेदमन्त्रकम् ।

दृष्ट्वा नृपं समुत्तस्थौ वेगेन सघलो हरिः ॥ ८२ ॥

ब्रह्मा महेश्वरश्चैव शेषञ्च देवपुङ्गवाः । समुत्तस्थः सुराः सर्वे मुनयश्च महाप्रताः ॥

राजेन्द्राश्चापि सिद्धेन्द्रा घसुदेवपुरोगमाः । रत्नसिंहासने रम्ये चोग्रसेनो महाबलः ॥

समुपासत महेश्वरस्य मुनीनामाश्रया हरेः । देवानाञ्च गुरुणाञ्च गर्गस्यापि तथैव च ॥

सप्ततीर्थोदकेनैव पूर्णकुम्भेन नारद । चकार वेदमन्त्रैश्च नृपस्याप्यभिषेचनम् ॥ ८६ ॥

तस्मै घस्रयुगं दत्तं घट्टिशुद्रं मनोहरम् । वरुणेन पुरा दत्तं रुष्ण्याय परमात्मने ॥ ८७ ॥

गन्धश्च पारिजातानां चन्दनं रत्नभूषणम् । रत्नच्छत्रं दशै तस्मै चन्द्रदेवो महाबलः ॥

यत्ना फण्डलुञ्चैव शूलञ्चापि महेश्वरः । पार्वती रत्नमाल्यञ्च हारञ्च मालती सत

अन्ये देवाश्च मुनयो राजेन्द्राः सिद्धपुङ्गवाः ।

कौतुकञ्च ददौ तस्मै क्रमेण च पृथक् पृथक् ॥ ६० ॥

वसुदेवो ददौ तस्मै शुभदं श्वेतचामरम् । पधनेन पुरा दत्तं कृष्णाय परमात्मने ॥ ६१ ॥

नन्दो ददौ च सुरभिं कामधेनुञ्च पूजिताम् ।

यशोदा देवकी तस्मै रत्नश्रेष्ठं ददौ मुदा ॥ ६२ ॥

सप्तभिः किङ्करैश्चापि संवीतः श्वेतचामरैः । दधार छत्रमकूरो भक्त्या चैवाज्ञया हरैः ॥

रत्नसिंहासने रम्ये ददर्श रत्नदर्पणम् । अतीवपुण्यावाप्यञ्च हरिणा च पुरस्कृतः ॥

चक्रुःस्तुतिञ्च भट्टाश्च भिक्षुका ब्राह्मणास्तथा ।

ददुः शुभाशिरं तस्मै देवाश्च मुनयस्तथा ॥ ६५ ॥

ब्राह्मणेभ्यो ददौ राजा रत्नफोटिञ्च भक्तिः ।

भट्टेभ्यो रत्नशतकं भिक्षुकेभ्यस्तथैव च ॥ ६६ ॥

अभिषिञ्च्य नृपेन्द्रञ्च देवाश्च मुनिपुङ्गवान् ।

सम्पूज्य ब्राह्मणाश्चापि भट्टा भिक्षुं द्विजं गुरुम् ॥ ६७ ॥

स्वालयञ्च ययुः सर्वे यादवाश्च मुदान्विताः । ये ये हरैः पार्यदाश्च ते सर्वे स्वालयं ययुः

प्रभाते चाययुः सर्वे सुधर्माश्च सभां हरैः । नमस्कृत्य महेन्द्रञ्च चोपुः सर्वे च संसदि

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

द्धारकाप्रवेश उपसेनाभिषेके चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

रुक्मिण्युद्धादप्रस्ताववर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ वेदर्भराजेन्द्रो महायलपराक्रमः । चिदर्भदेशे पुण्यात्मा सत्यशीलश्च भीष्मकः ॥ १ ॥

राजा नारायणोऽश्व दाता च सर्वसम्पदाम् । धर्मिष्ठश्च गरीयांश्च धरिष्ठश्चापि पूजितः ॥

तस्य कन्या महालक्ष्मी रुक्मिणी योषितां परा ।

अतीवसुन्दरी स्यात् रमा रामासुपूजिता ॥ ३ ॥

नययौघनसम्पन्ना ररताभरणभूषिता । तप्तकाञ्चनवर्णाभा तेजसोज्ज्वलिता सती ॥ ४ ॥

शुद्धस्तव्यस्वरूपा सा सत्यशीला पतिव्रता ।

शान्ता दान्ता नितान्ता चाप्यनन्तगुणशालिनी ॥ ५ ॥

इन्द्राणी पुरुषाणी च चन्द्रनारी च रोहिणी ।

कुबेरपत्नी सूर्य्यपत्नी स्वाहा शान्ता कलापती ॥ ६ ॥

अन्यासु रमणीयासु श्रेष्ठा च सुमनोहरा ।

रुक्मिण्या भीष्मकन्यायाः कलां नार्हन्ति योऽङ्गीम् ॥ ७ ॥

तां दृष्ट्वा राजराजेन्द्रो बालकीदारतां पराम् ।

यालां सुशोभां कुर्वन्ती यधान्नेषु विधाः कलाम् ॥ ८ ॥

शरत्पूर्णेन्दुशोभादयां शरत्कमललोचनाम् ।

विषादयोग्यां युवती लज्जानम्रानना शुभाम् ॥ ९ ॥

सहस्रा चिन्तितो धर्मो धर्मशालश्च सुवतः ।

सुतां पप्रच्छ पुत्राश्च प्राप्सवांश्च पुरोहितान् ॥ १० ॥

भीष्मक उवाच ।

सुधाचक्रं विचारञ्च सिद्धान्तेषु नितान्तकम् । नृपेन्द्रवचनं श्रुत्वा तमुवाच मुनेः सुतः ॥
 गौतमस्य शतानन्दो वेदवेदाङ्गपारगः । आसः प्रवक्ता चिञ्चश्च धर्मो कुलपुरोहितः ॥
 पृथिव्यां सर्वतत्त्वज्ञो निष्णातः सर्वकर्मसु ॥ १८ ॥

शतानन्द उवाच ।

राजेन्द्र त्वञ्च धर्मज्ञो धर्मशास्त्रविशारद । पूर्वाख्यातञ्च वेदोक्तं कथयामि निशामय
 भूयो भारवतरणे स्वयं नारायणो भुवि । वसुदेवसुतः धीमान् परिपूर्णतमः प्रभुः ॥
 विधातुश्च विधाता स ब्रह्मेशशेषवन्दितः । ज्योतिःस्वरूपः परमो भक्तानुग्रहप्रदः ॥
 परमात्मा च सर्वेषां प्राणिनां प्रकृतेः परः । निर्लितश्च निरीदश्च साक्षी च सर्वकर्मणाम्
 राजेन्द्र तस्मै कन्याञ्च परिपूर्णतमाय च । दत्त्वा यास्यसि गोलोकं पितृभिः शतकैः सह
 लभ सारूप्यमुक्तिञ्च कन्यां दत्त्वा परत्र च । इहैव सर्वप्रूज्यश्च भव विश्वगुरोर्गुरुः ॥

सर्वस्वं दक्षिणां दत्त्वा महालक्ष्मीञ्च रुक्मिणीम् ।

समर्पणं कुरु विमो कुरुष्व जन्मखण्डनम् ॥ २५ ॥

विधात्रा लिखितो राजन् सम्बन्धः सर्वसम्मतः ।

द्वारकानगरे कृष्णं शीघ्रं प्रस्थापय द्विजम् ॥ २६ ॥

कृत्वा शुभक्षणं तूर्णं सर्वेषामपि सम्मतम् । आनीय परमात्मानं भक्तानुग्रहप्रदम् ॥
 ध्यानानुरोधहेतुञ्च नित्यदेहमनुत्तमम् । दृष्टिमात्रात् कुरु नृपं स्वजन्मकर्मखण्डनम् ॥

यं न जानन्ति चत्वारो वेदाः सन्तश्च देवताः ।

सिद्धेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च देवा ग्रहादयस्तथा ॥ २६ ॥

ध्यायन्ते ध्यानपूताश्च योगिनो न विदन्ति यम् ।

सरस्यतीर्जङ्गभूता वेदाः शास्त्राणि यानि च ॥ ३० ॥

सहस्रवक्त्रः शेषश्च पञ्चवक्त्रः सदाशिवः । चतुर्मुखो जगद्धाता कुमारः कार्तिकस्तथा
 ऋषयो मुनयर्क्षेय भक्ताः परमवैष्णवाः । अक्षमास्तवने यस्य ध्यानासाध्यश्च योगिनाम्
 चालकोऽहं महाराज तद्गुणं कथयामि किम् ।

शतानन्दश्चः श्रुत्वा प्रफुल्लयदनो नयः ॥ ३३ ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः] * रुक्मिणीविवाहप्रश्ने भीष्मकं प्रतिस्वमेरुक्तिः * १०८५

आलिङ्गनं ददौ तस्मै समुत्थाय जवेन च । नानारत्न सुवर्णञ्च धत्तञ्च रत्नभूषणम्
ददौ तस्मै प्रदानञ्च प्रसादसुमुखो नृपः । गजेन्द्रं तुरगं श्रेष्ठं रथञ्च मणिनिर्मितम् ॥
रत्नसिंहासनं रस्यं धनञ्च धिपुलं तथा । भूमिञ्च सर्वसस्याढ्यां शश्वद्वृष्टिकरीशुभाम्
अकृष्टाध्यां पूज्याञ्च ग्रामं सर्वप्रशंसितम् ॥ ३७ ॥

एतस्मिन्नन्तरं रुक्मिशुकोप नृपनन्दनः । कम्पितो धर्मयुक्तश्च रक्तास्यो रक्तलोचनः ॥
उवाच पितरं विप्रं सभायामस्थिरस्तदा । उत्थाय तिष्ठन् पुरतः सर्वपाञ्च सभासदाम्
रुक्मिरुवाच ।

शृणु राजेन्द्र वचनं हितं तथ्यं प्रशंसितम् ।

त्यज धाययं मिथुकाणां लोभिनां क्रोधिनामहो ॥ ४० ॥

नर्त्तकानाञ्च वैश्यानां भट्टानामर्धिनामपि । फायस्थानाञ्च भिक्षूनामसत्यं वचनं सदा
घटकानां नाटकानां स्त्रीलुब्धानाञ्च कामिनाम् ।

दरिद्राणाञ्च मूर्खाणां स्तुतिपूर्वं वचः सदा ॥ ४२ ॥

निहत्य कालयवनं राजेन्द्रं पुरतो भिया । उपायेन महायादो लब्धं कृष्णेन तज्जनम् ॥

द्वारकायां धनी कृष्णो यवनस्य धनेन च । जरासन्धभयेनैव समुद्राभ्यन्तरे गृही ॥ ४४

जरासन्धशतञ्चैव क्षणेनैव च लीलया । क्षमोऽहं हन्तुमेकाकी राज्ञश्चान्यस्य का कथा

दुर्धाससश्च शिष्योऽहं रणशास्त्रविशारदः । ध्रुवं भीष्मक तेनैव चिद्वं संहर्तुमीश्वरः

मत्समः पशुरामश्च शिशुपालश्च मत्समः । सखा च बलवान् शूरः स्वर्गं जेतुं स च क्षमः

महेन्द्रं सगणं जेतुमहमीशः क्षणेन च । जित्वा युद्धे जरासन्धं दुर्बलं योगिनं नृप ॥

अहङ्कारयुतः कृष्णो धीरं स्व मन्यते धिया ।

यथायास्यति मद्रग्रामं चिवाहं कर्तुमीप्सितम् ॥ ४६ ॥

ध्रुवं प्रस्थापयिष्यामि क्षणेन यममन्दिरम् । अहो नन्दस्य वैश्यस्य तस्मै गोरक्षकाय च

साक्षाज्जाराय गोपीनां गोपालोच्छिष्टभोजिने ।

करोपि कन्यां स्वीकारं देवयोग्याञ्च रुक्मिणीम् ॥ ५१ ॥

दातुमिच्छसि धाक्येन मिथुकस्य द्विजस्य च । राजेन्द्रबुद्धिहीनोऽसिपचनाद्ददलस्य च

मा राजपुत्रो मा शूरो मा कुलीनश्च मा शुक्तिः ।

मा दाता मा धनाढ्यश्च मा योग्यो मा जितेन्द्रियः ॥ ५३ ॥

कन्यां देहि सुपुत्राय शिशुपालाय भूमिप । बलेन ह्यतुष्टाय राजेन्द्रतनयाय च ॥ ५४ ॥
निमन्त्रणं कुर्व नृप नानादेशभवान् नृपान् । बान्धवांश्च मुनीन्द्रांश्चपन्नद्वारा त्वरान्वितः
बद्धं कलिङ्गं मगधं सौराष्ट्रं पल्लवं परम् । राटं वरेन्द्रं पञ्चञ्च गुर्जरादिञ्च पेठरम् ॥
महाराष्ट्रं विराटञ्च मुद्गलञ्च मुरङ्गफम् । महकं गल्लकं खयं दुर्गं प्रस्थापय द्विजम् ॥
घृतकुल्यासहस्रञ्च मधुकुल्यासहस्रकम् । दधिकुल्यासहस्रञ्च दुग्धकुल्यासहस्रकम् ॥
तैलकुल्यापञ्चशतं गुडकुल्याद्विलक्षकम् । शर्कराणां राशिशतं मिष्टानानां चतुर्गुणम् ॥
यवगोधूमचूर्णानां विष्टराशिशतं शतम् । पृथुकानां राशिलक्षमन्नानाञ्च चतुर्गुणम् ॥ ६० ॥
गवां लक्षं छेदनञ्च हरिणानां द्विलक्षकम् । चतुर्लक्षं शशानाञ्च कूर्माणाञ्च तथा कुर्व
वशलक्षं छागलानां भेदानां तच्चतुर्गुणम् । पर्वणि ग्रामदेव्यै च यलिं देहि च भक्तिः ॥
पत्तेषां पक्वमांसञ्च भोजनार्थञ्च कारय । परिपूर्णं व्यञ्जनानां सामग्रीं कुर्व भूमिप ॥
अथ श्रुत्वा च तद्वाक्यं राजेन्द्रः सपुरोहितः । चकारामन्त्रणं पूर्णं निर्जने मन्त्रिणा सह
द्विजं प्रस्थापयामास द्वारकां योग्यमीप्सितम् ।

कृत्वा च शुभलग्नञ्च सर्वेषामभिवाञ्छितम् ॥ ६५ ॥

राजा सम्भृतसम्भारो बभूव सन्वरं मुदा । निमन्त्रणञ्च सर्वत्र चकार च सुताह्वया ॥
विभ्रः सुधर्मा संप्राप्य नृपैर्देवैश्च वेष्टिताम् । प्रदक्षी पत्रिकां भद्रामुग्रसेनाय भूभृते ॥
प्रफुल्लवदनो राजा श्रुत्वा पत्रं सुमङ्गलम् । सुवर्णानां सहस्रञ्च ब्राह्मणेभ्यो दक्षी मुदा ॥
दुन्दुभि वादयामास द्वारकायाञ्च सर्वतः ।

देवान् मुनीन् नृपाश्चैव ज्ञातिवर्गाश्च बान्धवान् ॥ ६६ ॥

भट्टांश्चमिक्षुकांश्चैव भोजयामास सादरम् । श्रीकृष्णस्य सुवेशं च कारयामास भूपतिः
अतीवरम्यमतुलं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । यात्राञ्च कारयामास जगतां प्रवरं वरम् ॥ ७१ ॥
वेदमन्त्रेण रम्येण माहेन्द्रे सुमनोहरे । आदौ ब्रह्मा रथस्थश्च सावित्र्या सहितो ययौ
रथस्थश्च महाहृष्टो भवान्या च भवःस्वयम् । शेषश्चापि दिनेशश्च गणेशश्चापिकीर्तितः

महेन्द्रश्च तथा चन्द्रो धरुणः पवनस्तथा । कुबेरश्च यमो वह्निरीशानोऽपि यर्योमुदा ॥
 देवानाञ्च त्रिकोट्यश्च मुनीनां पष्टिकोटयः । गजैन्द्राणां त्रिलक्षश्च श्वेतक्षत्रं त्रिलक्षकम्
 उग्रसेनो यभी राजा नक्षत्रेषु यथा शशी । यर्यो प्रसन्नयदनः कुण्डिनाभिमुग्रो यलो ॥
 रत्ननिर्माणयानेन चलदेवो महाबलः । पशुदेवश्चोद्धवश्च नन्दोऽम्बूरश्च सात्यकिः ॥

गोपाला यादवेन्द्राश्च चन्द्रवंश्याश्च ते ययुः ।

धृतराष्ट्रसुताः सर्वे दुष्यं धनपुरोगमाः ॥ ७८ ॥

युधिष्ठिरस्तथा भीमः फाल्गुनो नकुलस्तथा । सहदेवश्च यानेश्च प्रययुः पञ्च पाण्डवाः
 भीष्मो द्रौणश्च कर्णश्चाप्यश्वत्थामा महाबलः ।

कृपाचार्यश्च शकुनिः शल्यश्च प्रययौ मुरा ॥ ८० ॥

भटानाञ्च त्रिकोट्यश्च विप्राणां शतकोटयः ।

सन्पासिनां सहस्रञ्च यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥ ८१ ॥

द्विसहस्रं जितकोधाश्चावभृतास्तथैव च । उत्पलानां सहस्रञ्च सहस्रं पुष्पकारिणाम् ॥
 नानाशिल्पकलाश्चैव विचित्रं विभ्रमेव च । लक्षञ्च पायभाण्डानां नर्तकानाञ्च लक्षकम्
 गन्धर्वाणां गायकानां लक्षमेवन्तु नारद । तत्र कल्पं भपत्येव गन्धर्वश्चोपपर्द्धनः ॥
 शशात्कामिनोभिश्च त्वमेव तेषु मध्यगः । विवाधरीणां लक्षञ्च लक्षमप्सरसां तथा

किन्नराणां त्रिलक्षञ्च गन्धर्वाणां त्रिलक्षकम् ॥ ८६ ॥

इति धीमन्प्रवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे धीकृष्णजन्मगण्डे
 रुक्मिण्युवाहे पष्ठाधिकशततमोऽध्यायः ।

पष्ठाधिकशततमोऽध्यायः

रेवतीचलयोर्विवाहघर्षणम् ।

धो नारायण उवाच ।

अग्निप्रन्तरे राजा ककुभो च महाबलः । परार्थं कल्पकापाश्च ब्रह्मनोकारसमागच्छ

प्रददौ रेषतीकन्यां शश्वत्सुस्थिरयोविनाम् । अमूल्यरत्नभूषणढ्यां त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम्
 वलाय बलदेघाय सम्प्रदानेन कौतुकात् । वयो यस्यागतं सत्ये युगानां सप्तविंशतिः ॥
 दत्त्वा कन्यां विधानेन मुनिदेवेन्द्रसंसदि । गजेन्द्राणां त्रिलक्षञ्च जामात्रे यौतुकं ददौ
 दशलक्षं तुरङ्गाणां स्थानां लक्षमेव च । रत्नालङ्कारयुक्तानां दासीनाञ्चापि लक्षकम् ॥
 मणिलक्षं रत्नलक्षं स्वर्णकोटिञ्च सादरम् ।

चह्निशुद्धांशुकं रम्यं मुक्तामानीकमहीरकम् ॥ ६ ॥

दत्त्वा कन्याञ्च राजेन्द्रो वलाय बलशालिने । रत्नेन्द्रसारयानेन तैः साङ्गं कुण्डिनं ययौ
 अथान्तरे च निर्घण्ये साङ्गे मद्गलकर्मणि । रेषती वेशयामास योपितां कमलाकलाम् ॥
 देवकी रोहिणीञ्चैव यशोदा नन्दगेहिनी ।

अदितिश्च दितिः शान्तिर्जयं कृत्वा च मन्दिरम् ॥ ६ ॥

ब्राह्मणान् भोजयामास ददौ तेभ्यो धनं मुदा । मद्गलं कारयामास वसुदेवस्य बहुभा
 अथ देवाश्च मुनयो राजेन्द्राः कटकैः सह । सम्प्रापुर्लोलामात्रेण कुण्डिनं नगरं मुदा ॥
 ददृशुर्नगरं सर्वे ह्यतीव सुमनोहरम् । सप्तभिः परिष्ठाभिश्च गभोराभिश्च वेष्टितम् ॥
 प्राकारैः सप्तभिर्युक्तं द्वाराणां शतकैस्तथा ।

नानारत्नैश्च मणिभिर्निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ १३ ॥

नगरस्य बहिर्द्वारं ददृशुर्वरयात्रिणः । रक्षितं रक्षकैः साङ्गं चतुर्भिश्च महारथैः ॥ १४ ॥
 रुक्मिणश्च शिशुपालश्च दन्तवक्रो महाबला । शान्त्वोमायाचिनां श्रेष्ठो युद्धशास्त्रविशारदः
 नानाशस्त्रैस्तथास्त्रैश्च रथस्थश्चरणोन्मुखः । विलोक्य कृष्णसेन्यञ्च शुकोपनृपनन्दनः
 उवाच निष्ठुरं वाक्यं श्रुतितीक्ष्णं सुदुष्करम् ।

उपहास्यं मुनीन्द्रांश्च देवांश्च मुनिपुङ्गवान् ॥ १७ ॥

रुक्मिरुवाच ।

अहो कालकृतं कर्म दैवञ्च केन चार्य्यते । किंवाहं कथयिष्यामि देवेन्द्राणाञ्च संसदि ॥
 गृहीतुं रुक्मिणीं कन्यां देवयोग्यां मनोहराम् । आयाति देवेभ्यो मुनिभिर्नन्दस्य पशुरक्षकः
 साक्षाज्जारश्च गोपीनां गोपोच्छिष्टान्नमोजकः ।

जातेश्च निर्णयो नास्ति भक्ष्यमैथुनयोस्तथा ॥ २० ॥

किन्तु राजेन्द्रपुत्रस्य किन्तु वा मुनिपुत्रकः । वसुदेवः क्षत्रियश्च भक्षणं वैश्यमन्दिरे
शिशुकाले च स्त्रीहत्याकृतानेनदुरात्मना । कुब्जा मृता च सम्भोगात्वाससारजकोमृतः
राजेन्द्रस्य वधाद्दुष्टो ब्रह्महत्यां लभेद् ध्रुवम् ।

मधुरार्याञ्च धर्मिष्ठः सद्यः कंसो निपातितः ॥ २१ ॥

शाल्व उवाच ।

यदुक्तं रुक्मिणा देव किमस्त्यञ्च तत्र वै । को वायं रुक्मिणीभर्ता नन्दस्य पशुपालकः
शिशुपाल उवाच ।

अहो भुवि किमाश्चर्यं देवा ब्रह्मादयस्तथा । मुनीन्द्रा ब्रह्मणः पुत्राश्चाययुर्मानवाह्वया
दन्तषक्र उवाच ।

सन्ततं ब्राह्मणा लुब्धा देवाश्च भक्तवत्सलाः । आययुर्ब्रह्मपुत्राश्च नन्दपुत्राक्षया कथम्
त्रैपाञ्च वचनं ध्रुवा चुकोप देवसङ्घकः । मुनिराजेन्द्रसङ्घश्चलाङ्गलीत्यादिकं तथा ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

रुक्मिण्युद्धाहे पष्ठाधिकशततमोऽध्यायः ।

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

रुक्मिणीविवाहे युद्धम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ फोपपरीतश्च बलदेवो महाबलः । हलेन रुक्मिमानञ्च वभञ्ज मुनिपुङ्गव ॥ १ ॥
घोटकान् सारथिञ्चैव निहत्य जगतीपतिः । भूमिष्ठञ्चापि पापिष्ठं रुक्मि हन्तुं जगाम सः
स्वमी च शरजालेन घारयामास लीलया । नागास्त्रं योजयामास वद्धं हलिनमीध्वरम्
नागास्त्रं गारुडेनैव संजहार हली स्वयम् । गृहाण कोपाद्रुक्मो च परं पाशुपतं मुने ॥

अव्ययं वीरमर्दञ्च शतसूर्यसमप्रभम् । अभितो हलिना रुक्मी जृम्भणास्त्रेण जृम्भितः
भूमिष्ठः स्थाणुचद्रुक्मीनिद्रास्थेनेष निद्रितः । शाल्यस्तं निद्रितं दृष्ट्वा शतबाणं मुमोच तम्
शैलवृष्टिं शिलावृष्टिं जलवृष्टिं चकार सः । ज्वलद्ग्नारवृष्टिञ्च शस्त्रवृष्टिं चकार ह ॥५॥
यत्नाद्यान्त्रेण सर्पाणि पारयामास लाङ्गलैः । हस्तेन तद्रथं चूर्णं चकार रणमध्यतः ॥

घोटकान् सारथिञ्चेव जघान चैव लोलया ।

फोपावु चलेन तं हन्तुं पागं चमूपाशपिणि ॥ ६ ॥

त्यज शाल्यं कृष्णयध्वं तव किं पौरुषं रणे ।

यस्य मूर्ध्नि न ब्रह्माण्डं शूर्पे च सर्पं यथा ॥ १० ॥

सतमिः पार्यदैर्गोपैः सेवितं श्वेतचामरः । नवयीचनसम्पन्नं शरत्कमललोचनम् ॥२५॥

शरत्पूर्णन्दुनिन्दास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ।

कोटिकन्दर्पसौन्दर्यं सत्यं नित्यं सनातनम् ॥ २६ ॥

तीर्थपूतं कीर्तिपूतं द्रष्टृशशेषवन्दितम् । परमाह्लादकं रूपं कीटिचन्द्रसमप्रभम् ॥ २७ ॥

ध्यानासाध्यं दुराराध्यं परमं प्रकृतेः परम् । दूर्वया पटुसूत्रञ्च रत्नेन्द्रसारदर्पणम् ॥२८॥

दधानं कर्तृकासाध्यं कदल्याः स्फुटमञ्जरीम् ।

चूडां त्रिविक्रमाकारां मालतोमाल्यभूषिताम् ॥ २९ ॥

पुष्पं नारीप्रदत्तञ्च मुकुटं मस्तकोज्ज्वलम् । दृष्ट्वा धरं युवत्यश्च मूर्च्छां संप्रापुरीश्वरम्

रुक्मिणीजीघनं धन्यं ग्लान्यमित्यूचुरीप्सितम् ।

जामातरं सा ददर्श राक्षी भीष्मककामिनी ॥ ३१ ॥

निमेषरहिता तुष्टा प्रसन्नवदनेक्षणा । राजा प्रसन्नवदनः सामात्यः सपुरोहितः ॥३२॥

समागत्य सुरान् विप्रान् भूतांश्च प्रणनाम सः । दक्षोयोग्याथर्मतैभ्यो भक्ष्यपूर्णसुधोपमम्

दिवानिशञ्चापुवाच दीयतां दीयतामिति । सुखं निनाय रजनीं देवैश्च धान्धवैः सह ॥

वसुदेवः प्रभाते च प्रातःकृत्यं चकार सः ।

ज्ञात्वा सन्ध्यादिकं कृत्वा धृत्या धीते च वाससी ॥ ३५ ॥

चकार वेदमन्त्रेण शुभाधिसनं हरेः । संपूज्य मातृकाः सर्वाः साक्षाच्च सर्वदेवताः ॥

प्रदाय पसुधाराञ्च वृद्धिभ्रादादिकं तथा ।

ब्राह्मणान् भोजयामास देवांश्च बान्धवांस्तथा ॥ ३७ ॥

पाद्यञ्च वादयामास कारयामास मङ्गलम् । सुवेशं कारयामास वरस्याप्रतिमस्य च ॥

सज्जञ्च कारयामास वर्यानं सुशोभनम् । एवं राजा भीष्मकश्च विद्याहर्षश्च मङ्गलम् ॥

पुरोहितैर्वेदमन्त्रैः सर्वं कर्म चकार सः ।

मणिरत्नं धनं वापि मुकामाणिक्यहोरकम् ॥ ४० ॥

भक्ष्यद्रव्यञ्च वस्त्रञ्चाप्युपहारमनुत्तमम् ।

भट्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽपि मित्रकुलेभ्यो ददौ मुदा ॥ ४१ ॥

तद्यञ्च धादयामास फारयामास मङ्गलम् । सुवेशं कारयामास रुक्मिण्याश्च मनोहरम्
 शीभिर्मुनिपत्नीभिर्विधानञ्च यथोचितम् । ततः शुभे क्षणे प्राते माहेन्द्रे परमोदये ॥
 त्रेधाहोचितलने च लग्नाधिपतिसंयुते । सद्गुह्ये क्षणशुद्धे चाप्यसतां दृष्टिर्वाजिते ॥
 भिक्षणे शुभर्क्षे च विशुद्धे चन्द्रतारयोः । वेधदोषादिरहिते शलाकादिविवाजिते ॥४५॥
 मृत्योः शर्मयोग्ये च परिणामसुखप्रदे । एवंभूते च समये भीष्मकप्राङ्गणं हरिः ॥४६॥
 आजगाम सुरैः सार्द्धं मुनिचिप्रपुरोहितैः ।

ज्ञातिभिर्वान्धवैः सार्द्धं पित्रा मान्ना नृपेस्तथा ॥ ४७ ॥

तेपालकैः पार्षदैश्च वयस्यैश्च मनोहरैः । भट्टैश्च गणकैश्चैव ज्योतिःशास्त्रविशारदैः ॥
 गद्यैर्नानाविधैश्चैव नर्त्तकैर्गायनैस्तथा । नानाशिल्पकरैश्चैव मालाकारैस्तथापरैः ॥४८॥
 विद्याधर्ष्यश्चाप्सरोभिः किन्नरीभिश्च सत्वरम् ।

स्थलञ्च दद्रुशुर्देहा मुनयश्च नृपेश्वराः ॥ ५० ॥

तर्चे समागता ये च विधाहवर्शानोत्सुकाः । रम्भास्तम्मसहस्रैश्च पट्सूत्रपरिष्कृतैः ॥५१॥
 चम्पकानां चन्दनानां रत्नालानाञ्च पल्लवैः ।
 माल्यैर्नानाविधैश्चैव पीतरक्तसितान्वितैः ॥ ५२ ॥

परितो मङ्गलघटैः फलपल्लवसंयुतैः । कस्तूरीचन्दनाकैश्च कुङ्कुमेन विराजितैः ॥ ५३ ॥
 पर्णलाजैः फलैः पुष्पैर्द्रुपाभिरुपशोभितैः । मुनिभिर्ब्राह्मणैश्चैव राजेन्द्रैरपि वेष्टितम् ॥
 रत्नेन्द्रसारनिर्माणवेदीयुक्तं मनोहरम् । चर्चितं चन्दनस्निग्धैः कस्तूरीकुङ्कुमान्वितैः ॥
 सुगन्धिशीतमन्दैश्च पयनैः सुरभीकृतम् । रत्नानाञ्च सहस्रैश्च उचलितं उचलदीप्तकैः ॥

नानाप्रकारधूपैश्च गन्धद्रव्यैः सुधासितम् ।

चित्रैर्विचित्रैर्विचिद्यैः शिल्पिनां पुण्यकारिणाम् ॥ ५७ ॥

परितः परितश्चैव शोभनाहैः सुशोभनैः । गन्धर्वाणाञ्च सङ्गीतिर्मधुरैर्मधुरीकृतम् ॥५८॥

विद्याधरीणां नृत्यैश्च नर्त्तकीनाञ्च शिल्पिणाम् ।

तत्र निश्चेष्टचित्रैश्च जनराजिविराजितम् ॥ ५९ ॥

गुप्तद्वारैर्गवाक्षैश्च युधतीभिश्च वीक्षितम् । मङ्गलेन घट्टेनैव विदुषा च पुरोधसा ॥ ६० ॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः] * भीष्मककृत कृष्णस्तवः *

१०६३

कुशहस्तेन भूपेन दानेन दानवस्तुना । दृष्ट्वा च प्राङ्गणे राजो देवा ब्रह्मादयस्तथा ॥ ६१ ।

भवरुह्य रथान्तूर्णं तिष्ठन्ति प्राङ्गणे मुदा । राजेन्द्रा दानवेन्द्राश्च मुनयः सनकादयः ।

श्रीकृष्णश्चापि भगवान् पार्यदप्रचरेः सह ।

तान् दृष्ट्वा सहस्रोत्थाय जयेन भीष्मकस्तथा ॥ ६३ ॥

मूर्ध्ना वचन्दे देवांश्च मुनीन्द्रांश्च नृपांस्तथा । रत्नसिंहासने चैव सुरम्येषु पृथक् पृथक् ।

क्रमतो वासयामास संपूज्य सादरेण च ॥ ६४ ॥

राजा तुष्टाव भक्त्या च तान् सर्वान् भक्तिपूर्वकम् ।

वसुदेवं वासुदेवं साधुनेत्रः पुटाञ्जलिः ॥ ६५ ॥

भीष्मक उवाच ।

अद्य मे सफलं जन्म जीयितञ्च सुजीयितम् । यभूव जन्मकोटीनां कर्ममूलनिवृत्तनम् ॥

स्वयं पिधाता जगतां प्रदाता सर्वसम्पदाम् ।

स्वप्ने यत्पादपद्मञ्च द्रष्टुं नैष क्षमः प्रभो ॥ ६७ ॥

तपसां फलदाता च संल्लष्टा प्राङ्गणे मम । स्वात्मारामेषु पूर्णेषु शुभप्रश्नमभीप्सितम् ॥

योगीन्द्रेरपि सिद्धेन्द्रैः सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रकैः ।

ध्यानादृष्टश्च यो देव स शिवः प्राङ्गणे मम ॥ ६९ ॥

कालस्य कालो भगवान् मृत्योर्मृत्युश्च यः प्रभुः ।

मृत्युञ्जयश्च सर्वेशो नराणां दृष्टिगोचरः ॥ ७० ॥

यस्य मूर्ध्ना सहस्रेषु मूर्ध्नि विश्वं चराचरम् ।

नास्त्यन्तः सर्ववेदेषु सोऽयञ्च मम प्राङ्गणे ॥ ७१ ॥

सर्वकामप्रणयो हि सर्वांगे यस्य पूजनम् । श्रेष्ठो देवगणानाञ्च स गणेशो ममाङ्गणे ॥

मुनीनां वैष्णवानाञ्च प्रचरो ज्ञानिना गुरुः । सनत्कुमारो भगवान् प्रत्यक्षः प्राङ्गणे मम

प्रसृपुत्राश्च पौत्राश्च प्रपौत्राश्चापि वंशजाः । ते सर्वे मद्गृहेऽयं च ज्वलन्तो व्यप्रतेजसा

भदो फल्पान्तर्पर्यन्तं तीर्थीभूतो ममाध्वयः । येषां पादोदरैस्तीर्थं विशुद्धं तद्गृहं मम

पृथिव्या यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे ।

सागरे यानि तीर्थानि विप्रपादेषु तानि च ॥ ७६ ॥

विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी । तावत् पुष्करपत्रेषु पिबन्ति पितरो जलम् ॥

विप्रपादोदकं भुक्त्वा दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ।

स्तातानां सर्वतीर्थानां फलमाप्नोति निश्चितम् ॥ ७८ ॥

निरुन्तनञ्च विपदां व्याधिनिर्मूलकारणम् । सुखदं शुभदं सारं विप्रपादोदकं नृणाम् ॥

न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवो माधवात् परः । सनत्कुमाराद्भक्तो न न हि कल्पतरोस्ततः

न पुष्पं पारिजाताद्य न व्रतं हरिषासरात् । पूजनेन हि पूज्यञ्च न पत्रं तुलसीपरम् ॥

न देर्घा प्रकृतेष्वापि नाधारः पचनात् परः ।

न हि स्थूलो महाविष्णोर्न सूक्ष्मं परमाणुतः ॥ ८२ ॥

न ब्राह्मणात् परः पूतो नाश्रमश्च परःप्रभुः । न देवो न परः कौण्डिप इत्याह कमलोद्भवः

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां प्रकृतेश्च परः प्रभुः ।

ध्यानासाध्यो दुराराध्यो योगिनामपि निश्चितम् ॥ ८४ ॥

निर्गुणश्च निराकारो भक्तानुग्रहविग्रहः । स एव चक्षुषो नृणां साक्षाद् दैवश्च महगृहे

दैवैर्ब्रह्मेशोपैश्च ध्यातं यत्पदपङ्कजम् । धनेशेन गणेशेन दिनेशेनापि दुर्लभम् ॥ ८६ ॥

इत्युक्त्वा भीष्मकः कृष्णं समानीय स्वयं पुरः ।

तुष्टाव सामवेदोक्तस्तोत्रेण परमेश्वरम् ॥ ८७ ॥

भीष्मक उवाच ।

सर्वान्तरात्मा सर्वेषां साक्षी निर्लिप्त एव च । कर्मिणां कर्मणामेव कारणानाञ्चकारणम्

केचिद्वदन्ति त्वामेकं ज्योतीरूपं सनातनम् ।

केचिच्च परमात्मानं जीवो यत्प्रतिविम्बकः ॥ ८९ ॥

केचित् प्राकृतिकं जीवं सगुणं भ्रान्तबुद्धयः । केचिन्नित्यशरीरञ्च बुद्धाश्च सूक्ष्मबुद्धयः

ज्योतिरभ्यन्तरे नित्यं देहरूपं सनातनम् । कस्मात्तेजः प्रभवति साकारमोक्षरं विना ॥

एवं स्तुत्वा स वाचान्तः स्मरन् विष्णुञ्च नारद ! ।

पादं पदार्चिते पादपद्मे चायं ददौ मुखा ॥ ९२ ॥

अर्घ्यञ्च प्रददौ तत्र दूर्वापुष्पजलान्वितम् । मधुपर्कञ्च सुरभिं सर्वाङ्गे गन्धचन्दनम् ॥
यत् प्रदत्तं महेन्द्रेण शुभकर्मणि यौतुकम् । पारिजातस्य माल्यञ्च जामातुश्च गले ददौ
कुवेरेण च यद्वत्तममूल्यरत्नभूषणम् । चकार वरणं तस्य स राजा भक्तिपूर्वकम् ॥ ६५ ॥
वह्निशुद्धांशुकयुगं यद्वत्तं वह्निना पुरा । ददौ तदेव कृष्णाय परिपूर्णतमाय च ॥ ६६ ॥
ज्वलितं रत्नमुकुटं यद्वत्तं विश्वकर्मणा । ददौ तन्मस्तके राजा कृष्णस्य परमात्मनः ॥
धूप रत्नप्रदीपञ्च नेत्रेभ्यं सुमनोहरम् । नानाप्रकारपुष्पञ्च रत्नसिंहासनं ददौ ॥ ६८ ॥
सप्ततीर्थोदकञ्चैव पुनराचमनीयकम् । ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ६९ ॥

शय्यां रतिकरीं रम्यां पानार्थं वासितं जलम् ।

कृत्वा च वरणं राजा परिहारं चकार तम् ॥ १०० ॥

कृताञ्जलिपुटो राजा तस्मै पुष्पाञ्जलिं ददौ ॥ १०१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

रुक्मिण्युद्धादे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ।

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

कृष्णाय रुक्मिणीसम्प्रदानम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे देवी महालक्ष्मीश्च रुक्मिणी । आजगाम सभामध्ये मुनिदेवादिभिर्युता
रत्नसिंहासनस्था च रत्नालङ्कारभूषिता । वह्निशुद्धांशुकाधाना कवरीभारभूषिता ॥ २ ॥

पश्यन्ती सस्मिता साध्वी ह्यमूल्यरत्नदर्पणम् ।

कस्तूरीचिन्दुमिर्युक्ता स्निग्धचन्दनचर्चिता ॥ ३ ॥ -

सिन्दूरचिन्दुना शश्वत् मालमध्यस्थलोज्ज्वला । तप्तकाञ्चनवर्णाभा शतचन्द्रसमप्रभा ॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गा मालतीमाल्यशोभिता । सप्तभिर्नृपपुत्रैश्च समानीता च बालकेः ॥

देवेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा नृपपुङ्गवाः ।

ददृशू रुक्मिणीं देवीं महालक्ष्मीं पतिप्रियताम् ॥ ६ ॥

सप्तप्रदक्षिणाः कृत्वा प्रणम्य स्वपतिं सती । सिपेच शीततोयेन स्निग्धचन्दनपल्लवैः ॥

तां सिपेच जगत्कान्तः कान्तां शान्ताञ्च सस्मिताम् ।

ददर्श कान्तः कान्ताञ्च कान्तं कान्ता शुभक्षणे ॥ ८ ॥

अथ देवी पितुः क्रोडे समुबास शुभानना । लज्जया नम्रघटना ज्वलन्ती च स्वतेजसा

राजा देवैश्वरीं तस्मै परिपूर्णतमाय च । प्रददौ सम्प्रदानेन वेदमन्त्रेण नारद ॥ १० ॥

वसुदेवाज्ञया कृष्णः स्वस्तीत्युत्तवा स्थितो मुदा ।

जग्राह देवीं देवश्च भवानीञ्च भयो यथा ॥ ११ ॥

सुवर्णानां पञ्चलक्षं कृष्णाय परमात्मने । दक्षिणां तां ददौ राजा परिपूर्णतमाय च ॥

शुभकर्मणि निष्पन्ने कृत्वा कन्याञ्च वक्षसि । करोद राजा मोहेन मुनिदेवेन्द्रसंसदि ॥

परीहारेण वचसा कृत्वा तस्मै समर्पणम् । सिपेच कन्यां धन्याञ्च नेत्रयुग्मजलेन च ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

रुक्मिण्युद्राहे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ।

नवाधिकशततमोऽध्यायः

रुक्मिण्युद्राहवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे राक्षी रुक्मिणीजननी शुभा । पतिपुत्रवतीमिश्च साध्वीमिः सहिता मुदा

आगत्य मङ्गलं कृत्वा तत्र निर्मेन्थनादिकम् । दम्पती वेशयामास रत्ननिर्माणमन्दिरम्

नानाविच्चित्रचित्राढ्यं हीरहारेण भूषितम् ।

मुकामाणिक्यरत्नेन सुदीप्तं दर्पणेन च ॥ ३ ॥

नवाधिकशततमोऽध्यायः] * कृष्णेन सह पार्वत्यादीनां हास्यालापः * १०६

ददर्श कृष्णस्तत्रैव दुर्गां दुर्गतितानाशिनीम् । सरस्वतीञ्च सावित्रीं रतिञ्च रोहिणीं सती
देवपत्नीं राजपत्नीं मुनिपत्नीं पत्न्यताम् । रत्नसिंहासनस्थाञ्च रत्नभूषणभूषिताम् ॥ ५॥
उत्तस्थु राराद्वृद्धा च श्रीकृष्णं जगतीपतिम् । रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास ता मुद
स्तुतिं चक्रुश्च देवाश्च मुनिपत्नीश्च माधवम् । पुटाञ्जलियुतास्तत्र क्रमेण च पृथक्पृथक्
भोजयामास राक्षी च घरेण सह कन्यकाम् । लक्ष्म्यं सताम्बूलं प्रददौ वासितंजलम्
दुर्गा कृष्णाय प्रददौ तत्र मङ्गलपत्रिकाम् । सर्वासामाज्ञया देवी पठेति तमुवाच सा
पपाठ पत्रिकां कृष्णो देवीसंसदि तस्मितः । लक्ष्मीः सरस्वतीदुर्गासावित्रीराधिकासती
तुलसी पृथिवी गङ्गाऽरुणधती यमुना दितिः । शतरूपा च सीता च देवहूती च मेनका
देव्यश्चैताश्च दम्पत्योः कुर्वन्तु मङ्गलं परम् । पपाठ चेति कृष्णश्च शुश्रुवर्जहसुश्च ताः ॥

पार्वत्युवाच ।

रुक्मिणी रुक्मिणीकान्त त्वां पश्यन्तीञ्च सम्मिताम् ।

पश्य प्रौढां रूपवतीं सुन्दरीं नवयौवनाम् ॥ १३ ॥

सरस्वत्युवाच ।

तव योग्या च युधती रत्नभूषणभूषिता । त्वां प्रार्थयन्तीं सुचिरमवमन्यान्यमीश्वरम् ॥

सावित्र्युवाच ।

यथा वरस्तथा कन्या विधिना योजिता पुरा । विदग्धाया विदग्धेन सर्वत्र सङ्गमः शुभः

स्त्युवाच ।

ईश्वरेण परीहासं का वा कर्तुं क्षमा भुवि ।

ध्यानासाध्यो दुराराध्यो चावमन्यान्यमीश्वरम् ॥ १६ ॥

गायत्र्युवाच ।

यथा वरस्तथा कन्या चाक्षुषो मैत्र्यके गृहे ॥ १७ ॥

रोहिण्युवाच ।

सत्यं ब्रूहि जगन्नाथ कामिनीनाञ्च संसदि ।

कीदृशी राधिका रम्या रुक्मिणी चापि कीदृशी ॥ १८ ॥

सरस्यत्युवाच ।

राधायां यादृशी प्रीतीरुचिमण्यां नैव तादृशी । सा सङ्गिनोप्यवकाले सर्वप्रकीर्णसुवर्धिनी
 प्राणाधिष्ठातृदेवी सापञ्चप्राणाधिका सती । रुक्मिणी कमलासाक्षात्सम्पदामधिदेवता
 सर्वशक्तिस्वरूपा च कृष्णस्य परमात्मनः । युद्धेरप्याधिदेवी च दुर्गा नारायणी परा ॥
 देवाधिष्ठातृदेवी त्वं सापित्री देवमातृका । पिताधिदेवताऽश्च ततोऽन्याश्च कलाकलाः
 न ब्रह्मणि शिवे शैवे गणेशे च दिनेश्वरे । न भक्तेषु च पञ्चायां न शिवायाश्च मय्यपि
 प्रसादो यादृशस्तस्यामन्येषु च न तादृशः । त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या सुपुण्यं भारतं यतः
 तत्र वृन्दापनं धन्यं राधापादाब्जचिह्नितम् । सर्वासामपिदेवीनां राधापुण्यवती सती
 राधापादाब्जनगरे दक्षीं जिग्धमलक्तकम् । अयमेवमिति श्रुत्वा जहसुः सर्वयोपितः ॥
 ध्यायन्ते दूरतः सर्वा राधापक्षःस्थलस्थिता । तस्माद्वाधां नमस्कृत्य तुलनामन्यतेऽहिल
 सरस्यतीवचःश्रुत्वा सापित्रीपार्यती सती । अन्याश्चयोपितः सर्वाः साध्यित्पूजुधसंसदि
 लोपामुद्रानुसूया चाप्यहस्यारुन्धती तथा । सर्वास्ता मुनिपत्न्यश्च रमसं चकुरीश्वरम्
 अथदेवाश्च भूपाश्च मुनीन्द्राश्चापि भीष्मकः । पूजयामास विधिना भोजयामास सादरम्
 खाद्यतां पाद्यतां लोका दीयतां दीयतामिति । शम्भो बभूव नगरे वाद्यसंगीतमङ्गलैः ॥
 अथ प्रभाते ब्रह्मेशशेषाद्यास्त्रिदशास्तथा । यानस्यारोहणं भूपाश्चकिरे च त्वरान्विताः

राजा महोप्रसेनश्च पसुदेवस्त्वरान्वितः ।

कारयामास यात्राञ्च श्रीकृष्णं रुक्मिणीं सतीम् ॥ ३३ ॥

सुमद्रा रुक्मिणीमाता कन्यां कृत्वा स्ववक्षसि ।

रुरोदोच्चैस्तत्सखीमिर्बान्धवैरित्युवाच सा ॥ ३४ ॥

सुमद्रोवाच ।

क यासि मां परित्यज्य वत्से मातरमोश्वरीम् ।

कथं जीवामि त्वां त्यक्त्वा कथं त्वं वापि जीवसि ॥ ३५ ॥

महालक्ष्मीर्मम गृहात् कन्यारूपा च मायया । वसुदेवालयं यासि वासुदेवप्रिया सती
 इत्युक्त्वा कन्यकां शोकात् सिपेचनेत्रजैर्जलैः । भीष्मकः साधुनेत्रश्चकन्यांकृष्णेसमर्प्य

तञ्च कृत्वा परीहारं करोदोच्चैस्तीव्र सः । करोद् रुक्मिणीदेवी श्रीकृष्णश्चापि मायया ॥
 रथमारोपयामास वसुदेवः सुतं वधूम् । पतस्मिन्नन्तरे राजा जामात्रे यौतुकं ददौ ॥
 गजेन्द्राणां सहस्रञ्च पद्गुणञ्च तुरङ्गमम् । दासीनाञ्च सहस्रञ्च किंकराणां शतं शतम्
 रत्नानाञ्च सहस्रञ्चैवामूल्यरत्नभूषणम् । स्वर्णानां परिशुद्धानां पञ्चलक्षञ्चसादरम् ॥ ४१
 तोयभोजनपानाणि कृतानि चिश्यकर्मणा । सौवर्णानि च रम्याणिसुरभीः प्रवदौ मुदा
 दुग्धवतीधेनूनाञ्च सवत्सानां सदस्रकम् । अमूल्यानि च रम्याणि वह्निशुद्धांशुकानि च
 वसुदेवश्चोपसेनो देवैश्च मुनिभिः सह । प्रहृष्ट्यदनः शीघ्रं द्वारकामिमुखं ययौ ॥ ४४
 प्रविश्य स्वपुरीं रम्यां कारयामास मङ्गलम् । वाद्यञ्च वादयामास सुन्दरं सुमनोहरम् ॥
 देवकी रोहिणी रम्या यशोदा नन्दगेहिनी । अवितिश्चवितिश्चैव तथा च धरकामिनी
 श्रीकृष्णं रुक्मिणीं रम्यां विलोक्य च पुनः पुनः ।

गृहं प्रवेशयामास कारयामास मङ्गलम् ॥ ४७ ॥

चतुर्विधं भोजयित्वा देवांश्च मुनिपुङ्गवान् । नृपांश्च यान्धवांश्चैव परिहारं चकार च
 भट्टेभ्यो ब्राह्मणेभ्योऽपि ददौ रत्नादिकं मुदा ।

तांश्चापि भोजयामास परितुष्टांश्च सस्मितान् ॥ ४६ ॥

एवं भुत्वा धनं लब्ध्वा ययुः सर्वे गृहमुदा । मङ्गलं कारयामास वसुदेवस्य बह्वभा ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

रुक्मिण्युद्धादे नवाधिकशततमोऽध्यायः ।

दशाधिकशततमोऽध्यायः ।

राधायशोदासंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

आगतेषु गतेष्वेधं साङ्गे मङ्गलकर्मणि । नन्दो यशोदया सार्द्धं पुत्राभ्यासं समाययौ ॥

यशोदा उवाच ।

ज्ञानञ्जभवता दत्तं पित्रे नन्दाय माधव । माञ्जापि मातरंघत्स कृपां कुरु कृपानिधे ॥
 मामुद्धर महाभाग धरोद्धरणकारण । भयाग्धितरणे भीमे भीताञ्च पतितामपि ॥ ३ ॥
 मायामयी सा प्रकृतिर्भयाग्धितरणे तरी । त्वमेव कर्णधारश्च भक्तोत्तार्णहृषामय ॥४॥
 यशोदाचयनं ध्रुत्वा जहास पुरुषोत्तमः । उवाच मातरं भक्त्या क्षान्तिनाञ्च गुरोर्गुरुः ॥५॥
 धीमगघानुवाच ।

सिद्धियोगात्मकं मातर्ज्ञानञ्च विषयात्मकम् ।

ज्ञानं भक्त्यात्मकं श्रेष्ठं महास्यकारणं शुभम् ॥ ६ ॥

ज्ञानं पञ्चविधं प्रोक्तं सर्ववेदेषु सम्मतम् । भक्त्यात्मकं सर्वपरं तेषाञ्च लक्षणं शृणु ॥७॥

ध्रुतिपसादिकानाञ्च घण्डनं स्यान्तशोधनम् ।

नाडीनां शोधनञ्चैव चक्राणामपि भेदनम् ॥ ८ ॥

शक्तिकुण्डलिनीयुक्तमीश्वरं चिन्तयेत्ततः । इन्द्रियाणाञ्च दमनं लोभादीनाञ्च वर्धनम् ॥

मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम् । विशुद्धञ्च तथान्नास्यं चरुपदकं प्रकीर्तितम्

नारीणामपि कुर्वेधं मूर्खाणाञ्च विशेषतः ।

ज्ञानं योगात्मकं साध्वी सिद्धानां साध्यमीप्सितम् ॥ ११ ॥

जन्तूनामपि सर्वेषां ज्ञानं स्वविषये तथा । सन्तःसर्वे विज्ञानन्ति स्वेच्छया च मदीयया

सिद्ध्यात्मकञ्च सिद्धानां नियुक्तं सर्वकर्मसु ।

चतुस्त्रिंशत्सुसिद्धानां साधनं बोधनं तथा ।

ज्ञानं मोक्षात्मकं सिद्धं परं निर्वाणकारणम् ॥ १३ ॥

निवृत्तिमार्गमारुढं भक्तस्तन्नेव वाञ्छति । भक्तात्मकञ्च यज्ज्ञानं तुभ्यं राधा प्रदास्यति

तस्याञ्च मानवं भावं त्यक्त्वाञ्चाञ्च करिष्यति ।

नन्दाय दत्तं यज्ज्ञानं तच्च तुभ्यं प्रदास्यति ॥ १५ ॥

गच्छ नन्द ब्रजं मातर्नन्देन सह सादरम् ।

इत्युत्तवा चिन्तयं कृत्वा जगामाभ्यन्तरं हरिः ॥ १६ ॥

दशाधिकशततमोऽध्यायः] * राधायशोदासंवादवर्णनम् *

११०१

नन्दो यशोदया सार्द्धं प्रययौ फटलीवनम् । ददर्श राधां तत्रैव निद्रितां त्यक्तभूषणाम् ॥
दधानां शुकुपलञ्च निराहारां कुर्योदरीम् । पट्टस्थे पट्टजदले सजले चन्दनाविते ॥ १८ ॥

शयानां शुष्किर्तोष्ठाञ्च सायुनेनाञ्च मूर्च्छिताम् ।

ध्यायमानां पदाम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः ॥ १९ ॥

धाह्यज्ञानपरित्यक्तां तन्निघिष्टेकमानसाम् ।

पश्यन्तीं सस्मितं कान्तं पश्यन्तीमुन्मुष्णायुजम् ॥ २० ॥

इसन्तीञ्चरन्तीञ्च स्वप्ने कान्तसमीपनः । सर्पामि.परितः शश्वत् संपितां श्वेतचामरैः
दिपानिशं रक्षिताञ्च गोपीभिः शतकोटिभिः । सावधानपरामिध्व धेनुदस्ताभिरीक्षरीम्
सप्तद्वारेषु युक्ताभिः परितः प्राङ्गणेषु च ॥ २२ ॥

तां दृष्ट्वा विस्मयं प्राप्य सभाष्योनिन्द एव च । ननामपरया भक्त्या दण्डयत् प्रणिपत्यच
निद्रां त्यक्त्वा च सहसा युयुधे सेश्वरेच्छया । क्षणेन चेतनां प्राप विषयज्ञानवर्जिता ॥
पुरतो दम्पती दृष्ट्वा पप्रच्छ सादरं सती । उपाच मधुर्य्यैषं तत्रैव सर्वासंसदि ॥ २५ ॥

राधिकावाच ।

कस्त्यञ्चात्र समायातो ब्रूहि वा किं प्रयोजनम् ।

॥ च मे विषयज्ञानं न जानामि नरं पशुम् ॥ २६ ॥

किं जलं वा स्थलं किं वा किं वा नरकं दिनं शृणु ।

स्त्रियं पुमांसं क्लीबं वा नाहं जानामि भेदफम् ॥ २७ ॥

राधिकायचनं ध्रुवा नन्वध्व विस्मयं ययौ । भीता यशोदानिकटं गोपीसम्भाविता ययौ
उपास निफटे तस्याः समुपाच प्रियं पचः । उपास तत्र नन्वध्व गोपीरक्षासनेन च ॥
यशोदोपाच ।

चेतनं पुरा राधे त्वमात्मानं रक्ष यततः । द्रक्ष्यसिप्राप्यनाथञ्च संग्रामे मङ्गले दिने ॥ २८ ॥
त्यक्तो पिश्यं पवित्रञ्च स्पन्दुलञ्च भुरेद्वरि । गोप्यञ्च पुण्यपचञ्च स्वरपाशमनुसंस्पृष्टा
लोका गास्पन्ति स्पर्शोत्ति तार्पयता सुमङ्गलाम् ।

सन्तो पेशञ्च चत्वारः पुराणानि पुरातनम् ॥ ३२ ॥

अहं यशोदा नन्दोऽयं बुद्धिरूपे निबोध माम् । वृषभानुसुता त्वञ्च मां निशामय सुव्रते ।
 द्वारकानगराद्गन्धे श्रीकृष्णसन्निधानतः । त्वान्तिकप्रागताहं प्रेरिता हरिणा सति ॥३४॥
 शृणु मङ्गलवार्ताञ्च मङ्गलञ्च गदाभृतः । आराद् द्रक्ष्यसि कृष्णं तं हे देवि चेतनं कुरु ॥
 भक्त्यात्मकं परिह्वानं देहि महाञ्च साम्प्रतम् । त्वद्भर्तृरुपदेशेन त्वत्समीपं समागतौ ॥
 पश्चादायास्यति हरिस्त्वां मुहूर्तं वरानने । भविष्यत्यचिरेणैव श्रीदाम्नः शापमोचनम्
 यशोदावचनं श्रुत्वा वार्तां प्राप्य गदाभृतः । श्रीकृष्णनामस्मरणान्न दूरीभूतममङ्गलम् ॥

संप्राप चेतनं राधा सम्भाष्य कृष्णमन्तरम् ।

उवाच मधुरं शान्ता लौकिकी भक्तिमुत्तमाम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

राधायशोदासंवादे दशाधिकशततमोऽध्यायः ।

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

रामादिशब्दानां व्युत्पत्तिस्तेषाञ्चप्रशंसा ।

राधिकौषाच ।

ज्ञानात्मकश्च परमो ब्रह्मेशोपपूजितः । ज्ञानञ्च न द्वौ तुभ्यं मन्मूलं प्रेषिता सति ॥१॥

तैनैव छान्ना नेतुं भाषार्थं बोधयामि किम् ।

वेदाः सन्तश्च भाषार्थं नैव जानन्ति तस्य च ॥ २ ॥

स्त्रीजातिरयला मूढा वस्तुतोऽज्ञानतत्परा । ततस्तद्विरहेणैव सन्ततं हतचेतना ॥ ३ ॥

किं चाहं कथयिष्यामि ज्ञानं पञ्चविधेषु च । भक्त्यात्मकं सर्वपरं निबोध कथयामि ते
 श्रीकृष्णस्य घरेणापि त्वं साधो निर्मयोभव । गोलोकेवापि पतनं सम्भवेच्चकुयोगिनः
 तस्मात् सर्वं परित्यज्य भजस्व परमेश्वरम् । पुत्रबुद्धिं परित्यज्य ब्रह्मरूपं निशामय ॥
 सर्वं यशोदे भवति परित्यज्य च नश्यम् । गत्वा वृन्दावनं रम्यं पुण्यक्षेत्रञ्च भारतम्

कृत्वा त्रिकालज्ञानञ्च निर्मले यमुनाजले । कृत्वाष्टदलपद्मञ्च स्निग्धेन चन्दनेन च ॥८॥
 ध्यानेन गर्गदत्तेन शुद्धेन मनसा सति । सम्पूज्य परमानन्दं सानन्दं व्रज तत्पदम् ॥९॥
 कृत्वा निकृन्तनं कर्म पितृभिः शतकैः सह । वैष्णवेन सद्दालापं कुरुष्व सततं सति ॥
 परं हुतवहऽधालां भक्तो वाञ्छति पञ्चरम् । वरञ्च कण्टके वासं वरञ्च विपभक्षणम् ॥
 हरिभक्तिविहीनानां न सङ्गं नाशकारणम् । स्वयं नष्टो भक्तिहीनो बुद्धिभेदं करोति च
 भङ्गुरो भक्तिवृक्षस्य भक्तिसङ्गेन वर्धते । परं हरिकथालापपीयूषासेचनेन च ॥ १३ ॥
 भक्तकालापदीपाम्निज्वालायाः कलयापि च । अङ्कुरः शुष्कतां याति पुनः सेकेन वर्धते
 तस्मादभक्तसङ्गञ्च सावधानः परित्यज । यथा दृष्ट्वा कालसर्पं नरो भीत्या पलायते ॥
 यशोदे च प्रयत्नेन स्यात्मानः पुत्रमीश्वरम् । राम नारायणान्तं मुकुन्द मधुसूदन ॥१६॥
 कृष्ण केशव कंसारे हरे वीकुण्ठ धामन । इत्येकादश नामानि पठेद्वा पाठयेदिति ।

जन्मकोटिसहस्राणां पातकादेव मुच्यते ॥ १७ ॥

राशब्दोविश्वपचनो मध्वापीश्वरवाचकः । विश्वानामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः
 रमते रमया सात्त्वं तेन रामं विदुर्वुधाः । रमाया रमणस्थानं रामं रामविदो विदुः ॥
 रा चेति लक्ष्मीपचनो मध्वापीश्वरवाचकः । लक्ष्मीपतिं गतिं रामं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

नाम्ना सहस्रं दिव्यानां स्मरणे यत् फलं लभेत् ।

तत् फलं लभते नूनं रामोच्चारणमात्रतः ॥ २१ ॥

सारूप्यमुक्तिवचनो नारेति च विदुर्वुधाः । यो देवोऽप्ययनं तस्य स च नारायणः स्मृतः
 नाराश्च कृतपापाश्चाप्ययनं गमनं स्मृतम् । यतो हि गमनं तेषां सोऽयं नारायणः स्मृतः
 स रुद्धारायणेत्युक्तवा पुमान् कल्पशतत्रयम् । गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम्
 नारञ्च मोक्षणं पुण्यमयनं ज्ञानमीप्सितम् ।

तयोर्ज्ञानं भवेद् यस्मात् सोऽयं नारायणः प्रभुः ॥ २५ ॥

नास्त्यन्तो यस्य वेदेषु पुराणेषु चतुर्षु च । शास्त्रप्यन्येषु योगेषु तेनानन्तं विदुर्वुधाः
 मुकुमध्ययमानञ्च निर्माणं मोक्षवाचकम् । तद्ददाति च यो देवो मुकुन्दस्तेन कीर्तितः
 मुकुं भक्तिरसप्रेमवचनं वेदसम्मतम् । यस्तं ददाति भक्तेभ्यो मुकुन्दस्तेन कीर्तितः ॥

ममाधुना च भवती ध्यानस्य व्यवधारिका । ध्यानमङ्गे महादोषो नराणामपि सुन्दरि
इति श्रीग्रहवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
राधायशोदासंवादे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ।

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

प्रद्युम्नाख्यानवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

वासुदेवो द्वास्कायां वसुदेवाक्षया मुने । प्रययौ रत्नरचितं रुक्मिणीमन्दिरं वरम् ॥१॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशममूल्यरत्ननिर्मितम् । पुरतः परितोरम्यं नाना चित्रेणचित्रितम् ॥२॥
अमूल्यरत्नकलशं श्वेतचामरदर्पणीः । वह्निशुद्धांशुकैः शुद्धैः परितः परिशोभितम् ॥ ३ ॥
ददर्श रुक्मिणीं देवीमतीवनवयौवनाम् । रत्नपर्वङ्गमारुह्य शयानां सस्मितं मुदा ॥४॥
अप्रौढाञ्च नवोढाञ्च नवसङ्गमलज्जिताम् । अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणेन विभूषिताम् ॥५॥
सुचारकधरीभारां मालतीमाल्यभूषिताम् । दृष्ट्वा कृष्णं भीष्मकन्या सहस्रा प्रणनाम सा
तां सम्भाष्य जगन्नाथो रत्नतल्पे उवाच सः । शुभक्षणे च शुभया स रमे रमया सह
सुजसम्भोगमात्रेण मूर्च्छामाप मुदासती । तस्यां जले कामदेवो भस्मीभूतश्च शम्भुना
स शंवरं निहत्यैव तत्र प्राप रतिं सतीम् । रती प्रायावतीनाम्ना सङ्केतेन सुरस्य च ।
छायां दृष्ट्वा च शयने गृहिणी शंवरालये ॥ ६ ॥

नारद उवाच ।

जहार् शंवरं कामो दैत्यं केन प्रकारतः । कथयस्व महाभाग चिस्तरिण शुभां कथाम् ॥

नारायण उवाच ।

समतीते च सप्ताहे रुक्मिणी सूतिकागृहम् ।

गृहीत्वा बालकं दैत्यो जगाम स्वालयं जवात् ॥ ११ ॥

अपुत्रकश्च दैत्येशः पुत्रं प्राप्य प्रहर्षितः । मायावत्यै ददौ दृष्टो दृष्टा मायावती सती ॥
भतीवपालनेनैव धर्ययामास बालकम् । सरस्वती तां रहसि कथयामास निर्जने ॥१३॥

सरस्वत्युवाच ।

शिवकोपानलैः पूर्वं भस्मीभूतः पतिस्तव । स चायं रुक्मिणीपुत्रो दैत्येनैव समाहृतः ॥
माययापिब मायेशो रुक्मिणीसूतिकागृहात् ।

समानीय ददौ तुभ्यं पतिस्तेऽयं न चात्मजः ॥ १५ ॥

कामञ्च कथयामास जगन्माता च सा सती ।

तव पत्नी रतिश्चेयं रमस्व रमया सह ॥ १६ ॥

त्वमेव रुक्मिणीपुत्रो नान्यदैत्यस्य मन्मथः ।

कुरीष्व सती नित्यं रोदिति स्म त्वया विना ॥ १७ ॥

इत्युक्त्वा च ययौ वाणीं ब्रह्माणीं ब्रह्मणः पदम् ।

स रेमे निर्जने नित्यं रामया सह सुन्दरः ॥ १८ ॥

एकदा मन्मथं दैत्यो ददर्श रहसि स्थितम् । शृङ्गारं रामया सार्द्धं कुर्यन्तं कौतुकेन च ॥

सस्मितं सस्मितायाश्च मध्यवक्षःस्थलस्थितम् ।

रतिं ददर्श कामेन मूर्च्छिता सुरतोत्सुकाम् ॥ २० ॥

दृष्ट्वा चुकोप दैत्यश्च जग्राह खड्गमुत्तमम् । इवान् खड्गहस्तश्च कामदेवं रतिं सतीम्
शंवर उवाच ।

धिक् त्वां महाकामुकश्च मूर्खं पण्डितमानिनम् ।

महापातकिना श्रेष्ठं प्रमत्तं मातृगामिनम् ॥ २२ ॥

धिक् त्वाञ्च पुञ्जलीं मत्तां कामुकीं हतचेतनाम् ।

पुत्रं गृहीत्वा रहसि करोषि सुरतिं सति ॥ २३ ॥

इत्येषमुत्त्वा खड्गञ्च तामेव हन्तुमुद्यतः । जिघासन्तं रतिं दैत्यं प्रेरयामास मन्मथः ॥

पपात दूरतो ब्रह्मन् मूर्च्छितः स्वाङ्गपीडितः । पुनश्च चेतनां प्राप्य कोपेन प्रचलन्निध ॥

शिवदत्तञ्च शूलञ्च जग्राह निर्गरेण च । शतसूर्यप्रभं शूलं प्रलयाग्निसमं मुने ॥ २६ ॥

द्रुक्वा जग्मुश्च देवाश्च ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः । पवनः कथयामास कर्णे कामस्य यत्नतः ॥

स्मर स्मर महामायां दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ।

पवनस्य घञः श्रुत्वा दुर्गां सस्मार मन्मथः ॥ २८ ॥

शूलं यभूय तस्याङ्गे रम्यं माल्यं मनोहरम् ।

ब्रह्मास्त्रेण च तं दैत्यं जघान मन्मथो मुदा ॥ २९ ॥

रतिं गृहीत्वा यानेन जगाम द्वारकां पुरोम् । प्रययुर्देवताः सर्वाः स्तुत्वा च पार्वतीस्त्रयम्

रुक्मिणीमङ्गलं कृत्वा प्रजग्राह रतिं सुतम् । उत्सवं कारयामास परं स्वस्त्ययनं हरिः

ब्राह्मणान् भोजयामास पूजयामास पार्वतीम् ।

अथ कृष्णः क्रमेणैव वेदोक्ते मङ्गले दिने ॥ ३२ ॥

सप्तानां रमणीनाञ्च पाणिप्राहञ्चकार ह ।

कालिन्दी सत्यभामाञ्च सत्यां नाग्निरजितीं सतीम् ॥ ३३ ॥

जाम्यवती लक्ष्मणाञ्च समुद्राहं चकार सः । तामिः सार्द्धं क्रमेणैव पुत्रोत्पत्तिं चकार ह

एकस्यां दशपुत्राञ्च कन्यकैका क्रमेण च । निहत्य नरकं दैत्यं सपुत्रञ्च नृपेश्वरम् ॥

बलवन्तं सुरं दैत्यं जघान रणमूर्धनि । ददर्श कन्यास्तत्रस्थाः सहस्राणाञ्च षोडश ॥

शताधिका वयस्याश्च शश्वत्सुस्थिरयौवनाः । प्रफुल्लवदन्ताः सर्वा रत्नभूषणभूषिताः ॥

शुभक्षणे च तासाञ्च पाणिं जग्राह माधवः । तामिः सार्द्धं स रेमे च क्रमेण च शुभक्षणे

एकस्यां दशपुत्राञ्च कन्यकैका क्रमेण च । हरेरेताम्यपत्यानि यभूवुश्च पृथक् पृथक् ॥

एकदा द्वारकारम्यां दुर्वासा मुनिपुङ्गवः । शिष्यैल्लिकोटिमिः सार्द्धमाजगामाधलीलया

राजा महोत्तरेण सपुत्रः सपुरोहितः । वसुदेवो वासुदेवोऽप्यकूरश्चोद्धवस्तथा ॥ ४१ ॥

नीत्वा षोडशोपचारं प्रणमुर्मुनिपुङ्गवम् ।

शुभाक्षिपञ्च प्रददौ तेभ्यो ब्रह्मन् पृथक् पृथक् ॥ ४२ ॥

एकानंशाञ्च कन्यां तां ददौ तस्मै शुभक्षणे ।

मुकामाणिकादीराञ्च रत्नञ्च यौतुकं ददौ ॥ ४३ ॥

स रेमे रामया सार्द्धं माहेन्द्रे रत्नमन्दिरं । रत्नेन्द्रसारनिर्माणं ददौ तस्मै शुभाश्रमम् ॥

एकदा स मुनिश्रेष्ठः समालोच्य स्वचेतसा । शयानं कुत्रचिद्भ्रमपर्यङ्के स्तननिर्मिते ॥
 श्रुतवन्तं पुराणञ्च श्रद्धया कुत्रचिद्भिभुः । महोत्सवे नियुक्तञ्च कुत्रचित् प्राङ्गणे शुभे ॥
 ताम्बूलं भुक्तवन्तञ्च भक्त्या वृत्तञ्च सत्यया । कुत्रचित्सेवितं तल्पे रुक्मिण्याश्वेतचामरैः
 कालिन्दीसेवितपदं शयानं कुत्रचिन्मुदा । सर्वत्र समसंभाषां चकार भगवान् मुनिः ॥
 विस्मयं प्रययौ विप्रो दृष्ट्वा तत् परमद्भुतम् । तुष्टाय जगतीनाथं रुक्मिणीमन्दिरे पुनः ॥
 वसन्तञ्च सुधर्मायां सतां संसदि सुन्दरम् ॥ ५० ॥

दुर्वासा उवाच ।

जय जय जगतां नाथ जितसर्वे जनार्दन सर्वात्मक सर्वेश सर्वधीज पुरातन
 निर्गुण निरीह निर्लिप्त निरञ्जन निराकार भक्तानुग्रहविग्रह सत्यस्वरूप समातन
 निःस्वरूप नित्यनूतन ब्रह्मेशोपधनेशवन्दित पद्मया सेवितपादपद्म ब्रह्मज्योतिरनि-
 र्यचनीय वेदाविदितगुणारूप महाकाशसमासमानीय परमात्मज्ञमोऽस्तु ते ॥ ५१ ॥
 इत्येवमुक्त्वा मनसा हरेरनुमतेन च । प्रणम्य तस्थौ विप्रेन्द्रस्तत्रैव पुरतो हरेः ॥ ५२ ॥
 तमुवाच जगन्नाथो हितं सत्यं पुरातनम् । ज्ञानञ्च वेदविहितं सर्वेषाञ्च सतां मतम् ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मा भैर्विप्र शिवांशस्त्वं किं न जानासि ज्ञानतः ।
 अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ॥ ५३ ॥
 अहमात्मा च सर्वेषां शयाः सर्वे मया विना ।
 प्राणिदेहान् मयि गते यान्त्येव सर्वशक्तयः ॥ ५४ ॥
 जातावप्येक एवाहं व्यक्ता एव पृथक् पृथक् ।
 यो भुङ्क्ते तस्य तृप्तिः स्यान्नान्येषाञ्च कदाचन ॥ ५५ ॥
 पृथक् जीवादिसर्वेषां प्रतिमानञ्च प्राणिनाम् ।
 परिपूर्णतमोऽहञ्च गोलोके रासमण्डले ॥ ५६ ॥

श्रीदामशापाद्राधा सा मां द्रष्टुमक्षमाधुना । सर्वे चैवांशरूपेण कलया च तद्दशतः ॥
 रुक्मिणीमन्दिरे चांशोऽप्यन्यासां मन्दिरे कलाः ।

ममापि कुत्रचिश्चांशं कुत्रचिञ्च कलाकलाः ।

कलाकलांशाः^२ कुत्रापि प्रतिमासु च देहिषु ॥ ५६ ॥

इत्युक्त्वा जगतां नाथो गृहस्थाभ्यन्तरं ययौ ।

तुर्घासाञ्च प्रियां स्युक्त्वा श्रीहरेस्तपसे गतः ॥ ६० ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

मुनिकृष्णसंवादे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ।

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

अकारणात् पत्नीत्यागदोषः ।

श्रीनारायण उवाच ।

सशिष्यश्चापि तुर्घासास्त्यक्त्वा च द्वारकां पुरीम् ।

कैलासं प्रययौ भक्त्या शङ्करं ब्रह्ममीश्वरम् ॥ १ ॥

गत्वा मुनिञ्च कैलासं प्रणनाम शिवं शिवाम् ।

तुष्टाय परया भक्त्या सशिष्यः प्रणतः शुचिः ॥ २ ॥

सर्वं कथयामास वृत्तान्तं श्रीहरेरपि । भात्मनस्तपस्तत्त्वं स्वचैराग्यञ्च चेतसः ॥ ३ ॥

नेञ्च घचनं ध्रुत्वा प्रहस्य पार्थवी सती । तमुवाच हितं सत्यं साक्षाच्छङ्करसन्निधौ ॥

पार्वत्युवाच ।

धर्मतत्त्वं न जानासि धर्मिष्ठं मन्यसे स्वकम् ।

अनपत्यां परित्यज्य क्व यासि तपसे मुने ॥ ५ ॥

अनपत्याञ्च युधतीं कुलजाञ्च पतिव्रताम् ।

त्यक्त्वा भवेयुः सन्न्यासी ब्रह्मचारो यतीति वा ॥ ६ ॥

घाणिज्ये वा प्रयासे वा चिरं दूरं प्रयाति यः ।

तीर्थं वा तपसे वापि मोक्षार्थं जन्म खण्डितुम् ॥ ७ ॥

न मोक्षस्तस्य भवति धर्मस्य स्वलनं ध्रुवम् । अभिशापेन भार्याया नरकञ्च परत्र च
इदं च यशोनाश इत्याह कमलोद्भवः ॥ ८ ॥

द्वारकां गच्छ हे विप्र स्वधर्मं रक्ष साग्रतम् । एकानंशां मदंशाञ्च धर्मतः परिपालय ।
पादपद्मार्जितं पादपद्मं सर्वं सुदुर्लभम् । सन्ततं शम्भुना गीतं मुनीन्द्रैः सनकादिभिः ।
परित्यज्य सुरतरोः कृष्णस्य परमात्मनः । क यासि तपसेयस्स सुधां त्यक्त्यामनोहरां
श्रीकृष्णपादपद्मञ्च स्वप्ने जपति यो मुने । शतजन्मकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।
यद्दयाल्ये यश्च कौमारे वार्धके यच्च यौवने ।

कामतोऽकामतो वापि भस्मोभूतञ्च पातकम् ॥ १३ ॥

साक्षाद्यो भारते वर्षे श्रीकृष्णधरणाभ्युज्जम् ।

दृष्ट्वा सद्यो भवेत् पूज्यो जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥ १४ ॥

कोटिजन्मार्जितात् सद्यः कृतपापाद्भिमुच्यते ।

सर्वाण्येष हि तीर्थानि यतः पूतानि नित्यशः ॥ १५ ॥

तद् यतं तत्तपः सत्यं तत् पुण्यं तच्च पूजनम् ।

सफलं कृष्णसम्यग्निधेः स्वजन्मवपुःश्रमं यतः ॥ १६ ॥

कृष्णभक्तिविहीनश्च ब्राह्मणो वैदपारगः । तत्सङ्गाश्च तदालापाद्भक्तमक्तिः प्रणश्यति ।

कृष्णस्योच्छिष्टभोजी यः कृष्णश्च ब्राह्मणः स्वयम् ।

आपद्विपपनात् पूतः पूतं फलं जगत् क्षमः ॥ १८ ॥

श्रीकृष्णञ्च परित्यज्य क यासि तपसे द्विज । तपसा फलमाप्नोति श्रीकृष्णस्मरणेन च
यतो भक्तिर्न च भवेच्छ्रीकृष्णो परमात्मनि । स गुरुः परमो धैरो करोति जन्मनिष्फलम्
पार्यर्त्तापचनं धृत्वा शूद्रः प्रेमविह्वलः । पुलकाक्षितसर्पाङ्गस्तुष्टाय परमेभ्यरीम् ॥ २१ ॥
दुर्वासाः प्रणतिं कृत्वा शिष्यदुर्गापदाम्युजे । स्मारं स्मारं कृष्णपदं पुनश्च द्वारकां ययौ
तत्र गत्वा हरिं दृष्ट्वा तुष्टाय परमेश्वरम् । एकानंशालयं गत्वा स च रमे तया सह ॥

कृष्णो मुपिष्टिरूपानात् प्रययौ हरितनाभुम् ।

कुन्तीं सम्भाष्य भूपञ्च भ्रातृंश्च प्रमुदान्वितः ॥ २४ ॥

उपायेन जरासन्धं निहत्य शाल्वमेव च ।

कारयामास यज्ञञ्च विधियोधितदक्षिणम् ॥ २५ ॥

गुनीन्द्रैश्च नृपेन्द्रैश्च राजसूयमभीप्सितम् । शिशुपालं दन्तवक्त्रं तत्र यज्ञे जघान सः ॥

प्रतीचनिद्रां कुर्वन्तं सभायाः सुरभूपयोः । पपात तच्छरीरञ्च जीवो गत्वा हरेः पदम् ॥

॥ दृष्ट्वा तत्र सर्वेशं तुष्टायागत्य माधवम् ॥ २७ ॥

शिशुपाल उवाच ।

वेदानां जनकोऽसि त्वं वेदाङ्गानाञ्च माधव ।

सुराणामसुराणाञ्च प्राकृतानाञ्च रेहिनाम् ॥ २८ ॥

भूक्ष्मां विधाय सृष्टिञ्च कल्पभेदं करोषि च । मायया च स्वयं ब्रह्मा शङ्करः शेष एव च

प्रभवो मुनयश्चैव वेदाश्च सृष्टिपालकाः । फलांशेनापि कलया दिक्पालाश्च ब्रह्मादयः

स्वयं पुमान् स्वयं स्त्री च स्वयमेव नपुंसकः ।

कारणञ्च स्वयं कार्यं जन्यश्च जनकः स्वयम् ॥ ३१ ॥

यन्त्रस्य च गुणो दोषो यन्त्रिणश्च धृतो धृतम् ।

सर्वे यन्त्रा भवान् यन्त्री त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ३२ ॥

मम क्षमस्वापरार्थं मूढस्य द्वारिणस्तथ । ब्रह्मशापात् कुबुद्धेश्च रक्ष रक्ष जगद्गुरो ॥

इत्येवमुक्त्वा क्रमतो जयो विजय एव च । मुदा तौ ययतुः शीघ्रं वैकुण्ठद्वारमीप्सितम्

शिशुपालस्य स्तोत्रेण सर्वे ते विस्मयं ययुः । परिपूर्णतमं कृत्वा मेनिरेकृष्णमीश्वरम् ॥

कारयित्वा राजसूयं भोजयामास ब्राह्मणान् । कुरुपाण्डवयुद्धञ्च कारयामास भेदतः ॥

भुयो भारावतरणं चकार स कृपानिधिः । पुनर्ययौ द्वारकाञ्च चिरं स्थित्या नृपाढया ॥

विप्राया मृतयत्साया जीवयामास पुत्रकान् ।

मृतस्थानात् समानीय तन्मात्रे प्रददौ सुतान् ॥ ३८ ॥

तद् दृष्ट्वा देवकी तुष्टा ययात्वे मृतपुत्रकान् ।

मृतस्थानात् समानीय ददौ मात्रे सहोदरान् ॥ ३९ ॥

अयोदशाधिकशततमोऽध्यायः । * कुष्ठान्मुक्तिकामेन साम्येनसूर्यपूजनम् * १११

सद्यो जहार दारिद्र्यं सुदाम्नो ब्राह्मणस्य च । समागतस्यस्वगृहाद् द्वारकांशरणार्थिनः
तस्मै ददौ राजलक्ष्मी निश्चलां सातपौरुषीम् । पृथुकानाकणं भुक्त्वाभक्तस्यभक्त्यत्सल
यभूव तस्य राजञ्च यथेन्द्रस्यामरावती । यथा धनेश्वरो देवो धनाढ्यः स यभूव ह ॥

निश्चलां हरिभक्तिञ्च ददौ दास्यं सुदुर्लभम् ।

अघिनाशिनि गोलोके यथेष्टं पदमुत्तमम् ॥ ४३ ॥

जहार पारिजातञ्च शक्राहङ्कारमेव च । सत्यां च कारयामास पुण्यकं व्रतमीप्सितम् ॥
वर्धयामास सर्वत्र नित्यं नैमित्तिकं मुने । तत्र व्रते कुमाराय स्वात्मानं दक्षिणां ददौ
ब्राह्मणान् भोजयामास तेभ्यो रत्नं ददौ मुदा । सत्यभामातिमानञ्च वर्धयामास सर्वतः
रुक्मिण्याभतिसौभाग्यमन्यासाञ्च नयनयम् । वैष्णवानां सुराणाञ्च विप्राणामपि पूजनम्
वर्धयामास सर्वत्र नित्यं नैमित्तिकं मुने । परमाध्यात्मिकं ज्ञानमुद्घवाय ददौ प्रभुः ॥
भर्जुनं कथयामास गीतां च रणमूर्धनि । कृत्वा निष्कण्टकञ्चैव रूपया च कृपानिधिः
युधिष्ठिराय पृथिवी राज्यलक्ष्मीं ददौ प्रभुः ।

दुर्गाञ्च कारयामास वैष्णवीं ग्रामदेवताम् ॥ ५० ॥

यज्ञञ्च कारयामास कोटिहोमान्वितं शुभम् । नानाप्रकारनीवेद्यैर्धूपदीपैर्मनोहरैः ॥ ५१ ॥
ब्राह्मणान् भोजयामास पार्वतीप्रोतये तथा । रैवते पर्यते रम्ये चामूल्यरत्नमन्दिरे ॥ ५२ ॥
गणेशं पूजयामास देवानामीश्वरं परम् । लङ्कुकां तिलानाञ्च सुस्थाद् सुमनोहराम्
परितुष्टिं पञ्चलक्षं नैवेद्यञ्च ददौ मुदा । लङ्कुकं स्वस्तिकानाञ्च सप्तलक्षं सुधोषमम् ॥
गणेश्वराय प्रददौ शर्कराशतराशिकम् । पकरम्भा कलानाञ्च दशलक्षमपूपकम् ॥ ५५ ॥
मिष्टान्नं पायसं रम्यं स्वाद् स्वस्तिकविष्टकम् । गृतञ्च नयनीतञ्च दधि दुग्धं सुधोषमम्
धूपं दीपं पारिजातपुष्पमाल्यमभीप्सितम् । सुगन्धि चन्दनं गन्धं पद्मिशुभांशुकं ददौ ॥

यज्ञञ्च कारयामास कोटिहोमान्वितं शुभम् ।

ब्राह्मणान् भोजयामास तुष्टाय स गणेश्वरम् ॥ ५८ ॥

पायं दशविधञ्चैव पादयामास तत्र ये । सूर्यञ्च पूजयामास साम्यः कुष्ठदायाय च
हविष्यं कारयामास तञ्च साम्यं समातरम् । परिपूर्णं घृतस्रग्धाप्युपहारैर्नुत्तमैः ॥ ६॥

वरं ददौ च साम्बाय स्तोत्रञ्च भास्करः स्वयम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीरुष्णजन्मखण्डे
गणेशपूजा नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ।

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

अनिरुद्धोपाख्यानम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

रुष्णपुत्रश्च प्रद्युम्नो महायल पराक्रमः । तत्पुत्रोऽप्यनिरुद्धश्च विधातुरंश एष च ॥ १ ॥
कदासाधनिरुद्धो नवयौवनसंयुतः । सुप्तो रहसि पर्यङ्के पुष्पचन्दनचर्चिते ॥ २ ॥
यत्ने ददर्श युवतीं पुष्पोद्याने सुपुष्पिते । सुगन्धिपुष्पततप्रेमस्निग्धचन्दनचर्चिते ॥ ३ ॥
प्यानां सुस्मितां रम्यां नवयौवनसंयुताम् । भ्रूल्यरत्ननिर्माण भूपणेनविभूषिताम् ॥ ४ ॥
शरकेयूरवलयशङ्खकङ्कणशोभिताम् । मणिकुण्डलयुग्मेन गण्डस्यलविराजिताम् ॥ ५ ॥
प्रतीचसूक्ष्मवसनां कण्ठमञ्जीररञ्जिताम् । पङ्कविम्बाधरीणीञ्च शरत्कमललोचनाम् ॥ ६ ॥
तारत्पद्मप्रभामुष्टकोटीन्दुनिन्दिताननाम् । मुक्तापङ्क्तिसमासाद्यदन्तपङ्क्तिमनोहराम् ॥ ७ ॥
त्रिचक्रकवरीभारां मालतीमाल्यभूषिताम् । कस्तूरीकुङ्कुमालकस्निग्धचन्दनकज्जलैः ॥ ८ ॥
पद्मावलीविरचितसुकपोलसलोज्ज्वलाम् । दाडिम्बकुसुमाकारसिन्दूरपिन्दुभूषिताम् ॥ ९ ॥
श्रीरामकदलोस्तम्भनिन्दितोरुषलोज्ज्वलाम् । अत्युच्चैर्वर्तुलाकारस्तनयुग्मविभूषिताम् ॥ १० ॥
नितम्बमारुतघ्राञ्च कामवाणप्रपीडिताम् । कामुकी कमनीयाञ्च पश्यन्ती घक्रचक्षुषा ॥ ११ ॥
कुङ्कुमालकरकाकपादपद्मविराजिताम् । वायुप्रेरणवस्त्रेण व्यग्रगुम्फलोज्ज्वलाम् ॥ १२ ॥
तां दृष्ट्वा कामपुत्रश्च कामोन्मथितमानसः । उवाच मधुरं मत्तः काममत्तां सुकोमलाम् ॥ १३ ॥
चारुचम्पकवर्णां कामेन पुलकान्विताम् । अतिप्रौढानवोढाञ्चभृङ्गारैच्छासुचञ्चलाम् ॥ १४ ॥

अनिरुद्ध उवाच ।

किं देवा किञ्च गान्धर्व्यो का त्वं कामिनि कामने ।

कस्य स्त्री कस्य कन्या वा कं वा वाञ्छसि सुन्दरि ॥ १५ ॥

त्रैलोक्यातुलसौन्दर्यान्मुनिमानसमोहिता । न-विमेषि कथं ब्रूहि स्वयमेकाकिनीचमाम्
अहं त्रैलोक्यनाथस्य पौत्रः कामात्मजोऽधुना । कान्तेऽहमनिरुद्धश्च नवीनयौवनाहतः
कमनीयश्च कामी च कामशास्त्रविशारदः । कामुकीकामनां पूर्णां कर्तुमेवेश्वरः स्वयम्
मां भजस्य सुशोले त्वं सुवेशश्च सुशोलकम् । रतिशूरं रतिरसप्राहं रतिरसप्रियम् ॥
रतिपुत्रं रतिरसं प्रमत्तं रसिकं प्रिये । युवानं व्याधिधीनञ्च कामुकं कामुकीच्छति ॥

विदग्धा सुविदग्धश्च कान्तमायाति कामतः ।

विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान् भवेत् ॥ २१ ॥

प्रच्छाद्य लोचनास्यश्च नवसङ्गमलज्जिता । विलोकयन्ती वक्राक्षिकोणेन तमुवाच सा
कामिन्युवाच ।

कामुकः कामपुत्रोऽसि कामेन व्याकुलोऽधुना ।

अपांश्चेत् कामुकीयोग्यो न कामश्चिन्तितः कथम् ॥ २२ ॥

पौत्रस्त्रैलोक्यनाथस्य स्वतः सम्भावितस्य च ।

स्वयं योग्यो योग्यपुत्रो विवाहं न कथं कुरु ॥ २४ ॥

विवाहिता यज्ञपत्नी सा च पुण्यव्रता सती ।

निश्चला सततं साध्या वर्धिनी सङ्गिनी सदा ॥ २५ ॥

भयप्रीतिदानसाध्या गुप्तपत्नीत्वनिश्चला ।

नैमित्तिका न नित्या सा सा च वेदविवर्जिता ॥ २६ ॥

परं नरकसोपाना परब्रह्मायशस्करा । साधुस्तत्र न हि रतो वंशजो वैष्णवो यदि ॥
यदि पूर्वं भवेद् भ्रान्तो निवृत्तः साधुसङ्गतः । प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला
प्रायश्चित्ती पुनर्लिप्तो निवृत्तः पातकी यदि । उपहास्यो भुवि भवेत्सर्वं कुञ्जरशौचघत्
सुशाला सुन्दरी शान्ता धर्मपत्नी प्रशंसिता ।

पतिव्रता सुसाध्या सा शश्वत्सुप्रियवादिनी ॥ ३० ॥

कोमलाङ्गी विदग्धा च श्यामा रतिमुखप्रदा ।

एवम्भूता परित्यज्य वैष्णवस्तपसे व्रजेत् ॥ ३१ ॥

साचेत् परिणता साध्वी शान्ता पुत्रवती यदा ।

अन्यथा च वृथा सर्वं तपस स्फलन भवेत् ॥ ३२ ॥

असाधुश्च कुपशस्वेत् परनारी प्रयाति चेत् ।

स याति नरकं गौर पितृभि सप्तभि सह ॥ ३३ ॥

ब्रह्मूपा वाणकन्या वाण शङ्कुरकिङ्कुर । वाणस्त्रैलोक्यविजयी शङ्कुरो जगता पति ॥

न स्वतन्त्रा पराधीना त्रिषु कालेषु कामिनी ।

पुष्पली या स्वतन्त्रा साप्यसदृशप्रसूतिफा ॥ ३५ ॥

पिता ददाति कन्यां ता योग्याय च वराय च ।

कन्यां वरं न याचेत् धर्मं एव सनातन ॥ ३६ ॥

त्वं च योग्योऽसि योग्याह मामिच्छसि यदि प्रभो ।

वाणं प्रार्थय शम्भु वाप्यथवा पार्वती सतीम् ॥ ३७ ॥

इत्पुत्रत्वा सुन्दरो साध्वी सान्तर्धाना यभूव ह ।

निद्रां तत्याज सहसा कामी कामात्मजो मुने ॥ ३८ ॥

बुद्ध्या स्वप्नं स विज्ञाय कामेन व्यथितातुर ।

यभूव व्याकुलो शान्तो न दृष्ट्वा प्राणवल्लभाम् ॥ ३९ ॥

त्यक्तधाहारमनिद्रश्च प्रमत्तश्च कुशोदर । क्षणं तिष्ठति शेते च क्षणं रहसि रोदिति ॥

पुत्रं दृष्ट्वा तु क्रन्दन्त देवकीरुक्मिष्णी सती । अन्याश्चयोषित सर्वा कथयामासुरीश्वरम्

तासां च वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मधुसूदन । उवाच सर्वतत्त्वज्ञ कृष्णश्च पूर्णमानस ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कामातुरा वाणकन्या रतिं दृष्ट्वा शिवेशयो । वरं सम्प्राप दुर्गाया व्याकुला मदनात्प्रत

स्वप्नश्च दर्शयामास सानिरुद्धश्च पार्वती । मम पौत्रं प्रमत्तश्च स्वकारं कीर्तुकेन च ॥४४

तत्पुत्रीञ्च प्रमत्ता ता करोमि स्वप्नतोऽधुना ।

स्वच्छन्दं तिष्ठ न निर नास्ति चिन्ता मनोव्यथा ॥ ४५ ॥

इति कृष्णः समाश्वास्य सर्वात्मा सर्वसिद्धिचित् ।

स्वप्रञ्च दर्शयामास बाणपुत्रीञ्च कामुकीम् ॥ ४६ ॥

सुता सुतल्पे बाला सा पुष्पचन्दनचर्चिते । नवयोधनसंयुक्ता रत्नभूषणभूषिता ॥ ४७ ॥

शयाना रत्नपर्यङ्के ददर्श स्वप्नमीप्सितम् । अतीघनिर्जने देशे रत्ननिर्माणमन्दिरे ॥ ४८ ॥

नर्चननीरदश्याममतीवनवयोधनम् ।

कौटिकन्दर्पलीलामं सस्मितं सुमनोहरम् ॥ ४९ ॥

रत्नकेयूरबलयरत्नमञ्जोररञ्जितम् । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलधिराजितम् ॥ ५० ॥

चन्दनोक्षितसर्पाङ्गं भूषितं पीतवाससा । सुचारुमालतीमाल्यवक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् ॥

शयानं रत्नपर्यङ्के पुष्पचन्दनचर्चिते । तं दृष्ट्वा सहसा साध्वी तन्मूलं प्रपयौ मुवा ॥

उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विब्रूयता । कामात्मजप्रिया कान्ता कामबाणप्रपीडिता ॥

उपोवाच ।

कस्त्वं कामुक भद्रं ते मां भजस्व स्मरानुराम् ।

भक्तिप्रौढां नवोद्गाञ्च नवसङ्गमलालसाम् ॥ ५४ ॥

तवानुरक्तां भक्ताञ्च गान्धर्वेण समुदह । विधादाष्टप्रकारेषु गान्धर्वः सुलभो नृणाम् ॥

अनुरक्ता प्रियां प्राप्य त्यजेद्यः कपटी पुमान् ।

तस्माद्याति महालक्ष्मीः शापं वत्स्या सुदारुणम् ॥ ५६ ॥

पुमानुवाच ।

अहं कृष्णस्य पौत्रश्च कामदेवात्मजः स्वयम् ।

कथं गृह्णामि त्वां कान्ते तयोरनुमतिं विना ॥ ५७ ॥

इत्येवमुक्त्वा स पुमानन्तर्धानं चकार सः ।

कामेन व्याकुला कान्ता न दृष्ट्वा कान्तमीप्सितम् ॥ ५८ ॥

निद्रां त्यक्त्वा समुत्थाय तल्पादेव मनोहरान् । विपसाद सखीमध्ये प्रमत्ताब्दता भृशम्

पप्रच्छ तां घरालीनां किं किमित्येव निश्चितम् ।

उवाच बोधयामास चित्रलेखा सुयोगिनी ॥ ६० ॥

चित्रलेखोपाच ।

चेतनं कुरु कल्याणि कस्मात्ते भोतिस्त्ववणा ।

स्वयं शम्भुः शिवासाक्षाद् दुर्लभ्ये नगरे सति ॥ ६१ ॥

शिवस्मरणमात्रेण सर्वारिष्टं पलायते । शिवं भवति सर्वत्र शिव एव शिवालयः ॥ ६२ ॥
ध्यानाद् दुर्गतिनाशिन्याः सर्वदुर्गं विनश्यति । ददाति मङ्गलं तस्मै सर्वमङ्गलमङ्गला ॥
चित्रलेखावच. श्रुत्या करोदोच्चैर्भूशं सती । याणश्च शङ्कराभ्यासे विपसाद् प्रमूर्च्छितः
जहास शङ्करो दुर्गां कार्तिकेयो गणेश्वरः ॥ ६४ ॥

गणेश्वर उवाच ।

यो ददाति ध्रुवं दुःखमन्यस्मै दम्भमोहितः । सूक्ष्मधर्मविचारेण स विन्दति चतुर्गुणम्
शिवेशयोश्च क्रीडाञ्च हृष्ट्या या काममोहिता ।
वरं तस्मै ददौ दुर्गां वरमेव सुदुर्लभम् ॥ ६६ ॥
स्यन्ने गत्वा स्वयं देवी मत्तं कृत्वा स्मरात्मजम् ।
अधुना वामपार्श्वञ्च शम्भोस्तिष्ठति मूकवत् ॥ ६७ ॥

सर्वं ज्ञात्वा च सर्वज्ञो भगवान् हरिरीश्वरः । स्यन्ने सुवेशं पुरयं दर्शयामासकन्यकाम्
सुवेशं पुरयं दृष्ट्वा युवानं युवती सती । परमेष्ठा भवेत्तस्या धर्मेभीत्या निवर्तते ॥ ६८ ॥
सुवेशं पुरयं दृष्ट्वा पुञ्चली पापवंशजा । त्यजेन्निद्राञ्च स्वाहारं पतिं पुत्रं धनं गृहम् ॥ ७० ॥
चेतनं गृहकार्यञ्च कुललज्जां कुलद्वयम् । युवानं रतिशूरञ्चाप्यतिनीचं न हि त्यजेत् ॥
त्यजेज्जातिञ्च धर्मञ्च प्राणाञ्च परिणामतः ॥ ७१ ॥

तस्मात्प्राज्ञः प्रयत्नेन प्राणेभ्यो युवती सदा । परिरक्षेच्च सततमायायुक्तां न विश्वसेत्
हृदयं क्षुरधारामं नारीणां मधुरं वचः । तासां मनो न जानन्ति सन्तो वेदाश्च वैदिकाः
प्रयातु द्वारकां सद्यश्चित्रलेखा सुयोगिनी । अनिरुद्धं समाहृत्य प्रमत्तमवलीलया ॥ ७४ ॥
इतिश्रुत्या महादेवो गणेशं तमुपाच ह । न शृणोति यथा याणः शुभकार्यं तथा कुरु
चित्रलेखा ययो तूष्णं द्वारकामवनं हरेः । सर्वेषामपि दुर्लभ्या लीलया प्रविवेश सा ॥
निद्रितां चानिरुद्धञ्च समाहृत्य च योगतः । स्थमारोहयामास निद्रितं बालकं मुदा ॥

सा मनोयायिनी भद्रा गृहीत्वा बालकं मुने ।

मुहूर्ताच्छोणितपुरं कृत्वा शङ्खध्वनिं ययौ ॥ ७८ ॥

अथाश्रमाभ्यन्तरे च रुद्धुः सर्वयोपितः । अहो बाणहरो घत्सः क्व गतः प्राणघल्लभः ॥

कृष्णस्ताश्च समाश्वास्य सर्वज्ञः सर्वतत्त्वचित् ।

साम्भः कामचलैः सार्धं कृष्णः सात्यकिना तथा ॥ ८० ॥

गृहीत्वा गरुडं धीरं रथमारुह्य सत्वरः । सुदर्शनं पाञ्चजन्यं तदा कौमोदकीं गदाम् ॥

पश्चाद्यास्यति देवेशो नगरं शोणितं तथा । सगणैः शङ्खद्रेणैव पार्वत्या परिरक्षितुम् ॥

अथ सा योगिनी धन्या पुण्या मान्या च योपिताम् ।

शिष्या दुर्वाससः शान्ता सिद्धयोगेन तिष्ठिवा ॥ ८३ ॥

बालकं योधयामास रुदन्तं मातरं स्मरन् । स्नापयित्वा दत्तौ तस्मै माल्यचन्दनभूषणम्

कृत्वा सुवेशं बालस्य कन्यान्तः पुरमीप्सितम् । चक्रे प्रवेशं योगेन रक्षकैश्चापि रक्षितम्

तामुपां रक्षितां दृष्ट्वा निराहारां हृशोदरीम् । शीघ्रश्च योधयामास सखीभिः परिधारिताम्

उपां कृत्वा च सुस्नातां वस्त्रभूषणभूषिताम् । वस्त्रैर्माल्यैश्चन्दनैश्च सिन्दूरपत्रकैः शुभैः

द्वयोः सम्भाषणं तत्र माहेन्द्रे च शुभक्षणे । कारयामास गोप्या च सखीनां सङ्गमेन च

पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा सा रमे विगतज्वरा । गान्धर्वेण विवाहेन तामुयाद स्मरात्मजः ॥

रतिर्वभूव सुखिरमुभयोः सुखकारणम् । दिवानिशं न बुबुधे स्मरपुत्रः स्मरातुरः ॥ ९० ॥

उपा कामातुरा प्रौढा नवोढा नवसङ्गमात् ।

मूर्च्छां सम्प्राप पुंसश्च स्पर्शमात्रेण कामुकी ॥ ९१ ॥

एयं नित्यञ्च रहसि सङ्गमः सुमनोहरः । वभूव सुचिरं विप्र राजा शुश्राव रक्षकात् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

बाणयुद्धेऽप्युपानिरुद्धयोः संवादे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

वाणासुरयुद्धवर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

अथ भीता रक्षकास्ते समुद्युर्वाणमीश्वरम् । स्कन्दंगणेशं दुर्गाञ्च दण्डवत् प्रणिपत्यच
रक्षका ऊचुः ।

अहो वृष्टश्च कालोऽयमतीवदुरितक्रमः ।

स्वतन्त्रा वालिका प्रौढा पतिमिच्छति साम्प्रतम् ॥ २ ॥

मसङ्गसङ्गमन्ताथ साधूनां दुःखकारणम् । संसर्गजा गुणा दोषा भवन्ति सन्ततनृणाम्
चित्रलेखा स्वयं दूती समानीय परं वरम् । रणशूरं महावीरं नृपेन्द्रञ्च महारथम् ॥ ४ ॥

युवानं व्याधिहीनञ्च कन्दर्पादपि सुन्दरम् ।

सम्भोगं कारयामास वुवुधे न दिषानिशम् ॥ ५ ॥

साम्प्रतं तथ कन्यास्याप्युषा गर्भवती सती । कुलजा कुलयोश्चैव तताङ्गारस्वरूपिणी
दौहित्रो घापि दौहित्री यभूव साम्प्रतं तव ।

कन्यां पश्य महाप्रौढां नगरी नागरान्विताम् ॥ ७ ॥

नखचिक्षतसर्वाङ्गी वराधीनाञ्च चञ्चलाम् । पुंसश्च सङ्गिनीं शम्भुद्रहस्ये रतिसङ्गिनीम् ॥
सस्मिता सकटाक्षञ्च चञ्चलेक्षणवीक्षिताम् । एवं श्रुत्वा लज्जितश्च चाणस्तत्र चुकोपह

युद्धाय च मतिं चक्रे वारितः शम्भुना भृशम् ।

वारितञ्च गणेशेन स्कन्देन शिवया तथा ॥ १० ॥

भैरव्या भद्रकाल्या च योगिनीभिश्च सन्ततम् । अप्रमिर्भैरवैश्चैव स्त्रैरेकादशात्मकैः ॥
भूतैः प्रेतैश्च कुम्माण्डैर्वेतालैर्ब्रह्मराक्षसैः । योगीन्द्रैरपि सिद्धेन्द्रैश्चैषण्डादिभिस्तथा ॥

कोट्या च ग्रामदेव्या च यथा मात्रा हिताथ च ।

उवाच शङ्करो वाणं मूढं पण्डितमानिजम् ।

हितं सत्यं नीतिशास्त्रं परिणामसुखावहम् ॥ १३ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

भृशं घातं प्रवक्ष्यामि कथामेतां पुरातनोम् । भुवो भारावतरणे भारते स्वयमीश्वरः ॥

निहत्य सर्वान् राजेन्द्रान् द्वारकाया विराजते ।

यस्य लोमसु विश्वानि तस्य वासोः सदीश्वरः ॥ १५ ॥

वासुदेव इति ख्यातः कथ्यते तेन कोविदैः ।

धातुर्विधाता भगवान् चक्रपाणिः स्वयं भुवि ॥ १६ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रकृतेः परः । निर्गुणश्च निरीदृशश्च भक्तानुग्रहविग्रहः ॥ १७ ॥

परं ब्रह्म परं धाम परमात्मा च देहिनः ।

यस्मिन् गते शयो जीवो संग्रामस्तेन संभवेत् ॥ १८ ॥

शत्रुघ्नो महाकाले यथा मूढदिशस्तथा । तथात्मा च निराकारो देही च ध्यानहेतुना

तस्यपुत्रोऽनिरुद्धश्च महायलपराक्रमः । त्रैलोक्यमपि संहर्तुं क्षणेन च क्षमः स्वयम् ॥

सर्वे देवाश्च दैत्याश्च यलवन्तोमहारथाः । ते सर्वे धानिरुद्धस्य कलां नार्हन्ति पोडुशीम्

ययोरैव समं वित्तं ययोरैव समं यलम् । तयोर्विवाहो मैत्री च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥

बलिः पिता ते दैत्यानां सारभूतो महारथः । क्षणेन येन नीतश्च सुतलं स हरैः कला ॥

सर्वे बांशकलाः पुंसः परिपूर्णतमस्य च । वृन्दावनेश्वरस्यापि कृष्णस्य परमात्मनः ॥

पार्वत्युवाच ।

ध्यायते ध्याननिष्ठश्च हृत्पद्मे च दिवानिशम् ।

ब्रह्मा महेशः शेषश्च भगवन्तं सनातनम् ॥ २५ ॥

दिनेशश्च गणेशश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः । ध्यायते परमात्मानं भगवन्तं सनातनम् ॥

सनत्कुमारः कपिलो नरो नारायणस्तथा । ध्यायते हृदयाम्भोजे भगवन्तं सनातनम् ॥

मनवश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्रा योगिनां पराः ।

ध्यानासाध्यश्च ध्यायन्ते भगवन्तं सनातनम् ॥ २८ ॥

सर्वापि सर्वधोजश्च सर्वेशश्च परात्परम् । ध्यायन्ते ज्ञानिनः सर्वे भगवन्तं सनातनम् ॥

गणेश उवाच ।

अभाग्यञ्च वलेश्चापि वैष्णवस्य महात्मनः । मूढोऽयमीदृशः पुत्रः प्रह्लादस्य च धीमतः
स्कन्द उवाच ।

भये भ्रातर्न भ्रुता च हिरण्यकशिपोः कथा ।

हिरण्याक्षस्य च मधोः कैटभस्य महात्मनः ।

पूर्वजास्तेऽपि ते दैत्या महाबलपराकमाः ॥ ३१ ॥

क्रमेण विष्णुना नीता लीलया यमसादनम् । भगवान्यस्य संहर्ता स्वयं नारायणः प्रभुः
तस्य को रक्षिता भ्रातर्निपतस्य शुभाय च । तेषाञ्च वचनं श्रुत्वा तानुवाचासुरेश्वरः
कीपरक्तास्यनयनो धनुष्पाणिर्यथान्तकः । शृणु मातः प्रवक्ष्यामि शृणु तात महेश्वर
शृणु भ्रातर्गणपते शृणु भ्रातश्च कार्तिक । शुभाशुभं प्राक्नेन प्राणिनां कर्मिणां यथा ॥
कृतकर्मातिरिक्तञ्च कार्यं केषाञ्च वर्तते । नाप्राप्तकाले ध्रियते चिद्धः शरशतैरपि ॥ ३६ ॥

तृणाग्नेनापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति ।

यस्माच्च यस्य निर्घाण विधात्रा लिखितं पुरा ॥ ३७ ॥

तदेव नित्यं सत्यञ्च निपेकः केन वार्यते ।

संग्रामे कातरो यो हि निष्फलं तस्य जीवनम् ॥ ३८ ॥

जयी यशश्च लभते मृतः स्वर्गञ्च गच्छति । प्रविश्य कन्यां गृह्णाति नगरं शिघ्ररक्षितम्
पार्यत्या च गणेशेन युद्धेन बलिना तथा ।

को वा गृह्णाति कन्याञ्च कस्य धातुजीवितस्य च ॥ ४० ॥

सगर्भा तव कन्येति समायां रक्षको वदेत् । इति मे वज्रतुल्यञ्च श्रुतिकोटं परं ध्रुवः ॥

अतोऽनिरुद्धं हत्वा च घातयिष्यामि कन्यकाम् ।

अन्यथा ज्वलद्ग्नौ च घक्ष्यामि च कलेवरम् ॥ ४२ ॥

कोट्युवाच ।

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि माताहं तेऽपि धर्मतः । दुरन्तेनापि पुत्रेण पित्रोर्दुःखं पदे पदे ॥

कन्या परगृहीता साप्यन्यस्मै दातुमक्षमा ।

श्रीकृष्णम्यापि पौत्राय प्रद्युम्नस्य सुताय च ॥ ४४ ॥

अनिरुद्धाय महते स्वेच्छया देहि कन्यकाम् । पूतोऽसि भारतेवर्षे सप्तभिः पितृभिः सद्यः
यौतुकं देहि सर्वस्वं यशसे महते भुवि । अन्यथा रणमध्ये च त्वां हनिष्यति माधवः
सुदर्शनेन चक्रेण को वा त्वां रक्षितुं क्षमः । कोटरीवचनं श्रुत्वा लुकोप दैत्यपुङ्गवः ॥
प्रययौ रथमारुह्य यत्र पौत्रो हरेर्मुने । स्कन्दः सेनापतिर्भूत्वा प्रययौ शङ्कराक्षया ॥ ४८ ॥

बाणस्वस्त्ययनं चक्रे गणेशश्च शिघ्रः स्वयम् ।

बाणं शुभाशिपं चक्रे पार्वती कोटरी तथा ॥ ४९ ॥

अष्टौ च भैरवाश्चैव रुद्राश्चैकादशौ च ते । सर्वे युद्धाय हन्तारो यभूवुः शस्त्रपाणयः ॥
एतस्मिन्नन्तरे दूतोऽप्यनिरुद्धमुवाच ह । पार्वत्या प्रेरितश्चैव बाणपत्न्या च सत्वरम् ॥

दूत उवाच ।

अनिरुद्धोत्तिष्ठ भद्रं पार्वतीवचनं शृणु । भय सान्नाहिको वत्स कुरु युद्धं यद्विर्भव ॥ ५२ ॥

भीतोपा रुदती व्रस्ता सस्मार पार्वती सतीम् ।

रक्ष रक्ष महामाये मत्प्राणेश्वरमीप्सितम् ॥ ५३ ॥

अभयेऽप्यभयं देहि संग्रामे घोरदाकणे । त्वमेव जगतां माता स्नेहस्ते सर्वतः समः ॥
अथानिरुद्धः सन्नाही शस्त्रपाणिर्वभूव ह । उपादत्तं रथं प्राप्य चकारारोहणं मुदा ॥
बहिः सम्भूय शिविराहदर्श बाणमीश्वरः । सान्नाहिकं शस्त्रपाणिं रक्तास्यलोचनं परम्
दृष्ट्वाऽनिरुद्धं बाणश्च तमुवाच रुपान्वितः । घोरसंग्राममध्ये च विपोक्तिं प्रज्वलन्निव ॥

बाण उवाच ।

अये वीर महादुष्ट नीतिशास्त्रचिर्जित । चन्द्रवंशकुलाङ्गार पुण्यक्षेत्रेऽयशस्कर ॥ ५८ ॥

पिता ते शंवरं हत्वा जग्राह तस्य कामिनोम् ।

ततो जातो मवानेव निरोधं स्वकुलक्षमम् ॥ ५९ ॥

पितामहो वासुदेवो मथुरायाञ्च क्षत्रियः । गोकुले वैश्यपुत्रश्च नाम्ना च नन्दनन्दनः ॥
वृन्दावने च गोपस्य नन्दस्य पशुरक्षकः । साक्षाज्जाय्य गोपीनां दुष्टः परमलम्पटः ॥

जघान पूतनां सद्यो नारीघाती ह्यधार्मिकः ।

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः] * चाणानिरुद्धसंवादेवर्णनम् *

११२५

निहत्यश्वरं शत्रुं गृहीत्या स्वप्रियांसतोम् । आजगाम द्वारकाञ्च चन्द्रसूर्याव साक्षिणी
पितामहं वासुदेवं त्वं किं जानासि मुदवत् ।

यञ्च सन्तो न जानन्ति वेदाश्चत्वार एव च ॥ ८१ ॥

चासुः सर्वनिवासस्य विश्वानि यस्य लोमसु । तस्य देवः परं ब्रह्म वासुदेव इति स्मृतः
शङ्करं पृच्छ साक्षाच्च यस्य भृत्योऽधुना भवान् ।

कृष्णभृत्यस्य च बलेः पुत्रोऽसि किङ्करात्मकः ॥ ८३ ॥

गोकुले वैश्यपुत्र त्वं ब्रूहि त्वं ज्ञानदुर्यल । भोजनं वेदविहितं शश्वत् क्षत्रियवैश्ययोः
द्रोणः प्रजापतिः धेष्ट्रो धरा तस्य प्रिया सती । पुत्रञ्च तपसा लेभे परमात्मानमीश्वरम्
द्रोणेनन्दोवैश्यराजो यशोदा सा धरासती । वृषभानुसुताराधा सुदामनःशापकारणात्
त्रिशत्कोटिञ्च गोपीनां गृहीत्वाभर्तुराब्रवीत् । पुण्यञ्च भारतं क्षेत्रं गोलोकादाजगामसां
तामिः सार्धं स रमे च स्वपत्नीभिर्मुदान्वितः ।

पार्ष्णि जग्राह राधायाः स्वयं ब्रह्मा पुरोहितः ॥ ८८ ॥

गोपकोटिञ्च गोलोकादाजगाम मुदान्वितः । तेजसा हरितुल्यास्ते पार्यदप्रचरा हरैः ॥
गोरक्षणं हरैरेव गोपवेशस्य चात्मनः । गोपानां शिशुरक्षार्थं मायेशस्यापि मायया ॥
पूतना बलिकन्या च भर्गिनी च तवासुर । वृष्ठा च धामनं बन्ध्या चकार पुत्रमानसम्
पर्यभूतो यदि मम पुत्रो भवति साम्प्रतम् । स्तनं ददामि तनय कृत्वा यक्षसि सुन्दरम्
तस्याः पूर्णं मानसञ्च चकारभगवान्प्रभुः । स्तनं दत्त्वा च गोलोकं ययौ सा रत्नयानतः
कुञ्जा सा भर्गिनी पूर्वं राघवस्य दुरात्मनः । श्रीरामञ्चकमे कामान्नाम्ना शूर्पणखासती
नासां चिच्छेद् तस्याश्च लक्ष्मणो धार्मिकेश्वर ।

तपसा च परं लेभे ब्रह्मणः प्रियमीश्वरम् ॥ ९५ ॥

तेन पुण्येन तं लब्ध्वा गोलोकं सा जगाम ॥

गोपी यभूष गोलोके कृष्णस्यालिङ्गनेन च ॥ ९६ ॥

नरको हरिपथ्यश्च स्वपूर्वप्राक्तनेन च । पार्ष्णि जग्राद् कन्यानां साक्षिणी शशिभास्करौ
भीष्मकन्या महालक्ष्मीः श्रीकृष्णस्य प्रिया सती ।

चैकुण्ठादागता साध्वी ब्रह्मणोऽनुमतेन च ॥ ६८

सत्राजितस्य कन्या सा सत्यमामा घसुन्धरा ।

ददौ कृष्णाय राज्ञा स ता मणिं यौतुकेन च ॥ ६९ ॥

भुवो भाराचतरणहेतुनागमनं हरेः । संजहार भुवो भारं कुरुषाण्डवयुद्धतः ॥ १०० ॥

शिशुपालो वन्तचक्रो जयो विजय एव च । द्वारिणो द्वारि पट्टके च चैकुण्ठे श्रीहरेरपि
कुमारप्रापात् पतितो प्राप्य जन्मत्रयं ध्रुवम् । हिरण्यकशिपुश्चैव तवैव पूर्वपूरुषः ॥

तस्य भ्राता हिरण्याक्षस्तेनैव परुषो जितः ।

हरिर्नृसिंहरूपेण तं जघानाचलीलया ॥ १०३ ॥

शूकरेण हतोऽन्यश्च पूर्वजन्मकथा शृणु । द्वितीये जन्मनि पुरा राघवः कुम्भकर्णकः ॥

श्रीरामेण हतौ तौ द्वौ शेषजन्म कलौ तयोः । श्रीकृष्णेन हतौ तौ द्वौ धर्मपुत्रावुभौ तथा

जरासन्धश्चाश्वत्थश्च दुरात्मा कंस एव च । प्राकनास्रस्यवध्यास्ते भुवो भारजिहीर्षया

मार्धातुः सुतमध्ये च यवनश्चापि प्राकनात् ।

लक्ष्मीश्वरस्य कृष्णस्य धनेन किं प्रयोजनम् ॥ १०७ ॥

प्रतिज्ञया च सत्यायाः पुण्यकप्रतकारणात् । पारिजातंसमानीय चकार स्वात्मनोव्रतम्

स्वयंजान्यवती देवी बुर्गाशा भल्लकात्मजा । पार्णि जग्राह तस्याश्च तपसा भारते हरिः

कुन्त्याश्च क्षेत्रज्ञाः पुत्राः केवलं भर्तुराह्वया ।

कलौ निषिद्धं त्रियुगे प्रसिद्धं पलपैतृकम् ॥ ११० ॥

युधिष्ठिरो धर्मपुत्रो भीमश्च पवनात्मजः । महेन्द्रपुत्रो धर्मिष्ठः फाल्गुनो विजयी भुवि

यस्मै पाशुपतं शम्भुः प्रददौ च स्वयं पुरा ।

अश्वमेधं गवालम्बं सन्न्यासं पलपैतृकम् ॥ ११२ ॥

देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत् । द्रौपद्याः पञ्च भर्तारो शाङ्गरेण वरेण च ॥

बलदेवः पुष्पमधु पूतं पिबति नित्यशः । चकार यमुनाह्वानं स्नानार्थं धार्मिकः शुचिः ॥

सुमद्राञ्च ददौ कृष्णः फाल्गुनाय महात्मने ।

कन्यकां मातुलानाञ्च दाक्षिणात्यः परिग्रहात् ॥ ११५ ॥

देशेष्वन्येषु दोषोऽयमित्याह कमलोद्भवः ॥ ११६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
बाणानिरुद्धसंवादे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ।

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

बाणानिरुद्धसंवादवर्णनम् ।

बाण उवाच ।

अनिरुद्ध बुधोऽसि त्वं त्वयोक्तं सत्यमेव च । शम्भुना चैवमुक्तञ्च सर्वबुद्धं सचेतसा ॥

त्वयोक्तं शङ्करवरात् पञ्चाना स्वामिना प्रिया ।

द्रौपदी च महाभागा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

शवरेण हृता पूर्वं तव माता कथं रती । देवैरपि कथं दत्ता देवास्तेन जिताः कथम् ॥

अनिरुद्ध उवाच ।

एकदा रघुनायक्य सीतया लक्ष्मणेन च । स्नातः सरसि तत्रस्थो रम्ये पञ्चवटीतटे ॥ ४ ॥

उवाच सीता हेमन्ते जल सुस्वादु निर्मलम् ।

तथान्नं व्यञ्जनं रम्यं सर्वं चस्तु सुशीतलम् ॥ ५ ॥

फलावचयनञ्चक्रे सीतायै प्रददौ मुदा । ततो ददौ लक्ष्मणाय पश्चाद्भुङ्क्ते स्वयं प्रभुः ॥

लक्ष्मणस्तद् गृहीत्वा च नैव भुङ्क्ते फलं जलम् ।

मेघनादपधार्थञ्च सीतोद्धारणकारणात् ॥ ७ ॥

निद्रां न याति नो भुङ्क्ते घर्षणाञ्च चतुर्दश ।

य एवं पुरुषो योगी तद्वचो राघणात्मजः ॥ ८ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रामं द्रष्टुं कमललोचनम् । षड्विंशत्य समायातो द्विजरूपी कृपांनिधिः ॥

भविष्यत् कथयामास श्रुतिकौटपरं वचः ॥ ६ ॥

पक्षिप्याच ।

शृणु राम महाभाग सीतासहोपनं कुरु । सप्ताष्टम्यन्तरे चैव रावणो दुष्टराक्षसः ॥

दुर्निवार्यः प्राक्तनेन जानकीञ्च हरिष्यति ॥ १० ॥

चिधाया लिपितं कर्म प्राक्तनं केन पार्यते ।

देवैश्चतुर्भिः फधितं न च दीपात् परं परम् ॥ ११ ॥

धौराम उवाच ।

सीतां गृहीत्वा त्वं गच्छ छायाग्रैष तु तिष्ठतु । कलत्रपजनं कर्म सर्वेषाञ्च तुमुस्मितम्

सीतां गृहीत्वा प्रययौ स्वन्तीञ्च हुताशनः । सीतया सहृदीछायायातस्थौ रामसन्निधौ

सा च छाया हुता पूर्वं रावणेनापलीलया । समुद्धार तां रामो निहत्य तं सवान्धपम्

घट्टौ परीक्षाकाले च छाया घट्टौ विवेश या ।

भग्निरछायाञ्च संगृह्य ददौ रामाय जानकीम् ॥ १५ ॥

रामस्ताञ्च गृहीत्वा च प्रययौ स्वाश्रमं मुदा । छाया तस्थौ पक्षिपार्वे हृदयेन चिद्वृता

सा च छाया तपश्चक्रे नारायणसरोचरे । तपश्चकार दिव्यञ्च शतवर्षञ्च शूलिनः ॥ १७ ॥

परं घृणुष्व भद्रे त्वमुवाच शङ्करश्च ताम् । उवाच सा शिवं व्यग्रा भर्तुं दुःखेन दुःखिता

पतिं देहि पञ्चधा सा परं पत्रे त्रिलोचनम् । सर्वसम्पत्प्रदस्तुष्टस्तस्यै शर्पो धरं ददौ

श्रीमहादेव उवाच ।

साध्य त्वं पञ्चधा ब्रूहि पतिं देहीति व्याकुला ।

पञ्चेन्द्राश्च हरंरंशा भविष्यन्ति प्रियास्तव ॥ २० ॥

ते च सर्वे च पञ्चेन्द्राश्चाधुना पञ्च पाण्डवाः ।

सा च छाया द्रौपदी च यज्ञकुण्डसमुद्भवा ॥ २१ ॥

ते युगे वेदवती त्रेतायां जनकात्मजा । द्वापरे द्रौपदी छाया तेन कृष्णा त्रिहायणी ॥

पण्डी कृष्णभक्ताश्च तेनकृष्णा प्रकीर्तिता । स्वर्गलक्ष्मीर्महेन्द्राणांसाचपश्चाद्भविष्यति

राजा ददौ फाल्गुनाय कन्यायाश्च स्वयंघरे ।

पप्रच्छ मातरं वीरो वस्तु प्राप्तं मयाधुना ॥ २४ ॥

तमुवाच स्वयं माता गृहाण भ्रातृभिः सह ।

शम्भोर्वरेण पूर्वञ्च पञ्च मातुराज्ञया ॥ २५ ॥

द्रौपद्याः स्वामिनस्तेन हेतुना पञ्च पाण्डवाः ।

चतुर्दशानामिन्द्राणां पञ्चेन्द्राः पञ्च पाण्डवाः ॥ २६ ॥

शङ्करेणामिसंशता सा मात्रा भर्तिसंतेन च । भर्ता ते भस्मसाद्भूतो हरकोपातलेन च
हे रतित्वं महाशता दैत्यप्रस्ता भवाधुना । विजित्यदेवान् सेन्द्रांश्च शंवरस्त्वां हरिष्यति
पुनरुक्तं वरं प्रादात्सतीत्यं ते न यास्यति । छायां दत्त्वा तिष्ठ गेहे यावज्जीवति ते पतिः
इति ते कथितं सर्वमितिहासं पुरातनम् । देवानां गुप्तचरितं शृणु दैत्येन्द्र साम्प्रतम् ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सुभद्रश्च महाबलः । कुम्भाण्डभ्राता बलवान् बाणसेनापतीश्वरः ॥
निर्भर्त्स्य बाणसमरे शस्त्रपाणिर्महारथः । श्रीकृष्णपौत्रं शूलञ्च चिक्षेप प्रलयान्वितम् ॥
अर्धचन्द्रेण तच्छूलं चिच्छेद् कामपुत्रकः । शक्तिं चिक्षेप भद्रश्च शतसूर्यसमप्रभाम् ॥
चैष्णवस्त्रेण चिच्छेद् तां शक्तिं कामपुत्रकः । नारायणास्त्रं चिक्षेप सुभद्रो रणमूर्धनि
प्रणम्य शीते निर्भीतो मदनस्य सुतो पत्नी । ऊर्ध्वमुखञ्च यन्नाम शतसूर्यसमप्रभम् ॥
प्रलीनमस्त्रमाकाशे विभ्यसंहारकारणम् । अस्त्रे गते सोऽनिरुद्धो गृहीत्याद्य महानस्त्रिम्
प्रयमश्च भद्रस्य जघानाश्यांश्च सारथिम् । जघान तं सुभद्रश्च लीलया रणमूर्धनि ॥ ३३ ॥
एते सुभद्रे बाणश्च महाबलपराक्रमः । बाणानां शतकञ्चापि चिक्षेप रणमूर्धनि ॥ ३८ ॥

कामात्मजोऽग्निबाणेन बाणोद्यं प्रददाद् सः ।

बाणधिक्षेप प्रज्ञास्त्रं सृष्टिसंहारकारणम् ॥ ३६ ॥

दृष्ट्वा कामात्मजः शीघ्रं सर्वाङ्गं मन्त्रपूर्वकम् ।

प्रज्ञास्त्रेणैव सहसा संजहारायलीलया ॥ ४० ॥

बाणः पानुपतं क्षेप्तुं समारंभे च कोपतः । निषिद्धश्च गणेशेन स्कन्देन, शम्भुना तथा ॥
तद् दृष्ट्वा सोऽनिरुद्धस्तं धनुर्बाणौघसंयुतम् । मुमोच जृम्भणं युजे शीघ्रं तच्च महापथम्
जङ्गो बभूव बाणश्च निद्वेष्टो रणमूर्धनि । पुनर्धिक्षेप निद्रास्त्रं निद्रितं तं चकार सः ।

बाणं तं निद्रितं दृष्ट्वा गृहीत्या पश्यमुत्तमम् ।

वाणं हन्तुं समुद्यन्तं वारयामास कार्तिकः ॥४४॥

स्कन्दश्च शतधाणेश्च वारयामास लीलया । अनिरुद्धं महाभागं बलवन्तं धनुर्धरम् ॥
 अनिरुद्धश्च सहसा तया शक्त्या दुरन्तया । वमञ्जकार्तिककरं रत्नैर्नृसारनिर्मितम् ॥
 गदया कार्तिकः क्रुद्धोऽप्यनिरुद्धरथं मुदा । वमञ्ज लीलया तत्र क्षणेन रणमूर्धनि ॥
 अनिरुद्धोऽर्थं चम्प्रेण क्षुरधारेण लीलया । चिच्छेद् कार्तिकधनुर्भङ्गास्त्रेण नियोजितम् ॥
 जघान कार्तिकस्तञ्च गदया च दुरन्तया । गदा जग्राह तदस्ताज्जवेन मदनात्मजः ॥
 शूलं गृहीत्वा स्कन्दञ्च तमेव हन्तुमुद्यतम् । अनिरुद्धश्च कोपेन प्रेरयामास दूरतः ॥५०॥
 कार्तिक पुनरागत्य गृहीत्वा कामपुत्रकम् । गृहीत्वा च करेणैव पातयामास भूतले ॥
 अनिरुद्धो गृहीत्वासि समुत्तस्थो महाबलः । तयोर्विरोधं दूरञ्च प्रवकार गणेश्वरः ॥
 कार्तिकः प्रययौ गेहमुपागेहं स्मरात्मजः । सर्वं निवेदितुं शम्भुं प्रययौ स गणेश्वरः ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
 वाणयुद्धे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ।

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

शिवलम्बोदरसंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

गणेशस्तु शिवस्थानं गत्वा नत्वा भद्रेश्वरम् ।

सर्वं विज्ञापयामास क्रमेण च पृथक् पृथक् ॥ १ ॥

णानिरुद्धयोर्युद्धं सुमद्रनिधनं तथा । स्कन्दानिरुद्धयोर्युद्धमनिरुद्धस्य चिक्रमम् ॥२॥

गीशवचन श्रुत्वा प्रदृश्य भगवान् भयः । उवाच नृदंष्ट्रया पाचा सुगुप्तं वेदसम्ममम्

श्रीमहादेव उवाच ।

णेश्वर महाभाग श्रूयतां वचनं मम । हितं तथ्यं नीतिसारं परिणामसुखायहम् ॥४॥

असंख्यविश्वसद्भुञ्च सर्वं कृष्णात्मजं सुतम् ।

कृष्णं जानीहि यत् कार्यं कारणानाञ्च कारणम् ॥ ५ ॥

ग्रह्यादितृणपय्यन्तं जगत् सर्वं गणेश्वर । निबोध सत्यं कृष्णञ्च भगवन्तं सनातनम् ॥

गोलोके द्विभुजं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम् । शिशुरूपं गोपवेशं परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥ ७

गोपीमिर्गोपनिकरैः सहितं कामधेनुभिः । पुण्ये गृन्दावने रम्ये सुन्दरे रासमण्डले ॥

चरन्तं मुरलीहस्तं ब्रह्मेशोपघण्डितम् । शतभृ(भृ)ङ्गे च शैलेशे घटमूले निराकुले ॥ ६ ॥

गोष्ठे भाण्डीरनिकटे निर्मले घिरजातटे । नवीननीरदश्यामं शोभितं पीतपाससा ॥ १० ॥

यथा नयं घनोद्यञ्च सौदामिन्या घिराजितम् ।

आपिर्भाषध तेषां वै गोलोके रासमण्डले ॥ ११ ॥

तावन्तो गोकुले रम्ये पुण्ये गृन्दावने घने ।

सर्वे चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ॥ १२ ॥

परिपूर्णतमो रामो ब्रह्मशापात् स्वयिस्मृतः ।

तस्य पुत्रोऽनिच्छद्वा महाबलपराक्रमः ॥ १३ ॥

मया प्रस्थापितः स्कन्दो महायुद्धे सुदारुणे । मृतो वाणश्च संप्राप्ते तेन स्कन्देनरक्षितः

स्कन्दानिच्छदोयुद्धे समत्वं तु गणेश्वर । अष्टौ च मेरुषाः सर्वे द्वादशैकादशीष ते ॥

अष्टौ च पक्षपश्येत् देवाः शक्रादयस्तथा । तथेष द्वादशादित्याः सर्वे दैत्येदरास्तथा

देवानामघर्षाः स्कन्दो वाणश्च सगणस्तथा ।

सर्वे ते नानिच्छद्वा संप्राप्ते तेषुमक्षमाः ॥ १७ ॥

अनिच्छतः स्वयं ग्रहा प्रभुमनः काम एव च । यत्तदेषः स्वयं शोकः कृष्णश्च प्रहृतः परः ॥

यत्तत्तं कथितं सर्वं पाणं रक्ष गणेश्वर । भवान् शुभस्वरूपश्च पिप्पलपण्डनकारकः ॥

भारादायास्यति हरिर्गृहीतवा ॥ सुन्दरानम् । अव्ययमग्न्यवर्तं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ २०

इति धीन्द्रवैषत्तं महापुराणे भागवतनाम्नसंवादे धीकृष्णजन्मवर्णने

वाणगुद्धे शिवलम्बोदरसंवादे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ।

नात्माकाशो वाणयुद्धे युद्धं किं स्वात्मना सह ॥ ३२ ॥

रमात्मा च सर्वेषां भक्तानुग्रहविग्रहः । नित्यः सत्यो हि कृष्णश्च परिपूर्णतमः प्रभुः

गणेशः कार्तिकेशश्च भवानपि तयोः परः ।

किङ्करेषु प्रियो वाणो न हि कृष्णात् परः प्रियः ॥ ३४ ॥

वैकुण्ठेऽहं महालक्ष्मीर्गोलोके राधिका स्वयम् ।

शिखाऽहं शिवलोकेऽपि ब्रह्मलोके सरस्वती ॥ ३५ ॥

अहं निहृत्य दैत्याश्च दक्षकन्या सती पुरा । त्वन्निन्दयात्यक्तदेहा सा बाहंशैलकन्यका

कर्धाजस्य युद्धे च काली च मूर्त्तिभेदतः । सावित्री वेदमाताहं सीता जनककन्यका

विमणी द्वारवत्याश्च भारते भीष्मकन्यका । सुदाम्नः शापतो दैवाद् द्रुपभानुसुताधुना

उर्मपत्नी च कृष्णस्य पुण्ये वृन्दावने पत्ने । भगवन्तञ्च सर्वज्ञं त्वां शिवञ्च सनातनम्

किंवाहं कथयामीति कर्त्तव्यं समयोचितम् ॥ ४० ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारवसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

वाणयुद्धेऽष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ।

ऊनविंशाधिकशततमोऽध्यायः

शिवपार्वतीसंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

पार्वती वचनं श्रुत्वा गणेशश्च शिवः स्वयम् ।

कार्तिकेशश्च काली च तां प्रशंसां चकार ॥ १ ॥

उवाच भगवान् शम्भुर्जगतां मातरं परम् । ज्योतिःस्वरूपां परमां मूलप्रकृतिमीश्वरीम्

श्रीमहादेव उवाच ।

अथा यदुक्तं देवेशि सर्ववेदोक्तमाप्सितम् । अयुक्तमुपहास्यञ्च समरं परमात्मना ॥ ३ ॥

याणो ददातु कन्यां तां स्वर्णभूषणभूषिताम् ।

सामञ्जस्यं यशस्यञ्च शुभदं सर्वकर्मसु ॥ ४ ॥

न ददाति यदावाणो हिरण्यकशिपोःप्रजाः । युद्धे पराङ्मुखो भीतो भगवत्ययशस्कर
वाणो गच्छतु सन्नाहीरणशास्त्रविशारदः । पञ्चाङ्गागमनं कुर्मो वयं साम्राट्त्रिकाःशिवे
उवाचवाणं तां दातुं स च न स्वीचकार ह । दुर्गा तं योधयामास न बुबोध च सङ्घ
यतस्मिन्नन्तरे ताञ्च सभामध्ये मनोरमाम् । आजगाम महाधर्मो बलिश्च वैष्णवाग्रणी
रथं रत्नेन्द्रनिर्माणं समारुह्य महावलः । प्रततैः सप्तभिर्देवैः सेवितः भ्येतचामरैः ॥ ६ ॥
दैत्येन्द्राणां सप्तलक्षैरावृतः परमास्त्रवित् । अवरुह्य रथात्तूर्णं गणेशञ्च शिवां शिवम् ।
प्रणम्य कार्तिकेयश्च स उवाच च संसदि । उतस्तुरारारत्नं दृष्ट्वा ते सर्वे शङ्करं चिन्ता ।

तमुवाच महादेवः सम्भाष्य प्रियभाषणम् ॥ ११ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

भगवन्धत्तुरस्त्यञ्च प्रदाता सर्वं सम्पदाम् । अयं हि परमो लामो वैष्णवां समागमः ॥
तीर्थान्यपि च पूतानि वैष्णवस्पर्शमात्रतः । सर्वेषामाधमाणाञ्च पूजितो ब्राह्मणःशुचिः
ततोऽधिकः पूजितोऽपि ब्राह्मणो यदि वैष्णवः ।

न हि पूतञ्च पश्यामि वैष्णवब्राह्मणात् परम् ॥ १४ ॥

स पूतः पयनादेव स पूतश्च हुताशनात् । तीर्थेभ्योऽपि च सर्वेभ्यो विभेति च ततःसुरः
न हि पापानि तद्देहे बह्वी शुष्कतृणादिघत् ॥ १६ ॥

बलिख्याव ।

कथं स्तौपि जगन्नाथ भृत्यस्तव महेश्वर । प्रदत्तं परमैश्वर्यं त्वयानाथ सुदुर्लभम् ॥
अधुनास्थापितो देवात्सर्गाधःसुतलेऽपि च । इन्द्रायदत्तमैश्वर्यं मत्तो भक्तात् सुरेश्वर
त्वया धामनरूपेण सर्वरूपांऽसि सर्वतः । वाणं बोधयमद्रञ्च मम प्राणात्मजं परम् ॥
आत्मनासह युद्धञ्च देवेष्वपि विगर्हितम् । इत्युक्त्वा च शिवं नत्वा शिरसा प्रणनामतम्
सामवेदोक्तस्तोत्रेण तुष्टाव परमेश्वरम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिविह्वलः ॥
ध्यायमानश्च नित्यं यो हृत्पद्मे सुमनोहरः । शुक्लेण दत्तं मन्त्रञ्च जप्त्वा चैकादशाक्षरम्

चलिष्याच ।

अदित्या प्रार्थनेनेव मात्रा देव्या व्रतेन च । पुरा धामनरूपेण त्वयाहं वञ्चितः प्रभो ॥

सम्पदूपा महालक्ष्मीर्दत्ता भक्ताय भक्तिः ।

शक्ताय मत्तो भक्ताय त्रात्रे पुण्यवते ध्रुवम् ॥ २४ ॥

अधुना मम पुत्रोऽयं बाणः शङ्करकिङ्करी । आराधय रक्षितः सोऽपि तेनेव भक्त्यन्धुना ॥

परिपुष्टश्च पार्वत्या यथा मात्रा सुतस्तथा । गृहीतवांश्च तत्कन्यां बलेन युवतीं सतीम्

समुद्यतश्च तं हन्तुं कार्तिकेनापि चारितः ।

भागतोऽसि पुनर्हन्तुं पौत्रस्य दमने क्षमम् ॥ २७ ॥

सर्वात्मनश्च सर्वत्र समभावः श्रुतौ धृतः । करोषि जगतां नाथ कथमेवं व्यक्तिकमम् ॥

त्वया च निहतो यो हि तस्य को रक्षिता भुवि ।

सुदर्शनस्य तेजो हि सूर्य्यकोटिनिभं परम् ॥ २९ ॥

केषां सुराणामस्त्रेण तदेवमनिचारितम् । यथा सुदर्शनञ्चैवमस्त्राणां प्रवरं वरम् ॥ ३० ॥

तथा भवांश्च देवानां सर्वेषामीश्वरः परः । तथा भवांस्तथा कृष्णो विधातावेधसामपि

विष्णुः सत्त्वगुणाधारः शिवः सत्त्वाश्रयस्तथा ।

स्वयं विधाता रजसः सृष्टिकर्ता पितामहः ॥ ३२ ॥

कालाग्निरद्वो भगवान् विश्वसंहारकारकः । तमसश्चाश्रयः सोऽपि रुद्राणां प्रवरो महान्

स एव शङ्करांशश्चाप्यन्ये रुद्राश्च तत्कलाः । भवांश्च निर्गुणस्तेषां प्रकृतेश्च परस्तथा ॥

सर्वेषां परमात्मा वै प्राणा विष्णुर्ऋषिणः ।

मानसञ्च र्स्वयं ब्रह्मा स्वयं ज्ञानात्मकः शिवः ॥ ३५ ॥

प्रवरा सर्वशक्तीनां बुद्धिः प्रकृतिरीश्वरी । स्वात्मनः प्रतिविम्बस्ते जीवः सर्वेषु देहिषु ॥

जीवः स्वकर्मणां भोगी स्वयं साक्षी भवांस्तथा । सर्वेयान्ति त्वयि गते नरदेवेष्वथानुगाः

सत्यः पतति देहश्च शवोऽस्पृश्यस्त्यथा पिना ।

बुद्धाः सन्तो न जानन्ति चञ्चितास्तव मायया ॥ ३८ ॥

त्पामजन्त्येव ये सन्तो मायामेतांतरन्ति ते । त्रिगुणाप्रकृतिर्दुर्गा वैष्णवी च सनातनी

परा नारायणीशानी तव माया दुरत्यया । त्वदंशाः प्रतिविश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः
सर्वेषामपि विश्वेषामाश्रयो यो महान् विराट् ।

स शेते च जले योगाद्विश्वेशो गोकुले यथा ॥ ४१ ॥

स एव वासुर्भगवान् तस्य देवो भवान्परः । वासुदेव इति ख्यातः पुराविद्धिः प्रकीर्तितः
त्वमेव कलया सूर्यस्त्वमेव कलया शशी । कलया च हुताशश्च कलया पवनः स्वयम्
कलया वरुणश्चैव कुबेरश्च यमस्तथा । कलया त्वं महेन्द्रश्च कलया धर्म एव च ॥ ४४ ॥
त्वमेव कलया शेष ईशानो नैऋतिस्तथा । मुनयो मनवश्चैव ग्रहाश्च फलदायकाः ॥

कलाकलायाश्चांशेन सर्वे जीवाश्चराचराः ।

त्वं ब्रह्म परमं ज्योतिर्ध्यायन्ते योगिनस्तथा ॥ ४६ ॥

तत्त्वाद्विद्यन्ते भक्तास्ते ध्यायन्ते च तदन्तरं । नवीननीरदश्यामं पीतकीशेषवाससम् ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तेशं भक्तवत्सलम् । चन्द्रमोक्षितसर्पाङ्गं द्विभुजं मुरलीधरम् ॥ ४८ ॥
मयूरपिच्छच्छूडश्च मालतीमाल्यभूषितम् । अमूल्यरत्ननिर्माणकेयूरं बलयान्वितम् ॥ ४९ ॥
मणिकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् । रत्नसाराङ्गुलीयञ्च कण्ठमञ्जोररञ्जितम् ॥ ५० ॥
कोटिकन्दर्पलीलामं शरत्कमललोचनम् । शरत्पूर्णन्दुनिन्दास्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥

वीक्षितं सस्मितामिश्च गोपीनां कोटिकोटिमि ।

धयस्यैः पार्षदैर्गोपैः सेवितं श्वेतचामरैः ॥ ५२ ॥

गोपबालकवेशश्च राधावक्षःस्थलस्थितम् । ध्यानासाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मेशशेषवन्दितम् ॥
सिद्धेन्द्रश्च मुनीन्द्रश्च योगीन्द्रैः प्रणतस्तुतम् । वेदानिर्वचनीयञ्च परस्वेच्छामयं विभुम् ॥
स्थूलात्स्थूलतमं रूपं सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमं परम् । सत्यं नित्यं प्रशस्तञ्च प्रकृतेः परमीश्वरम् ॥
निरुद्धञ्च निरीदञ्च भगवन्तं सनातनम् ।

एवं ध्यात्वा च ते पूताः स्निग्धदूर्वाक्षताचलम् ॥ ५६ ॥

पादपञ्चाचिंते पादपद्मे च दातुमुत्सुकाः । वेदा स्तोतुमशक्तास्त्वामशक्ता सा सत्त्वास्तथा
शेषः स्तोतुमशक्ताश्च स्थयभ्युः शाशुरीश्वरम् । गणेशश्च दिनेशश्च महेन्द्रश्च ॥ ५७ ॥
स्तोतुं काल धनेशश्च किमन्ये जडबुद्धयः ।

गुणातीतमनीहञ्च किं स्तौमि निर्गुणं परम् ॥ ५६ ॥

अपण्डितोऽयमसुरो न सुरः क्षन्तुमर्हति । चलेस्तु घबर्नं श्रुत्वा तमुवाच जगत्पतिः ॥
परिपूर्णतमः श्रोमान् भक्तञ्च भक्तवत्सलः ॥ ६० ॥

श्रीभगवानुवाच ।

न भैर्वत्स गृहं गच्छ सुतलं रक्षितं मया । मद्भरेण प्रसादेन त्वत्पुत्रोऽप्यजरामरः ॥

दर्पहानिं करिष्यामि तस्य मूर्खस्य दर्पिणः ।

प्रह्लादाय घरो दत्तो भक्ताय च तपस्विने ॥ ६२ ॥

ममावध्यश्च त्वद्दशश्चेति प्रीतेन चेतसा । तव पुत्राय दास्यामि दानं मृत्युञ्जयं परम् ॥

त्वया कृतमिदं स्तोत्रं सामवेदोक्तमीप्सितम् । पुरा सनत्कुमाराय प्रवृत्तं ब्रह्मणा तथा

सिद्धाश्रमे पुण्यतमे प्रशस्ते सूर्यपर्वणि । गौतमाय प्रवृत्तञ्च गौर्प्या मन्दाकिनीतटे ॥

शङ्करेण च शिष्याय भक्ताय च दयालुना । ब्रह्मणे च मया दत्तं शिष्याय विरजातटे ॥

भृगवे च पुरा दत्तं कुमारेण च धीमता । त्वञ्चदास्यसिवाणाय वाणस्तोष्यत्यनेनमाम्

इदं स्तोत्रं महापुण्यमुपविश्य शुरोर्मुखात् । वृत्तस्य पूजितस्यापि वस्त्रभूषणचन्दनैः ॥

सुज्ञातो यः पठेन्नित्यं पूत्राकाले च भक्तिः ।

कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६६ ॥

विपदां खण्डनं स्तोत्रं कारणं सर्वसम्पदाम् ।

वारणं दुःखशोकानां भवाग्निघोरतारणम् ॥ ७० ॥

खण्डनं गर्भपासानां जरामृत्युहरं परम् । बन्धनानाञ्च रोगाणां खण्डनं भक्तमण्डनम्

स ज्ञातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । व्रताव्रतेषु सर्वेषु तपस्वी च तपःसु च ॥ ७२ ॥

स सत्यं सर्वदानानां फलञ्च लभतेधुधम् । लक्षधास्तोत्रपाठेन स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्

सर्वसिद्धिञ्च लभते सिद्धस्तोत्रो भवेद् यदि ।

इदं लोके देवतुल्योऽप्यन्ते याति हरेः पदम् ॥ ७४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

वाणयुद्धे बलिहृतश्रीकृष्णस्तोत्रं नामोपनिषाधिकशततमोऽध्यायः ।

विंशाधिकशततमोऽध्यायः

वाणासुरयुद्धवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ कृष्णश्च भगवानुद्धयेन वलेन च । दूतं प्रस्थापयामास विधाय मन्त्रिणं शुभम्
शिवो गणपतिर्यत्र दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । कार्तिकेयो भद्रकाली चोग्रचण्डा च कोट्य
आगत्यनत्या दूतश्चगणेशश्च शिवं शिवाम् । मानवांश्चापि पूज्यांश्च समुवाचयथोचिता

दूत उवाच ।

वाणमाह्वयते कृष्णः संग्रामार्थं महेश्वर । किंवा निरुद्धमूपाञ्च गृहीत्वा शरणं व्रज ॥ ४

रणे निमग्नितो यो हि न याति भयकातरः ।

परत्र नरकं याति सप्तभिः पितृभिः सह ॥ ५ ॥

दूतस्य वचनं श्रुत्वा सभामध्ये यथोचितम् । उवाच पार्वती देवी स्वयं शङ्करसन्निधे

पार्वत्युवाच ।

गच्छ वाण महाभाग गृहीत्वा वद कन्यकाम् ।

सर्वस्थं यौतुकं दत्त्वा श्रीकृष्णं शरणं व्रज ॥ ७ ॥

सर्वेपामीश्वरं धीजं दातारं सर्वसम्पदाम् । वरं वरेण्यं शरणं कृपालुं भक्तयत्सलम् ।

पार्वतीवचनं श्रुत्वा तमूचुस्ते सुरेश्वराः । प्रशशंसुः सभामध्ये धन्यधन्येति सर्वदा ।

कोपाविष्टश्च वाणोऽयमुत्तस्थीसहसाऽसुरः । सान्नाहिको धनुष्पाणिः प्रणम्य शङ्करं पर्यौ

सर्वैर्निपिध्यमानश्च कम्पितो रक्तलोचनः ।

सान्नाहिकश्च दैत्यानां त्रिकोट्या च महाबलः ॥ ११ ॥

कुम्भाण्डः कूपकर्णश्च निकुम्भः कुम्भ एव च । सेनापतीश्वराश्चैते ययुः सान्नाहिकास्तथा

उन्मत्तभैरवश्चैव संहारभैरवस्तथा । असिताङ्गो भैरवश्च रुद्रभैरव एव च ॥ १३ ॥

महाभैरवसंज्ञश्च कालभैरव एव च । प्रवण्डभैरवश्चैव कौघभैरव एव च ॥ १४ ॥

प्रययुः शक्तिभिः सार्द्धं सर्वे सान्नाहिकाश्च ते ।

कालाग्रिन्द्रो भगवान् रुद्रैः सान्नाहिको ययौ ॥ १५

उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डिका चण्डनायिका ।

चण्डेश्वरी च चामुण्डा चण्डो चण्डकपालिका ॥ १६ ॥

अष्टौ च नायिकाः सर्वाः प्रययुः खर्परान्विताः । कोटरीरत्नयानस्था शोणितग्रामदेवता

प्रययौ सा प्रकुल्लास्या खड्गखर्परधारिणी । चन्द्राणीचैष्णवी शान्ता ब्रह्माणीब्रह्मपादिनी

कौमारी नारसिंही च वाराही विकटारुतिः । माहेश्वरी महामाया भैरवी भीरुरूपिणी

अष्टौ च शक्तयः सर्वा रथस्थाः प्रययुर्नृन्दा । रत्नेन्द्रसारयानसाः प्रययुर्भद्रकालिका ॥ २० ॥

रक्तवर्णा त्रिनयना जिह्वाललनभीषणा । शूलशक्तिगदाहस्ता खड्गखर्परधारिणी ॥ २१

प्रययौ शूलहस्तश्च वृषभस्थो महेश्वरः । स्कन्दश्च शिखियानस्थः शस्त्रपाणिर्धनुर्धरः

एवञ्च प्रययुः सर्वे गणेशं पार्यता बिना ॥ २२ ॥

एभिर्युक्त महादेवं दृष्ट्वा च भद्रकालिकाम् ।

प्रवक्ते चक्रपाणिश्च सम्भाषाञ्च यथोचिताम् ॥ २३ ॥

वाणःशङ्खध्वनिं कृत्वा प्रणम्यपार्यतीश्वरम् । धनुर्धधार सगुणं दिव्यास्त्रेणनियोजितम्

वाणं समुद्यतं दृष्ट्वा सात्यकिः परवीरहा ।

निविध्यमानस्ते सर्वैः सन्नाहो प्रययौ मुदा ॥ २५ ॥

वाणश्चिक्षेपदिग्वास्त्रमाञ्छलं नामनारद । अव्ययं ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डाभंसुतीक्ष्णकम्

दृष्ट्वाऽस्त्रं सात्यकिः साक्षात् किञ्चिन्नम्रो यभूव ह ।

किंवा न दग्धः प्रययौ नमोमध्यं सुदारुणम् ॥ २७ ॥

पह्नि चिक्षेप वाणञ्च सात्यकिर्वाक्येन च । प्रज्वलन्तं तालमानं निर्वाणञ्च चकारसः

चिक्षेप पावनं वाणःप्रचण्डघोरमुत्खण्डम् । चिच्छेदसात्यकिश्चैव पार्यतास्त्रेण लीलया

नारायणास्त्रं चिक्षेप वाणश्च रणभूर्धनि ।

सात्यकिर्दण्डवद् भूमौ पपातार्जुनशिक्षया ॥ ३० ॥

। माहेश्वरं प्रचिक्षेप वाणः शस्त्रविदां परः । सात्यकिर्चैष्णवास्त्रेण प्रचिच्छेदावलीलया

विंशधिकशततमोऽध्यायः] * यादवशैवयोर्युद्धवर्णनम् *

११४१

ब्रह्मास्त्रञ्चापि विक्षेप बाणश्च रणमूर्धनि । क्षणंचकार निर्वाणं ब्रह्मास्त्रेणच सात्यकिः ।
नागास्त्रञ्चापि विक्षेप बाणो रणविशारदः । सात्यकिर्गकडेनैव सञ्जहार क्षणेन च ॥
जग्राह शूलमव्यर्थं शङ्करस्य सुदारुणम् । तुष्टाव सात्यकिर्दुर्गां गले माल्यं वभूव ह ॥

जग्राह धनुषा बाणो बाणं पाशुपतं तथा ।

बाणं स बाणं जृम्भञ्च सात्यकिश्च चकार ह ॥ ३५ ॥

बाणं तं जृम्भितं दृष्ट्वा कार्तिकेयोमहाबलः । अर्धचन्द्रञ्च विक्षेप कामश्चिच्छेदलीलया
गदांचिक्षेप च स्कन्दः प्रातःसूर्यसमप्रभाम् । वैष्णवास्त्रेणकामश्च निर्वाणञ्च चकारसः
नारायणास्त्रं स्कन्दश्च प्राक्षिपच्च त्वरान्वितः । पपातदण्डवद्वभूमौ प्रद्युम्नःकृष्णशिक्षया
स्कन्दः शक्तिञ्च विक्षेप प्रलयाग्निसमप्रभाम् ।

कामो नारायणास्त्रेण निर्वाणञ्च चकार ताम् ॥ ३६ ॥

ब्रह्मास्त्रञ्च प्रविक्षेप कार्तिको रणमूर्धनि । ब्रह्मास्त्रेणापि कामश्च निर्वाणञ्च चकार सः
जग्राह कार्तिकः कोपाद्विष्यं पाशुपतं तथा । निद्रास्त्रेणापि मदनो निद्रितञ्च चकार तम्
कार्तिकंनिद्रितं दृष्ट्वा बाणञ्च जृम्भितंतथा । कोपात्कामञ्च सरथं जग्राहभद्रकालिका
कोदे कृत्वा च बाणञ्च स्कन्दश्च जगतां प्रसूः । रणस्थलाच्च प्रययौ यत्रैव पार्श्वतीक्ष्णी
कार्तिकं बोधयामास बाणं सुस्थं चकार सा ।

सहसा सरथः कामो नासास्त्रेण धर्मना ॥ ४४ ॥

वर्हिर्वभूव सन्त्रस्तो प्रययौ च रणस्थलम् । दृष्ट्वा कामश्च सरथं जहसुर्यादघास्तदा
सर्वे शैवाश्च तत्रस्थाः शुष्ककण्ठा भयाकुलाः ।

अथ बाणः पुनः क्रुद्धो रथमारुह्य कोपतः ॥ ४६ ॥

कार्तिकेयश्च भगवान् युद्धाय पुनरागतः । बाणः पञ्चशरांश्चैव विक्षेप रणमूर्धनि ॥
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद यलदेवो महाबलः । रथं वभञ्ज बाणस्य लाङ्गुलेन च लाङ्गुली ॥४८॥
जघान सूतमश्यांश्च मुपलेनापलीलया । छेतुमुद्यमं कुर्वन्तं ह्यालिनञ्च महाबलम् ॥४९॥
कालाग्रिहो भगवान् धारयामास लीलया । रथं कालाग्रिहस्य वभञ्ज लाङ्गुली रूप
हलेन सूतमभ्वांश्च जघान रणमूर्धनि । कालाग्रिहः कोपेन विक्षेप ज्वरमुत्पणम् ॥५१॥

बभूवुर्यादद्याः सर्वे ज्वराक्रान्ता हरिं विना ।

तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः ससर्ज वैष्णवं ज्वरम् ॥ ५२ ॥

तं चिक्षेप ज्वरं हन्तं माहेशं रणमूर्धनि । बभूव ज्वरघोर्युद्धं मुहूर्तमतिदारुणम् ॥ ५३ ॥

वैष्णवज्वरनिष्क्रान्तो रणमूर्धनि पपात सः । परं बभूव निश्चेष्टस्तुष्टाव माधवं पुनः ॥

• ज्वर उवाच ।

प्राणान् रक्ष जगन्नाथ भक्तानुग्रहविग्रह । त्वमात्मा पुष्टः पूर्णः सर्वत्र समता तव ॥

ज्वरस्य वचनं श्रुत्वा सज्जहार स्वकं ज्वरम् ।

माहेश्वरो ज्वरो भीतो रणादेष हि निर्ययो ॥ ५६ ॥

माणश्च पुनरागत्य बाणानाञ्च सहस्रकम् । चिक्षेप मन्त्रपूतञ्च प्रलयान्निशिखोपमम् ॥

माल्युनः शरजालेन धारयामास लीलया । चिक्षेप शक्तिबाणश्च ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् ॥

चिच्छेद लीलया ताञ्च सव्यसाची महाबलः । स जग्राह पाशुपतं शतसूर्यसमप्रभम् ॥

मत्पर्यमतिघोरञ्च विश्वसंहारकारकम् । तद्द्रष्ट्वा शकपाणिश्च चक्रं चिक्षेप दारुणम् ॥

इस्तानाञ्च सहस्रञ्च स पाशुपतमुत्थणम् । चिच्छेद रणमध्ये च पपाताचलसिंहवत् ॥

एतन् पाशुपतञ्चैव ययौ पशुपतेः करम् । अव्यर्थं दारुणलोके प्रलयान्निशिखोपमम् ॥

शणरक्तसमूहेन बभूव च महानदः । बाणः पपात निश्चेष्टो व्यथितो हतचेतनः ॥ ६३ ॥

तत्राजगाम भगवान् महादेवो जगद्गुरुः ।

रुरोदागत्य मोहेन बाणं कृत्वा स्ववक्षसि ॥ ६४ ॥

शेषाश्रुपतनेनैव संवभूव सरोपरम् । चेतनं कारयामास करुणासागरः प्रभुः ॥ ६५ ॥

पाणं गृहीत्वा प्रययौ यत्र देवो जनार्दनः । चक्रे पदार्चिते पादपद्मे बाणसमर्पणम् ॥

प्राप जगतां नाथं शकीशं चन्द्रशेखरम् । यलिना च स्तुतं येन वेदोक्तेन च तेन च ॥

रिमृत्युञ्जयं शानं वदोवाणाय धीमते । करपद्मं वदौ गान्धर्वं तं चकाराजराभरम् ॥ ६८ ॥

एणस्स्तोत्रेण तुष्टाव भक्त्या बलिहृतेन च । परां कन्यां समानीय रत्नभूषणभूषिताम् ॥

ददौ हरये भक्त्या तत्रैव देवसंसदि । गजेन्द्राणां पञ्चलक्षमश्वानाञ्च चतुर्गुणम् ॥ ७० ॥

सीताञ्च सहस्रञ्च रत्नभूषणभूषिताम् । सहस्रं कामधेनूनां धत्सयुक्तञ्च सर्वदम् ॥ ७१ ॥

माणिक्यानाञ्च मुक्तानां रत्नानां शतलक्षकम् ।

मणीन्द्राणां हीरकार्णां शतलक्षं मनोहरम् ॥ ७२ ॥

जलभाजनपात्राणि सुघर्णेनिर्मितानि च । सहस्राणि ददौ तस्मै भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥

घराणि सूक्ष्मपस्त्राणि वह्निशुद्धांशुकानि च ।

ददौ याणश्च सर्पाणि स्वभक्त्या शङ्कराज्ञया ॥ ७३ ॥

ताम्यूलानाञ्च चूर्णानां पूर्णपात्राणि नारद ।

सहस्राणि ददौ भक्त्या घराणि विविधानि च ॥ ७५ ॥

कन्यां समर्पयामास पादपद्मे हरेरपि । रुरोदोच्चैः स्वभक्त्या च परिहारं चकार सः

कृष्णस्तस्मै घरं दत्त्वा वेदोक्तञ्च सुभाषितम् । शङ्करानुमतेनैव प्रययौ द्वारकापुरीम् ॥

मत्वा कन्यां नवोद्गां तां याणस्यापि महात्मनः ।

हविमण्यै प्रददौ शीघ्रं देवम्यै च हरिः स्वयम् ॥ ७८ ॥

महोत्सवं मङ्गलञ्च कारयामास यत्नतः । ब्राह्मणान् भोजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

याणयुद्धं नाम विंशाधिकशततमोऽध्यायः ।

एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ।

शृगालोपाख्यानम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ कृष्णः सुधर्माया निघसन् सगणस्तथा । तत्राजगाम चित्रश्च प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा

आगत्य दृष्ट्वा तुष्टाय भक्त्या च पुरुषोत्तमम् । उवाच मधुरं शान्तो भीतोऽपि नयपूर्वकम्

ब्राह्मण उवाच ।

शृगालो वासुदेवश्च राजेशो मण्डलेश्वरः । तमुवाच स यद्वाक्यं साधधानं निशामय

शृगाल उवाच ।

वैकुण्ठे घासुदेवोऽहं देवेशश्च चतुर्भुजः । लक्ष्मीपतिश्च जगतां धाता धातुश्च पालकः ।
ब्रह्मणा प्रार्थितोऽहञ्च भारावतारणाय च । भुवो भारतवर्षश्च तदर्थं गमने मम ॥ ५ ॥
घासुदेवसुतः कृष्णः क्षत्रियश्चाप्यहङ्कृतः । जनं जनेन निर्जित्य दुर्वलं बलिना सह ।

बोधयित्वा महाधूर्तो घातयामास भूपतीम् ॥ ६ ॥

दुर्योधनं जरासन्धं भूपमन्यञ्च दुर्वलम् । भीमेन घातयामास बलिनाल्पेन भूतले ॥ ७ ॥
द्रोणं भीष्मञ्च कर्णञ्च यं यमन्यञ्च भूतले । बलीयसाजुंनेनैव घातयामास लीलया ॥ ८ ॥
यं यमन्यं दुर्वलञ्च प्रसिद्धमप्रसिद्धकम् । प्रसिद्धेन बलवता घातयामास लीलया ॥ ९ ॥
शिशुपालं दन्तवक्रं कंसञ्च चिररोगिणम् । मत्पुत्रं नरकञ्चैव दुर्वलंनरकं मुग्धम् ॥ १० ॥
स्वयं जघान सङ्केताच्छलेन सहसा वत । न धर्मयुद्धेकपटी स च बालो ह्यधार्मिकः ॥
जघान पूतनां कुड्जां स्त्रीघाती घस्त्रहेतुना । जघान रजकं शिष्टमशिष्टञ्च प्रतारकः ॥
हिरण्यकशिपुं दैत्यं हिरण्याक्षं महाबलम् ।

मधुञ्च कैटभञ्चैव हत्वाऽहं सृष्टिरक्षकः ॥ १३ ॥

अहमेव स्वयं ब्रह्मा ह्यहमेव स्वयं शिवः । अहं विष्णुश्च जगतां पाता दुष्टावहारकः ॥ १४ ॥
अंशेन कलया सर्वे मनवो मुनयस्तथा । स्वयं नारायणोऽहञ्च निर्गणः प्रकृतेः परः ॥
लज्जया रूपया चैव मित्रयुद्धया क्षमाहृता । यद्गतं तद्गतं भद्रं युद्धं कुरु मया सह ॥
शृणोमि दूतद्वारेण ह्यतीवोच्चैरहङ्कृतम् । उचितं दमनं तस्याप्युन्नतानां निपातनम् ॥

राक्षश्च परमो धर्मोऽप्यहं शास्ता भुवोधुना ।

शङ्खं चक्रं गदां पद्मं गृहीत्वाऽहं चतुर्भुजः ॥ १८ ॥

द्वारकां तां गमिष्यामि युद्धाय सगणः स्वयम् ।

युद्धं कुरु यदीच्छास्ति मा माञ्च शरणं व्रज ॥ १९ ॥

यदि मा यास्यति मम शरणं शरणागतः । भस्मीभूतं करिष्यामि द्वारकाञ्च क्षणेन च
सबलञ्च सपुत्रं त्या सगणञ्च सवान्धवम् । क्षणेन दग्धुं शक्नोऽहमसहायश्च लीलया ॥
तपस्विनञ्च वृद्धञ्च जित्वा युद्धे च शङ्कुरम् । शकं भग्याशं जित्वा च रोगिणं ब्रह्मशापतः

नत्तोऽसिवीरमात्मानं मन्यमानस्त्वमेव च । स्त्रीजितो हि वृथार्थश्च पारिजातस्यहेतुना
लम्पटो योनिलुब्धश्च राधाधीनश्च गोकुले । अधुना किङ्करसमः सत्यादीनाञ्चयोपिताम्
इत्येवमुक्त्या विप्रश्च तूष्णीम्भूय सितो मुने । श्रीरुष्णः सगणः श्रुत्वा भृशमुच्चैर्जहाससः
भोजयित्वा च सम्पूज्य ब्राह्मणञ्च चतुर्विधम् ।

निनाय रजनीं दुःखात् वाक्शल्यमानसञ्चरात् ॥ २६ ॥

भाते रथमारुह्य सगणः सत्वरं मुदा । लोलामात्रेण प्रययौ शृगालो नृपतिर्यथा ॥ २७ ॥

धृत्या शृगालो वार्त्तां तां कृत्रिमश्च चतुर्भुजः ।

आजगाम हरेः स्थानं-युद्धाय सगणः स्वयम् ॥ २८ ॥

रुष्णश्चक्रे च सम्भाषां मित्रघुदुध्या च लौकिकीम् ।

आह्लेपं मधुरालापं क्षिण्धनेत्रश्च सस्मितः ॥ २९ ॥

राजा निमन्त्रणं चक्रे रुष्णो न स्थीवकार तत् ।

उवाच रुष्णभीतश्च त्यक्त्या वम्भञ्च दर्शनात् ॥ ३० ॥

शृगाल उवाच ।

चक्रेण मच्छिरं हित्वा सुशीघ्रं द्वारकां यज ।

पापः पततु देहोऽयमनित्यो नश्यरस्तथा ॥ ३१ ॥

अहं सुभद्रो ते द्वारि जयश्च विजयो यथा । सर्वं जानासि सर्वं मा विलम्बं कुरु प्रभो
लक्ष्मीशापेन त्रष्टोऽहं फालः पूर्णो बभूव मे । शतवर्षेण शापान्ते यास्यामि भवन्तव ॥

श्रीरुष्ण उवाच ।

पूर्वं मां मित्र प्रहर पश्चाद्युद्धं करोम्यहम् ।

सर्वं जानामि वैकुण्ठं गच्छ पतस यथासुप्तम् ॥ ३४ ॥

शृगालो दशबाणांश्च चिक्षेप माधवं प्रति ।

ते प्रणम्य ययुः शीघ्रमाकाशं फालरूपिणः ॥ ३५ ॥

गदां चिक्षेप राजा स प्रलयाग्निशिखोपमाम् ।

रुष्णाद्गुह्यस्पर्शमात्रेण यमञ्च च क्षणेन च ॥ ३६ ॥

धनुश्चिक्षेप खड्गञ्च कालरूपं सुदारुणम् । कृष्णाङ्गस्पर्शमात्रेण यमञ्च च क्षणेन च ॥
दृष्ट्वा निरस्तं राजानमित्युवाच कृपानिधिः । गृहं गत्वा सुतीक्ष्णञ्च मित्रास्त्रमानयेति च
शृगाल उवाच ।

नात्माकाशोऽस्त्रचिद्वश्च किं युद्धमात्मना सह ।

मामुद्धर भवान्धेश्च धरोद्धारणकारण ॥ ३६ ॥

भवान्धिषिपमं नाथ विषयञ्च विषाधिकम् ।

छिन्धि मे निगडं मायां मोहजालं स्वकर्मणः ॥ ४० ॥

कर्मणामीश्वरस्त्यश्च धिधाता धातुरेव च । दाता शुभफलानाञ्च प्रदाता सर्वसम्पदाम्
कारणं प्राक्तनानाञ्च तेषां च खण्डने क्षमः । यामि शैहञ्च वैकुण्ठं तवैव द्वारसप्तमम् ॥
त्यक्त्वा च नश्वरं देहं प्राकृतं पाञ्चभौतिकम् । मित्रस्य स्तनं धृत्वा वचनं च सुधोपमम्
रुदोद समरे तत्र कृपया च कृपानिधिः । यभूव तत्र सहसा कृष्णनेत्राश्रुचिन्दुना ॥ ४४ ॥
दिव्यं चिन्दुसरो नाम तीर्थानां प्रवरं परम् । तत्तोयस्पर्शमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥

सप्तजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४५ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कथमेतादृशी बुद्धिर्मित्र ते निर्मलं मनः । दूतद्वारा वयञ्चोक्तं निष्कुरं दारुणं वचः ॥ ४६ ॥

नारद उवाच ।

गणेशपूजनाख्यानं पुराणेषु च दुर्लभम् ।

धृतं तद् ब्रह्मणो वक्त्रात् सामान्यञ्च समासतः ॥ ४७ ॥

महिमानं गणपतेः सर्वपूज्येश्वरस्य च । व्यासेन श्रोतुमिच्छामि योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः
सिद्धाश्रमे महापूजा दिव्योकोभिः कृता पुरा । राधामाधवयोस्तत्र पुनः संमीलनं पुरा
अतीते धर्पशतके श्रीदाम्नः शापमोक्षणे । आदी चकार पूजाञ्च सा च राधा कथं मुने
स्थितेषु च सुरेन्द्रेषु ब्रह्मविष्णुशिवादिषु । नागेन्द्रे च स्थिते शेषे नागेषु च महत्सु च
राजेन्द्रेषु च भूमी च बलिष्ठेषु सुरेषु च । गन्धर्वेषु च रक्षसु चान्येषु चलवत्सु च ॥

विस्तरणं महामागं तन्मां व्याख्यातुमर्हसि ॥ ५२ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

त्रेलोक्ये पृथिवी धन्या मान्या पुण्यवती सती ।

तत्र भारतवर्षश्च कर्मणां फलद्रं शुभम् ॥ ५३ ॥

धन्यं यशस्यं पूज्यञ्च पुण्यक्षेत्रं च भारते ।

सिद्धाश्रमं महापुण्यक्षेत्रं मोक्षप्रदं शुभम् ॥ ५४ ॥

सनत्कुमारो भगवान् तत्र सिद्धो बभूव ह । स्वयं पिधाता तत्रैव तप्त्वा सिद्धो बभूव ह
योगीन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्राः कपिलादयः । शतक्रतुर्महेन्द्रश्च तत्र कृत्वा बभूव ह
तेन सिद्धाश्रमं नाम सर्वेषामपि दुर्लभम् । अधिष्ठानं गणेशस्य तत्रैव सततं मुने ॥ ५७ ॥
अमूल्यरत्ननिर्माणगणेशप्रतिमां शुभाम् । वैशाखीपूर्णमायाञ्च पूजां कुर्वन्ति देवताः ॥

नागाश्च मानवाश्चैव दैत्या गन्धर्वराक्षसाः ।

सिद्धेन्द्राश्च मुनीन्द्राश्च योगीन्द्राः सनकादयः ॥ ५६ ॥

तत्राजगाम शम्भुश्च पार्वत्या सह शङ्करः । सगणः कार्तिकेयश्च स्वयं ब्रह्मा प्रजापतिः
तत्राजगाम शेषश्च नागेन्द्रैः सह सत्यरम् । तत्राजगुः सुराः सर्वे मनवो मुनयस्तथा ॥
आजगमुस्ते नृपाः सर्वे पूजार्थं हृष्टमानसाः । आययौ भगवान् कृष्णो द्वारकावासिभिः सह
आजगाम तथा नन्दः सार्द्धं गोकुलवासिभिः ।

गोपीनां त्रिशत्कोटोभिर्गोलोकवासिभिः सह ॥ ६३ ॥

गजेन्द्रफोटितुल्याभिर्वलिष्ठाभिः सहलिभिः ।

आययौ सुन्दरी राधा कृष्णप्राणाधिदेवता ॥ ६४ ॥

रासेश्वरी सुरभिश्च शतवर्षे गते सती । सुस्नात्वा सुदती शुद्धा धृत्वा धौते च चाससी
संयता सा निराहारा गत्वा च मणिमण्डपम् ।

सुप्रक्षालितपादाब्जा कान्ता भुवनपावनी ॥ ६६ ॥

श्रीकृष्णप्राप्तिकामश्च सुसङ्कुल्यं विधाय च । गङ्गोदकेन हेरस्यं स्नापयामास भक्तितः ॥
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं चकार शुरुपुष्पतः । माता चतुर्णां वेदानां वसोश्च जगतामपि ॥
बुद्धिरूपा भगवती ज्ञानिनां जननी परा । ध्यानात्मकं स्वपुत्रं तं परध्यानं चकार सा ॥

अथ लम्बोदरं स्थूलं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । गजवक्त्रं वह्निवर्णमेकदन्तप्रनन्तकम् ॥७०॥
 सिद्धानां योगिनामेव ज्ञानिनाञ्च गुरोर्युक्तम् । ध्यानं मुनीन्द्रैर्देवेन्द्रैर्ब्रह्मेशशेषसंज्ञकैः ॥
 सिद्धेन्द्रेर्मुनिभिः सद्भिर्भगवन्तं सनातनम् । ब्रह्मस्वरूपं परमं मङ्गलं मङ्गलालयम् ॥७१॥
 सर्वविघ्नहरं शान्तं दातारं सर्वसम्पदाम् । भवाब्धिमायापोतेन कर्णधारञ्च कर्मिणाम्
 शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणम् । ध्यायेद्ब्रह्मनात्मकं साध्यं भक्तेशं भक्तघटसलम् ॥
 इति ध्यात्वा स्वशिरसि दत्त्वा पुष्पं पुनः सती ।

सर्वाङ्गशोधनं न्यासं वेदोक्तञ्च चकार सा ॥ ७५ ॥

पुनश्च ध्यात्वा ध्यानेन तेनैव शुभदायिना । ददौ पुष्पं पादपद्मे राधा लम्बोदरस्य च ॥
 सप्ततीर्थोदकेनैव शीतेन घासितेन च । ददौ पादं पादपद्मे तैः पद्मादिभिरर्चितैः ॥७७॥
 दूर्वाक्षतैः शुक्लपुष्पैः सुगन्धिचन्दनोदकैः । अर्घ्यं ददौ तच्छिरसि स्वयं गोलोकवासिनी
 सचन्दनस्निग्धमाल्यं पारिजातस्य सुन्दरम् ।

ददौ गले गणेशस्य स्वयं रासेश्वरी मुदा ॥ ७९ ॥

कस्तूरीकुङ्कुमाक्तञ्च सुगन्धि स्निग्धचन्दनम् । सर्वाङ्गे प्रददौ तस्य वृन्दावनचिनोदिनी
 सुगन्धिशुक्लपुष्पञ्च सुगन्धिचन्दनार्चितम् । ददौ तस्य पद्माम्बोजे महापद्मालया सती
 सुगन्धिपुष्पं धूपञ्च पूतैर्वस्तुभिरन्वितम् । ददौ कृष्णप्रिया तस्मै जगतामीश्वराय च ॥
 वीपं घृतप्रदीप्तञ्च ध्वान्तपिण्डसकारणम् । ददौ तस्मै सुरेशाय परमाद्या सनातनी ॥
 नैवेद्यं विविधं रम्यं सुस्वादुं सुमनोहरम् । चोष्यं चर्व्यं लेह्यपेयं सुधातुल्यं चतुर्विधम्
 फलानि च सुपकानि त्रैलोक्ये दुर्लभानि च ।

मधुराणि च मूलानि ग्राम्यारण्यानि नारद ॥ ८५ ॥

तानि त्वानन्त्यसंख्यानि तिलानां लड्डुकानि च ॥

सुपकानि सुरम्याणि स्वादूनि सुरसानि च ॥ ८६ ॥

यवगोधूमचूर्णानां पक्वानि पिष्टकानि च ।

घृताकानि च रम्याणि शर्करासहितानि च ॥ ८७ ॥

स्यस्तिकानां लड्डुकानि स्थूलानि सुन्दराणि च ।

अष्टद्वयञ्च विविधमक्षतं शर्करान्वितम् ॥ ८८ ॥

घृतकुल्यां दुग्धकुल्यां मधुकुल्यां मनोहराम् ।

गुडस्य दध्नः कुल्याञ्च पायसानां तथैव च ॥ ८९ ॥

पिष्टकानां स्वस्तिकानां रम्भाणां राशिरेव च ।

मिष्टान्नजनयुक्तानि शाल्पन्नानि शुभानि च ॥ ९० ॥

ददौ तस्मै सुरेशाय कृष्णप्राणाधिदेवता । अमूल्यरत्ननिर्माणं रम्यं सिंहासनं वरम् ॥ ९१ ॥

ददौ विघ्नविनाशाय विरजातट्ठासिनी । सूक्ष्मवस्त्रयुगं रम्यममूल्यं वह्निशुद्धकम् ॥ ९२ ॥

ददौ शैलात्मजायैव शतशृङ्गनिवासिनी । ताम्बूलञ्च धरं रम्यं कर्पूरादिसुधासितम् ॥ ९३ ॥

सर्वसंपत्प्रदात्रे च वृषभानुसुता ददौ । सप्ततीर्थोदकं शुद्धं सुपूतञ्च सुधासितम् ॥ ९४ ॥

पानार्थञ्च जलं तस्मै ददौ गोपीश्वरी मुदा । अमूल्यं दुर्लभञ्चैव विशुद्धं श्वेतचामरम् ।

ददौ तस्मै परेशाय मूलप्रकृतिरीश्वरी । अमूल्यरत्ननिर्माणं मुक्तामाणिक्पदीरकैः ॥ ९५ ॥

परिष्कृतं सुतक्षपञ्च पुष्पचन्दनचर्चितम् । सितसूक्ष्मांशुकेनैव परितश्च परिष्कृतम् ॥ ९६ ॥

ददौ शिधात्मजायैव कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ।

दत्त्वा च कामधेनुञ्च सप्तसां चाञ्छितप्रदाम् ॥ ९८ ॥

कृत्वाऽतीवपरीहारं वृन्दा पुष्पाञ्जलिं ददौ । दिव्येनानेन मनुना सवीजिनोज्ज्वलेन च ॥

ददौ षोडशोपचारं कालिन्दीकुलवासिनी । ओं गङ्गी गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा

इत्येवमेव मन्त्रञ्च गणेशं षोडशाक्षरम् । सा जजाप सहस्रञ्च परं कल्पतरुं वरम् ॥

तुष्टाव परया भक्त्या भक्तिनम्रात्मकन्धरा । साश्रुनेत्रा पुलकिता स्तोत्रेण कीतुकेन च

श्रीराधिकोपाच ।

परं धाम परं ब्रह्म परेशं परमीश्वरम् । विघ्ननिघ्नकरं शान्तं पुष्टं कान्तमनस्तफम् ॥

सुरासुरेन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः स्तुतं स्तौमि परात्परम् ।

सुरपद्मदिनेशञ्च गणेशं मङ्गलायनम् ॥ १०४ ॥

इदं स्तोत्रं महापुण्यं विघ्नशोकहरं परम् ।

यः पठेत् प्रातस्तथाय सर्वविघ्नात् प्रमुच्यते ॥ १०५ ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
 गणेशपूजनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः

राधाम्प्रतिगणेशोक्तिः ।

श्रीनारायण उवाच ।

राधा संपूज्य विधिना स्तुत्वा लभ्योदरं सती ।
 भूम्यरत्ननिर्माणं सर्वाङ्गभूषणं ददौ ॥ १ ॥
 राधायाः स्तवनं श्रुत्वा पूजां दृष्ट्वा च वस्तु च ।
 उवाच मधुरं शान्तः शान्तां त्रैलोक्यमातरम् ॥ २ ॥

श्रीगणेश उवाच ।

तव पूजा जगन्मातर्लोकशिक्षाकरी शुभे । ब्रह्मस्वरूपा भवती कृष्णवक्ष स्थलस्थिता ॥
 यत्पादपद्ममनुलं ध्यायन्ते ते सुदुर्लभम् । सुरा ब्रह्मेशशेषाद्या मुनीन्द्राः सनकादयः ॥
 जीवन्मुक्ताश्च भक्ताश्च सिद्धेन्द्राः कपिलादयः ।
 तस्य प्राणाधिदेवी त्वं प्रिया प्राणाधिका परा ॥ ५ ॥
 चामाङ्गनिर्मिता राधा दक्षिणाङ्गश्च माधवः । महालक्ष्मीर्जगन्माता तव चामाङ्गनिर्मिता
 वसोः सर्वनिवासस्य प्रसूस्त्वं परमेश्वरी । वेदानां जगतामेव मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ ७ ॥
 सर्वाः प्रकृतिका मातः सृष्ट्याञ्चेत्त्वद्विभूतयः ।
 विश्वानि कार्यरूपाणि त्वं च कारणरूपिणी ॥ ८ ॥

प्रलये ब्रह्मणः पाते तन्निमेषो हरेरपि । आदौ राधा समुच्चार्य पश्चात् कृष्णं परात्परम्
 सपव पण्डितो योगी गोलोकं याति लीलया । न्यतिक्रमे महापापी ब्रह्महत्यालभेदुधुपम्

जगतां भवती माता परमात्मा पितादिति । पितुरेव-गुरुर्माता पूज्या घन्यापरात्परा ।

भजते देवमन्यं वा कृष्णं वा सर्वकारणम् ।

पुण्यक्षेत्रे महामूढो यदि निन्दन्ति राधिकाम् ॥ १२ ॥

वंशहानिर्भवेत्तस्य तु पशोकमिहैव च । पच्यते निरये घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरो ॥ १३ ॥

गुरुश्च ज्ञानोद्गिरिणाज्ज्ञानं स्यान्मन्त्रतन्त्रयोः ।

स च मन्त्रश्च तत्तन्त्रं भक्ति स्याद् युधयोर्यतः ॥ १४ ॥

निपेव्य मन्त्रं देवानां जीवी जन्मनि जन्मनि । भक्तिर्भवति दुर्गायाः पादपद्मे सुदुर्लभे

निपेव्य मन्त्रं शम्भोश्च जगतां कारणस्यच । तदा प्राप्नोति युवयोः पादपद्मं सुदुर्लभम् ॥

युवयोः पादपद्मञ्च दुर्लभं प्राप्य पुण्यवान् । क्षणार्धं पोडशाशञ्च न हि मुञ्चति दैवतः

भक्त्या च युधयोर्मन्त्रं गृहीत्वा वैष्णवादिपि । स्तवं वा कथ्यं वापि कर्ममूलनिरुन्तनम्

यो जपेत् परया भक्त्या पुण्यक्षेत्रे च भारते । पुरुषाणां सहस्रञ्च स्यात्प्रमत्तासार्वभुद्धरेत्

गुरुमन्यर्च्य विधिषट्स्रालङ्कारचन्दनेः । कथ्यं धारयेद् योहि विष्णुतुल्यो भवेद्भूधरम्

यद्वत्तं वस्तु मे मातस्तत् सर्वं सार्थकं कुरु ।

देहि विप्राय मत्प्रीत्या तदा भोक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ २१ ॥

देवे देयानि वानानि देवे देया च वक्षिणा । तत् सर्वं ब्राह्मणे दद्यात्तदानन्त्याय कल्पते

ब्राह्मणानां मुरा राधे देवाना मुखमुख्यकम् ।

विप्रभुक्ञ्च यद्वद्रव्यं प्राप्नुयन्त्येव दैवताः ॥ २३ ॥

विप्रांश्च भोजयामास तत् सर्वं राधिका सती । वभूव तत्क्षणादेव प्रीतो लम्बोदरी मुने

एतस्मिन्नन्तरे देवा ब्रह्मेशशेषसंज्ञकाः ।

आयुर्व्यटमूलञ्च देवपूजार्थमेव च ॥ २५ ॥

तत्र गत्वा शिवचरो देवान् देवीरुवाच सः । श्रीकृष्णं शुष्ककण्ठश्च मयमीतश्च रक्षकः

रक्षक उवाच ।

गणेशं पूजयामास सर्वादी च शुभक्षणे । वृषभानुसुता राधा प्रकृत्य स्वस्तिवाचनम्

सहितासा वलयती गोपीत्रिशतकोटिभिः । पारितोऽहं बलिष्ठाभिर्बुध्मांश्च कथयामितत्

रतस्मिन्नन्तरे सर्वमाश्रमं सजलस्थलम् । साक्षद्वोरोचनामञ्च ददृशुर्गुनयः सुराः ॥६६॥
 न सच विस्मय गत्वा पप्रच्छुः कृष्णमीश्वरम् । उवाच भगवास्ताश्चसर्वज्ञःसर्वकारणः
 श्रीभगवानुवाच ।

अभिशाप्ता च शोदाप्ता नष्टशोभा च राधिका ।

सर्वे ज्ञान विसस्मार मद्विच्छेदज्वरानुराग ॥ ७१ ॥

विमुक्ते वर्षशतके ज्ञान सस्मार सा सती । सिद्धाश्रमञ्च पीतामं रासेभ्यर्ग्याश्च तेजसा ॥
 परमाद्वादकं तेजश्चन्द्रकोटिसमप्रभम् । सुषट्दृश्यञ्च सुषट् चक्षुषा प्राणिनामपि ॥७३॥
 तच्छ्रुत्वा परमाश्चर्यं मुनयो मनयस्तथा । देव्यश्च सर्वदेवास्ते ब्रह्मेशानादयस्तथा ॥
 जयेन गत्वा तत्स्थानं भक्तिप्रदात्मकन्धराः ।

सर्वे जनास्ते ददृशुस्त्रैलोक्येणश्च राधिकाम् ॥ ७५ ॥

श्वेतचम्पकवर्णाभामतुला सुमनोहराम् । मोहिनीं मानसानाञ्च मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥

सुकेशी सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डलाम् ।

नितम्बकटिनश्रोणीस्तनयुग्मोन्नताननाम् ॥ ७७ ॥

कौटीन्दुनिन्दितास्यां ता सस्मिता सुदती सतीम् ।

कज्जलोज्ज्वलरूपाञ्च शरत्कमललोचनाम् ॥ ७८ ॥

महालक्ष्मीं योजरूपा परमाद्यां सनातनीम् ।

परमात्मस्वरूपस्य प्राणाधिष्ठातृदेवताम् ॥ ७९ ॥

स्तुताञ्च पूजिताञ्चैव पराञ्च परमात्मने । ब्रह्मस्वरूपा निर्लिप्तां नित्यरूपाञ्च निर्गुणाम् ॥

विश्वानुरोधात् प्रकृतिं भक्तानुग्रहविग्रहाम् । सत्यस्वरूपा शुद्धाञ्च पूता पतितपावनीम्

सुतीर्थपूता सत्कीर्ति विधात्रीं वेधसामपि ।

महाप्रियाञ्च महती महाविष्णोश्च मातरम् ॥ ८२ ॥

रासेश्वरेश्वरी रम्या रसिका रसिकेश्वरीम् ।

बह्विशुद्धाशुकाधाना स्वेच्छारूपा शुभालयाम् ॥

गोपीभिः सप्तभिः शश्वत् सेविता श्वेतज्वामरैः ।

चतसृभिः प्रियालीभिः पादपद्मोपसेचिताम् ॥ ८४ ॥

अमूलपरत्ननिर्माणभूषणोच्चैर्विभूषिताम् । चारुकण्डलगुग्मेन श्रुतिगण्डस्थं लोज्ज्वलाम्
सुनासां गजमुक्ताह्रां सगेन्द्रचञ्चुनिन्दिताम् ।

कुङ्कुमालककस्तूरीस्निग्धचन्दनचर्चिताम् ॥ ८६ ॥

दधानां सुफलोलाञ्च कोमलाङ्गी सुकामुफीम् ।

गजेन्द्रगामिनीं रामां कमनोया सुकामिनीम् ॥ ८७ ॥

कामास्त्रजयरूपाञ्च कामकाम्यलयां चराम् । कीङ्काकमलमम्लानं पारिजातप्रसूनकम्
अमूल्यरत्ननिर्माणं दधानां दर्पणोज्ज्वलम् । नानारत्नविचित्राढ्यरत्नसिंहासनस्थिता
पादपद्मार्चितं कृष्णपादपद्मञ्च मङ्गलम् । हृत्पद्मे ध्यायमानाञ्च कृष्णस्य परमात्मनः

कर्मणा मनसा वाचा स्यजे जागरणेऽपि च ।

तत्प्रीतिं प्रेमसौभाग्यं स्मरन्ती नित्यनूतनम् ॥ ८९ ॥

भावानुरक्तसंसिकां शुद्धभक्तां पतिव्रताम् ।

धन्यां मान्यां गौरवणां शश्वद्रक्षःस्थलस्थिताम् ॥ ९० ॥

प्रियासुप्रियमक्तेषु सुप्रियां प्रियवादिनीम् । कृष्णवामाङ्गसम्भूतामभेदां गुणरूपयोः
गोलोकवासिनी देवदेवीं सर्वापरिस्थिताम् । बृषभानुसुतायां तां पुण्यक्षेत्रे च भारं
गोपीश्वरी गुतिरूपां सिद्धिदां सिद्धिरूपिणीम् ।

ध्यानासाध्यां दुराराध्यां वन्दे सद्भक्तवन्दिताम् ॥ ९५ ॥

ध्याने ध्यानेन राधाया ध्यायन्ते ध्याततत्पराः ।

इदं जीवन्मुक्तास्तेऽपरत्र कृष्णपार्यदाः ॥ ९६ ॥

दृष्ट्वा ब्रह्मा च सर्वादीं तुष्ट्वा परमेश्वरीम् । स्वयं विधाता जगतां मातरं वैधसामपि ।

ब्रह्मोद्याच ।

यष्टिर्वर्षसहस्राणि दिव्यानि परमेश्वरि । पुष्करे च तपस्तप्तं पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥ ९८ ॥
त्वत्पादपद्ममधुरमधुलब्धेन चेतसा । मधुवतेन लोभेन प्रेरितेन मया सति ॥ ९९ ॥

तथापि न मया लब्धं त्वत्पादपद्ममिषितम् ।

न द्रष्टमपि स्वप्नेऽपि जाता चागशरीरिणी ॥ १०० ॥

गाराहे भारते धर्मे पुण्ये वृन्दावने वने । सिद्धाश्रमे गणेशस्य पादपद्मञ्च द्रक्ष्यसि ॥
तथामाधवयोर्दास्यं कुतो विपयिणस्तव । निवर्त्तस्व महाभाग परमेतत् सुदुर्लभम् ॥
इति श्रुत्वा निवृत्तोऽहं तपसे भग्नमानसः । परिपूर्णं तद्भुजा वाञ्छितं तपसः फलम् ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

पादपद्मार्चित पादपद्मं यस्य सुदुर्लभम् ।

ध्यायन्ते ध्याननिष्ठाश्च शश्वद्ब्रह्मादयः सुराः ॥ १०४ ॥

मुनयो मनवश्चैव सिद्धाः सन्तश्च योगिनः । द्रष्टुं नैव क्षमा स्वप्ने भवती तस्य वक्षसि
अनन्त उवाच ।

वेदाश्च वेदमाता च पुराणानि च सुप्रते । अहं सरस्वती सन्तः स्तोतुं नालञ्च सन्ततम्
अस्माकं स्तवने यस्य भूभङ्गञ्च सुदुर्लभम् । तथैव भर्त्सने भीतश्चावयोरुत्तरं हरिः ॥
एवं वेदाश्च देव्यश्च चाम्ये ये च समागताः । प्रणतास्तुष्टुश्च सर्वे मुनिमन्याव्यस्ता
लज्जया नम्रवक्त्राश्च रुक्मिण्याद्याश्च योषित । मलीमसश्च चक्रुस्ता । श्वासेन रत्नदर्पणम्
मृततुल्या सत्यमामा निराहारा वृशोदरी । मनसोऽप्यभिमानञ्च सर्वं तत्याज नारद ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे सिद्धाश्रमतीर्थयात्राप्रसङ्गे
गणेशपूजनेब्रह्मेशोपादिकृतं राधिकास्तोत्रं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः

वसुदेवम्रति महादेवस्य ज्ञानोपदेशः ।

नारद उवाच ।

गणेशपूजनान्नेव राधास्तोत्रात् परं विभो । वभूव किं रहस्यं वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि
श्रीभगवानुवाच ।

गणेशपूजने तीर्थे ये देवाश्च समायुजः । मुनयश्चापि योगीन्द्रा वसन्ती वटमूलके ॥२॥

त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः] * वसुदेवप्रति महादेवस्य ज्ञानोपदेशः * ११५

वसुदेवो देवकी च परमादरपूर्वकम् । पप्रच्छ शम्भुं ब्रह्माणमनन्तं मुनिपुङ्गवान् ॥ ३ ।

भवे भवाधिपतरणमावयोरुक्तमा गतिः । शीघ्रं ब्रूत महाभागा दीनयोर्दीनवान्धवाः ।

भवाधिपतरणे तय्यां तत्र यूयञ्च नाविकाः ।

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ५ ॥

यज्ञरूपाणि पुण्यानि प्रतान्यनशनानि च । तपासि नानाशनानि विप्रदेवार्चनानि च ।

चिरं पुनन्ति सर्वाणि दर्शनादेय वैष्णवाः । सताञ्च विष्णुभक्तानां रजसां स्पर्शमात्रत

पूतानां पादपद्मानां सद्य पूता वसुन्धरा । तीर्थानि च पवित्राणि समुद्राः पर्वतास्तथ

सुरा दर्शनमिच्छन्ति पातवेन्धनपातकम् । सोऽज्ञानी नैव बुबुधे ज्ञानञ्च ज्ञानिना सह

परमं स्वावुरूपञ्च दधि कुम्भं रसं यथा । यथा कृष्णस्य तातोऽहं सङ्गी सुचिरमेव च

तथैव देवकी माता ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरोः ॥ १० ॥

वसुदेववचः श्रुत्या प्रहस्य शङ्करः स्वयम् । चतुर्णामपि वेदानामुवाच जनको गुरुः ॥

महादेव उवाच ।

सन्निकर्षोऽज्ञानिनाञ्चाप्यनादरणकारणम् । यान्ति गङ्गाम्मसापूतास्तीर्थान्यग्यानि सिद्धये

वासुदेवस्य तातोऽय वसुदेवश्च पण्डितः ।

ज्ञानिन कश्यपस्याशो वसोस्तातस्य चात्मनः ॥ १३ ॥

पृच्छति ज्ञानमस्माश्च कृष्णाङ्गान् पुत्रबुद्धितः ।

अहो कुर्वा महामाया ज्ञानिनामपि मोहिनी ॥ १४ ॥

विष्णुमायादुराराध्या न साध्या जगतामपि । वयञ्च मोहिता शङ्खद्वेदाना जनकास्तथा

ब्रह्माविष्णुं परीक्षेत मोहितस्तस्य मायया । ध्यायते यत्पदाम्मोज तपसा जीवनावधि

इन्द्रेषु दशलक्षेष्वप्यधिकाष्टशतेषु च । पातेषु ब्रह्मण.पाते निमेषो माधवस्य च ॥ १७ ॥

सह तेनेन्द्रियुद्धश्च पारिजातस्य हेतुना । पारिजाततरु दत्त्वा मायाशक्रश्च रक्षितः ॥

यज्ज्ञानमग्निनामेव तत्त्व वा विषयात्मकम् । न हि किञ्चित्तदज्ञान तत्साध्यानासदैव हि

प्राणिनामात्मनो ज्ञानमस्माकं ज्ञानमस्ति च । तदूर्ध्वं तत्समनैव कृष्णं पृच्छशुभाशुभम्

ब्रह्मणश्च चतुर्णामं फलं कल्पयिदो विदुः । सप्तकल्पान्तजीवी च मार्कण्डेयो महामुनिः

अष्टौ नवति शक्रेषु पातेषु तपनं मुनेः । ततः प्राप्तं हरेर्दास्यं मुनिना तपसः फलात् ॥
 प्रलये ब्रह्मणः पाते पतनं लोमशस्य च । दिक्पालानां ब्रह्मणाञ्च तदायुश्चिरजीविनाम्
 अन्येषामपि देवानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् । तदेवायुश्च रुद्राणां माञ्च मृत्युञ्जयं चित्ता ॥

प्रलये च विधेः पातो शिवलोकेऽप्यहं शिवः ।

ब्रह्मभालोद्भवः शम्भुः सर्वादिगर्गभाषणम् ॥ २५ ॥

कृष्णवामाङ्गसम्भूता यथा राधा तथैव च ।

तथैव दुर्गा लक्ष्मीश्च सावित्री च सरस्वती ॥ २६ ॥

आदित्योऽप्यदितेः पुत्रः कायव्यूहेन द्वादश ।

तथैव च महेन्द्रश्च कायव्यूहाश्चतुर्दश ॥ २७ ॥

तथैव षस्रवक्षाष्टौ रुद्राश्चैकादशैव ते । मनुपाते चेन्द्रपातो विषयात् पतनं मयेत् ॥ २८ ॥

समाययुश्च सर्वेषां निधनं प्रलयेऽपि च । प्रलये दर्शयामास ब्रह्माण्डे च जलल्लुते ॥ २९ ॥

ब्रह्माणञ्च स्थलोकञ्च स्वात्मानं शक्तिमिश्च माम् ।

सर्वेषां मूलरूपश्च सर्वेशः कृष्ण एव च ॥ ३० ॥

भज पुत्रं राजसूये यज्ञेश यज्ञकारणम् ।

विधिवदक्षिणां दत्त्वा भवार्न्धि तर यादय ॥ ३१ ॥

मुक्तिस्तेनास्ति निर्वाणं विपर्या कश्यपो भवान् ।

न ते दास्यं भक्तधनमदितिर्देयकी तथा ॥ ३२ ॥

प्रजं सर्गं भोगवीजं स्थलानाममरालयम् ॥ ३३ ॥

शिवस्य घनं श्रुत्वा सयतश्च शुभक्षणे । तत्र संभृतसम्मारी राजसूयञ्चकार सः ॥ ३४ ॥
 घसुदेवस्य हव्यञ्च साक्षाच्च जगद्गुरुः सुराः । यत्र साक्षाच्च यज्ञेशो यक्षोऽयं दक्षिणास्तद
 ग्ना पूर्णाहुतिं दत्तवन्तं घसुदेवमुपाव सः । सन्तकुमारो भगवान् घासुदेवाग्रया मुने ॥ ३६ ॥

सन्तकुमार उवाच ।

नमो सर्वस्वं दक्षिणां देहि तूर्णं लक्ष्मीपतेः पितः । सार्धकं कुरु कर्मदं चेदोक्तं घनं शृणु ॥
 दक्षिणा विप्रमुद्दिश्य सत्कालञ्चेन्न दीयते । मुहूर्तं तु व्यतीते सा दक्षिणा द्विगुणामवेत् ॥

त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः] * दक्षिणाकालनिर्णयधर्षणम् *

११८

वासरे च वहिर्भूने भवेत्सापि चतुर्गुणा । त्रिरात्रे समतीते तु षड्गुणा दक्षिणा भवेत्
पक्षान्ते तु शतगुणा मासान्ते तु चतुर्गुणा । पण्मासेऽप्यधिके न्यूने साहस्रश्रगुणीतथ
धर्षान्ते सा लक्षगुणा ब्रह्मणोक्तञ्च यादव । उभौ च तत्कं यातः कर्मकर्तृपुरोहितौ
वासुदेवश्च तच्छ्रुत्वा सर्वस्वमुत्ससर्ज सः ।

अधिकारांश्च साहादौ वासुदेवाज्ञया तथा ॥ ४२ ॥

अमूल्यानाञ्च रत्नानां दशकोटिमनुत्तमाम् । ददौ गर्गाय सर्वादौ स्वयं लक्ष्मीपतेः पित
शतकोटिं मणीन्द्राणां स्वर्णानां तच्चतुर्गुणम् ।

माणिक्यानाञ्च मुक्तानां हीरकाणां तथैव च ॥ ४४ ॥

रौप्यं प्रवालं परमं स्वर्णपात्राणि यानि च । स्वस्त्रीणां स्वबधूनाञ्चाप्यमूल्यरत्नभूषण
श्वेतचामरलक्षञ्च लक्षञ्च रत्नदर्पणम् । कामधेनुगर्णं सर्वशतकोटिं गजानपि ॥ ४६ ॥
शतकोटिर्गजेन्द्राणामश्वानां तच्चतुर्गुणम् । यद्धनं यादवानाञ्च राज्ञो राजानुमोदनात्
ब्रामाणां शतलक्षञ्च सशस्यं फलितं तदम् । धान्याचलानां लक्षञ्च शाल्यज्ञानां तथैव च
पायसं पिष्टकञ्चैव मिष्टान्तञ्च सुधोपमम् ।

स्वस्तिकानां तिलानाञ्च रम्याणि लङ्गुलानि च ॥ ४८ ॥

वधूनां मधूनां तुरगानां गुडानां हविषामपि । कुल्यानां शतकं दत्त्वा परिहारं चकार सः
सकपूर्ञ्च ताम्बूलं सुशीतं घासितं जलम् ।

सुगन्धिवन्दनञ्चैव पारिजातस्य मालिकाम् ॥ ५१ ॥

आसनानि च रम्याणि वह्निशुद्धांशुकानि च । रत्ननिर्माणतल्पानि पुष्पाणि च फलानि च
प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च प्रफुल्लचन्दनेक्षणः । देवांश्च भोजयामास ब्राह्मणानां मुषैः शुभैः ।
देवाश्च मुनयो रात्रौ स्वरागाभिश्च रेमिरे । प्रभाते प्रययुः सर्वे श्रीकृष्णानुमतेन च ।
यादवा प्रययुः सर्वे द्वारकां कृष्णपाञ्चित्राम् । अमूल्यरत्नपूर्णञ्च रुक्मिणीद्रोणैश्च ।

इति श्रीमहावीर्यस्य महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
दक्षिणाकालनिर्णयनाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

चतुविंशाधिकशततमोऽध्यायः

राधाकृष्णयोः पुनर्मेलनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

गणेशपूजनं कृत्या माधवो यादवैः सह । देवैर्मुनिभिरन्यैश्च देवीभिः सह नारद ॥ १ ॥

अश्विन देवो देवीभी रुक्मिण्याद्यामिरेव च ।

प्रययौ द्वारकां रम्या तस्यौ सिद्धाश्रमे स्वयम् ॥ २ ॥

कृत्वा सुप्रीतिसम्भाषा सादं गोलोकवासिभिः ।

गोपैः सुहृद्विर्नन्देन मात्रा गोप्या यशोदया ॥ ३ ॥

उवाच मातरं तातं सुनीतञ्च यथोचितम् । गोपांश्चगोकुलस्थाञ्च बन्धुवर्गाञ्च साम्प्रतम्

श्रीभगवानुवाच ।

गच्छ नन्दब्रजं नन्द तातप्राणस्य वल्लभ । मातर्यशोदे त्वमपि परमार्ये यशस्विनी ॥ ५ ॥

भुक्त्वा कालावशेषञ्च गच्छ गोकुलमुत्तमम् ।

सालोक्यमुक्तिं दास्यामि सादं गोकुलवासिभिः ॥ ६ ॥

इत्युक्त्वा भगवान् कृष्णः पित्रोरनुमतेन च । जगाम राधिकास्थाननन्दश्च गोकुलतथा

ददर्श राधा रुक्मिणीं मुक्ताहाराञ्च सस्मिताम् ।

यथा द्वादशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयोवनाम् ॥ ८ ॥

रत्नोच्चैरासनस्थाञ्च गोपीत्रिशतकोटिभिः ।

आवृतां वेत्रहस्ताभिः सस्मिताभिश्च साम्प्रतम् ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा च दूरतो राधा श्रोतृणां प्राणवल्लभा । शिशुपेशं सुवेशञ्च सुन्दरेशञ्च सस्मिताम् ॥

नवीनजलदृश्यामं पीतकौशेयवाससम् । चन्द्रनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥ ११ ॥

मयूरपिच्छचूडञ्च मालतीमाल्यशोभितम् । ईषदास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहचिग्रहम् ॥ १२ ॥

क्रीडाकमलमग्नान धृतचन्तं मनोहरम् । मुरलीहस्तचिन्त्यस्तं सुप्रशस्तञ्च दर्पणम् ॥ १३ ॥

चतुर्विंशधिकशततमोऽध्यायः] * राधाकृष्णयोः पुनर्मेलनम् *

११६१

जयेन च समुत्थाय गोपीभिः सह सादरम् । प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टाव परमेश्वरम् ।

राधिकोवाच ।

अय मे सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम् ।

यद्दृष्ट्वा मुखचन्द्रं ते सुस्निग्धं लोचनं मतः ॥ १५ ॥

पञ्च प्राणाश्च स्निग्धाश्च परमात्मा च सुप्रियः । उभयोर्हृदयोजञ्च दुर्लभं बन्धुदर्शनम् ।
शोकार्णवे निमग्नार्हं प्रवग्धाविरहानलैः । तां दृष्ट्वामृतदृष्ट्या च सुपिताय सुशीतला
शिवा शिष्यप्रदाहञ्च शिष्योजा त्वया सह । शिवस्वरूपा निश्चेष्टाप्यदृष्टा ख त्वया विना
त्वयि तिष्ठति देहे च देही श्रीमान् शुनिः स्वयम् ।

सर्वशक्तिस्वरूपा च शिवरूपो गते त्वयि ॥ १६ ॥

स्त्रीपुंसोर्विरहो नाथ सामान्यश्च सुदारुणः ।

यान्त्येष शक्तिभिः प्राणा विच्छेदात् परमात्मनः ॥ २० ॥

इत्युक्तवाराधिका देवी परमात्माममीश्वरम् । स्वासने वासयामास कृत्वा पादार्चनंमुदा
रत्नासिंहासने श्रीमानुवास राधाया सह । गोपीभिः सहितः शश्वत्सेवित श्वेतचामरीः
चन्वता सा ददौ गात्रे सुगन्धिचन्दनं हरेः । सस्मितारत्नमाला सा रत्नमालां गलेददौ
पादपद्माब्जिते पादपद्मे पद्माचती सती । अयं ददौ सा सज्जलं कूर्पापुष्पञ्च चन्दनम् ॥
मालती मालतीमाल्यं चूड़ायाश्च हरेर्ददौ । चम्पा पुष्पस्य पुटकं ददौ च पार्वती सती ॥
पारिजातश्च हरये पारिजातं ददौ मुदा । सकर्पूश्च ताम्बूलं वासितं शीतलं जलम् ॥

ददौ कदम्बमाला सा कदम्बमालिकां शुभाम् ।

क्रीडाकमलममृगानममूल्यं रत्नदर्पणम् ॥ २७ ॥

ददौ हस्ते हरेरेव कमला सा सुकोमला । वरुणेन पुरादत्तं पल्लयुग्मञ्च सुन्दरम् ॥ २८ ॥
साक्षाद्गोरोचनाभञ्च सुन्दरो हरये ददौ । मधुपात्रं मधूस्तस्मै मधुरं मधुपूर्णकम् ॥ २९ ॥

सुधापूर्णां सुधापात्रं ददौ भक्त्या सुधामुप्तो ।

चकार पुष्पशय्याञ्च गोपी चन्दनचर्चिताम् ॥ ३० ॥

अमृगमालतीपुष्पमालाजालविभूषिताम् । रत्नेन्द्रसारनिर्माणमन्दिरे सुमनोहरे ॥ ३१ ॥

मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीरहारविभूषिते । कस्तूरीकुङ्कुमाकेन घायुना सुरभोक्तृ ॥ ३२ ॥
 रत्नप्रदीपशतकैर्ज्वलद्भिश्च सुदीपिते । धूपितैः सततं धूपैर्नानावस्तुसमन्वितैः ॥ ३३ ॥
 तत्रा शय्यां रतिकरी ययुर्गोप्यश्चसस्मिताः । द्रुपध्वारहसि तल्पञ्च सुरम्यं सुमनोहरम्
 माधवी शय्या साधं विवेश रतिमन्दिरम् ।

नानाप्रकारहास्यञ्च परिहारं स्मरोचितम् ॥ ३४ ॥

ऽयोर्वभूव तल्पे च मदनानुरयोस्तथा । माल्यं ददौ च कृष्णाय ताम्बूलञ्च सुवासितम्
 कस्तूरीकुङ्कुमाकञ्च चन्दनं श्यामवक्षसि । चाक्षवम्पकपुष्पञ्च चूड़ायां प्रददौ सती ॥
 उद्वलदलसंसक्तक्रीडापद्मं करे ददौ । प्रक्षिप्य मुरलीं हस्तात् प्रददौ रत्नदर्पणम् ।

पारिजातस्य कुसुममम्लानं पुरतो ददौ ॥ ३८ ॥

उवाच मधुरं राधा रहस्यं मधुरं वचः ।

सस्मिता सस्मितं शान्तं कान्तं कान्तामनोहरम् ॥ ३९ ॥

श्रीराधिका उवाच ।

निष्कलं मङ्गलप्रश्नं मङ्गलं मङ्गलालये । सर्वमङ्गलवीजे च माङ्गल्ये मङ्गलप्रदे ॥ ४० ॥

तथापि कुशलप्रश्नं साम्प्रतं समयोचितम् ।

लौकिकी व्यवहारोऽपि चेद्भ्यो बलवांस्तथा ॥ ४१ ॥

कुशलं क्विमणीकान्त सत्यभामेश साम्प्रतम् । महेन्द्रेण समं युद्धं लीलया च यदाज्ञया
 पारिजातवदं स्वर्गादुत्पाद्य चामरावतीम् ।

गत्वा विजित्य देवांश्च तस्यै दत्तमिति श्रुतम् ॥ ४३ ॥

पुण्यकञ्च कृतान्तेन पारिजातेन सुप्रतम् । त्वामेव साध्यं कान्तञ्च सम्पूर्णं दक्षिणां ददौ
 प्रहोशयोपासाध्यस्त्वं तयासाध्यः कृतः कथम् ।

सर्पाम्य-कामिनीस्यञ्च सत्यभामां विमर्षि च ॥ ४५ ॥

क्वमिष्यथाः प्रेमसोभाग्यमतिरिक्तञ्चगौरवम् । भयंमानञ्च धन्याया सत्पायां सततंश्रुतम्
 सत्यं जाम्यवतीकान्त वद माञ्च सुनिश्चितम् ।

तासु सर्पासु कान्तासु कस्यास्ते प्रेम चाधिकम् ॥ ४७ ॥

शृङ्गरे सर्वभावे वा तामु का रसिका परा ।

त्वयि स्निग्धा विदग्धाः का तामु धन्यातिसुवता ॥ ४८ ॥

सा स्त्री भावानुरक्ता या भार्या पाति पतिश्च सः ।

प्रेमातिरिक्तं स्त्रीपुंसोस्त्रैलोक्येषु सुदुर्लभम् ॥ ४९ ॥

रसिका स्त्री विजानाति सती गुणवती पतिम् । गुणशं रसिकं शूरं सुशीलं सुरतीसदा
दूराद्वावति पदार्थं मधुलोभान्मधुवतः । भेकस्तत्र हि जानाति तन्मूर्ध्नि पादमुत्सृजेत्
यन्त्रीजानाति सङ्गीतरसं यन्त्रञ्च नैव च । दुग्धस्वादंविदग्धश्च न द्यूतं नैव च भाजनम्
परिपक्वफलास्वादं जानाति भोगिनः सुखम् ।

एकत्रायस्थिताः सश्वश्च किञ्चित् फलिनो यथा ॥ ५३ ॥

सुशीलजलास्वादं विजानन्तितृपालवः । न च बापी न च घटश्चेत् कुत्रायस्थितोयथा
भोगिनो हि विजानन्ति शालिस्वादुरसं परम् ।

एकत्रायस्थितश्चेत् न क्षेत्रं भाजनं यथा ॥ ५५ ॥

बुधुषे चन्दनाग्राणं चन्दनार्थं च भोगयित् । न गर्वभो भारवाही न तस्य पान्त्रिकायथा
यं न जानन्ति वेदाश्च प्रज्ञेशानादयस्तथा ।

योगिनो मुनयः सिद्धास्तं किं जानन्ति योषितः ॥ ५७ ॥

सौभाग्यं गौरवं प्रेम दुर्लभं नित्यनूतनम् । योषिताश्च परं नैव चूषाभूतं क्षणेन च ॥
अत्युच्छितो निपतनं प्राप्नोत्येव ध्रुवं प्रभो ।

भाराद्विपत्तिवीजश्च वैष्णवाणां विहंसनम् ॥ ५९ ॥

श्रीदामा च मया शतस्त्वद्भक्तो भक्तवत्सलः ।

एतादृशी विपत्तिर्मे पुत्र श्रीदामशापतः ॥ ६० ॥

ईश्वरः कस्य वा यन्धुः प्रियो वा विप्रियस्तथा । सततं भक्तिसाध्यश्च यो भक्तश्चतदीश्वरः
वेदाश्च वैदिकाः सन्तः पुराणानि पदन्ति च ।

राधाया माधवः साध्यो भगवानिति निष्फलम् ॥ ६२ ॥

जित्वा च सगणं शम्भुं चाणस्यभुजहन्तनम् । हत्वा च रुक्मिणीपौत्रः समानोतः सभार्यकः

भवती मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदशायिनः प्रिया । धर्मपुत्रवधूस्त्वञ्च शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपिणी
कपिलस्य प्रिया कान्ता भारते भारती सती ।

त्वं सीता मिथिलायाञ्च त्वच्छाया द्रौपदी सती ॥ ६७ ॥

द्वारवत्यां महालक्ष्मीर्भवती रुक्मिणी सती । पञ्चानां पाण्डवानाञ्च भवती कलया प्रिया
रावणेन हृता त्वञ्च त्वञ्च रामस्य कामिनी । नानारूपायथा त्वञ्च छायाया कलया सति
नानारूपस्तथा हञ्च स्वांशेन कलया तथा । परिपूर्णतमोऽहञ्च परमात्मा परात् परः
इति ते कथितं सर्वमाध्यात्मिकमिदं सति । राधे सर्वापराधं मे क्षमस्व परमेश्वरि ॥
श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा परितुष्टा च राधिका । परितुष्टाश्च गोप्यश्च प्रणोमुः परमेश्वरम् ॥

इति श्रीग्रहवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

राधाकृष्णसंवादे चतुर्विंशधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः

राधाकृष्णसंवादवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

श्रीकृष्णवचनं श्रुत्वा प्रहृष्टा गोपिका मुदा । मन्दिरं प्रययुः सर्वाः प्रणम्य राधिकां प्रभुम्
राधा शृङ्गारभाषञ्च कलापोद्देशपूर्वकम् ।

चकार सस्मिता साध्वी षकचञ्चललोचना ॥ २ ॥

दत्त्वा च चन्दनमाल्यं स्वामिने पुनरेव च । रहस्यञ्च परीहास्यं पुनरेव चकार सः ॥

आकृष्य राधिकां कृष्णः समानीयस्ववक्षसि । गोष्ठापरं कपोलञ्च गण्डयुग्मंचुचुम्ब च
राधा चुचुम्ब कृष्णस्य मुखचन्द्रं मनोहरम् ।

चकार कृष्ण प्राणेशं बाहुभ्याञ्च स्ववक्षसि ॥ ५ ॥

शृङ्गारोद्देशविधं कामशास्त्रोक्तमीप्सितम् । स्त्रीपुंसोस्तोपजनकं चकार भगवान् प्रभुः

पञ्चविंशतिशततमोऽध्यायः] * राधाकृष्णसंवादनार्णवम् *

नखविक्षतसर्वाङ्गा दशनेनाधरक्षता । पुलकाञ्चित्देहा सा तन्द्रिता धामनस्तनी ॥ ७ ॥
मूर्च्छिता सुखसम्भोगाद्विलग्ना हतचेतना । श्वासमात्रावशेषा च निद्रामुद्रितलोचना ॥

रतिशूरा कोमलाङ्गी कान्तवक्षःस्थलस्थिता ।

शीते सुखोष्णसर्वाङ्गी ग्रीष्मे सा सुखशीतला ॥ ८ ॥

शृङ्गारकाले सुखदा सान्द्रश्रोणीपयोधरा । नितम्बभारनम्रा च प्रसङ्गसुखदायिका ॥
विदग्धारसिकाश्रेष्ठा कामुकी च घराङ्गना । सहसाचेतनंप्राप्य शुश्राव कोकिलध्वनिम्

श्रुत्वा परमभीता सा दीना दीनविशङ्कया ॥

उवाच परमा ला च परमेशं परात् परम् । बाहुश्रोणीयुगाभ्याञ्च निबध्य च पुनः पुनः
राधिकोवाच ।

रासं गच्छ महाभाग पुण्यं वृन्दावनं वनम् । तत्रकीडां करिष्यामि जलेन च स्थलेन च
पुनर्यास्यामि मलयं सुन्दरं मणिमन्दिरम् । अपरं यद्रहस्यं वा जन्मना न श्रुतं मया ॥
तत्तद्यामि त्वया सार्द्धमिति मे लालसा परा । परस्परैकालापेन प्रययौ रजनी शुभा ॥

अरुणोदयकालेऽपि न त्यजेन्माधवं सती ।

माधवः प्रीतिवचसा वीधयामास साधनात् ॥ १६ ॥

प्रातःकृत्यं ततः कृत्वा स्वाकरोह रथं हरिः । गोपीभी राधया सार्धं शरत्कमललोचनः
योजनायतविस्तीर्णं गृहैस्त्रिशतकोटिभिः । मणीन्द्रसारनिर्माणैर्ज्वलद्विरुपशोभितम्
गोलोकादागतं तत्र मनोशायि मनोहरम् । सहस्रवक्त्रसंयुक्तं सहस्राक्षयैः प्रचालितम् ॥
मणिस्तम्भैस्त्रिकोटीभी रत्नराजिविराजितम् । मुक्तामाणिक्यपवनेर्होराहारैः सुशोभितम्
नानाचित्रैर्विचित्रैश्च श्वेतचामरदर्पणैः । बह्विशुद्धांशुकैर्दक्षिणालाजालैर्विभूषिताम् ॥ २१ ॥
रत्ननिर्माणतल्पैश्च पुष्पचन्दनचर्चितम् । समानरूपवेशिश्च गोपीलक्षैः समावृतम् ॥ २२ ॥
रथेन तेन भगवान् पुनर्वृन्दावनं ययौ । तत्र गत्वा निशाकाले विजहार जले स्थले ॥
शृङ्गारं सुचिरं कृत्वा वनेषूपवनेषु च । राधिकां दर्शयामास यथा सर्वञ्च नूतनम् ॥
विष्णुवन्दके सुरसने माहेन्द्रे नन्दने वने । सुमेरुशिखरे रम्ये पर्यते गन्धमादने ॥ २५ ॥
शैले शैले सुन्दरे च फन्दरे कन्दरे वने । पुष्पोद्याने सुरहसि नद्यां नद्यां नद्रे नद्रे ॥ २६ ॥

तत्सूत्रञ्च तिलकं शेषं लुप्तं सुनिश्चितम् । दिवाव्ययावनिरतं चिरतं-धर्मकर्मणि ॥ १३ ॥
 ज्ञानाञ्च व्रतानाञ्च तपसां लुप्तमेव च । केदारकन्याशापेन धर्मो नास्त्येव केवलम् ॥
 चच्छन्दगामिनीस्त्रीणां पतिश्च सततं वशे । ताडयेत् सततं तञ्च भर्त्सयेद्य दिवानिशम्
 प्राधान्यं स्त्रीकुटुम्बानां स्त्रीणाञ्च सततं वशे ।

स्यामी च भक्तस्तासाञ्च पराभूतो निरन्तरम् ॥ १६ ॥

कलौ च योपितः सर्वा जारसेवासु तत्पराः । शतपुत्रसमस्नेहस्तासां जारे भविष्यति
 ददाति तस्मै भक्ष्यञ्च यथा भृत्याय कोपतः ।

सस्मिता सकटाक्षा सामृतदृष्ट्या निरन्तरम् ॥ १८ ॥

जारं पश्यति कामेन विषदृष्ट्या पतिं सदा । सततं गौरवं तासां स्नेहञ्च जारयान्धवे ।
 पत्यौ कम्पहारञ्च नित्यं नित्यं करोति च । मिष्टान्नं श्रद्धया भक्त्या जारायप्रददाति च
 वेशयुक्ता च सततं जारसेवनतत्परा । प्राणा यन्धुर्गतिश्चात्मा कलौ जारश्च योपिताम्
 लुप्ता चातिथिसेवा च प्रलुप्तं विष्णुसेवनम् । पितृणामचनञ्चैव देवानाञ्च तपेव च ॥
 विष्णुवैष्णवयोर्द्वेषो सततञ्च नरो भवेत् । धाममन्त्रोपासकाश्च चतुर्वर्णाश्चतत्पराः ॥
 शालग्रामञ्च तुलसी कुशं गङ्गोदकं तथा । नस्पृशेन्मानवो धूर्तो म्लेच्छाचाररतः सदा ॥
 कारणं कारणानाञ्च सर्वेषां सर्वबीजकम् । सुखदं मोक्षदं शम्भदातारं सर्वसम्पदाम् ॥

त्यक्त्वा मां परया भक्त्या भुङ्क्ष्वसम्प्रदायिनम् ।

वेदनिन्दां वाममन्त्रं जपेद् विप्रश्च मायया ॥ २६ ॥

सनातनी विष्णुमाया धञ्जितं तं करिष्यति । ममाज्ञया भगवती जगताञ्च दुरत्यया ॥
 कलेर्दशसहस्राणि मदर्चा भुवि तिष्ठति । तदर्धानि च वर्षाणां गङ्गा भुवनपायनी ॥ २८ ॥
 तुलसी विष्णुभक्ताश्च यावद्गङ्गा च कीर्तनम् । पुराणानि च स्वरूपानि तावदेवमहीतले
 मम चोत्कीर्तनं नास्ति एतदन्ते कलौ व्रज ।

एकवर्णां भविष्यन्ति किराता बलिनः शठा ॥ ३० ॥

पित्रोः सेवा गुरोः सेवा सेवा च देवविप्रयोः । विषर्जिता नराः सर्वे चातिथीनांतथैव च
 शस्यद्दीना भवेत् पृथ्वी सा चावृष्ट्या निरन्तरम् ।

फलहीनोऽपि वृक्षश्च जलहीना सरित्तथा ॥ ३२ ॥

चेदहीनो ब्राह्मणश्च यलहीनश्च भूपतिः । जातिहीना जनाः सर्वे म्लेच्छो भूपो भविष्यति ॥
भृत्यचत्ताङ्गयेत्तातं पुत्रः शिष्यस्तथागुरुम् । कान्तञ्च ताङ्गयेत्कान्तालुब्धकुक्कुटवद्गृही
नश्यन्ति सकललोकाः कलौ शोये च पापिनः ।

सूर्याणामातपात् केचिज्जलौघेनापि केचन ॥ ३५ ॥

हेवैश्येन्द्र सति कलौ न नश्यन्ति घसुन्धरा । पुनः सृष्टिर्भवेत् सत्यं सत्यवीजनिस्तस्मै
पतस्मिन्नन्तरे विप्र रथमेव मनोहरम् । चतुर्थाजनविस्तीर्णं मूर्ध्वं च पञ्चयोजनम् ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशं रत्नेन्द्रसारनिर्मितम् । अमृतापारिजातानां मालाजालविराजितम् ॥
मणीनां कौस्तुभानाञ्च भूषणेन विभूषितम् । अमूल्यरत्नकलशं हीरहारविलम्बितम् ॥
मनोहरैः परिष्वक्तं सहस्रकोटिमग्निरैः । सहस्रद्वयचक्रञ्च सहस्रद्वयघोटकम् ॥ ४० ॥

सूक्ष्मवस्त्राच्छादितञ्च गोपीकोटीमिरावृतम् ।

गोलोकादागतं तूर्णं दहशुः सहसा व्रजे ॥ ४१ ॥

कृष्णाङ्गया तमारुह्य ययुर्गोलोकमुत्तमम् । राधा कलावतीदेवी धन्या चायो निसम्भवा
गोलोकादागता गोप्यश्चायो निसम्भवाश्च ताः । श्रुतिपत्न्यश्च ताः सर्वाः स्वशरीरेण नारद
सर्वे त्यक्त्वा शरीराणि नश्वराणि सुनिश्चितम् ।

गोलोकञ्च ययौ राधा सार्द्धं गोकुलवासिभिः ॥ ४४ ॥

ददर्श विरजातीरं नानारत्नविभूषितम् । तदुत्तीर्णं ययौ विप्र शतशृङ्गञ्च पर्वतम् ॥ ४५ ॥
नानामणिगणाकीर्णं रासमण्डलमण्डितम् । ततो ययौ कियद्दूरं पुण्यं वृन्दावनं वनम्
सा ददर्शाक्षयवटमूर्ध्वं त्रिशतयोजनम् । शतयोजनविस्तीर्णं शापाकोटिसमावृतम् ॥
रक्तवर्णः फलोद्येध स्थूलैरपि विभूषितम् । गोपीकोटिसहस्रैश्च सार्द्धं वृन्दा मनोहरा ॥
अनुव्रजं सादरञ्च सस्मिता सा समाययौ । अवरुह्य रथात्तूर्णं राधां सा प्रणनाम च
रासेश्वरी तां सम्भाष्य प्रविवेश स्वमालयम् । रत्नसिंहासने रम्ये हीरहारसमन्वितम्
वृन्दा ता वासयामास पादसेवनतत्परा । सप्तभिश्च सखाभिश्च सेविता श्वेतमाचरेः ॥
आययुर्गापिकाः सर्वा द्रष्टुं तां परमेश्वरोम् । नन्दादिकंप्रकल्पयेत्तद्वाधायासं पृथक् पृथक्

परमानन्दरूपा सा परमानन्दपूर्वकम् । स्ववेश्मनि महारम्ये प्रतस्थे गोपिकासह ॥५३॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
कलिधर्मवर्णनं नाम पञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः

सप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः ।

श्रीकृष्णस्य गोलोकगमनवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

श्रीकृष्णो भगवांस्तत्र परिपूर्णतमः प्रभुः ।

दृष्ट्वा सालोक्यमोक्षञ्च सद्यो गोकुलवासिनाम् ॥ १ ॥

उवाच पञ्चभिर्गोपैर्भाण्डीरै घटमूलके । ददर्श गोकुलं सर्वं गोकुलं व्याकुलं तथा ॥२॥

अरक्षकञ्च व्यस्तञ्च शून्यं वृन्दावनं वनम् । योगेनामृतवृष्ट्या च कृपयाचक्रुपानिधिः

गोपीभिश्च तथा गोपैः परिपूर्णं चकार सः । तथाघृन्दावनञ्चैव सुरम्यञ्च मनोहरम्

गोकुलस्थांश्च गोपांश्च समाश्वासं चकार सः ।

उवाच मधुरं वाक्यं हितं नीतञ्च दुर्लभम् ॥ ५

श्रीभगवानुवाच ।

है गोपगण हेचन्धो सुखं तिष्ठन् स्थिरो भव ।

रमणं प्रियया साद्धं सुरम्यं रासमण्डलम् ॥ ६ ॥

तावत्प्रभृति कृष्णस्य पुण्ये वृन्दावने घने । अधिष्ठानञ्च सततं यावच्चन्द्रदिपाकरो ॥

तथा जगाम भाण्डीरं विधाता जगतामपि ।

स्वयं शेषश्च धर्मश्च भवान्या च भवः स्वयम् ॥ ८ ॥

सूर्यश्चापि महेन्द्रश्च चन्द्रश्चापि हुताशनः ।

कुवेरो घरुणश्चैव पवनश्च यमस्तथा ॥ ९ ॥

सप्तविंशधिकशततमोऽध्यायः] * ब्रह्मादिकृतभगवत्स्तुतिः *

ईशानश्चापि देवाश्च वसवोऽष्टौ तथैव च । सर्वे ब्रह्माश्च रुद्राश्च मुनयो मनुवस्तथा ॥
त्वचिन्तिश्चाययुः सर्वे यथास्ते भगवान् प्रभुः ।

प्रणम्य दण्डवदुभूमौ तमुवाच विधिः स्वयम् ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच ।

परिपूर्णतम ब्रह्मस्यरूप नित्यविग्रह । ज्योतिःस्वरूप परम नमोऽस्तु प्रकृतेः पर ॥ १२ ॥
सुनिर्लिप्त निराकार साकार ध्यानहेतुना । स्वेच्छामय परं धाम परमात्मनमोऽस्तु ते
सर्वकार्यस्यरूपेश कारणानां च कारण । ब्रह्मेशोपदेवेश सर्वेश ते नमो नमः ॥ १४ ॥
सरस्वतीश पद्मेश पार्वतीश परात्पर । हे सावित्रीश राघेश रासेश्वर नमोऽस्तु ते ॥
सर्वेषामादिभूतस्त्वं सर्वः सर्वेश्वरस्तथा । सर्वपाता च संहर्ता सृष्टिरूप नमोऽस्तु ते ॥
त्वत्पादपद्मरजसा धन्या पूता वसुन्धरा । शून्यरूपा त्वयि गते हे नाथ परमं पदम्
यत् पञ्चविंशत्यधिकं वर्षाणां शतकं गतम् ।
त्वत्तमेमा स्वपदं यासि रुदन्ती चिरहातुराम् ॥ १८ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

ब्रह्मणा प्रार्थितस्त्वञ्च समागत्य वसुन्धराम् । भूमास्हरणं कृत्वा प्रयासि स्वपदं विः
त्रेलोक्ये पृथिवी धन्या सद्यः पूता पदाङ्किता ।
वयञ्च मुनयो धन्याः साक्षाद् दृष्ट्वा पदाम्बुजम् ॥ २० ॥
ध्यानासाध्यो दुराराध्यो मुनीनामूर्ध्वरैतसाम् ।
अस्माकमनघश्चेशः सोऽपुना चाक्षुषो भुवि ॥ २१ ॥

वासुः सर्वनिपासश्च विश्वानि यस्य लोमसु । देवस्तस्य महाविष्णोर्वासुदेवो महीत
सुचिरं तपसा लब्धं सिद्धेन्द्राणां सुदुर्लभम् । यत्पादपद्ममनुलं चाक्षुषं सर्वजीविना
अनन्त उवाच ।

त्वमनन्तो हि भगवान्नाहमेव कलाशकः । विश्वैकस्थे क्षुद्रकूर्मे मशकोऽहं गजे यथा
असंख्यरोपाः कूर्माश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः ।
असंख्यानानि च विश्वानि तेषामीशः स्वयं भवान् ॥ २५ ॥

अस्माकमीदृशं नाथ सुदिनं क भविष्यति । स्वप्नादृष्टश्च यश्चेशः स दृष्टःसर्वजीविनाम्
 नाथ प्रयासि गोलोकं पूतां कृत्वा वसुन्धराम् ।
 तामनाथां रुदन्तीञ्च निमग्नां शोकसागरे ॥ २७ ॥

देवा ऊचुः ।

दास्स्तोतुं न शक्ता यं ब्रह्मेशानादयस्तथा । तमेव स्तचनं किंवा धयं कुर्मो नमोऽस्तु ते
 त्वेधमुक्त्वा देवास्ते प्रययुर्द्वारकां पुरीम् । तत्रस्थं भगवन्तञ्च व्रष्टुं शीघ्रं मुवाचिताः ।
 ।थ तेषाञ्च गोपाला ययुर्गोलोकमुत्तमम् । पृथिवी कम्पिता भीता चलन्तःसप्तसागरा
 तथियं द्वारकाञ्च त्यक्त्वा च ब्रह्मशापतः । मूर्ति कदम्बमूलस्थां विवेश राधिकेश्वरः ।
 । सर्वे चैरकायुदे निपेतुर्यादवास्तथा । चित्तामारहा देव्यश्च प्रययुः स्थामिभिः सह ।
 नर्जुनःस्वपुरं गत्वा तमुवाच युधिष्ठिरम् । स राजा भ्रातृभि साधं ययौ स्वर्गञ्चभार्यय
 द्वा कदम्बमूलस्थं तिष्ठन्तं परमेश्वरम् । देवा ब्रह्मादयस्ते च प्रणेमुर्भक्तिपूर्वकम् ।
 गृध्रुः परमात्मानं देवं नारायणं प्रभुम् । श्यामं किशोरवयसं भूषितं रत्नभूषणैः ॥ ३५ ॥
 गङ्गिशुङ्गांशुकाधानं शोभितं धनमालया । अतीवसुन्दरं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ।
 त्र्याधास्त्रसंयुतं पादपद्मं पद्मादिधन्दिताम् । दृष्ट्वा ब्रह्मादिदेवांस्तानभयं सस्मितं ददौ ।
 पृथिवीं तां समाश्वास्य रुदन्तीं प्रेमविह्वलाम् । व्याघ्रं प्रस्थापयामास परस्वपदमुत्तमम्
 बलस्य तेजः शेषे च विवेश परमाद्भुतम् । प्रद्युम्नस्य च कामैके घानिरुद्धस्य ब्रह्मणि ।
 अयोनिःसम्भवा देवी महालक्ष्मीश्च रुक्मिणी । धैकुण्ठं प्रययौ साक्षात् स्वशरीरेणनारद
 सत्यभामा पृथिव्याञ्च विवेश कमलालया । स्वयं जाम्यवतीदेवी पार्वत्यां विश्वमाति
 या या देव्यश्च यासाञ्चाप्यंशरूपाश्च भूतले ।

तस्यां तस्यां प्रविचिशुस्ता एव च पृथक् पृथक् ॥ ४२ ॥

साम्बस्य तेजः स्कन्दे च विवेश परमाद्भुतम् । कश्यपे वसुदेवश्चाप्यदित्यां दैवकी तथा
 रुक्मिणी मन्दिरं त्यक्त्वा समस्तां द्वारकां पुरीम् । स जग्राह समुद्रश्च प्रफुल्लवदनेक्षण
 लवणोदः समागत्य तुष्टाव पुस्तपोत्तमम् । रुदोद तद्वियोगेन साधुनेत्रश्च विह्वलः ।
 गङ्गा सरस्वती पद्मावती च यमुना तथा । गोदावरी स्वर्णरेखा कावेरी नर्मदा मुने ॥

सप्तविंशधिकशततमोऽध्यायः] * श्रीकृष्णस्य गोलोकगमनम् *

११७

शरावती बाहुदा च कृतमाला च पुण्यदा । समाययुक्ष ताः सर्वाः प्रणेमुः परमेश्वरम् ॥
उघाच जाह्नवी देवी रुदन्ती परमेश्वरम् । साथुनेत्राकिदीना सा विरहञ्चरकातरा ॥४८॥
भागीरथयुवाच ।

हे नाथ रमणश्चष्ट यासिगोलोकमुत्तमम् । अस्माकं का गतिश्चात्र भविष्यति कलौयुगे
श्रीभगवानुवाच ।

कलेः पञ्चसहस्राणि चर्पाणि तिष्ठ भूतले ।

पापानि पापिनो यानि तुभ्यं दास्यन्ति स्नानतः ॥ ५० ॥

मन्मन्त्रोपासकरुपादस्मीभूतानितदक्षणात् । भविष्यन्तिदर्शनाच्च स्नानादेव हि जाह्नवि
हरेर्नामानि यत्रैव पुराणानि भवन्ति हि । तत्र गत्वा सावधानमाभिः सार्द्धञ्च श्रोष्यसि
पुराणश्रवणाच्चैव हरेर्नामानुकीर्तनात् । भस्मीभूतानि पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ॥
भस्मीभूतानि तान्येव वैष्णवालिङ्गनेन च । तृणानि शुष्ककाष्ठानि दहन्ति पावका यथा
तथापि वैष्णवा लोके पापानि पापिनामपि ।

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यपि च जाह्नवि ॥ ५५ ॥

मद्भक्तानां शरीरेषु सन्ति पूनेषु सन्ततम् । मद्भक्तपादरजसा सद्य पूता वसुन्धरा ॥५६॥
सद्य पूतानि तीर्थानि सद्य पूतं जगत्तथा । मन्मन्त्रोपासका विप्रा ये मनुच्छिष्टभोजिनः
मामेव नित्यं ध्यायन्ते ते मत्प्राणाधिकाः प्रियाः ।

तदुपस्पर्शमात्रेण पूतो वायुश्च पावकः ॥ ५८ ॥

कलेर्दशसहस्राणि मद्भक्ताः सन्ति भूतले । एकचर्णा भविष्यन्ति मद्भक्तेषु गतेषु च ॥
मद्भक्तशून्या पृथिवी कलिग्रस्ता भविष्यति । एतस्मिन्नन्तरे तत्र कृष्णदेहाद्विनिर्गतः ॥
चतुर्भुजश्च पुरुषः शतचन्द्रसमप्रभः । शङ्खचक्रगदापद्मधरः श्रीचत्सलाञ्छनः ॥ ६१ ॥
सुन्दरं रथमारुहा क्षीरोदं स जगाम ह । सिन्धुकन्या च प्रययौ स्वयं मूर्त्तिमती सती
श्रीकृष्णमानसा जाता मर्त्यलक्ष्मीर्मनोहरा । श्वेतद्वीपं गते विष्णो जगत्पालनकर्तारि
शुद्धसत्यस्वरूपे च द्विधारूपो बभूव ह । दक्षिणाङ्गश्च द्विभुजो गोपबालकरूपकः ॥ ६४ ॥
नवीनजलदश्यामः शोभितः पीतवाससा । धोवंशवदनः श्रीमान् सस्मितः पद्मलोचनः

तकोटीन्दुसौन्दर्यः शतकोटिस्मरप्रमाम् । ध्यानः परमानन्दः परिपूर्णतमः प्रभुः ॥ ६६ ॥

परं धाम परब्रह्मस्वरूपो निर्गुणः स्वयम् ।

परमात्मा च सर्वेषां भक्तानुग्रहविग्रहः ॥ ६७ ॥

नित्यदेही च भगवानोत्तरः प्रकृतेः परः ।

योगिनो यं विदन्त्येवं ज्योतीरूपं सनातनम् ॥ ६८ ॥

ज्योतिरनन्तरे नित्यरूपं भक्त्या विदन्ति यम् ।

वेदा यदन्ति सत्यं यं नित्यमाद्यं विचक्षणाः ॥ ६९ ॥

यं यदन्ति सुराः सर्वे परं स्वेच्छामयं प्रभुम् ।

सिद्धेन्द्रमुनयः सर्वे सर्वरूपं यदन्ति यम् ॥ ७० ॥

यमनिर्वचनीयञ्च योगीन्द्रः शङ्करो यदेत् । स्वयं विधाता प्रयदेत् कारणानाञ्च कारणम्

क्षोपो यदेदन्तं य नवधारूपमीश्वरम् । धर्माणामेव यण्णाञ्च यद्विधं रूपमीप्सितम्

वैष्णवधामात्मैकरूपं वेदानामैकमेव च । पुराणानामैकरूपं तस्मान्नवविधं स्तुतम् ॥ ७१ ॥

न्यायोऽनिर्वचनीयञ्च यं मतं शङ्करो यदेत् । नित्यं वैशेषिकाश्चायं तं यदन्तिविचक्षणाः

सांख्यो यदति तं देवं ज्योतीरूपं सनातनम् ।

ममांशः सर्वरूपञ्च वेदान्तः सर्वकारणम् ॥ ७२ ॥

पातञ्जलोऽप्यनन्तञ्च वेदाः सत्यस्वरूपकम् ।

स्वेच्छामयं पुराणञ्च भक्ताश्च नित्यविग्रहम् ॥ ७३ ॥

सोऽयं गोलोकनाथश्च राधेशो नन्दनन्दनः ।

गोकुले गोपवेशश्च पुण्ये वृन्दावने घने ॥ ७४ ॥

चतुर्भुजश्च चैकुण्ठे महालक्ष्मीपतिः स्वयम् ।

नारायणश्च भगवान् यन्नाम मुक्तिकारणम् ॥ ७५ ॥

सहस्रनारायणेत्युक्त्वा पुमान् कल्पशतत्रयम् । गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति नारद ॥

स्तुतन्दनन्दकुमुदैः पार्षदैः परिचारितः । शङ्खचक्रगदापद्मधरः श्रीवत्सलाञ्छनः ॥ ८० ॥

॥ कीस्तुभेन मणीन्द्रेण भूषितो वनमालया । वेदैः स्तुतश्च यानेन चैकुण्ठं स्वपदं ययी

संसर्गिशाधिकशततमोऽध्यायः] * श्रीकृष्णस्य गोलोकारोहणम् *

११७

गते वैकुण्ठनाथे च राधेशश्च स्वयं प्रभुः । चकार वंशीशब्दञ्च । त्रैलोक्यमोहनं परम्
मूर्च्छां प्रापुर्देवगणा मुनयश्चापि नारद । अचेतना बभूवुश्च मायया पार्वती विना
उवाच पार्वती देवी भगवन्तं सनातनम् । विष्णुमाया भगवती सर्वरूपा सनातनी
परब्रह्मस्वरूपा या परमात्मस्वरूपिणी । सगुणा निर्गुणा सा च परा स्वेच्छामयी सतं
पार्वत्युवाच ।

एकाहं राधिकारूपा गोलोके रासमण्डले । रासशून्यञ्च गोलोकं परिपूर्णं कुरु प्रभो ।
गच्छ त्वं रथमारुह्य मुक्तामाणिक्यभूषितम् । परिपूर्णतमाहञ्च तव वक्षःस्थलस्थिता ।
तवाङ्गया महालक्ष्मीरहं वैकुण्ठगामिनी । सरस्वती च तत्रैव वामे पार्श्वे हरेरपि ॥ ८८ ॥
तथाहं मानसा जाता सिन्धुकन्या तवाङ्गया ।

साधिव्री वेदमाताहं कलया विधिसन्निधौ ॥ ८९ ॥

तेजःसु सर्वदेवानां पुरा सत्ये तवाङ्गया । अधिष्ठानं कृतं तत्र धृतं देव्या शरीरकम् ॥
शुभ्रादयश्च दैत्याश्च निहताश्चावलोलया । दुर्गं निहत्य दुर्गाहं त्रिपुरा त्रिपुरे हते ॥ ९१ ॥
निहत्य रक्तगोजञ्च रक्तबीजविनाशिनी । तवाङ्गया दक्षकन्या सती सत्यस्वरूपिणी ॥
योगेन त्यक्त्वा देहञ्च शैलजाहं तवाङ्गया । त्वया दत्त्वा शङ्कराय गोलोके रासमण्डले
विष्णुभक्तिरता तेन विष्णुमाया च वैष्णवी ।

नारायणस्य मायाहं तेन नारायणी स्मृता ॥ ९४ ॥

कृष्णप्राणाधिकाहञ्च प्राणाधिष्ठातृदेवता ।

महाविष्णोश्च वासोश्च जननी राधिका स्वयम् ॥ ९५ ॥

तवाङ्गया पञ्चधाहं पञ्चप्रकृतिरूपिणी । कलाकलाशयाहञ्च वेदपत्न्यो गृहे गृहे ॥ ९६ ॥
शीघ्रं गच्छ महाभाग तत्राहं विद्यानुरा । गोपीभिः सहितावासं भ्रमन्ती परितः सदा
पार्वतीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य हसिकेश्वरः । रक्तवानं समाह्वययौ गोलोकमुत्तमम् ॥
पार्वती बोधयामास स्वयं देवगणं तथा । मायावंशीरवान्छत्रं विष्णुमाया सनातनी
कृत्वा ते हरिशब्दञ्च स्वगृहं विस्मयं ययुः । शिवेन सार्धं दुर्गा सा प्रहृष्टा स्वपुरं ययौ
अथ कृष्णं समायान्तं राधा गोपीगणैः सह । अनु व्रजं ययौ हृष्टा सर्वज्ञा प्राणवल्लभम् ॥

द्वि। समीपमायान्तमवरह्य रथात् सर्ती । प्रणनाम जगन्नाथं शिरसा सप्तीभिः सह ॥
तेषा गोप्यश्च मुदिताः प्रफुल्लवदनेक्षणाः । दुन्दुभि घादयासुरीश्वरागमनोत्सुकाः ॥
चिरजाञ्च समुत्तीर्य दृष्ट्वा राधां जगत्पतिः ।

अवरह्य रथात् तूष्णं गृहीत्वा राधिकाकम् ॥ १०४ ॥

शतशृङ्गे च यन्नाम सुरस्यं रासमण्डलम् । दृष्ट्वा क्षयवटं पुण्यं पुण्यं धृन्वाघनं धनम् ॥
तुलसीकाननं दृष्ट्वा प्रययौ मालतीवनम् । यामे कृत्वा कुन्दघनं माधवीकाननं तथा ॥
चकार दक्षिणे कृष्णश्चम्पकारण्यमीप्सितम् । चकार पश्चात्तूर्णञ्च चारुचन्दनकाननम्
ददर्श पुरतो रम्यं राधिकाभवनं परम् । उयास राधया सार्धं रत्नसिंहासने वरे ॥ १०८
सर्कपूरञ्च ताग्यूलं युमुजे पासितं जलम् । सुष्याप पुष्पतले च सुगन्धिचन्दनार्चिते ॥
स रेमे गमया सार्धं निमग्नो रससागरे । इत्येवं कथितं सर्वं धर्मघत्तत्राच यच्छ्रुतम्
गोलोकारोहणं रम्यं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १११ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

गोलोकारोहण नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

अष्टाविंश।धिकशततमोऽध्यायः

नारदाख्यानवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

सर्वं श्रुतं महाभाग नावशेषममीप्सितम् । किमपूरां पुराणञ्च ब्रह्मवैवर्तमिष्टम् ॥ १ ॥

अधुना किं करिष्यामि तन्मां ब्रूहि जगद्गुरो ।

आज्ञां कुरु तपस्याञ्च कर्तुं यामि हिमालयम् ॥ २ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

उपवर्हणगन्धर्वं पञ्चाशत्कामिनीपतिः । जन्मान्तरे भुवनासीदधुना ब्रह्मपुत्रकः ॥ ३ ॥

तास्वेका च सती रम्या तपसा शङ्करं परम् ।
 आराध्य च घरं लेभे वाञ्छितं नारदं पतिम् ॥ ४ ॥
 सा च सृञ्जयकन्या च स्वर्णवीञ्छासहोदरा ।
 तां विवाहं कुरुष्वेति शङ्कराज्ञा कथं वृथा ॥ ५ ॥
 सुन्दरीं सुन्दरोप्येव कोमलां कमलाकलाम् ।
 पतिव्रतां महाभागां रम्यां सुप्रियवादिनीम् ॥ ६ ॥
 कामुकीं कमनीयाञ्च शश्वत्सुस्थिरर्योचनम् ।
 विधात्रा लिखितं कर्म प्राक्तनं केन धार्यते ॥ ७ ॥
 नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।
 अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ८ ॥

सूत उवाच ।

नारायणपत्न्यः श्रुत्वा हृदयेन विदूयता । प्रणम्य प्रययौ शीघ्रं नारदः सृञ्जयालयम् ॥

शौनक उवाच ।

अहो सूत महाभाग धृतं किं परमाद्भुतम् । किमपूर्वं रहस्यञ्च सरसञ्च पुरातनम् ॥ १० ॥

अधुना श्रोतुमिच्छामि विवाहं नारदस्य च । अतीन्द्रियस्य च मुनेर्ब्रह्मपुत्रस्य साम्प्रतम्

सूत उवाच ।

नारदो मूढरूपश्च दृष्ट्वा सृञ्जयकन्यकाम् । तपस्विनीं महाभागां विष्णुव्रतपरायणाम्
 ययौ ब्रह्मसभां रम्यां सर्वदेवैः समावृताम् । प्रणम्य पितरं शान्तः सर्वं तत्त्वमुवाच तम्
 ब्रह्मा ब्रह्मण्यदनः श्रुत्वा पार्तां शुभावहाम् । तपस्विनञ्च पुत्रञ्च सम्भाष्य जगतां पतिः
 रत्ननिर्माणयानेन सार्धं देवैः शुभे क्षणे । पुत्रं कृत्वा च पुरतो ययौ सृञ्जयमन्दिरम् ॥
 तच्छ्रुत्वा सृञ्जयो राजा रत्नभूषणभूषिताम् । गृहीत्वा कन्यकां रम्यां नारदाय ददौ मुदा
 सर्वस्वं दक्षिणां दत्त्वा गणिमुकादिकं तथा । पुटायलिपुतो भूत्वा परिहारं चकार सः

कन्यां समर्प्य ब्रह्माणं राजा च योगिनां वरः ।

रतोद भृशमुन्येव पतसे पतस इतीरितम् ॥ १८ ॥

विचारणञ्च नास्त्यत्र फालाकालं शुभाशुभम् । पञ्चलक्षजपेनैव पुरश्चरणमस्य च ॥५१॥
 ध्यानञ्च सामवेदोक्तं तेन ध्यायेच्च वेष्णवः । ध्यानञ्च पापदहनं कर्ममूलनिवृत्तनम् ॥
 हृष्णं नवघनश्यामं किशोरं पीतवाससम् । शतकोटीन्दुसौन्दर्यं दधानमतुलं परम् ॥
 मूर्धितं भूपर्णौघैस्तैरमूढपरत्ननिर्मितैः । चन्दनोक्षितसर्पाङ्गं कौस्तुभेन विराजितम् ॥
 मयूरपिच्छचूडञ्च मालतीमाल्यमण्डितम् ।

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं नित्योपास्यं शिवादिभिः ॥ ५५ ॥

ज्यातासाध्यं दुराराध्यं निर्गुणं प्रकृतेः परम् । सर्वेषां परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ।

वेदानिर्वचनीयं तं वरं सर्वेश्वरं भजे ॥ ५६ ॥

ध्यानेनानेन तं ध्यात्वा भगवन्तं सनातनम् ।

भजन्तं परमानन्दं सत्यं नित्यं परात्परम् ॥ ५७ ॥

त्युक्त्वा स्वपदं शम्भुर्जगाम परमेश्वरः । तं प्रणम्य जगन्नाथं नारदस्तपसे ययौ ॥५८॥

नारदः श्रीहरिं स्मृत्वा योगात् त्यक्त्वा कलेवरम् ।

विलीनः पादपद्मे च पादपद्माविते हरिः ॥ ५९ ॥

इति श्रीब्रह्मवेवर्त महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे

नारदप्रकरणे नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

ऊनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

बहिसुवर्णयोरुत्पत्तिः ।

सौमिक उवाच ।

पृथ्वमुपाख्यानं श्रुतं परममदुतम् । सुगोप्यञ्च सुगोप्यञ्च रम्यं रम्यं नव नवम् ॥१॥

मनिर्वचनीयञ्च कमनीयं मनोहरम् । सुदुर्लभा कथा प्रोक्ता पुराणेषु पुरातनी ॥२॥

भूतञ्च सुदिनं कदास्माकं भविष्यति । तज्जन्म सफलं धन्यं यत्र वेष्णवसङ्गमः ॥

गर्भवासोच्छेदतश्च कर्ममूलनिकृन्तनम् । हृदिदास्यप्रदं शुद्धं भक्तानां भक्तिवर्धनम् ॥४॥

असाधुसङ्गदुर्वृद्धिपापोन्मूलनकारणम् । गणेशजन्मोपाख्यानं पुराणेषु सुदुर्लभम् ॥५॥

तुलसीराधिकाख्यानं किमपूर्वं श्रुतं परम् । नवं यद्यद्वोपनीयं व्यक्तमव्यक्तमीप्सितम् ॥

सर्वं श्रुतं महाभाग परिपूर्णं मनोरमम् ।

अधुना श्रोतुमिच्छामि बह्वेस्तत्पत्तिमीप्सिताम् ।

स्वर्णस्य च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ७ ॥

सूत उवाच ।

सामग्रीकरणं सृष्टेर्जलमेव हुताशनः । यथैव प्रकृतिर्नित्या महानेव तथैव च ॥ ८ ॥

यथा दिशो महाकाशो यथैव सृष्टिगोलकम् । प्रकृतेर्महतश्च स्याद्वदङ्गारस्तथैव च ॥९॥

यथैव शब्दस्तन्मात्रं तथैव च हुताशनः । तथापि तत्समुत्पत्तिं कथयामि निशामय ।

एकदा सृष्टिकाले च ब्रह्मानन्तमहेश्वराः । श्वेतद्वीपं ययुः सर्वे ब्रह्मं विष्णुं जगत्पतिम्

परस्परञ्च सम्भाषा कृत्वा सिंहासनेषु च । ऊचुः सर्वे सभामध्ये सुरस्ये पुरतो विभोः

विष्णुगात्रोद्भवास्तत्र कामिन्यः कमलाकलाः ।

तत्र नृत्यन्ति गायन्ति विष्णुगाथाश्च सुस्वरम् ॥ १३ ॥

तासाञ्च कठिना धोणिं कठिनं स्तनमण्डलम् ।

सस्मितमुखपद्मञ्च दृष्ट्वा ब्रह्मा सुकामुकः ॥ १४ ॥

मनोनिवारणं कर्तुं न शशाक पितामहः । धीर्य्यं पपात चच्छाद लज्जया पाससाविभुः

तद्वीर्यं घस्त्रसहितं प्रतप्तं कामतापतः । क्षीरोदे प्रेरयामास सङ्गीते विरते द्विज ॥ १६ ॥

जलादुत्थाय पुष्टयः प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा । उवास ब्रह्मणः कोटे लज्जितस्य च संसदि

पतस्मिन्नन्तरे रष्टो जलादुत्थाय सत्वरः । प्रणम्य घरुणो देवान् बालं नेतुं समुद्यतः ॥

बालो दधार ब्रह्माणं बाहूभ्याञ्च भयाद्बुद्धम् ।

किञ्चिन्नोवाच जगता-विधाता लज्जया द्विज ॥ १९ ॥

बालकस्य करे भूत्या चकाराकर्षणं कृत्वा । घरुणश्च सभामध्ये तं चिक्षेप प्रजापतिः ॥

पपात दूरतो देवो घरुणो दुर्बलस्ततः । मूर्च्छां सम्भाष मृतपत् कोपदृष्ट्या विधेहो ॥

वितनं कारयामास मृतदृष्ट्या च शङ्कृत । सम्प्राप्य चेतनं तत्र तमुवाच जलेश्वरः ॥२२॥
घरुण उवाच ।

बालो जले समुद्भूतो मम पुत्रोऽयमीप्सितः ।

अहं गृहीत्वा यास्यामि ब्रह्मा मां ताडयेत् कथम् ॥ २३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

लकः शरणापन्नो मयि विष्णो महेश्वर । कथं दास्यामि भीतञ्च रुदन्तं शरणागतम्
शरणागतदीनार्तं यो न रक्षेद्वपण्डितः । पश्यते निरये तावद् यावच्चन्द्रविधाकरी ॥२५॥
उभयोर्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मस्य मष्टसूदनः । उवाच तत्र सर्वज्ञः सर्वेशश्च यथोचितम् ॥२६॥

श्रीभगवानुवाच ।

दृष्ट्वा तु कामिनीधोणी घोर्यं धातुःपपात तत् । लज्जया प्रेरयामास क्षीरोदे निर्मलजले
ततो यभूय बालश्च धर्मतो विधिपुत्रकः । क्षेत्रजश्च सुतः शास्त्रे घरुणस्यापि गौणतः
श्रीमहादेव उवाच ।

योऽविद्या योनिसम्बन्धो वेदेषु च निरूपितः ।

शिष्ये पुत्रे च समता चेति वेदविदो विदुः ॥ २६ ॥

मन्त्रं ददातु घरुणो विद्याञ्च बालकाय च । पुत्रो विधानुर्वह्निश्च शिष्यश्च घरुणस्य च
विष्णुर्ददातु बालाय दाहिकां शक्तिमुज्ज्वलाम् ।

सर्वदग्धो हुताशश्च निर्वाणो घरुणेन च ॥ ३१ ॥

विष्णुश्च दाहिकां शक्तिं ददौ तस्मै शिवाख्या ।

मन्त्रविद्याञ्च घरुणो रत्नमालां मनोहराम् ॥ ३२ ॥

क्रोडे कृत्वा च तं बालं चुचुस्व मायया सुरः । ब्रह्मणे च ददौ साक्षाद्विष्णुशङ्करयोरपि
प्रणम्य विष्णुं ब्रह्मा च ययौ शम्भुः स्वयमन्दिरम् ।

अग्न्युत्पत्तिश्च कथिता स्वर्णोत्पत्तिं निशामय ॥ ३४ ॥

एकदा सर्वदेवाश्च समूधुः स्वर्गसंसदि । तत्र कृत्वा च नित्यञ्च गायन्त्यप्सरसां गणाः
पिलोक्य रम्भां सुधोणीं सकामो घह्निरेव च ।

त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः] * अस्यपुराणस्य विषयानुक्रमणिकावर्णनम् * ११८

पपात धीर्यं चच्छाद लज्जया वाससा तथा ॥ ३६ ॥

उत्तस्थौ स्वर्णपुञ्जश्च वस्त्रं क्षिप्त्वा ज्वलत्प्रभम् । क्षणेन वर्धयामास स सुमेरुर्वभूव
हिरण्यरेतसं घृहिं प्रचदन्ति मनीषिणः । इति ते कथितं सर्वं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
बह्विष्यर्णोत्पत्तिर्नामोत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ।

त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

अस्य पुराणस्य विषयानुक्रमणिकावर्णनम् ।

शौनक उवाच ।

श्रुतं त्वं नाद्यशेषं धर्मेश ब्राह्मणञ्च माम् । कथयस्व महाभाग पुराणं पुनरेव हि ॥ १ ॥
एवंविधं पुराणञ्च जन्मनैव न हि श्रुतम् । न दृष्टं न श्रुतं तावत्सादृशं पाचकं तथा ॥
सूत उवाच ।

श्रूयतां भो महाभाग सावधानञ्च संयतम् । अध्ययश्रवणेनैव पुराणफलमालभेत् ॥ ३ ॥
ब्रह्मखण्डे च कथितं परं ब्रह्मनिरूपणम् । तदनिर्वचनीयञ्च येषामपि यथागमम् ॥ ४ ॥

साकारञ्च निराकारं सगुणं निर्गुणं पृथक् ।

येषामपि यथा शक्तिस्तथैव ध्यानमेव च ॥ ५ ॥

गोलोकादर्घर्षणञ्च क्रमेण च पृथक् पृथक् ।

यत्रोपयुक्तोपाख्यानं यद्यत् प्रासङ्गिकं विभो ॥ ६ ॥

जातीनां निर्णयश्चैव सङ्पुराणं तथैव च । यद्यद्विशिष्टोपाख्यानं तत्तत् प्रभानुरोधतः ॥
राधामाधवयोः क्रीडा महाविष्णोः समुद्भवः । निरूपणञ्च विश्वेयां समासेन द्विजोत्तम
ब्रह्मनारदयोश्चैव संवादः परमार्थतः । विवेको नारदस्यैव मुनीन्द्रस्य तथैव च ॥ ६ ॥
आश्रया ब्रह्मणश्चैव नरनारायणाश्रमः । गमनं नारदस्यैव तेन सार्थञ्च दर्शनम् ॥ १० ॥

।योः सम्भाषणञ्च नारदाय निवेदनम् । तत्र देवब्रह्मखण्डक्रमेणोक्तं द्विजोत्तम ॥ ११ ॥
 श्रूयतां प्रकृतेः खण्डं सुधाखण्डसमं मुने । प्रकृतेर्लक्षणं प्रोक्तं प्रकृतीनाञ्च वर्णनम् ॥

उपाख्यानञ्च तासाञ्च वर्णनं पूजनादिकम् ।

लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिका तथा ॥ १३ ॥

यतासांचरितञ्चैवमन्यासाञ्च पृथक्पृथक् । उपाख्यानं महालक्ष्म्याः सरस्वत्यास्तथैव च
 अपूर्वं राधिकाख्यानं सावित्र्याश्च तथैव च । संचादोयमसावित्र्योः सत्यवज्जीवदानकम्
 कुण्डानां वर्णनं प्रोक्तं तेषाञ्च लक्षणं तथा । जीविकर्मविपाकश्च भोगनिर्णय एव च
 अपूर्वं राधिकाख्यानं पुराणेषु सुगोप्यकम् । सुयज्ञस्य नृपेन्द्रस्य चरितं परमाद्भुतम् ॥

प्रोक्तं तुलस्युपाख्यानं परमाद्भुतमेव च । महायुद्धञ्च संचादे महेशशङ्खचूडयोः ॥ १८ ॥
 तुलसीकृष्णसंचादस्तयोः सम्भोग एव च । निधनं शङ्खचूडस्य श्रीदाम्नः शापमोक्षणम्

पदप्राप्तिः सुराणाञ्च विपदां खण्डनं तथा ।

जीविनां मोक्षबीजञ्च गङ्गोपाख्यानमीप्सितम् ॥ २० ॥

तथैव मनसाख्यानं परं हर्षविधर्धनम् । स्वाहास्यधाख्यानमेवमन्यासाञ्च निरूपणम् ॥

यद्यत् प्रासङ्गिकाख्यानं यत्तुः प्रश्नानुरोधतः ।

प्रोक्तं तत् प्रकृतेः खण्डं खण्डं गणयतेः शृणु ॥ २२ ॥

अतीवमधुरं रम्यं स्वादु स्वादु पदे पदे । सुगोप्यं तत् पुराणेषु रम्यं रम्यं त्वं नयम् ॥

सुदुर्लभमुपाख्यानं श्रोतृप्रोक्तिकरं परम् । प्रोक्ता क्रीडा च परमा पार्वतीपरमेशयोः ॥

स्कन्दोत्पत्तिः प्रथमतः क्रीडामङ्गलस्नयोस्तथा ।

पार्वतीतोषणञ्चैवमभिमानविमोक्षणम् ॥ २५ ॥

पुण्यकञ्च प्रतं विष्णोर्देव्याश्चरितमुत्तमम् । धरदानं हरेरेव सुप्रतां पार्वतीं प्रति ॥ २६ ॥

हरेश्च दर्शनञ्चैव ब्राह्मणातिथिरूपिणः । आविर्भावो गणेशस्य कृपया शिवमन्दिरे ॥

दर्शनं पुत्रपञ्चस्य पार्वतीपरमेशयोः । परमानन्दरूपञ्च शिवगेहे महोत्सवम् ॥ २८ ॥

। देवाद्या ददृशुः सर्वे बालं नित्यमजं विभुम् । सत्यस्वरूपं परमं परब्रह्मस्वरूपिणम् ॥

सर्वपिप्रहरं शान्तं दातारं सर्वसम्पदाम् ।

तपसां जपयज्ञानां ध्यानां फलदं विभुम् ॥ ३० ॥

अतीवकमनीयञ्च रमणीयञ्च योषिताम् । प्राण्याधिकं प्रियतमं पार्वतीपरमेशयोः ॥ ३१ ॥

परमात्मस्वरूपञ्च भगवन्तं सनातनम् । सर्वेशं सर्वबीजञ्च साक्षान्नारायणात्मकम् ॥

यद्दर्शनाञ्च स्तवनात् प्रणामात् पूजनात्तथा ।

ध्यानासाध्यं दुरासाध्यं जन्मकोट्यघनाशनम् ॥ ३३ ॥

कातिकौद्धरणं प्रोक्तं तस्याभिपेक्ष एव च । गणेशपूजनञ्चैव सर्वविघ्नघिनाशनम् ॥

जमदग्नेश्च युद्धञ्च कार्तवीर्यार्जुनेन च । सुरमिहरणञ्चैव निधनञ्च मुनेस्तथा ॥ ३५ ॥

पतिवतारैणुकायाश्चितारोहणमेव च ।

प्रतिघातं भृगोश्चैव दारुणञ्च सुदारुणम् ॥ ३६ ॥

निक्षत्रीकरणञ्चैवमेकविंशतिकं द्विज । संघातो ज्ञानलाभश्च गणेशपशुं रामयोः ॥ ३७ ॥

तयोर्युद्धं दारुणञ्च हिरण्यं दन्तमञ्जनम् । दुर्गायाश्च विलापश्चाभिशापो भार्गवं प्रति ॥

स्मरणे पशुरामस्याप्याविर्भाषो हरेरपि । पार्वतीं बोधयामास स्वयं नारायणः प्रभुः ॥

वर्णनं शिवलोकस्य परमाध्यर्षमीप्सितम् ।

प्रदत्तं पशुरामाय महास्त्रं शङ्करेण च ॥ ४० ॥

मन्त्रञ्च फणचञ्चैव कृष्णस्य परमात्मनः । परदानञ्चाभयञ्च प्रज्ञाता सर्वसम्पदाम् ॥

त्रिःसतकृत्यो भूपानां निधनञ्च चकार सः । यभूय भृगुणा विप्र भुयश्च भारहृणाम् ॥

प्रश्नानुरोधक्रमतः पूर्वोपाख्यानमेव च ।

प्रोक्तं गणपतेः घण्टं समासेन द्विजोत्तम ॥ ४३ ॥

ध्रीकृष्णजन्मपाण्डञ्च ध्रुयतां साधधानतः ।

जन्ममृत्युजराव्याधिहरं मोक्षकरं परम् ॥ ४४ ॥

हरिदास्यप्रदं शुद्धं सुश्रवञ्च सुषोषमम् । अत्यपूर्वमुपाख्यानं रम्यं रम्यं नयनप्रम् ॥ ४५ ॥

न ध्रुतं जन्मना यद्यत् स्वादु स्वादु पदे पदे । प्रदीपं सर्वसत्त्वानां भवाधिहारणं परम् ॥

कर्मापभोगरोगाणां मर्दनञ्च रसायनम् । ध्रीकृष्णचरणाम्मोजप्राप्तिसोपायकारणम् ॥

ध्रीदामराधाकलहवर्णनं दारुणं द्विज । तयोः शापप्रकथनं ततस्तेषां विसर्जनम् ॥ ४८ ॥

ह्यणा प्रार्थितस्यैव हरेर्जन्म महीतले । प्रोक्तञ्च जन्मखण्डञ्च परमाद्भुतमेव च ॥४६॥
 त्रिविर्भावो हरेरेव वसुदेवस्य मन्दिरे । कंसासुरभयेनैव गोकुले गमनं हरेः ॥ ५० ॥
 प्रभानुसुता राधा श्रीदाम्नः शापहेतुमा । बालकीडावर्णनञ्च गोकुले परमात्मनः ॥५१॥
 त्यादिनिधनञ्चैव कीर्तितं हरिणा तथा । गर्गस्यागमनं प्रोक्तं शुभान्नप्राशनं हरेः ॥
 नेधनं पूतनायाश्च सद्यः शकटभञ्जनम् । श्रीकृष्णवन्द्यमोक्षश्च यमलार्जुनभञ्जनम् ॥५३॥
 त्र्योक्त्वदर्शनं वक्त्रे गोवत्साहरणं तथा । कृत्वा गोवत्सनिर्माणं ब्रह्मणाः स्तन्यनं हरेः

सहसा गोकुलं त्यक्त्वा पुण्यं वृन्दावनं वनम् ।

भयाञ्जगाम नन्दञ्च सार्धञ्च नन्दनेन च ॥ ५५ ॥

वृन्दावनस्य निर्माणं प्रोक्तञ्च परमाद्भुतम् ।

सार्धञ्च बालकैः सार्धं तत्र संकीर्णनं हरेः ॥ ५६ ॥

उदन्नं ब्राह्मणीनाञ्च भोजनं कथितं हरेः । वरदानञ्च तासाञ्च प्राक्तनेन निरूपणम् ॥
 कृतानां वर्णनञ्चैव वस्त्रापहरणं तथा । वरदानञ्च गोपीनां कृष्णेनैव कृतं द्विज ॥५८॥

कात्यायनीप्रतं प्रोक्तं श्रीदुर्गापूजनं तथा ।

पार्वत्या च धरो दत्तो गोपीभ्यो यमुनातटे ॥ ५९ ॥

तालानां भक्षणं प्रोक्तं शक्यागधिमर्दनम् ।

राधया सह कृष्णस्य विरहो मैलनं तथा ॥ ६० ॥

गोपीक्रीडा च संप्रोक्ता कृष्णक्रोडे च राधिका ।

छाया रायाणगेहे च संप्रोक्ता मायया हरेः ॥ ६१ ॥

शृङ्गारं वीरशविधं कृत्वा तं रासमण्डले । अन्तर्धानं हरेरेव राधया सह कानने ॥६२॥
 मलयामनञ्चैव तथा सार्धं द्विजोत्तम । राधामाधवयोश्चैव संवादस्तत्र निर्जने ॥६३॥
 कैवल्यमपि गोपीनां प्रोक्तं नानाविधं मुने । पुनरागमनञ्चैव पुण्यं वृन्दावनं वनम् ॥
 श्रीकृष्णदर्शनञ्चैव गोपीनां हर्षवर्धनम् । नानाप्रकारक्रीडा च प्रोक्ता तस्य जले स्थले
 गोपीनामपि सौभाग्यं राधायाश्च विशेषतः ।

प्रोक्तं व्यासेन सौन्दर्यं रम्यं रम्यं नयं नवम् ॥ ६६ ॥

नभःस्थितानां देवानां दर्शनं प्रोक्तमेव च । मनसः स्पृगलनञ्चैव देवीनां रासमण्डलं
अंशेन लेभिरे जन्म देवश्चोक्तमिदं द्विज । अक्रूरागमनञ्चैव गोपीनाञ्च विलापनम्

प्रोक्तं सर्वं क्रमेणैव चाक्रूरभर्त्सनं तथा ।

मथुरागमनं विष्णोः शोको गोकुलवासिनाम् ॥ ६६ ॥

राधिकाधिरहोद्यालजालं प्रोक्तं यथोचितम् ।

स्वभूतिदर्शनञ्चैवमक्रूरं यमुनातटे ॥ ७० ॥

मथुरावेशनं प्रोक्तं निधनं रजकस्य च । कुञ्जया सह सम्भोगस्तस्य मोक्षणमेव च
प्रसादनं कुविन्दस्य मालाकारस्य मोक्षणम् । धनुषो भञ्जनं शम्भोर्हस्तिनो निधनं त-

सभाप्रवेशनं प्रोक्तं नानारूपप्रदर्शनम् । कंसस्य निधनं प्रोक्तं तदुबधूनां विलापनम्
सत्कारस्तस्य विधिषट्शतत्वं तत्पितृस्तथा । विलापनञ्च नन्दस्य स्तवने परमाद्भुत-

प्रोक्तस्तयोश्च संवादो निर्जने तातपुत्रयोः । परमाध्यात्मिकं ज्ञानं नन्दाय च द्वौ धिः
मुनीनां गमने चैवं धन्योपाख्यानमेव च । कथितञ्च कुमारेण प्रोक्तमेव सुदुर्लभम्

उद्धवागमनं प्रोक्तं राधास्थानञ्च निर्जनम् ।

ज्ञानं तयोश्च संवादे प्रोक्तमेव शुभावहम् ॥ ७७ ॥

यज्ञोपवीतं कृष्णस्य विद्यादानं गुरोर्गृहे । मृतपुत्रप्रदानञ्च प्रोक्तं तद्गुरवे पुरा ॥ ७८
जरासन्धस्य दमनं निधनं यवनस्य च । द्वारकायाश्च निर्माणं विश्वकारोद्यमं तथा

द्वारकावेशनं प्रोक्तमुग्रसेनविलापनम् । रुक्मिणीहरणञ्चैव नृपाणां दमनं तथा ॥ ८०
सर्वासं कामिनीनाञ्च प्रोक्तमुद्बहनं-तथा । मायावतीमोक्षणञ्च निधनं शंवरस्य च

धर्मपुत्रराजसूये शिशुपालस्य मोक्षणम् । दन्तवक्रस्य च मुने शात्वस्य निधनं तथा
मणेश्च हरणञ्चैव पारिजातस्य स्वर्गतः । कुरुपाण्डवयुद्धे च भुवश्च भारमोक्षणम्

उपाया हरणं-प्रोक्तं वाणस्य भुजकृन्तनम् । चलेश्च स्तवने प्रोक्तमनिरुद्धस्य विक्रमः ।
राधायशोदासंवादः प्रोक्तः परमदुर्लभः । मोक्षणञ्च शृगालस्य प्रोक्तञ्च परमाद्भुतम् ।

तीर्थयात्राप्रसङ्गेन गणेशपूजनं तथा । दर्शनं राधिकासार्धं कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ८६ ॥
राधाया दर्शनं देव्या राधातेजःप्रकाशनम् । राधाया रमणं तीर्थं भ्रमणं रहसि स्मृतम्

नेधनं यदुवंशानां ब्रह्मशापेन शौनक । मोक्षणं पाण्डवानाञ्च स्वपदे गमनं हरेः ॥
 वेधाहो नारदस्यैषोत्पत्तिर्वहिसुवर्णयोः । प्रोक्तं सर्वं महामाग पुनरेव समासतः ॥
 ततः खण्डैः पुराणञ्च ब्रह्मवैवर्तमेव च । अतः परं मुनिश्रेष्ठ किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥
 इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
 चानुक्रमणिकं नाम त्रिंशधिकशततमोऽध्यायः ।

एकत्रिंशधिकशततमोऽध्यायः

पुराणपठनश्रवणादिमाहात्म्यम् ।

शौनक उवाच ।

मद्य मे सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम् ।
 यत् फलं ब्रह्मवैवर्ते निर्विघ्नं मोक्षकारणम् ॥ १ ॥
 भभयं देहि हे घत्स हे तात महामेव च ।
 तदा निवेदनं किञ्चिदस्तीति च करोम्यहम् ॥ २ ॥

सूत उवाच ।

त्यज भीतिं महामाग प्रश्नं कुरु यदिच्छसि ।
 सर्वं ते कथयिष्यामि यद्यद्गोप्यं मनोहरम् ॥ ३ ॥

शौनक उवाच ।

अधुना श्रोतुमिच्छामि पुराणानाञ्च लक्षणम् ।
 संख्यानमपि तेषाञ्च फलमस्यैव पुत्रक ॥ ४ ॥

सूत उवाच ।

यिस्तराणि पुराणानि चेतिहासांश्च शौनक ।
 सहितां पञ्चरात्राणि कथयामि यथागतम् ॥ ५ ॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं विप्र पुराणं पञ्चलक्षणम्
पतदुपपुराणानां लक्षणञ्च विदुर्बुधाः । महताञ्च पुराणानां लक्षणं कथयामि ते ॥ ७

सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्चेत् स्थितिस्तेषाञ्च पालनम् ।

कर्मणां वासनाचार्या चामृताञ्च क्रमेण च ॥ ८ ॥

वर्णनं प्रलयानाञ्च मोक्षस्य च निरूपणम् ।

उत्कीर्तनं हरेरेव देवानाञ्च पृथक् पृथक् ॥ ९ ॥

दशाधिकं लक्षणञ्च महतां परिकीर्तितम् ।

संख्यानञ्च पुराणानां नियोध कथयामि ते ॥ १० ॥

परं ब्रह्म पुराणञ्च सहस्राणां दशैव तु । पञ्चोनपष्टिसाहस्रं पाञ्चमेव प्रकीर्तितम् ॥ ११

त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवञ्च विदुर्बुधाः । चतुर्विंशतिसाहस्रं शैवञ्चैव निरूपितम् ।

अथाष्टादशसाहस्रं श्रीमद्भागवतं विदुः । पञ्चविंशतिसाहस्रं नारदीयं प्रकीर्तितम् ॥ १२

मार्कण्डेयं नवसाहस्रं पुराणं पण्डिता विदुः । चतुःशताधिकं पञ्चदशसाहस्रमेव च ।

परमस्त्रिपुराणञ्च रुचिरं परिकीर्तितम् । चतुर्विंशसहस्रञ्च परं पञ्चशताधिकम् ॥ १५ ।

पुराणप्रचरञ्चैव भविष्यं परिकीर्तितम् । अष्टादशसहस्रञ्च ब्रह्मवैवर्तमीदृशितम् ॥ १६ ।

सर्वेषाञ्च पुराणानां सारमेव विदुर्बुधाः ।

एकादशसहस्रं तु परं लिङ्गं पुराणकम् ॥ १७ ॥

चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं परिकीर्तितम् । एकादश(शोति)सहस्रञ्च परमेव शताधिकम् ॥

परं स्कन्दपुराणञ्च सद्भिरेव निरूपितम् । वामनं दशसाहस्रं फौर्मं सप्तदशैव तु ॥ १९ ॥

मात्स्यं चतुर्विंश प्रोक्तं पुराणं पण्डितैस्तथा । ऊनविंशतिसाहस्रं गारुडं परिकीर्तितम्

परं द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम् । एवं पुराणसंख्यानं चतुर्लक्षमुदाहृतम् ॥ २१

अष्टादशपुराणानामेवमेव विदुर्बुधाः । एवञ्चोपपुराणानामष्टादश प्रकीर्तिताः ॥ २२ ॥

इतिहासो भारतश्च वाल्मीकिं काव्यमेव च । पञ्चकं पञ्चरात्राणां कृष्णमाहात्म्यपूर्वकम्

पाशिष्ठं नारदीयञ्च कपिलं गौतमीयकम् । परं सनत्कुमारीयं पञ्चरात्रञ्च पञ्चकम् ॥ २४

पञ्चकं संहितानाञ्च कृष्णभक्तिसमन्वितम् । ब्रह्मणश्च शिवस्यापि ब्रह्मादस्य तपैव च ॥

तमस्य कुमारस्य संहिताः परिकीर्तिताः । इति ते कथितं सर्वं क्रमेण च पृथक्पृथक्
त्येवं विपुलं शास्त्रं ममापि च यथागमम् । उवाचेदं पुराणञ्च गोलोके रासमण्डले

श्रीविष्णुर्भगवान् साक्षाद् ब्रह्माणञ्च स्वभक्तकम् ।

ब्रह्मा धर्मञ्च धर्मिष्ठं धर्मोन्नारायणं मुनिम् ॥ २८ ॥

नारायणो नारदञ्च नारदो मां च भक्तकम् ।

महं त्वाञ्च मुनिध्रेष्ठं परित्ठं कथयामि तत् ॥ २९ ॥

सुदुर्लभं पुराणञ्च ब्रह्मवैवर्तमीप्सितम् ।

यद्ब्रह्मणोऽप्येव विष्णोर्ध्वं जीविनां परमात्मकम् ॥ ३० ॥

तद्ब्रह्म साक्षिरूपञ्च कर्मणामेष कर्मिणाम् ।

तद्ब्रह्म विवृतं यत्र तद्भिभूतिमनुत्तमम् ॥ ३१ ॥

नेदं ब्रह्मवैवर्तमित्येवञ्च विदुर्वुधाः । पुण्यप्रदं पुराणञ्च मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ॥ ३२ ॥

उगोप्यञ्च रहस्यञ्च यत्र रम्यं त्वं नयम् । हरिभक्तिप्रदञ्चैव दुर्लभं हरिदास्यदम् ॥ ३३ ॥

सुखदं ब्रह्मदं सारं शोकसन्तापनाशनम् । सरिताञ्च यथा गङ्गा सद्योमुक्तिप्रदा शुभा

धीर्धानां पुष्करं शुद्धं यथा काशी पुरीषु च । सर्वेषु भारतं वषं सद्योमुक्तिप्रदं शुभम

तथा सुमेधः शैलेषु पारिजातञ्च पुष्पतः । पत्रेषु तुलसीपत्रं व्रतेष्वेकादशीप्रदम्

तैश्चैषु कल्पवृक्षञ्च श्रीकृष्णञ्च सुरेषु च । ब्रह्मनिन्द्रेषु महादेवो योगीन्द्रेषु गणेश्वर

सेवेन्द्रेष्वेककपिलो सूर्यस्तेजस्विनां यथा । सनत्कुमारो भगवान् वैष्णवेषु यथाप्र

णः भूषेषु च यथा रामो लक्ष्मणश्च धनुष्मताम् ।

पाना देवाषु च यथा दुर्गा महापुण्यवती सती ॥ ३६ ॥

प्राणाधिका यथा राधा कृष्णस्य प्रेयसीषु च ।

पारि ईश्वरीषु यथा लक्ष्मीः पण्डितेषु सरस्वती ॥ ४० ॥

तां यथा सर्वपुराणेषु ब्रह्मवैवर्तमेव च । नातो विशिष्टं सुखदं मधुरञ्च सुपुण्यदम् ।

तन्देहभञ्जनञ्चैव पुराणं परिकीर्तितम् । इहलोके च सुखदं सुप्रदं सर्वसम्पदाम् ।

सुमदं पुण्यदञ्चैव चिन्तनभक्तकरं परम् । हरिदास्यप्रदञ्चैव परलोके प्रहर्षदम् ॥

यज्ञानामपि तीर्थानां व्रतानां तपसां तथा ।

भुयः प्रदक्षिणस्यापि फलं नास्य समानकम् ॥ ४४ ॥

पुर्णामपि वेदानां पाठादपि घरं फलम् । शृणोतीदं पुराणञ्च संयतश्चेह पुत्रक ॥ ४५ ॥

गुणचन्तञ्च चित्तासं चैष्णवं पुत्रमालभेत् ।

शृणोति कुर्भगा चेत्तु सौभाग्यं स्वामिनो लभेत् ॥ ४६ ॥

मृतयदसा काकयन्ध्या महायन्ध्या च पापिनी ।

पुराणश्रवणाल्लभे पुत्रञ्च चिरजीविनम् ॥ ४७ ॥

पुत्रो लभते पुत्रमभार्यो लभते प्रियाम् । असृष्टर्फीर्त्तिः सुयशा मूर्खो भयति पण्डित

रोगातो मुच्यते रोगाद् यदो मुच्यते यन्धनात् ।

भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः ॥ ४८ ॥

भरण्ये प्रान्तरे भीतो दायाक्षी मुच्यते ध्रुवम् ।

अर्घं कुष्टञ्च दारिद्र्यं रोगं शोकञ्च दारुणम् ॥ ४९ ॥

पुण्यघान् श्रवणादेव नैव जानात्यपुण्यघान् ।

श्लोकार्घं श्लोकपार्घं वा यः शृणोति सुसंयुतः ॥ ५० ॥

गोलक्षदानपुण्यञ्च लभते नात्र संशयः ।

चतुराष्टं पुराणञ्च शुद्धकाले जितेन्द्रियः ॥ ५१ ॥

संकल्पितो यः शृणोति भक्त्या दत्त्वा च दक्षिणाम्

यद्दु पाल्यं यच्च क्रीमारे पार्पके यच्च योषणे ॥ ५२ ॥

कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।

रत्ननिर्माणयानेन भुत्वा श्रीरुष्णरूपकम् ॥ ५३ ॥

नित्यं गत्वा च गोलोकं रुष्णदास्यं लभेद्भुषम् ।

असंख्यप्राद्वजः पाति न भयैतस्य पाठनम् ॥ ५४ ॥

समीपे पार्षदो भूत्वा सेषाञ्च पुरते चिरम् ।

भुत्वा च प्रह्लाण्डञ्च सुध्यातः संयतः शुचिः ॥ ५५ ॥

धा पायसं पिष्टकञ्चैव फलं ताम्बूलमेव च ।
 धा भोजयित्वा धाचकञ्च तस्मै दद्यात् सुवर्णकम् ॥ ५७ ॥
 तु । त्वनं शुक्लमाल्यञ्च सूक्ष्मवस्त्रं मनोहरम् । निवेद्य धासुदेवञ्च धावकाय प्रदीयते ॥
 धृत्या च प्रकृतेः खण्डं सुश्रवञ्च सुधोषमम् ।
 भोजयित्वा च दध्यन्नं तस्मै दद्याच्च काञ्चनम् ॥ ५६ ॥
 नवतसा सुरभी रम्या दद्याद्भे भक्तिपूर्वकम् । धृत्या गणपतेः खण्डं विघ्ननाशाय संयतः
 स्वर्णयक्षोपवीतञ्च श्वेताश्वच्छत्रमाह्वयकम् ।
 प्रदीपते वाचकाय स्वस्तिकं तिललङ्घुकम् ॥ ६१ ॥
 शिपिकफलान्येव कालदेशोद्भवानि च । श्रीकृष्णजन्मखण्डञ्च धृत्या भक्तश्च भक्तिः ॥
 वाचकाय प्रदद्याच्च परं रत्नाङ्गुलीयकम् ।
 सूक्ष्मवस्त्रञ्च माल्यञ्च स्वर्णकुण्डलमुत्तमम् ॥ ६३ ॥
 माल्यञ्च वस्त्रोलाञ्च सुपक्वं क्षीरमेव च । सर्वस्वं दक्षिणां दद्यात् स्तवनं कुरते ध्रुवम्
 शतकं ब्राह्मणानाञ्च भोजयेत्परमावरम् ।
 ब्राह्मणं वैष्णवं शास्त्रनिष्णातं पण्डितं धरम् ॥ ६५ ॥
 कुर्वते वाचकं शुद्धमन्यथा निष्फलं भवेत् ।
 श्रीकृष्णविमुखान् दुष्टान्नोपदेष्टा च ब्राह्मणः ॥ ६६ ॥
 श्रीकृष्णभक्तियुक्तञ्च पुराणं यः शृणोति च ।
 भक्तिं पुण्यञ्च लभते हन्ति पापं पुराकृतम् ॥ ६७ ॥
 पतते कथितं सर्वं यच्छ्रुतं मुखवक्त्रतः ।
 विदार्य देहि विरेन्द्र यामि नारायणाश्रमम् ॥ ६८ ॥
 दृष्ट्वा विप्रसमूहञ्च नमस्कृतुं समागत । कथितं ब्रह्मवैवर्तं भयतामालया परम् ॥ ६९ ॥
 नमोऽस्तु ब्राह्मणेभ्यश्च कृष्णाय परमात्मने । शिवाय ब्रह्मणे नित्यं गणेशाय नमो नमः
 कायेन मनसा वाचा परं भक्त्या दिवानिशम् ।
 भज सत्यं परं ब्रह्म राधेश त्रिगुणात्परम् ॥ ७१ ॥

एकत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः] * पुराणपठनश्रवणादिमाहात्म्यम् * ११

नमोऽदेव्यै सरस्वत्यै पुराणगुरवे नमः । सर्वचिञ्जविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नम
युष्माकं पादपद्मानि दृष्ट्वा पुण्यानि शौनक ।

अद्य सिद्धाश्रमं यामि यत्र देवो गणेश्वरः ॥ ७३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे श्रीकृष्णजन्मखण्डे
सूतशौनकसंवादे पुराणपठनश्रवणमाहात्म्यं नामैकत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

॥ ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

आब्रह्मववतमहापुराणस्थ श्रीकृष्णजन्मखण्डस्य शुद्धिपत्रम्

पृष्ठाङ्काः	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
५२८	१०	विजहार	विजहार
५४१	१०	द्वाञ्छितञ्च	द्वाञ्छितञ्च
५४६	२३	द्वयस्य	द्वयस्या
५४७	१६	सद्रत्न	सद्रत्न
५५०	२०	पारिजाता	पारिजात
"	२४	चञ्चनां	चञ्चनां
५५१	६	परमाक्षयं	परमाक्षयं
५५२	२१	सर्वबाज	सर्वधीज
५५३	१३	ध्यानानुरूपञ्च	ध्यानानुरूपञ्च
"	२०	रसात्सुकम्	रसोत्सुकम्
५५६	११	स्यलु	खलु
"	२१	कीर्त्तिः	कीर्त्तिः
"	२२	यभूय	यभूयु
५५७	३	वे	ते
५५८	६	हन्तव्यपस्थिते	हन्तव्यपस्थिते
५६०	८	श्वेचामर	श्वेतचामर
"	१७	रत्नलङ्कार	रत्नालङ्कार
५६१	३	चञ्च	चञ्चु
५६५	८	अणुक्षणं	अनुक्षणं

[२]

१६	२३	शङ्का	शङ्का
१८	१७	आहरिः	आहरि
७१	२२	ममम	मम
७२	२५	निर्गण	निर्गुण
७६	२१	क्षत्र	क्षुद्र
८१	६	विग्र	विग्र
८६	१०	कोड़े	क्रोड़े
८७	१७	गर्मो	गर्मो
८८	१५	घटाकर्ण	घटाकीर्ण
८९	१३	शतचक्रञ्च	शतचक्रञ्च
९३	६	क्षुधित	क्षुधित
११	२२	जगतीनाथे	जगतीनाथे
९६	२५	शमीका	शमीको
१००	२५	भदो	भेदो
१०२	१३	बधूनाञ्च	बधूनाञ्च
१०५	६	गर्ग	गर्ग
११	१६	विनियान्वितः	विनयान्वितः
१०७	१५	भिक्षका	भिक्षका
१०८	४	यक्तुं	घक्तुं
१०९	६	कर्त्त	कर्त्तुं
११	२२	गार्कुलस्थाश्च	गार्कुलस्थाश्च
११०	२३	समाद्याप	समद्याप
१११	१६	स्वरूपा	स्वरूपा
	२४	विष्णाः	विष्णोः

६१४	६	यत्रे	यत्ते
"	१७	एतस्मिन्नन्तरे	एतस्मिन्नन्तरे
६१५	६	विभ्रन्तं	विभ्रन्तं
"	"	शुशोभितम्	शुशोभितम्
"	१६	वृत्तान्तं	वृत्तान्तं
६१६	१८	स्तथी	स्तस्थी
६२०	१४	कुङ्कुम	कुङ्कुम
६२१	११	विहाय	विहाय
"	२३	रुदन्तश्च	रुदन्तश्च
६२३	२१	ईपद्मास्य	ईपद्मास्य
६२६	७	पश्यथे	पश्यथे
६२७	२	पद्माक्ष	पद्माक्ष
६२८	१६	स्तत्	स्तत्
"	२१	"	"
६२६	२०	शुभप्रदे	शुभप्रदे
६३४	२२	चरणाम्भाज	चरणाम्भोज
६३६	६	पतिवत्	पतिवत्
"	१३	प्रभम	प्रभम्
"	१६	कण्ठोष्ठ	कण्ठोष्ठ
६३७	२३	जलदग्नी	ज्वलदग्नी
६३८	२	मनी	मनो
"	७	घैष्णवाणां	घैष्णवानां
"	१८	शप्त्वाहं	शप्त्वाऽहं
६४०	७	कन्येय	कन्येय

१४४	२३	वृन्दयात्र	वृन्दयाऽत्र
१४४	२५	वेदवता	वेदवती
१४८	३	आग्रह	श्रीग्रह
१४९	५	ग्रहणा	ग्रहणा
१४९	१७	क्षत्पीडिता	क्षुत्पीडिता
१५१	१०	यस्यामो	यास्यामो
१५४	१६	रक्षतु	रक्षितु
१६०	४	तूष्णाम्भूताञ्च	तूष्णीभूताञ्च
"	"	समुवाच	तमुवाच
१६१	१४	गोचरः	गोचरः
१६२	३	विर्मात्त	विभर्त्ति
१६४	७	मङ्गलम्	मङ्गलम्
"	२०	त्वा	श्रुत्वा
"	२२	अथ	श्चैव
१६५	२०	श्रुत्वा	श्रुत्वा
१६८	५	बहिरेव	बहिरेव
१७०	१६	बालकाः	बालकाः
१७६	१६	ध्येस्त्येव	ध्येऽस्त्येव
"	२५	नणाम्	नृणाम्
१७६	१६	पर्वत	पर्वत
१८२	४	मक्षो	मक्षमो
"	६	करुणसिन्धो	करुणासिन्धो
१८४	१२	फलार्थिनः	फलार्थिनः
१८६	२५	रीश्चरात्	रीश्चरात्

६८८	५	यथेक्ष	यथेक्षु
६९७	३	तस्मात्त्वं	तस्मात्त्वं
६९८	३	सांसर्गिको	सांसर्गिको
६९९	३	चक्षुषा	चक्षुषा
"	१९	स्थितातां	स्थितां
७०१	४	क्षमसंस्था	क्षमासंस्था
"	२०	नियतं	नियतं
७०३	१९	तूष्णं	तूष्णं
७०४	६	शिष्यस्तस्य	शिष्यस्तस्य
७०६	२५	दग्धं	दग्धं
७०८	२३	बीजं	बीजं
७१०	१३	ब्राह्मणा	ब्राह्मणो
७१२	१६	महात्म्यं	महात्म्यं
७१३	६	श्रेष्ठं	श्रेष्ठं
"	१६	सहिष्णुनां	सहिष्णूनां
"	१७	दातृणां	दातृणां
७१५	२२	कथिनं	कथितं
७१६	१२	गृह्यता	गृह्यतां
७२३	३	गोपिका	गोपिका
७२६	२०	भक्ष्या	भक्ष्या
७२९	२	वृद्धयः	वृद्धयः
७३३	२३	तच्छ्रुत्या	तच्छ्रुत्या
७३६	२५	अन्धनाकामा	अन्धनाकामि
"	१९	चर्षित	चर्षित

तेष्वेव	७	श्रोणिदेशे	श्रोणिदेशे
तु	१६	नाथो	मीवी
१	२०	मालतीलये	मालतीमाल्ये
३	१८	एवं	एवं
४	३	सुख	सुख
५	२	जलन्तं	ज्वलन्तं
६	३	परम्	परम्
७	२४	मुमुक्षुणां	मुमुक्षुणां
८	२३	सन्निधम्	सन्निधिम्
९	११	घरस्तमे	घरस्तस्मै
१०	२	विन्दं	विन्दुं
११	२२	प्रियाऽस्ति	प्रियोऽस्ति
१२	४	क्षणं	क्षणं
१३	२५	नमोऽस्तुते	नमोऽस्तुते
१४	१८	विह्वलः	विह्वलः
१५	१५	पया	त्वया
१६	१७	त्वद्वक्त्र	त्वद्वक्त्र
१७	१६	निन्दिताऽ	निन्दिताऽहं
१८	६	ध्रुवधे	ध्रुवधे
१९	१३	त्सापान	त्सोपान
२०	१	ब्रह्माणं	ब्रह्माणं
२१	४	पियूष	पीयूष
२२	१६	मनय	मनय
२३	२४	तत्रावास	तत्रोवास

७६३	२५	कण्ठीष्ठ	कण्ठीष्ठ
७६६	२	पट्टिशकरो	पट्टिशधरो
"	५	सर्वाङ्गा	सर्वाङ्गा
"	६	कण्ठैकतानेत्र	कण्ठैकतालैः
"	१८	स्पर्शचायोक्ष	स्पर्शचायोक्ष
७६८	२	माहिनी	मोहिनी
७७०	८	खण्डं	खण्डं
"	१७	ग्रह्यापाच	ग्रहोपाच
७७१	२४	कुर्मो	कुर्मो
"	२५	गुरो	गुरो
७७३	२	कार्तिर्या	कीर्तिर्या
"	२५	बाह्ये	बाह्ये
७७४	२३	कण्ठीष्ठ	कण्ठीष्ठ
७७५	६	श्रीकृष्ण	श्रीकृष्ण
"	८	पूर्णा	पूर्णा
"	१२	जसा	तेजसा
७७७	१६	प्रतिचिम्बध	प्रतिचिम्बध
७७८	१४	भताव	भतीष
"	१७	लौचने	लौचने
"	२३	चक्षुषि	चक्षुषि
७८०	१६	स्तोत्रेध	स्तोत्रेध
७८१	७	तत्सप्रन्न	तत्सप्रन्न
७८२	२	भुङ्क	भुङ्के
"	"	सङ्कतः	सङ्कतः

६२	२३	साकार	साकारे
६३	२३	वाञ्छितम्	वाञ्छितम्
६४	८	तश्चालयितुं	तश्चालयितुं
६५	१४	जगाह	जग्राह
६६	२१	विमति	विमर्ति
६७	४	पुलकाञ्चिति	पुलकाञ्चित
६८	११	महाविष्णुं	महाविष्णुं
६९	८	प्रविशामा	प्रविशामो
७०	२१	घूर्णन्	घूर्णन्
७१	१२	अहा	अहो
७२	२३	नारायण	नारायणे
७३	१६	तद्दह	तद्देह (यं देवमित्यपि पाठः)
७४	५	बुद्धा	बुद्धा
७५	१२	नृत्य	नृत्य
७६	२१	भिक्षकम्	भिक्षकम्
७७	६	सुरांस्तथा	सुरांस्तथा
७८	४	मद्भाकं	मद्भाक्यं
७९	२	देवेशं	देवेशं
८०	१६	स्वरूपिणा	स्वरूपिणी
८१	१८	सावणि	सावर्णि
८२	२०	"	"
८३	१६	सर्वपां	सर्वेषां
८४	"	सर्वज्ञ	सर्वज्ञ
८५	२०	चिज्जिते	चिज्जिते

८१४	६	त्यागान्तरं	त्यागानन्त
८१५	११	वस्रामं	वस्राम
८१६	६	वं	हं
८२४	११	षहि	षहि
८२७	२५	कैलासञ्च	कैलासञ्च
८२६	२	कर्त्तुं	कर्त्तुं
"	१८	निमग्नानन्दऽऽसागरे	निमग्नऽऽनन्द
८३०	१२	इत्युत्था	इत्युक्त्वा
"	२०	पुष्व	पुष्व
८३१	६	सर्प	सर्ब
"	७	सामदाय	समादाय
"	२०	बन्धनागुरु	बन्धनागुरु
"	२३	क्रीडा	क्रीडां
८३२	१४	दिब्ब	दिध्य
८३३	१६	मद्भृत्यामत्ञ्च	मद्भृत्यानाञ्च
८३४	१६	लमे	लेमे
८३७	६	शुष्ककण्ठो	शुष्ककण्ठी
८३६	१६	कतिचित्तां	कतिखिन्नं
८४०	२५	शुष्ककण्ठो	शुष्ककण्ठी
८४६	१२	"	"
८४६	२	परं	परं
८५०	२१	जगद्गौरि	जगद्गौरि
८५५	८	प्रेमणा	प्रेमण
८५७	२१	जगाम्	जगाम

२२	२२	पङ्	पङ्.
२३	२३	बल्लष्ट	बिलष्ट
२४	२४	पुत्रस्तः	पुत्रस्तः
२५	२५	ग्रहणशापेन	ग्रहणशापेन
२६	२६	यंभूव	यंभूव
२७	२७	निष्ठुरं	निष्ठुरं
२८	२८	चन्द्र	चन्द्रे
२९	२९	बिबर्जितम्	बिबर्जितम्
३०	३०	द्वष्टा	द्वष्टा
३१	३१	दुर्लभम्	दुर्लभम्
३२	३२	घरवर्णिनी	घरवर्णिनी
३३	३३	गृहिष्यसि	गृहिष्यसि
३४	३४	गजबज्जन	गजबज्जन
३५	३५	त्वक्ष्यामि	त्वक्ष्यामि
३६	३६	प्रकारेण	प्रकारेण
३७	३७	धर्मा	धर्मा
३८	३८	जटांम्	जटाम्
३९	३९	भवा	भवा
४०	४०	वालुका	वालुका
४१	४१	जानका	जानकी
४२	४२	करिष्यामि	करिष्यामि
४३	४३	प्रययौ	प्रययौ
४४	४४	शीघ्रं	शीघ्रं
४५	४५	महा भूपायां	महाभूपायां

२२	सोऽकरो	सोऽकूरो
७	समादत्तं	समादत्तुं
६	दक्ष्याम्यद्य	द्रक्ष्याम्यद्य
१३	धमिणां सर्वकमिणाम्	धर्मिणां सर्वकर्मिणाम्
११	रत्नसिंहासने	रत्नसिंहासने
१२	शुष्ककण्ठी	शुष्ककण्ठी
१४	केचिद्देवाः	केचिद्देवाः
१६	मूर्ति	मूर्ति
१०	रमणश्चेष्ट	रमणश्चेष्ट
७	शुचिस्मिता	शुचिस्मिता
१८	मनीन्द्रैः	मूर्नीन्द्रैः
१०	कुत्वा	कृत्वा
१५	तासां	तासां
१७	गोपीभिः	गोपीभिः
२०	बोधयामासु	बोधयामासु
२३	मातृसमीपतः	मातृसमीपतः
७	विधजितः	विधर्जितः
१२	सिद्धान्	सिद्धान्
१७	भ्रातृ	भ्रातृ
"	विग्रहम्	विग्रहम्
२०	नित्यविग्रहः	नित्यविग्रहः
२२	रूपश्च	रूपश्च
"	वेशश्च	वेशश्च
१६	सदाकूरगणौ	सदाकूरगणौ

३	रत्नलङ्कार	रत्नालङ्कार
२०	प्रणम्य	प्रणम्य
५	प्रसस्ता	प्रशस्ता
१८	गच्छतं	गच्छन्तं
१५	या	यो
१४	मसन्वितः	समन्वितः
७	सुशोभितं	सुशोभितं
२	चतुर्भुजा	चतुर्भुजो
२२	कपिला	कपिलो
२०	शस्त्राणां	शस्त्राणां
४	काननेषु	काननेषु च
७	मत्कारण	मत्कारणं
६	वैष्णवाणां	वैष्णवानां
२५	लभेच्छुचम्	लभेच्छुचम्
६	खञ्जनाञ्च	खञ्जनाना
४	पूर्णमा	पूर्णमा
१५	दृष्ट्वा	दृष्ट्वा
१७	क्षयोध्या	अयोध्या
१६	प्रयोगे	प्रयोगे
२३	दोलयमान	दोलायमानं
२	परमात्मन	परमात्मनः
६	एतत्त	एतत्ते
१३	सुस्वप्नदर्शने	सुस्वप्नदर्शने
१६	ग्रहवैवर्त्त	ग्रहवैवर्त्त

२०	वर्द्धिरूपा	वर्द्धिरूपा
८	सर्वासिद्धश्वरः	सर्वसिद्धश्वरः
५	जगन्निध	जगदनिध
७	भगवात्	भगवान्
८	केशवेणा	केशवेणी
२५	मर्त्त	मर्त्य
२५	नखुद्धिश्च	नखुद्धिश्च
२१	चन्दनाचितम्	चन्दनाचितम्
१३	बुद्ध्या	बुद्ध्या
११	मक्ष्यं	ममक्ष्यं
१४	महद्भूती	महद्भूतो
१७	हिंसाणाञ्च	हिंसाणाञ्च
१८	अतुर्वर्णा	अतुर्वर्णो
६	वर्षणाञ्च	वर्षणाञ्च
२४	पापं	पापं
५	जन्तु	जन्मसु
१२	लोलाम	लोलामं
१४	द्वन्द्वे	द्वन्द्वे
१४	प्रतापपतः	प्रतापतः
१६	केतन	केचन
४	रहस्थलम्	रहस्थलम्
२३	ग्रहाहत्या	ग्रहाहत्या
२५	क्षणं	क्षण
११	गुन्दे	गुन्दे